Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vol.67

कल्याण

2013

No. 3-8, 10-12

CC-0. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

132280

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

Central Library
Gurukul Kangri University
Haridwar-249404

No 3-8,10-12

शरणागतवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त श्रीहठीजी और उनकी परमाराध्या श्रीराधारानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

पुस्तकालय 132280 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
Central Library Gurukul Kangri University Haridwar-249404 (U.A.)

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

वर्ष ८७ | गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०६९, श्रीकृष्ण-सं० ५२३८, मार्च २०१३ ई० | संख्या ३
पूर्ण संख्या १०३६

'नर कौन ? तौन, जौन 'राधे-राधे' नाम रटै'

(भक्त श्रीहठीजी)

कोऊ उमाराज, रमाराज, जमाराज कोऊ,
कोऊ रामचंद सुखकंद नाम नाधे मैं।
कोऊ ध्यावै गनपति, फनपति, सुरपति,
कोऊ देव ध्याय फल लेत पल आधे मैं॥
'हठी' को अधार निराधार की अधार तुही,
जप तप जोग जग्य कछुवै न साधे मैं।
कटै कोटि बाधे मुनि धरत समाधे ऐसे,
राधे पद रावरे सदा ही अवराधे मैं॥

गिरि कीजै गोधन, मयूर नव कुंजन को,
पसु कीजै महाराज नंद के बगर कौ।
नर कौन ? तौन, जौन 'राधे-राधे' नाम रटै,
तट कीजै बर कूल कालिंदी कगर कौ॥
इतने पै जोई कछु कीजिए कुँवर कान्ह,
राखिए न आन फेर 'हठी' के झगर कौ।
गोपी पद पंकज पराग कीजै महाराज!
तृन कीजै रावरेई गोकुलनगर कौ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर चैत्र, वि० सं० २०६९, श्रीकृष्ण-सं० ५२३८, मार्च २०१३ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- 'नर कौन ? तौन, जौन 'राधे-राधे' नाम रटै'	५६३
२- कल्याण	५६५
३- माननेमात्रसे भगवत्प्राप्ति (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	५६६
४- भक्ति और भक्त (पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा)	५६९
५- पाप होने कैसे बन्द हों ? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	५७२
६- 'प्रेम फूल फूलन सौं प्रेम सेज रची है' (श्रीअर्जुनलालजी बंसल)	५७५
७- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	५७७
८- प्रार्थना [कविता] (ब्रह्मलीन संत श्रीपथिकजी महाराज) [प्रेषक—श्रीमहेशचन्द्रजी]	५७८
९- आत्मश्लाघासे आत्मपतन (डॉ० (श्रीमती) ज्ञानवतीजी अवस्थी)	५७९
१०- जीवनकी समस्या (स्वामी श्रीचिदानन्दजी महाराज)	५८१
११- गृहस्थ संन्यासी (श्रीभँवरलालजी परिहार)	५८६
१२- 'नामु राम को कलपतरु' (श्रीदेवेन्द्रजी शर्मा)	५८८
१३- साधन-सूत्र [संसारमें कैसे रहें ?] (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)	५९१
१४- लम्बी उम्रतक कैसे जियें ? (श्रीबरजोरजी सिंह)	५९२
१५- 'तन्मे मन: शिवसङ्कल्पमस्तु' (पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र)	५९५
१६- भगवान् भी भूखे हैं (श्रीज्ञानचन्दजी आर्य 'गोयल')	५९७
१७- अपने कल्याणका उपाय (श्रीघनश्यामदासजी मोदानी, बी०ए०, एल-एल०बी०)	५९८
१८- सादगी एवं सदाचार (श्रीरामचाकरजी)	५९९
१९- श्रीहरिरामदासजी महाराज [भक्तगाथा] (साधु श्रीनवलरामजी शास्त्री)	६००
२०- एक ही परमात्मा (श्रीमोहनकुमारजी शर्मा)	६०२
२१- साधनोपयोगी पत्र	६०३
२२- व्रतोत्सव पर्व [वैशाखमासके व्रत-पर्व]	६०५
२३- कृपानुभूति	६०६
२४- पढ़ो, समझो और करो	६०७
२५- मनन करने योग्य	६१०

चित्र-सूची

१- शरणागतवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- भक्त श्रीहठीजी और उनकी परमाराध्या श्रीराधारानी	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- ययातिका स्वर्गसे पतन	(इकरंगा)	५८०
४- श्रीहरिरामदासजी महाराज	(इकरंगा)	६००

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द १८० रु०
सजिल्द २०० रु०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ९०० रु०
सजिल्द १००० रु०

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 40 (Rs.2200), पंचवर्षीय US$ 200 (Rs.11000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—दूसरोंको सुख पहुँचाना, उनके दुःखको अपना दुःख बनाकर सुख उन्हें दे देना—इस प्रकारका क्षणभरका मनोरथ भी महान् पुण्यरूप है। दूसरेके दुःखको सर्वथा अपना बना लेना तो अत्यन्त ही महत्त्वकी बात है, उसके दुःखका जरा-सा हिस्सा बँटाना भी बहुत बड़ा सौभाग्य है। इसीमें मानवताका विकास है।

सत्पुरुषोंको दुःख होता है, पर अपने दुःखसे नहीं, अपने दुःखकी तो उन्हें परवा ही नहीं होती। वे तो दूसरोंके दुःखसे ही दुःखी होते हैं। इसी प्रकार निर्विकार संतोंकी सहज नित्य सुखरूपता भी दूसरेके सुखमें अपने अस्तित्वका अनुभव किया करती है।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

कवियोंने संत-हृदयकी तुलना नवनीतसे की, पर वह ठीक बैठी नहीं; क्योंकि मक्खन तो स्वयं ताप (गरमी) पाकर पिघलता है, लेकिन पवित्र-हृदय संत दूसरेके दुःखसे द्रवित हो जाते हैं।

इसीलिये संत पुरुष स्वयं विपत्तिका वरण करके दूसरेको सुख पहुँचाया करते हैं। उनका जीवन होता ही है इसीलिये; नहीं तो उन आप्तकाम महात्माओंका जगत्के कर्मप्रपंचसे क्या सम्बन्ध?

संसारमें उनका जीवन सर्वथा घृणित, पापमय और निकृष्ट है, जो दूसरोंको दुःख देनेके लिये ही जीवन धारण करते हैं और उसीमें सुख तथा सफलताकी अनुभूति करते हैं।

याद रखो—भूखे गरीबको अन्न, नंगेको कपड़ा, रोगीको दवा तथा पथ्य और निराश्रयको आश्रय जरूर दो, परंतु मनमें ऐसा अभिमान कभी मत करो कि वह आश्रयहीन दरिद्र है और मैं उसपर उपकार करनेवाला समर्थ कृपालु हूँ। असलमें सबको भगवान् ही देते हैं। तुम तो उसमें निमित्तमात्र हो। शुभकर्ममें भगवान्ने तुमको निमित्त बनाया है, यह तुमपर उनकी विशेष कृपा है।

सभी रूपोंमें भगवान् हैं, यह समझकर भगवत्पूजाकी भावनासे गरीब, अपाहिज और रोगीकी खूब सेवा करो और भगवान्ने इन रूपोंमें आकर तुम्हारी सेवाको स्वीकार किया, इसे अपना परम सौभाग्य समझो।

असलमें तुम्हारे पास तुम्हारा अपना है ही क्या? सभी वस्तुएँ भगवान्की ही हैं। तुम उन्हें अपनी मानकर और अपनेको उनका दाता समझकर अभिमान करने लगो तो यह तुम्हारी बेईमानी होगी। प्रभुकी वस्तु प्रभुके अर्पण हो और यह कार्य सुचारुरूपसे—सुव्यवस्थित रीतिसे हो, यही तुम्हारा कर्तव्य है। कर्तव्यसे चूकते हो तो तुम मालिकके अपराधी बनते हो।

याद रखो—भगवान्की वस्तुओंको अपनी मानना बेईमानी, उन्हें अपनी बताकर किसीपर अहसान करना बेईमानी, अपनेको उनका दानी घोषितकर रोब गाँठना बेईमानी और न देकर स्वयं मालिक बन बैठना तो सबसे बड़ी बेईमानी है। (बेईमानकी लोक-परलोक—दोनोंमें दुर्गति होती है।) यह सदा स्मरण रखो कि सब कुछ भगवान्का है और सब भगवान्के रूप हैं। भगवान्की वस्तु भगवान्को जब जिस रूपमें जैसे जरूरत हो, उसी रूपमें वैसे ही देनेके लिये ही वह वस्तु तुम्हें सौंपी गयी है और इस सेवाका तुम्हें सदा बदला मिलता रहता है—यहाँ योग-क्षेमका निर्वाह होता है और मति-गति शुभ होती है। आगे इससे भी बहुत बड़ा पुरस्कार मिलनेवाला है, इस सेवाके बदलेमें मालिक स्वयं तुम्हें अपना आत्मदान करनेवाले हैं। इसलिये ईमानदारीसे सेवा करनेमें कभी मत चूको। **'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माननेमात्रसे भगवत्प्राप्ति

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

आपलोगोंको ऐसी दामी (मूल्यवान्) बातें बतलाते हैं, जिनमें आपलोगोंका न तो पैसा खर्च होगा, न समय अधिक लगेगा, न विशेष परिश्रमकी ही आवश्यकता पड़ेगी। हाँ, इन्हें प्रयोगमें लानेसे बहुत ज्यादा लाभ होकर निश्चय ही कल्याण हो सकता है। इनको कोई भी कर सकता है—गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी या संन्यासी; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र—चारों ही आश्रम एवं वर्णवाले उनको कर सकते हैं और चारोंका ही उनसे कल्याण हो सकता है। अपने कल्याणमें, मुक्तिमें मनुष्यमात्रका अधिकार है। जो लोग इस प्रकार कहते हैं कि मुक्ति किसी वर्ण-विशेष या आश्रम-विशेष अथवा देश-काल-विशेषमें ही होती है, उनकी बातें कभी सुननी-माननी नहीं चाहिये; वे अपना सिद्धान्त अपने पास ही रखें। ऐसे झूठे बन्धनोंमें जकड़कर एवं सिद्धान्तोंको बनाकर वे अपना और मुक्तिका भी पतन कर देते हैं। इसलिये उन लोगोंके बन्धनमें नहीं आकर खुला होकर विचरना चाहिये। वे सब झूठे बन्धन हैं और भगवान्के बनाये हुए नहीं हैं। कुछ भी हो, मुक्तिके लिये सभीका दायरा खुला एवं विस्तृत है, फिर इस कलिकालमें तो भगवान्की उदारताकी सीमा नहीं है। इस प्रकारका मौका पाकर भी अगर हमलोग मुक्तिसे वंचित रह जाते हैं तो समझना चाहिये कि हमारा बड़ा भारी दुर्भाग्य है। किसी भी मनुष्यका कल्याण होना वस्तुतः बहुत कठिन बात नहीं है, बल्कि बहुत ही साधारण-सी बात है। आपलोगोंने जो अपनी आत्माके कल्याणको बहुत ही कठिन एवं असम्भव तथा जो इतना अधिक जटिल मान रखा है, वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। यह तो मात्र आपलोगोंके हृदयकी कमजोरी है कि जो मुक्तिका होना इतना कठिन मान लिया है। यही सबसे हानि करनेवाली बात है। इसलिये यह सिद्धान्त रखना चाहिये कि परमात्माकी प्राप्ति करना मनुष्यके लिये कोई कठिन काम और चीज नहीं है। मनुष्य चाहे जैसा भी पापी-से-पापी एवं मूर्ख-से-मूर्ख क्यों न हो, उसका बहुत ही शीघ्र-से-शीघ्र उद्धार हो सकता है। आपलोगोंको रुपया कमानेमें जितना परिश्रम करना पड़ता है, भगवान्की प्राप्ति करनेमें उस प्रकार उतना परिश्रम नहीं करना पड़ता। भगवान्की प्राप्ति न होनेपर आपलोग जो अज्ञानवश ऐसा मान बैठते हैं कि हमलोगोंपर भगवान्की दया नहीं है, भगवान्का हमपर कोप है तो यह भगवान्पर कलंकका आरोप करना है। भगवान्की दयाकी तो कोई सीमा ही नहीं है, उनकी आपलोगोंपर बड़ी भारी दया है। यह भगवान्की बड़ी भारी दयाका ही परिणाम है कि जिससे आपलोगोंके लिये इस प्रकारके देश, काल, स्थान एवं बुद्धिकी व्यवस्था हुई है। फिर भी अगर आप भगवान्को गाली निकालते हैं, उनको कोसते हैं तो आपकी मर्जी है, लेकिन फिर भी भगवान् उन बातोंपर ध्यान नहीं देते; क्योंकि वे समझते हैं कि आपलोग पापी हैं—इस प्रकारसे जिस प्रकार आपलोग भगवान्पर कलंक और लाँछन लगाते हैं। माता-पितापर कलंक और लाँछन या उनका अन्य कोई अपराध करनेपर माता-पिता तो अपने पुत्रको घरसे निकाल भी सकते हैं या उसका त्याग कर सकते हैं, लेकिन भगवान् तो आपलोगोंको न तो घरसे ही निकालेंगे और न आपलोगोंपर कृपाका त्याग ही करेंगे।

महात्मा, धर्म और भगवान्—इन सबका यही नियम है कि ये लोगोंसे, पापियोंसे भी सबसे सम्बन्ध जोड़ना जानते हैं, तोड़ना नहीं। लेकिन अगर कोई स्वयं उनसे सम्बन्ध तोड़ना चाहे तो उसका ये क्या उपाय करें और क्या कर सकते हैं? महात्मा, धर्मराज और ईश्वर—ये तीनों ही महापुरुष हैं। इसलिये जो उच्चकोटि पुरुष होते हैं, वे कभी भी किसीका अनिष्ट नहीं चाहते, सबका वे हर प्रकारसे हित ही चाहते हैं। बालक चाहे जितना भी कुपात्र क्यों न हो, लेकिन माँ-बाप कभी कुपात्र नहीं होते। फिर भी माँ-बापमें तो कभी-कभी स्वार्थ-बुद्धि हो जानेके कारणसे दोष पाया भी जा सकता है, लेकिन ईश्वर, धर्म और महापुरुषोंमें ये बातें नहीं पायी जा सकतीं।

सबसे बढ़कर दामी बात यह है कि हर समय जो भी चीज आपकी दृष्टिके सम्मुख पड़े, उसको परमात्मा ही समझना चाहिये। जो भी कुछ वस्तु है, सब परमात्माका ही स्वरूप है—ऐसा समझकर खूब आनन्दमें मुग्ध होना चाहिये। जो भी कुछ है, वह सब भगवान्का ही स्वरूप है, इस बातको भगवान्ने गीताके जिस श्लोकमें बतलाया है, उसको कण्ठस्थ कर लेना चाहिये। यह बात भगवान्ने गीता अध्याय ७ श्लोक १९ में बतलायी है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

और जो बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त हुआ ज्ञानी सब कुछ वासुदेव ही है अर्थात् वासुदेवके सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं, इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अति दुर्लभ है।

सबको वासुदेव—भगवान्का स्वरूप समझना, यह खास बात है; महापुरुषोंमें तो स्वभावसिद्ध है। इसको हमलोगोंको साधन बना लेना चाहिये। इस श्लोकका अर्थ क्या है? बहुत-से जन्मोंके अन्तके जन्ममें जो भी कुछ है, वह वासुदेवका स्वरूप है—इस प्रकारसे मुझको ज्ञानवान् भजता है। इस प्रकारसे समझनेवाला महात्मा बहुत ही दुर्लभ है। इस प्रकारकी महिमा सबमें भगवान्को देखनेवाले महापुरुषकी बतलायी गयी है। आपलोगोंको इस जन्मको तो बहुत-से जन्मोंका अन्तिम जन्म मान लेना चाहिये; समझ लेना चाहिये कि यही हमारा अन्तिम जन्म है। इसके बाद और जन्म हमलोगोंको नहीं लेना पड़ेगा, इस प्रकारका विश्वास कर लेना चाहिये; क्योंकि विश्वास ही फलदायक होता है। इस प्रकारका विश्वास करनेमें आपलोगोंको लगता ही क्या है? ऐसा माननेमें आपलोगोंकी कोई हानि तो है ही नहीं। एक पुरानी बात याद आ गयी जो कि आपलोगोंको बतलायी जाती है। एक जातिका परिवर्तन हो गया—यह इस बातसे स्पष्ट हो जाता है।

हमलोगोंके देश मारवाड़में राजपूत लोग थे। उन लोगोंको फतेहपुरके नवाबने अपने पास बुलाया और कहा—'तुम सब लोग मुसलमान बन जाओ।' उन लोगोंने मुसलमान बननेसे इनकार कर दिया। तब नवाबने राजपूतोंसे कहा—'यदि तुम लोग मुसलमान होना नहीं चाहते हो तो मत बनो, लेकिन मर्दुमशुमारी यानी मनुष्य-गणनामें तुम मुसलमानोंके साथ अपना नाम लिखवा दो, इतनी बात तुम हमारी मान लो। तुम लोगोंका जो धर्म है, उसका तुम लोग उसी प्रकारसे पालन कर सकोगे। उसमें किसी प्रकारकी रोक-टोक नहीं होगी।' वे बीकानेर एवं जोधपुरके राजपूत थे। समझे कि मुसलमानोंकी लिस्टमें नाम लिखवा देनेमें हमलोगोंको आपत्ति ही क्या है? हमलोग अपना हिन्दू राजपूत-धर्मका पालन करेंगे। उन लोगोंने नवाबकी बात मान ली और अपना नाम मुसलमानोंकी लिस्टमें लिखवा दिया, साथ ही अपने धर्मका पालन भी करते रहे। वह जाति हमारे देशमें क्यामखानी नामसे प्रसिद्ध हो गयी और अब वे ही कट्टर मुसलमान बन गये हैं। थोड़े दिनों पहलेतक तो उन लोगोंके विवाह-शादी आदि शुभ कार्योंमें ब्राह्मणोंका उनके घर आना-जाना होता था। अब यह भी धीरे-धीरे बन्द होकर सब काम चौपट हो गया। वे लोग अपनेको केवल मुसलमान कहने लगे। यद्यपि उन्होंने मुसलमानी धर्म स्वीकार नहीं किया था, किंतु धीरे-धीरे मुसलमानोंके सब मजहबी मामलोंको स्वीकार करके वे कट्टर मुसलमान हो गये। केवल मान लेनेका ऐसा परिणाम हुआ। ऐसी ही बात गंगाजीके सम्बन्धमें भी समझनी चाहिये। गंगाजीकी शरणमें जानेपर बहुत शीघ्र उद्धार हो सकता है। गंगाजी भगवान्के चरणोंका जल हैं। गंगाजीमें स्नान करनेसे पापोंका नाश होकर मनुष्योंकी मुक्ति हो जाती है, ऐसा माना जाता है। आपलोग गंगाजीके जलका स्नान एवं पान तो करते ही हैं, इस बातमें तो कोई कमी या कहनेकी बात है ही नहीं और न कोई ऐसी आवश्यकता ही है। कमी क्या है? केवल मानना ही बाकी है कि गंगा-स्नानसे मुक्ति हो जाती है तो निश्चय ही मुक्ति हो सकती है। इसलिये अब आपलोगोंको ऐसा दृढ़विश्वास करके मान लेना चाहिये कि हमने तीर्थ-स्नान कर लिया, अब हमारे उद्धार होनेमें किसी प्रकारकी शंकाकी गुंजाइश नहीं है। इस प्रकार मान लेनेमें आपलोगोंकी कोई हानि तो होगी ही नहीं। कैसी दामी बात है। इसमें किसी प्रकारसे पैसोंका भी खर्च नहीं है।

आपको ये दो प्रकारके साधन बतलाये गये हैं।

पहला साधन तो है संसारमें सब लोगोंमें परमात्माका स्वरूप समझना, दूसरा साधन जो परमात्माकी प्राप्ति करानेवाला है—वह है इसी जन्मको अन्तिम जन्म समझ लेना और भगवान्की प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना। भगवान् गीतामें कहते हैं कि—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥
(७।१९)

बहुत-से जन्मोंके अन्तिम जन्ममें ज्ञानवान् मुझको प्राप्त होता है तो यहाँ अन्तिम जन्म कहनेका क्या मतलब है? ८४ लाख योनियोंके बादमें जो यह मनुष्यशरीर आपको मिला है, यही अन्तिम जन्म समझना चाहिये। इस मनुष्य-जन्मको पाकर भी यदि आपलोगोंका कल्याण नहीं हो तो बड़ी लज्जाकी बात है। अगर आपलोग इस मनुष्य-जन्मके योग्य ही नहीं होते तो भगवान्ने आपलोगोंको क्यों मनुष्य-जन्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया? भगवान् चाहते तो हमलोगोंको बन्दर, गधा या कुत्ता—किसी भी तिर्यक् योनिमें जन्म दे सकते थे। उन्हें हमलोगोंको जन्म देनेमें स्वतन्त्रता थी। चाहे जैसा शरीर हमलोगोंको भगवान् दे देते—हमलोगोंकी तरफसे तो कोई एतराज था नहीं। भगवान्ने अपनी इच्छासे हमलोगोंको जो भी जन्म दिया, वैसी ही योनि हमलोगोंको मिल गयी। अगर जन्म लेनेमें सबकी इच्छा एवं स्वतन्त्रता होती तो फिर सभी लोग मनुष्य-जन्म ही लेना पसन्द करते। चाहे मनुष्य-जन्म लेकर भूखों ही मरना पड़े, लेकिन गधा, कुत्ता आदिकी योनिको तो कोई भी नहीं चाहता। ८४ लाख योनियोंमें केवल इस मनुष्य-शरीरसे ही भगवान्की प्राप्ति हो सकती है। इसलिये इस मनुष्य-जन्मको सब जन्मोंका अन्तिम जन्म समझ लेना चाहिये। इस प्रकारका विश्वास कर लेना चाहिये। ऐसा विश्वास करनेपर बहुत शीघ्र काम बन सकता है।

इसलिये यह मनुष्य-शरीर ही सब जन्मोंका अन्तिम जन्म है और यह जन्म ही आगेके बहुत-से जन्मोंका, जो हो सकते हैं उन सबका अन्त करनेवाला है। बस, ऐसा विश्वास कर लेना चाहिये। इसमें कुछ भी परिश्रमका काम नहीं है। मान लें कि हमलोगोंने ऐसा विश्वास कर लिया कि हमलोगोंपर भगवान्की कृपा है, हमारा कल्याण हो सकता है तो निश्चय ही हमारा कल्याण हो सकता है, इसमें किसी प्रकारकी शंका होनी ही नहीं चाहिये।

सब प्रकारकी चेष्टाएँ तथा क्रियाएँ भगवान्की लीलाएँ ही हो रही हैं, इस प्रकार समझनेमें आपको न तो किसी प्रकारका परिश्रम है और न रुपये-पैसोंका ही खर्च है। जड़-चेतनकी जो भी क्रियाएँ हैं—उस सबको देख-देखकर खुश होना चाहिये और समझना चाहिये, यह जो कुछ भी हो रहा है, सब भगवान्की लीला हो रही है। आपलोग जो सिनेमा, थियेटर, नाटक आदिमें जाकर लीला देखा करते हैं, वह तो मनुष्योंकी बनायी गयी लीला यानी बनावटी लीला है। लेकिन जो कुछ यह सब दैवेच्छासे हो रहा है, यह मनुष्यकी बनायी हुई लीला नहीं है। यह सब भगवान्की लीला है। इसको असली लीला समझकर आनन्दमग्न होना चाहिये। इस प्रकारका भाव हो जानेपर राग-द्वेषका अभाव होकर ही रहेगा और राग-द्वेष न रहनेपर काम एवं क्रोधका अपने-आप ही नाश हो जाता है; क्योंकि राग-द्वेषके ही कारणसे काम एवं क्रोधकी उत्पत्ति होती है। इसलिये सबको भगवान्की माया समझ लेनेपर राग-द्वेषका अभाव होकर उनसे काम एवं क्रोधका नाश ही केवल हो जाता हो, इतनी ही बात नहीं है। इनके नाश होनेके साथ-साथ जो आपलोगोंके मनमें ईर्ष्या और जो मनमें वैर आदिकी भावना है, इन सबकी भी साथ-ही-साथ समाप्ति हो जाती है। इसलिये यह जो भी कुछ चेष्टा होती है, वह सब भगवान्की ही लीला है, ऐसा मानना और भाव रखना बहुत ही दामी (मूल्यवान्) चीज है।

अपने-आप जो कुछ हो रहा है, उसको ऐसा समझ लेना अथवा मान लेना है कि यह सब भगवान्की लीला हो रही है। ऐसा मान लेनेपर आपलोगोंको उस सुख, शान्ति एवं आनन्दकी निश्चितरूपसे प्राप्ति होगी, जो आजतक नहीं मिला है। इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है। यह शान्ति तबतक मिलती रहेगी, जबतक आप सब चेष्टाओंको भगवान्की लीला मानते रहेंगे। अगर आपलोगोंको इस बातका विरोध ही करना है कि यह सब प्रकारकी चेष्टाएँ वास्तवमें भगवान्की लीला नहीं है, कैसे मान लें? तो आप इसका विरोध कर सकते हैं, परंतु आपलोगोंको अपने कल्याण करनेका कितना सीधा उपाय बतलाया है, इसपर ध्यान देना चाहिये एवं इस प्रकारकी मान्यता कर लेनेमें आपलोगोंको किसी प्रकारका परिश्रम या पैसोंका खर्च नहीं है। ये तीन प्रकारकी बातें आपलोगोंको केवल माननेकी ही बतलायी गयी हैं, करनेकी नहीं बतलायी हैं। इनको माननेमें किसी प्रकारका परिश्रम नहीं है; करनेमें तो परिश्रमका काम हो सकता है। इस प्रकार ये तीन बातें जो आपको माननेके लिये बतलायी गयीं, उनको फिरसे बतलाया जाता है।

१. यह जो भी कुछ है, सो सब परमात्माका स्वरूप है।

२. यह मनुष्यजन्म सब जन्मोंका अन्तिम जन्म है। इस जन्मके बाद आपलोगोंको दूसरा जन्म नहीं लेना पड़ेगा। यह मानव-शरीर हमलोगोंको भगवान्की दयासे मिला है। जब भगवान्की हमलोगोंपर इतनी बड़ी भारी दया है तो क्या अब भी हमारा कल्याण होनेमें किसी प्रकारका संशय है? कभी नहीं—ऐसा मानना चाहिये।

३. जो भी कुछ चेष्टाएँ हो रही हैं, सब भगवान्की लीला हो रही है—ऐसा समझकर आपलोग खेल देखते रहें। सिनेमा, थियेटर, नाटक, रामलीला, कृष्णलीला—ये सब तो लोगोंकी बनायी हुई नकली लीला है, असली लीला नहीं है। असली लीला तो वही है, जो भगवान्की बनायी हुई है। इस प्रकारसे ये तीन बातें बतलायी गयी हैं, जो माननेमात्रसे मनुष्यको कल्याण प्राप्त करा देनेवाली हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्ति और भक्त

(पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा)

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

नारद! मैं वैकुण्ठमें निवास नहीं करता और न योगियोंके हृदयमें ही; किंतु मेरे भक्त जहाँ कीर्तन करते हैं, वहीं मैं रहता हूँ।

जीवमात्रकी सदैव यही इच्छा रहती है कि '**सुखं मे भूयाद् दुःखं मे मा भूत्**' अर्थात् सुख मुझे प्राप्त हो और दुःख न हो; किंतु इसका सच्चा, खरा, ठोस और निर्दोष उपाय तो भक्ति ही है। आजका भक्तिहीन संसार यदि चाहता है कि वह सुखी और शान्त हो तो उसे भक्ति-तत्त्वकी महत्ता और उपादेयताको समझना चाहिये। तभी वह हिंसा, क्रूरता और अन्यायसे अपना पीछा छुड़ाकर प्रेम, सहानुभूति और न्यायके वातावरणका निर्माण कर सकता है; क्योंकि एकमात्र भक्ति ही व्यष्टि और समष्टिके आत्मयजन और विश्व-सेवाकी सत्साधना है। 'भक्ति' और 'भक्त' शब्दोंका अर्थ ही सेवा और सेवक अथवा साधना और साधक है।

हम देखते हैं कि मनुष्य-संसार आज स्वार्थवश कलहकी चक्कीमें पिस रहा है; किंतु यदि वह आन्तरिक, पूर्ण और निर्दोष परमार्थमूलक सच्चा आत्मलाभ चाहता है तो उसे ईश्वरभक्तिके मार्गको अपनाना चाहिये; क्योंकि इसी मार्गसे वह ईश्वरको प्राप्तकर सिद्ध, तृप्त और अमृतात्मा भी हो सकता है। अपितु मत्त, स्तब्ध और आत्माराम भी बन सकता है। इसी बातको भक्तिशास्त्र इस तरह स्पष्ट करते हैं—

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवत्यमृतो भवति तृप्तो भवति।
यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवत्यात्मारामो भवति।

(नारदभक्तिसूत्र ४, ६)

क्या आजका पथ-भ्रष्ट नास्तिक संसार बता सकता है कि उसके पास जीवन-कलहके नाश और आनन्दकी प्राप्तिकी ऐसी सत्साधना और सदोषधि है? कदापि नहीं, प्रत्युत उसके पास तो विश्व-संहारक और मानवता-घातक विज्ञान और राजनीति है।

यहाँ यह भी भुलानेकी बात नहीं है कि भारत भक्ति-तत्त्वको सदासे ही महामहिम समझता आया है। भक्तोंकी दृष्टिमें तो भक्तिकी तुलनामें संसारका सम्पूर्ण ऐश्वर्य एवं मुक्ति भी नगण्य रही है। यही कारण है कि ईश्वरके द्वारा वर माँगनेकी आज्ञा होनेपर भी भक्तोंके मुखसे सदैव यही बात निकलती रही है—

परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम॥

परंतु यह भी सत्य है कि भक्तिपूत अन्तःकरणके लोग कुछ विचित्र ही होते हैं। उनकी आत्माका दायरा व्यक्ति और कुटुम्बतक ही सीमित न होकर सम्पूर्ण विश्व और जीवमात्र होता है। व्यक्तिभेद और देशभेदका तो भक्तिके वातावरणमें अत्यन्ताभाव ही रहता है। वहाँ तो एकमात्र विश्वकुटुम्ब-भावना काम करती है। भक्त विश्वके दुःखमें अपना दुःख समझता है—अपितु उसके हृदयसे तो नित्य यही आवाज निकलती है—

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात्परा-
मष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्तिं प्रपद्येऽखिललोकभाजा-
मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः॥

अर्थात् मैं भगवान्से अष्टसिद्धियुक्त परम गति नहीं चाहता, न मोक्ष ही; मैं तो यही चाहता हूँ कि मैं जीवमात्रके हृदयमें रहकर उनका दुःख स्वयं भोगा करूँ, जिससे कि किसी जीवको दुःख न सताये।

क्या ऐसी करुणाका अन्यत्र कहीं उल्लेख मिलता है और क्या आत्मतृप्त भक्तहृदयके सिवा अन्यके मुँहसे ऐसे शब्द ही निकल सकते हैं?

यह बात भी सर्वथा स्पष्ट है कि भक्त अकर्मण्य नहीं होते—कर्मठ और परिश्रमी होते हैं, उनकी भक्तिमें आत्मसेवाके साथ-साथ लोकसेवाका भाव भी रहता है। किस विज्ञसे यह बात छिपी है कि आस्तिकतापूर्ण भारतीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णाश्रमका तात्पर्य सेवा और श्रम ही है। भक्तशिरोमणि महाराज जनक तो विदेहावस्थामें भी राज्यका सब कार्य करते थे। अपितु वेदव्यासजीने तो इसी अनासक्तिमूलक कर्मनिष्ठाकी शिक्षाके लिये अपने पुत्र शुकदेवको महाराज जनकके पास भेजा था। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द भी यही आज्ञा देते हैं—

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥

(गीता १८।५६)

हे अर्जुन! मेरे आश्रित रहनेवाला भक्तिप्रधान कर्मयोगी मनुष्य सदा सब कर्तव्योंका पालन करता हुआ भी मेरे प्रसादसे सनातन अव्यय पदको प्राप्त कर लेता है।

यह भी सन्देहहीन बात है कि सच्चे भक्त सच्चरित्र होते हैं। इसलिये भी उनकी साधनाका मार्ग संयम-नियम-मूलक ही होता है।

ब्रह्मोपासना उपनिषदोंका तो विषय ही है। उपनिषद् असलमें ब्रह्मज्ञानप्रधान ही हैं, विशेषत: कर्तव्या-कर्तव्यके परिचायक। अपितु उपनिषदोंसे ही चरित्रमूलक नीतिमार्ग पूर्णत: स्पष्ट और सुदृढ़ हुआ है। ऐसी दशामें ईश्वर-भक्तका चरित्रवान् होना, नीतिसम्मत कर्तव्योंका पालन करना तो अनिवार्य कर्तव्य हो जाता है। भक्त निन्दा और लोक-स्तुतिसे भी कदापि प्रभावित नहीं होता। वस्तुत: ऐसा दृढात्मा ही तो वास्तविक भक्त हो सकता है—

निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुख पुंज॥

यह भी प्रसिद्ध बात है कि आस्तिकताप्राण महाराज अश्वपतिका व्यक्तित्व कितना उदात्त और स्तुत्य था और उनके द्वारा उनकी आस्तिक जनता कितनी सच्चरित्र बन सकी थी। इसका पता उनके इस दावेसे लगता है—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

श्लोकका भाव इस प्रकार है—मेरे राष्ट्रमें एक भी चोर, कदर्य और मद्यप नहीं है; न अग्निहोत्र न करनेवाला, अविद्वान् और व्यभिचारी पुरुष ही है। फिर व्यभिचारिणी तो हो ही कैसे सकती है!

आदर्श व्यवहार भी भक्तोंका अन्यतम गुण है। बड़े-से-बड़ा दुर्व्यवहार भी उन्हें अपने आदर्शसे विचलित नहीं कर सकता। हिरण्यकशिपुके रोमांचकारी प्रत्युत प्राणघातक बर्तावसे क्या भक्त प्रह्लादजी नाममात्र भी विचलित हुए थे? भक्तजन स्वत: ही अपने इष्टदेव भगवान्के माधुर्यसे परिपूर्ण रहते हैं। ऐसी दशामें उनसे तो दुर्व्यवहारकी आशा ही कैसे की जा सकती है। श्रीचैतन्य महाप्रभुके एतद्विषयक वचन सुनिये—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

तृणसे भी अपनेको छोटा और वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु एवं सम्मानसे दूर अपितु दूसरोंका सम्मान करते हुए श्रीहरिका कीर्तन-भजन करना चाहिये।

परंतु यह भी ध्यान रहे कि बलवान्द्वारा निर्बलका शिकार भक्तोंको सह्य नहीं होता। यही कारण है कि वे अपने आत्मबलसे हिंसात्मक वातावरण नहीं बनने देते। आस्तिक एवं भक्त ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंमें गो-व्याघ्रका अहिंसापूर्वक एक साथ रहना इसका ज्वलन्त प्रमाण है। रामभक्त श्रीवसिष्ठजीका तो आत्मबल अथवा ब्रह्म-तेज प्रसिद्ध ही है। स्वयं विश्वामित्रजीने कहा है—

'धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम्।'

धर्म-भावना और ईश्वर-निष्ठा तो 'भक्ति' और 'भक्त' शब्दोंके पर्यायवाची ही हैं। इनके विषयमें कुछ भी कहना इनका अपलाप करना है। प्रह्लाद, ध्रुव और हकीकतराय-जैसे भक्त बालक वास्तविक धर्म-भावना और ईश्वर-निष्ठाके ज्वलन्त प्रमाण हैं। महात्मा गाँधी भी इस दिशामें अनन्वयालंकारके विषय—अनुपम हैं। उनकी धर्मभावना और ईश्वर-निष्ठा प्रत्येक क्षण और परिस्थितिमें निर्दोष, पूर्ण और अटल रही। उन्होंने विकट-से-विकट परिस्थितिमें भी इनपर कभी आँच नहीं आने दी। इन्हीं दोनोंके बलसे उन्होंने अंग्रेजोंसे लोहा लिया और सफलता प्राप्त की।

आजके हमारे धर्मनिष्ठ, ईश्वरभक्त एवं धर्म और ईश्वरके प्रेमी शरणार्थी भाई भी इस दिशामें अभिनन्दनीय सिद्ध हुए हैं। उन्होंने अपने धर्म और राम-कृष्णके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति विश्वासबलके आधारपर ही अपने अस्तित्वकी रक्षा की और हिन्दू-संस्कृतिको गरम हवातक न लगने दी। मार्मिक दृष्टिसे विचार करनेपर तो यही समझमें आता है कि वस्तुतः धर्म ईश्वरसे भिन्न नहीं। धर्म क्या—कोई वस्तु उससे भिन्न नहीं। वह सर्वमय है और सर्वतन्मय। भगवान् गीतामें भक्तकी इसी दशाका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

यह बात भी मुक्तकण्ठसे कही जा सकती है कि भक्तिमार्ग संसारका सर्वश्रेष्ठ परम सुखद मुक्ति-मार्ग है; किंतु दुःख है कि आज भारतमें भी यह विकृत, अज्ञात, अन्धकारपूर्ण एवं अस्पष्ट-सा हो रहा है। विशेषतः अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगोंकी तो अधिक संख्या इसे अन्धविश्वास ही समझती है। इसका प्रबलतम कारण आजका विज्ञानवाद और दर्शनशास्त्र ही बताया जाता है; किंतु प्रायः लोग इसको ठीक तरहसे समझनेका प्रयत्न नहीं करते कि आजका विज्ञान धीरे-धीरे बहुत्वसे एकत्वकी ओर आ रहा है। साथ ही संसारके सभी वैज्ञानिक ईश्वर-सत्तामें अविश्वास भी तो नहीं रखते। कुछ वर्ष पूर्वकी बात है, जब क्रिश्चियन ऐवीडेन्स सोसाइटीकी ओरसे रायल सोसाइटीके लगभग दो सौ सदस्यों (फेलो)-से छः प्रश्न पूछे गये थे। उनमें एक यह भी था कि—

'क्या आप अध्यात्म-क्षेत्रका मानना उचित समझते हैं?'

इसके उत्तरमें १३ सदस्योंने विरोधमें अपने विचार प्रकट किये। ६६ विद्वानोंमेंसे कुछने तो उत्तर ही नहीं दिया और जिन्होंने उत्तर दिये, वे सन्देहात्मक थे। किंतु १२१ के उत्तर अध्यात्मवादके समर्थनमें थे। इस तरह विरोधियोंकी संख्यासे समर्थकोंकी संख्या पर्याप्त अधिक थी।

अब रही दर्शन-शास्त्रविषयक बात, सो पाश्चात्य देशोंके स्वनामधन्य स्वेडेनवर्ग, वर्ड्सवर्थ, ब्राउनिंग, कार्लाइल, इमर्सन, बिशप, बर्कले आदि पचासों मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक और अध्यात्मशास्त्रवेत्ता ईश्वरके अस्तित्वके समर्थक हैं।

परंतु यह बात भी शास्त्रसम्मत है कि ईश्वरवाद और भक्तिवाद क्रमशः योगगम्य और हृदयगम्य हैं—विशेषतः योगज-प्रत्यक्ष और भक्ति-मीमांसा-सम्मत अनुभव-साध्य। इसलिये जो साधक और भक्त इनके विषयमें निर्भ्रान्त होना चाहते हैं, वे इन दोनों मार्गोंका ग्रहण करें। किंतु ईश्वरप्राप्तिका सर्वसाधारणके लिये सरल मार्ग तो साकारोपासना ही है; क्योंकि योग और योगज-प्रत्यक्ष तो दुर्लभतम दिशाएँ हैं। फिर आजके समय सच्चे ईश्वरभक्त योगी गुरुका मिलना भी आसान नहीं है। इस कठिनाईमें सूरका बताया मार्ग ही ठीक है। देखिये, वे कहते हैं—

अबिगत गति कुछ कहत न आवै।
ज्यों गूँगेहि मीठे फलको रस अन्तर्गत ही भावै॥
परम स्वादु सबही जु निरंतर अमित तोष उपजावै।
मन बानीको अगम अगोचर, सो जानै जो पावै॥
रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु
निरालंब मन चकृत धावै।
सब बिधि अगम बिचारहि ताते,
सूर सगुन लीला पद गावै॥

किंतु इस मार्गको पूर्णतः लोकाभिमत बनाना भारतका काम है। इसे इस मार्गमें भी संसारका गुरु बनना है। इसीको व्यष्टि-समष्टिके कल्याण, आनन्द, सन्तोष और समुद्धारके लिये भक्ति-मार्गको भी विश्वप्रिय बनाना है। इसमें भारतीय आस्तिक विद्वानोंका कर्तव्य समधिक स्पष्ट है। परंतु अभी तो ऐसा कुछ नहीं हो रहा है; कदाचित् कुछ हुआ भी है तो वह सन्तोषजनक नहीं है। अन्तमें यहाँ भगवान् श्रीमुरलीमनोहरसे यही प्रार्थना है कि—

ऐसा स्वर मुरलीमें फूँको,
आह उठे अन्तर से।
ऐसा तारोंको झनकारो,
नयन हमारे बरसें॥

किंतु भगवन्!

ऐसी कृपा भी करें कि जिससे भारतमें घर-घर भक्तिकी गंगा प्रवाहित हो और यहींसे विश्वमें इसकी धाराएँ प्रसारित होकर उसे भक्तिमय बना दें, जिससे कि उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट होकर उसे परमानन्दके लाभकी प्राप्तिका अवसर मिले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाप होने कैसे बन्द हों ?

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

मोहकी बड़ी महिमा है। यह इतना गहरा छाया रहता है कि आदमी मोहकी बुराई करता हुआ भी इसमें फँसा रहता है। वह मोहके विषयमें बताता है, दूसरोंके मोहकी व्याख्या करता है, मोहका दोष कहता है, मोहसे सब प्रकारकी अवनति होती है—यह कहता है, परंतु स्वयं मोहसे इतना चिपका रहता है कि उसे छोड़ना नहीं चाहता। यह मोहकी महिमा है और जबतक मोह है तबतक भगवच्चरणारविन्दसे अनुराग नहीं हो सकता। मनुष्य हर जगह, हर क्षेत्रमें और हर समय मोहसे अभिभूत रहता है। और *'मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥'* अर्थात् मोह गये बिना भगवच्चरणारविन्दसे दृढ़ अनुराग नहीं हो सकता।

मोहका अर्थ है मूर्खता—सांसारिक कामना-वासनासे अभिभूत वृत्ति। जो वृत्ति कामना-वासनासे ऊपर उठकर भगवान्‌में नहीं लगती और कामना-वासनासे निरन्तर छायी-छकी रहती है, उस वृत्तिका नाम मोह है। मोह विक्षोभसे होता है, मोह कामसे होता है और मोह लोभसे होता है। **'कामात्क्रोधोऽभिजायते'** और **'क्रोधाद्भवति सम्मोहः'** (गीता २। ६२-६३)। मनुष्यके मनमें जो छिपी हुई या प्रकट कामनाएँ रहती हैं, वे कामनाएँ ही मनुष्यको सम्मोहित करती हैं और मोहित मनुष्य ही निरन्तर कामनाओंके वशमें रहता है। यह सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। मोहसे कामना बढ़ती है और कामनाओंसे मोह बढ़ता है। जबतक मनुष्यकी बुद्धि मोहमें है, तबतक वह यथार्थ दर्शन नहीं कर सकता।

जब नेत्र राग-द्वेषरहित होते हैं, तब मनुष्यको वस्तु ठीक-ठीक दिखायी देती है। राग-द्वेषयुक्त नेत्रसे वस्तुका यथार्थ दर्शन नहीं होता है। राग या द्वेषके अनुसार वस्तु दीखती है। रागमें दोष भी गुण दिखता है और द्वेषमें गुण भी दोष दिखता है। यह राग-द्वेषका एक स्वाभाविक परिणाम है। भगवान्‌ने कहा कि राग-द्वेष सब जगह सब विषयोंमें सदा बैठे हुए हैं—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥

(गीता ३। ३४)

भगवान्‌ने कहा कि राग-द्वेष प्रत्येक इन्द्रियके प्रत्येक अर्थमें, प्रत्येक विषयमें निरन्तर डेरा डाले हुए बैठे हैं। **व्यवस्थितौ**—अच्छी तरह व्यवस्थापूर्वक बैठे हैं। इनके वशमें न रहे—**'तयोर्न वशमागच्छेत्।'** इनके वशमें हो जाओगे तो लुट जाओगे। ये परिपन्थी—लूटनेवाले हैं। हम लोग निरन्तर राग-द्वेषके वशमें रहते हैं। ये हमें निरन्तर लूटते रहते हैं। क्यों? इसलिये कि हम कामना-वासनाके गुलाम हैं, भगवान्‌के नहीं।

तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः॥

(श्रीमद्भा० १०। १४। ३६)

जबतक मनुष्य भगवान्‌का नहीं बन जाता है, तबतक राग-द्वेषका शिकार रहता है। राग-द्वेषरूपी चोर उसके पीछे लगे रहते हैं।

मोहने हमलोगोंको इस तरह फँसा रखा है कि हम जानते हुए भी, देखते हुए भी, संसारकी गति और उसका परिणाम देखते हुए भी भ्रमितबुद्धि हो जाते हैं, जब अपने सामने कोई चीज आती है। उस समय हम स्पष्ट नहीं देख सकते और दूसरेकी बात हमें बहुत बुरी मालूम होती है। वैसी बात अगर अपनेमें रहे तो बुरी नहीं मालूम देती है।

'आप पापको नगर बसावत, सहि न सकत पर खेरो॥'

अपने तो पापका नगर बसाता है और दूसरेका जरा-सा खेड़ा (गाँव) भी वह मनुष्य सह नहीं सकता है। वह कहता है कि यह बहुत बुरा है। मोहके नाश होते समय क्या होता है? अपने दोष—भूलें स्पष्ट दीखने लगते हैं। भूलका ही नाम मोह है और भूल होती है स्वाश्रित। यह सिद्धान्त है कि भूल रहती है अपने आश्रयसे, दूसरेके आश्रयसे नहीं रहती है। आपने भूलको आश्रय नहीं दिया तो भूल मिट गयी। भूल मिट गयी तो जैसे थे, वैसे रह गये। जब मोह मिटता है तो भूल मिटती है, तब असली चीज दिखती है। उस समय व्यक्तिको अपने दोष दिखते हैं, अपनी स्थिति दिखती है। उलटे जा रहे हैं या सीधे जा रहे हैं—यह उसे स्पष्ट दिखायी देता है। एक तो किसी चीजको देखता है मोहकी आँखोंसे, किसी रंगीन चश्मेसे और दूसरा देखता है विशुद्ध निर्मल आँखोंसे। निर्मल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँखोंसे चीज दिखती है यथावत्—जैसी है वैसीकी वैसी, और राग-द्वेषयुक्त आँखोंसे दिखती है जैसा वह देखना चाहता है वैसी। हम मनमें एक पूर्वाग्रह लिये बैठे रहते हैं और उसी पूर्वाग्रहके अनुसार हम वस्तुको देखते हैं, अपनेको भी और दूसरोंको भी। यह पूर्वाग्रह मनसे निकलना चाहिये। मनमें जो एक प्रकारकी हमारी धारणा बनी हुई है, वह धारणा जैसी होती है उसी प्रकारकी वस्तु मनमें दिखती है और धारणा न हो, विशुद्ध निर्मल चित्त हो तो उसमें फिर जैसी वस्तु होती है, वैसी दिखती है। यह मोहरहित दृष्टि है, और जैसी देखना चाहते हैं, वैसी दिखती है तो वह मोहयुक्त दृष्टि है। जबतक मोहयुक्त दृष्टि रहती है तबतक भगवान्‌का यथावत् रूप तो दिखता ही नहीं, भगवान्‌की कल्पना भी ठीकसे नहीं होती है। यथावत् दृग तो बहुत आगे देखता है।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।

(गीता १८।५४-५५)

मनुष्य तत्त्वतः तब देखता है जब भगवान्‌की पराभक्ति प्राप्त होती है अथवा जब भगवान् दिखलाते हैं। भगवान्‌का वास्तविक जैसा स्वरूप है वैसा—यह तो भगवत्कृपासे जब भगवान् दिखलाते हैं तब दिखता है। उसके पहले तो भगवान्‌की कल्पना, भगवान्‌का अस्तित्व, भगवान्‌की स्थिति यह विश्वासमें आ जाय तब भी बहुत काम हो जाता है। भगवान्‌के अस्तित्वको जो आदमी मानेगा वह आदमी छिपकर पाप नहीं करेगा। वह देखेगा कि भगवान् हैं और भगवान् हैं तो भगवान् सर्वत्र हैं, सब समय हैं, तब वह किस समय भगवान्‌को न देखकर बेशर्म होकर पाप करेगा। हम लोग जब कोई बुरा कर्म करने लगते हैं और कोई सामने आ जाता है तो रुक जाते हैं और यदि हम मानें कि भगवान् हमारे प्रत्येक कर्मको देख रहे हैं तब कोई गलत कार्य करेंगे ही नहीं। जिन कर्मोंको लोग नहीं जानें उनको छिपकर कोठरीके अन्दर करते हैं और जिन कर्मोंको बाहरका कोई नहीं जानता, उसे हम मनमें करते हैं, मनकी कोठरीमें करते हैं। मनमें नानाप्रकारकी दुरभिसन्धि, बुरे-बुरे भाव, बुरे-बुरे विचार और बुरे-बुरे न मालूम कितने काण्ड हम रचते रहते हैं। उनको भी भगवान् देखते हैं। जब हमारा भगवान्‌पर विश्वास होगा कि भगवान् हैं और सर्वत्र हैं तथा सब समय हैं; वे सर्वतोचक्षु हैं, उनकी आँखोंसे छिपाकर कोई कुछ कर नहीं सकता है, तब ऐसी अवस्थामें हमें बुरा कर्म करते हुए लाज आयेगी। भगवान्‌का अस्तित्व माननेपर ही निर्भयता आ जायगी और भगवान्‌का अस्तित्व ठीक माननेपर पाप होना बन्द हो जायगा।

हम लोग जो अपनेको आस्तिक कहते हैं, यह पूरे अर्थमें आस्तिक नहीं है। इसके कई प्रमाण हैं। आस्तिक होते तो छिपकर पाप नहीं करते। आस्तिक होते तो कभी भय नहीं होता। हम भूतकी कल्पना करके तो डर जाते हैं लेकिन भूत चाहे वहाँ हो या न हो, परंतु भगवान् तो हैं ही। भगवान्‌का निश्चय करके निर्भय तो नहीं होते हैं। यह सत्य है कि भगवान् वहाँ हैं फिर उनका निश्चय करके निर्भय हो जाना चाहिये। लेकिन भूत है नहीं, उसकी कल्पनाको हमने सत्य माना, और जो भगवान्‌का वहाँ होनापना है ही, इसकी तरफ हमारा विश्वास ही नहीं हुआ, निश्चय नहीं हुआ, इसलिये निर्भय नहीं हुए। भगवान्‌का अस्तित्व माननेपर बहुत-से उपद्रव शान्त हो जाते हैं और पाप होने बन्द हो जाते हैं।

मोह एक विशाल घनी छाया आँखोंपर ला देता है—यह एक ऐसा ढक्कन है कि जिससे हम भगवान्‌को तो देखते ही नहीं और यथार्थ लाभ-हानि भी नहीं देखते हैं तथा मोहग्रस्त होकर निरन्तर उस मोहके संचालनसे राग-द्वेषयुक्त होकर चलते रहते हैं और हमारा जीवन यूँ ही बीतता रहता है। कभी रागकी वस्तु सामने आ गयी तो चित्त प्रसन्न हो जाता है। कभी द्वेषकी वस्तु सामने आ गयी तो चित्त खिन्न हो जाता है। इसी प्रकार कभी हर्षकारक उद्वेग होते रहते हैं। हर्ष होगा तो उद्वेग रहेगा ही। ये जितने भी जगत्-व्यापी सुख हैं, ये दुःखमिश्रित हैं। जगत्‌का दिन है तो रात आयेगी ही। दिनसे रातकी सिद्धि है और रातसे दिनकी सिद्धि है। जगत्‌का सुख है तो दुःख आयेगा ही यह निश्चित बात है। इन्हीं दोको लेकर जगत् द्वन्द्वात्मक है। सुख-दुःख, हानि-लाभ, जय-पराजय, मान-अपमान, निन्दा-स्तुति—ये द्वन्द्व हैं, जो निरन्तर जगत्‌में एक साथ रहते हैं।

इसलिये या तो द्वन्द्वातीत हो जाय अथवा दोनोंमें भगवान्‌को देखे या तो निर्द्वन्द्व, नित्यसत्त्वस्थ और निर्योगक्षेम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाय अथवा तमाम द्वन्द्वोंमें भगवान्‌को देखे। यह दृष्टि मोहसे नहीं आती है। इसी मोहसे ही हम मोहकी बात करते हुए, मोहकी निन्दा करते हुए, मोहको बुरा बताते हुए, जिनमें मोह देखते हैं, उनपर हँसते हुए, स्वयं नित्य विमोहित रहते हैं और अपने-आपको नहीं देख पाते हैं। अपने कर्तव्यका ठीक निश्चय नहीं कर पाते हैं। फिर क्या करें? दूसरा उपाय है कि यदि विश्वास हो और मोहकी निवृत्ति चाहते हों तो कातर हृदयसे भगवान्‌से प्रार्थना करें। ये निर्बलके बल राम हैं। किसी साधनका बल, बुद्धिका बल, विद्याका बल, जहाँ काम नहीं करता है, वहाँ जैसे दीन-हीन आदमी जब निरुपाय हो जाता है और उसे कोई साधन या उपाय नहीं सूझता है, तब जैसे रोकर भगवान्‌को पुकारता है, इसी प्रकार मनसे हम भगवान्‌को पुकारें कि मेरा मोहनाश मेरे करनेसे तो नहीं हो रहा है। हम तो निरन्तर मोहसे ग्रस्त हैं। ज्यों-ज्यों मोहसे निकलना चाहते हैं त्यों-त्यों मोह और प्रबलरूपसे मुझे आकर घेरता है। यही होता है कि मनुष्य जब जागतिक बुद्धिको लेकर, सांसारिक बुद्धि-कौशलको लेकर संसारसे बचना चाहता है तो संसार उसपर और अधिक आता है। क्यों आता है? यह नियम है। जैसे हम चोरोंसे घिरे हुए हों और चोर घरमें हों तथा चोरोंके ही बन्धु-बान्धव जो चोरोंमें ही मिले हुए हैं, उनको हम अपना हितैषी मानकर उनके द्वारा हम चोरोंसे बचना चाहें तो वे आयेंगे चोरोंसे बचानेवालोंके रूपमें, परंतु वे करेंगे क्या? चोरोंका गिरोह और भी पुष्ट हो जायगा। चोर और भी बलवान् हो जायेंगे और हम चोरोंसे और भी अधिक ग्रस्त हो जायेंगे।

इसी प्रकार सांसारिक बुद्धि-कौशलको लेकर हम जो संसारसे बचना चाहते हैं तो संसारमें और अधिक फँसते हैं। सांसारिक बुद्धि-कौशलसे मनुष्य संसारसे नहीं बच सकता है। वह एक अलग चीज है कि जो संसारसे अलग हो चुके हैं, जो संसारसे ऊपर पहुँच गये हैं, वे लोग कहीं लोक-दिखाऊ सांसारिक बुद्धि-कौशलसे काम करें तो उनकी स्थिति दूसरी है, परंतु हम लोग जो साधारण कोटिके हैं, पूरे साधक भी नहीं हैं, यदि सांसारिक बुद्धि-कौशलसे संसारके बन्धनको काटना चाहें तो निश्चित बात है कि संसार और अधिक बन्धन करेगा। यह गाँठ और भी मजबूत होगी।

मनुष्यका मोह कभी उसे नीति बताता है, कहीं धर्म बतलाता है, कहीं कर्तव्य बताता है। वह सारे सांसारिक बुद्धि-कौशलको सामने रखता है। तुम इस प्रकार करो—इस प्रकार करो—करनेका मार्ग बताता है और व्यक्ति उनका आश्रय करता है। उनके आश्रय करनेका अर्थ ही है आसुरी सम्पत्तिका आश्रय। भगवान्‌को भूलकर, भगवान्‌का आश्रय न करके जागतिक बुद्धि-कौशलका जो आश्रय है—यह आश्रय वास्तवमें असुराश्रय है—

'आसुरं भावमाश्रिताः' (गीता ७। १५)

जब मनुष्य आसुर भावसे आश्रित होता है तब क्या होता है कि भगवान्‌की जो जगन्मोहिनी माया है, वह उसके ज्ञानको हर लेती है—

'माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः।'

(गीता ७। १५)

ऐसा हो जानेपर क्या होता है? भगवान्‌की ओर हमारा ध्यान जाता ही नहीं है। ऐसे ही लोग मूढ़ हैं—

'न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः॥'

(गीता ७। १५)

इसलिये साधकको निरन्तर सावधान रहना चाहिये। वह जागतिक कार्य सांसारिक आवश्यकतानुरूप करे अवश्य, परंतु सांसारिक बुद्धि-कौशलका आश्रय न ले। भगवान्‌का आश्रय रखे और भगवान्‌की ओर लगानेवाली वृत्तिका ही आश्रय ले। इसीका नाम है भगवान्‌का नित्य स्मरण। भगवान्‌ने कहा है कि मेरा स्मरण करते हुए युद्ध (विहित कर्तव्यकर्म) करो। मुझमें मन लगाकर युद्ध करो—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

(गीता २। ३८)

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥

(गीता ३। ३०)

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।

(गीता ८। ७)

[क्रमशः]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रेम फूल फूलन सौं प्रेम सेज रची है'

(श्रीअर्जुनलालजी बंसल)

श्रीवृषभानुसुता राधारानीने ब्रजमें अवतरित होकर भगवान् श्रीकृष्णकी बाल-लीलाओंके माध्यमसे सर्वत्र प्रेम-रसकी वर्षा की। दोनों प्रेमियोंने ब्रज-भूमिमें पनघटसे साँकरी गलीतक, प्रेम-सरोवरसे कुसुम-सरोवरतक और गोकुलसे वृन्दावनतक गागर फोड़ने, माखन-चोरी करने तथा रासलीला रचानेकी दिव्य लीलाएँ कीं। श्रीराधारानी और सखियोंको मुरलीके मधुर-स्वरोंद्वारा मोहित करना मनमोहनका नित्यका कार्य था। श्रीकृष्णने ब्रजकी प्रशंसा करते हुए कहा है—'मैं गोलोक छोड़कर ब्रज-गोपियोंके अनन्य प्रेमके कारण इस क्षेत्रमें अवतरित हुआ हूँ। ऐसा दिव्यप्रेम संसारमें अन्यत्र कहीं नहीं दिखायी देता।'

ब्रजरसिकोंका विश्वास है कि श्रीवृन्दावन प्रेमका वह भाव है, जहाँ प्रेम अपने सहज रूपमें प्रकट होता है। श्रीवृन्दावन केवल धाम ही नहीं है, अपितु यह श्रीराधा-माधवके रास-विलाससे युक्त प्रेममयी क्रीड़ाओंकी दिव्य भूमि है। यह प्रेमकी वह भावभूमि है, जहाँ अनादि-कालसे प्रेमकी रसधारा अनवरत रूपसे बहती चली आ रही है।

श्रीकृष्णभक्त रसखानने प्रेमकी व्याख्या करते हुए लिखा है—

प्रेम अवनि श्रीराधिका प्रेम बरन नंदनन्द।
प्रेम वाटिका के दोऊ माली मालिन द्वन्द्व॥
प्रेम हरी को रूप है त्यौं हरि प्रेम सरूप।
एक होइ द्वै यों लसैं ज्यौं सूरज अरु धूप॥

श्रीराधारानी प्रेमकी धाम हैं और श्रीकृष्ण प्रेमके साक्षात् स्वरूप हैं। ऐसा लगता है, जैसे ये दोनों प्रेम-वाटिकाके माली और मालिन हैं। इसी प्रकार प्रेम श्रीहरिका स्वरूप है और श्रीहरि प्रेमके स्वरूप हैं। जैसे सूर्य और धूप भिन्न-भिन्न रूपोंमें होते हुए भी एकरूप हैं, वैसे ही श्रीहरि और प्रेम दृष्टिगोचर होते हैं, यथार्थमें भिन्न दिखायी देनेपर भी दोनोंका स्वरूप एक ही है।

प्रेमके महत्त्वका प्रतिपादन करते हुए रसखानने लिखा है—

जदपि जसोदा नंद अरु ग्वाल बाल सब धन्य।
पै या जग में प्रेम कौं गोपी भईं अनन्य॥
वा रस की कछु माधुरी ऊधो लही सराहि।
पावै बहुरि मिठास अरु अब दूजो को आहि॥

श्रीकृष्णके प्रेमी बननेसे यद्यपि सारे ग्वाल-बाल धन्य हो गये, परंतु श्रीकृष्णप्रेमकी परम अधिकारिणी बननेके कारण गोपियाँ अद्वितीया बन गयीं।

कबिरा कबीर कहा करै चल जमुना के तीर।
इक इक गोपी प्रेम में कौटिन बहे कबीर॥
हरि के सब आधीन पै हरी प्रेम-आधीन।
याही तें हरि आपुहीं याहि बड़प्पन दीन॥

प्रेमको महिमामण्डित करते हुए कबीरदासजी कहते हैं—यमुनातटपर एकत्रित गोपियोंके प्रेमको निहारो, जहाँ एक-एक गोपीके प्रेममें करोड़ों कबीर भी तुच्छ लगते हैं। संसारके सारे प्राणी प्रभुके वशमें हैं, परंतु भगवान् पूर्ण रूपसे प्रेमके वशमें रहते हैं।

आइये, ऐसे अनुपम प्रेमका साक्षात् दर्शन करने श्रीराधामाधवकी एक दिव्य-लीलामें प्रवेश करें। वियोगके आँचलमें संयोग भी किसी-न-किसी रूपमें छिपा रहता है। इसी कथनको सार्थक करती है यह कथा—

एक समयकी बात है, कुछ सखियाँ श्रीराधारानीके संग अन्तरंग वार्तालापमें निमग्न थीं, एक सखी कहने लगी, हे राधे!

प्रिय तेरै बस यौं री माई।
ज्यौं संगहिं संग छाँह देह बस प्रेम कह्यौ नहिं जाई॥
ज्यौं चकोर बस सरद चन्द्र कै चक्रवात बस भान।
जैसे मधुकर कमल कोस-बस त्यौं बस स्याम सुजान॥
ज्यौं चातक बस स्वाति बूँद कै तन के बस ज्यौं जीय।
सूरदास प्रभु अति बस तेरैं, समुझि देखि धौं हीय॥

श्रीकृष्ण तुम्हारे वशमें उसी प्रकार रहते हैं, जैसे शरीरके वशमें छाया रहती है, चकोर शरदृतुके चन्द्रमाके वशमें, चक्रवाक सूर्यके वशमें, भ्रमर कमल-पुष्पके वशमें, चातक स्वातिबूँदके वशमें और प्राण शरीरके वशमें रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी सखीके मुखसे ऐसी प्रशंसा सुनकर श्रीराधाके मनमें अहंकारका अँधियारा छा गया। प्रभु तो अन्तर्यामी हैं, उन्होंने विचार किया कि अहंकार तो प्रेमके मार्गमें ऐसा विषैला कण्टक है, जिससे मुक्त होना कठिन ही नहीं असम्भव है। अतः अपनी प्रियाजीको गर्वमुक्त करनेके लिये उन्हें अकेली छोड़ वे अन्तर्धान हो गये। श्रीराधाको जैसे ही आभास हुआ कि प्रीतमने उनका त्याग कर दिया, वे अधीर हो उठीं, उनका मन व्याकुल हो गया, मुखपर मलिनता छा गयी, आँखोंसे अश्रुधारा बह निकली। श्रीराधाकी ऐसी दीन-हीन अवस्था देख एक सखी श्रीकृष्णकी खोजमें वनोंमें चली गयी। वहाँ जाकर वृक्षोंसे, बेलोंसे रो-रोकर पूछने लगी, रसखानने लिखा है—

कदम करीर तरि पूछनि अधीर गोपी,
आनन रुखोर गरों खरोई भरोहों सो,
चोर हो हमारो प्रेम चौंतरा मैं हार्‍यो,
गराविन ते निकसि भाज्यौ है करि लजैरौं सो।
ऐसे रूप ऐसो भेष हमैहूँ दिखैयौ देखि,
देखत ही रसखानि नैननि चुभेरौं सो,
मुकुट झुकोहों हास हियरा हरौहों कटि,
फेटा पिपरोहों अंगरंग साँवरौहौं सौ॥

पागलोंकी भाँति दौड़ती हुई वह गोपी यमुनासे कदम्ब और करीलसे श्रीकृष्णका पता पूछते हुए कहती है—तुमने कहीं हमारे कान्हाको देखा है, जिसका मुख मलिन और ग्रीवा पुष्ट है, वह प्रेमरूपी खेलमें हारकर हमारे बन्धनसे मुक्त होकर यहीं-कहीं आकर छिप गया है। सौन्दर्यसे परिपूर्ण मुखमण्डल, शीशपर मोरमुकुट, वक्षःस्थलपर मोतियोंकी माला और जिसकी कमरमें पीताम्बर शोभायमान है, ऐसे साँवरे-सलोने श्रीश्यामसुन्दरको तुमने कहीं देखा है। वह सखी कोई अन्य नहीं, श्रीराधारानीकी प्रिय सखी ललिता थी।

ललिताके मुखसे ऐसे वचन सुनकर श्रीकृष्ण वहीं प्रकट हो गये। सखीके मुखसे श्रीराधाकी व्यथा-कथा सुनकर श्यामसुन्दर व्याकुल हो उठे। उन्होंने ललितासे विनयपूर्वक कहा—हे सखी! बिना विलम्ब किये मुझे शीघ्रातिशीघ्र मेरी प्रियाजीके पास ले चलो। श्रीकृष्णको संग ले ललिता श्रीराधारानीके पास आ गयी। श्रीराधाको देखते ही श्रीकृष्ण प्रेमके आवेशमें निमग्न हो गये। प्रेमी श्यामसुन्दरकी दशाका वर्णन करते हुए श्रीसूरदासजी कहते हैं—

भुज भरि लई हिरदय लाइ।
बिरह ब्याकुल देखि बाला, नैन दोउ भरि आइ॥
रैनि बासर बीच मैं दोउ गए मुरझाइ।
मनौ वृच्छ तमाल बेली, कनक सुधा सिंचाइ॥
हरष उहऽह मुसुकि फूले प्रेम फलनि लगाइ।
काम मुरझनि बेलि तरु की तुरत ही बिसराइ॥
देखि ललिता मिलन वह आनन्द उर न समाइ।
सूर के प्रभु स्याम स्यामा त्रिविध ताप नसाइ॥

ललिताके प्रयाससे श्रीराधाकृष्णका पुनर्मिलन हुआ। श्रीकृष्णने श्रीराधाको अपनी बाहोंमें भरकर अपने हृदयसे लगा लिया। श्रीराधाके दग्ध हृदयको अभूतपूर्व शान्ति मिली, परंतु अपनी प्रियाजीकी दीन-हीन दशा देख श्रीकृष्णके आँसू पलकोंका बाँध तोड़ उनके वक्षःस्थलको भिगोने लगे। विरहके कारण दोनोंके मुरझाये मुखमण्डल पुनः खिल उठे, मानो श्रीकृष्णरूपी तमालवृक्षसे श्रीराधारूपी स्वर्णलता प्रेमरूपी अमृतसे सिंचित होकर हरी-भरी हो गयी। मुखपर मुसकानरूपी पुष्प खिलते ही दोनों आनन्दरूपी महासागरमें गोते लगाने लगे। ललिताने जैसे ही प्रेमी-युगलको इस अवस्थामें देखा, वह प्रसन्नतासे झूम उठी। प्रेममें तन्मय हुई सखीने देखा, प्रियतमके हृदयसे लगी प्रियाजी अतिशय सुखका अनुभव कर रही हैं। इस लीलाका सजीव वर्णन करते हुए ध्रुवदासजीने लिखा है—

प्रेमके खिलौना दोऊ खेलत हैं प्रेम खेल,
प्रेम फूल फूलन सौं प्रेम सेज रची है।
प्रेम ही की चितवन, मुसकान प्रेम ही की,
प्रेम रंगी बातें करें प्रेम केलि मची है॥

सचमुचमें यही प्रेम रसरूप है, जिसे प्राप्तकर प्राणी आनन्दलोकमें विचरण करने लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

प्राय: साधकोंकी यह धारणा रहती है कि करनेसे ही सब कुछ होता है, इसलिये शुभ कर्म करने चाहिये। यह धारणा बड़ी अच्छी है, पर कर्म कर्ताके अधीन होते हैं। अत: कर्ता जैसा होता है, उसके द्वारा कर्म भी वैसे ही होते हैं। कर्मयोग भी निष्काम कर्म करनेसे नहीं होता, अपितु निष्काम कर्तासे होता है; अत: स्मरण, कीर्तन, जप, ध्यान, स्वाध्याय आदि करना बहुत उत्तम है, इन्हें अवश्य करना चाहिये। इनमें जप, ध्यानादि कर्म एक तो स्वत: होते हैं और एक करने पड़ते हैं। जबतक कर्तामें भाव नहीं है, तबतक उसे जप, ध्यानादि करने पड़ते हैं। पर भाव होनेसे उसके द्वारा स्वत: स्वाभाविक ही जप, ध्यानादि होते हैं और तेजीसे होते हैं। अब कर्तामें भाव कैसे आये? इसपर विचार करना है।

जहाँ हम अपने-आपको 'मैं हूँ' इस प्रकार मानते हैं, वहीं यह मान लें कि 'मैं भगवान्‌का हूँ'। इस प्रकार जब 'मैं'-पनमें अटल भाव हो जायगा, तब निरन्तर स्वत: भगवान्‌का भजन होगा। अभी तो घर (संसार)-का काम स्वत: होता है और रात-दिन निरन्तर होता है। जैसे नौकरी करते हैं तो समयपर जाते हैं और समयपर आते हैं, वैसे ही जप-ध्यानादि भी समयपर करते हैं। तात्पर्य यह है कि जप-ध्यानादि कर्म समयकी सीमामें बँधे रहते हैं। यदि हमारा भाव हो जाय कि 'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं' तो घरके कामकी तरह रात-दिन सतत भगवान्‌का भजन होगा। भजनके बिना हम रह नहीं सकेंगे और घर (संसार)-का काम नौकरीकी तरह होगा। अत: कर्ताके भावोंमें परिवर्तन होनेसे कर्मोंमें स्वत: स्वाभाविक और शीघ्रतासे परिवर्तन हो जाता है।

साधकसे भूल यह होती है कि वह 'मैं हूँ' के स्थानपर अपने नाम, वर्ण, आश्रम, जाति, सम्प्रदाय आदिको बैठा देता है, जैसे मैं अमुक नामवाला हूँ, मैं अमुक वर्णवाला हूँ, मैं साधु हूँ, मैं गृहस्थ हूँ आदि अनेक मान्यताएँ कर लेता है। ऐसी मान्यताओंके कारण साधनकी सिद्धिमें विलम्ब होता है। कारण कि ये मान्यताएँ 'मैं' में रहती हैं और भगवान्‌का भजन (उपासना) 'कर्म' में रहता है। साधकको चाहिये कि वह 'मैं भगवान्‌का हूँ'—इस प्रकार 'मैं' में भगवान्‌को रखे और वर्णाश्रम आदिको 'कर्म'में रखे। तात्पर्य यह है कि भीतरसे 'मैं तो भगवान्‌का हूँ' ऐसा मानते हुए बाहरसे नाटकमें स्वाँगकी तरह अपने वर्णाश्रम आदिके कर्तव्यका पालन करता रहे।

जहाँ साधक 'मैं हूँ' मानता है, वहाँ भगवान् उससे भी अधिक सूक्ष्मरूपसे विराजमान हैं। 'मैं हूँ' क्षेत्रज्ञ अर्थात् क्षेत्र (शरीर)-को जाननेवाला (गीता १३। १), और भगवान् कहते हैं कि सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ मैं ही हूँ—'**क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।**' (गीता १३। २)। तात्पर्य यह कि क्षेत्रज्ञ तो केवल एक शरीरके साथ सम्बन्ध रखनेवाला है, पर क्षेत्रज्ञमें जो परमात्मा हैं, उनका किसी शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं है और सबमें परिपूर्ण होनेके कारण उनका सबसे सम्बन्ध है! वे ही वास्तवमें अपने हैं। हम जिस शरीरको अपना मानते हैं, वह कभी अपना था नहीं, है नहीं और रहेगा नहीं। पर परमात्मा अपने थे, अपने हैं और अपने रहेंगे। वे अपनेसे कभी विमुख नहीं हुए। हमीं उनसे विमुख हुए हैं। वे परमात्मा बड़े मधुर हैं, बड़े प्रिय हैं और अपनेमें हैं—ऐसा माननेपर वे स्मरण किये बिना ही याद रहेंगे, भजन किये बिना ही उनका भजन होगा, चिन्तन किये बिना ही उनका चिन्तन होगा। उनमें स्वत: ऐसी प्रियता होगी, जैसी अपने शरीरमें और अपने जीते रहनेमें भी नहीं है।

'मैं हूँ' में जो 'हूँ' है, वह शरीरको लेकर है। उस 'हूँ' में 'है' रूपसे परमात्मा ही हैं। तू है, यह है, वह है—सब जगह परमात्मा ही 'है'-रूपसे विद्यमान हैं। जड और चेतनमें; स्थावर और जंगममें; उत्पत्ति, स्थिति और विनाशमें; भाव और अभावमें—सब जगह वे परमात्मा ज्यों-के-त्यों हैं। साधक यदि 'हूँ' का त्याग कर दे अर्थात् 'मैं' (अहंता)-को मिटाकर समान्य सत्तामें स्थित हो जाय (जो वास्तवमें है) और 'है' रूपसे विद्यमान परमात्माको अपना मान ले तो फिर उनकी विस्मृति नहीं होगी। जप-ध्यानादि भी स्वत: होंगे, करने नहीं पड़ेंगे। अपनेमें प्रभु स्वत: हैं, बनावटी नहीं हैं। जो अपनेमें स्वत: है, उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर दृष्टि करनेमें देरी किस बातकी? अपनेमें प्रभुको देखनेवाला कौन है? जो क्षेत्रको देखता था, वही अपनेमें प्रभुको देखता है। जिसका अंश है, उसीको देखता है। अपने अंशीको देखते ही वह अंशीमें मिल जाता है।

अंशीमें मिलनेके दो तरीके हैं—अभेदपूर्वक और अभिन्नतापूर्वक। पहले अभेद होता है, फिर अभिन्नता होती है। अभेदमें भेदकी कुछ गन्ध रहती है, पर अभिन्नतामें यह मिट जाती है। अभिन्नता वास्तविक है। अभिन्नता भेद-उपासना और अभेद-उपासना—दोनोंमें होती है। भेदमें अभिन्नता ऐसे होती है कि जैसे कहींका लड़का और कहींकी लड़की गृहस्थाश्रममें आकर एक हो जाते हैं तो भिन्न-भिन्न होनेपर भी उनमें अभिन्नता हो जाती है। इसी प्रकार दो मित्रोंमें भी अभिन्नता होती है। भिन्न-भिन्न होते हुए भी अभिन्न हो जाना 'ज्ञान' है और अभिन्न होते हुए भी भिन्न-भिन्न हो जाना 'भक्ति' है।

स्वयं (स्वरूप) परमात्मासे अभिन्न है, परंतु संसार और शरीरसे सम्बन्ध माननेके कारण परमात्मासे भिन्नता प्रतीत होती है। अत: संसार और शरीरसे विमुख हो जायँ अर्थात् यह 'मैं' नहीं और 'मेरा' नहीं; और 'मैं' प्रभुका हूँ और प्रभु 'मेरे' हैं—इस प्रकार परमात्माके सम्मुख हो जायँ। सम्मुख होते ही उनसे अभिन्नता हो जाती है। अभिन्नताके बाद फिर बड़ा विचित्र आनन्द प्राप्त होता है। वह (द्वैत) अद्वैतसे भी सुन्दर है—'**भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्।**' वहाँ केवल आनन्द-ही-आनन्द है, मस्ती-ही-मस्ती है। उसे प्राप्त करना चाहें तो अभी कर सकते हैं। प्राप्त क्या करना है, वह तो प्राप्त ही है। केवल दृष्टि उधर करनी है। इतनी सीधी, सरल और श्रेष्ठ बात कोई नहीं है। गीतामें भगवान् कहते हैं—

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

(१८।५५)

'पराभक्तिके द्वारा वह मुझ परमात्माको, मैं जो हूँ और जितना हूँ, ठीक वैसा-का-वैसा तत्त्वसे जान लेता है तथा उस भक्तिसे मुझे तत्त्वसे जानकर तत्काल ही मुझमें प्रविष्ट हो जाता है।'

'**विशते तदनन्तरम्**' पदोंका यह अभिप्राय है कि भगवान्‌को तत्त्वसे जानने अर्थात् उनका अनुभव होनेके बाद फिर उनसे अभिन्न होनेमें एक क्षणका भी अन्तर नहीं पड़ता। शरीर-संसारसे माना हुआ सम्बन्ध छूटते ही ज्यों-के-त्यों विद्यमान परमात्माका अनुभव हो जाता है। उनका अनुभव होते ही तत्काल भिन्नता मिट जाती है। वास्तवमें भिन्नताकी सत्ता है ही नहीं, तभी वह मिटती है। यदि वास्तवमें भिन्नता होती तो उस (सत्)-का अभाव कैसे होता?

असत् (संसार)-में आकर्षण या प्रियता है, वह 'आसक्ति' कहलाती है। वही आकर्षण भगवान्‌में हो जाय, तो उसे 'भक्ति' या 'प्रेम' कहते हैं। धनमें, भोगोंमें, परिवार आदिमें जो हमारा खिंचाव है, वह भगवान्‌की ओर होते ही भक्ति हो जाती है। वास्तवमें अपनेमें भक्तिका संस्कार—भगवान्‌का खिंचाव स्वत: है, पर असत्‌से सम्बन्ध जोड़नेसे उसकी ओर हो गया। लक्ष्य (परमात्मा)-की प्राप्ति होनेपर असत्‌का खिंचाव सर्वथा मिट जाता है।

प्रार्थना

(ब्रह्मलीन संत श्रीपथिकजी महाराज)

हे नाथ! अब तो ऐसी दया हो, जीवन निरर्थक जाने न पाये।
यह मन न जाने क्या-क्या दिखाये, कुछ बन न पाया मेरे बनाये॥
संसार में ही आसक्त रहकर, दिन-रात अपने मतलब की कहकर।
सुख के लिये लाखों दुःख सहकर, ये दिन अभी तक यूँ ही बिताये॥
ऐसा जगा दो फिर सो न जाऊँ, अपने को निष्काम प्रेमी बनाऊँ।
मैं आपको चाहूँ और पाऊँ, संसार का कुछ भय रह न जाये॥
वह योग्यता दो सत्कर्म कर लूँ, अपने हृदय में सद्भाव भर लूँ।
नर तन है साधन भव सिन्धु तर लूँ, ऐसा समय फिर आये न आये॥
हे प्रभु हमें निरभिमानी बना दो, दारिद्र हर लो दानी बना दो।
आनन्दमय विज्ञानी बना दो, मैं हूँ 'पथिक' यह आशा लगाये॥

[प्रेषक—श्रीमहेशचन्द्रजी]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मश्लाघासे आत्मपतन

(डॉ० (श्रीमती) ज्ञानवतीजी अवस्थी)

वृद्धावस्थाको प्राप्त सार्वभौम चक्रवर्ती नहुषनन्दन ययातिने राजा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठासे उत्पन्न अपने छोटे पुत्र 'पूरु' से भोग भोगनेके लिये अपना बुढ़ापा देकर उसका यौवन ले लिया था। मानसमें गोस्वामीजी लिखते हैं— ***'तनय जजातिहि जौबनु दयऊ।'*** दो, चार, दस नहीं पूरे एक हजार वर्षोंतक प्रेम और उत्साहके साथ उन्होंने भोगोंका यथेच्छ सेवन किया। इस लोकके अतिरिक्त नन्दनवन, अलकापुरी और सुमेरुपर्वतकी चोटीपर रहकर वहाँके भोग-विलासका भी आनन्द लिया। इतनेपर भी उन्हें परितृप्ति नहीं हुई। महाराज ययातिकी एक विशेषता थी कि वे कभी मदान्ध नहीं हुए थे। उन्होंने यज्ञ किये, दान दिये और प्रजा तथा ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट भी किया। एक दिन उन्होंने स्थिर बुद्धिसे विचार किया और अपने पुत्र 'पूरु' को बुलाकर कहा—प्रिय पुत्र! तुम्हारी युवावस्था लेकर मैंने अपनी रुचि, उत्साह और समयके अनुसार दीर्घकालतक विषयोंका सेवन किया है, किंतु इतनेपर भी मुझे तृप्ति नहीं हुई है, इस विषयमें मेरा अनुभव इस प्रकार है—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

अर्थात् विषयोंके भोगोंकी कामना उनके भोगसे वैसे ही शान्त नहीं होती, वह वैसे ही बढ़ती जाती है, जैसे आगमें जितना घी डालो, आग उतनी ही बढ़ती है।

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्यजेत्॥

सम्पूर्ण पृथ्वीमें जितना भी अन्न, सोना, पशु तथा स्त्रियाँ हैं, वे सब एक पुरुषकी कामना पूर्ण करनेमें भी असमर्थ हैं। अतः तृष्णाका परित्याग कर देना चाहिये।

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्॥

(महा० आदि० ८५। १४)

दुर्बुद्धि लोग तृष्णाका त्याग नहीं कर सकते। बूढ़े होनेपर भी तृष्णा बूढ़ी नहीं होती। यह एक प्राणान्तक रोग है। इसे त्यागनेपर ही सुख मिलता है।

देखो पुत्र! मुझे विषयोंका सेवन करते हजार वर्ष बीत गये। फिर भी तृष्णा शान्त नहीं हुई। वह दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है। अतः अब मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं इन समस्त भोगोंको त्यागकर वानप्रस्थ ग्रहणकर जंगल जाऊँगा और मनको ब्रह्मकी आराधनामें लगाऊँगा। हे पुत्र! तुम अपना यौवन वापस ले लो और मेरा बुढ़ापा मुझे दे दो। अब तुम सुखपूर्वक राज्य करो।

ययातिने अपने पुत्रको बहुत सुन्दर जीवनोपयोगी सीख दी। उन्होंने कहा—पुत्र पूरु! क्रोधियोंसे क्षमाशील, असहिष्णुसे सहिष्णु और मूर्खसे विद्वान् श्रेष्ठ है। पुत्र! कभी किसी प्राणीको सतानेका प्रयत्न मत करना। मर्मभेदी और कड़वी बात मुँहसे मत निकालना। दूसरोंको कष्ट पहुँचानेवाली बात पापी बोलते हैं। ऐसे पापियोंको देखनेसे पाप लगता है। अपने शत्रुको भी अनुचित उपायसे वशमें नहीं करना चाहिये। सदाचारका आश्रय लेकर सर्वदा सत्पुरुषोंके व्यवहारको ही ग्रहण करना चाहिये। सभी प्राणियोंके प्रति दया और मैत्रीका भाव रखना चाहिये। (महा० आदिपर्व अ० ८७)

इस प्रकार महाराज ययाति अपने पुत्र पूरुको अति उत्तम सीख देकर अरण्यमें चले गये।

जंगलमें ब्राह्मणों और तपस्वियोंके साथ रहकर वे मनका निग्रहकर तपस्या करने लगे। यद्यपि मन बहुत चंचल होता है, इसको रोकना वायुको रोकनेके समान कठिन है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

'असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।'

किंतु धन्य हैं ययाति! उन्होंने ऐसे दुर्निग्रह चंचल मनको भी वशमें कर लिया था। उन्होंने क्रोधको भी जीत लिया था। शास्त्रोंमें क्रोधको वशमें करनेवालेको ही विद्वान् और तेजस्वी कहा गया है। विशाल राज्यका त्याग करके वे आये थे, अतः लोभको भी उन्होंने जीत लिया था। काम, क्रोध और लोभ—ये तीनों नरकके द्वार हैं। इनपर विजय पाकर 'ययाति' वास्तवमें जितेन्द्रिय हो गये थे। वे प्रतिदिन देवों और पितरोंका तर्पण करते थे। खेतोंमें गिरे हुए अन्न बीनकर लाते और उससे ब्राह्मणों, सन्तों तथा अतिथियोंका सत्कार करते थे। शेष बचे हुए अन्नसे अपनी भूख बुझाते थे। कुछ समय बाद अन्न त्यागकर वर्षोंतक जल पीकर रहे। फिर जल त्यागकर केवल वायुके आधारपर रहे। अनेक वर्षोंतक एक पैरसे खड़े होकर तप किया। निद्राको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी उन्होंने जीत लिया। वे सदा वाणीका संयम करते रहे तथा पंचाग्नि तप करते हुए उन्होंने हजार वर्ष बिता दिये। इस प्रकार घोर तप और संयम-नियम करते हुए जब इन्होंने शरीर त्याग किया तो उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति हुई।

जब महाराज ययाति स्वर्गमें पहुँचे तो देवताओंने इनका बहुत सम्मान किया। देवराज इन्द्रने भी इनकी प्रशंसा करते हुए अपने सिंहासनपर इन्हें बिठाया और पूछने लगे—'महाराज! यह बतलानेकी कृपा करें कि आपने कौन-से पुण्य किये थे, जिनके फलस्वरूप आपको स्वर्गकी प्राप्ति हुई है?'

देवराज इन्द्रके ऐसा पूछनेपर अभीतक जितेन्द्रिय रहनेवाले, वाणीका संयम करनेवाले, घोर तपस्वी महाराज ययातिका अहंकार जाग गया। वे क्रमसे अपने पुण्योंका, सत्कर्मोंका बखान करने लगे। वे गर्वसहित बोले—

'हे देवेन्द्र! मैंने सुदुस्त्यज राजलक्ष्मीका त्याग किया है। गृहस्थीके मायाजालको भी तृणवत् त्याग दिया है। मैंने वानप्रस्थकी दीक्षा ली। मैंने काम, क्रोध, लोभ सबको जीत लिया है। दुर्लभ इन्द्रियसंयम किया है। वाणीका भी संयम किया है। हजारों वर्षोंतक निद्राको जीतकर घोर तप किया है। बड़े-बड़े योगियों, विरागियों, तपस्वियों तथा संन्यासियोंके लिये भी मनको जीतना कठिन है। हे देवेश! ऐसे दुर्निग्रह मनको मैंने अपने वशमें कर लिया है। पितरों, देवों तथा अतिथियोंको भी सन्तुष्ट किया है।'

इस प्रकार ***'अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी'*** का बखान ययाति बड़े गर्वसे करते चले गये। गोस्वामीजी लिखते हैं—

छीजहिं निसिचर दिनु अरु राती । निज मुख कहें सुकृत जेहि भाँती॥

शास्त्रोंकी मान्यता है—अपने मुखसे अपने सत्कर्मोंका बखान करते ही वे क्षीण हो जाते हैं। ययाति ज्यों-ज्यों अपने तप एवं पुण्योंका बखान करते गये, त्यों-त्यों उनके पुण्योंका भण्डार चुकता गया और उनमें अहंकार भी आ गया।

इन्द्रने पूछा—महाराज! तपस्यामें आपके बराबर कौन है?

ययातिने सगर्व कहा—देवराज! मेरे समान तपस्वी, इन्द्रियनिग्रह करनेवाला इस सृष्टिमें कोई नहीं। न कोई देवता और न कोई ऋषि-महर्षि ही मेरे समान संयमी है, फिर भला मनुष्यों और गन्धर्वोंमें मेरी समता कौन कर सकता है?*

इन्द्रने कहा—महाराज ययाति! आपने अपने मुखसे अपने पुण्योंका सगर्व वर्णन किया है, इसलिये अब आपके सभी पुण्य क्षीण हो चुके हैं। आपने देवों, ऋषियों और महर्षियोंको अपनेसे तुच्छ कहकर उनका अपमान किया है। अतः अब आप स्वर्गके अधिकारी नहीं रह गये। इसलिये जिस मृत्युलोकसे आये हैं, उसी लोकमें जाइये। तदनन्तर राजर्षि ययाति स्वर्गका त्यागकर नीचेकी ओर पतित हो गये।

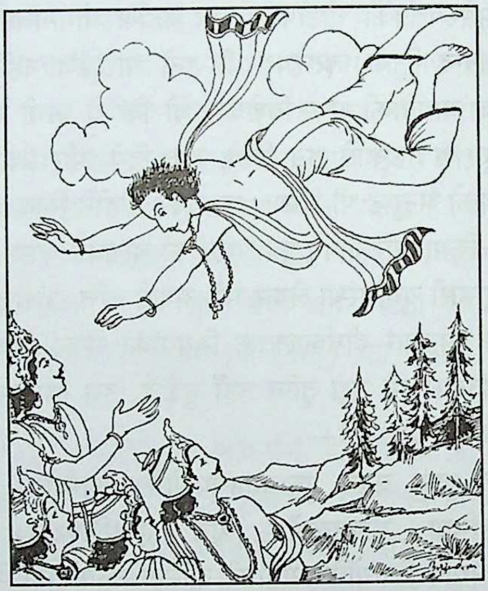

वैसे तो स्वर्गके भोगोंकी भी सीमा होती है, किंतु हजारों वर्षोंकी घोर तपस्याके फलस्वरूप उपलब्ध स्वर्गसे ययाति अल्प समयमें ही च्युत कर दिये गये, इसके दो कारण थे—प्रथम अपनी तपस्याका गर्वसहित बखान उन्होंने स्वयं अपने मुखसे किया। दूसरा अहंकारके कारण देवताओं और ऋषि-मुनियोंको तुच्छ समझकर उनका अपमान किया। मानसमें कहा है—

जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ। फलइ तबहिं जब करिअ दुराऊ॥

दाहिने हाथसे दिये दानको इतना गोपनीय रखना चाहिये कि बायाँ हाथ भी न जान सके। श्रीभरतजीने चौदह वर्षोंतक जो संयम-नियम-व्रत किया, उसके लिये गोस्वामीजी लिखते हैं—

सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं॥

* नाहं देवमनुष्येषु गन्धर्वेषु महर्षिषु। आत्मनस्तपसा तुल्यं कंचित् पश्यामि वासव॥ (महा० आदि० ८८। २)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु वे स्वयंको क्या मानते हैं?—कैसी दीनता है?—

कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ॥
जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा॥

भक्तिका सबसे बड़ा बाधक अहंकार है। *'सकल सोकदायक अभिमाना।'* साधकको तृणसे भी नीचा, वृक्षके समान सहिष्णु और सबका सम्मान करते हुए स्वयं अमानी रहना चाहिये—शास्त्र कहते हैं—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

जीवनकी समस्या

(स्वामी श्रीचिदानन्दजी महाराज)

पुस्तकालय 132280 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

मनुष्य-जीवन अमूल्य है। उसकी तुलना किसी भी दूसरे जीवनके साथ नहीं हो सकती। यह मानव-शरीर जो आज अत्यन्त पुण्यके प्रतापसे प्रभुकृपासे प्राप्त हुआ है, देवदुर्लभ कहा जाता है; क्योंकि देवता भी मानव-शरीर पानेके लिये सदा उत्सुक रहते हैं। इसका कारण यह है कि मनुष्यके सिवा अन्य सारी योनियाँ—यहाँतक कि देवादि योनि भी केवल भोगभूमि है। भोगभूमिका अर्थ यही है कि जीवको उन योनियोंमें केवल प्रारब्धके द्वारा प्राप्त भोगोंको भोगकर उस शरीरका त्याग कर देना पड़ता है। उस शरीरमें कोई भी नवीन कर्म करके परलोक सुधारनेकी कोई सामग्री नहीं होती। यह योग्यता—भावी जीवनको अपनी इच्छाके अनुसार बनानेकी योग्यता, केवल मानव-शरीरमें ही है, इस कारण यह शरीर कर्म-भूमि कहलाता है।

मानव-जीवन एक समस्या है, यह इस शरीरके द्वारा ही समझा जा सकता है और इस समस्याका समाधान खोजने तथा तदनुसार जीवनकी नीति निर्धारण करनेमें ही मानव-जीवनकी सार्थकता है।

कुछ दिन हुए एक 'विश्वधर्म-सम्मेलन' हुआ था। उसमें तीन मुख्य प्रश्न थे—(१) जीवनका उद्देश्य क्या है? (२) मनुष्य किस लिये पैदा हुआ है? अर्थात् मनुष्य-जीवनका अन्तिम ध्येय क्या होना चाहिये? (३) सुख-शान्तिमय जीवन कैसे बिताया जा सकता है? दुःखकी बात है कि बहुत चर्चा होनेपर भी अन्तमें कोई सन्तोषजनक निर्णय न हो सका।

हमारे शास्त्रोंने इन प्रश्नोंका उत्तर सर्वत्र दे रखा है, परंतु आजके वैज्ञानिक युगमें तो यह सबका निश्चय हो गया है कि शास्त्र जो कुछ कहते हैं, वह तो सच है ही नहीं। तब हमारी दृष्टि शास्त्रोंकी ओर जा ही कैसे सकती है? अंग्रेजोंने हमको सिखलाया कि तुम्हारे शास्त्र भ्रान्त हैं और हमने इसको मान लिया। मेकॉलेकी शिक्षाने बतलाया कि आर्योंकी संस्कृति सड़ी हुई है और इसको फेंक देना चाहिये। हमलोगोंने इसको मान लिया और घर-घर लोग कहने लगे कि 'हमारी संस्कृति सड़ गयी है और इसको फेंक देनेमें ही छुटकारा है।' और यह तत्त्व शिक्षामें शामिल हो गया। विदेशियोंने कहा कि 'वर्णाश्रम-धर्म तो एक कलंक है' और हमने बिना विचारे इसको मान लिया तथा अब उसका नाश करनेके लिये कटिबद्ध हो गये हैं और उसके लिये सारी शक्तियोंका उपयोग कर रहे हैं। अंग्रेज तो चले गये; परंतु हमारा यह गुलामी मन उनके जानेके बाद भी अधिक-से-अधिक गुलामी भोगनेवाला बन गया है। अब तो बस उनका अन्धानुकरण ही आजका युगधर्म बन गया है। हमारी सारी बातें खराब हैं और वे जो कहते हैं वह सभी ठीक है—यह हमारा निश्चय बन गया है। गाँधीजीने कहा कि मशीनोंने यूरोपको उजाड़ कर दिया है, अतएव हमारे हिन्दमें मशीनोंकी जरूरत नहीं है; परंतु गाँधीजीकी यह बात अब मान्य नहीं है तथा हिंदमें मशीन-पर-मशीन बढ़ती जा रही है और अपना देश दिनोंदिन परावलम्बी होता जा रहा है। जो काम अंग्रेज न कर सके, वह काम अंग्रेजी पढ़े हुए भारतीय कर रहे हैं और मेकॉलेकी प्रतिज्ञाको श्रद्धांजलि दे रहे हैं!

अब इन प्रश्नोंका उत्तर खोजनेसे पहले एक बात समझ लेना आवश्यक है; क्योंकि हम भी आज देहात्मवादी—देहको ही आत्मा माननेवाले होते जा रहे हैं। यह संगदोषका परिणाम है। मानव प्राणीमें दो विभाग तो स्पष्ट ही दीखते हैं—एक जड है और दूसरा चेतन। जो जड है वह शरीर है और उसके भीतर जो चेतन तत्त्व है वह आत्मा है। शरीर स्वभावसे ही परिवर्तनशील है, अर्थात् उसमें परिवर्तन होता ही रहता है। वह जन्मके समय नन्हा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सा रहता है, फिर बढ़ता है, जवान होता है, अधेड़ होता है, वृद्ध होता है और प्रारब्ध—भोगका क्षय होनेपर नाशको प्राप्त होता है; परंतु शरीरकी इस बदलती अवस्थामें आत्मा ज्यों-का-त्यों अपने अविचलस्वरूपमें ही रहता है। इस प्रकार आत्मा अपरिवर्तनशील है और इससे शरीरका कोई विकार उसको स्पर्श नहीं कर सकता।

विशेष विचार करनेपर ज्ञात हो जायगा कि चाहे जितना भोग प्रदान करो शरीरको कभी सुख नहीं हो सकेगा, बल्कि जैसे-जैसे भोग-पदार्थोंकी मात्रा बढ़ती जायगी, वैसे-ही-वैसे वह अधिक-अधिक चाहने लगेगा और फिर भी वह सुखी तो हो सकेगा ही नहीं। इस प्रकार शरीरको सुख पहुँचानेके लिये जो भी परिश्रम किया जायगा, सब व्यर्थ ही होगा। आत्मा अपरिणामी है, अतः वह सदा ही सुखरूप है, उसको अपने सुखके लिये बाहरके किसी पदार्थकी आवश्यकता ही नहीं। इतना समझ लेनेके बाद इन प्रश्नोंका उत्तर एक-एक करके दिया जायगा।

(१) जीवनका उद्देश्य क्या है? यह हमारा पहला प्रश्न है। संसारका साधारण अवलोकन करनेपर भी यह ज्ञात हुए बिना नहीं रहता कि प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है, सुख प्राप्त करनेके लिये ही उसकी सारी प्रवृत्ति होती है और दुःख किसीको भी पसन्द नहीं। इससे यह फल निकलता है कि जीवनका—मानव-जीवनका उद्देश्य दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्तिके साथ परम सुखकी प्राप्तिके सिवा और कुछ नहीं होना चाहिये; परंतु दुःख-सुखका स्वरूप मनुष्य समझता नहीं और इसी कारण उलटे-सीधे—इधर-उधर हाय-हाय करता भटकता है तथा सुखके बदले दुःख ही पाता है। मनुष्य यह समझता ही नहीं कि सुख क्या है, यों बतलाते हुए श्रीभर्तृहरि कहते हैं—

'प्रतीकारो व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः।'

अर्थात् मनुष्य अपनी भ्रान्तबुद्धिके कारण व्याधि अथवा व्यथा या पीड़ाकी तात्कालिक क्षणिक निवृत्तिको सुख मान बैठता है। प्यास लगनेपर पानी पीता है और साँस लेकर उसे सुख मान लेता है, परंतु उसमें कोई सुख तो नहीं मिलता, केवल प्यास छिप जाती है और तृषाके कारण उत्पन्न हुई व्याकुलता थोड़ी देरके लिये दूर हो जाती है।

अब दुःखका स्वरूप समझना चाहिये, जिससे यह समझमें आ सके कि उसकी निवृत्ति कैसे की जाय। गीतामें भगवान्ने चार बड़े दुःख गिनाये हैं—जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि (१३।८)। इनमें जन्मके दुःखको तो मनुष्य अज्ञानावस्थामें भोग लेता है। तथापि विवेकी पुरुष दूसरोंको इस प्रकारके दुःखको भोगते देखकर यह अनुमान कर लेता है कि उसको भी ऐसा दुःख भोगना पड़ा होगा। जरा और व्याधिका दुःख तो हम अपनेमें तथा दूसरोंमें बराबर देखते ही हैं। मृत्युका दुःख भी बड़ा भयानक होता है, उसको भी हम दूसरोंको मरते देखकर जान लेते हैं। इन सबको विवेकसे देखना सीखें, तभी दुःख दुःख जान पड़ता है, अन्यथा दुःखमें भी सुख-बुद्धि हो जाती है और तब दुःख दुःखरूप नहीं दिखता। श्रीशंकराचार्यजी कहते हैं—

'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं
पुनरपि जननीजठरे शयनम्॥'

बारम्बार जन्म लेना और बारम्बार मरना तथा फिर माताके पेटमें आकर गर्भवासका दुःख भोगना, इसके समान दूसरा कोई दुःख नहीं है। आत्मपुराणमें इस जन्म-मरणके चक्रका वर्णन इस प्रकार आता है—

जातो बालो युवा वृद्धो मृतो जातः पुनस्तथा।
भ्रमतीत्येष संसारे घटीयन्त्रसमोऽवशः॥

मनुष्य जन्मता है, बाल्यावस्था भोगता है, जवान होता है, अधेड़ बनता है और वृद्धावस्थाको प्राप्त होता है, फिर मृत्युकी शरणमें चला जाता है, उसके बाद फिर माताके पेटमें आकर वहाँका दुःख भोगता है, फिर जन्मता है, फिर मरता है। इस प्रकार जीवात्मा अपने कर्मके अनुसार घटी-यन्त्रके समान अवश होकर जन्म-मरणके चक्रमें भ्रमता रहता है।

इससे यह दीख पड़ता है कि जन्म-मरणके समान दूसरा कोई दुःख नहीं है। अतएव यदि दुःखकी निवृत्ति करनी हो तो जन्म-मरणसे मुक्त होना चाहिये। इसका उपाय मुक्ति या मोक्ष है।

मोक्ष सुख है, यही निरवधि सुख है, यही अक्षय सुख है और यही निरतिशय सुख है; क्योंकि वह निजका सुख है। अपने स्वरूपका ही सुख है। इसलिये इसमें कभी घट-बढ़ होता ही नहीं तथा इसका कभी विनाश भी नहीं होता।

यहाँतक हमने देखा कि मनुष्य-जीवनका उद्देश्य दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्तिके साथ परमानन्दकी प्राप्ति है और उसकी सिद्धि मोक्ष-प्राप्तिसे ही होती है। अब इस बातके समर्थनमें कुछ प्रमाण लीजिये। श्रीमद्भागवतमें उद्धवजीसे श्रीभगवान् कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम्।
यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति माऽमृतम्॥

'बुद्धिमान् पुरुषोंकी बुद्धि तथा चतुर मनुष्योंकी चतुराई इसीमें है कि इस विनाशी और क्षणभंगुर शरीरसे मेरे अविनाशी और सत्य स्वरूपकी प्राप्ति कर ले।'

श्रीमद्भगवद्गीतामें अर्जुनसे श्रीभगवान्ने कहा है—

'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।'

'इस क्षणभंगुर और दुःखरूप शरीरसे मेरा भजन करके मुझे प्राप्त करो।'

श्रुति भी कहती है—

लब्ध्वा कथंचिन्नरजन्म दुर्लभं
तत्रापि पुंस्त्वं श्रुतिपारदर्शनम्।
यस्त्वात्ममुक्तौ न यतेत मूढधीः
स ह्यात्महा स्वं विनिहन्त्यसद्ग्रहात्॥

'महान् पुण्यके प्रतापसे यह मनुष्यशरीर मिला है और उसमें भी श्रुतिका तात्पर्य समझनेकी योग्यतावाला पुरुषशरीर मिला है। इतनी बड़ी सुविधा होनेपर भी जो मूढ़ बुद्धिवाला मनुष्य अपनी मुक्तिके लिये यत्न नहीं करता, वह आत्महत्या करता है। अपनी मूर्खताके कारण अपने ही लिये कब्र खोदता है; क्योंकि जिस शरीरसे मोक्ष साधन करना था, उससे केवल पशुके समान विषयभोग ही करता है।'

अब यहाँ एक बात समझ लेना जरूरी है। ईश्वर-प्राप्ति, ईश्वर-साक्षात्कार, परमपदकी प्राप्ति, निर्वाण या कैवल्य या ब्राह्मीस्थिति-जैसे अनेक शब्दोंका प्रयोग मोक्ष या मुक्तिके लिये होता है। ये कोई पृथक्-पृथक् स्थितियाँ नहीं हैं; बल्कि एक ही स्थितिके लिये विभिन्न शब्दोंका प्रयोगमात्र है।

(२) हमारा दूसरा प्रश्न है, मनुष्यकी उत्पत्ति किस लिये हुई है? अर्थात् मनुष्य-जीवनका अन्तिम ध्येय क्या होना चाहिये?

मनुष्य-शरीर ईश्वरकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसमें ईश्वरने मोक्षकी साधनाके लिये सामग्री प्रदान की है। इतना ही नहीं, बल्कि इस शरीरमें सब जन्मोंके संस्कार जाग्रत् रहते हैं, जहाँ अन्य शरीरोंमें केवल उन योनियोंके संस्कार ही जाग्रत् होते हैं तथा अन्य संस्कार दबे रहते हैं। इसी कारण मनुष्य जैसे संगमें रहता है वैसा ही बन जाता है; क्योंकि संगके द्वारा सजातीय संस्कार जोर पकड़ते हैं और बलवान् होकर स्वभाव बन जाते हैं।

हम जानते हैं कि संत-समागममें पाला-पोसा गया बालक संत बनता है और चोर-डाकुओंके साथ पाला गया चोर-डाकू बन जाता है। भेड़ियेके साथ पाला गया बालक भेड़िया-जैसा बन जाता है और कच्चा मांस खाकर भी जी सकता है। हरिणके साथ पोसा हुआ बालक हरिणके समान घास खाकर जी सकता है तथा हरिणके समान तीस-चालीस मीलतक चौकड़ी भर सकता है। इस प्रकार मनुष्य-शरीरको ईश्वरने सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-जैसा बनाया है। इसका सदुपयोग करे तो नरसे नारायण बन जाय और दुरुपयोग करे तो नरसे नरकका कीड़ा भी बन जाय।

मनुष्य-शरीर किस लिये उत्पन्न होता है, यह बात गर्भोपनिषद्में सुन्दर रीतिसे समझायी गयी है। गर्भके जब आठ मास पूरे हो जाते हैं, तब वह पूर्ण विकासको प्राप्त होता है। उस समय उसकी सुषुम्ना नाडी खुली होनेके कारण उसको गत जन्मोंका भी सारा स्मरण होता है। इससे कभी-कभी हाथमें आये हुए अवसरोंको खो देनेके कारण वह पश्चात्ताप करता है और कभी-कभी भगवान्से प्रार्थना करता है तथा वचन भी देता है कि इस बार इस कारागृहसे छुट्टी मिले तो हे भगवन्! मैं तुम्हारा भजन करके ऐसा साधन करूँगा कि जिससे बारम्बार गर्भवासका कष्ट न भोगना पड़े। वह पश्चात्ताप करते हुए कहता है—

यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम्।
एकाकी तेन दह्यामि गतास्ते फलभोगिनः॥

'मैंने अपने परिवारके पालन-पोषणके लिये जो-जो शुभाशुभ कर्म किये हैं उनका फल तो मुझे अकेले ही भोगना पड़ता है और अशुभ कर्मकी यातना भी मैं अकेला ही भोगता हूँ। वे तो अपना-अपना भाग लेकर न जाने कहाँ चले गये।'

भगवान्की स्तुति करते हुए वह कहता है—

यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम्।
अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम्॥

'हे भगवन्! यदि मैं इस बार गर्भवाससे छूट जाऊँगा तो समस्त पापोंका नाश करनेवाले और मुक्तिरूपी फलको देनेवाले महेश्वर भगवान्के चरणोंका ही आश्रय लेकर मोक्ष प्राप्त कर लूँगा।'

इस प्रकार कभी पश्चात्ताप तो कभी प्रार्थना करते-करते जब नौ मास पूरे हो जाते हैं, तब जैसे कोल्हूमेंसे ईख पिसकर बाहर निकलती है, उसी प्रकार वह अचेत दशामें बाहर निकलता है। बाहर आते ही, ईश्वरकी वैष्णवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मायाका स्पर्श होते ही जीव अपने स्वरूपको भूल जाता है और सुषुम्नाके बन्द हो जानेसे उसका पूर्वजन्मका ज्ञान भी लुप्त हो जाता है।

इससे स्पष्ट समझमें आ जाता है कि मनुष्य-शरीर जीवको मिलता है केवल प्रभु-प्राप्ति कर लेनेके लिये ही, क्योंकि मोक्ष-प्राप्ति न करनेके कारण गर्भवासमें वह पश्चात्ताप करता है तथा वर्तमान जन्ममें अवश्य मोक्षप्राप्तिका साधन करनेके लिये भगवान्‌को वचन भी देता है; परंतु मायाकी फाँसीमें पड़ जानेके कारण जो पशुके समान विषयसेवनमें ही जीवन बिताता है, उस मनुष्यका जन्म व्यर्थ ही जाता है।

अब इस प्रसंगको दूसरी तरहसे देखिये। यदि मनुष्य-शरीर भी अन्य शरीरोंके समान विषयभोग भोगनेके लिये होता तो भगवान् उसमें विवेक-बुद्धि नहीं प्रदान करते। विवेक-बुद्धिके बिना भी पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि विषय-भोग भोगते ही हैं। वे भी भोजन प्राप्तकर अपना पेट पालते हैं, थकनेपर नींदका आश्रय लेते हैं, भयका कारण उपस्थित होनेपर अपनी रक्षाके लिये प्रयत्न करते हैं तथा अपने वंशको चालू रखनेके लिये प्राकृतिक नियमोंके अनुसार बच्चा भी पैदा करते हैं। बल्कि इन्द्रियों तथा उनके विषयोंके संयोगसे होनेवाले सुखमें भी कोई तारतम्य नहीं होता, सर्वत्र समान सुखका अनुभव होता है। जिस सुखका अनुभव देवताओंको उनके अमृत भोजनसे होता है, वही अनुभव एक सूअरको विष्टा खानेसे होता है और वही अनुभव एक विषके कीड़ेको विषमें होता है। जिस सुखका अनुभव एक अमीरको मखमलके गद्देपर लेटनेमें होता है, वही सुख एक गधेको घूरेपर लोटनेसे मिलता है। इसका समर्थन करते हुए शास्त्र कहते हैं—

आहारनिद्राभयमैथुनं च
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

आहार, निद्रा, मृत्युका भय और स्त्री-संग—ये चारों तथा इन्द्रियोंके अपने-अपने विषयोंके भोग मनुष्यों तथा पशुओंमें समान होते हैं। तब फिर मनुष्यमें क्या विशेषता है—यह बतलाते हुए कहते हैं कि विवेकशक्ति केवल मनुष्यमें ही होती है, अन्य प्राणियोंमें नहीं होती। अतएव जो मनुष्य इस विवेकशक्तिका उपयोग नहीं करता और अन्य प्राणियोंके समान भोग-विलासको ही जीवनका ध्येय मानता है, उसको पशु-तुल्य ही जानो। यह बात एक सुभाषितमें बहुत सुन्दर रीतिसे कही गयी है—

खादते मोदते नित्यं शुनकः शूकरः खरः।
तेषामेषां विशेषः को वृत्तिर्येषां तु तादृशी॥

कुत्ते, सूअर तथा गधे भी नित्य खाते-पीते हैं और स्वच्छन्द आनन्द करते हैं। यदि मनुष्य भी इतना ही करे—केवल विषयभोग करनेमें ही जीवनकी इतिकर्तव्यता समझे, तो फिर उसमें और पशुमें अन्तर ही क्या है?

इससे भी यही सिद्ध होता है कि मनुष्य-शरीर जीवको मिला है केवल मोक्षकी साधना करनेके लिये; क्योंकि ईश्वरने इसकी सामग्री केवल मनुष्य-शरीरमें ही प्रदान की है, अन्य शरीरोंमें नहीं।

(३) हमारा तीसरा प्रश्न यह है कि 'जीवन किस प्रकार सुख-शान्तिसे बीत सकता है?' बहुत संक्षेपमें इसका उत्तर शास्त्र इस प्रकार देते हैं—

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्॥

यदि सुख और शान्तिका जीवन व्यतीत करना हो तो इन्द्रियोंका निग्रह आवश्यक है। इसके विपरीत यदि इन्द्रियोंको मनमाना भोग प्रदान करनेका आग्रह करोगे तो विनाश अनिवार्य है। इसका कारण यह है कि भोग-पदार्थोंका एक तो अन्त नहीं होता और दूसरे भोग भोगनेसे तृप्ति नहीं होती, बल्कि अधिकाधिक भोग-लालसा और प्रदीप्त होती है। इसीसे शास्त्र चेतावनी देते हैं—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

'भोगपदार्थोंको भोगनेसे कभी तृष्णा शान्त नहीं होती। दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि अग्निमें जैसे-जैसे घी डाला जाता है वैसे-वैसे अग्नि प्रबल होती जाती है, इसी प्रकार भोग-वासना भी भोग भोगनेसे प्रबल होती जाती है।' इसीसे कहते हैं कि **'तां तृष्णां त्यजतः सुखम्।'** अर्थात् तृष्णाके त्यागसे ही सुख मिलता है, भोगसे कभी सुख नहीं मिल सकता। इस प्रकार यह निश्चय हुआ कि सुख-शान्तिमय जीवनके लिये त्यागप्रधान जीवन ही आवश्यक है।

त्यागप्रधान जीवन बनानेके लिये क्या करना जरूरी है, यह बतलाते हुए योगदर्शन कहता है—**'सन्तोषादनुत्तम-सुखलाभः।'** अर्थात् सन्तोषवृत्ति रखनेसे निरतिशय सुखकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्ति होती है।

कहा भी गया है—

'जब आवे संतोष धन सब धन धूरि समान॥'

बहुतेरा धन प्राप्त हो; परंतु सन्तोषरूपी धन न हो तो वह धन कभी सुख नहीं प्रदान कर सकता। परंतु यदि एक सन्तोषरूपी धन हो तो मनुष्यके लिये दूसरे किसी धनका कोई मूल्य नहीं।

श्रीभर्तृहरि भी कहते हैं—

'स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः॥'

'जिसकी भोग-लालसा बलवान् है, वही असली दरिद्र है। अर्थात् जिसका जीवन भोगप्रधान है वह सदा दरिद्रके समान रोया ही करता है; परंतु जब मनमें सन्तोष आ जाता है, तब धनवान् या दरिद्रका भेद ही अदृश्य हो जाता है।' इस प्रकार सुखी जीवनके लिये सन्तोष प्राप्त करना भी आवश्यक है।

इस छोटेसे निबन्धमें हमने देखा कि (१) दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्तिके साथ परम आनन्दकी प्राप्ति ही मनुष्य-जीवनका उद्देश्य है, (२) मनुष्य-शरीर जीवको मिला है केवल मोक्षकी साधना करनेके लिये और (३) सुखी जीवन बितानेके लिये आवश्यक है कि त्यागप्रधान सादा और सरल जीवन बिताया जाय तथा यथाप्राप्तिमें संतोष रखनेकी आदत डाली जाय।

अब यह प्रश्न सहज ही होता है कि ऐसी दशामें मनुष्य जीवन कैसे बिताये—इसके लिये क्या कोई योजना है? इसका उत्तर यह है कि मानव-जीवनके लिये शास्त्रोंने अनेकों योजनाएँ बनायी हैं। उनमें ये तीन मुख्य हैं—(१) वर्ण-व्यवस्था, (२) आश्रम-व्यवस्था और (३) चतुर्विध पुरुषार्थकी योजना।

(१) मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसलिये उसको समाजके एक अंगकी तरह जीना है। अतः मनुष्यके लिये वर्णव्यवस्था एक उत्तम सामाजिक नीति है, जिसकी आधारशिला मनोविज्ञान है। सभी तत्त्वचिन्तकोंने इस व्यवस्थाकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है, परंतु हम तमोगुणी मानसके कारण उसका रहस्य नहीं समझ सकते।

(२) आश्रम-व्यवस्था—जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्तकी योजना इस व्यवस्थामें है। जिसके मुख्य अंग इस प्रकार हैं—बीस या पचीस वर्षकी आयुतक मनुष्य ब्रह्मचर्याश्रममें रहे। इस समयकी अवधिमें विद्योपार्जन करे, शरीरको कार्यक्षम बनाये और आजीविका प्राप्त करनेके लिये योग्यता-सम्पादन करे। उसके बाद गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे और उस आश्रमके धर्मोंका यथायोग्य पालन करे। उसके बाद पचाससे पचपन वर्षकी अवस्थातक काम-धन्धा करते-करते गृहस्थाश्रमके बन्धनको ढीला करे और छप्पनसे साठ वर्षकी उम्रतक काम-धन्धा छोड़कर संन्यासकी तैयारी करे। साठ वर्षकी उम्रके बाद अवसर मिलते ही संन्यास ग्रहण करके मोक्षकी साधनामें लग जाय। इस प्रकार जीवनकी नीति बनानेसे जीवन सरल और सुखरूप बनता है। यही नहीं, बल्कि अगले जन्मोंमें भी उत्तरोत्तर उन्नत होता है और अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है। (जीवनके समयका विभाग कैसे किया जाय; इसका आधार देश, काल और परिस्थिति है, यहाँ तात्पर्य केवल चार विभागकी योजना बनानेका है।)

जो मनुष्य इस प्रकार अपने जीवन-व्यवहारको नहीं बनाता और सारा ही जीवन काम-धन्धे और विषय-सेवनमें बिता देता है, उसके लिये शास्त्र ऐसा कहते हैं—

यो नरो जन्मपर्यन्तं स्वोदरस्य प्रपूरकः।
न करोति हरेर्भक्तिं स नरो गोवृषः स्मृतः॥

'जो मनुष्य जीवनभर उदर-पूर्तिके लिये परिश्रम करता है और केवल शरीरको भोग प्रदान करनेमें ही जीवनकी इतिश्री कर देता है तथा ईश्वरकी भक्ति नहीं करता, उसे तो दो पैरवाला बैल ही समझना चाहिये।' जो शरीर ईश्वरप्राप्तिके लिये मिला है, उसका उपयोग जो विषय-सेवनमें ही करता है—उसको पशु न कहें तो क्या कहें?

(३) इसके साथ-साथ चतुर्विध पुरुषार्थ भी करना है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चतुर्विध पुरुषार्थके अंग हैं। इनमें बीचके दोनों—अर्थ और काम अर्थात् स्थूल शरीरके भोग तो प्रारब्धके अधीन हैं, इसलिये इस सम्बन्धमें यथाप्राप्तमें सन्तोष करना सीखना चाहिये। प्रथम आश्रममें धर्मको मुख्य समझना चाहिये। दूसरेमें धर्मद्वारा अर्थ और काम प्राप्तकर शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार उनका उपभोग करना चाहिये। तीसरा और चौथा आश्रम तो मोक्षकी साधनाके लिये ही है; क्योंकि मनुष्य-जीवनका अन्तिम ध्येय मोक्ष है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहस्थ संन्यासी

(श्रीभँवरलालजी परिहार)

जीवन वही श्रेष्ठ है, जो गीतामें बताये गये निर्देशोंके अनुसार ढला हुआ हो। स्वयं श्रीभगवान्‌के श्रीमुखकी वाणी होनेके कारण मनुष्योंके लिये गीतासे बढ़कर कोई अन्य उपदेश या पथ-प्रदर्शक नहीं हो सकता। गीतामें भगवान्‌ने अपनी प्राप्तिके जो साधन बताये हैं, वे सभी सरल, आसानीसे समझने-योग्य एवं शीघ्रफलप्रद हैं। घरमें रहते हुए ही भगवत्प्राप्तिका साधन बतानेवाले शास्त्रोंमें गीतासे बढ़कर और कोई शास्त्र नहीं है। गीतामें भगवान्‌ने संन्यासीकी व्याख्या इस प्रकार की है—

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते॥

(गीता ५। ३)

अर्थात् हे अर्जुन! जो पुरुष न किसीसे द्वेष करता है और न किसीकी आकांक्षा करता है, वह निष्काम कर्मयोगी सदा संन्यासी ही समझनेयोग्य है; क्योंकि राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे रहित पुरुष सुखपूर्वक संसाररूप बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥

(गीता ६। १)

अर्थात् जो पुरुष कर्मफलको न चाहता हुआ करनेयोग्य कर्म करता है, वह संन्यासी और योगी है और केवल अग्निका त्याग करनेवाला संन्यासी नहीं है तथा केवल क्रियाओंका त्याग करनेवाला भी योगी नहीं है।

भगवान्‌के मतानुसार संन्यासी और योगी बननेके लिये घरको छोड़कर संन्यास-आश्रम ग्रहण करनेकी आवश्यकता नहीं है। घरमें रहते हुए ही मनुष्य संन्यासी और योगी बन सकता है। जो मनुष्य संसारकी किसी भी वस्तु, व्यक्ति और परिस्थितिको अपनी और अपने लिये नहीं मानता, वह घरमें रहते हुए भी संन्यासी ही है।

आसक्ति, ममता और कामना ही मनुष्यको बाँधने वाले हैं। इनका नाश होनेपर मनुष्य घरमें रहे या संन्यास-आश्रममें—इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आसक्तिरहित होकर कर्म करनेसे कर्म बन्धनकारक नहीं होते हैं—

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः॥
निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥
यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते॥

(गीता ४। २०—२२)

जो पुरुष समस्त कर्मोंमें और उनके फलमें आसक्तिका सर्वथा त्यागकर संसारके आश्रयसे रहित हो गया है और परमात्मामें नित्यतृप्त है, वह कर्मोंमें भलीभाँति बर्तता हुआ भी वास्तवमें कुछ भी नहीं करता है। जिसने अन्तःकरण और इन्द्रियोंके सहित शरीरको जीत लिया है और जिसने समस्त भोगोंकी सामग्रीका परित्याग कर दिया है, ऐसा आशारहित पुरुष केवल शरीर-सम्बन्धी कर्म करता हुआ भी पापको प्राप्त नहीं होता। जो बिना इच्छाके अपने-आप प्राप्त हुए पदार्थमें सदा सन्तुष्ट रहता है, जिसमें ईर्ष्याका सर्वथा अभाव हो गया है, जो हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वोंसे सर्वथा अतीत हो गया है—ऐसा सिद्धि और असिद्धिमें सम रहनेवाला कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी उनसे नहीं बँधता है।

घर-गृहस्थी छोड़कर और वस्त्रोंको बदलकर भी यदि कोई आसक्तिवश पदार्थोंका संग्रह करता है और लोगोंसे सम्बन्ध रखता है तो ऐसे संन्यास-आश्रमसे कुछ भी लाभ नहीं है। इनकी अपेक्षा तो वे लोग श्रेष्ठ हैं, जो गृहस्थमें रहते हुए शास्त्रानुसार अपने कर्तव्यका निष्कामभावसे पालन करते हैं। इनको भगवान्‌की कृपासे निश्चय ही भगवान्‌का धाम प्राप्त हो जाता है। गीता (१८। ५६)-में स्वयं भगवान्‌ने कहा है—

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥

मेरे परायण हुआ कर्मयोगी तो सम्पूर्ण कर्मोंको सदा करता हुआ भी मेरी कृपासे सनातन अविनाशी परमपदको प्राप्त हो जाता है।

संन्यासका मूल मन्त्र है—सम्पूर्ण कामनाओंका त्याग, किसी भी प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिकी प्राप्ति-अप्राप्तिसे राजी-नाराज, प्रसन्न-अप्रसन्न न होना—'**न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।**' (गीता ५। २०) ऐसा व्यक्ति स्वतः ही ब्रह्ममें स्थित होता है। कामनाओंका त्याग आश्रमसापेक्ष नहीं है। यह गृहस्थाश्रममें भी हो सकता है। संन्यास लेनेपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पूर्ण कामनाओंका त्याग हो ही जायगा—ऐसा कोई नियम नहीं है। कामनाओंका त्याग होनेपर कर्मफलका त्याग स्वत: ही हो जाता है। कर्मफलका त्यागी ही वास्तविक त्यागी है—'**यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते**।' (गीता १८। ११)

कामनाओंके कारण ही राग-द्वेष पैदा होते हैं। 'किसीको चाहना, किसीको नहीं चाहना, ऐसा होना चाहिये, ऐसा नहीं होना चाहिये'—यह द्वन्द्व ही सम्पूर्ण अनर्थोंका मूल है। भगवान्‌ने राग-द्वेषके नाशका बहुत ही सरल उपाय बताया है—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥

(गीता ३। ३४)

अर्थात् प्रत्येक इन्द्रियके विषयमें राग और द्वेष छिपे हुए हैं। मनुष्यको उन दोनोंके वशमें नहीं होना चाहिये; क्योंकि ये दोनों ही इसके कल्याण-मार्गमें विघ्न करनेवाले महान् शत्रु हैं।

इनके वशमें नहीं होनेका तात्पर्य है, ये जैसा कहें, वैसा नहीं करे। जैसे नेत्रकी इच्छा कोई सुन्दर रूप देखनेकी है तो सुन्दर रूप न देखें। अन्य इन्द्रियोंके विषयमें भी इसी प्रकार समझना चाहिये। इन्द्रियोंसे बलवान् मन है, मनसे बलवान् बुद्धि और बुद्धिसे भी बलवान् आत्मा अर्थात् वह स्वयं है—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

(गीता ३। ४२)

इस दृष्टिसे देखा जाय तो इन्द्रियाँ तो बहुत ही कमजोर हैं, इनमें स्वयंका कोई बल नहीं है। मन और बुद्धि भी आत्माका बल पाकर ही बलवान् बनते हैं और मनुष्यको पतनके मार्गकी ओर ले जाते हैं। बुद्धि मनको प्रेरित करती है और मन इन्द्रियोंको प्रेरित करता है। अतः इन्द्रियोंको विषयोंमें जानेसे रोकनेका उपाय है—मनके अनुसार न चले, कार्य न करे। किसीने बहुत सुन्दर लिखा है—

मन लोभी मन लालची मन चंचल चित चोर।
मनके कहे न चालिये पलक पलक मन ओर॥

बुद्धिमें प्रबल विवेक जाग्रत् रहनेपर ही बुद्धि मनको रोक सकती है, अन्यथा नहीं। विवेकको हमेशा जाग्रत् रखनेका उपाय है—सदैव सत्संगमें रहना, सत् शास्त्रोंका अनुशीलन करना तथा दुःसंग सर्वथा नहीं करना।

'**दुःसङ्गः सर्वथैव त्याज्यः**।' (नारदभक्तिसूत्र ४३)

जो हमारे मनको भगवान्‌से हटाये, वही दुःसंग है। थोड़ा-सा भी दुःसंग लम्बे समयके सत्संगको दबा सकता है और पतनका कारण बन सकता है। दुःसंगसे मोह उत्पन्न होता है, जो मनुष्यकी बुद्धिपर परदा डालकर उसको गलत-ठीकका निर्णय करनेमें असमर्थ बना देता है।

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥

(रा०च०मा० ७। १२०। १५)

मोहका नाश सत्संग और हरिकथा-श्रवणसे ही होता है—

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

(रा०च०मा० ७। ६१)

'मैं केवल भगवान्‌का हूँ और केवल भगवान् ही मेरे हैं तथा मुझे भगवान्‌के अतिरिक्त अन्य किसी भी सांसारिक प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिकी आवश्यकता नहीं है'—यह दृढ़-निश्चय साधकको ऊँची-से-ऊँची पारमार्थिक स्थितिमें पहुँचनेका अधिकारी बना देता है। ऐसा व्यक्ति गृहस्थ होते हुए भी संन्यासी ही है।

विचार करना चाहिये कि एक दिन मरना तो है ही। उस दिन ये सभी पदार्थ, व्यक्ति, सम्बन्धी, परिस्थितियाँ आदि नहीं चाहनेपर भी बलात् छूट ही जायँगे। अतः क्यों न इनको आज ही अपनी ओरसे पहले ही छोड़कर महान् पारमार्थिक लाभका पात्र बना जाय।

सुत-बनितादि जानि स्वारथरत न करु नेह सबही ते।
अंतहु तोहिं तजैंगे पामर! तू न तजै अबही ते॥

(विनय-पत्रिका १९८)

छोड़ना तो केवल मनसे ही है। यथायोग्य सांसारिक व्यवहारमें तो कोई आपत्ति है ही नहीं। जैसे हम ट्रेनमें यात्रा करते समय कहते हैं कि यह सीट मेरी है, यह आपकी सीट है; किंतु मनमें अच्छी तरह समझते हैं कि यह सीट न मेरी है न आपकी, और गन्तव्य स्थान आनेपर सीटको छोड़नेमें कोई दुःख भी नहीं होता। इसी प्रकार गृहस्थाश्रममें रहते हुए आसक्तिरहित होकर अपने सांसारिक कर्तव्यकर्मोंका सम्पादन करनेसे मनुष्य सुखपूर्वक भगवान्‌को प्राप्त कर सकता है। भगवान्‌ने कहा है—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥

(गीता ३। १९)

इसलिये तू निरन्तर आसक्तिसे रहित होकर सदा कर्तव्य कर्मोंको भलीभाँति करता रह; क्योंकि आसक्तिसे रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नामु राम को कलपतरु'

(श्रीदेवेन्द्रजी शर्मा)

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज श्रीरामचरितमानसमें कहते हैं कि *'नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु'* (रा०च०मा० १। २६) अर्थात् इस घोर कलियुगमें श्रीराम-नाम ही सनातनरूपसे कल्याणका निवास है; क्योंकि यह कल्पवृक्षके समान सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है। 'कल्पतरु' यानी कि कल्पवृक्ष एक दिव्य वृक्ष है, जो देवराज इन्द्रके नन्दनवनमें है। इस दिव्य कल्पवृक्षकी विशेषता यह है कि यह याचकको मनचाही वस्तुका लाभ प्रदान करता है।

श्रीगोस्वामीजीका श्रीराम-नाममें अखण्ड विश्वास है। वे भगवान् श्रीराम, उनके श्रीराम-नाम, उनके श्रीरूप और उनकी श्रीलीलाकथाओंकी महिमा—इन सबको अनन्त बताते हुए कहते हैं—

महिमा नाम रूप गुन गाथा। सकल अमित अनंत रघुनाथा॥

(रा०च०मा० ७। ९१। ३)

सर्वप्रथम यदि श्रीराम-नामकी महत्तापर विचार करें तो इस सन्दर्भमें अरण्यकाण्डमें श्रीभगवान्के परम भक्त श्रीनारदजी भगवान् श्रीरामसे एक निवेदन करते हैं—

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका॥
राम सकल नामन्ह तें अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥

(रा०च०मा० ३। ४२। ७-८)

राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल बसहुँ भगत उर ब्योम॥

(रा०च०मा० ३। ४२ (क))

अर्थात् हे प्रभो! वेदोंमें ऐसा लिखा है कि आपके नाम तो अगणित हैं और आपके हर एक नामका महत्त्व भी एक-दूसरेसे बढ़कर ही है। लेकिन मैं आपसे एक वरदान माँगता हूँ कि आपका जो श्रीरामनाम है, वह आपके अन्य (अगणित) नामोंकी अपेक्षा, जीवोंके पापरूपी पक्षियोंको सर्वाधिक नाश करनेमें बधिकका काम करे। इतना ही नहीं, पूर्णतम भक्तिरूपी पूर्णिमाकी रात्रिमें आपके अन्य पावन नाम तो भक्तोंके हृदयरूपी आकाशमें अगणित तारागणोंके समान दीप्तिमान् रहें ही, लेकिन उन सबके शिरोमणिरूपमें आपका श्रीराम-नाम भक्तोंके हृदयरूपी आकाशमें पूर्णिमाके पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति सदा ही सुशोभित रहे। उत्तरमें श्रीभगवान्ने प्रसन्नतापूर्वक 'एवमस्तु' कहकर श्रीनारदजीको कृतार्थ करनेके साथ-साथ हम सबको भी कृतकृत्य कर दिया। सम्भवतः इसी कारण, प्राचीन कालसे ही सोते-उठते सबसे मिलते-जुलते राम-राम कहनेकी प्रथा प्रचलित हुई, जिससे कि किसी-न-किसी बहानेसे श्रीराम-नामके स्मरणका लाभ होता रहे। कहा भी जाता है—

राम राम रटते रहो, जब लगि घट में प्रान।
कबहुँ तो दीनदयाल के, भनक परैगी कान॥
राम नाम की लूट है, लूट सको तो लूट।
अन्त काल पछताओगे, जब प्रान जायँगे छूट॥

अब हमारे लिये यह समझना आवश्यक हो जाता है कि आखिरकर 'राम' शब्दमें ऐसी क्या विशेषता है कि जिसके कारण परमभक्त श्रीनारदजीने श्रीभगवान्से उपर्युक्त वरदान माँगा और भगवान्ने भी श्रीनारदजीकी प्रार्थनापर तुरंत ही सहर्ष 'एवमस्तु' कह दिया।

श्रीरामचरितमानसरूपी पावन सरोवरमें गोता लगानेपर हम पाते हैं कि श्रीगोस्वामीजीने परम पावन 'श्रीराम-नाम' की प्रतिष्ठा और महत्ताके बारेमें बहुत कुछ कहा है। उन्होंने श्रीरामचरितमानसके अन्य काण्डों अथवा प्रसंगोंके अतिरिक्त बालकाण्डके अकेले 'श्रीराम-नाम-वन्दना' प्रसंगमें ही ९ दोहों और ७४ अर्धालियोंको मिलाकर ९२ पंक्तियोंमें श्रीभगवान्के श्रीराम-नामकी बड़ी ही विशद महिमा गायी है।

जब भी 'लाभ और हानि' का प्रश्न उठता है तो स्वाभाविक तौरपर संसारी व्यक्ति केवल लौकिक लाभ और हानिकी बात ही सोचता है। उसे परम आवश्यक पारलौकिक लाभ और हानिकी तो सुधि ही नहीं आती। *'जौं परलोक इहाँ सुख चहहू'*—श्रीगोस्वामीजी हमें लोक-परलोक दोनोंके लाभ और हानिका स्मरण कुछ इस प्रकार कराते हैं—

हानि कि जग एहि सम किछु भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई॥

(रा०च०मा० ७। ११२। ९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यानी कि इस संसारमें सबसे बड़ी हानि तो यह है कि मनुष्यशरीर प्राप्त करके भी श्रीरामनाम-जपद्वारा श्रीभगवान्‌का भजन न करना। श्रीगोस्वामीजी इस हानिका एक अन्यतम स्वरूप प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—

रसना साँपिनि बदन बिल जे न जपहिं हरिनाम।
तुलसी प्रेम न राम सों ताहि बिधाता बाम॥
हिय फाटहुँ फूटहुँ नयन जरउ सो तन केहि काम।
द्रवहिं स्त्रवहिं पुलकइ नहीं तुलसी सुमिरत राम॥

(दोहावली ४०-४१)

अर्थात् जिनके मनमें भगवान् श्रीरामके प्रति प्रेम नहीं है, और जो श्रीभगवान्‌का नाम नहीं जपते हैं, उनकी जीभ साँपिनिके समान है। उनका मुँह साँपिनिके बिलके समान समझना चाहिये और ऐसा मानना चाहिये कि उनके लिये तो विधाता सदा ही प्रतिकूल हैं। श्रीगोस्वामीजी आगे और भी लिखते हैं कि भगवान् श्रीरामका स्मरण करनेपर जो हृदय द्रवित नहीं होते, वे फट जायँ, श्रीभगवान् श्रीरामका स्मरण करनेपर जिन नेत्रोंसे प्रेमाश्रुपात नहीं होता वे फूट जायँ, इतना ही नहीं भगवान् श्रीरामका स्मरण करनेपर जो शरीर पुलकित नहीं होते, उनको तो भस्म ही हो जाना चाहिये। इसके विपरीत इस संसारमें सबसे बड़ा लाभ बताते हुए श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—

लाभु कि किछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना॥

(रा०च०मा० ७।११२।८)

अर्थात् श्रुति, संत और पुराण सभी यही कहते हैं कि श्रीभगवान्‌की भक्तिके समान दूसरा और कोई लाभ इस संसारमें है ही नहीं।

अब यह भी स्वाभाविक है कि हानिकी बात तो कोई सुनना भी पसन्द नहीं करता, लेकिन जब लाभकी बात आती है तो उसके साथ अनगिनत अपेक्षाएँ स्वतः ही जुड़ जाती हैं। लेकिन गोस्वामीजी तो पारलौकिक लाभ यानी कि श्रीभगवान्‌की भक्तिके लाभको ही प्राथमिकता देते हैं, जो लोक-परलोक दोनोंके लिये कल्याणकारी है।

श्रीभगवान्‌की भक्तिके जितने भी साधन सुनने और पढ़नेमें आते हैं, उनमें भगवान्‌के श्रीनाम-जपको एक प्रमुख एवं सबसे सरल साधन बताया गया है। जिसकी नियमित और अनियमित दोनों प्रकारकी प्रक्रियाएँ अपनानेका विधान है। नियमित करनेमें तो पूर्ण श्रद्धा-विश्वाससे श्रीगुरुजीसे मन्त्र-दीक्षा लेना और उनके मार्गदर्शनमें श्रीनाम-जपका समय निश्चित करके श्रीइष्ट-देवपूजन, विनियोग-न्यास आदि करना तथा शौच-अशौचका ध्यान रखना—ये सब अनिवार्य हो जाते हैं। अनियमित जपके दो भेद हैं। पहला है—अजपाजप, जो अनियमित होते हुए भी नियमित होता है। इसमें शौच-अशौच, देश-काल आदिका विचार किये बिना हर श्वासमें श्रीरामनामके जपका नियम होता है। अनियमितजपकी दूसरी प्रक्रियामें भी शौच-अशौच और देश-काल आदिका विचार नहीं होता। यहाँतक कि शव-श्मशान-यात्रामें भी 'श्रीरामनाम सत्य है'-का उच्चारण पारम्परिक रूपसे किया जाता है।

निरन्तर श्रीभगवन्नाम-जप-स्मरणको अनिवार्य बताते हुए श्रीगोस्वामीजी सुन्दरकाण्डमें श्रीहनुमान्‌जी महाराजसे तो यहाँतक कहलवा देते हैं—

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

(रा०च०मा० ५।३२।३)

अर्थात् श्रीहनुमान्‌जी भगवान् श्रीरामके समक्ष निवेदन करते हैं कि हे प्रभो! जीवके लिये वह क्षण ही घोर विपत्तिका होता है, जिस क्षण उससे आपका स्मरण नहीं हो पाता। यानी कि कल्याण इसीमें है कि प्रतिक्षण आपके परमपावन श्रीराम-नामका स्मरण होता रहे। स्मरण रहे कि नियमित और अनियमित दोनों प्रक्रियाओंमेंसे किसीका भी महत्त्व एक-दूसरेसे कम नहीं है; क्योंकि श्रीभगवान्‌के सर्वथा कल्याणप्रद श्रीराम-नामको—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

(रा०च०मा० १।२८।१)

—'भायँ'—भाव (पूर्णतम श्रद्धा-विश्वास)-से, कुभायँ—कुभाव (बिना श्रद्धा-विश्वास)-से, अनख—क्रोधपूर्वक—शत्रुभावसे अथवा आलसहूँ—आलस्यपूर्वक, जैसे-कैसे भी श्रीराम-नामका स्मरण किया जाय तो इससे दसों दिशाओंमें मंगल ही होता है। श्रीगोस्वामीजी चारों प्रकारके भावोंसे श्रीराम-नामके स्मरण करनेवालोंका विवरण कुछ इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

भायँ—भावपूर्वक (पूर्णतम श्रद्धा-विश्वाससहित) जपनेवाले भगवान् श्रीशंकर हैं, वे स्वयं कहते हैं—

बंदउँ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥
कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥

(रा०च०मा० १।११२।३; १।११९।१)

कुभायँ—कुभावसे (बिना श्रद्धा-विश्वासके) जपनेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि वाल्मीकि हैं, उनके विषयमें देवगण कहते हैं—

उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

(रा०च०मा० २।१९४।८)

अनख—क्रोधपूर्वक—शत्रुभावसे जपनेवालोंमें श्रीपरशुरामजी, रावण तथा अन्य राक्षसगण हैं—

श्रीपरशुरामजी—

करु परितोषु मोर संग्रामा। नाहिं त छाड़ कहाउब रामा॥

(रा०च०मा० १।२८१।२)

धनुष-भंगके प्रसंगमें श्रीपरशुरामजीने अनेक बार भगवान् श्रीरामजीको क्रोधपूर्वक सम्बोधित किया, यहाँतक कि युद्धके लिये ललकारा भी। सो इस प्रकार उनके द्वारा क्रोध—शत्रुभावसे श्रीराम-नाम स्मरण हुआ, जिसका परिणाम उनके लिये कल्याणप्रद हुआ।

रावण—

गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ रामु रन हतौं पचारी॥

(रा०च०मा० ६।१०३।४)

अन्य राक्षस—

राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।

(रा०च०मा० ३।२०क)

(क्रोध और शत्रुभावसे श्रीराम-नाम पुकारनेके परिणामस्वरूप रावण और अन्य राक्षसोंको भी अन्तमें मुक्ति प्राप्त हो गयी)।

आलसहूँ—आलस्यपूर्वक जपनेवालोंमें कुम्भकर्ण प्रमुख है।

राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक।

(रा०च०मा० ६।६३)

उपर्युक्त चारों प्रकारके श्रीरामनाम-स्मरणकर्ताओंका उल्लेख अन्यत्र इस प्रकार मिलता है—

भाव सहित शंकर जप्यो कहि कुभाव मुनि बाल।
कुम्भकरण आलस जपेउ अनख जपेउ दशभाल॥

सर्वसाधारणको श्रीराम-नामस्मरणका फल बताते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—

साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥

(रा०च०मा० १।२२।४)

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥

(रा०च०मा० १।११९।४)

अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥

(रा०च०मा० १।२६।७)

बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥

(रा०च०मा० १।११९।३)

जा कर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा॥

(रा०च०मा० ३।३१।६)

राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।

(रा०च०मा० ३।२०क)

बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर॥
देहिं परम गति सो जियँ जानी।

(रा०च०मा० ६।४५।४-५)

राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं॥

(रा०च०मा० २।१९४।५)

स्वपच सबर खस जमन जड़ पावँर कोल किरात।
रामु कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात॥

(रा०च०मा० २।१९४)

अर्थात् श्रीराम-नामको भावपूर्वक श्रद्धा-विश्वाससे सादर जपनेवाले साधकगण अणिमादिक सिद्धि प्राप्त करके सिद्ध हो जाते हैं और अन्तमें अत्यन्त दुर्गम भवसागरको गायके खुरद्वारा बने गड्ढेकी भाँति आसानीसे पार कर जाते हैं। कुभावसे यानी कि बिना श्रद्धा-विश्वासके और किसी विवशतासे जपनेवाले अजामिल, गज तथा गणिकादि-जैसे अधमजन मुक्ति पा जाते हैं। मरते समय भी यदि किसीके मुखसे परम पावन श्रीराम-नामका उच्चारण हो जाता है तो कितना भी अधम क्यों न हो, वह भी मुक्त हो जाता है। अनख यानी कि क्रोधपूर्वक अथवा शत्रुभावसे जपनेवाले राक्षस आदि भी परम गतिको प्राप्त हो जाते हैं, इस सन्दर्भमें श्रीभगवान्‌का परम कृपापूर्ण कथन है कि वैरभावसे मेरा स्मरण करनेवाले निशाचर भी मुक्तिके अधिकारी हैं तथा आलसहूँ अर्थात् आलस्यमें जम्हाई लेते समय भी श्रीराम-नाम जपनेवाले जन पापमुक्त रहते हैं। इतना ही नहीं; श्वपच, शबर, खस, यवन, कोल और किरात भी रामनाम कहते ही परम पवित्र हो जाते हैं। साररूपमें भाव, कुभाव, अनख अथवा आलस्य जैसे-कैसे भी श्रीरामनामका स्मरण किया जाय तो यह सर्वदा एवं सर्वथा दसों दिशाओंमें मंगल ही करता है। [क्रमशः]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधन-सूत्र

[संसारमें कैसे रहें ?]

(आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)

भगवान्ने अपनी योग-शक्तिसे नाना प्रकारके जीवोंकी और इस जगत्की रचना की है। जैसे-जैसे हमारा ज्ञान विकसित होता है, हमें यह विचार आता है कि हम इस जगत्में क्यों आये हैं? अन्य जीवोंका हमारे साथ क्या सम्बन्ध है? प्रकृतिका हमारे साथ क्या सम्बन्ध है? कैसे हमें इन सबके साथ रहना है? जितना हम इस विद्याको ठीकसे जान पायेंगे, उतना ही इस संसारके साथ हमारा सम्बन्ध मधुर होगा तथा हमारा जीवन भी सुखद बनेगा। भगवान्की बनायी हुई सृष्टिमें कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो हमारे लिये उपयोगी न हो, पर हमें उसका उपयोग कैसे करना चाहिये—यह जानना आवश्यक है। जैसे अग्निसे हम रोटी भी बना सकते हैं तथा वही अग्नि हमारे नाशका कारण भी हो सकती है। जिन व्यक्तियोंका हमारे जीवनमें संयोग हुआ है, उनसे हमारा जीवन सुखी भी बन सकता है तथा अपने व्यवहारद्वारा हमारा जीवन दुःखमय भी हो सकता है। सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण—इन तीन प्रकारके भावोंसे युक्त यह सारा संसार भगवान्की मायाकी सृष्टि है तथा मनुष्य इन भावोंसे भावित होकर कर्तव्य-अकर्तव्यका विचार करते हुए इसका भोग करता है, तभी वह कर्मोंमें कुशलताको प्राप्त कर सकता है।

गीताके आरम्भमें ही भगवान्ने अर्जुनसे स्पष्ट कह दिया है—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

(२।४८)

अर्थात् हे धनंजय! तू आसक्तिको त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धिवाला होकर योगमें स्थित हुआ कर्तव्य-कर्मोंको कर, समत्व ही योग कहलाता है। मोह, आसक्ति या लोभके अधीन होकर किये जानेवाले सकाम कर्मोंवाले कर्मोंको भगवान्ने निम्न श्रेणीका बताया है तथा फलकी चिन्ता न करते हुए निष्काम भावसे दूसरोंके हितके लिये किये जानेवाले कर्मोंको श्रेष्ठ बताया है। विश्वके सभी धर्मोंमें सिर्फ अपने स्वार्थ एवं भोगोंमें रत व्यक्तियोंकी निन्दा की गयी है, उन्हें पशुवत् एवं पापोंका आचरण करनेवाला कहा गया है, जबकि प्राणिमात्रके हितमें लगे व्यक्तियोंको श्रेष्ठ बतलाते हुए उनको परमात्माका प्रिय पात्र बतलाया गया है। इसलिये संसारके भोगोंके बीच रहते हुए भी जो अनासक्त रहकर अपने कर्तव्योंका पालन करते हैं, सबकी सेवाका भाव रखते हैं, वे ही कर्मयोगी कहे गये हैं।

गुरुनानकदेवने कहा है 'जिस प्रकार कमल जलमें उत्पन्न होता है और सदा जलमें रहता हुआ भी उससे अलग रहता है, जैसे मुर्गाबी पक्षी सदा नदी, तालाबके किनारोंपर रहता है और जब वह जलमें गोता लगाकर बाहर आता है तो बिलकुल सूखा रहता है; क्योंकि उसके पंखोंमें कुछ ऐसी चिकनाहट होती है कि जल उनपर असर नहीं करता, उसी प्रकार एकाग्रतासे भगवान्का नाम जपनेवाला भक्त संसारमें रहता हुआ भी उससे अनासक्त रहकर भवसागरसे पार हो जाता है।'

सन्त चरणदास कहते हैं—

जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों जिभ्या मुख माहिं।
घीव घना भच्छन करै, तो भी चिकनी नाहिं॥

अर्थात् 'जगत्में ऐसे रहना चाहिये, जैसे मुखमें जिह्वा रहती है। जिह्वा बहुत घी खाती है तो भी चिकनी नहीं होती है।'

इस सम्बन्धमें श्रेष्ठ उदाहरण राजा जनकका दिया जाता है, जो समस्त भोगोंके बीच रहते हुए भी उनसे अनासक्त रहे तथा उन्होंने मुक्तिपद पा लिया। ब्रह्मनिष्ठ अष्टावक्र-जैसे मुनिको पाकर उन्होंने तत्त्वज्ञानका सहज ही अनुभव कर लिया। इसीलिये शुकदेव महाराज जैसे परम वैरागी सन्तको भी पूर्णज्ञान प्राप्त करनेके लिये उनके पिता महर्षि व्यासदेवने राजा जनकके पास भेजा।

एक महात्माने संसारमें अनासक्त भावसे रहनेके लिये परमार्थके मार्गपर चलनेवाले साधकको चार बातोंपर ध्यान देनेकी प्रेरणा दी है—

१-सदैव परमात्माका स्मरण रहे—साधकको संसारमें अपने कार्योंको करते हुए सदैव परमात्माका स्मरण करते रहना चाहिये। कबीर साहबने कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुमिरन की सुधि यों करौ, ज्यों गागर पनिहार।
हालै डोलै सुरति में, कहै कबीर विचार॥

जैसे पनिहारिन एक घड़ा पानीको सिरपर उठाकर और दूसरा बगलमें लिये हुए घरकी तरफ चली आ रही है। उसकी दृष्टि रास्तेपर टिकी हुई है, कान सहेलीकी बातें सुननेमें लगे हुए हैं, जिह्वासे सहेलीके साथ बात कर रही है और पाँव चल रहे हैं, सारा शरीर हिलता-डुलता हुआ आ रहा है, परंतु सिरपर रखा घड़ा स्थिर है, वह हिचकौला नहीं खाता है, ऐसे ही व्यक्ति संसारके बीच अपने व्यवहारको निभाते हुए हुए भी ध्यान अपने लक्ष्यपर रखे।

२-अपने कदमोंपर निगरानी रखे—साधकको सदैव सावधान रहकर कार्य करना चाहिये। उसे ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिये, जो उसे अपने अनासक्त भावसे विचलित करे तथा संसारके भोगोंमें आसक्त करे। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या, मान-सम्मान, बड़ाई, आलस्य आदि ऐसे प्रबल शत्रु हैं, जो साधकको परमार्थ-मार्गसे च्युत कर देते हैं।

३-बाहरी तथा भीतरी शक्तिका अभ्यास करता रहे—राजा गोपीचन्द जब राजपाट त्यागकर वनको प्रस्थान कर रहे थे तो उनकी माताने उन्हें सीख दी थी कि 'बेटा! किलेके अन्दर रहना।' अर्थात् बाहरी शत्रुओं (दुर्गुण, विकार, दोष)-से अपनी रक्षा करते रहना तथा अपनी आन्तरिक शक्ति (सत्संग, जप, तप, सद्गुरु-शरण)-को मजबूत करते रहना। साधकको संसारके आक्रमणसे भी बचना है तथा अपनी साधनाको भी सबल बनाते हुए प्रगति करते रहना है।

४-संसारमें रहते हुए भी एकान्तका भाव रखे—साधकको संसारके आकर्षणोंको क्षणिक एवं नश्वर समझते हुए उनमें लिप्त नहीं होना चाहिये तथा किसीसे भी अपेक्षा न रखते हुए आत्मकल्याण करते हुए प्राणिमात्रके हितका विचार करते रहना चाहिये।

स्थिर बुद्धिवाले साधकके लक्षण बतलाते हुए भगवान् गीतामें कहते हैं—

सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये जो रात्रिके समान है, उस नित्य ज्ञानस्वरूप परमानन्दकी प्राप्तिमें स्थितप्रज्ञ योगी जागता है और जिस नाशवान् सांसारिक सुखकी प्राप्तिमें सब प्राणी जागते हैं, परमात्माके तत्त्वको जाननेवाले मुनिके लिये वह रात्रिके समान है। (२।६९)

यह संसारमें रहनेकी विद्या है,जिसे जानकर व्यक्ति अपनी जीवन-यात्राको सुगम, सुखमय एवं सर्वोपयोगी बना सकता है।

लम्बी उम्रतक कैसे जियें ?

(श्रीबरजोरजी सिंह)

'पहला सुख निरोगी काया' को सभ्यताके आरम्भसे ही प्रमुख स्थान दिया जाता रहा है। हमारे पूर्वज पूर्ण स्वस्थ रहना मनुष्यका अनिवार्य धर्म मानते थे। भारतीय जीवन-विज्ञान आयुर्वेदका तो उद्देश्य ही प्राथमिक रूपसे स्वास्थ्यकी रक्षा करना और रोगीकी व्याधिको दूर करना रहा है। भारतीय संस्कृतिमें मनुष्य-जीवनका सर्वोपरि उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति है। अस्वस्थ मनुष्य न तो धर्मका पालन कर सकता है, न धन कमा सकता है, न आनन्द भोग सकता है और न ही मोक्षको प्राप्त कर सकता है। कहा गया है कि तंदुरुस्ती एक तरफ और संसारके हजारों सुख एक तरफ।

आयुर्वेदमें कहा गया है कि **'जीवेम शरदः शतम्।'** इस मन्त्रमें यह कामना की गयी है कि हम कम-से-कम १०० वर्ष तो जियें ही। जो लोग अधिक उम्रतक जीनेकी कला नहीं जानते या जीवनमें अपनी बुरी आदतोंके कारण या असंयमी जीवन जीनेके कारण अल्पायुमें ही मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं, वे एक तरहसे स्वयं अपनी जीवनहानिके कारण बनते हैं। प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक बरनार्ड मेक फेडनने अपनी पुस्तकमें लिखा है कि आजकल शत-प्रतिशत मरनेवाले मरते नहीं, आत्महत्या करते हैं; क्योंकि हम अपने ऊपर इतना अत्याचार करते हैं कि जिससे यह शरीर अस्वस्थ हो जाता है। असंयममें रहना रोग बढ़ाना है, यह आत्महनन है, प्राकृतिक मौत नहीं।

उपर्युक्त बातोंपर विचार करनेपर सवाल उठता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि हम कैसे क्या करें कि लम्बी उम्रतक स्वस्थ और तन्दुरुस्त जीवन जी सकें। इसके लिये हमें कुछ नियमोंका पालन करना पड़ेगा, कुछ सावधानियाँ बरतनी पड़ेंगी, जो निम्न हैं—

(१) **आहार**—श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीभगवान्ने आहारके सम्बन्धमें जानकारी देते हुए कहा है कि—**'रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः।'** अर्थात् आहार ही प्राणियोंको नया बल और देह-धारणकी शक्ति देनेवाला है। आहारसे ही आयु, तेज, उत्साह, स्मृति, जीवन-शक्ति तथा शरीर-शक्तिकी वृद्धि होती है। आधुनिक वैज्ञानिकोंने भी सन्तुलित भोजनको सर्वोपरि माना है। हमारे पूर्वजोंने भी षड्रसयुक्त भोजनका वर्णन प्राचीन ग्रन्थोंमें किया है—

षट्त्रिंशतं सहस्राणि रात्रीणां हितभोजनः।
जीवत्यनातुरो जन्तुर्जितात्मा संमतः सताम्॥

(चरकसंहिता, सू०स्था० २७। ३४८)

हितभोजन अर्थात् सन्तुलित भोजन (Balanced diet) ग्रहण करनेवाला संयमी व्यक्ति छत्तीस हजार रात्रि अर्थात् सौ वर्षतक पूर्ण निरोग अवस्थामें जीवित रह सकता है।

कहा भी गया है कि **'जितं सर्वं जिते रसे'** अर्थात् जिसने रसके केन्द्र जिह्वाको जीत लिया, उसने सबको जीत लिया, यहाँतक कि मौतको भी। जिह्वापर नियन्त्रण करनेका दूसरा नाम है आस्वादव्रत, जैसे मिर्च-मसाला, ऊपरी नमक, खटाई, अचार, चीनी, तेल आदिका न खाना आस्वादव्रत है। फल, सब्जियोंमें प्राकृतिक स्वाद होता है, पर जब इन्हें छिलकारहित करके, उबालकर, मिर्च-मसालेसहित खाया जाता है तो वे गरिष्ठ होकर अशुद्ध रक्त पैदा करते हैं और रोगोंको जन्म देते हैं। इसलिये हमें हमेशा थोड़ा भोजन ग्रहण करना है और उसे खूब चबा-चबाकर खाना चाहिये; क्योंकि अन्दर आँतोंको अनावश्यक मेहनत न करनी पड़े। इसके अलावा प्रचुर मात्रामें जल ग्रहण करना चाहिये। मद्य-मांसादि पदार्थ तो शास्त्रद्वारा सर्वथा निषिद्ध ही हैं।

(२) **उपवास**—हमारे ऋषियों-मुनियोंने मानव किस प्रकार स्वस्थ जीवन व्यतीत करे, इसकी खोज करके वैज्ञानिक एवं आयुर्वेदके आधारपर धार्मिक व्रतोंका अनुपालन एवं उपवास करनेका उपाय प्रस्तुत किया। इन व्रतोंके पालनसे अनेक सामान्य रोगोंसे मानव मुक्ति प्राप्त करके स्वस्थ जीवनका अनुभव करके मानसिक तनावसे छुटकारा पाकर भगवत्प्राप्तिका सहज सुलभ साधन भी प्राप्त कर सकता है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे धार्मिक व्रतोंका अपार भण्डार है, पर चातुर्मास्य व्रतोंके पालनका आरोग्यप्राप्तिकी दृष्टिसे अनोखा महत्त्व है। इधर शरद् और वसन्त ऋतु दोनों मानवके स्वास्थ्यपर प्रभाव डालती हैं। अधिकांश व्यक्ति इन ऋतुओंके आगमनपर रोगोंसे पीड़ित होते हैं। इन रोगोंसे बचनेका घरेलू उपाय धार्मिक व्रतोंका पालन है, जिससे मनुष्य शरीरको नीरोग रख सकता है और आध्यात्मिक शान्तिको प्राप्त कर सकता है। एकादशीका व्रत करके या सप्ताहमें एक दिन व्रत रहकर हम लम्बी आयुको प्राप्त कर सकते हैं।

(३) **निद्रा अर्थात् पूर्ण विश्राम**—जब इन्द्रियाँ शान्त हों और 'मन' कार्यरत हो तो उसे स्वप्न कहते हैं, पर जब मन-इन्द्रियाँ दोनों शान्त हों तो उसे निद्रा अर्थात् पूर्ण विश्राम कहते हैं। आहारकी तरह हमें निद्राके उचित तरीके एवं उसकी मात्राके विषयमें जानकारी रखना आवश्यक है। चरकसंहिता (सू०स्था० २१। ३५)-में कहा गया है कि—**'निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिः कार्श्यं बलाबलम्।'** अर्थात् सुख, दुःख, पुष्टि, कृशता, बल और अबल निद्राके अधीन हैं। वर्तमान समयमें इन्द्रिय-तृप्तिकी लालसा बढ़ रही है, इस असन्तोषके कारण अनिद्रा रोग बढ़ रहा है, आजका मानव प्राप्त साधनोंमें सन्तोष नहीं कर पा रहा है। इसी कारण वह अशान्त एवं तनावग्रस्त है। अनिद्रा रोगकी एकमात्र दवा सन्तोष है। एक असंयमी व्यक्तिकी जीवनचर्याका उदाहरण लें तो पाते हैं कि मान लीजिये वह २ बजे राततक जागता और १० बजेतक विस्तरमें लेटा रहता है तो ऐसे व्यक्तिका धीरे-धीरे स्वास्थ्य खराब हो जाता है। उसके जीवनका रस सूख जाता है; क्योंकि वह प्राकृतिक ताजी हवा नहीं पाता, उसे सुबहकी ताजगी (प्रफुल्लता) नहीं मिलती, ऐसे व्यक्तिको पौष्टिक भोजन भी पौष्टिकता प्रदान नहीं कर सकता। समयसे सोने और जागनेसे सुख और शान्तिकी प्राप्ति होती है। नींदसे रोगोंकी शान्ति होती है। नींद आना रोगी व्यक्तिके लिये शुभ चिह्न माना जाता है। यदि आप अपनेको निरोग रखना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहते हैं और लम्बी उम्रतक जीना चाहते हैं तो आप अपने जीवनको सादा रखिये और सदाचारके नियमोंका पालन करिये, जिससे आपको सुखकी निद्रा प्राप्त होगी। सोनेके एक घण्टा पहले भोजन कर लें तथा सोते वक्त भगवान्‌का नाम लेना न भूलें। यदि आपको थोड़ी-बहुत अनिद्राका रोग है तो सोनेके पहले पैर धोकर उन्हें अच्छी तरह पोंछ लें तथा एक चम्मच शुद्ध शहद ले लें तो आपको अच्छी नींद आयेगी।

(४) ब्रह्मचर्य अर्थात् संयम—हमारे पूर्वजोंने हमारे जीवनको चार भागोंमें बाँट दिया है। पहला आश्रम है ब्रह्मचर्य अर्थात् संयम, दूसरा गृहस्थ-आश्रम, तीसरा वानप्रस्थ और चौथा आश्रम है संन्यास-आश्रम। जन्मसे पच्चीस वर्षतकके समयमें पूर्णरूपेण शरीरका विकास होता है। शरीरमें रस-रक्तादि धातुएँ पुष्ट होती हैं, इस विकास-क्रममें यदि शरीरके तत्त्वोंका खर्च होना आरम्भ हो जाय तो विकास-क्रम अवरुद्ध हो जायगा और हमारे शतायु जीवनकी नींव कमजोर हो जायगी तो हम लम्बी उम्रतक कैसे जीवित रह पायेंगे? इसलिये ब्रह्मचर्य-आश्रमकी नींव हर हालतमें मजबूत होनी ही चाहिये और यदि इसी संयमकी नावपर चढ़कर गृहस्थ-आश्रममें उतरेंगे तो कभी बीमार नहीं होंगे और लम्बी उम्रतक निरोगी जीवन जी सकेंगे। संयमी पुरुष ही श्रीभगवान्‌के बताये रास्तेपर चलते हैं।

(५) सदाचारयुक्त जीवन—सदाचारयुक्त जीवनका लम्बी आयुसे गहरा सम्बन्ध है। रुग्ण व्यक्तियोंकी सेवा करने, भूखेको भोजन देने, गायको घास खिलाने, वृद्धोंकी सेवा करने, सत्य बोलने, क्रोध न करने, मद्यपान और विषय-भोगोंसे दूर रहने, प्रिय बोलने, शान्त रहने, पवित्र रहने, हिंसा न करने तथा तपस्वी जीवन व्यतीत करनेसे व्यक्ति दीर्घ आयु प्राप्त करते हैं। दयाभाव रखनेवाले अहंकाररहित व्यक्ति सदैव बुढ़ापेसे दूर रहकर पूर्णायु प्राप्त करते हैं। सदाचारी व्यक्ति अवसाद, कुंठा, निराशा, हताशा, भय, क्रोध, राग-द्वेष, लोभ, मोह एवं अहंकारसे सदैव दूर रहता है। श्रीभगवान्‌ने गीतामें भी कहा है कि कल्याणकारी मार्गपर चलनेवाले मेरे भक्तका कभी विनाश नहीं होता, वह तो सदा सुखी जीवन जीता है और जो सदाचारी जीवन नहीं जीते, उनको अनेक प्रकारकी शारीरिक एवं भयानक बीमारियाँ घेर लेती हैं और वे अल्पायुमें ही मृत्युके मुँहमें समा जाते हैं।

(६) मांस-मदिरा तथा नशीली वस्तुओंका त्याग—देखा जाता है कि मांस-मदिरा तथा नशीली वस्तुओंका सेवन करनेवाले जल्दी ही बीमारियोंकी चपेटमें आ जाते हैं और कम उम्रमें ही अपना जीवन समाप्त कर लेते हैं लाखों-करोड़ों लोग तम्बाकू खाकर तथा धूम्रपानसे दिल, शुगर, कैंसरके मरीज बन रहे हैं। लाखों लोग गाँजा, भाँग और नशेकी गोलियाँ खाकर मानसिक रोग (पागलपन)-के शिकार हो रहे हैं तथा अपना जीवन समाप्त कर रहे हैं। यदि निरोगी रहकर लम्बी उम्रतक जीना है तो हमें मांस-मदिरा-नशामुक्त जीवन जीना ही पड़ेगा, वरना हम भी शीघ्र ही कालके गालमें अल्पायुमें ही समा जायँगे।

(७) प्रातः-भ्रमण, आसन और प्राणायाम—लम्बी उम्र जीनेके लिये आसन, प्राणायाम तथा सुबह टहलना अत्यन्त आवश्यक है। सुबह एक घण्टेका समय हमें देना पड़ेगा, यदि न देंगे तो डॉक्टरोंके यहाँ आये दिन लाइनमें लगना पड़ेगा और बीमारी भी ठीक न होगी। प्रातः-भ्रमणसे रक्त शुद्ध होता है, शरीरकी नाड़ियाँ सक्रिय एवं सुव्यवस्थित रहती हैं तथा शरीर निरोगी रहता है।

(८) प्रसन्नता—प्रसन्नतासे सकारात्मक ऊर्जाकी प्राप्ति होती है। अप्रसन्नता और निराशासे हमारी शक्ति क्षीण होती है और उम्र कम हो जाती है तथा हम बीमारियोंके शिकार होते चले जाते हैं। इसलिये हमें हर हालमें भगवान्‌की कृपा मानकर प्रसन्न रहना सीखना चाहिये, प्रसन्नतासे ही हम क्रोध, घृणा, राग, द्वेष, भय, लोभ, मोह-जैसे भयंकर शत्रुओंसे लड़कर विजयी हो सकते हैं और लम्बी उम्रतक निरोगी जीवन जीनेका लाभ ले सकते हैं।

(९) भगवन्नामका जप—भगवान्‌के मंगलमय पवित्र नामके जपसे मनुष्य दीर्घ आयु प्राप्त करता है। ईश्वरका भजन करनेवालेके जीवनमें प्रारब्धानुसार बाधाएँ आती भी हैं तो बहुत जल्दी कष्टोंका निवारण भी हो जाता है। रोगोंसे छुटकारा पानेमें दवा और ईश्वर-आराधना—दो ही उपाय बताये गये हैं। हमारे पूर्वजोंने बताया है कि जहाँ दवा नहीं काम करती, वहाँ ईश्वरका भजन काम करते देखा गया है। इसलिये भगवन्नामका जप करते रहना चाहिये। आरोग्यका मूलमन्त्र है प्राप्त परिस्थितिमें प्रसन्न रहना और निरन्तर भगवान्‌के नामका स्मरण करते रहना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु'

(पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र)

यह शुक्लयजुर्वेदके मन्त्रका एक भाग है। इसमें प्रार्थना की गयी है कि मेरा मन कल्याणमय संकल्पात्मक हो। मनका स्वरूप कपिलमुनिने सांख्यशास्त्रमें संकल्पात्मक बताया है। मन पहले संकल्प करता है, पश्चात् बुद्धि उसका निश्चय करती है।

मन अत्यन्त चंचल है। अतः यह बराबर नयी वस्तुओंको सोचा करता है। गीतामें भी अर्जुनने भगवान्से कहा है—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

अर्थात् यह मन अत्यन्त चंचल है। साथ-ही-साथ प्रमाथी और बलवान् भी है। अतः इसको वशमें करना वायुको वशमें करनेके समान अत्यन्त कठिन है। अतः समत्वयोगका साधन कैसे हो सकता है? मन जबतक किसी वस्तुपर स्थिर नहीं होता, तबतक इसकी चंचलता दूर नहीं होती। अतः मन समतापर स्थिर नहीं रहता। इसको स्थिर होनेका कोई उपाय हो तो समत्वयोगका साधन हो सकता है।

भगवान्ने मनको स्थिर करनेके लिये उपाय बतलाते हुए कहा—

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

किसी एक वस्तुमें मनको स्थिर करनेका अभ्यास करनेपर सांसारिक विषयोंमें वैराग्य होनेसे मन स्थिर होता है। इसी बातको महर्षि पतंजलिने भी अपने योगसूत्रमें लिखा है—

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।

अभ्यास और वैराग्यके कारण जब मन सांसारिक विषय-सुखसे वितृष्ण हो जाता है, तब स्वयं वशमें हो जाता है, इसलिये इसका नाम वशीकारसंज्ञक वैराग्य होता है। पतंजलिने लिखा भी है—

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्।

दृष्ट अर्थात् दृश्यमान स्त्री-पुत्र-धन आदिमें जो सुख-प्रतीति होती है और आनुश्रविक वेदोक्त स्वर्गादिमें सुख-प्राप्तिका प्रलोभन होता है—इन दोनों तरहके विषय-सुखसे वैराग्य होनेपर मन वशमें होता है। अतः इसको वशीकारसंज्ञक वैराग्य कहते हैं। मनके संकल्पसे उत्पन्न होनेवाले जो कामादि विक्षेप होते हैं, उनको जीतनेके लिये श्रीमद्भागवतके सप्तम स्कन्धके १५वें अध्यायमें व्यासजीने कहा है—

असङ्कल्पाज्जयेत् कामं क्रोधं कामविवर्जनात्।
अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात्॥
आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भं महदुपासया।
योगान्तरायान् मौनेन हिंसां कायाद्यनीहया॥
कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात् समाधिना।
आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्वनिषेवया॥
रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्वं चोपशमेन च।
एतत् सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत्॥

तत्पर्य यह है कि कामनाओंका अन्त नहीं है, अतः मन यदि कामना करना छोड़ दे तो कामपर अनायास विजय प्राप्त हो जाती है। कामना न होनेसे क्रोधका कारण ही मिट जाता है, अतः क्रोध स्वयं पराजित हो जाता है।

धनमें अनर्थका वास रहता है, इससे प्रायः अधर्म ही होता है, इसलिये धनकी चाहसे जान-बूझकर आगमें कूदना है। इस तरहकी भावना करनेसे धनसे वैराग्य हो जाता है और लोभकी स्थिति नष्ट हो जाती है। सात्त्विक विचारसे भय दूर हो जाता है। तत्त्वावमर्शनका अर्थ है कि यह शरीर पांचभौतिक है, यह नश्वर है, इसका विनाश किसी दिन अवश्य होगा; आत्मा अजेय, अच्छेद्य, अदाह्य और अक्लेद्य है। इसका विनाश कोई कर नहीं सकता। अतः मृत्यु ही एकमात्र भयका कारण है, उसका डर हट जाता है कि मैं मरूँगा। दर्शनशास्त्रोंके अध्ययनसे शोक और मोह दूर हो जाते हैं। दम्भ दूसरेको धोखा देता है, उसकी निवृत्ति महात्माओंकी उपासनासे होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है; क्योंकि महात्माओंके सरल स्वभावसे हमलोग भी दम्भ छोड़ देते हैं।

समाधिका एक विघ्न है—दूसरेसे बातचीत करना। यदि मौनव्रतका पालन किया जाय तो योगसाधनामें जितने विघ्न आते हैं, वे हट जाते हैं।

अपने शरीरकी ममता छोड़ देनेसे अहिंसाका पालन होता है; क्योंकि अपने शरीरकी दुर्बलताको मिटानेके लिये तथा इसको सुख पहुँचानेके लिये ही हम दूसरेको कष्ट देते हैं और उसको प्राणवियुक्त कर देते हैं।

भौतिक दुःखकी निवृत्ति कृपा करनेसे होती है, योगसूत्रमें भी लिखा है, '**अहिंसाप्रतिष्ठायां सर्ववैरत्यागः**' सब जीवोंपर जब स्वयं दयाका व्यवहार करें तो दूसरे जीव भी हमारे साथ दयाका व्यवहार करने लगेंगे। भाग्यका दुःख समाधिसे दूर किया जाता है। सत्त्वगुणसे रजोगुण तथा तमोगुण नाश होता है; क्योंकि सत्त्वगुण प्रकाशमय है, रजोगुणका स्वरूप रागमय है एवं तमोगुणका स्वरूप अन्धकारमय है। प्रकाशसे अन्धकारका नाश होता ही है। अतः सत्त्वगुणसे रजोगुण और तमोगुणको जीतनेके लिये कहा गया है।

सत्त्वगुणको उपशमसे अर्थात् निवृत्तिसे पराजित किया जाता है। इन सबोंको मनुष्य तबतक नहीं जीत सकता, जबतक गुरुमें भक्ति न हो; क्योंकि गुरुभक्तिके बिना योगसिद्धि नहीं होती और आत्मज अर्थात् अपनेमें स्वयं उत्पन्न होनेवाले कामपर विजय योगशक्तिसे प्राप्त होती है। इसी तरह तमोगुणकी वृत्ति निद्रा है, उसपर विजय सत्त्वगुणके उद्रेकसे होती है।

पातंजलयोगसूत्रमें मनको स्थिर करनेके उपायोंमें '**ईश्वरप्रणिधानाद्वा**' इस सूत्रसे ईश्वरका ध्यान और उनके नामका जप भी बतलाया है। जपकी विधि बतलाते हुए उन्होंने कहा है—

'**तज्जपस्तदर्थभावनम्**' प्रणव अर्थात् ओम् ईश्वरका नाम है, इसको जपना और इसके अर्थका चिन्तन करना।

अष्टांगयोगका निर्माण भी इसी मनको स्थिर करनेके लिये है; क्योंकि—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

—ऐसा शास्त्रोंमें लिखा हुआ है कि मन जिन-जिन विषयोंको सोचता रहता है, उसी-उसी योनिमें आत्माको शरीर धारण करना पड़ता है। गीताके आठवें अध्यायमें लिखा भी है—

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

(८।६)

अतः पतंजलि ऋषिने—'**यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।**' कहकर अष्टांगयोगका उपदेश दिया है।

मनका शिवसंकल्प यही है। जब मन ईश्वरके ध्यानमें लीन हो जाता है, तब वह स्थिर हो जाता है; क्योंकि मनको उससे अधिक सुखका अनुमान नहीं होता। इसी बातको गीतामें भगवान्ने कहा है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(६।२२)

मन उस वस्तुको प्राप्त कर लेता है, जिसकी खोजमें वह करोड़ों जन्मोंसे संसारमें भ्रमण कर रहा था। वह संसारके विषयोंमें सुखप्राप्तिकी आशासे विषयोंको पकड़ता था; परंतु उसको वह आत्यन्तिक सुख अबतक नहीं मिला था। इसलिये वह जब ब्रह्मसाक्षात्‌के आनन्दको प्राप्त कर लेता है, तब उसको उससे बढ़कर कोई आनन्द मालूम नहीं पड़ता। हमलोग जिसको बहुत बड़ा दुःख समझते हैं, जैसे पुत्र-मरण आदि; ऐसे दुःख भी उसको उस स्थानसे विचलित नहीं कर सकते; क्योंकि उसकी दृष्टिमें सांसारिक सम्बन्धका अस्तित्व ही रह नहीं जाता। इसलिये वह विचलित नहीं होता।

श्रुति भी कहती है '**न स पुनरावर्तते**' फिर उसका इस दुःखालय और विनाशी संसारमें आगमन नहीं होता।

अतः हम अपने इष्टदेवसे '**तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु**' की प्रार्थना करते हैं और सभीको ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् भी भूखे हैं

(श्रीज्ञानचन्दजी आर्य 'गोयल')

'भगवान् भी भूखे हैं'—यह शीर्षक पढ़ने-सुननेमें अटपटा-सा लगता जरूर है कि जो भगवान् आप्तकाम, पूर्णकाम, सर्वसमर्थ, सर्वसम्पन्न हैं, वे भूखे क्यों ? और कैसे ?

किंतु यदि हम अपनी भावनायुक्त सोचको गहराईमें ले जायेंगे, तो पायेंगे कि वास्तवमें भगवान् भी भूखे हैं, भगवान् भक्तके प्रेमके भूखे हैं, उसकी श्रद्धा पाकर वे पृथ्वीके किसी भी छोरमें, एक क्षणका भी विलम्ब किये बिना उसकी सहायतार्थ पहुँचकर निदान करनेके लिये तत्परतासे तैयार रहते हैं। वे सर्वशक्तिमान् हैं, कृपानिधान हैं, दयालु हैं तथा हमारे प्रेमके भूखे हैं। गीतामें कहा गया है कि **'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'** (गीता ४।११) जो जिस रूपमें जिस भावसे मेरा स्मरण करता है, मैं भी उसी रूपमें उसका स्मरण करता हूँ। यदि सच्चे हृदयसे हम उनका स्मरण करते हैं, तो वे प्रकट होनेके लिये तैयार रहते हैं।

माता सीताका जैसा उत्कट प्रेम भगवान् श्रीरामचन्द्रमें था, वैसा ही प्रेम यदि हम सबका अपने प्रभुके प्रति हो जाय, तो वे प्रेम-बन्धनमें बँधनेके लिये सदैव उपस्थित हैं। हमारा उनके प्रति श्रद्धा-प्रेम बढ़ता रहे, चिन्तन बना रहे, एक क्षणके लिये भी उनका विस्मरण न हो, तो हमारे उदार प्रभु हमारे लिये लालायित रहते हैं कि वे हमारे हितार्थ सदैव उपस्थित होकर अपने कौशलको, कृपामयी कृपाको प्रदर्शित कर सकें।

भगवान्‌की दयालुता तो इतनी है कि यदि कोई दुराचारी अपने आचरणमें किसी प्रकार च्युत हो जाता है, उसका ज्ञान भी अधूरा है तो भी भगवान् उसके आचरण या अज्ञानकी ओर न देखकर केवल उसका श्रद्धापूर्ण भक्तिमय प्रेम देखते हैं, उसकी अन्य त्रुटियोंको नहीं देखते। भक्तने यदि अपने इष्टदेवके सामने प्रतिज्ञा कर ली, कि मैं आपके प्रेममें अपने पूर्व आचरणोंको त्यागकर आपकी सेवा करूँगा, तो कृपालु भगवान् उसे अपनी शरण प्रदान करते हैं। वे उसे कदापि निराश अथवा हतोत्साहित नहीं होने देते; क्योंकि वे प्रेमके भूखे हैं।

अपने लीला-प्रदर्शनके समय गोपियोंके समक्ष जब भगवान् सहसा अन्तर्धान हो गये, तो गोपियाँ विरहकी अग्निमें जलकर व्याकुल हो कान्हा-कान्हा रटने लगीं, तब वे दयाके सागर उनका असहनीय विरह पाकर तत्काल प्रकट हो गये।

जब ऋषि दुर्वासा असमयमें अपने दस हजार शिष्योंके साथ भोजनके लिये आ धमकते हैं, तो असहाय द्रौपदी व्याकुल हो कृष्णको पुकारती है। उसके पीड़ा-युक्त स्मरणको पाकर कृष्ण तत्काल भोजनकी सब व्यवस्था कर देते हैं। कितना सचेत रहते हैं, वे अपने प्रियके कष्ट-निवारणके लिये।

इसी प्रकार चीर-हरणके समय भी भगवान्‌ने नंगे पाँव दौड़कर द्रौपदीकी लाज बचायी थी। नरसीका भात भरना, अपने परम भक्त बालक प्रह्लादकी पुकारपर उसके पिता हिरण्यकशिपुका वध करना, गजकी प्रेमभरी गुहारको सुनकर उसकी जीवन-रक्षा करना आदि अनेक ऐसी घटनाएँ हैं, जो सिद्ध करती हैं कि भगवान् प्रेम और श्रद्धाके भूखे हैं। वे प्रेमके वशीभूत होकर अपने श्रद्धालुके लिये हर पल सब कुछ करनेको उद्यत रहते हैं। उन्हें केवल हमारा प्रेम चाहिये, वे उसीके भूखे हैं। कदाचित् हम उन्हें अपने प्रेम-बन्धनमें बाँधकर अपने हृदयमें बसा सकें तो जीवनमें कल्याण और आनन्दकी गंगा बहती दिखायी देगी। भगवान् हमारे हैं और हम भगवान्‌के हैं—इस प्रेमबन्धनको हमें बड़ी दृढ़ताके साथ सँजोये रखना होगा। गीतामें कृष्णने स्वयं कहा है—

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(गीता १५।१९)

अर्थात् जो कोई भी मुझे संशयरहित होकर पुरुषोत्तम भगवान्‌के रूपमें जानता है, वह सब कुछ जाननेवाला है। अतएव हे भरतपुत्र! वह व्यक्ति मेरी भक्तिमें रत रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने कल्याणका उपाय

(श्रीघनश्यामदासजी मोदानी, बी०ए०, एल-एल०बी०)

मानवशरीर परमात्माकी सर्वोत्तम अनुपम कृति है और यह जीवको बड़े भाग्यसे परमात्माकी अहैतुकी कृपाके परिणामस्वरूप प्राप्त हुआ है। श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामीजी कहते हैं—

कबहुँक करि करुना नर देही । देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

मानवशरीरकी यह जो महिमा ग्रन्थोंमें गायी गयी है, इसका तात्पर्य इस पंचतत्त्वद्वारा निर्मित शरीरसे नहीं है; क्योंकि यह तो जड़ और नश्वर है, बल्कि इसमें व्याप्त विवेकसे है। इस विवेकका सदुपयोग करके मानव अपने जीवनप्राप्तिके उद्देश्यकी प्राप्ति अर्थात् भगवत्प्राप्तिकर अपना कल्याण कर सकता है।

परमात्मा, जीव और माया—ये तीनों ही अनादि और सनातनतत्त्व हैं। माया जड़ है, अतः इसके संयोगसे निर्मित सभी पदार्थ जड़ और नश्वर होते हैं। माया स्वयं स्वतन्त्ररूपसे कुछ भी करनेमें असमर्थ है। किसी वस्तु या पदार्थका अन्ततोगत्वा निर्माता भगवत्कृपासे चेतनतत्त्व ही हो सकता है।

जीव भगवान्का अंश है और चेतन है। मानवशरीरमें व्याप्त चेतनतत्त्व शरीरको चेतनता तो प्रदान करता ही है, साथ-ही-साथ स्वतः शरीरकी सारी क्रियाओंका संचालन भी करता है। जीव अणुचित् हैं, इसीलिये अल्प शक्तिमान् हैं। चाहे जीवका चींटी-जैसा सूक्ष्म शरीर हो या हाथी-जैसा बड़ा शरीर हो। वह चेतनतत्त्व उसमें उसी रूपमें व्याप्त रहता है। भगवान् विभुचित् हैं, इसलिये सर्वशक्तिमान् हैं और सारी सृष्टिके जड़, चेतन और कण-कणमें पूर्ण रूपसे व्याप्त हैं। भगवान् जीवशक्ति और मायाशक्तिके नियन्ता और शासक हैं। जीव अल्पशक्तिमान् होनेके कारण उसकी कार्य करनेकी सामर्थ्य सीमित है और किसी विधानके अनुसार संचालित होती है। जीव अनादिकालसे मायाबद्ध है, किंतु अगर जीव अपनी इस करनेकी शक्तिको भगवान्को समर्पण करके अर्थात् फलेच्छाका त्याग करके कार्य करनेका प्रयत्न करे तो भगवत्कृपासे कठिन-से-कठिन या बड़ा-से-बड़ा कार्य करनेकी वह क्षमता रखता है। फिर भगवत्प्राप्ति तो प्राप्तकी प्राप्ति है। केवल हमारे अप्राप्तिके अज्ञानको मिटानामात्र है। यह वहम मिटना इतना आसान कार्य और केवल हमारे प्रयत्नका परिणाम नहीं हो सकता; क्योंकि यह जन्म-जन्मान्तरसे चला आ रहा है तथा दृढ़तासे हमारी मान्यतामें आ गया है। मान्यतासे हटानेका प्रयत्न करनेपर हमारा अहम पुष्ट होता है, जो हमारे पतनका कारण हो सकता है, इसलिये भगवान् ही इससे छुटकारा दिला सकते हैं। भगवान् अकारणकरुण हैं, इसलिये हमारा कार्य भगवच्छरणागतिकी दृढ़ स्वीकृति करना है। शरणागतिकी स्वीकृति मनमें वैराग्य और मनसे पुरुषार्थ करनेसे होगी। वैराग्यका तात्पर्य है जिन-जिनको मायाबद्ध होनेके कारण अज्ञानवश हमने अपना मान रखा है, उन सभीको यह जानकर कि कोई किसीका नहीं है केवल भगवान् ही मेरे अपने हैं, बाकी सभी जिसका जितना स्वार्थ मेरेसे सिद्ध होता है, उतना ही वह मुझे अपना मानता है—ऐसा समझकर उनसे जो अपनापन जोड़ रखा है, उसका त्याग करना होगा। पुरुषार्थका तात्पर्य है मनको बार-बार संसारमें जानेसे रोककर भगवान्को ही केवल अपना हितैषी मानकर उन्हींमें लगाना है। बार-बार ऐसा करनेसे भगवान् विशेष कृपा करके मानवजीवनका कल्याण इसी जन्ममें करनेकी कृपा अवश्य करेंगे।

भगवान् जीवके माता तथा पिता हैं, सहृदय और कृपालु हैं। अपनी अहैतुकी कृपाको साकार करने और अपने भक्तोंकी वाणीको सत्य सिद्ध करनेके लिये भगवान् जीवका कल्याण करना चाहते हैं, किंतु उसके लिये स्वयं उस जीवको अपने कल्याणकी इच्छाका या प्यासका होना आवश्यक है और उस प्यासको शान्त करनेके लिये सन्तोंद्वारा बताये उचित मार्गपर चलनेकी दृढ़ इच्छाशक्ति और मनसे उसपर चलनेका प्रयत्न करनेसे भगवान् कृपाकर उस जीवका कल्याण कर देंगे; क्योंकि जीवको मानवशरीर इसी उद्देश्यकी प्राप्तिके लिये भगवान्ने कृपा करके दिया है। कल्याण भगवत्कृपासे होगा। फिर भगवान् अकारणकरुण हैं जैसा हमारे हितमें उचित होगा, वैसा ही निर्णय लेंगे। हमारे अज्ञानके कारण कल्याणमें जो हमें देरी दिख रही है, यह सत्य नहीं है, इसलिये उसपर विचार करके निराश नहीं होना है, अपितु सच्चे सुहृद् भगवान्पर दृढ़ विश्वास रखकर प्रयत्न करते रहना है। यह विश्वास ही हमारा कल्याण करनेमें सहायक सिद्ध होगा। भगवान् करुणानिधान हैं, इसलिये कृपा करके इसी जन्ममें हमारा कल्याण कर देंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सादगी एवं सदाचार

(श्रीरामचाकरजी)

'सादा जीवन उच्च विचार'—यह कहावत हमें एक आदर्श जीवन जीनेकी प्रेरणा देती है। इसके बावजूद भी हम एक निम्न स्तरका जीवन जीनेको क्यों बाध्य हैं? यह बात विशेषरूपसे विचारणीय है। वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें उक्त कहावतको सादगी एवं सदाचारके रूपमें देखा जाना उचित होगा, तभी वह बेहतर एवं प्रभावी सिद्ध हो सकेगी; क्योंकि आज देखनेमें आता है कि मूल कहावतके अनुसार कुछ लोगोंद्वारा ऊपरी एवं बाहरी तौरपर तो सादा जीवन अपनाया जाता है, परंतु वास्तविक आन्तरिक सादगी दूर-दूरतक परिलक्षित नहीं होती। सादा जीवन कभी-कभी मजबूरीमें या अन्यथा भी हो सकता है, जिसे सादगीका पर्याय नहीं कहा जा सकता। वैभवमें रहते हुए भी स्वैच्छिक तथा स्वाभाविक सादगी अपनाना ही 'सादा जीवन'के सिद्धान्तका सच्चा प्रेरक स्वरूप हो सकता है।

इसी प्रकार सद्विचारोंका अपने दैनिक जीवनमें दर्शन ही जीवन्त सन्देश बन सकता है, अन्यथा आज पर उपदेशमें तो सब कुशल हैं तथा सब दूसरोंको ही सुधरा देखना चाहते हैं, किंतु जब स्वयंकी बारी आती है तो शून्य ही साबित होते हैं। इस प्रकार मात्र उच्च विचार रखनेसे भी बात बननेकी नहीं, इसीलिये कहा गया है—ढाई मन ज्ञानके बजाय ढाई तोला आचरण श्रेष्ठ होता है। देशमें आज ज्ञानियों और बुद्धिजीवियोंकी कोई कमी नहीं है। कण्ठतक तो अधिकांश लोग उच्च विचारोंके धनी हैं, किंतु आचरणमें बहुसंख्य निर्धन ही सिद्ध हो रहे हैं। वैसे सदाचार तो हर हालमें प्रशंसनीय होता है, चाहे वह किसीके द्वारा भी हो या परिस्थितिवश हो, किंतु उसे जीवनका अभिन्न अंग बना लेनेपर तो वह व्यक्ति पूजनीय तथा वन्दनीय बन जाता है। ऐसी अवस्थामें उच्च विचारोंकी अपेक्षा सदाचार ही अधिक मूल्यवान् प्रतीत होता है; क्योंकि उसके अभावमें सब बेकार है। शास्त्र भी कहते हैं—**'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः'** अर्थात् आचारसे हीन व्यक्तिको वेद भी पवित्र नहीं करते तथा **'आचारः परमो धर्मः।'** उपनिषद्के ऋषि भी—**'सत्यं वद धर्मं चर'** कहकर हमें सत्यवादी एवं धर्माचारी बननेका उपदेश करते हैं। आज लोग बातें तो बड़ी-बड़ी करते हैं, किंतु तुच्छ लोभ या स्वार्थवश बड़े-से-बड़ा पाप या अपराध करनेमें नहीं हिचकिचाते। आज समस्त मर्यादाएँ तथा नैतिकताएँ भंग हो रही हैं। पहले तो युद्ध भी धर्मानुसार लड़े जाते थे, जबकि आज धर्मके नामपर ही संग्राम एवं अधर्म हो रहा है। हम कहाँ जा रहे हैं, यह हमें ही सोचना है।

सादगी तथा सदाचारका एक ही पैमाना हो सकता है, वह यह कि अपनी शक्तिके अनुसार जीव एवं जगत्‌की सेवा की जाय। उदरसमाता लेनेवाला ही 'साधु' हो सकता है तथा दो हाथोंसे कमाने एवं हजार हाथोंसे बाँटनेवाला ही 'सच्चा मानव' कहला सकता है। सन्तोषीके लिये इस दुनियामें बहुत कुछ है, जबकि लोभी-लालचीके लिये तो सारी वसुधा एवं उसकी समूची सम्पदातक कम पड़ सकती है। चक्रवर्ती सम्राट् होते हुए भी लोकरंजन एवं लोकसंग्रहहेतु जीनेवाला ही महाराजा या महाजन हो सकता है। इसके विपरीत राजा या शासक होकर भी प्रजाका शोषण एवं हनन करनेवाला अधम होता है। जीवनको साधनेवाला ही सादगीपूर्ण एवं सदाचारी जीवन जी सकता है। आज साधनसम्पन्न होनेके बजाय साधनासम्पन्न होना अत्यन्त आवश्यक है। स्वयं एक उत्कृष्ट जीवन जीते हुए अन्योंको भी इस हेतु प्रेरित करनेवाला ही सच्चा लोकनायक या महात्मा हो सकता है।

हमारा दुर्भाग्य है कि हमने इतने सरल जीवनको व्यर्थके जाल एवं जंजालमें फैलाकर जटिल बना लिया है तथा स्वर्गसे भी सुन्दर इस सृष्टिको अपने कुकर्मोंसे साक्षात् नरकमें परिवर्तित कर लिया है। यदि हम अपने कुविचारों एवं कदाचारोंसे मुक्त नहीं होंगे तो सौभाग्यशाली मानव होते हुए भी दुर्भाग्यशाली सिद्ध होकर जन्म-मरणके फन्देमें ही पड़े रहेंगे। श्रमकी एवं हककी रोटी खाकर ही हम अपनी मुक्तिका मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। हमें विविध भौतिक साधनोंकी पराधीनताको तत्काल तिलांजलि दे देनी होगी। परहितमें निरत रहकर एक पवित्र जीवन जीनेवाला साधक ही सादगी एवं सदाचारका सच्चा प्रतिनिधि हो सकता है। कृपणता एवं कपट-व्यवहार सादगी तथा सदाचारका स्थान नहीं ले सकते। हमारे चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार तथा कथनी, करनी और रहनीमें विरोधाभास न हो और उनमें एकरूपता बनी रहे—ऐसा प्रयास करके ही हम सादगी एवं सदाचारके आश्रयसे सुनहरे कल एवं उज्ज्वल भविष्यकी ओर तथा सत्यधर्मके पथपर अग्रसर हो सकते हैं। इससे हमारा इहलोक तथा परलोक सुधर सकता है एवं हम नरसे नारायणतकको यात्रा पूर्णकर इस अनित्य दुःखालय मृत्युसंसारसागरसे कुशलता एवं सफलतापूर्वक तर सकते हैं।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तगाथा—

श्रीहरिरामदासजी महाराज

सनातन धर्ममें मानवके दु:खकी निवृत्ति तथा परम शान्तिके लिये ऋषियों, मुनियों, सन्तों एवं भक्तोंने अपनी साधनासे अनेक उपाय बताये हैं और यह निश्चित किया है कि सबसे सुगम साधन भगवान्‌की शरणागति है। श्रीतुलसीदासजी महाराजने श्रीरामचरितमानसमें नवधाभक्ति-वर्णनमें कहा है—

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥

भगवान्‌में तथा उनके नाममें दृढ़ विश्वास करके उनका जप करनेसे साधकको परम श्रेयकी प्राप्ति हो जाती है। नाम-जपसे अनेक भक्तोंने भगवान्‌की अनुभूति करके सदाके लिये जन्म-मरणरूप दु:खसे छूटकर आत्यन्तिक शान्ति एवं भक्तितत्त्वको प्राप्त किया है और वे संसारसे ऊपर उठकर सदाके लिये कृतकृत्य हो गये। इसी भक्त-परम्परामें राजस्थान, बीकानेर जिलेके सींथल ग्राममें पूज्य श्रीहरिरामदासजी महाराज एक विलक्षण सन्त हुए हैं।

श्रीहरिरामदासजी महाराजके पिताका नाम श्रीभाग्यचन्दजी एवं माताका नाम रामीदेवी था। आप जातिसे ब्राह्मण थे। आपकी बुद्धि कुशाग्र थी। आप ज्योतिषके भी विद्वान् थे। आपकी भगवान्‌की तरफ लगन बाल्यकालसे ही थी। अत: आप सत्संग एवं नाम-जप शुरूसे ही करते थे। शनै:-शनै: आपकी भगवद्-विषयक लगन बढ़ने लगी।

रामसर गाँवमें आपने एक बार सत्संगमें श्रीउदयरामजीसे एक पद सुना और पदकी गम्भीरतासे आपने यह अनुमान किया कि यह पद निश्चित ही किसी अनुभवी सन्तका है। अत: आपने श्रीउदयरामजीसे पूछा कि यह पद किन सन्तका है। श्रीउदयरामजीने बताया कि यह पद श्रीजैमलदासजी महाराजका है और श्रीजैमलदासजी महाराज दुलचासर ग्राममें विराजते हैं, तब आपने श्रीजैमलदासजी महाराजके दर्शन करनेकी इच्छा प्रकट की। श्रीहरिरामदासजी उदयरामजीके साथ दुलचासर पधारे। श्रीजैमलदासजी महाराज उस समय भक्तोंको सत्संग करवा रहे थे। सत्संगके बाद श्रीजैमलदासजी महाराजको साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके सत्संगकी चर्चा हुई। उससे आप बहुत प्रभावित हुए तथा उनसे दीक्षा देनेकी बहुत प्रार्थना की। आपकी तीव्र जिज्ञासा देखकर विक्रम सम्वत् १७०० तिथि आषाढ़ कृष्ण त्रयोदशीको दीक्षा देकर उन्होंने आपको रामनाम-तारक मन्त्रकी योगसहित जपकी विधि बतलायी—

हरिया संवत सत्रह सो, बरस सई को जान।
तिथि तेरस आसाढ़ बदी, सतगुरु पड़ी पहिचान॥

तभीसे आप सत्संग करने नित्य सींथलसे दुलचासर छ: कोस पैदल रात्रिको पधारते थे। सत्संग करनेके पश्चात् प्रात:काल वापस सींथल आते थे। यह क्रम छ: मासतक चलता रहा। एक बार आँधी एवं वर्षामें भी सत्संग करने आप पधारे। तब गुरुमहाराजने कहा कि सींथलमें ही भजन करो। गुरु महाराजकी आज्ञासे आप सींथलमें ही भजन करने लगे। समय-समयपर सत्संगहेतु दुलचासर पधारते थे। आप तीव्र लगनसे योगसहित नाम-जप करने लगे।

लगनपूर्वक नाम-जप करनेसे आपकी साधनाकी सिद्धि बहुत जल्दी हो गयी। आपने धर्मप्रचारार्थ गुरु महाराजकी आज्ञासे आचार्यपीठकी स्थापना की। आपकी प्रसिद्धि होने लगी। आपके प्रमुख छ: शिष्य हुए। जिनमें प्रथम शिष्य श्रीनारायणदासजी हुए। खेड़ापाके श्रीरामदासजी महाराज बहुत बड़े प्रभावशाली शिष्य हुए। आपने श्रीगुरु महाराजकी आज्ञासे खेड़ापामें आचार्यपीठकी स्थापना की। बीकानेर शहरसे दो वैश्य जिनका नाम नेतराम एवं मुरलीदास था, वे आपके दर्शन करनेहेतु सींथल पधारे। आनेमें ज्यादा विलम्ब होनेसे रात्रि हो गयी। दोनों भक्त दर्शन करने हेतु श्रीहरिरामदासजी महाराजकी कुटियामें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये। उस समय श्रीहरिरामदासजी महाराज ध्यानावस्थामें थे। दोनों भक्तोंको कुटियामें दिव्य प्रकाशके दर्शन हुए। श्रीस्वरूपसिंहजी चारण दैवयोगसे अचानक निर्धन हो गये। इस निर्धनताके कारण वे बहुत दुःखी हुए। फिर श्रीहरिरामदासजी महाराजके दर्शन किये तथा अपनी निर्धनताका दुःख सुनाया। श्रीहरिरामदासजी महाराजने कहा—धैर्य रखो, श्रीरामजीकी कृपासे सब ठीक हो जायगा। उसके पश्चात् श्रीस्वरूपसिंहजी पुनः धनी हो गये।

श्रीहरिरामदासजी महाराजके जीवनमें अनेक चमत्कारोंकी बात भक्तोंको दृष्टिगोचर हुई है। एक बारकी बात है कि सत्संगहेतु बहुत भक्त एकत्रित हो गये। अधिक जनसमुदाय होनेसे जलकी कमी हो गयी। लोगोंको कष्ट होने लगा। उस समय श्रीहरिरामदासजी महाराजने भगवान्से प्रार्थना की, उससे तत्काल बादल आये एवं वर्षा हुई। सब तालाब एवं कुण्ड भर गये।

आपकी साधनाकी स्थिति बहुत उच्चकोटिकी थी। आपने अनेक जनोंको भक्तिपथमें लगाकर लोकका महान् कल्याण किया है। विक्रम सम्वत् १८३५ चैत्र शुक्ला सप्तमी शुक्रवारको आप अपना पांचभौतिक शरीर छोड़कर निर्वाण पदको प्राप्त हो गये—

वर्ष पैतीसो चेत सुद, सातम सुकरवार।
हरिरामा तन छोड़के, जाय मिले निराकार॥

निरन्तर भगवद्भजन करनेसे आपको जो ज्ञानका अनुभव हुआ, उसे आपने जनकल्याणार्थ अपनी अनुभव वाणीमें स्वयं लिखा। यहाँ उनकी कुछ वाणियाँ प्रस्तुत हैं—

परमात्माका स्वरूप

आपका कहना है कि जैसे लकड़ीमें आग रहती है, वैसे ही इस शरीरमें परमात्माका वास है। भगवान् तो हृदयमें बसे रहते हैं किंतु मूर्ख जीव उन्हें उसी प्रकार बाहर खोजता रहता है, जैसे मृग कस्तूरीकी गन्धको इधर-उधर खोजता रहता है जबकि वह उसके नाभिमें स्थित रहती है, अन्दरमें स्थित प्रभुको लोग दूर खोजते हैं। जो उन्हें दूर (बाहर) मानता है उसके लिये वे और दूर हो जाते हैं, किंतु जो उन्हें अपने अन्दर जानता है, वे उसके लिये हमेशा प्राप्त ही हैं, तात्पर्य यह है कि परमात्माकी प्राप्तिके लिये भटकनेकी जरूरत नहीं है, अन्तर्दृष्टि करके उन्हें सहज ही प्राप्त किया जा सकता है—

दारक में पावक बसै, यों आतम घट माँहि।
हरिया पय में घृत है, बिन मथियाँ कुछ नाँहि॥
हरिया हरि हिरदै बसै, नर दूंरा फिर जोय।
ज्युँ कसतूरी नाभ विच, मिरघ न जांणै कोय॥
हरिया हरि अन्तर बसै, दुनियां देषै दूरि।
दूरि कहै तांह दूरि है, हाजरि जांनि हजूरि॥

परमात्मप्राप्तिका उपाय

उन परमात्माकी प्राप्तिका उपाय क्या है—इसे बताते हुए वे कहते हैं कि जो भगवान्का निरन्तर स्मरण करता है, वही उनको प्राप्त कर सकता है। जो भगवन्नामका आश्रय नहीं लेता है, वह सर्वथा भ्रमित ही रहता है। ज्यों-ज्यों भगवन्नामजप बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों संसारकी आसक्ति स्वतः ही छूटती चली जायगी—

जिन्हाँ सिवरिया राँम कुं, तिन्हाँ पाया ब्रह्म।
जिन्हाँ राँम न सिवरिया, तिन्हा और भरम॥
राँम नाँम ज्युँ ज्युँ भजै, त्युँ त्युँ तजै सकांम।
जन हरिया सुन सेझ मैं, मनवौ करै मुकाँम॥

अहंकार परमात्मप्राप्तिमें बाधक है

श्रीहरिदासजी महाराज कहते हैं कि परमात्मप्राप्तिमें सबसे बड़ा बाधक व्यक्तिका अहंकार ही है। मान-बड़ाई, प्रतिष्ठा आदिकी लालसावालेको भगवत्प्राप्ति नहीं हो सकती, जबतक दीनता नहीं आयगी, विनयकी प्राप्ति नहीं होगी, शरणागतिका भाव नहीं जगेगा, इस संसार-सागरसे पार होना असम्भव है। मान-बड़ाई इस भवसागरमें डुबा देनेवाले हैं, किंतु लघुतारूपी नाव भवसागरसे पार कराकर भगवद्धाममें पहुँचा देनेवाली है, अतः कल्याणकारीको चाहिये कि वह अहंकारका परित्यागकर प्रभुके शरणागत हो जाय—

मांन वडाई मत कुँ, धारत हैं बौह लोय।
हरिया लघुता तत बिन, पार न पैला होय॥
मांन वडाई डूबसी, या भवसागर माँहि।
लघुता नाव जहाज विन, हरिया तिरीयै नाँहि॥

ज्ञान और क्रियाका स्वरूप

ज्ञान और क्रियाका स्वरूप क्या है और उनका परस्पर क्या सम्बन्ध है, इसे बताते हुए श्रीमहाराजजी कहते हैं कि ज्ञान ब्रह्मके दर्शनकी दृष्टि है और क्रिया उनके स्वरूपका ध्यान करना है, इन दोनोंके आश्रयसे उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मतत्त्वको प्राप्त किया जा सकता है। ज्ञान और क्रियाका परस्पर सम्बन्ध अन्धे एवं पंगुके समान है। पंगु ज्ञानरूप है और क्रियाको अन्धा समझना चाहिये। ज्ञानके बिना कर्म और कर्मके बिना ज्ञान निष्फल है—

ग्यांन ब्रह्म की दिष्ट है, किरिया ध्यान सरूप।
जनहरिया मिल देषीयै, आतम तत अनूप॥
ग्यांन क्रिया तै उतरै, हरिया हरिजन पारि।
अैसै अंधे कंध करि, पंगौ आंनि उतारि॥
पंगा सोई ग्यांन है, किरीया अंधी जांनि।
जनहरीया मिल एकठा, मुगति भई आसांनि॥
ग्यांन विनां किरीया निकुछ, निकुछि क्रिया विन ग्यांन।
हरिया किरिया ग्यांन मिल, यौ ही आतम ध्यांन॥

चेतावनी

श्रीहरिरामजी महाराज जीवको चेतावनी देते हुए, उसे सावधान करते हुए कहते हैं—रे मानव! जबतक इस शरीररूपी पिंजरेमें श्वास चल रही है, तबतक अपने साईं—प्रभुको याद कर ले। इस शरीरका भरोसा मत कर। यह तो पानीके ओसकी बूँदके समान (क्षणिक) है, माता, पिता, भाई, पुत्र, मित्र, पत्नी—कोई भी अन्त समयमें साथ देनेवाला नहीं है, तू अकेला ही आया है और अकेला ही दोनों हाथ फैलाकर चला जायगा। अतः सावधान हो जा। इस दुर्लभ मनुष्य शरीरको पाकर तुमने यदि ईश्वरका भजन नहीं किया तो ऐसा अवसर तुझे बार-बार नहीं मिलेगा। यह सारा जगत् नश्वर है, क्षणिक है, यहाँकी कोई भी वस्तु स्थिर रहनेवाली नहीं है, केवल 'एक' नाम ही स्थिर है—शाश्वत है, अतः उसीका आश्रय लो और प्रभुके प्रेमी बन जाओ—

जबलग साँई याद करि, तब लग पिंजर सास।
हरिया पाँणी ओस का, अैसी तन की आस॥
मात न तात न भ्रात सुत, सगा न सूंदरि साथि।
हरीया जासी हेकलौ, करि वोलाडू हाथि॥
या नर देही पायकै, भज्यौ नहीं करतार।
अैसो औसर बौहरि कै, मिलै न वारुंवार॥
हरिया सब जुग जात है, थिर नहीं दीषै कोय।
राम नाम थिर एक है, का कोई हरिजन होय॥

एक ही परमात्मा

सम्पूर्ण संसार परमात्माकी अनुपम कृति है। परमात्माकी शक्ति प्रकृति जड़-चेतन सभी जीवोंका उनके आज्ञानुसार सृजन, पालन एवं संहार करती है। सभी जीवोंके शरीर पंचतत्त्वसे बने हुए हैं और सभीमें एक ही चेतन आत्मा विराजती है। सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंके न्यूनाधिक होनेपर आचार-विचार, आहार-विहार जीव-विशेषकी वासना एवं बीजानुसार भिन्न-भिन्न प्रकृतिके होते हैं। संसारमें सभी धार्मिक जन इस जगत्का एक ही नियन्ता मानते हैं। परमात्मा एक ही है, नाम-रूपका देश-कालके अनुसार भेद होता है।

सभी जीवोंकी देहको बनाकर सर्वशक्तिमान् परमात्मा स्वयं उसमें सूक्ष्म रूपसे प्रविष्ट होकर स्वयं क्रीड़ा करते हैं। मनुष्य जो परमात्माकी सर्वश्रेष्ठ कृति है, उसे 'सम्पूर्ण प्राणियोंमें वे व्याप्त हैं'—ऐसा सर्वदा ध्यान रखना चाहिये और किसी भी जीवके साथ दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिये; क्योंकि परमात्मा स्वयं अनन्त हैं और हमारे द्वारा दूसरोंके प्रति किये गये व्यवहारोंको वे प्रत्येक पल देखते रहते हैं तथा जीवोंको अपने-अपने कर्मोंके अनुसार कर्म-फल देते रहते हैं। अतः हमें दुर्लभ मानव-देह पाकर अपने विचार पवित्र रखकर किसीके अंशका हरण नहीं करना चाहिये और उन्हें सर्वदा याद रखना चाहिये। प्रत्येक मनुष्यकी आयु सीमित है, इसलिये कलके ऊपर कोई कार्य नहीं छोड़ना चाहिये। ईश्वरप्राप्तिका साधन ***जीवेर दया नामेर रुचि*** है अर्थात् सम्पूर्ण जीवोंपर दया करे एवं भगवान्के नामका स्मरण करे। परमात्मा सगुण-साकार, निर्गुण-निराकार और मनुष्यकी कल्पनासे परे हैं; क्योंकि बुद्धि वहाँतक नहीं पहुँच सकती है। वे '**कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ**' हैं। उनकी अनन्त सामर्थ्य है। जीव उनका अंश कहा गया है। सूर्य और सूर्यकी किरणकी तरह जीव हमेशा परमात्मारूपी सूर्यसे जुड़ा है।

भगवान् सम्पूर्ण जीवोंके लिये समान हैं। **समोऽहं सर्वभूतेषु**—यह परमात्माका महान् गुण है। राग-द्वेषको छोड़कर अपने उद्धारका मार्ग स्वयं खोजना चाहिये।

—श्रीमोहनकुमारजी शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

अजेय और अमोघ शस्त्र

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। धन्यवाद! संसारमें मनुष्यके सिवा जितने और प्राणी हैं, वे सब मिलकर भी उतना पाप नहीं कर सकते, जितना अपनी बुद्धिको बुराईमें लगाकर मनुष्य कर सकता है। हिंस्र पशु-पक्षी उतने ही और उन्हीं जीवोंको मार सकते हैं, जो उनके सामने होते हैं, परंतु मनुष्य तो अपनी बुद्धिके कौशलसे ऐसे-ऐसे कार्य करता है कि जिससे लाखों-करोड़ों प्राणी पीढ़ियोंतक मरते रहते हैं। 'साक्षरा' को उलटा पढ़नेसे 'राक्षसा' हो जाता है, अतएव जब बुद्धिमान् मनुष्यकी बुद्धि विपरीत कार्योंमें लगती है तो वह उसे राक्षस बना देती है। आज हमारी इस पृथ्वीके महान् विज्ञानवेत्ताओंकी यही स्थिति है। अणु बम बना, फिर हाइड्रोजन बम बना और अब उससे भी महान् भयंकर बम बननेकी बात सुनी जाती है। ये महासंहारके राक्षसी साधन मनुष्यकी विपरीत बुद्धिके ही परिणाम हैं। ऐसी वस्तुएँ बनाकर और इनका प्रयोग करके जब मनुष्य अभिमान करता है, तब तो उसका अत्यन्त क्रूर स्वरूप सर्वथा प्रकट हो जाता है।

आप लिखते हैं, भारतवर्षको भी इस प्रकारके शस्त्र बनाने चाहिये। बात ठीक है, समय देखते और जगत्के बड़े-बड़े विज्ञानकुशल, समृद्धिशाली—ऐश्वर्यवान्, बुद्धिमान्, और विद्वान् देश—जहाँ बड़ी उत्सुकताके साथ संसारके लोग विविध विषयोंकी शिक्षा प्राप्त करने जाते हैं—जिस कामको करते हैं, उसका अनुकरण करनेकी इच्छा स्वाभाविक ही होती है और यह भी किसी अंशसे सत्य है कि आत्मरक्षाके लिये भी इसकी आवश्यकता मानी जा सकती है; क्योंकि जिसके पास ऐसे भयानक शस्त्र होंगे, उसपर आक्रमण करनेका साहस सहजमें नहीं होगा। तथापि, न तो भारतवर्षके पास इतनी धनराशि और आसुरी विज्ञान-सम्पत्ति है कि वह ऐसे शस्त्र बनानेमें समर्थ हो और न उसका यह ध्येय ही होना चाहिये। महावीर अर्जुनने राक्षसी शस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करनेसे भी मय दानवके प्रति इनकार कर दिया था। हमारे पास तो सच्चा बल होना चाहिये—भगवान्में विश्वासका और भगवान्को प्रसन्न करनेवाले सद्गुण—सत्य, अहिंसा आदिका। यह बल यदि हमने सचमुच अर्जन कर लिया और भगवान्पर विश्वास करके भगवान्के आज्ञानुसार भगवान्के ही बलपर वीरकी भाँति कुशलतापूर्वक इस प्रलयंकरी आसुरी आँधीका सामना करनेको प्रस्तुत हो सके तो जगत्की किसी भी आसुरी शक्तिकी यह सामर्थ्य नहीं कि वह हमारा कुछ भी अनिष्ट कर सके। लंकाके समरांगणमें भगवान् श्रीरामचन्द्रको रथरहित और नंगे पैर देखकर जब विभीषणने अधीर होकर प्रेमातिरेकसे अनिष्ट-शंका की, तब कृपालु भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने कहा था—

× × × × ×। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥
महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर॥

बस, भारतको तो ऐसे ही रथ और इन्हीं शस्त्रोंकी आवश्यकता है, जो उसकी परम्परागत सम्पत्ति है। याद रखना चाहिये—जगत्में यदि कभी सच्ची सुख-शान्ति होगी तो वह हाइड्रोजन बम आदि राक्षसी साधनोंसे कभी नहीं होगी, वह होगी केवल अध्यात्मबुद्धिसे, भगवद्-विश्वाससे, सर्वात्मभावसे और दैवी सम्पत्तिके उपर्युक्त गुणोंसे ही। हमें इस अपनी अजेय और अमोघ शक्तिका संग्रह और संरक्षण करना चाहिये और विश्वासपूर्वक भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये कि वे सबको सद्बुद्धि दें, जिससे सबका लक्ष्य जगत्का यथार्थ हित हो जाय और परिणाममें सभी सुखी हों। शेष भगवत्कृपा।

(२)

आर्त-प्रार्थना करो

प्रिय भाई! सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे दुःखसे मुझे भी बड़ा दुःख है। मैं चाहता हूँ कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम दुःखसे मुक्त हो जाओ, परंतु यह मेरे हाथकी बात नहीं है। तुम्हारे सद्भावके प्रति मेरे मनमें बड़ा आदर है, परंतु मैं तुम्हें यह विश्वास कभी नहीं दिला सकता कि मैं ऐसा कोई चमत्कार कर दूँगा, जिससे रातोंरात तुम्हारा संकट टल जायगा और तुम अपने मनोरथके अनुसार उच्च स्थितिको प्राप्त हो जाओगे। कोई यदि किसीको ऐसा विश्वास दिलाता है कि मैं जादूकी तरह तुम्हारी स्थिति बदल दूँगा तो वह या तो स्वयं भ्रममें है या ठग है।

इसका यह तात्पर्य नहीं कि महात्मा पुरुषोंमें ऐसी क्षमता होती ही नहीं। होती है, पर वैसे पुरुष संसारमें इस समय बहुत थोड़े हैं और यदि कोई हैं तो वे भगवान्के मंगलमय विधानको बदलनेका आग्रह नहीं करते। वे भगवान्के मंगलमय विधानमें विश्वास करते हैं और वे इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि यहाँका हानि-लाभ वास्तवमें हानि-लाभ है ही नहीं। वे महापुरुष जिस स्तरपर रहते हैं, उस स्तरसे यहाँके समस्त परिवर्तनोंमें उन्हें भगवान्की लीला-माधुरी दिखायी देती है। उसमें न दुःख है, न शोक है, न विनाश है, न हानि है—है केवल विविध विचित्र भंगिमाओंमें भगवान्का आत्मप्रकाश, उनका लीलाविलास। ऐसी अवस्थामें वे कौन-सी हानिको लाभमें परिवर्तित करने जायँगे। उन्हें तो प्रत्येक स्थितिमें भगवान्के मधुर पद-निक्षेपसे झंकृत मधुर नूपुरोंकी ध्वनि सुनायी देती है। अतएव उन महापुरुषोंके द्वारा पारमार्थिक कल्याणके सिवा लौकिक लाभकी आशा नहीं रखनी चाहिये। तुम स्वयं भी ऐसा ही कहा करते हो, परंतु तुम्हारा भी दोष क्या है। बुद्धिमें अभीतक विषय-सुखका विश्वास बना हुआ है और हृदयमें मान-प्रतिष्ठा, नामकी इज्जत, शरीरके आराम और बहुत ऊँचे स्टाइलपर रहनेकी कामना प्रबल है। इसीसे तुम जब अनुचित साधनोंसे भी संकट टालने और सुख प्राप्त करनेकी बात सोचते हो तब 'किसी महात्माके द्वारा काम हो जाय तो बड़ा उत्तम है'—यह सोचना स्वाभाविक ही है, परंतु न तो मैं महात्मा हूँ और न मेरी दृष्टिमें ऐसे कोई अन्य महात्मा ही हैं, जिनका नाम तुम्हें बता सकूँ या जिनसे तुम्हारे लिये मैं अनुरोध कर सकूँ। यह मैंने तुमको स्पष्ट इसीलिये लिखा है कि तुम्हें इस झूठी आशाके कारण दुःखी न होना पड़े।

मेरा यह निश्चित विश्वास है कि जबतक मनुष्य संसारके प्राणी-पदार्थोंसे सुखकी आशा रखता है और अनुकूलरूपमें उनकी प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील रहता है, तबतक उसे सुख-शान्ति मिल ही नहीं सकती। संसारमें संसारके पदार्थोंको लेकर आजतक न कोई सुखी हुआ, न हो सकता है। तथापि जबतक यह सत्य मनुष्यकी समझमें नहीं आता, तबतक उसे अनुकूल स्थितिकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना ही पड़ता है, परंतु कम-से-कम वह प्रयत्न ऐसा तो होना ही चाहिये, जो नयी दुर्गतिका कारण न बने। वह निर्दोष प्रयत्न है—भगवान्से एकनिष्ठ होकर प्रार्थना करना; जैसे द्रौपदी, गजराज आदिने की थी। मेरी तुच्छ बुद्धिके अनुसार भगवान्से प्रार्थना करनेवालेकी दुर्गति होती ही नहीं, उसकी अभीष्ट-सिद्धि भी सहज ही हो सकती है अथवा भगवान्की कृपासे उसका हृदय ही विषयकामनाकी गन्दगीसे शुद्ध हो जा सकता है। अतएव भैया! तुम कातर हृदयसे विश्वासपूर्वक आर्त-प्रार्थना करो। इससे अच्छी सलाह मैं और दे ही नहीं सकता; क्योंकि मुझे इससे अच्छे किसी साधनकी न तो जानकारी है और न मेरा विश्वास ही है।

पर यह निश्चय रखना चाहिये कि भगवान् मंगलमय हैं, अतएव उनका प्रत्येक विधान भी मंगलमय है। यदि वे समझेंगे कि अमुक स्थितिकी प्राप्ति होनेपर हमारा अकल्याण होगा तो हमारे चाहने और प्रार्थना करनेपर वे उस स्थितिकी प्राप्ति नहीं होने देंगे और वास्तवमें उसीमें हमारा कल्याण भी होगा।

तुम्हारे संकटसे नहीं, परंतु तुम्हारे इस संकटजनित मानस-दुःखको देखकर कई बार मेरे चित्तमें बड़ी उद्विग्नता हो जाती है, पर फिर जब मंगलमय भगवान्की सहज सुहृदयताका ध्यान आता है, तब यह जानकर सन्तोष हो जाता है कि वे तुम्हारा अमंगल तो होने देंगे ही नहीं। जो कुछ भी विधान करेंगे, वह प्रतिकूल दीखनेपर भी परिणाममें होगा तो वह मंगल करनेवाला ही।

घबराओ मत, प्रभुकी कृपापर विश्वास करो और जहाँतक बने असत्पथका आश्रय न लेकर विपत्तिनाशके लिये भगवान्से आर्त-प्रार्थना करो। भगवान् तुम्हारा मंगल करेंगे। शेष भगवत्कृपा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७०, शक १९३५, सन् २०१३, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ११। ४२ बजेतक	शुक्र	स्वाती दिनमें ३। ५५ बजेतक	२६ अप्रैल	मासपर्यन्त प्रपा (पौसरा)-का दान, असमर्थतामें **धर्मघटादि दान**, तुलसीपत्रसे **श्रीविष्णुपूजन, कच्छपावतार**।
द्वितीया " ९। ३२ बजेतक	शनि	विशाखा" २। ३६ बजेतक	२७ "	**वृश्चिकराशि** दिनमें ८। ५६ बजे, **भरणीका सूर्य** रात्रि ७। १४ बजे।
तृतीया " ७। १२ बजेतक	रवि	अनुराधा " १। ५ बजेतक	२८ "	**भद्रा** दिनमें ८। २२ बजेसे रात्रि ७। १२ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रि ९। १८ बजे, **मूल** दिनमें १। ५ बजेसे।
चतुर्थी दिनमें ४। ४५ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा " ११। २६ बजेतक	२९ "	**धनुराशि** दिनमें ११। २६ बजे।
पंचमी " २। १८ बजेतक	मंगल	मूल " ९। ४६ बजेतक	३० "	**मूल समाप्त** दिनमें ९। ४६ बजे।
षष्ठी " ११। ५४ बजेतक	बुध	पूर्वाषाढ़ " ८। ८ बजेतक	१ मई	**मकरराशि** दिनमें १। ४६ बजे, **भद्रा** दिनमें ११। ५४ बजेसे रात्रि १०। ४७ बजेतक, **रवियोग** दिनमें ८। ८ बजेसे।
सप्तमी " ९। ४० बजेतक	गुरु	उत्तराषाढ़ प्रातः ६। ३९ बजेतक श्रवण प्रातः ५। २२ बजेतक	२ "	**कालाष्टमी** (सायंकाल व्यापिनी), **रवियोग** प्रातः ६। ३९ बजेतक।
अष्टमी " ७। ३८ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा रात्रिशेष ४। २४ बजेतक	३ "	**कुम्भराशि** दिनमें ४। ५४ बजे, **श्रीशीतलाष्टमीव्रत, पंचक प्रारम्भ** दिनमें ४। ५४ बजेसे।
नवमी प्रातः ५। ५५ बजेतक दशमी रात्रिशेष ४। ३४ बजेतक	शनि	शतभिषा रात्रिमें ३। ४५ बजेतक	४ "	**भद्रा** सायं ५। १५ बजेसे रात्रिशेष ४। ३४ बजेतक।
एकादशी रात्रिमें ३। ३८ बजेतक	रवि	पूर्वाभाद्रपद " ३। ३२ बजेतक	५ "	**मीनराशि** रात्रिमें ९। ३५ बजे, **वरूथिनी एकादशीव्रत** (स्मार्त), **श्रीवल्लभाचार्य-जयन्ती**।
द्वादशी " ३। १० बजेतक	सोम	उत्तराभाद्रपद " ३। ४६ बजेतक	६ "	**वरूथिनी एकादशीव्रत** (वैष्णव), **यायीजययोग** रात्रिमें ३। १० बजेसे, **मूल** रात्रिमें ३। ४६ बजेसे।
त्रयोदशी " ३। १२ बजेतक	मंगल	रेवती रात्रिशेष ४। ३१ बजेतक	७ "	**मेषराशि** रात्रिशेष ४। ३१ बजे, **भौमप्रदोषव्रत, पञ्चक समाप्त** रात्रिशेष ४। ३१ बजे, **भद्रा** रात्रि ३। १२ बजेसे।
चतुर्दशी " ३। ४८ बजेतक	बुध	अश्विनी (अहोरात्र)	८ "	**भद्रा** दिनमें ३। ३० बजेतक, **मासशिवरात्रिव्रत**।
अमावस्या रात्रिशेष ४। ४८ बजेतक	गुरु	अश्विनी प्रातः ५। ४६ बजेतक	९ "	**मूल समाप्त** प्रातः ५। ४६ बजे, **स्नान-दान-श्राद्धकी अमावस्या**।

सं० २०७०, शक १९३५, सन् २०१३, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ग्रीष्म-ऋतु, वैशाख शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा (अहोरात्र)	शुक्र	भरणी दिनमें ७। २९ बजेतक	१० मई	**वृषराशि** दिनमें २। १ बजे, **देवदामोदर तिथि** (असम)।
प्रतिपदा प्रातः ६। १८ बजेतक	शनि	कृत्तिका " ९। ३७ बजेतक	११ "	**चन्द्रदर्शन, कृत्तिकाका सूर्य** दिनमें २। १२ बजे, **त्रिपुष्करयोग** प्रातः ६। १८ बजेसे दिनमें ९। ३७ बजेतक।
द्वितीया " ८। ७ बजेतक	रवि	रोहिणी " १२। ३ बजेतक	१२ "	**मिथुनराशि** रात्रिमें १। २१ बजे, **श्रीपरशुराम-जयन्ती**।
तृतीया " १०। ८ बजेतक	सोम	मृगशिरा " २। ३९ बजेतक	१३ "	**भद्रा** रात्रिमें ११। ९ बजेसे, **अक्षय तृतीया, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत**।
चतुर्थी " १२। १० बजेतक	मंगल	आर्द्रा सायं ५। १६ बजेतक	१४ "	**भद्रा** दिनमें १२। १० बजेतक, **वृषराशिका सूर्य** रात्रिमें १। २१ बजे, **ग्रीष्म-ऋतु प्रारम्भ**।
पंचमी " २। ४ बजेतक	बुध	पुनर्वसु रात्रिमें ७। ४२ बजेतक	१५ "	**कर्कराशि** दिनमें १। ५ बजे, **आद्य जगद्गुरु शङ्कराचार्य-जयन्ती, सौर ज्येष्ठमासारम्भ**
षष्ठी " ३। ४१ बजेतक	गुरु	पुष्य " ९। ५१ बजेतक	१६ "	**श्रीरामानुजाचार्य-जयन्ती, मूल** रात्रिमें ९। ५१ बजेसे।
सप्तमी " ४। ५३ बजेतक	शुक्र	आश्लेषा " ११। ३४ बजेतक	१७ "	**सिंहराशि** रात्रिमें ११। ३४ बजे, **भद्रा** दिनमें ४। ५३ बजेसे रात्रिशेष ५। १७ बजेतक, **श्रीगङ्गासप्तमी, श्रीगङ्गोत्पत्ति**।
अष्टमी सायं ५। ४० बजेतक	शनि	मघा " १२। ५१ बजेतक	१८ "	**मूल** रात्रिमें १२। ५१ बजेतक।
नवमी " ५। ५३ बजेतक	रवि	पूर्वाफाल्गुनी १। ३६ बजेतक	१९ "	**श्रीसीतानवमी, जानकी जन्मोत्सव**।
दशमी " ५। ३६ बजेतक	सोम	उत्तराफाल्गुनी" १। ५२ बजेतक	२० "	**कन्याराशि** दिनमें ७। ४० बजे, **भद्रा** रात्रिशेष ५। १३ बजेसे।
एकादशी दिनमें ४। ४९ बजेतक	मंगल	हस्त " १। ३८ बजेतक	२१ "	**भद्रा** दिनमें ४। ४९ बजेतक, **मोहिनी एकादशीव्रत** (सबका), **सायन मिथुनराशिका सूर्य** प्रातः ६। ४० बजे।
द्वादशी " ३। ३७ बजेतक	बुध	चित्रा " १। १ बजेतक	२२ "	**तुलाराशि** दिनमें १। २० बजे, **प्रदोषव्रत, परशुरामद्वादशी**।
त्रयोदशी " २। १ बजेतक	गुरु	स्वाती " १२। ३ बजेतक	२३ "	**श्रीनृसिंह चतुर्दशीव्रत** (सायंकाल व्यापिनी), **ओङ्कारेश्वर यात्रा तथा दर्शन**।
चतुर्दशी " १२। ५ बजेतक	शुक्र	विशाखा" १०। ४७ बजेतक	२४ "	**वृश्चिकराशि** सायं ५। ६ बजे, **भद्रा** दिनमें १२। ५ बजेसे रात्रिमें ११ बजेतक, **व्रतकी पूर्णिमा, कूर्म-जयन्ती** (मध्याह्नमें)।
पूर्णिमा " ९। ५४ बजेतक	शनि	अनुराधा " ९। १९ बजेतक	२५ "	**स्नान-दानकी पूर्णिमा, बुद्धपूर्णिमा, बुद्ध-जयन्ती, रोहिणीका सूर्य** दिनमें ११। ३६ बजे, **मूल** रात्रिमें ९। १९ बजेसे, **वैशाख-स्नान समाप्त**।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपानुभूति

राधाजीकी मुसलिम कारीगरपर कृपादृष्टि

भगवान् समस्त मनुष्योंपर समान कृपाका भाव रखते हुए प्रेम करते हैं। उनके यहाँ अमीर-गरीब, छोटे-बड़ेका कोई भेद नहीं है। राजा हो या रंक सभीको एक समान दृष्टिसे देखा जाता है। उनकी कृपादृष्टि धर्मके आधारपर भी कोई भेदभाव नहीं करती है; उनके लिये हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, जैन, बौद्ध सभी समान हैं—सभी उनकी अपनी संतान हैं। अनेक अंग्रेज और मुसलमान भक्तोंपर भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा की घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। यहाँ उनकी आह्लादिनी अन्तरंगा शक्ति जगज्जननी भगवती श्रीराधाजीकी वृन्दावनके एक मुसलिम कारीगरपर की गयी कृपादृष्टिसे सम्बन्धित एक सत्य घटना प्रस्तुत की जा रही है—

भगवान् श्रीकृष्ण एवं श्रीराधाजीकी लीलाभूमि मथुरा-वृन्दावनमें हिन्दुओंके साथ-साथ मुसलिम भी बड़ी संख्यामें रहते हैं। अधिकतर मुसलिम ब्रजवासी होनेके नाते श्रीराधा-कृष्णके प्रति वैसा ही श्रद्धाभाव एवं अनन्य प्रेम रखते हैं, जैसा कि हिन्दूजन। वे हिन्दुओंसे 'जय श्रीकृष्ण' एवं 'राधे-राधे' कहकर दुआ-सलाम करते हैं तथा उनके साथ मैत्री एवं सद्भावपूर्ण व्यवहार करते हैं।

मथुरा-वृन्दावनक्षेत्रमें हजारोंकी संख्यामें श्रीराधा-कृष्णके छोटे-बड़े मन्दिर हैं। उनमें स्थित भगवान् श्रीकृष्ण एवं राधारानीकी मूर्तियोंको पहनायी जानेवाली सस्ती पोशाकें तो हिन्दू कारीगर सिलते हैं, लेकिन जरदोजी कलाके जरिये अत्यन्त महँगी पोशाकें अधिकतर मुसलमान कारीगर ही सिलते एवं तैयार करते हैं। यह उनका खानदानी पेशा है और इसे वे पूरी निष्ठा और भक्तिभावनासे करते हैं। भारत और यूरोपके ज्यादातर मन्दिरोंमें जानेवाली महँगी पोशाकें वृन्दावन एवं मथुराके मुसलिम कारीगरोंद्वारा ही तैयार की जाती हैं। पोशाकें सिलते समय कारीगर तनकी स्वच्छताका विशेष ख्याल रखते हैं। अच्छी तरह हाथ-पैर एवं मुँह धोकर पोशाकें सिलनेका कार्य शुरू करते हैं। उनके लिये राधा-कृष्णकी पोशाकें सिलना पेशामात्र नहीं, अपितु पवित्र कार्य है।

इन्हीं कारीगरोंमें एक हैं—इकराम कुरैशी। वृन्दावनमें मथुरा गेटपर रहनेवाले इकराम कुरैशी काफी लम्बे समयसे श्रीराधा-कृष्णकी महँगी पोशाकें (जो कि जरदोजी कलासे अलंकृत होती हैं) सिलनेका कार्य करते हैं। उनके दादा-परदादा भी यही काम करते थे। वे बताते हैं कि यह हमारा पुश्तैनी धन्धा है। हम तनकी स्वच्छताका ध्यान रखते हुए श्रद्धा-प्रेमके साथ स्वयं भी श्रीराधा-कृष्णकी पोशाकें सिलते हैं और अन्य कारीगरोंद्वारा भी तैयार करवाते हैं।

इकराम कुरैशीने स्वयंके साथ घटी श्रीराधारानीकी कृपासम्बन्धी एक दिव्य घटनाको भावुक एवं प्रेमसे गद्गद होकर बताया—

उनके अनुसार एक बार हमसे भगवान् श्रीकृष्णकी पोशाकें सिलनेमें कुछ कमी रह गयी। पोशाकोंके रंगोंपर भी मेरा ध्यान नहीं गया था। उसी रात्रिको श्रीराधारानीने मुझे स्वप्नमें दिव्य दर्शन देते हुए अत्यन्त विनम्रतापूर्वक मीठी बोलीमें समझाया कि कल सिली गयी पोशाकोंमें कुछ कमी रह गयी है, ऐसा नहीं होना चाहिये। उन्होंने मुझे पोशाकोंके रंग आदिके बारेमें भी बताया तथा और भी कई हिदायतें दीं। उसके बाद तो हम पोशाकोंके सम्बन्धमें और भी सतर्कता बरतने लगे।

इकराम कुरैशीने श्रीराधारानीकी अलौकिक झलकको याद करते हुए भावुक होकर बताया कि 'जिन श्रीराधारानीकी दिव्य कृपा प्राप्त करनेके लिये सन्त-महात्मा सैकड़ों वर्षोंतक, कई जन्मोंतक तपस्या एवं प्रतीक्षा करते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णकी परम आराध्या, व्रजकी महारानी श्रीराधारानीद्वारा अपने ऊपर हुई असीम कृपा एवं उनकी करुणाको यादकर आज भी मैं रोमांचित एवं भावविह्वल हो उठता हूँ।'

धन्य हैं इकराम कुरैशी, जिनका कर्मयोग श्रीराधारानीने स्वीकार किया और उन्हें दर्शन दिये!—**धर्मेन्द्र गोयल**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गोसेवासे निरोगता

गोमाता सर्वदेवमयी हैं, उनके शरीरमें समस्त देवताओंका वास रहता है। अतः उनकी सेवासे एक साथ ही समस्त देवताओंकी सेवा हो जाती है। जिसपर गोमाताकी कृपा हो जाती है, उसपर सभी देवताओंकी कृपा हो जाती है। गोमाता धन-सम्पत्तिके साथ-साथ आरोग्यकी भी दात्री हैं। उनकी कृपासे असाध्य रोग भी चमत्कारी ढंगसे ठीक हो जाते हैं। इस सन्दर्भमें मेरे मित्रके साथ घटी एक घटना द्रष्टव्य है—

बात सन् २००७ ई० की है। मेरे एक मित्रको श्वेत कुष्ठ हो गया था। उसने काफी इलाज कराया, पर सफेद दाग ठीक न हुए। वह जीवनसे निराश हो गया। लोग उसे घृणाकी दृष्टिसे देखने लगे। उसे स्वयं भी आत्मग्लानि-सी होती थी। जब काफी निराशा बढ़ी तो उसने आत्महत्या करनेकी ठान ली। जब यह बात मुझे पता चली तो मैंने उसे एक सलाह दी कि एक नाँद घरके बाहर रखो, उसमें नित्य पानी भर दिया करो, जब गायें पानी पीकर चली जायँ तो एक गिलास पानी नाँदका पी लिया करो एवं उसी पानीसे स्नान किया करो। भगवान्ने चाहा तो जल्दी ही ठीक हो जाओगे। मित्रने बात मान ली और उसी दिनसे गायोंको पानी पिलाना आरम्भ कर दिया एवं उसी पानीको पीना एवं उसीसे नहाना शुरू कर दिया। ताज्जुब तो तब हुआ कि तीसरे दिनसे मित्रके सफेद दाग मिटने लगे और एक माहमें प्रायः सभी दाग समाप्त हो गये। जब डॉक्टरोंसे चेकअप कराया गया तो उनको भी अचम्भा लगा और उन्होंने इसे भगवान्की कृपाका चमत्कार माना। उसी दिनसे हमारा मित्र गोसेवा करने लगा, जो अभीतक जारी है।—**घनश्याम शरण श्रीवास्तव**

(२)

तुलसीका महत्त्व

तुलसी दिव्य वनौषधि है, वस्तुतः श्रीकृष्णप्रिया भगवती तुलसी ही मनुष्योंके कल्याणके लिये वनस्पति-रूपसे इस धरा-धामपर आयी हैं। धर्मग्रन्थोंके साथ ही आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें भी तुलसीकी महिमा और उनकी आरोग्यकारिणी शक्तिका वर्णन है। अनेक असाध्य रोगोंमें तुलसीका प्रयोग लाभदायी सिद्ध होता है। इस सम्बन्धमें मेरे एक सम्बन्धीके साथ घटी घटना इस प्रकार है—

मेरे एक दूरके सम्बन्धी बड़े ही धार्मिक स्वभाव और आस्तिक प्रवृत्तिके सज्जन पुरुष हैं। एक बार उन्हें सीनेमें दर्दकी शिकायत हुई तो डॉक्टरोंने चेकअपके बाद बाई पास सर्जरीकी राय दी। कुछ समय पूर्व उन्होंने कल्याणमें ही पढ़ा था कि श्यामा तुलसीके पाँच पत्ते कोई लगातार ३१ दिनोंतक खाये तो इससे दिलकी बीमारीमें लाभ होता है। उनकी गृहवाटिकामें तुलसीका पौधा था, उन्होंने इसका प्रयोग किया, साथ ही सुरक्षाकी दृष्टिसे वे मद्रासके एक बड़े अस्पतालमें चेक कराने गये, जो हृदय रोगकी चिकित्साके लिये प्रख्यात है। वहाँ डॉक्टरोंने अपने सभी तरीकोंसे उनकी जाँच की और कहा कि उन्हें हृदय-सम्बन्धी कोई रोग नहीं है, अतः ऑपरेशनकी कोई आवश्यकता नहीं है। मेरे सम्बन्धीने यह भी बताया कि तुलसीका प्रयोग ३१ दिनतक लगातार होना चाहिये, यदि बीचमें किसी दिन भूल हो जाय तो फिर दूसरे दिनसे ३१ दिनतक खाना होगा।—**अखिलानन्द राम**

(३)

अनजान दम्पतीकी सदाशयता

ईश्वरपर मुझे सम्पूर्ण आस्था है। मेरे जीवनमें कई संकट आये, जिन्हें भगवान् आशुतोषकी कृपाने दूर कर दिया। करीब १०-१२ वर्ष पूर्वकी बात है, मैं अपने पतिके साथ अपने बड़े पिताजीके लड़केकी लड़कीकी शादीमें अहमदाबाद गयी थी। शादीके पश्चात् अचानक हम लोगोंका प्रोग्राम द्वारकाजी तथा सोमनाथ मन्दिर देखनेका बन गया। पहले हमलोग द्वारकाधाम गये, तत्पश्चात् रात्रिमें बससे सोमनाथ-मन्दिरके लिये रवाना हुए।

ठण्डके दिन थे, अँधेरी रात थी, सोमनाथमें उतरनेवाले हम दोनों ही थे। बसवालेने बस-स्टैण्डमें बस न ले जाकर हमलोगोंको बीच रास्तेमें यह कहकर छोड़ दिया कि मन्दिर यहाँसे थोड़ी ही दूरीपर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमलोगोंने बससे उतरनेपर देखा कि चारों तरफ घना अन्धकार-ही-अन्धकार छाया है, दूर-दूरतक न कोई रोशनी नजर आ रही है, न कोई मकान, न ही कोई राहगीर। हमलोग बहुत घबरा गये, शरीरपर कुछ आभूषण भी थे, इतनेमें पता नहीं कहाँसे एक ऑटो हमलोगोंके समीप आकर रुक गया। उसमें एक दम्पती बैठ हुए थे, उन्होंने हमलोगोंसे बहुत आग्रह किया कि हमलोग उनके साथ उनके ऑटोमें चलें; क्योंकि इतनी रात्रिमें वहाँ दूसरा ऑटो मिलना असम्भव है।

हमलोग बड़े असमंजसमें थे कि किसी अजनबीसे सहायता लें या न लें, परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बन गयीं कि हमलोगोंको उनके साथ जाना ही सही लगा। मनमें बहुत डर था। भगवान् शंकरजीको नमन किया कि अब आप ही हमें इस संकटसे बचा सकते हैं। कुछ देर पश्चात् ऑटो रुक गया। ऑटोवालेने बताया, ऑटो खराब हो गया है, आगे नहीं जायगा। यह सुनकर हमलोगोंको उन दम्पतीपर अविश्वास होने लगा, पर उन्होंने कहा—आप लोग घबराइये मत, हम लोग हर वर्ष यहाँ आते हैं। मैं अभी कुछ व्यवस्था करता हूँ। अपनी पत्नीको हमलोगोंके पास छोड़कर वे ऑटोवालेके साथ दूसरे ऑटोकी खोजमें चले गये। थोड़ी देरके पश्चात् वे दूसरा ऑटो लेकर आ गये। मन्दिर-परिसरमें पहुँचकर उन्होंने एक धर्मशाला खुलवायी। वहाँ पहुँचनेपर पता चला कि धर्मशालामें जगह नहीं है, तब वे हमलोगोंको पासके ही एक मकानमें ले गये, वहाँपर एक ही कमरा मिला, डबल बेडरूमवाला। अत्यन्त विनीत शब्दोंमें उन्होंने अनुरोध किया कि आप लोग बुजुर्ग हैं, आप लोग पलंगपर सो जाइये, हमलोग नीचे गद्दे डालकर सो जाते हैं। मन अभी भी शंकासे ओत-प्रोत था। खैर, किसी तरह रात कटी, सुबह उन्होंने हमलोगोंके स्नानके लिये पानी गरम करवाया और खुद नहा-धोकर हमलोगोंके साथ मन्दिर जाकर पूजा-अर्चना की। तत्पश्चात् वे हमलोगोंको साथ लेकर समुद्र-किनारे घूमने गये, इसके पश्चात् हमलोग एक-दूसरेका पता और फोन नम्बर लेकर अलग हो गये। बादमें उस नम्बरपर हमलोगोंने कई बार फोन लगाया, मगर फोन कभी नहीं लगा। उस दिनसे हमलोगोंकी आस्था भगवान्पर और अधिक हो गयी। हमलोगोंका सोमनाथजी जाना सार्थक हो गया। हमें ऐसा लगता है कि उन अनजान दम्पतीके रूपमें साक्षात् भगवान् शंकरजी और माता पार्वतीजीके सांनिध्यका सुख मिला। भगवान् सभीपर ऐसी कृपा बनाये रखें, यही प्रभुसे विनती है। उनके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम।

—उर्मिला देवी गुप्ता

(४)

भूखा भूख मिटाता है

बस आनेमें अभी दस मिनटकी देर थी। पूज्य विनोबाजीके भाषणसे प्रभावित हुए हम चार-पाँच मित्र प्रेम, मानवता, करुणा आदि शब्दोंपर चर्चा करनेमें इतने तल्लीन हो रहे थे कि आसपास क्या हो रहा है, इसका भी कुछ पता नहीं था।

सहसा हृदयको मानो चीर डालेगी, ऐसी करुण आवाज सुनायी दी। हमने चौंककर पीछे देखा। धँसी हुई तेजहीन आँखें, झुर्रियाँ पड़े चेहरेपर बढ़ी दाढ़ी, हड्डियाँ गिनी जा सकें—ऐसा दुबला शरीर, देहपर फटे-पुराने चिथड़े डाले लगभग साठ वर्षका एक बूढ़ा हमारी ओर दौड़ा आ रहा था। होहल्ला मचाती बालकोंकी टोली उसे हैरान कर रही थी।

'मैं पागल नहीं हूँ, चोर नहीं हूँ, भगवान्के नामपर मुझे मारो मत। मैं गरीब हूँ, दुःखी हूँ, दो दिनोंका भूखा हूँ।' करुणाकी चर्चा करते हुए हम उसकी ओर देखते रह गये। 'हाय राम! भगवान्के नामपर इस भूखेको कुछ टुकड़े दो!'

आँसू-भरी इस आहपूर्ण वेदनाको सुननेको कोई तैयार न हुआ। अपने सुखीपनमें रचे-पचे सभ्य समाजके प्रतिष्ठित लोग उसे धमका रहे थे। 'गोल्ड फ्लैक' (सिगरेट) सुलगाते हुए एक भाई बोल उठे—'चला जा! पता नहीं, ऐसे कितने ढोंगी-फरेबी चले आते होंगे। हरामकी हड्डी हो गयी। आगे चल, दुर्गन्ध आ रही है।'

हम चार-पाँच मित्र इकट्ठे करके उस वृद्धको कुछ देनेकी तैयारी कर रहे थे। इतनेमें ही बगलके खोमचेवालेके हृदयमें राम जाग उठा। पावरोटीके दो बड़े-बड़े टुकड़े देते हुए उसने प्रेमसे कहा—'लो बाबा, यह खा लो।'

काँपते हाथों उस वृद्धने पावरोटी खाना आरम्भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। चार-पाँच ग्रास खाये होंगे कि 'ओ मा' पुकारता हुआ एक आठ-नौ वर्षका पंगु बालक नंगे बदन आँसूभरी आँखोंसे कुछ माँगने आ गया। उसे कुछ देनेकी बात तो दूर रही, किसीने उसकी ओर ताका ही नहीं। कुछ आशासे करुण चेहरा किये वह बच्चा उस वृद्धके पास खड़ा रहा। उसने उस बच्चेसे बड़ी मिठासके साथ कहा—'अरे भूखा है? बोलता क्यों नहीं? ले.... खा......।' यों कहकर मन्द-मन्द हँसते हुए उस बूढ़ेने पावरोटीका एक टुकड़ा उस बच्चेको दे दिया। उसके चेहरेपर आत्मसन्तोषकी रेखाएँ स्पष्टरूपसे अंकित हो गयीं।

मैं इस दृश्यको देखता ही रह गया। कैसा मौन उपदेश था। कैसा प्रेरक सन्देश था। हम अघाये हुए होनेपर भी भूखेको कुछ खिलानेमें असमर्थ थे। उधर वह बूढ़ा स्वयं भूखा रहकर दूसरेकी भूख मिटा रहा था। उसके विशाल हृदयके सामने हमारा हृदय नितान्त नगण्य था। भौतिक क्षेत्रमें आगे बढ़े हुए हम आध्यात्मिक क्षेत्रमें बहुत पीछे थे, पर वह बूढ़ा तो आध्यात्मिक क्षेत्रमें बहुत आगे बढ़ चुका था।—**चन्द्रकान्त बी० त्रिवेदी**

(५)

धर्मग्रन्थोंके अध्ययनसे स्वप्नमें भगवद्दर्शन

बात उन दिनोंकी है, जब मैं दसवीं कक्षामें पढ़ता था, पढ़ाईके साथ-साथ पूजनीया माताजीके द्वारा मुझे भगवान्‌की पूजा एवं भजन करने तथा धार्मिक ग्रन्थोंका अध्ययन करनेकी भी प्रेरणा मिलती थी। माताजी 'कल्याण' पत्रिकाकी आजीवन सदस्या थीं, जिससे मुझे भी पत्रिका पढ़नेमें रुचि तथा ईश्वरके प्रति आस्था एवं श्रद्धा हो गयी थी।

जूनका महीना था मेरी हाईस्कूलकी बोर्ड परीक्षा हो चुकी थी और अब परीक्षाफल आना था। परीक्षोपरान्त स्कूलमें वार्षिक अवकाश होनेके कारण मेरा अधिकतर समय 'कल्याण' की मासिक पत्रिकाएँ एवं विशेषांक पढ़नेमें बीत रहा था। भगवान् कृष्ण तथा वृषभानुदुलारी श्रीराधाजीसे सम्बन्धित अनेकों लेखोंको इस बीच पढ़नेका सुअवसर प्राप्त हुआ, जिससे मुझमें इनके प्रति श्रद्धा पूर्ण रूपसे विकसित हो चुकी थी। मुझे ध्यान नहीं कि वह कल्याणका किस वर्षका विशेषांक था, जिसमें युगल सरकार राधा एवं कृष्णका काला चित्र भी उस लेखके बीचमें बना हुआ था, जिसको मैंने पढ़ा था तथा रंगीन चित्रके दर्शन भी विशेषांकमें किये थे। ये दिन सम्भवतः जून १९६६ ई० के अन्तिम सप्ताहके थे। मेरा परीक्षाफल भी इन्हीं दिनोंमें आनेवाला था।

एक दिन रातको स्वप्नमें मैंने देखा कि भगवान् कृष्ण एवं राधाजी मेरे पास आये हैं। उनका स्वरूप ठीक वैसा ही था, जैसा कि मैंने विशेषांकमें बने चित्रमें देखा था। मैंने देखा कि राधा और कृष्ण मुझको नींदसे जगाकर मुझे मेरा रोल नम्बर द्वितीय श्रेणीके उत्तीर्ण परीक्षाफलकी पंक्तिमें दिखा रहे हैं, स्वप्नमें ऐसा देखते-देखते भगवान्‌का वह युगल स्वरूप अन्तर्धान हो गया, मैं सहसा अपनी चारपाईपर उठकर बैठ गया तथा मेरा सम्पूर्ण शरीर युगल स्वरूपके दर्शन करके इतना रोमांचित था कि मैं इसका वर्णन करनेमें अपनेको आज भी असमर्थ समझता हूँ। मैंने कुछ देर बाद रातमें ही यह घटना अपनी पूजनीया माताजीको बतायी तो वे भी यह सुनकर अत्यन्त सुखको प्राप्त हुईं।

सुबह हुई। दिन निकलते ही पता चला कि हाई स्कूलका परीक्षाफल आ चुका है तथा एक दुकानदारकी दूकानपर देखनेको मिल रहा है, मैं माताजीकी अनुमति प्राप्तकर अपना परीक्षाफल देखने दूकानपर गया।

समाचार-पत्र देखते ही मेरे स्वतः आँसू निकलने लगे, मैं इतना आत्मविभोर था कि उस ईश्वरीय कृपाको बताना असम्भव है, उस समाचार-पत्रपर छपाई हूबहू बिलकुल वैसी ही थी तथा उसी तरहसे मेरा रोल नम्बर भी उसी पंक्तिमें छपा था, जो कि मैंने कुछ घण्टों पूर्व रातको स्वप्नमें देखा था, जो भगवान्‌के द्वारा मुझे दिखाया गया था।

इस सच्ची घटनाको आज भी मैं भुला न सका हूँ, न ही जीवनमें कभी भूल पाऊँगा। इस घटनासे यह विश्वास और भी बढ़ जाता है कि यदि भगवान्‌के प्रति सच्ची लगन एवं निष्ठा हो तो आज भी भगवान् आपसे दूर नहीं हैं, उनकी कृपा प्रत्येक व्यक्तिपर सदैव बरसती रहती है। एक बार विश्वास करके तो देखो।

—**कैलाश मिश्र 'रसिक'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

(१)

माँगना है तो ईश्वरसे माँग

बादशाह अकबर एक दिन जंगलमें आखेट कर रहे थे। वे भटककर रास्ता भूल गये। देर हो गयी तो उन्हें प्यास और भूख सताने लगी। ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे प्राण होंठोंपर आ गये हों। तभी उन्होंने एक खेत देखा। उसके किनारे एक किसान खड़ा था। वे किसानके पास आकर बोले—'तुम्हारे पास कुछ खानेको है?'

किसानने कहा—'क्यों नहीं, आओ बैठो।' उसने बादशाहको अपने पासकी रूखी-सूखी रोटी खिला दी, दूरसे लाकर पानी भी पिला दिया। खा-पीकर बादशाह प्रसन्न हुए और किसानसे बोले—'तुम क्या काम करते हो?'

किसानने कहा—खेती-बारी करता हूँ, बहुत कठिनतासे जीवन-निर्वाह होता है।

अकबरने कहा—'सुनो, मैं हूँ भारतका बादशाह। कभी आवश्यकता पड़े तो मेरे पास आगरा आना।' यह कहकर वे चले गये। किसानने उन्हें मार्ग बता दिया।

इस घटनाको घटित हुए कई वर्ष बीत गये। एक बार सालभर वर्षा नहीं हुई। किसानका खेत सूख गया। उसने सोचा कि बादशाहके पास चलता हूँ, उनसे कुछ सहायता माँगूँगा। वह अपने गाँवसे चल पड़ा और राजधानीमें पहुँचा। वहाँ देखा कि बादशाहकी सवारी जा रही है। बहुत बड़ा लाव-लश्कर उनके साथ है। बादशाह हाथीपर बैठे हैं। किसानने देखते ही आवाज दी—'अकबरा! ओ अकबरा!'

सुननेवाले आश्चर्यचकित रह गये कि यह कौन असभ्य आ गया? किसीने कहा—'इसका सिर काट दो। यह असभ्य है।'

अकबरने भी इस आवाजको सुना। दूरसे ही देखकर उसे पहचान लिया। बादशाहने उसे अपने पास बुलाया और हाथीपर बैठा लिया। जब वे महलमें पहुँचे तो नौकरोंको आज्ञा दी कि 'यह मेरे ही कमरेमें सोयेगा। इसने मेरी जान बचायी थी। मेरे कमरेमें इसके लिये पलंग लगा दो।' अकबरने रातको उसे अपने साथ ही खाना खिलाया और उसके सो जानेपर स्वयं सोये।

प्रातःकाल किसान उठा तो देखा कि बादशाह एक कपड़ा बिछाकर उसपर बैठे हैं और घुटने टेककर, हाथ फैलाकर पता नहीं किससे क्या माँग रहे हैं! वस्तुतः बादशाह नमाज पढ़ रहे थे। जब वे उससे निवृत्त हुए, तब किसानने पूछा—'यह तुम क्या करते थे?'

बादशाहने कहा—'आशीर्वाद माँगता था।'

किसानने पूछा—'किससे?'

बादशाहने कहा—'भगवान्‌से।'

किसानने कहा—'अच्छा।' और अपनी लाठी उठाकर चल पड़ा।

बादशाहने कहा—'अरे, तुम कहाँ जाते हो? यह तो बताओ कि तुम किसलिये आये थे?'

किसानने कहा—'बादशाह! मैं आया था तुमसे सहायता माँगने; परंतु यहाँ आकर देखा कि तुम भी माँगते ही हो। अब मैं भी उसीसे माँग लूँगा! तुम स्वयं माँगनेवाले हो, तुमसे क्या माँगूँगा मैं।'

ऐसा अटल विश्वास जिसके हृदयमें है, वही परमात्माकी उपासनाका अधिकारी है।

'मीर' बंदोंसे काम कब निकला।
माँगना है जो कुछ खुदासे माँग॥

(२)

ज्ञानमयी श्रद्धा

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक बचपनमें अपने गाँवमें एक मौलवीसाहबसे पढ़ा करते थे। प्रारम्भिक पढ़ाई समाप्त होनेपर उन्हें पाठशाला भेजा गया। तब यह प्रश्न आया कि 'मौलवीसाहबको क्या भेंट दी जाय?' उनके पिताजी मौलवीसाहबको मासिक वेतनके अतिरिक्त और भी कुछ भेंट करना चाहते थे।

तभी तिलक बोले—'पिताजी! इन्हें अपनी दूध देनेवाली बढ़िया गाय दे दीजिये। इन्होंने मुझे सबसे बढ़िया विद्याका दूध पिलाया है।

शिष्यकी इस ज्ञानमयी श्रद्धासे पिता तथा गुरु दोनों पुलकित हो उठे। **—श्रीबल्लभदासजी बिन्नानी**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकोंसे निवेदन

इस वर्षके 'कल्याण' विशेषाङ्कके रूपमें '**श्रीभक्तमाल-अङ्क**' आपने पढ़ा होगा। यह श्रीनाभादासजी द्वारा रचित साहित्यका एक अनमोल ग्रन्थ है। इसमें अनेक भक्तोंके संक्षेपमें जीवन-चरित्र दिये हुए हैं। भगवान् एवं उनके भक्तोंके चरित्र मानव-कल्याणके सहज साधन हैं।

आप अपने इष्ट-मित्रों, सगे-सम्बन्धियोंको एवं व्यापारिक संगठनोंमें अपने सहयोगी, ग्राहकों आदिको 'कल्याण' पत्रिकाके पाठक बनाकर उनके कल्याण-मार्गमें सहयोगी बन सकते हैं।

इसके लिये वार्षिक सदस्यता-शुल्क रु० २००/- (अथवा पंचवर्षीय सदस्यता-शुल्क रु० १०००/-) उनके नाम एवं पूरा पता भेजकर उनको 'कल्याण' पत्रिकाके सदस्य बना सकते हैं।

इससे उन्हें '**श्रीभक्तमाल-अङ्क**' रजिस्ट्रीसे एवं मासिक अंक साधारण डाकसे वर्षपर्यन्त प्रेषित होते रहेंगे। आपका उपर्युक्त उपहार उन्हें आह्लादित करेगा।

व्यवस्थापक—**'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)**

'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

१-प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर,

२-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक,

३-मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—केशोराम अग्रवाल,

(गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये),

राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,

४-सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका,

राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,

५-उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं:—गोबिन्दभवन-कार्यालय, १५१, महात्मा गाँधी रोड, कोलकाता (पश्चिम बंगाल सोसाइटी पंजीयन अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत पंजीकृत)।

मैं केशोराम अग्रवाल गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं। केशोराम अग्रवाल,

(गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये)—प्रकाशक

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्संगकी सूचना

गीताभवन, स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें ग्रीष्मकालमें सत्संगका लाभ श्रद्धालु एवं आत्मकल्याण चाहनेवाले साधकोंको प्रारम्भसे ही प्राप्त होता रहा है। **पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी वैशाख कृष्णपक्ष तृतीया (२८ अप्रैल)-से सत्संगका आयोजन किया गया है।** इस अवसरपर संत-महात्मा एवं विद्वद्गणोंके पधारनेकी बात है। **गीताभवनमें चैत्र एवं आश्विन नवरात्रमें श्रीरामचरितमानसका सामूहिक नवाह्नपाठका कार्यक्रम रहता है।** गीताभवनमें आयोजित दुर्लभ सत्संगका लाभ श्रद्धालु और कल्याणकामी साधकोंको यहाँ पधारकर अवश्य उठाना चाहिये।

गीताभवनमें संयमित साधक-जीवन व्यतीत करते हुए सत्संग-कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होना अनिवार्य है। यहाँ आवास, भोजन, राशन-सामग्री आदिकी यथासाध्य व्यवस्था रहती है।

महिलाओंको अकेले नहीं आना चाहिये, उन्हें किसी निकट सम्बन्धीके साथ ही यहाँ आना चाहिये। गहने आदि जोखिमकी वस्तुओंको जहाँतक सम्भव हो नहीं लाना चाहिये।

व्यवस्थापक—**गीताभवन, पो०-स्वर्गाश्रम—२४९३०४**

पुनः छपकर तैयार— **श्रीकृष्णाङ्क (कोड 1184)**—इस विशेषाङ्कमें भगवान् श्रीकृष्णके मधुर एवं ज्ञानपरक चरित्रपर अनेक सन्त-महात्मा, विद्वान् विचारकोंके शोधपूर्ण लेखोंका अद्भुत संग्रह है। मूल्य रु० १५०

गीता-दैनन्दिनी २०१३—गतवर्षसे अधिक संख्यामें छापनेके उपरान्त भी गीता-दैनन्दिनी २०१३ गोरखपुरमें दिसम्बर मासमें ही लगभग समाप्त हो गयी। सिर्फ **पॉकेट साइज**-सुन्दर प्लास्टिक आवरण (**कोड नं० 506**) मूल्य रु० २५ सीमित संख्यामें ही उपलब्ध है। उपहार-स्वरूप बाँटनेवाले पाठकोंको एक बण्डल (१८० प्रतियाँ) या अधिक एक साथ मँगवानेपर ३० प्रतिशत डिस्काउन्ट देय है। मँगवानेमें शीघ्रता करें।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र० ति० २०-२-२०१३

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2011-2013

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2011-2013

श्रीमहाशिवरात्रिपर्वपर पाठ-पारायण एवं स्वाध्याय-हेतु प्रमुख प्रकाशन

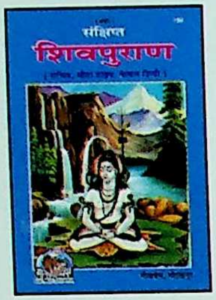

संक्षिप्त शिवपुराण, सचित्र (मोटा टाइप) कोड 789, ग्रन्थाकार, सजिल्द—इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म श्रीशिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें इन्हें पञ्चदेवोंमें प्रधान अनादि सिद्ध परमेश्वरके रूपमें स्वीकार किया गया है। शिव-महिमा, लीला-कथाओंके अतिरिक्त इसमें पूजा-पद्धति, अनेक ज्ञानप्रद आख्यान और शिक्षाप्रद कथाओंका सुन्दर संयोजन है। भगवान् शिवके उपासकोंके लिये यह पुराण संग्रह एवं स्वाध्यायका विषय है। मूल्य रु० १५०, डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ४० अतिरिक्त। **(कोड 1468)** विशिष्ट संस्करण मूल्य रु० २००, डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ४५ अतिरिक्त। **(कोड 1286)** गुजराती, **(कोड 975)** तेलुगु, **(कोड 1937)** बँगला, **(कोड 1926)** कन्नड़ भी उपलब्ध।

कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०
1417	शिवस्तोत्ररत्नाकर-सानुवाद	२५
1156	एकादश रुद्र (शिव)-चित्रकथा	५०
204	ॐ नमः शिवाय-चित्रकथा	२०
1343	हर हर महादेव-चित्रकथा	२०
563	शिवमहिम्नःस्तोत्र (मराठी, तेलुगु भी)	४
228	शिवचालीसा-पॉकेट साइज	२
1185	शिवचालीसा-लघु (बँगला भी)	१
1599	श्रीशिवसहस्त्रनामस्तोत्रम् (नामावलिसहितम्)	६
230	अमोघ शिवकवच	२
1627	रुद्राष्टाध्यायी-सानुवाद	२०

चैत्र नवरात्रके अवसरपर नित्य पाठके लिये 'श्रीरामचरितमानस'के विभिन्न संस्करण

कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०
1389	**श्रीरामचरितमानस**—बृहदाकार (वि०सं०)	५००
80	,, बृहदाकार-सटीक (सामान्य संस्करण)	४००
1095	,, ग्रन्थाकार-सटीक (वि०सं०) गुजरातीमें भी	२४०
81	,, ग्रन्थाकार-सटीक, सचित्र, मोटा टाइप, [ओड़िआ, तेलुगु, मराठी, गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी भी]	१९०
1402	,, सटीक, ग्रन्थाकार (सामान्य संस्करण)	१५०
1563	,, मझला, सटीक (विशिष्ट संस्करण)	१०५
1436	,, मूलपाठ, बृहदाकार (प्रकाशनकी प्रक्रियामें)	
82	**श्रीरामचरितमानस**—मझला साइज, सटीक, [बँगला, गुजराती, अंग्रेजी भी]	८५
1318	,, रोमन एवं अंग्रेजी-अनुवादसहित	२००
83	,, मूलपाठ, ग्रन्थाकार [गुजराती, ओड़िआ भी]	१००
84	,, मूल, मझला साइज [गुजराती भी]	६०
85	,, मूल, गुटका [गुजरातीमें भी]	४०
1544	,, मूल गुटका (विशिष्ट संस्करण)	४०
1349	,, सुन्दरकाण्ड सटीक, मोटा टाइप, दो रंगमें	२०

नित्यपाठके लिये 'श्रीदुर्गासप्तशती'के विभिन्न संस्करण

कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०
1567	**श्रीदुर्गासप्तशती**—मूल, मोटा टाइप (बेड़िआ)	३०
117	,, मूल, मोटा टाइप (तेलुगु, कन्नड़में भी)	२०
876	,, मूल, गुटका	१०
1727	,, मूल, लघु आकार	१०
1346	,, सानुवाद, मोटा टाइप	२५
1281	,, सानुवाद (राजसंस्करण)	४५
118	**श्रीदुर्गासप्तशती**—सानुवाद, सामान्य टाइप (गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी)	२२
489	,, सजिल्द, गुजरातीमें भी	३०
866	,, केवल हिन्दी	१५
1161	,, ,, मोटा टाइप, सजिल्द	४५
1774	**देवीस्तोत्ररत्नाकर**	२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भगवती महादुर्गा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

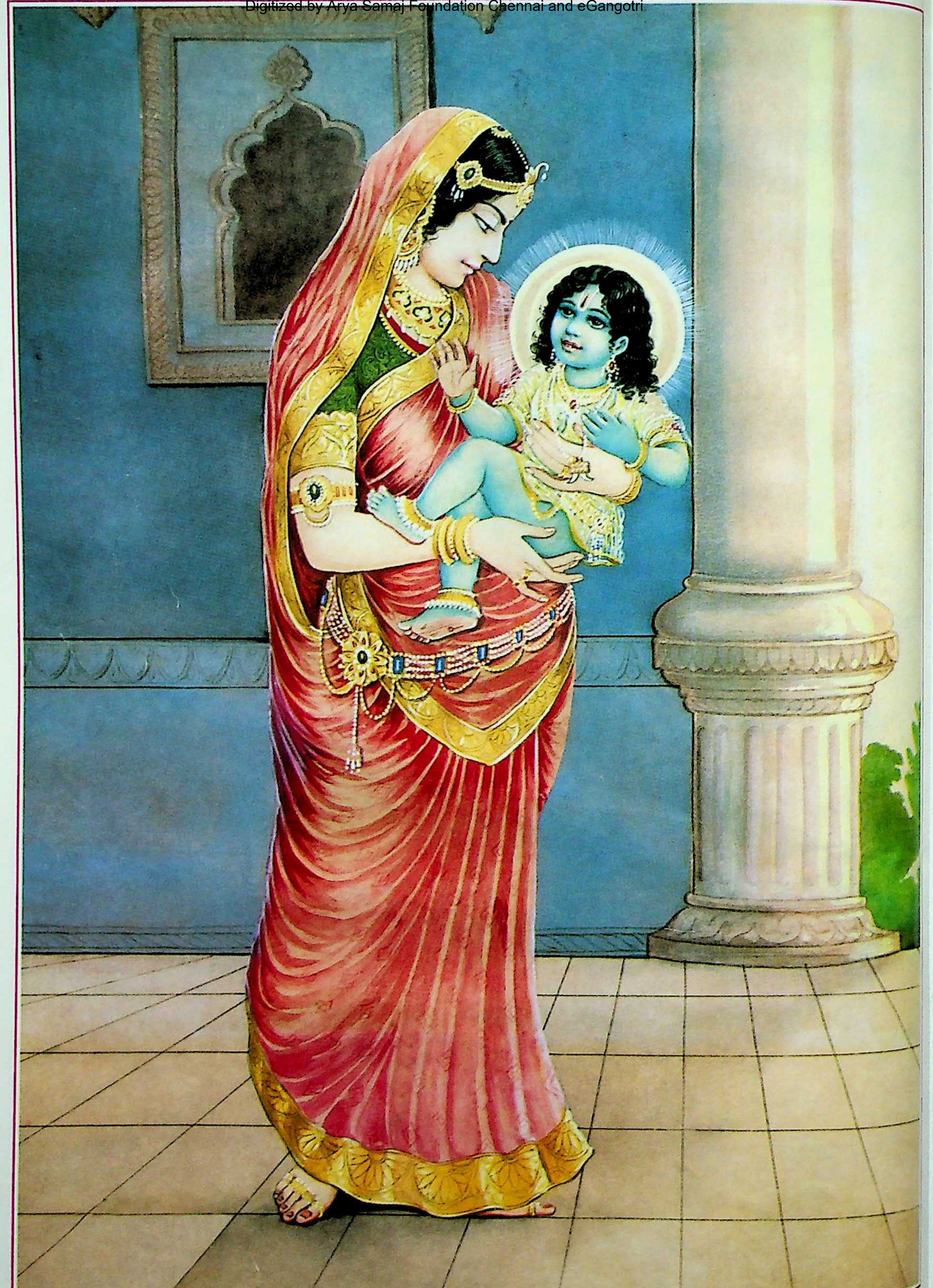

माताकी गोदमें श्रीराम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

वाग् गद्‌गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्‌गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

वर्ष ८७ | गोरखपुर, सौर वैशाख, वि० सं० २०७०, श्रीकृष्ण-सं० ५२३९, अप्रैल २०१३ ई० | संख्या ४
पूर्ण संख्या १०३७

माता कौसल्याकी गोदमें भगवान् श्रीराम

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥
काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती॥
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहिं देखा॥
भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हियँ हरि नख अति सोभा रूरी॥
उर मनिहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा॥
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई॥
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे॥
सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥
पीत झगुलिआ तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई॥
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा। सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा॥
[श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर वैशाख, वि० सं० २०७०, श्रीकृष्ण-सं० ५२३९, अप्रैल २०१३ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- माता कौसल्याकी गोदमें भगवान् श्रीराम	६१५
२- कल्याण	६१७
३- साधनामें तत्परता (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	६१८
४- घूँघटके पट खोल (श्रीरामनाथजी 'सुमन')	६२०
५- पाप होने कैसे बन्द हों? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	६२२
६- बड़भागी कौन? (श्रीसुभाषचन्द्रजी बग्गा)	६२४
७- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	६२९
८- अनूठा बदला (प्रो० श्रीशिवानन्दजी)	६३१
९- कर्तव्यकी कसौटी (स्वामी श्रीमहेशानन्दगिरिजी महाराज) [प्रेषक—श्रीबुलाकीदासजी मीमाणी]	६३३
१०- 'नामु राम को कलपतरु' (श्रीदेवेन्द्रजी शर्मा)	६३५
११- तितिक्षाकी साधना (डॉ० श्रीबसन्तबल्लभजी भट्ट, एम०ए०, पी-एच०डी०)	६३८
१२- मंजु मनोरथ [कविता] (स्वामी श्रीनर्मदानन्द सरस्वतीजी 'हरिदास')	६३९
१३- संक्षिप्त वेद-परिचय	६४०
१४- नवधा भक्ति—(१) श्रवण [कहानी] (श्री 'चक्र')	६४६
१५- जीवनकी मधुरताका नाशक—शंकालु स्वभाव (श्रीहरिशंकर बी० जोशी)	६४९
१६- गोवंशका विनाश—महान् अनर्थकारी (श्रीसुभाषजी पटेल)	६५०
१८- वीर अभिमन्यु [वीरगाथा] (प्रो० श्रीकृष्णबिहारीजी पाण्डेय)	६५१
१९- साधनोपयोगी पत्र	६५३
२०- व्रतोत्सव पर्व [ज्येष्ठमासके व्रत-पर्व]	६५६
२१- कृपानुभूति	६५७
२२- पढ़ो, समझो और करो	६५८
२३- मनन करने योग्य	६६२

चित्र-सूची

चित्र		पृष्ठ
१- भगवती महादुर्गा	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- माताकी गोदमें श्रीराम	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- भक्तिमती अहल्या	(इकरंगा)	६२४
४- श्रीभरतजी	(,,)	६२६
५- अनन्य भजनसे महापापी भक्त बन जाता है	(,,)	६२९
६- आतिथ्य धर्म	(इकरंगा)	६३१
७- शिव-पार्वतीका राम-नाम-जप	(,,)	६३७
८- वेदव्यासजी	(,,)	६४१
९- शंकालु स्वभावका दुष्परिणाम	(,,)	६४९
१०- अभिमन्यु-युधिष्ठिर-संवाद	(,,)	६५१
११- अभिमन्युका शौर्य	(,,)	६५२

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द १८० रु०
सजिल्द २०० रु०

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ९०० रु०
सजिल्द १००० रु०

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 40 (Rs.2200), पंचवर्षीय US$ 200 (Rs.11000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | © (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—श्रीभगवान् परम आनन्द और परम शान्तिके समुद्र हैं। उन श्रीभगवान्के साथ तुम्हारा सम्बन्ध जितना ही बढ़ता जायगा, उतना ही आनन्द और शान्ति भी तुम्हारे अन्दर बढ़ते जायँगे।

फिर तुम जहाँ भी जाओगे, आनन्द और शान्तिको साथ लेते जाओगे और तुम्हारे आनन्द तथा शान्तिसे जगत्के प्राणियोंको भी यथायोग्य आनन्द और शान्तिकी प्राप्ति होगी।

साथ-ही-साथ तुम भी क्रमशः अधिक-से-अधिक आनन्द और शान्तिकी प्राप्ति करते जाओगे; क्योंकि तुम्हारा हृदय हर समय, हर स्थानमें उनका आकर्षण करता रहेगा।

तुम्हारे हृदयका द्वार जिसके लिये खुला होता है, तुम्हें वही वस्तु मिलती है और जो वस्तु अन्दर होती है, उसीको और अधिक पानेके लिये हृदयका द्वार भी खुला रहता है।

याद रखो—तुम यदि आनन्द और शान्ति चाहते हो तो आनन्द और शान्तिके सागर भगवान्से सम्बन्ध जोड़ो, तुम्हारे हृदयमें आनन्द और शान्ति आयेगी और ज्यों-ज्यों वह जगत्में फैलेगी, त्यों-ही-त्यों तुम्हारे अन्दर भी बढ़ती जायगी।

तुम यदि भगवान्के सम्बन्धको भूलकर शोक और अशान्तिसे भरे विषय-वैभवसे सम्बन्ध जोड़ोगे तो तुम्हें आनन्द और शान्तिके बदले शोक और अशान्तिकी प्राप्ति होगी।

फिर ज्यों-ज्यों तुम्हारा विषय-सम्बन्ध बढ़ता जायगा, त्यों-ही-त्यों शोक और अशान्ति भी बढ़ते जायँगे।

फिर तुम जहाँ जाओगे—शोक और अशान्ति भी तुम्हारे साथ जायँगे और जगत्के प्राणियोंमें फैलकर बदलेमें तुम्हारे शोक और अशान्तिको और भी बढ़ा देंगे।

तुम्हारे हृदयका दरवाजा आनन्द और शान्तिके लिये बन्द हो जायगा और तुम शोक तथा अशान्तिसे सन जाओगे।

फिर, जगत्की ऊँची-से-ऊँची किसी स्थितिमें भी तुम्हें आनन्द और शान्तिके यथार्थ दर्शन नहीं होंगे।

इसलिये परम शान्ति और परमानन्दमय भगवान्के साथ सम्बन्ध जोड़ लो, फिर तुम जहाँ भी रहोगे, वहीं शान्ति और आनन्दको आकर्षित कर सकोगे और दूसरोंमें वितरण भी कर सकोगे।

उन मनुष्योंका संग करो, अधिक-से-अधिक समय उनके साथ रहने और उनके निकट होकर उनकी सेवा करनेमें बिताओ, जिनका हृदय परम शान्ति और परम आनन्दके समुद्र भगवान्में निमग्न है। उनके संगसे—अविरत संगसे तुम्हारे हृदयका सम्बन्ध भी भगवान्के साथ जुड़ जायगा। फिर तुम्हारे हृदयके द्वार भी परम आनन्द और परम शान्तिके लिये खुल जायँगे।

याद रखो—ऐसे महापुरुष जगत्में सर्वत्र शान्ति और आनन्दका प्रवाह ही बहाया करते हैं; जहाँ शोक, अशान्ति, विषाद और भय होता है, वहाँ यदि उनकी हृदयस्थ शान्ति और आनन्दकी किरणें पहुँच जाती हैं तो वे शोक, अशान्ति आदिके अन्धकारका नाश करके आनन्द और शान्तिकी अत्युज्ज्वल चाँदनी फैला देती हैं। **'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनामें तत्परता

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

बड़े आश्चर्यकी बात है—लोगोंको साधनकी तत्परता क्यों नहीं होती! जैसे कुछ हिम्मत मालूम देती है, किंतु यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि मृत्युका भरोसा नहीं है। बेहोशीमें मृत्यु होती है—वह तामसी होती है और '**अधो गच्छन्ति तामसाः।**' तत्परता भी नहीं है और ज्ञान या भक्तियोगका सहारा भी नहीं है तथा व्यवहार ऐसा है कि जैसे सब कुछ करके निश्चिन्त बैठे हैं, कुछ परवा नहीं है। ऐसे समयमें कोई कुछ कहता है तो उसीको कहते हैं आप हमारा उद्धार कर दें।

आज अभी हम राजी-खुशी हैं। एक क्षणमें मृत्यु हो जायगी तो क्या करोगे? यह भी तो नहीं है कि जो करना था सो कर लिया, यह भी नहीं है कि भगवान्‌के प्रेम-प्रभावकी ही बातें सुनते-सुनते मरेंगे, किसी प्रकारका कुछ भी भरोसा नहीं है, फिर भी साधनमें नहीं लगते, कितनी बड़ी भूल है। यहाँ आये हो कोई भी जरूरी काम नहीं है, यदि हो भी तो तुम्हारे उत्तराधिकारी उसे पूरा करेंगे ही। तुम्हारे मरनेके बाद मालिक बहुत बन जायँगे और यदि न भी हों तो मत हों, तुम्हारा क्या सम्बन्ध रह जायगा जब शरीर छोड़ दोगे, किंतु वह काम तो तुम्हारे करनेका है। यदि नहीं किया तो हानि तुम्हारी ही होगी और काम है आत्माका कल्याण करना, सो तुम्हारे मरनेके बाद दूसरे काम तो और दूसरे कर लेंगे; किंतु यह कोई नहीं करेगा। दूसरा कर सकेगा यह मानना असम्भव है। अतएव सबसे जरूरी काम यही है। इसको मुख्य समझकर और गौणवृत्तिसे दूसरा काम करते जाओ।

रोज देखते हैं—लोग मर रहे हैं, फिर भी चेत नहीं होता। तुलसीदासजी ऐसे पुरुषोंके लिये कहते हैं—

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

परमात्मप्राप्तिकी सब सामग्री मौजूद है फिर भी भजनकी कमी रही तो पूर्ति कब होगी? इसलिये सब कार्योंको गौण समझकर उनका तिरस्कार कर देना चाहिये; नहीं तो याद रखो—तुम्हारा तिरस्कार होगा। कोई भी रक्षा करनेवाला नहीं है। जीविकाकी चिन्ता करना भी मूर्खता है। देखो, तुम्हारे देखते-देखते कुत्ते, पशु, पक्षी जी रहे हैं। जिनका हाट-बाजार कुछ नहीं, उनका भी भरण-पोषण होता है, तुम तो मनुष्य हो, दूसरोंका उपकार कर सकते हो; फिर भी तुमको चिन्ता है तो मूर्खता है।

स्त्री-बालक तो तुम्हारे पूर्वजन्ममें अनेक हो चुके हैं और एक यह भी हैं जिनके साथमें रहते हो तो इनकी चिन्ता करना भी व्यर्थ है। इसलिये हमको सोचना चाहिये और घोर (अज्ञान) निद्रासे जागना चाहिये '**उत्तिष्ठत जाग्रत।**' इस प्रकार कह रहे हैं भक्त, शास्त्र, वेद, तुलसीदास आदि। सब-के-सब पुकार रहे हैं—

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥
कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखो आय॥
दो बातन को भूल मत जो चाहत कल्यान।
नारायन एक मौत को दूजे श्रीभगवान॥

इतना होनेपर भी हमको न जाने क्या हो गया है कि सुनकर-समझकर भी जोरके साथ साधनमें नहीं लगते, तत्पर नहीं होते। मार्ग भी सीधा पड़ा है। पूछनेकी आवश्यकता भी नहीं है। आँख मीचकर चले जाओ तो भी हानि नहीं है—एक ही सड़क है। घोषणा कर रहे हैं भगवान्—'**तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्**' (गीता १२। ७)। नावका केवट जोर-जोरसे पुकार रहा है—चले आओ! चले आओ!! नौका तैयार है, मेरा ध्यान करते हुए चले आओ! यह देखो ध्वजा फहरा रही है—क्या नहीं दीखती तुम्हें?

देखो भाई, हमारी कितनी भूल है। अरे, ख्याल करो—यदि हम राह भूल जायँ तो वह जाने नहीं देता। बिलकुल सीधा रास्ता है, बिना कष्टका रास्ता है, वह सीधी सड़क है। परमात्माकी भक्ति और प्रेमकी सड़क, कठिनवालेको कठिन और सुगमवालेको सुगम है, किंतु नाम लेते जाओ लक्ष्य कर लो। उसका तो साइनबोर्ड लगा है। वह स्वतः ही कहीं तुमको न जाने देगा। उसके अनेक नाम हैं—जो याद रहे उसीको याद रखो। वह आनन्दमयी सड़क बड़ी सीधी है, चारों ओर आनन्द-ही-आनन्द है। मस्त होते चले जाओ। अरे, देहाभिमान तो निकल ही जाता है। हमको तो देहाभिमान निकालना नहीं आता। एक देहसे दूसरी देहमें जाते हैं, सो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसको तो आनन्दमयी सड़कपर चलने दो। प्रभुकी दयासे आप ही विलग हो जायगा। क्या तुम शरीर हो?

विचारसे तो मालूम नहीं होता, बुद्धिसे होता है। बताओ?

तुम्हारे हाथमें आत्मा है? बोला—है, तो काटो; कहते हैं—नहीं कटती, तो फिर रहेगी न? बात यही है कि आत्मा तुम्हारे अन्त:करणमें है, हाथ-पाँवमें नहीं। शरीर कहते ही आत्माभिमान चला जाता है। हमारा ही हाथ काट डाले तो कहते हैं—दुर्गन्ध आयेगी, ले जाओ इसको। जिस प्रकार कटे हुए हाथको बेपरवाह फेंकते हो, उसी प्रकार शरीरके साथ आत्माका सम्बन्ध त्याग दो। यह तो तुम्हारा बनाया हुआ है। असली होता तो वियोग ही क्यों होता? इसीलिये जीते-जी यदि अभिमान त्याग दोगे तो अमृतको प्राप्त होओगे।

ममता ही आपत्ति है।

विचार करो—तुम्हारे स्वप्न, जाग्रत् शरीरमें कोई फर्क नहीं है, उसी प्रकार जैसे दूसरोंके शरीर हैं, वैसा तुम्हारा है। इसलिये अभ्याससे विज्ञानानन्दघन परमात्मामें डेरा जमा लो और दूसरा नाता तोड़ो। सबमें एक ही दृष्टि रखो।

होता नहीं, क्या करना? देखो—यदि हमको इस मकानसे उसमें जाना है तो पहले मकानको छोड़नेमें कुछ आपत्ति होती है? नहीं होती। तो देखो, तुम्हारे स्थूल शरीर फिर सूक्ष्म फिर कारण आदि हैं। यदि रक्षा चाहते हो तो ऐसे स्थानका आसरा लो, जहाँ कुछ भी भय नहीं हो। तुमने तो जो शरीर नाशवान् है, उसका आसरा कर रखा है। विश्वास करके परमात्माकी शरण चले ही जाओ। वह तैयार खड़ा है। यदि राहमें तुम्हें कोई शरणमें लेना चाहे तो मत जाना। वे तुमको लूट लेंगे। मारकर चले जायँगे।

शरण-योग्य तो वही प्रभु है। जिस क्षण पुकारो तैयार खड़े हैं। यदि ऐसा न किया तो भाई! बड़ी आपत्ति है, अन्तिम कालमें आँख फाड़कर क्या आश्चर्य करते हो? तब कुछ नहीं काम आयेगा और भाइयो! नम्बर तो आगे-पीछे सबका आ ही रहा है। धोखा और बिलकुल धोखा! जरा-सी देरमें लय हो जाय तो कहीं टुकड़ा नहीं मिलता—यह ईश्वरकी माया है। ऐसा सोचकर भी क्या सावधान नहीं होते। मंडेरीका दिया तो बुझ जानेपर फिर जला दिया जाता है, पर यह दिया बुझा तो फिर नहीं जलाया जायगा।

कोई पूछता है—क्यों भाई! कुछ उन्नतिकी चेष्टा नहीं करते हो? क्या भरोसा है! कुछ बोले नहीं? तो कहा—मूर्ख! जोरकी बाढ़ आ रही है, मर जायगा न, किंतु वह वहीं पड़ा है। बिलकुल नहीं सुनता, वहीं पड़ा है। वह कहता है बड़ा मूर्ख है और आश्चर्य करता है। इसलिये भाई! जो गयी, सो गयी। अब समय हाथमें है। विश्वास करो—हमारे लिये बहुत है। इतनेमें भी कल्याण हो जायगा। यदि कोई अभी मरनेवाला हो तो भी उसका काम हो सकता है। वह उपाय यही है कि प्रभुका नाम-रूप पकड़ रखो। उसमें कोई कष्ट नहीं है। जबतक नौका किनारे नहीं लग जाय, तबतक पकड़े रहो। नौका तो दृढ़ है और केवट भी होशियार है।

नौका—मनुष्य-शरीर। **केवट**—भगवान्। **रस्सा**—नाम। **चढ़ना**—निश्चिन्त बैठकर जप करना। **समुद्र**—संसार। **जल**—सांसारिक विषय-भोग। **गोदमें बैठना**—ध्यान करना।

बस, यही सोचो कि हम गोदमें बैठे हैं। निराकारवाले हों या साकारवाले, जो भी हों। चारों ओर उसको देखना ही उसकी गोदमें बैठना है। सच्ची आनन्दमयी माताकी गोदमें बैठे रहो, तुमको कोई भय नहीं है। या जो जिसका इष्ट हो उसीकी गोदमें बैठ जाओ और ऐसा देखो कि मैं उनकी गोदमें बैठा हूँ और उनका हाथ हमारे सिरपर है और हम अभय हैं। अब अपनेको वहाँसे उठना ही नहीं है। हमारे शरीरकी सँभाल भी तो वही करता है जैसे बच्चेके शरीरकी सँभाल माता करती है।

बस, उनकी पूर्ण दया और प्रेम समझकर उन्हींकी गोदीमें बैठे रहो। सदैव सुखी रहो। निर्गुण और सगुण दोनोंका फल एक ही है। जायेंगे एक ही स्थानपर। जो ऐसा समझता है—उसको तो मृत्युका भी भय नहीं है। चाहे अभी मौत आये या कालान्तरमें; किंतु भगवान्‌की गोद कहीं छोड़ दी तो यह बात नहीं रहेगी। भला यह भी ध्यान रखना चाहिये। तुम कुछ भी मत करो पर गोद मत छोड़ो। **'तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्'** उनकी गोदमें बैठना ही शरण होना है। बस, चारों ओर आनन्दका किला है, तुम उनकी शरणमें हो, गोदमें बैठे हो, अभय हो, उनकी प्रतिज्ञा है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घूँघटके पट खोल

(श्रीरामनाथजी 'सुमन')

हर आदमी सुख चाहता है। ज्ञानमें हो, चाहे अज्ञानमें— सुख ही उसकी मंजिल है। वही मानव-जीवनका प्राप्य और उद्देश्य है। मनुष्यका जीवन दु:खके लिये नहीं, पराधीनताके लिये नहीं, कभी समाप्त न होनेवाला आनन्द पानेके लिये है।

पर हम देखते हैं—बहुत ही थोड़े, गिने-चुने लोग उसे पाते हैं। अधिकांश दु:खके गलत मार्गमें भटकते-भटकते, अपनी आह और कराह लिये, एक दिन दुनियासे विदा हो जाते हैं।

क्यों है ऐसा? सुख चाहकर भी सुख नहीं, आनन्दके लिये एड़ी-चोटीका पसीना बहाकर भी आनन्द नहीं।

कारण बहुत छोटा है। वह यह है कि हम जानते ही नहीं कि आनन्दका स्रोत क्या और कहाँ है या यह कि हमने उस स्रोतके मुँहको ढक्कनसे बन्द कर रखा है। दरवाजा बन्द किये हुए हम प्रियतमकी प्रतीक्षा कर रहे हैं और उसके न आनेपर उसकी निष्ठुरताकी शिकायत भी करते जाते हैं।

तब क्या है आनन्दका स्रोत?

विशुद्ध, शाश्वत आनन्दके दो ही उद्गम हैं— अपनेको देना और अपनेको पाना, समर्पण और साक्षात्कार।

पर असलमें यह अपनेको देना और अपनेको पाना भी एक ही हैं। ये एक ही वस्तुके दो नाम या एक पदार्थके दो पक्ष हैं।

तुम अपनेको पाते तभी हो, जब अपनेको देते हो।

संचय ही दु:खका कारण है, उत्सर्ग और समर्पण ही आनन्दका राजमार्ग है।

कभी सोचा है कि तुमने वर्षों रात-दिन एक करके अपने सुखके लिये जो धन एकत्र किया हैं, उससे कभी सुख, संतोष और शान्ति मिली है? उससे तुमने चिन्ता ही पायी है, अतृप्ति ही पायी है। बाजारमें जाकर उस धनसे तुम वस्तुएँ खरीद सकते हो, पर सुख नहीं।

एक दुखिया है, एक जरूरतमन्द है। उसके पास खानेको नहीं है। जब तुम उसे द्रवीभूत होकर दिलसे कुछ देते हो, तब कैसा रसमय हो जाता है तुम्हारा मानस। इसी जमीनपर चलते हुए मानो तुम उससे कुछ ऊपर उठे अनुभव करते हो।

माँ अपने बच्चेके आनन्दके लिये खाना-पीना, शरीर-सुख, सोना—सब भूल जाती है। अपना सर्वस्व दे सकती है। तभी है वह माँ, तभी है उसका माहात्म्य, तभी है उसका सुख।

प्रेमी अपनी प्रेयसीके लिये क्या देनेको तत्पर नहीं होता? क्या वह देकर, भयानक कठिनाइयाँ झेलकर भी एक अनिर्वचनीय स्वाद नहीं पाता? स्वाद, जिसे छोड़नेको वह किसी कीमतपर तैयार नहीं; आह्लाद, सुख और आनन्द, जो उसके लिये सब चीजोंसे ऊपर हैं।

याद रखो—जो महान् है, बड़ा है, वही दे सकता है, वही देता है। इसे उलटकर यों भी कह सकते हैं कि जो दे सकता है, देता है, दाता है, वही महान् है। जिसके पास होता है, वही देता है। तुम्हारे पास जो है, उसे देते चलो, बाँटते चलो।

तुम्हारे पास धन नहीं है बाँटनेके लिये; न हो, परवाह नहीं। एक अपाहिजकी सेवाके लिये हाथ तो हैं।

परवाह नहीं यदि तुम्हारे पास देनेके लिये अन्न-भण्डार नहीं; पर दो मीठे बोल तो तुम दु:खीजनोंको दे ही सकते हो।

परवाह नहीं यदि तुम सर्वथा नि:स्व हो; अपने संगी कराहते मानवके हृदयको अपने आँसूसे, अपनी करुणासे नहला तो सकते हो; उसके कलेजेको सहलाकर उसमें करकता काँटा तो निकाल ले सकते हो। थके-हारे, जीवनकी बाजी हारे हुए, लड़खड़ाते इंसानको सहारा तो दे सकते हो; जिसकी आँखोंका, दिलका दिया भी निराशाकी आँधियोंमें बुझ चुका है, उसकी लाठी तो बन सकते हो।

ऐसा कोई आदमी नहीं है, जिसके पास देनेके लिये कुछ न हो।

ऐसा कोई समय नहीं है, जब तुम कुछ न दे सको।

यह जीवन देनेके लिये ही है। अपनेको देनेका नाम ही 'प्रेम' है। जितना ही इसे देते हो, उतना ही यह बढ़ता है। सब कुछ देकर भी वह पूरे-का-पूरा बच जाता है। वस्तुतः देना, उत्सर्ग, समर्पण और प्रेम एक ही वस्तु हैं। मानव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा शाश्वत विरहसे पूर्ण है। वह अपने स्रोतसे मिलनेके लिये विकल है। प्रेम करके ही वह अपनी अपूर्णताको पूरा करती है। प्रेम ही मानवका स्वभाव है। जबतक वह प्रेम नहीं करता, प्रेम नहीं देता, तबतक मानो मूर्च्छित है, अपने प्रति विस्मृत है, अपने स्वरूपको भूला हुआ है—उस कस्तूरी-मृगकी भाँति, जो सुगन्धकी खोजमें मतवाला बना घूमता है, जब कि स्वयं ही उस मृदु गन्धका स्रोत और स्वामी है।

इसीसे कहता हूँ, देना ही आनन्दकी स्थिति है।

यदि तुम्हारे पास धन है तो धन दो।

यदि तुम्हारे पास तन है तो तन दो।

यदि तुम्हारे पास मन है तो मन दो।

यदि तुम्हारे पास अन्न है तो अन्न दो।

यदि तुम्हारे पास वस्त्र है तो वस्त्र दो।

और यदि तुम्हारे पास यह सब कुछ नहीं है तो मुसकान दो।

जब कुछ भी न हो तो हृदय कहाँ जायगा? वह तो है। बस, वह हृदय दो। इस हृदयके दानसे महान् और कुछ नहीं है।

यही है सुखका मार्ग, आनन्दका सोता—जितना अपनेको दे सको, दो।

अपने लिये सभी रोते हैं। इसीलिये दुःख है, इसीलिये छटपटाहट है, इसीलिये पराजय है, इसीलिये पीड़ा है।

कभी दूसरेके लिये रोकर देखो—एक ही बार, आजमाइशके तौरपर। वह आनन्द, वह स्वाद मिलेगा कि फिर अपने लिये रोनेका नाम न लोगे।

अपने लिये जीना ही दुःख है।

दूसरोंके लिये जीना ही सुख है।

अपने बच्चोंके लिये जियो, अपनी पत्नीके लिये जियो, अपनी माताके लिये जियो, अपने पिताके लिये जियो, अपने मित्रों, बन्धु-बान्धवोंके लिये जियो, अपने देशके लिये जियो, मानव-मात्रके लिये जियो।

जिस सीमातक तुम दूसरोंके लिये जियोगे, उसी सीमातक आनन्दके निकट होगे।

रामने पिताके वचनके लिये राज दे दिया, भरतने उस राजमें रहते हुए भी राज छोड़ दिया, कृष्णने सब कुछ पाकर भी सब कुछ छोड़ दिया, बुद्धने दुःखी मानवके लिये, सुखका अनुसन्धान करनेके लिये संसारके वैभव एवं ऐश्वर्यका त्याग किया; दूसरे जियें, इसलिये ईसाने जीवन दिया। यह अपनेको उत्सर्ग करना, अपनेको देना ही परम पौरुष है।

तुम कहोगे, ये बड़ोंकी बातें हैं, इसे हम सामान्य जन कहाँ कर सकते हैं? पर तुम भूलते हो। संसारमें कोई ऐसा प्राणी नहीं है, जो जानमें या अजानमें अपना कुछ-न-कुछ अंश देता न हो। वह देनेके लिये विवश है। बिना दिये, बिना समर्पण किये—थोड़ा या बहुत—वह एक क्षण जी नहीं सकता। आवश्यकता इतनी ही है कि इस विवश देनको हार्दिक देनमें बदल दो। विवश होकर नहीं, स्वेच्छासे दो, दिलसे दो, प्रेमसे दो। जो प्रेमसे देता है, वही वस्तुतः देता है और जब यह प्रेमदानकी क्रिया आरम्भ होती है तो ऐसा अनिर्वचनीय सुख मिलता है कि फिर कोई उस दानकी धाराकी गति रोक नहीं सकता। एक बार देनेका स्वाद मिला कि फिर मनुष्य देता ही जाता है, यहाँतक कि अपनेको पूरा-का-पूरा लुटा देता है।

इसलिये सुख चाहते हो, आनन्दके लिये भटक रहे हो तो जितना भी दे सको, दो। अपने जीवनकी गति संचयकी ओरसे दानकी ओर मोड़ दो।

यह जरा भी मुश्किल नहीं, बिलकुल तुम्हारे स्वभावके, प्रकृतिके अनुकूल है। एक बार करके देखो, आजमाकर देखो; फिर किसीको कहना नहीं पड़ेगा, किसीको सिखाना न होगा। देकर स्वयं देखो, देनेमें कितना आनन्द है।

और जो अपनेको दे देता है, पूरा-का-पूरा दे देता है, वह सब कुछ पा जाता है। वह निःस्व होकर भी पूर्ण हो जाता है। वह अपनेको देकर ही अपनेको पा लेता है। यह आत्मदान जडमें प्राणकी सृष्टि करता है; यह समर्पण मरणकी सेजपर अमृत हो जाता है।

बस, आनन्दका यही एक राजमार्ग है—अपनेको लुटाना, अपनेको देना। देते चलो, लुटाते चलो और घूँघट उठाकर अपने हृदयमें छिपे परम प्रियतमको निहार लो। देखो, एक बार करके देखो; आनन्द मिलेगा, अवश्य मिलेगा।

'घूँघटके पट खोल री, तोको पीव मिलेंगे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाप होने कैसे बन्द हों ?

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गताङ्क ३ पृ०-सं० ५७४ से आगे]

भगवान्‌में लगनेवाली मूलवृत्ति कहीं सांसारिक वृत्तिसे दबकर छिप न जाय, मर न जाय, चली न जाय। यह वृत्ति अगर चली जायगी तो साधकका जीवन साध्य नहीं रह जायगा। साधकके जीवनकी विशेषता क्या है? उसकी जो मुख्य वृत्ति है, वह निरन्तर भगवान्‌को विषय बनाती है। उसकी मुख्य वृत्तिका विषय केवल भगवान् हैं और सब कार्य यदि भगवान्‌की पूजाके लिये हों, तब तो ठीक है, पूजाके लिये न हों, तब वह उन्हें करता नहीं है। यदि कहीं बाध्य होकर कार्य करता है तो गौण वृत्तिसे करता है, मुख्य वृत्तिकी रक्षा करता हुआ यदि कभी भूलसे वह सांसारिक वृत्तिको मुख्य वृत्तिका स्थान दे देता है तो पतित हो जाता है।

इसलिये साधककी दृष्टिमें और सांसारिक बुद्धि-कौशल रखनेवालेकी दृष्टिमें एक मौलिक भेद रहता है। सांसारिक दृष्टिवाले भी बेईमान नहीं हैं, ईमानदार हैं। वे भी चीजको जैसी देखते हैं, वैसी कहते हैं और भगवद्-दृष्टिवाला पुरुष भी वैसा ही कहता है, जैसा देखता है, परंतु दोनोंकी दृष्टिमें भेद है। एकमें जगत् प्रत्यक्ष है, जगत् सत्य है, जगत्‌का हानि-लाभ ही हानि-लाभ है, जगत्‌का मानापमान ही मानापमान है, जगत्‌की सिद्धि ही सिद्धि है, जगत् उसके सामने है; इसलिये उसकी सारी वृत्ति उस जगत्‌को लेकर सोचती है और जिसकी भगवान्‌में दृष्टि है, उसके सामने जगत् इस रूपमें है नहीं। जगत् जाय या रहे। जगत्‌का हानि-लाभ, जगत्‌का मानापमान, जगत्‌की स्तुति-निन्दा या जगत्‌का जो कुछ भी है—यह सब उसकी दृष्टिमें या तो अभिनय है अथवा है ही नहीं। यह सब यदि है तो उसके लिये असत् है अथवा भगवान्‌का लीलाभिनय है। इसलिये वह जगत्‌को इस रूपमें देखता नहीं है। दोनोंकी दृष्टिमें यह मौलिक भेद होनेसे दोनोंका सामंजस्य ठीक नहीं बैठता है। एक जिस रूपमें देखता है, दूसरा उस रूपमें नहीं देखता है। ये अलग-अलग दो दृष्टियाँ होती हैं—

'न रूपमस्येह तथोपलभ्यते' (गीता १५।३)

जैसा यह संसार दीखता है, वैसा मिलता नहीं है। यह जगत्‌का स्वरूप है, परंतु जो जगत्‌को जगत्‌के रूपमें देखता है, वह इस बातको नहीं जानता है। वह तो इसी रूपमें देखना चाहता है और रक्षा करना चाहता है। लेकिन जिसकी दृष्टि इस जगत्‌में इस रूपमें नहीं है या इस रूपके जगत्‌को जो हटाना चाहता है, साथ ही वह इस रूपके जगत्‌को देखता नहीं है अथवा देखना चाहता नहीं है; इसलिये दोनोंमें बुद्धिके हानि-लाभ अलग-अलग हैं।

जब मनुष्य मोहसे अत्यधिक तमसाच्छन्न हो जाता है, तब हानि-लाभ बहुत अधिक विपरीत देखता है। पापसे, दुराग्रहसे, दुराचारसे, सांसारिक लाभ हो जाय तो वह उसे लाभ मानता है। संसारमें बुद्धिमान् पुरुष भी जिसको लाभ नहीं मानता है, उसको भी वह लाभ मानता है, भगवान्‌की बात तो अलग रही। इसलिये दृष्टि-भेदसे वस्तु-भेद होता है और वस्तु-भेदसे कार्य-भेद होता है। अतएव मनुष्य अपनी आँखसे अपने-अपने हानि-लाभको देखता है कि किसमें हानि है और किसमें लाभ है। जरा-सा किसीने सलाम-सत्कार नहीं किया तो नाराज हो जाते हैं। अंग्रेजोंके जमानेमें ऐसी चीज थी कि अफसरको सलाम नहीं किया तो अफसर नाराज हो जाते थे। सलाममें लाभ है, ऐसा मानते थे। कोई हमारे सामने इस प्रकार बैठे, इस प्रकार बोले—बात करे, तब तो लाभ है और ऐसा न हो तो बड़ी हानि हो गयी, बड़ा अपमान हो गया। हम तो गद्देपर बैठते हैं, पर यहाँ दरीपर बैठे हैं। दुःख हो गया। लाभ-हानिकी दृष्टि सबकी अपनी-अपनी अलग-अलग होती है। संसारमें जो त्यागी होते हैं, उनकी दूसरी दृष्टि और भोगियोंकी अलग दृष्टि होती है। लेकिन मौलिक भेद दो तो रहते ही हैं—एक दैवीय सम्पत्तिका और दूसरा आसुरी सम्पत्तिका। एक भगवान्‌की ओर जानेवाले जीवनका और दूसरा जगत्‌की ओर जानेवाले जीवनका, इनमें फिर अवान्तर भेद हो जाते हैं।

इन दो भेदोंमें जिनकी दृष्टि भगवान्‌की ओर है, वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी मूल दृष्टिकी, मूल वृत्तिकी हमेशा रक्षा करना चाहेंगे। किसी भी अवस्थामें सांसारिक बड़ी-से-बड़ी हानि और सांसारिक बड़े-से-बड़ा लाभ इस वृत्तिको खोनेवाला अगर होगा तो वह डरेगा। जगत्का बड़ा लाभ हो जाय और उस लाभके हर्षमें यह वृत्ति कहीं चली जाय तो वह बड़ा नुकसान समझे और जगत्की बड़ी-से-बड़ी हानि यदि इस वृत्तिको खो देगी तो उससे भी बड़ी हानि वह इसे समझेगा। लेकिन वह इस वृत्तिकी रक्षा करेगा और जागतिक लाभ-हानिकी परवाह नहीं करेगा। जागतिक सारी हानि हो करके भी यदि यह वृत्ति रहे तो वह इस हानिको स्वीकार करेगा। जागतिक सारे लाभका विनाश हो करके भी यदि यह वृत्ति रहे तो वह उसका स्वागत करके वरण करेगा; क्योंकि उसको तो भगवान्की ओर लगे रहनेवाली वृत्तिमें ही परम लाभ दीखता है। यह दृष्टिभेद है। साधक दूसरी चीज चाहता है और विषयी दूसरी दृष्टि चाहता है।

जिसकी साधक-दृष्टि है अथवा जो साधक-दृष्टि करना चाहता है, उसके लिये यह बात आवश्यक है कि वह सर्वप्रथम यह समझ ले कि हमको सांसारिक हानि-लाभसे दृष्टि ऊपर उठानी पड़ेगी। सांसारिक नीति-कौशल, बुद्धि-कौशलका आश्रय हमें छोड़ना पड़ेगा। किसी एक जगह दो वृत्तियाँ आ जाती हैं। एक वृत्ति सांसारिक लाभ सामने रखती है कि यह काम इस प्रकार करो तो ठीक है, उसे यदि इस प्रकार नहीं करोगे तो बड़ी हानि है। दूसरी ओर दूसरी वृत्ति कहती है कि नहीं, यह लाभ तो अवश्य होगा, परंतु इस लाभसे तुम्हारा जो अमुक साधन है; वह कुछ शिथिल पड़ जायगा। तब वह कहेगा—यह नहीं चाहिये।

श्रीमद्भागवतमें भागवतोत्तम पुरुषोंकी व्याख्या की गयी है, वहाँ कहा गया है कि कोई भगवान्का स्मरण करता था। उससे किसी देवताने कहा कि तुम तीनों लोकोंका वैभव ले लो और इसके बदलेमें तुम आधे क्षणके लिये भगवान्को भूल जाओ। तब उसे त्रिभुवनका वैभव स्वीकार नहीं और वह आधे क्षणके लिये भी भगवान्को भूलना नहीं चाहता है—'**त्रिभुवनविभवहेतवेऽपि**' (श्रीमद्भा० ११। २। ५३)। त्रिभुवनका वैभव मिलनेपर भी वह भगवान्को नहीं छोड़ता है। श्रीमद्भागवतमें दृष्टिभेदके बड़े सुन्दर-सुन्दर प्रसंग हैं। एक प्रसंगमें बताया गया है कि यह तो त्रिभुवनके वैभवकी बात है, अगर मोक्ष मिलता हो तो? एक तरफ तो मोक्ष है और दूसरी तरफ एक पलके लिये भगवत्प्रेमीका संग है। किसे स्वीकार करे? भागवतकार कहते हैं—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥

(श्रीमद्भा० ४। ३०। ३४)

ऐसे श्लोक श्रीमद्भागवतमें तीन-चार बार आये हैं। इसका तात्पर्य है कि सांसारिक भोगकी तो कोई बात ही नहीं, मर्त्यलोकके भोगोंकी चर्चा ही नहीं। स्वर्ग और अपुनर्भव अर्थात् मोक्षसे भी एक पलमात्रके भगवत्प्रेमीके संगकी तुलना नहीं हो सकती है, वह मोक्षका भी परित्याग करके संग करना चाहते हैं। तीसरी बात, भगवान्ने कहा तुम पाँचों प्रकारकी मुक्ति ले लो, तुम्हें मुक्त कर देते हैं। इसपर भगवत्प्रेमीने कहा—फिर आपकी सेवामें यहाँ रहेंगे? भगवान्ने कहा—नहीं, फिर कैसे? मुक्त हो जानेपर यह सब नहीं होगा। तब तुम हमारे पास रहोगे, हमारे समान ऐश्वर्य प्राप्त कर लोगे, हमारे समान चतुर्भुज रूप प्राप्त कर लोगे, हमारे समान लोक प्राप्त कर लोगे और हममें मिल जाओगे। तब भगवत्प्रेमीने कहा—यह सब नहीं चाहिये—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

(श्रीमद्भा० ३। २९। १३)

भगवान्के ये अपने वाक्य हैं कि जो मेरे जन हैं, उनको कहा जाय कि तुम मेरी सेवा छोड़ दो और **सालोक्य**—भगवान्के समान लोक, **सार्ष्टि**—भगवान्के समान ऐश्वर्य, **सामीप्य**—भगवान्के पास रहना, **सारूप्य**—भगवान्के समान रूप प्राप्त हो जाना और **एकत्व** **(सायुज्य)**—भगवान्में मिल जाना—इन पाँचों प्रकारकी मुक्तियोंको ले लो, किंतु वह कहता है कि हम सेवाको छोड़कर अन्य कुछ नहीं लेंगे। यह दृष्टिभेद है।

[क्रमशः]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़भागी कौन?

(श्रीसुभाषचन्द्रजी बग्गा)

भौतिक जीवनमें भले ही वह व्यक्ति भाग्यशाली कहा जाता है, जिसे पद-प्रतिष्ठा, धन-सम्पत्ति, स्वस्थ-सुन्दर काया तथा आधुनिक भौतिक सुख-सुविधाएँ प्राप्त हों, परंतु पूज्यपाद गोस्वामीजी महाराज श्रीरामचरितमानसमें बड़भागी—महान् सौभाग्यशाली कौन है, इसे बताते हुए कहते हैं कि वही व्यक्ति गुणी और बड़भागी है, जो भगवान् श्रीरामके चरणोंमें अनुराग रखता है—

सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी॥

(रा०च०मा० ४। २२। ७)

वस्तुतः वास्तविक एवं शाश्वत सुख तो प्रभु-चरणोंमें दृढ़ अनुराग रखनेसे ही मिलता है। गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है कि श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें निष्काम प्रेम होना ही जीवनका परम फल है—

पावन प्रेम राम-चरन-कमल जनम लाहु परम।

(विनय-पत्रिका १३१। १)

प्रभुके ऐसे कृपापात्रोंको जिनका एकमात्र लक्ष्य प्रभु-चरणोंमें प्रीतिकी प्राप्ति है, उन्हें 'बड़भागी' कहा गया है। भगवान्‌का कार्य करना जीवका परम लक्ष्य है। वह जीव धन्य है, बड़भागी है, जिसका जीवन भगवान्‌की भक्तिके लिये समर्पित है। श्रीरामचरितमानसमें अनेक बड़भागी पात्रोंका वर्णन आया है, उनमेंसे कुछके जीवन-प्रसंगोंको यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) देवी अहल्या

महर्षि विश्वामित्रके साथ जनकपुरीकी ओर लक्ष्मणजी-सहित जाते समय श्रीरामचन्द्रजीने मार्गमें एक निर्जन आश्रम देखा। वहाँ एक पत्थरकी शिलाको देखकर प्रभु श्रीरामने उसके विषयमें जिज्ञासा प्रकट की। महर्षि विश्वामित्रने बताया कि यह महर्षि गौतमकी पत्नी अहल्या है, जो शापवश पत्थरकी देह धारणकर बड़े धीरजसे आपकी प्रतीक्षा कर रही है। यह आपके चरणकमलोंकी धूलि चाहती है, हे रघुवीर! इसपर कृपा कीजिये।

श्रीरामजीके पवित्र और शोकनाशक चरणका स्पर्श पाते ही वह तपोमूर्ति अहल्या प्रकट हो गयी—

'परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।'

गोस्वामीजी कहते हैं कि ऋषिपत्नी अहल्याके सिरपर जैसे ही भगवान् श्रीरामके चरणकमलोंका पराग पड़ा, वैसे ही उसने पत्थरका शरीर त्यागकर अति छविमय शरीर धारण कर लिया। पतिके शापरूप दु:सह अग्निके कठोर तापसे जलती हुई कल्पलता मानो कृपारूप अमृतसे सींची जाकर पुनः सुखरूप फलोंसे सम्पन्न हो गयी—

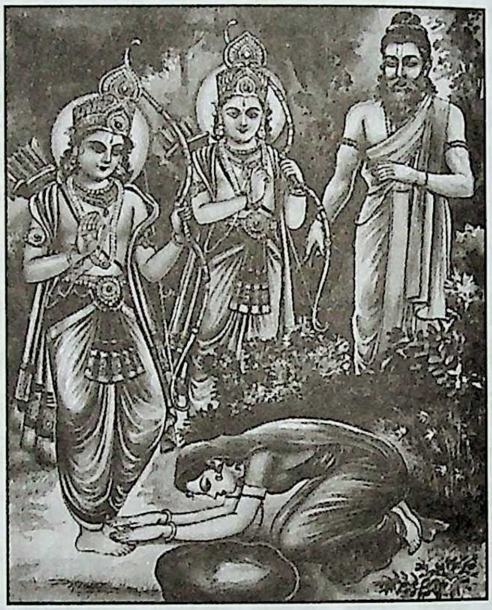

रामपद-पदुम-पराग परी।
ऋषितिय तुरत त्यागि पाहन-तनु छबिमय देह धरी॥
प्रबल पाप पति-साप दुसह दव दारुन जरनि जरी।
कृपासुधा सिंचि बिबुध-बेलि ज्यौं फिरि सुख-फरनि फरी॥

(गीतावली १। ५७)

प्रभु श्रीरामके चरणकमलोंकी धूलके स्पर्शसे पाषाण-मूर्ति अहल्या छविमय देह धारणकर अतिशय बड़भागिनी हो गयी और उसके दोनों नेत्रोंसे प्रेम और आनन्दके आँसुओंकी धारा बहने लगी—

अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जल धार बही॥

(रा०च०मा० १। २११। छन्द १)

(२) राजर्षि जनकजी

गोस्वामी तुलसीदासजीने महाराज जनकको भी अतिशय बड़भागी कहा है। श्रीराम एवं श्रीसीताजीके विवाहपर महाराज जनक और रानी सुनयना सोनेका एक थाल तथा एक स्वर्ण-कलशमें निर्मल पवित्र और सुगन्धित जल लाकर दूल्हेके वेशमें विराजमान भगवान् श्रीरामके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समक्ष बैठ जाते हैं और उनके चरण धोते हैं।

गोस्वामीजी कहते हैं कि भगवान् रामका चरण 'कमल' है। ये चरण-कमल कामदेवके शत्रु श्रीशिवजीके हृदयरूपी सरोवरमें सदा ही विराजते हैं, जिनका एक बार भी स्मरण करनेसे मनमें निर्मलता आ जाती है और कलियुगके सारे पाप भाग जाते हैं—

जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं।
जे सकृत सुमिरत बिमलता मन सकल कलिमल भाजहीं॥

(रा०च०मा० १।३२४।छन्द १)

गोस्वामीजी कहते हैं कि जिस प्रकार कमलमें पराग, मकरन्द और सुगन्ध होती है, उसी प्रकार प्रभु श्रीरामके चरणकमलोंमें ये तीनों वस्तुएँ विद्यमान हैं। इन तीन वस्तुओंसे अलग-अलग व्यक्तियोंने धन्यता प्राप्त की।

अहल्याने प्रभुसे यही प्रार्थना की थी कि 'हे प्रभो! आपके चरणकमलोंका पराग मुझे सदा प्राप्त होता रहे।'

पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना।

और इस परागका स्पर्श पाकर गौतमऋषिकी पत्नी अहल्याने परमगति पायी। गंगाजी इन चरणकमलोंका मकरन्द (रस) हैं, जिन्हें शिवजी मस्तकपर धारण करते हैं और जिस प्रकार कमलकी सुगन्धसे आकृष्ट होकर भौंरा उसके समीप आता है, इसी प्रकार इन चरणकमलोंका सेवन करके ऋषि-मुनि मनोवांछित गति पाते हैं। उन्हीं चरणोंको अतिशय बड़भागी जनकजी धो रहे हैं और सभी जय-जयकार कर रहे हैं—

जे परसि मुनिबनिता लही गति रही जो पातकमई।
मकरंदु जिन्ह को संभु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई॥
करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहैं।
ते पद पखारत भाग्यभाजनु जनकु जय जय सब कहैं॥

(रा०च०मा० १।३२४।छन्द २)

(३) केवट

प्रभु-पद-कमलोंमें केवटकी प्रीति और श्रद्धा-भक्तिकी सीमा नहीं। भगवान् राम सीताजी और लक्ष्मणके साथ गंगातटपर आये और पार उतरनेके लिये केवटसे नौका लानेके लिये कहा। जिन करुणा-वरुणालय भगवान्‌के नामका स्मरणकर असंख्य मनुष्य संसार-सागरसे पार उतरते हैं, वे ही निखिल सृष्टिपति भगवान् श्रीराम केवटका निहोरा करते हैं। लेकिन केवट नाव लानेसे मना कर देता है। केवटने स्पष्ट कह दिया—'हे प्रभो! आपको नौकासे पार जाना हो तो मुझे चरण धोनेके लिये कहिये—

जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥

—नहीं तो आपकी चरण-रजके स्पर्शसे यदि मेरी नौका सुन्दर युवती हो गयी तो मेरे परिवारकी आजीविका ही मारी जायगी।'

भक्तकी सरलता, हृदयकी पवित्रता और प्रीति ही तो प्रभुको प्रिय है। उन्होंने हँसकर केवटसे कह दिया—वही करो, जिससे तुम्हारी नाव न जाय। जल्दी पानी ला और पैर धो, देर हो रही है, सबको पार उतार दे।

श्रीरामकी आज्ञा पाकर केवट कठौतेमें पानी भर लाया। मारे आनन्दके प्रेमसे उमगकर वह प्रभुके चरणकमलोंको धोने लगा। देवगण भी पुष्प-वर्षा करके उसे अप्रतिम बड़भागी कहते हैं—

अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥

(रा०च०मा० २।१०१।७-८)

(४) श्रीलक्ष्मणजी

श्रीरामके साथ वनगमनकी इच्छासे लक्ष्मणजी माँ सुमित्रासे आज्ञा पाने जाते हैं तो सुमित्राजी कहती हैं—हे तात! वैदेही श्रीजानकीजी तुम्हारी माता हैं, राम तुम्हारे पिता हैं, जो सब प्रकारसे स्नेह करनेवाले हैं। ऐसा जीमें जानकर वनको उनके साथ जाओ। वे यह भी कहती हैं कि मुझ समेत तुम बड़े भाग्यवान् हुए, मैं बलिहारी जाती हूँ कि जो छल छोड़कर तुम्हारे मनने रामजीके चरणोंमें ठिकाना बनाया—

भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥

(रा०च०मा० २।७४)

जो पुत्र श्रीरामचरणानुरागी हो जाता है, वह अपनी माताको समस्त भाग्योंका भाजन बना देता है।

तभी तो भरतजी-जैसे अनन्य रामभक्त भी जीवाचार्य लक्ष्मणजीकी सराहना करते हुए कहते हैं—

अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंदु अनुरागी॥

(रा०च०मा० ७।१।३)

(५) निषादराज गुह

निषादराज गुह श्रीरामजीके मित्र हैं, वनगमनके समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब श्रीरघुनाथजीने निषादराजको अपने पास बिठाकर उनकी कुशल पूछी तो वे बोले—'हे नाथ! आपके चरणकमलोंके दर्शनसे कुशल है, अब मैं बड़भागी लोगोंकी गिनतीमें आ गया।'

नाथ कुसल पद पंकज देखें। भयउँ भागभाजन जन लेखें॥

(रा०च०मा० २।८८।५)

(६) श्रीभरतजी

श्रीरामचरणोंमें जैसा अनुराग भरत-चरित्रमें मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। विनय-पत्रिकामें भरत-स्तुतिमें कहा गया है—'बड़े भाग्यवान् श्रीभरतकी जय हो, जो जानकीपति

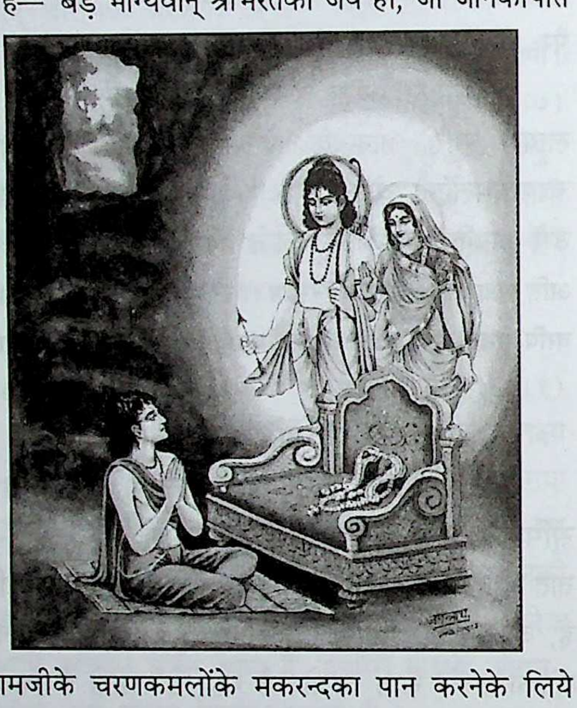

श्रीरामजीके चरणकमलोंके मकरन्दका पान करनेके लिये रसिक भ्रमर हैं। जो संसारके भूषणस्वरूप, सूर्यवंशके विभूषण और नृपशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीके पूर्ण प्रेमी हैं।'

जयति भूमिजा-रमण-पदकंज-मकरंद-रस-
रसिक-मधुकर भरत भूरिभागी।
भुवन-भूषण, भानुवंस-भूषण, भूमिपाल-
मणि रामचंद्रानुरागी॥

(विनय-पत्रिका, पद ३९)

स्वयं भगवान् श्रीराम चित्रकूटमें बड़े संकोचके साथ भरतकी बड़ाई करते हुए गुरु वसिष्ठसे कहते हैं—'हे नाथ! आपकी शपथ और पिताजीके चरणोंकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि भुवनभरमें भरत-सा भाई नहीं हुआ। जो गुरुचरणकमलके अनुरागी हैं, वे लौकिक और पारमार्थिक दृष्टिसे भी बड़े भाग्यवान् हैं।'

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुअन भरत सम भाई॥
जे गुर पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी॥

(रा०च०मा० २।२५९।४-५)

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसे आदर्श भगवच्चरणानुरक्त विरक्त भक्तके पावन चरित्रको नियमपूर्वक सादर सुननेवाले प्राणीको सीयराम-पद-प्रेमकी प्राप्ति अवश्य होगी—

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति॥

(रा०च०मा० २।३२६)

प्रेममूर्ति भरतजी तो भगवान् रामकी ही छाया हैं, इनके समान रामप्रेमानुरागी भक्त बहुत कम मिलते हैं। मुनि भरद्वाजजी कहते हैं—

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना॥

(रा०च०मा० १।१६।३)

भरद्वाजमुनिकी मान्यता है कि श्रीरामके चरणोंमें प्रेम होना समस्त सुन्दर मंगलोंका मूल है। श्रीरामचरणोंमें ही अनुराग श्रीभरतका सर्वस्व है, यही उनके लिये धन, जीवन और प्राण है। अत: भरतजी सबसे बड़े भाग्यशाली—बड़भागी हैं—

अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहि उचित मत एहु।
सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरन सनेहु॥

(रा०च०मा० २।२०७)

सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना। भूरिभाग को तुम्हहि समाना॥

(रा०च०मा० २।२०७।९)

(७) मुनिवर सुतीक्ष्णजी

सुतीक्ष्णजी अगस्त्यमुनिके शिष्य और भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त थे। 'भगवती सीता एवं अनुज लक्ष्मणसहित प्रभु श्रीराम उनकी ओर आ रहे हैं'—यह समाचार पाते ही मनमें अनेक मनोरथ करते हुए वे आतुरतासे दौड़ पड़े। उस समय उनकी दशा अत्यन्त विचित्र हो गयी थी। प्रेममें मुनिको दिशा-विदिशा कुछ न सूझ रही थी। उनकी अतिशय प्रीति देखकर प्रभु उनके हृदयमें प्रकट हो गये। तब मुनि ध्यानमग्न हो गये और उनकी आँखें बन्द हो गयीं। श्रीरामने मुनिका ध्यान हटाना चाहा, पर इससे वे न जगे। अतएव लीला-अवतार-विग्रह राजकुमारके मधुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपको छिपाकर प्रभुने चतुर्भुजरूपका उन्हें दर्शन कराया। फिर तो श्रीसुतीक्ष्णजी छटपटा उठे। हृदयमें अपने जीवनाराध्य श्रीरामके स्थानपर श्रीविष्णुके दर्शन करके वे बिना मणिके साँपकी तरह व्याकुल हो गये।

जब व्याकुल होकर श्रीसुतीक्ष्णजी जगे तो उनके सम्मुख सीताजी एवं लक्ष्मणजीसहित उनके आराध्य धनुर्धर श्रीराम खड़े थे। उनको देखकर भाग्यवान् मुनिश्रेष्ठ प्रेममें मग्न होकर लकुटीकी तरह उनके चरणोंमें लग गये—

परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी॥

(रा०च०मा० ३।१०।२१)

इस प्रकार प्रभु चरणोंकी प्राप्तिके कारण सुतीक्ष्णजी बड़भागी हुए।

(८) भक्तिमयी शबरी

गुरुके आदेशानुसार शबरी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक रात-दिन श्रीरामका स्मरण करती तथा उनके आगमनकी प्रतीक्षा करती रहती थी। अन्ततः वह शुभ दिन आ गया। प्रभु श्रीराम लक्ष्मण-सहित सीताजीकी खोज करते हुए शबरीके आश्रममें आ पहुँचे। कमलसदृश नेत्र, विशाल भुजाओंवाले, सिरपर जटाओंका मुकुट और गलेमें वनमाला धारण किये, सुन्दर साँवले और गोरे—दोनों भाइयोंके चरणोंसे शबरी लिपट गयी—

सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥

(रा०च०मा० ३।३४।७-८)

शबरी वास्तवमें बड़भागी थी; क्योंकि भगवान् श्रीराम स्वयं चलकर उसे दर्शन देने आये तथा उसे प्रभुके चरणोंकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

(९) श्रीरामसखा वानर-भालु

श्रीरामचरणानुरागी होनेमें जाति, योनि, वर्ण, आश्रम, स्त्री, पुरुष इत्यादि किसी प्रकारका भेद-भाव नहीं है। कोई भी हो, यदि उसका श्रीराम-चरणोंमें अनुराग है तो वही गुणज्ञ और बड़भागी है।

सुग्रीवने वानरोंको चारों दिशाओंमें सीताजीकी खोज करने भेजा। उनमेंसे मुख्य वानरों—अंगद, नल, हनुमान् आदिसे कहा—'आप लोग दक्षिण दिशाकी ओर जायँ तथा मन, कर्म और वचनसे वह उपाय करें, जिससे श्रीरामचन्द्रजीका काम भली प्रकार हो जाय।' सुग्रीवने यह भी कहा कि देह धरनेका यही फल है कि सब काम और कामनाएँ छोड़कर श्रीरामका भजन करे। जो श्रीरघुबीरचरणोंका प्रेमी है, वही गुणवान् है और वही बड़भागी है—

सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी॥

सुग्रीवने वानरोंको सीताजीकी खोजमें भेजते हुए कहा था कि जो कोई भी बिना पता लगाये महीनेभरकी अवधि बिताकर आयेगा, मुझे उसका वध करवाना पड़ेगा। महीनेभरमें सीताजीकी सुध नहीं मिलनेपर अंगद व्याकुल होकर सबसे कहते हैं कि हमारे मरणमें कुछ सन्देह नहीं। तब जाम्बवान्ने अंगदका दुःख देखकर कहा—हे तात! रामको मनुष्य मत मानो, उन्हें निर्गुण ब्रह्म, अजेय और अजन्मा समझो। हम उस सगुण ब्रह्मके निरन्तर अनुरागी हैं, अतः हम अत्यन्त बड़भागी हैं—

हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥

(रा०च०मा० ४।२६।१३)

उनके कहनेका भाव यह था कि हम सब बड़े सौभाग्य-शाली हैं, जो ईश्वरका कार्य करनेके लिये आये हैं। अतः हमारा मरण नहीं होगा तथा सीताजीकी सुध अवश्य मिलेगी।

(१०) गृध्रराज जटायु

वानरों आदिकी वाणी सुनकर निकटके पर्वतकी कन्दरासे सम्पाती गीध बाहर आया और बोला कि आज जगदीशने मुझे आहार दिया है। बहुत दिनोंसे भरपेट भोजन नहीं मिल रहा था, आज सभीको खाऊँगा। सम्पातीके वचन सुनकर वानर डरकर उठ खड़े हुए। जाम्बवान्जी भी सोचमें पड़ गये। इसपर अंगदने विचारकर कहा कि हम लोग जगदीशके सेवक होनेमें अत्यन्त बड़भागी अवश्य हैं, पर सरकारकी सेवामें शरीर छोड़नेका अवसर हम लोगोंको नहीं मिला। ऐसा अवसर तो गीधराज जटायुको मिला, जो रामकाजके लिये शरीर छोड़कर परम बड़भागी होकर हरिपुरको गया—

कह अंगद बिचारि मन माहीं। धन्य जटायू सम कोउ नाहीं॥
राम काज कारन तनु त्यागी। हरि पुर गयेउ परम बड़भागी॥

(रा०च०मा० ४।२७।७-८)

अंगदकी यह चतुर नीति काम कर गयी। सम्पातीने वानरोंको निर्भय करके पास जाकर जटायुकी कथा पूछी! भाईकी करनी सुनकर सम्पातीने बहुत तरहसे रघुनाथजीकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिमाका वर्णन किया, जटायुको तिलांजलि दी तथा वानरोंको बताया कि सीताजी लंकामें अशोकवाटिकामें हैं।

जटायुके परम बड़भागी होनेका वर्णन अध्यात्म-रामायणमें आता है—अहो! धर्मात्मा जटायु धन्य है। जिस बुद्धिमान्ने श्रीरामके कार्यमें अपने प्राण दे दिये। देखो, उस शत्रुदमनने वह मोक्षप्रद प्राप्त कर लिया, जो योगियोंको भी दुर्लभ है—

अहो जटायुर्धर्मात्मा रामस्यार्थे मृतः सुधीः।
मोक्षं प्राप दुरावापं योगिनामप्यरिन्दमः॥

(अध्या० रामा० ४।७।३४)

(११) श्रीविभीषणजी

विभीषण रावणके अनुज थे, उन्होंने रावणको बहुत प्रकारसे समझाया कि सीताजीको लौटा दो और श्रीरामजीसे वैर छोड़कर उन्हें प्रभु मानो, जिससे आपका अहित न हो। यह सुनकर रावण क्रुद्ध होकर खड़ा हो गया और बोला—'अरे दुष्ट! अब मृत्यु तेरे निकट आ गयी। अरे खल! संसारमें ऐसा कौन है, जिसे मैंने अपनी भुजाओंके बलसे न जीता हो? मेरे नगरमें रहकर तपस्वियोंसे प्रीति रखता है तो जा, उनसे ही जाकर मिल और उन्हींसे नीति कह।' ऐसा कहकर रावणने विभीषणपर चरण-प्रहार किया। छोटे भाई विभीषणने तब भी बारम्बार रावणके पैर पकड़कर उसे समझाया, पर रावण न माना। रावणके प्रहारने विभीषणके लिये विकल्पके सारे मार्ग अवरुद्ध कर दिये। उनके सामने एक ही मार्ग खुला हुआ था—श्रीरामकी शरणागति।

श्रीरामकी शरणमें आकर विभीषण अपनेको परम बड़भागी समझते हैं। वे श्रीरामजीसे कहते हैं—'हे दयालु! मैं तो अत्यन्त नीच स्वभावका राक्षस हूँ और मैंने कभी शुभ आचरण भी नहीं किया है। जिनका रूप मुनियोंके ध्यानमें भी नहीं आता, उन प्रभुने स्वयं प्रसन्न होकर मुझे हृदयसे लगा लिया है। हे कृपा और सुखके निधान श्रीरामजी! मैं बहुत ही बड़भागी हूँ, जो मैंने इन चरणोंको, जो शिवजी और ब्रह्माजीके द्वारा सेवित हैं, अपनी आँखोंसे देखा।'

अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव सेब्य जुगल पद कंज॥

(रा०च०मा० ५।४७)

(१२) अंगद और हनुमान्जी

सुबेलपर्वतपर प्रभु श्रीराम कपिराज सुग्रीवकी गोदमें सिर रखकर लेटे हैं। बायीं ओर धनुष तथा दाहिनी ओर तरकस रखा हुआ है। प्रभु अपने दोनों हाथोंसे बाणका निरीक्षण कर रहे हैं। विभीषणजी कानसे लगकर मन्त्रणा कर रहे हैं। श्रीलक्ष्मणजी कमरमें तरकस रखे और हाथोंमें धनुष-बाण लिये वीरासनमें बैठे हैं। अंगद और हनुमान्जी बड़े ही भाग्यवान् हैं, जो प्रभु श्रीरामके चरण दबा रहे हैं—

बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चापत बिधि नाना॥

श्रीहनुमान्जीने विलक्षण योग्यतासे प्रभु श्रीरामके सभी कार्य सम्पन्न किये। भगवान् श्रीराम अपनेको हनुमान्जीका ऋणी मानते हैं। ऐसी स्थितिमें भगवान् शंकर भी कहते हैं—'हे गिरिजे! हनुमान्जीके समान न तो कोई बड़भागी है और न कोई श्रीरामके चरणोंका प्रेमी ही है, जिनके प्रेम और सेवाकी स्वयं प्रभुने अपने श्रीमुखसे बार-बार बड़ाई की है।'

हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥

(रा०च०मा० ७।५०।८-९)

गोस्वामीजी इस नर-तनको बड़े पुण्य और सौभाग्यका परिणाम मानते हैं, साथ ही वे यह भी बताते हैं कि इस बड़भागी नर-तनको पाकर भी जीव तबतक परम सुखको नहीं प्राप्त कर सकता, जबतक वह सत्संग और भगवद्भक्ति नहीं करता। उन व्यक्तियोंको अभागा कहा गया है, जो श्रीरामके चरणोंमें अनुराग नहीं रखते, उनकी भक्ति नहीं करते और उनकी पावन कथाका श्रवण नहीं करते। श्रीकाकभुसुण्डिजी गरुडजी महाराजसे कहते हैं—

कहु खगेस अस कवन अभागी। खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी॥

(रा०च०मा० ७।१०९।७)

भगवान् शंकर भी पार्वतीसे कहते हैं—

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥

(रा०च०मा० ३।३३।३)

हमें चाहिये कि हम भी भगवान्की मंगलकारिणी कथाका गान करें, भक्ति और श्रद्धासे उसका श्रवण करें, मनन करें ताकि भगवान्के श्रीचरणोंमें हमारा भी अनुराग हो और हम भी अपने जीवनको धन्य तथा बड़भागी बना सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

यह सबके अनुभवकी बात है कि यह सब-का-सब दृश्य अदृश्य हो रहा है। यह जो संसार दीख रहा है, यह मिट रहा है। एक क्षण भी इसमें स्थिरता नहीं है। इसमें स्थिरता माननेसे ही राग-द्वेषादि द्वन्द्व होते हैं—

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परंतप॥

(गीता ७। २७)

इच्छा (राग) और द्वेषसे ही सब द्वन्द्व पैदा होते हैं। इन द्वन्द्वोंसे मोहित होकर यह जितना भी प्राणी-समुदाय है, यह वास्तविकताको नहीं जानता। इस द्वन्द्वसे ही सम्मोह पैदा होता है। तो इस कारण वह तत्त्वको जान नहीं सकता। अतः राग-द्वेष, हर्ष-शोक पैदा होते हैं— नश्वर शरीर और संसारको स्थिर माननेसे, 'है' ऐसा माननेसे। यह सबके अनुभवकी बात है कि ये स्थिर नहीं हैं। सन्तोंने कहा है—

काची काया मन अथिर, थिर-थिर काम करंत।
ज्यों-ज्यों नर निधड़क फिरै, त्यों-त्यों काल हसंत॥

युधिष्ठिरजी महाराजने कहा है—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

(महा० वन० १३। ११६)

इससे बढ़कर क्या आश्चर्य होगा कि सब-के-सब अदर्शनमें जा रहे हैं, यमराजके घर जा रहे हैं और इच्छा करते हैं स्थिरता की! जो स्थिरता कभी रहती नहीं और अभी भी स्थिरता है नहीं और कभी भी स्थिरता रहेगी नहीं। यहाँ तो केवल सेवा करनेके लिये आना हुआ है। शरीरसे, मनसे, वाणीसे, पदार्थोंसे, योग्यतासे, पदसे, अधिकारसे औरोंकी सेवा बन जाय, औरोंको सुख हो जाय, औरोंका भला हो जाय, औरोंका हित हो जाय— यह काम हमें करना है। इसमें बाधा होती है—संग्रह कर लें और सुख भोगें अर्थात् संग्रह करनेकी और सुख भोगनेकी आसक्ति। भगवान् कहते हैं—

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥

(गीता २। ४४)

भोग और संग्रहकी इच्छा होती है कि सुख भोग लूँ, संग्रह कर लूँ। इसी कारण 'एक परमात्माकी तरफ ही चलना है'— यह निश्चय नहीं होता। इस निश्चयमें जितनी शक्ति है, उतनी किसी साधनमें नहीं है। नामजप, कीर्तन, सत्संग, स्वाध्याय, तप, तीर्थ, व्रत आदि साधन बड़े श्रेष्ठ हैं। वास्तवमें यह बात ठीक है, परंतु भीतरकी जो निश्चयात्मिका बुद्धि है, वह यथार्थ ठीक होती है। उसका बहुत ज्यादा मूल्य होता है। भगवान्‌ने कहा है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९। ३०)

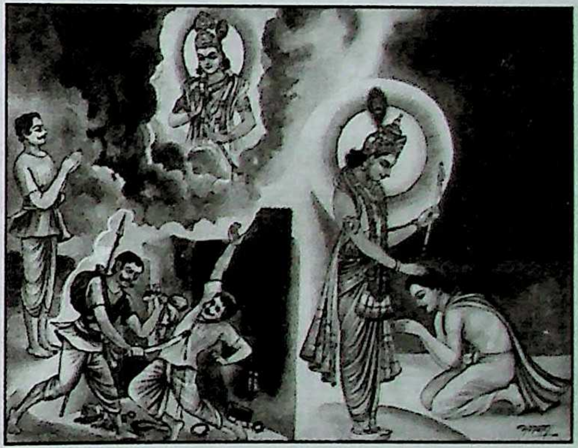

साधन करनेवाला सदाचारी होता है। पर सुदुराचारी— साङ्गोपाङ्ग दुराचारी भी अन्यका भजन न करके, अन्यका आश्रय न रखकर भजन करता है तो उसे साधु मान लेना चाहिये— **'साधुरेव स मन्तव्यः'**—यह भगवान्‌की आज्ञा है। जब भगवान् उसे सुदुराचारी स्वीकार करते हैं तो उसे साधु कैसे मानें? तो कहा— **'सम्यग्व्यवसितो हि सः'** अर्थात् उसने निश्चय— पक्का कर लिया कि केवल परमात्माकी तरफ ही चलना है। यह सम्पूर्ण साधनोंकी मूलभूत साधना है। इससे अपने-आप सब ठीक होगा। जैसे किसीके मनमें निश्चय हो जाय कि मुझे बदरीनारायण जाना है तो कैसे जाना है? रास्ता कैसा है? कितना है? आदि बातें स्वतः पैदा होंगी। स्वतः जिज्ञासा पैदा होगी। खोज करनेपर बतानेवाले और सहायता करनेवाले भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिल जायँगे। ज्यों-ज्यों चलेगा, त्यों-त्यों आगे चलनेका सामान भी मिलेगा और उपाय भी कर लेगा। सब कुछ हो जायगा। तो एक निश्चय हो जानेसे सब काम बन जाता है। ऐसा निश्चय कब होता है? जब यहाँकी अस्थिरता देखता है, परंतु भूलसे स्थिरता देखकर यहाँ ही डेरा लगा देता है कि बस, यहाँ ही रहना है। पर अभीतक जितने आये, कोई यहाँ नहीं रहा। अच्छे-अच्छे महात्मा, पीर, औलिया, सन्त हो गये; वे भी चले गये। भगवान्‌ने भी अवतार लिये, पर हमारे इस मृत्युलोकके रिवाजको नहीं तोड़ा। वे भी चले गये। यहाँ रहनेकी रिवाज नहीं है, इस वास्ते यह जाने-ही-जानेवाला है। अगर यह ठीक जागृति रहे तो बहुत ही लाभ है।

जैसे कार्यालयमें काम करने जाते हैं तो भीतर यह बात बैठी रहती है कि कार्य समाप्त होते ही घर चल देंगे। इस बातको याद नहीं करते, इसका चिन्तन नहीं करते, इसका जप नहीं करते, परंतु बात भीतर जमी रहती है। इस तरह जो संसारमें रहनेकी बात है, वह बिलकुल उलटी बात है और यहाँ न रहनेकी बात बिलकुल सही बात है। सही बातको मान लें। इसमें कुछ करना नहीं पड़ता। इसे निर्विकल्परूपसे मान लेनेपर फिर यह विचारका विषय नहीं रहता। इस बातको मान लें तो बड़े भारी लाभकी बात है। ये जितने साधन हैं, सब इसके ऊपर आधारित हैं। यह सबकी आधारशिला (नींव) है। आस्तिक हो या नास्तिक, कोई क्यों न हो, यह सबके लिये सही बात है और ठीक अनुभवकी बात है। ऐसा नहीं कि शास्त्रोंमें लिखा है, मान लो; तो जिसकी श्रद्धा होगी, वह मान लेगा और जिसकी श्रद्धा नहीं होगी, वह नहीं मानेगा। इसमें तो श्रद्धाकी भी जरूरत नहीं है। यह तो प्रत्यक्ष और सीधी बात है कि हमारा बालकपना चला गया। उसे ढूँढ़ें तो वह मिलता नहीं। ऐसा ही प्रवाह अभी भी चल रहा है।

एक परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिके लिये ही हमारा आना हुआ है। उसीको प्राप्त करना है। पर यह तब होगा, जब इस संसारको अप्राप्त मानें। संसार प्राप्त नहीं हुआ है। हम अचल हैं* और यह सब चल है। चलके साथ मिलनेसे अपनेमें अस्थिरता मालूम देती है। स्थिर होते हुए भी अपनी स्थिरताका अनुभव नहीं होता। जैसे हम गाड़ीमें जा रहे हैं और गाड़ी किसी छोटे स्टेशनपर ठहर गयी; क्योंकि सामनेसे दूसरी गाड़ी आ रही है, वह गाड़ी आकर दूसरी लाइनमें ठहर जाती है, हम उस गाड़ीकी तरफ देखते हैं, वह गाड़ी चल पड़ती है तो मालूम होता है कि हम चल रहे हैं, जबकि हमारी गाड़ी स्थिर है, ऐसे ही यह शरीर-संसाररूपी गाड़ी चल रही है और उधर दृष्टि रहनेसे हम देखते हैं कि हम जवान हो रहे हैं, हम बूढ़े हो रहे हैं आदि। ऐसा दीखता है कि हम जा रहे हैं, पर जा रहा है शरीर। इस प्रकार शरीर-संसारको तो स्थिर मान लिया और अपनेको जानेवाला मान लिया। शरीर-संसारको स्थिर माननेसे द्वन्द्व पैदा होते हैं और द्वन्द्वोंसे मोह पैदा होता है। इस वास्ते जो द्वन्द्वमोहसे रहित होते हैं, वे दृढ़व्रती होकर भगवान्‌का भजन करते हैं—

'ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः॥'

(गीता ७। २८)

राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे रहित पुरुष सुखपूर्वक संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है—

'निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते॥'

(गीता ५। ३)

'द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥'

(गीता १५। ५)

इसलिये भगवान् आज्ञा देते हैं कि तुम निर्द्वन्द्व हो जाओ—**त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥** (गीता २। ४५) हम निर्द्वन्द्व कब होंगे? जब शरीर-संसारको अस्थिर मानेंगे तब। अस्थिर माननेसे फिर राग-द्वेष नहीं होंगे।

घर कीन्हें घर जात है घर छाँड़े घर जाइ। तुलसी घर बन बीचहीं राम प्रेम पुर छाइ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि घर करनेसे (गृहस्थीमें रहनेसे) अपना असली घर (परलोक) नष्ट हो जाता है और घर छोड़नेसे (संन्यास ग्रहण करनेसे) यहाँका घर (गृहस्थी) नष्ट होता है। अतएव तू घर और वनके बीचमें ही (अर्थात् घरहीमें गृहत्यागीकी भाँति रहकर) श्रीरामजीके प्रेमकी पुरी बसा। **(दोहावली)**

* नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥ (गीता २। २४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनूठा बदला

(प्रो० श्रीशिवानन्दजी)

रात अँधेरी थी। अरबकी मरुभूमिमें रात्रि अत्यन्त भयावह प्रतीत होती थी। चारों ओर सन्नाटा था। इस निस्तब्ध वातावरणमें सहसा किसी अनजाने व्यक्तिने यूसुफके द्वारको खटखटाया। द्वार खुला। शान्त मुद्रामें खड़े यूसुफसे इस आगन्तुकने कहा, 'यह व्यक्ति जो आपके द्वारपर अर्द्धनिशाके अन्धकारमें आया है, समाजसे निष्कासित एक पापी है और सभीने गर्हित मानकर इसका परित्याग कर दिया है। यह भीतित्रस्त है और प्रकम्पित है। राजकर्मचारी इसे पकड़कर दण्डित करनेके हेतु इसके पीछे लगे हुए हैं, जिनसे प्राण बचानेके लिये यह भागा-भागा घूम रहा है; परंतु कहीं भी सिर छिपानेको स्थान न पाकर आपके द्वारपर आया है। हे यूसुफ! आप अपनी दयालुताके लिये सुविख्यात हैं। आपको सभी सत्पुरुष मानते हैं। मैं भी आपकी शरण ग्रहण करता हूँ और आपसे भोजन एवं विश्राम पानेकी याचना करता हूँ। मैं दुःखी हूँ और मुझे कुछ भी सूझता नहीं है। मेरी विचारशक्ति क्षीण हो चुकी है। क्या मुझे इस द्वारपर शरण मिलेगी?'

तुरंत ही स्वागतके लिये भुजा उठाकर यूसुफने कहा, 'भद्रपुरुष! यह घर मेरा नहीं है। उस प्रभुका है। अतः इसमें तुम्हारा भी अधिकार है। यह समस्त संसार एक धर्मशाला है, जहाँ यात्री कुछ समयतक ठहरकर चले जाते हैं। प्रत्येक सदन भी एक छोटी-सी धर्मशाला है, जहाँसे सभी कौटुम्बिक-जन कुछ अवधिके पश्चात् विदा ले लेते हैं। सच पूछो तो यह शरीर भी एक धर्मशाला है, जहाँ कुछ समयतक आत्मा एक यात्रीके सदृश ठहरता है और एक दिन इसे छोड़कर अकस्मात् कहीं चला जाता है। तो फिर जब मैं इस देहका भी स्वामी नहीं हूँ, तब इस आवास-निकेतनका एकाधिपति कैसे हूँ? तुम्हारे लिये इसके द्वार खुले पड़े हैं। शान्त हो जाओ। यहीं भोजनादि सामग्रीका स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग करो; क्योंकि इसका सच्चा स्वामी परमात्मा है, जिसके द्वारपर किसीको भी 'नहीं' सुननेके लिये नहीं मिलता है।'

शरणार्थीने यूसुफके डेरेमें प्रवेश किया, जहाँ उसने शान्तिसे रात बितायी और विश्राम किया। रात्रिमें इस

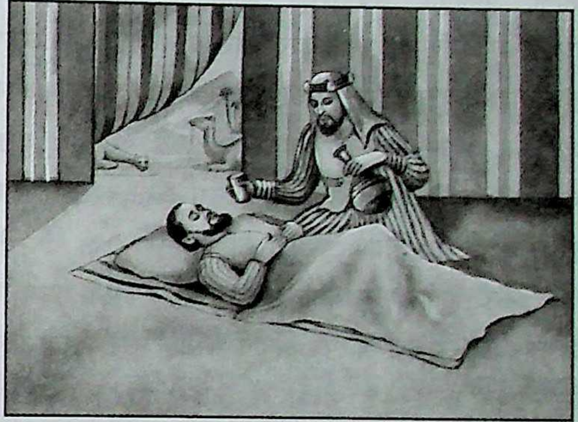

नवागन्तुकने आत्मपरिचय न दिया और अतिथिरूपमें समुचित सेवा-सत्कार उसे उपलब्ध हुआ। यूसुफने स्वयं उसकी परिचर्या की।

सूर्योदयसे पूर्व ही, जब कुछ नक्षत्र चन्द्रदेवकी सभाके विसर्जन होनेके उपरान्त भी आकाशमें विद्यमान थे, यूसुफने अपने अतिथिको धीरेसे जगाकर उससे कहा—'महाभाग! सूर्योदयकी वेला समीप ही है। आपकी सुविधाके हेतु मैं कुछ धन आपकी सेवामें अर्पित कर रहा हूँ। यह ग्रहणकर मुझे कृतार्थ कीजिये और मेरे द्रुतगामी अश्वपर आरूढ़ होकर अन्यत्र चले जाइये, जिससे कि दिनका प्रकाश आपको आपके विरोधीगणके सम्मुख न कर सके। आपके हितकी दृष्टिसे ही मैंने यह सम्मति दी है। आप इसे अन्यथा न समझें। सेवामें भी त्रुटियाँ हुई हैं और आपको जो असुविधा हुई है, आप उसे उदारतासे क्षमा करें।'

यूसुफके हृदयकी पवित्रता उसके मुखमण्डलपर स्वच्छ चन्द्रिकाकी भाँति छायी हुई थी। उसके मौनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्रकी गहनता अन्तर्निहित थी। उसके नेत्रोंमें मनोरम आकर्षण था। उसके दिव्य व्यवहारने आगन्तुकके हृदयमें भी सात्त्विकता उत्पन्न कर दी थी। एक दीपक दूसरे दीपकको जला देता है और उसकी अपनी ज्योतिमें न्यूनता नहीं होती है। नवागन्तुकके हृदय-प्राङ्गणमें अन्धकार आच्छन्न था। वहाँ पापकी कालिमा थी, भयका उद्रेक था और ग्लानिका तमस् था। किंतु यूसुफकी शान्त, पुण्यपूत, सद्-रंजित आकृतिसे नि:सृत होकर बिखरनेवाले किरण-पुंजने इस व्यक्तिके हृदयमें उल्लासकी धवलताको जाग्रत् कर दिया। भयके स्थानपर साहस और ग्लानिके स्थानपर ओज प्रकट हो गये। उसका मुख कमलकी भाँति खिल उठा और उसके हृदयकी सुमधुर पवित्रता उसके नेत्रोंसे झाँकने लगी।

नीचे झुककर पृथ्वीपर जानु टेककर उसने यूसुफके अभयप्रदाता दक्षिण करपर अपना मस्तक रख दिया और सिसककर कहा—'हे शेख! मैं कृतघ्न हो कैसे जाऊँ! आपने मुझे त्राण दिया, भोजन दिया, शान्ति दी, सुरक्षा दी और केवल इतना ही नहीं, आपने मुझ भटकते हुएको राह दिखायी, आत्मप्रकाशसे मेरे मनमें जीवन-ज्योति जला दी। पवित्रता दी। मैं जीवनको भार समझ रहा था और अपने-आपसे भयभीत था। आपके प्रति मैं कृतज्ञता प्रकाशन करना चाहता हूँ। आज्ञा दीजिये।'

यूसुफको इस सबका अर्थ स्पष्ट न हुआ और उसने ठिठककर कहा—'प्रियवर! मैंने तो साधारण मानवीय कर्तव्यका पालन किया है। सबकी उदरपूर्ति ईश्वर करता है, जो हम सबका अन्नदाता है। यदि कोई व्यक्ति मेरे घरपर ईश्वरप्रदत्त भोजन ग्रहण करता है, वह तो मेरे घरको पवित्र करता है। मैं ही आपका कृतज्ञ हूँ कि मुझे सेवाका अवसर दिया है।'

इस अज्ञात और अपरिचित व्यक्तिने यूसुफसे फिर कहा—'मैं कैसे यह कहूँ कि यह उपकार आपने इस कुकर्मी, पातकी इब्राहिमके लिये किया है, जिसने आपके ज्येष्ठ पुत्रकी जघन्य हत्या की थी। हमारी जातिमें यह मान्यता है कि हत्यारेका वध करनेपर ही मृतककी आत्माको शान्ति मिलती है। अतएव मेरा सिर आपकी सेवामें अर्पित है। आप खड्ग उठाकर मेरा वध कर दें, जिससे कि आपके पुत्रकी आत्माको शान्ति और मुझे उचित दण्ड प्राप्त हो सके।'

यह कहकर इब्राहिम मौन हो गया, किंतु उसकी मौनताने यूसुफको मुखरित कर दिया। उसके मनमें सहसा एक तूफान उठ खड़ा हुआ था, जिसे वह शान्त कर देना चाहता था। पुत्रके स्मरणमात्रसे उसके शरीरमें भावावेगका भूकम्प आ रहा था। एक ओर तो पिताके रूपमें यूसुफके हृदयमें अपने पुत्रके हत्यारेका वध करनेकी पाशविक इच्छा जाग रही थी और दूसरी ओर शरणागतकी रक्षा करना उसका महान् कर्तव्य था। उसके मानसमें इस संघर्षने एक क्षण ही उथल-पुथल की होगी कि दिव्य भावसे सम्प्रेरित होकर वह शीघ्रतासे बोल उठा—'तब तो आप और भी अधिक त्वरित गतिसे विदा लें, कहीं ऐसा न हो कि मेरे मनमें प्रतिशोधकी भावना उग्र हो जाय और मैं कर्तव्यभ्रष्ट हो जाऊँ। मेरे नेत्रोंसे आपके ओझल हो जानेके साथ ही मेरे हृदयकी कलुष भावना भी मानो विलुप्त हो जायगी। शीघ्रता करें और अब यह तिगुना धन ले जायँ।'

यूसुफके हृदयमें दिव्य करुणा भरी हुई थी। विषधर भुजंग क्षमा करना नहीं जानता और वह विषवमन ही करता है, किंतु महापुरुषका हृदय तो क्षमा और प्रेमका अथाह समुद्र होता है। उसने इब्राहिमको क्षमा किया। नेत्र मूँदकर और दुआमें दोनों भुजा ऊपर उठाकर कहा—'हे मेरे दिवंगत ज्येष्ठ पुत्र! मैं तेरे लिये दिन-रात तड़पा करता हूँ। आज मैंने तेरा बदला ले लिया है। तेरे हत्यारेकी नृशंस भावना पश्चात्तापकी अग्निसे विनष्ट हो चुकी है और आज उसका स्वरूप पवित्र है। परमात्माका विधान न्यायपूर्ण और पवित्र है। तेरी हत्याका प्रतिशोध आज सम्पन्न हो चुका है। अब तू शान्तिकी चिर निद्रामें सो जा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्तव्यकी कसौटी

(स्वामी श्रीमहेशानन्दगिरिजी महाराज)

भगवती श्रुति बतलाती हैं कि यदि पुरुष अपने अन्दर स्थित परमात्मतत्त्वका साक्षात्कार कर लेता है तो किसी भी ऐसी इच्छा अथवा किसी भी ऐसी कामनासे वह प्रवृत्ति (व्यवहार) नहीं करता, जो शरीर, मनको अनुसंतप्त करे—क्लेशका, पीड़ाका कारण बने।

इस सन्दर्भमें बृहदारण्यकोपनिषद्में एक मन्त्र इस प्रकार है—

आत्मानं चेद् विजानीयादयमस्मीति पूरुषः।
किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्॥

उस परमात्मतत्त्वके दर्शन करनेके लिये अन्तःकरण साधन है। वह परमात्मा अत्यन्त सन्निहित है, नजदीक है, इतना पास और कुछ भी नहीं है। वह अपना वास्तविक स्वरूप है। कोई पूछे कि घड़ेसे मिट्टी कितनी दूर है? तो क्या उत्तर दिया जाय; क्योंकि घड़ेकी वास्तविकता अर्थात् स्वरूप ही मिट्टी है। इसी प्रकार कपड़ा रूईमात्र है, किंचित् भेद नहीं है। इसी प्रकार समुद्र और उसकी लहर है। यही स्थिति हमारी है। किंतु हम सोचते हैं, 'वह परमात्मा हमको कब मिलेगा?' जैसे लहरकी सच्चाई समुद्र ही है, लहर कुछ भी नहीं है; इसी प्रकार हमारा वास्तविक स्वरूप परमात्मा ही है, उससे भिन्न कुछ भी नहीं है। ऐसा होनेपर भी हम अपने-आपको—अपनी वास्तविकताको जानते नहीं है। घड़ेकी वास्तविकता मिट्टी है, कपड़ेकी वास्तविकता धागा या रूई है, समुद्र ही वास्तवमें लहरकी एकमात्र सत्यता है। यदि लहर, कपड़ा, घड़ा अपनी वास्तविकताको नहीं जानते, तब उनका होना, नहीं होने-जैसा ही है। छान्दोग्योपनिषद् एक दृष्टान्त देती है कि किसी आदमीके पास पूर्वजोंका खेत है। वह सेठसे कहता है 'मुझे धन चाहिये, मेरा खेत गिरवी रख लो। लड़कीकी शादी है, धन दे दो।' दोनोंके कुटुम्ब मित्रतावाले थे। सेठने कहा 'खेत गिरवी रखनेकी जरूरत नहीं, तू तो करोड़पति है। तुम्हारे खेतमें पुराना धन गड़ा है।' सेठको खेतमें गड़े धनकी बात मालूम थी। सेठ उसके साथ रातमें खेतपर गया और धन खोदनेपर मिल गया। इसलिये उपनिषद् कहती है—**'यथापि हिरण्यनिधिं निहितमक्षेत्रज्ञा उपर्युपरि सञ्चरन्तो न विन्देयुः।'** (छा० ८।३।२)

रोज खोदते थे, लेकिन ऊपरसे; क्योंकि **'अक्षेत्रज्ञाः'** धन खेतमें गड़ा है—इस बातको नहीं जान रहे थे, यद्यपि खेतके मालिक थे। करोड़पति हैं, पर पता न होनेसे नहीं हैं। श्रुति कहती है कि यही हाल जीवका भी है, इसके पास आनन्दकी खान है, सुखकी खान अन्दर है। इसकी वास्तविकता आनन्दमय है, किंतु अज्ञानी जीव कुछ नहीं जानता, जानकर भी वैसा व्यवहार नहीं करता। जैसे घड़ेमें मिट्टीके सिवाय कुछ नहीं, जैसे कपड़ेमें रूईके सिवाय कुछ नहीं है, जिस प्रकार लहरमें जल-ही-जल है, वैसे ही जीवके वास्तविक स्वरूपमें सुख-ही-सुख है, इसके सिवाय कुछ नहीं। **'विज्ञानम् आनन्दं ब्रह्म।'** आनन्द जीवका स्वरूप है। अपने इस स्वरूपको न जाननेके कारण वह रात-दिन आनन्दको बाहर ढूँढ़ रहा है। वह इधर-उधरसे सुखकी इच्छासे विषय-भोगोंमें सुख ढूँढ़ रहा है कि इनमें सुख मिल जाय। इन सुखोंकी रात-दिन आशा करनेसे परेशान भी है, पर उसे अपने अन्दर गड़े सुखका ज्ञान नहीं है। पहले वह खेतीसे गुजारा करके प्रसन्न था। खेतमें कभी अनाज ज्यादा हो गया तो सुखी हो गया, कम हो गया तो दुःखी हो गया। कभी-न-कभी जीवनमें ऐसा काल आता है, जब लगता है कि इन छोटे सुखोंसे गुजारा हो नहीं रहा, कोई बड़ा सुख मिले। जीव इसके लिये परमेश्वरकी तरफ जाता है। परमेश्वरका पता वेदादि सच्छास्त्रोंसे लगता है। तब जीव कहता है 'भगवन्! मेरा सब कुछ ले लो, पर बदलेमें सुख दे दो, वास्तविक सुख दे दो, धन-पुत्रादि नहीं।' परमात्मा-जीवका सम्बन्ध तो अनादि कालसे चला आया है। परमात्मा कहता है, 'तुम सुख चाहते हो, वह तो तुम्हारे ही पास है, तुम्हारा स्वरूप ही सुख है। आनन्द ही तुम्हारा स्वरूप है।' पहले तो जीवको विश्वास नहीं होता; क्योंकि उसने अपने-आपको अज्ञानमें रख छोड़ा है। यद्यपि उसका कण-कण आनन्दस्वरूप है, पर अज्ञानके कारण उसका कोई लाभ उठा नहीं पाता। इसलिये शास्त्रकार कहते हैं, जबतक इस अज्ञानकी निवृत्ति नहीं होगी, तबतक काम बनेगा नहीं। अज्ञानका विरोधी ज्ञान ही होता है। अन्धकारका विरोधी प्रकाश ही होता है। अन्धकारको दूर प्रकाश ही करेगा, अज्ञानको दूर करनेवाला तो ज्ञान ही है। अतः सच्चा ज्ञानपिपासु बनना पड़ेगा।

अज्ञानको कौन-सा ज्ञान दूर करेगा? लोग कहते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा ज्ञानरूप ही है, वह अपने-आप अज्ञानको समाप्त कर देगा! किंतु ज्ञानस्वरूप परमात्मा अज्ञानको दूर नहीं करता, वृत्तिमें आरूढ ही वह ज्ञान, वृत्तिज्ञान ही अज्ञानको नष्ट करता है। यदि ज्ञानस्वरूप परमात्मा अज्ञानको नष्ट करता तो अनादि कालसे ज्ञानस्वरूप परमात्मा है ही, उसने नष्ट कर ही दिया होता! ज्ञानस्वरूप परमात्मा अज्ञानको नष्ट नहीं करता। जब तुम्हारे मनकी वृत्ति परमात्माकार बनती है, उस वृत्तिमें जो ज्ञान होता है, वह अज्ञानको नष्ट करता है। लकड़ीमें अग्नि है। तुम लकड़ियाँ जमा करके तापनेके लिये माघ मासमें बैठ जाओ तो क्या ठण्ड नहीं लगेगी? चाहे चार मन लकड़ियाँ हों, ठण्ड लगेगी ही। लकड़ीमें भरी अग्नि ताप नहीं दे सकती। यदि तुमने माचिस जलाकर, दस सेर लकड़ीको ही उद्दीप्त कर लिया तो लकड़ीमेंसे ही निकलती वह आग तुम्हारी ठण्ड दूर करती है, प्रज्वलित होनेपर ही वह अग्नि लाभ देती है। इसी प्रकार ज्ञानस्वरूप परमात्मा अज्ञानको नष्ट करता नहीं, परंतु यदि वह ज्ञान मनकी वृत्तिके अन्दर प्रज्वलित हो जाता है तो काम बन जाता है। ऐसे ही सूर्य रोज ही प्रकाश करता है। कोई चीज उससे जलेगी नहीं। यदि सूर्यके सामने सूर्यकान्तमणि रख दो, आतशी शीशा रख दो, उन्नतोदर काँच रख दो तो वही सूर्य धागा, सूत, घासको जला देगा। यद्यपि सूर्य सारी पृथ्वीपर प्रकाश करता है तथापि कुछ नहीं जला सकता, पर छोटे-से काँचमें पड़कर जला देगा। अपनी आनन्दरूपताको न जाननेके कारण ही हम सुखके पीछे भटक रहे हैं।

परमेश्वरस्वरूप ही वेद है। बृहदारण्यकके अन्तमें जहाँ वंश-परम्परा आयी है, वहाँ अन्तिम गुरु बतलाया है—**'स्वयंभु ब्रह्मणे नमः।'** वेद परमात्माका स्वरूप है, विग्रह है। वेदस्वरूप परमात्मा हमको बतलाता है—'तुम आनन्दस्वरूप हो', परंतु तुम जानते नहीं हो, मनके द्वारा वृत्ति नहीं बनायी इसलिये। मनको समय ही नहीं मिला इसके लिये! जैसे वह उसी खेतमें रात-दिन खेती करता था, वैसे ही हम लोग जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—तीनोंमें भटक रहे हैं। परमात्मबोधके लिये समय ही नहीं है। जाग्रत्में भटकते हैं, वहाँ इन्द्रियोंसे विषयोंको देखते हैं। निद्रामें स्वप्नमें भटकने लगते हैं। गहरी नींदमें यद्यपि विषयोंमें नहीं भटकते तथापि अज्ञानमें, तममें डूबे रहते हैं। इन तीनोंमें आते-जाते हमें फुरसत ही नहीं है। जाग्रत्में जाग्रत्के व्यवहार सिरपर हैं। बरतन माँजने हैं, दाल बनानी है, भोजन परोसना है, दुकान जाना है, एकके बाद एक वृत्तियोंका ऐसा प्रवाह है कि समय ही नहीं मिलता। मनने परमात्माकार वृत्ति नहीं बनायी; क्योंकि मनको वृत्ति बनानेमें कभी लगाया ही नहीं। वेद कहता है, 'तुमने सारे तो धन्धे कर लिये, हर जन्ममें। अब इधर भी देखो, शायद सुखकी प्राप्ति हो जाय।' **'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः।'** यह वेदका उद्घोष है। जन्म-जन्मान्तरसे तो तुमने सांसारिक सारे कर्तव्य निभाये हैं, पर परमात्माके दर्शनका कर्तव्य कभी नहीं निभाया। यह भी तुम्हारा ही कर्तव्य है। वेदने विलक्षण भाषाका प्रयोग किया है **'द्रष्टव्यः'**-शब्दमें तव्यत् प्रत्यय है अर्थात् प्रत्यगात्माको देखना चाहिये। श्रुति यही कह रही है कि आत्मदर्शन तुम्हारा कर्तव्य है। मनुष्य आजतक अनात्माके कर्तव्योंके पीछे परमात्माको भूल गया है। अनात्म विषयोंमें मनुष्य कितना भी चला जाय, कोई उसे कर्तव्यकी याद नहीं दिलाता। जो बहू पूजापर बैठी है, सास उससे कामको कहेगी, सोनेवाली दूसरी बहूको नहीं। एक लड़का बम्बईमें कमाई करता है। दूसरा मारवाड़में ही मन्दिरमें भगवान्के काममें लगा है। बापके बीमार होनेपर कोई बम्बईवालेको नहीं कहेगा कि वह फर्ज छोड़कर बैठा है; क्योंकि कमाई कर रहा है। दूसरेको ही कहेंगे कि पूजामें व्यर्थ समय गवाँ रहा है, बापकी सेवा क्यों नहीं करता! अर्थात् पूजा व्यर्थ है, धन कमाना धर्म है। बाकी सब कर्तव्य बताये गये हैं, अतः वेद इस परमावश्यक कार्यके लिये भी कह देता है कि आत्मदर्शन ही कर्तव्य है। इसको जब कर्तव्य मानोगे, तब मन इधर लगेगा।

अबतक विषयासक्तिसे मन भरा है। उसे दूर करना जरूरी है। इसको दूर करनेके लिये नाद आदिके सहारे परमात्मापर चित्त स्थिर करना चाहिये। उससे मन विषयासक्तिसे हटकर अन्दरके आनन्दकी तरफ जाता है। तब आयेगा वैराग्य, वह भी तुम्हारा कर्तव्य है। आत्मदर्शन मायने अनात्माके दर्शनको हटाना। अनात्मदर्शनको छोड़नेपर मनुष्य वास्तविक कर्तव्यकी तरफ जायगा, परमात्म-प्राप्तिकी तरफ जायगा। जब इसे कर्तव्य मानकर प्रवृत्त होगा तभी लगेगा। जैसे घास जलानेके लिये सूर्यकान्तमणि और सूर्य चाहिये, वैसे परमेश्वरकी प्राप्तिके लिये एक केवल तुम्हारा मन चाहिये और परमेश्वर चाहिये। दोनों तुम्हारे पास हैं। दोनोंको बस एकत्रित करना आवश्यक है। तुम्हारे पास मन भी है, परमात्मा भी है, केवल दोनोंको मिलाकर परमात्माकार वृत्तिवाला बनाना है।

[प्रेषक—श्रीबुलाकीदासजी मीमाणी]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नामु राम को कलपतरु'

(श्रीदेवेन्द्रजी शर्मा)

[गताङ्क ३ पृ०-सं० ५९० से आगे]

'श्रीराम-नाम' को कल्पवृक्षकी उपमा देनेमें श्रीगोस्वामीजीका विश्वाससे पूर्ण कथन यह है कि सारे वेद-पुराण, पण्डित यहाँतक कि भगवान् श्रीशंकरजी भी यही कहते हैं कि कल्पवृक्षके समान श्रीभगवान्का 'श्रीराम-नाम' सभी प्रकारके साधकों-भक्तोंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पदार्थोंको प्रदान करनेवाला है और उनके स्वयं (गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी)-के जीवनका आधार तो 'श्रीराम-नाम' ही है—

राम-नाम कामतरु देत फल चारि रे। कहत पुरान, बेद, पंडित, पुरारि रे॥
राम-नाम प्रेम-परमारथको सार रे। राम-नाम तुलसीको जीवन-अधार रे॥

(विनय-पत्रिका ६७।४-५)

श्रीगोस्वामीजी 'श्रीनाम-वन्दना' प्रकरणमें 'राम' शब्दके तीनों वर्णों ('र', 'अ' तथा 'म')-को कृसानु (अग्नि), भानु (सूर्य) और हिमकर (चन्द्रमा)-की उपमा देते हैं और इनके गुणोंको 'श्रीराम-नाम' की महत्ता और प्रभावसे जोड़ते हुए कहते हैं—

बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥

(रा०च०मा० १।१९।१)

जैसे अग्निका काम पदार्थोंको भस्म करना है, वैसे ही—'श्रीराम-नाम' रूपी पावक (अग्नि) भी जीवके समस्त पापरूपी तूल (रूई)-को जलाकर भस्म कर देता है—'***जासु नाम पावक अघ तूला।***' (रा०च०मा० २।२४८।२)

जैसे सूर्यका काम संसारको प्रकाश प्रदान करना और भोजनार्थ अन्न (फसल)-को पकाना है, वैसे ही 'श्रीराम-नाम' रूपी पतंगा (सूर्य) भी जीवके हृदयरूपी संसारके समस्त भ्रमरूपी तिमिर (अन्धकार)-का नाश करके उसे विशुद्ध ज्ञानरूपी प्रकाश प्रदान करता है और उस प्राप्त प्रकाशरूपी ज्ञान अथवा आध्यात्मिक-भोजन (फसल)-को परिपक्व बनाता है—'***जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा।***' (रा०च०मा० १।११६।४)

जिस प्रकार चन्द्रमाका काम सूर्यसे तापित संसारको रात्रिमें शीतलता प्रदान करना और पुष्टिकारक वनस्पतियोंमें रसको उत्पन्न करना है—वैसे ही 'श्रीराम-नाम' भी भक्तोंके लिये भक्तिरूपी पूर्णिमाकी रात्रिमें पूर्ण चन्द्रमाके अनुरूप काम करता है—'***राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम***' (रा०च०मा० ३।४२क), '***जासु नाम....हरन घोर त्रय सूल।***' (रा०च०मा० ७।१२४क), तथा '***नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा॥***' (रा०च०मा० १।२४।२) अर्थात् यह 'श्रीराम-नाम' भक्तोंके तीनों प्रकारके तापोंका हरण करके आनन्द और कल्याणरूपी शीतलता प्रदान करता है और भक्तोंद्वारा अपनाये गये भक्तिके समस्त साधनरूपी भक्ति-पुष्टिकारक वनस्पतियोंको 'भावरूपी रस' से परिपूर्ण करके, उनकी भक्तिको पूर्णता प्रदान करता है। श्रीगोस्वामीजी—

बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो॥

(रा०च०मा० १।१९।२)

—कहकर 'श्रीराम-नाम' को 'ॐ' के समान ही भगवान् श्रीब्रह्माजी, भगवान् श्रीविष्णु और भगवान् श्रीशिवजीसे युक्त बताते हैं।

महारामायणमें रकार, अकार तथा मकारके माहात्म्यको इस प्रकार बताया गया है—

जैसे अग्नि शुभाशुभ सभी वस्तुओंको जलाकर भस्म कर देता है और कुछ (स्वर्णादि-जैसी) वस्तुओंके मल तथा दोषको जलाकर उनको शुद्ध बना देता है, वैसे ही 'श्रीराम-नाम' में 'र'कारके उच्चारणसे भी दो कार्य होते हैं। पहला—यह कि 'र'कारके उच्चारणसे शुभाशुभ कर्म नष्ट होते हैं, जिनका फल स्वर्ग-नरकका अभाव है, दूसरे 'र'कारके उच्चारणसे मनकी विषय-वासनाओंका नाश होकर स्व-स्वरूप—आत्माकी झलक देखनेमें सहायता मिलती है। 'श्रीराम-नाममें' अकार भानु (सूर्य)-बीज है, जो वेदशास्त्रों यानी कि ज्ञानका प्रकाशक है। जैसे सूर्य अन्धकारको दूर करता है, वैसे ही अकारके उच्चारणसे हृदयमें बसे हुए मोह आदि जो अविद्या—तम (अन्धकार) हैं, उनका नाश होकर 'ज्ञान' का प्रकाश होता है। 'श्रीराम-नाम' में, 'म'कार चन्द्रबीज है, जो अमृतसे परिपूर्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे चन्द्रमा त्रितापको हरता है, शीतलता प्रदान करता है, वैसे ही 'म'कारके उच्चारणसे त्रिताप दूर होकर हृदयमें श्रीभगवान्‌की 'भक्ति' का प्रादुर्भाव होता है और 'भगवदाश्रय—शरणागतिरूपी शीतलता' प्राप्त होती है।

श्रीराम-नाम चिदानन्दमय है—

चिद्वाचको रकारः स्यात्सद्वाच्योऽकार उच्यते।
मकारानन्दवाची स्यात्सच्चिदानन्दमव्ययम्॥

(महारामायण ५२।५३)

अर्थात् 'र'कार 'चित्' का, 'अ'कार 'सत्' का और 'म'कार 'आनन्द' का वाचक है, इस प्रकार यह 'श्रीराम-नाम' 'सच्चिदानन्दमय' है।

'श्रीराम-नाम' ज्ञान-वैराग्य-भक्ति—तीनोंका प्रदाता है—

विज्ञानस्थो रकारः स्यादकारो ज्ञानरूपकः।
मकारः परमा भक्ती रमु क्रीडोच्यते ततः॥
रकारो हेतुर्वैराग्यं परमं यच्च कथ्यते।
अकारो ज्ञानहेतुश्च मकारो भक्तिहेतुकम्॥

(महारामायण)

अर्थात् 'श्रीराम-नाम' में 'र'कारके उच्चारणसे 'विज्ञान/वैराग्य', 'अ'कारके उच्चारणसे 'ज्ञान' और 'म'कारके उच्चारणसे 'प्रेमाभक्ति' प्राप्त होती है और इस प्रकार 'श्रीराम-नाम' सम्पूर्ण ज्ञान, वैराग्य और भक्ति—तीनोंको प्रदान करनेमें पूर्णतया समर्थ है।

अनल भानु ससि ब्रह्म हरि हर ओंकार समेत।
ब्रह्म जीव माया मनहिं भिन्न भिन्न सिख देत॥

(मानस-अभिप्राय-दीपककार)

अर्थात् 'श्रीराम-नाम' अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश), प्रणव, ब्रह्म, जीव और माया—इन दसोंका कारण और तद्रूप है और हमारे मनको इस प्रकार शिक्षा देता है कि 'श्रीराम-नाम' 'अग्नि-सूर्य-चन्द्रमा' की तरह जीवोंका पालन-पोषण करनेमें और त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश)-की तरह उत्पत्ति-पालन-संहारद्वारा जीवोंका कल्याण करनेमें समर्थ है। यह 'प्रणव' (ॐ)-की तरह वेदोंको सत्तावान् बनाये रखनेमें और सृष्टिकी रक्षा करनेमें समर्थ है। यह 'निर्गुण-ब्रह्म' की तरह सृष्टिके समस्त जीवोंके साथ रहकर उनके इन्द्रिय आदिको सदैव चेतन रखनेमें समर्थ है और 'विद्या-माया' तो जीवको भक्ति/मुक्तिके मार्गपर लगाती ही है। इस प्रकार 'श्रीराम-साममय' इन 'दसों' का हमारे मनपर पूरा-पूरा उपकार है।

श्रीरामानुजमन्त्रार्थमें 'श्रीराम-नाम'का भावपूर्ण अर्थ इस प्रकार है—हे दिव्य गुणों और परम ऐश्वर्यसे युक्त श्रीराम! दासताके गुणोंसे युक्त मैं आपका अनन्य सेवक, आपकी कृपादृष्टिका याचक हूँ। दूसरे शब्दोंमें—हे सर्वसमर्थ करुणानिधान भगवान् श्रीराम! कृपा करके आप मुझे अपनी परमानन्दमयी और परमकल्याणमयी दासता प्रदान करें।

'श्रीराम-नाम' में उपस्थित अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा तथा इनके गुण-धर्मोंके सन्दर्भमें एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाव मिलता है कि 'अग्नि' के प्रकाशका लाभ सन्ध्या और रात्रिकालमें, 'सूर्य' के प्रकाशका लाभ केवल दिनमें और 'चन्द्रमा' के प्रकाशका लाभ केवल रात्रिकालमें ही प्राप्त होता है। लेकिन 'श्रीराम-नाम' रूपी 'सर्वोत्तम-दिव्य-मणि' के प्रकाशका लाभ तो जीवके भीतरी और बाहरी संसारमें हर समय ही सुलभ है—

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥

(रा०च०मा० १।२१)

इसके अतिरिक्त यदि 'श्रीराम-नाम' के स्वर और व्यंजन दोनोंको अलग करके देखा जाय तो 'श्रीराम-नाम' पाँच भागोंमें परिणत हो जाता है—'र्+अ+अ+म्+अ' जो पंचब्रह्म और पंचतत्त्वोंका द्योतक भी बताया जाता है। आदित्य (श्रीसूर्य), गणनाथ (श्रीगणेश), देवी (श्रीदुर्गा), रुद्र (श्रीशिव) और केशव (श्रीविष्णु)—ये तो पंचदेव अथवा पंचब्रह्म हुए और 'क्षिति-जल-पावक-गगन-समीरा' (पृथ्वी-जल-अग्नि-आकाश-वायु)—ये पंचतत्त्व अथवा महाभूत हुए। 'श्रीराम-नाम'में प्रयुक्त स्वर और व्यंजनोंके जो उपर्युक्त प्रामाणिक अर्थ अथवा भाव दिये गये हैं, उनके साथ 'पंच ब्रह्म' और 'पंच तत्त्वों' का सम्बन्ध इस प्रकार बताया गया है—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

अर्थात् (१) 'र्' से रुद्र (श्रीशिव), जो पृथ्वीके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिपति हैं, (२) 'अ' से अग्रपूज्य/आदिपूज्य (श्रीगणेश), जो जलके अधिपति हैं, (३) 'अ' से अरुण (श्रीसूर्य), जो वायुके अधिपति हैं (४) 'म्' से श्रीविष्णु, जो आकाशके अधिपति हैं और (५) 'अ' से अजा (श्रीदुर्गा), जो अग्निकी अधिपति हैं और इस न्यायसे पंच ब्रह्म और पंच तत्त्वोंके बीच सनातन सम्बन्ध है। भगवान् श्रीशिवके पृथ्वीतत्त्वके अधिपति होनेके कारण उनकी पार्थिव पूजाका विधान है। भगवान् श्रीविष्णुके आकाशतत्त्वके अधिपति होनेके कारण उनकी शब्दोंद्वारा स्तुति करनेका विधान है। भगवती श्रीदुर्गाके अग्नितत्त्वकी अधिपति होनेके कारण उनका अग्निकुण्डमें हवन आदिके द्वारा पूजाका विधान है। भगवान् श्रीगणेशजीके जल (जीवन) तत्त्वका अधिपति होनेके कारण (क्योंकि सृष्टिके आदिमें जल ही जल था तो उसके अधिपति होनेसे आदि देवता, अग्रपूज्य/आदिपूज्य श्रीगणेश ही हुए, अत:) उनकी सर्व-प्रथम पूजाका विधान है और इस प्रकार अकेले 'श्रीराम-नाम'के स्मरण तथा जपसे पंचब्रह्म और पंचतत्त्वोंकी साधना भी स्वत: ही हो जाती है।

श्रीगोस्वामीजी 'श्रीराम-नाम' वन्दनाके प्रसंगमें 'श्रीराम-नाम' का निरूपण करके अर्थात् इसकी महिमाको अच्छी तरहसे जानकर और उसपर पूर्ण विश्वास करके, इसके जप-स्मरणद्वारा चारों फल— धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका लाभ पानेवालोंका विवरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—

नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥
महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥
सहस नाम सम सुनि सिव बानी । जपि जेईं पिय संग भवानी॥
हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को॥
नाम प्रसाद संभु अबिनासी। साजु अमंगल मंगल रासी॥

(रा०च०मा० १।१९।८, ३, ६-७, १।२६।१)

अर्थात् निरन्तर 'श्रीराम-नाम'का जप करनेके फलस्वरूप ही भगवान् श्रीशंकरके लिए कालकूट-विष अमृतके समान हो गया और इसी 'श्रीराम-नाम'के प्रभावसे वे अपने काशी-धाममें शरीर त्यागनेवालोंको 'मुक्ति' प्रदान करते हैं। इतना ही नहीं, अपने पति जगद्गुरु भगवान् श्रीशंकरसे 'श्रीराम-नाम' का यह महत्त्व जानकर कि अकेला 'श्रीराम-नाम' ही भगवान् श्रीविष्णुके सहस्रनामोंके बराबर है, माता श्रीपार्वतीजी भी इस परम-पावन 'श्रीराम-नाम' को अपने पतिके साथ सादर श्रद्धापूर्वक निरन्तर जपने लगीं।

महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥
जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥

(रा०च०मा० १।१९।४-५)

अर्थात् श्रीगणेशजीसे अच्छा 'श्रीराम-नाम' के प्रभावको कौन जान सकता है? इसी 'श्रीनाम' के प्रभावके कारण ही उन्हें 'आदिपूज्य'का पद प्राप्त हुआ और श्रीवाल्मीकिजी तो 'श्रीराम-नाम' को उलटा यानी कि 'मरा-मरा' जपनेपर ही 'आदिकवि' और 'ब्रह्मर्षि' की पदवी पा गये।

सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥
नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥
ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥

(रा०च०मा० १।२६।२—७)

अर्थात् 'श्रीराम-नाम' के प्रसादसे ही श्रीशुकदेवजी और श्रीसनकादिमुनि परमसिद्ध महर्षि होकर ब्रह्मसुखके भोगी हुए तथा श्रीनारदजी भगवान् श्रीविष्णु और भगवान् श्रीशंकर— दोनोंके प्रिय बने। दैत्यकुलमें उत्पन्न प्रह्लादजी भक्तशिरोमणि कहलाये। ग्लानिसहित 'श्रीहरिनाम' जपनेपर भी ध्रुवने अचल पद प्राप्त किया। परमभक्त पवनपुत्र श्रीहनुमान्‌जी महाराजने तो इस परम-पावन 'श्रीराम-नाम' के निरन्तर-जपके प्रसादसे भगवान् श्रीरामको ही अपने बसमें कर रखा है। नीच-कर्ममें लिप्त होते हुए भी अजामिल, गज (हाथी) और गणिका-जैसे पापी भी श्रीभगवन्नामके प्रसादसे भव-बन्धनसे मुक्त हो गये। **[क्रमशः]**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तितिक्षाकी साधना

(डॉ० श्रीबसन्तबल्लभजी भट्ट, एम०ए०, पी-एच०डी०)

'तितिक्षा' जीवनकी सर्वश्रेष्ठ साधना है, यह महान् व्रत है, महान् तप है—**'एतद्वै परमं तपः'** (छान्दोग्योपनिषद्)। तितिक्षाका सामान्य अर्थ है—सहन करनेके सामर्थ्यका भाव। यह भाव जिस व्यक्तिमें रहता है, वह 'तितिक्षु' कहलाता है। तितिक्षाके ही अर्थको व्यक्त करनेवाला दूसरा शब्द है सहिष्णुता अर्थात् सहनशीलता। जिस व्यक्तिमें सहिष्णुता रहती है, वह 'सहिष्णु' कहलाता है। मानव-जीवनमें तितिक्षाके अवसर प्रत्येक क्षणमें आते रहते हैं; क्योंकि यह जीवन सुख-दुःख, शीत-उष्ण, लाभ-हानि, अच्छाई-बुराई, जय-पराजय, भाव-अभाव, सफलता-असफलता, अनुकूलता-प्रतिकूलता, हर्ष-शोक, राग-द्वेष, मान-अपमान, यश-अपयश तथा जीवन-मरण आदि द्वन्द्वोंसे परिपूर्ण है। इस द्वन्द्वाघातको सहर्ष सहन कर लेनेकी जो वृत्ति है, तितिक्षा कहलाती है—

सहनं सर्वदुःखानामप्रतीकारपूर्वकम्।
चिन्ताविलापरहितं सा तितिक्षा निगद्यते॥

(विवेकचूडामणि, २५)

बाह्य जगत्में दीखनेवाले ये ही द्वन्द्व जब अन्तर्जगत्में प्रविष्ट होकर घनीभूत हो जाते हैं तो अन्तश्चेतनामें महान् अन्तर्द्वन्द्व शुरू हो जाता है, मनश्चैतन्य विकृत होने लगता है और नकारात्मक विचारोंका अंकुरण होने लगता है। इन द्वन्द्वोंपर विजय पाना ही मानव-जीवनकी सार्थकता है और इन द्वन्द्वोंको सहन करना ही तितिक्षाकी साधना है। यदि जीवनमें तितिक्षाका अभाव है, तितिक्षाकी साधना नहीं है तो समझना चाहिये कि जीवन विविध उद्वेगजन्य विकारोंसे परिपूर्ण है और सर्वथा अशान्त है। यह अशान्ति ही जीवनकी सर्वोपरि असफलता है। जिसने तितिक्षाकी साधना कर ली, द्वन्द्वोंको जीत लिया तो उसका जीवन शाश्वत आनन्दसे परिपूर्ण, चाहरहित, आकांक्षारहित और सर्वथा निःस्पृह हो जाता है।

हम इन सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंसे सर्वथा परे रह सकें, इसके लिये हमें तितिक्षाकी साधना करनी पड़ेगी, द्वन्द्वोंको जीतना होगा, सुख-दुःख, अनुकूल-प्रतिकूल चाहे जैसी भी परिस्थिति आये, उसमें बिना किसी विशेष प्रतिक्रियाके समान भावमें रहना होगा। समत्वकी स्थिति प्राप्त करनी होगी, समत्वमें स्थित रहना योगकी प्राप्ति है। गीतामें भगवान्ने कहा है—**'न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्'** अर्थात् प्रिय वस्तु, व्यक्ति, घटना या परिस्थितिको प्राप्तकर अर्थात् अनुकूलताकी स्थितिमें प्रसन्नताका अनुभव न करे, निःस्पृह रहे और अप्रिय परिस्थितिके आनेपर उद्विग्न न हो, विचलित न हो। सुखकी अनुभूतिमें भी सम रहना और दुःखकी अनुभूतिको भी समान भावसे सहन करना—दोनों स्थितियोंमें सहिष्णु बने रहना ही तितिक्षाकी साधना है। यह सामर्थ्य तीव्र प्रयत्न, अभ्यास और भगवदाश्रयसे साध्य है।

यह निश्चित सिद्धान्त है कि सुखकी स्थितिमें जो जितनी मात्रामें हर्षित होगा, वह दुःख आनेपर दुःखकी विभीषिकासे उतना ही अधिक दुःखी होगा, उसका जीवन उतना ही दुःखमय होगा, यहाँतक कि वह वेदना उसके लिये महान् कष्टकारिणी हो जायगी। अतः प्रियको प्राप्तकर सुखसे फूले नहीं और दुःखके आनेपर शोकमें निमग्न न हो जाय। इन्हें आने-जानेवाली परिस्थितियाँ समझकर सहन कर ले, अविकारी बना रहे, द्रष्टामात्र बना रहे। यह समत्वकी स्थिति—सुख-दुःखादिसे परेकी स्थिति है, गुणातीत होनेका भाव है।

सामान्यतः जो पदार्थ मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरके अनुकूल होता है, उसे लोग प्रिय कहते हैं और उसकी प्राप्तिपर हर्षित होते हैं, किंतु वास्तविक दृष्टिसे जो अविवेकीजन हैं, उनकी ही ऐसे अनुकूल पदार्थोंमें आसक्ति रहती है, इसीलिये वे हर्षित होते हैं, किंतु जो धीर हैं, तत्त्वज्ञ हैं, बुद्धिमान् हैं, उनकी स्थिति समभावमें हो जानेके कारण किसी भी वस्तुमें लेशमात्र आसक्ति नहीं रहती, इसीलिये वे अनुकूल परिस्थितिमें सुख नहीं मानते। इसी प्रकार जो मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरके प्रतिकूल होता है, उसे लोग अप्रिय कहते हैं। अज्ञानी पुरुषोंको ऐसे पदार्थोंमें द्वेष होता है, इसलिये वे उसकी प्राप्तिमें घबड़ा उठते हैं, इसलिये उन्हें बड़े भारी दुःखका अनुभव होता है।

वास्तवमें जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले भोग हैं, यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भासते हैं, तो भी दुःखके ही हेतु हैं। अज्ञानी मनुष्य भोगोंको सुखका कारण समझकर तथा उनमें आसक्त होकर उन्हें भोगनेकी चेष्टा करता है और परिणाममें महान् दुःखोंको प्राप्त होता है। विषयोंको सुखका हेतु समझकर उन्हें भोगनेसे आसक्ति बढ़ती है, आसक्तिसे काम-क्रोधादि द्वन्द्व-विकारोंकी उत्पत्ति होती जाती है और फिर जीवन अशान्त तथा दुःखोंसे परिपूर्ण हो जाता है। हमारा जीवन अशान्त न हो, इसलिये हमें प्रारम्भसे ही तितिक्षाका अभ्यास करना पड़ेगा। सुख-दुःखमय परिस्थितियाँ प्रारब्धानुसार आयेंगी-जायेंगी, हमें उनसे प्रभावित नहीं होना है।

यह एक सामान्य बात है कि सभी सुख चाहते हैं दुःख कोई नहीं चाहता, सभी लाभ चाहते हैं हानि कोई नहीं चाहता, सभी विजय चाहते हैं पराजय कोई नहीं चाहता, सभी सफल होना चाहते हैं असफलता किसीको भी अच्छी नहीं लगती, सभी मान-बड़ाई चाहते हैं अपमानित होना कोई नहीं चाहता, सभी हर्षित होना चाहते हैं विषाद कोई नहीं चाहता। इस प्रकार हम द्वन्द्वोंके एक पक्षको चाहते हैं, दूसरे पक्षको नकारते हैं। ऐसा क्यों? इसीलिये कि हमने भोगोंमें ही आनन्द मान रखा है और भोगोंकी अप्राप्तिको दुःख मान रखा है। विचारणीय बात है कि हम जिसे सुख समझ रहे हैं, क्या वह वास्तविक सुख है अथवा जिसे दुःख समझ रहे हैं, क्या वह वास्तविक दुःख है? सुख-दुःखकी परिभाषाको हमें समझना होगा। हमें विषय-भोग मिल जायँ तो हम अपनेको सुखी मानते हैं। हमारे पास खूब धन हो जाय, लोगोंमें हमारी खूब प्रतिष्ठा हो, मान-बड़ाई हो, सब बातें हमारे मनके अनुकूल हो जायँ तो हम अपनेको सुखी मानते हैं और इसके विपरीत स्थिति हो तो हम दुःखी हो जाते हैं।

विषयोंकी प्राप्तिमें सुख मानना और विषयोंकी अप्राप्तिमें दुःख मानना—इस भ्रान्त धारणाको निर्मूल करना ही तितिक्षाकी साधना है। संसारमें, संसारके पदार्थोंमें आसक्ति (स्नेह-ममता) ही समस्त अनर्थों का मूल है। शरीर मिला है तो प्रारब्धके अनुसार विभिन्न सुख-दुःखात्मक, हानि-लाभात्मक, मानापमानात्मक द्वन्द्वात्मक परिस्थितियाँ सामने आयेंगी ही, तदनुसार कर्म भी सम्पन्न होंगे ही, किंतु आसक्तिके हट जानेसे सभी कर्म अनासक्त भावसे सम्पन्न होंगे और बन्धनके हेतु भी नहीं बनेंगे। हम आने-जानेवाली द्वन्द्वात्मक परिस्थितियोंको रोक नहीं सकते, उन्हें हटा नहीं सकते, किंतु उनकी अनुभूतियोंमें विकाररहित हो सकते हैं, उनके प्रति समान भाव रख सकते हैं, यह विकाररहित होना ही तितिक्षा है। विषयोंमें सुख-दुःखादिकी प्रतीति होना ही हमारा अज्ञान है, हमारी भ्रान्ति है। वास्तवमें इस भ्रान्तिसे उबरनेका उपाय है—आसक्तिसे रहित होना, अहंता-ममतासे रहित होना। ऐसा जब हो जायगा तो तितिक्षाकी साधना पूर्ण हो जायगी, हमारा जीवन निर्द्वन्द्व, नित्यसत्त्वस्थ, कृतार्थ, कृतकृत्य और पूर्ण हो जायगा, तब हमारी न कोई इच्छा रह जायगी, न कोई कामना रह जायगी और न कोई चाह ही रह जायगी, हम सभी सुख-दुःखोंसे परे होकर, समस्त द्वन्द्वोंको जीतकर अपने स्वरूपमें स्थित हो जायँगे—**'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।'** (पातञ्जलयोगसूत्र १।३)

मंजु मनोरथ

(स्वामी श्रीनर्मदानन्द सरस्वतीजी 'हरिदास')

प्रभु के चरण कमल कहँ पावें?
अरुण अरुण अति मृदुल मनोहर, रसिकन चित्त लुभावें॥
जिनके दर्शन हेतु महामुनि, अविचल ध्यान लगावें।
राज पाट सम्राट् त्याग सब, तप हित बनहिं सिधावें॥
पाप ताप जय दूर होयँ सब, परमानन्द समावें।
कब पद कमल रेणु-गंगा में, जी भर खूब नहावें॥
नारद, शारद, शुक, सनकादिक, शिव जिनके गुण गावें।
'हरीदास' कब लोट उन्हीं में, फिर न लौट कर आवें॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षिप्त वेद-परिचय

संस्कृत-साहित्यकी शब्द-रचनाकी दृष्टिसे वेदका अर्थ 'ज्ञान' होता है। परंतु इसका प्रयोग साधारणतया इस अर्थमें नहीं किया जाता। हमारे महर्षियोंने अपनी तपस्याके द्वारा जिस 'अभय ज्योति' का परम्परागत शब्दरूप साक्षात्कार किया, वही शब्दराशि 'वेद' है। वे वेद अनादि हैं और साक्षात् परमात्माके—**'वेदो नारायणः साक्षात्'** (श्रीमद्भा० ६।१।४०), **'वेदस्य चेश्वरात्मत्वात्'** (श्रीमद्भा० ११।३।४३) स्वरूप हैं। महर्षियोंके द्वारा साक्षात् प्रत्यक्ष-गोचर होनेके कारण इनमें कहीं भी असत्य या अविश्वासके लिये स्थान नहीं है। ये नित्य हैं और अभय ज्योतिके रूपमें अभिव्यक्त होनेके कारण अपौरुषेय कहे जाते हैं।

'वेद अनादि, अपौरुषेय और नित्य हैं तथा उनकी प्रामाणिकता स्वतःसिद्ध है'—इस प्रकारका मत आस्तिक सिद्धान्तवाले सभी पौराणिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्तके दार्शनिकोंका है। न्याय और वैशेषिकके दार्शनिकोंने वेदको अपौरुषेय नहीं माना है, पर वे इन्हें परमेश्वर (पुरुषोत्तम)-द्वारा निर्मित मानते हैं। इन दोनों शाखाओंके दार्शनिकोंने भी वेदको प्रमाण माना है और उसकी आनुपूर्वी (शब्दोच्चारणक्रम)-को सृष्टिके आरम्भसे लेकर अबतक अविच्छिन्न रूपसे प्रवृत्त माना है।

जो वेदको प्रमाण नहीं मानते, वे आस्तिक नहीं कहे जाते।[1] अतः सभी आस्तिक मतवाले वेदको प्रमाण माननेमें एकमत हैं, केवल अपौरुषेय माननेकी न्याय और वैशेषिक दार्शनिकोंकी भिन्न शैली है। नास्तिक दर्शनवालोंने वेदोंको भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके द्वारा रचा हुआ ग्रन्थ माना है। चार्वाक मतवालोंने तो वेदको निष्क्रिय लोगोंकी जीविकाका साधनतक कह डाला है। अतः नास्तिकमतवादी वेदको न तो अनादि मानते हैं, न अपौरुषेय और न नित्य ही और न इनकी प्रामाणिकतामें ही विश्वास करते हैं।

वेद चार हैं

वर्तमान कालमें वेद चार माने जाते हैं। उनके नाम हैं—१-ऋग्वेद, २-यजुर्वेद, ३-सामवेद और ४-अथर्ववेद।[2] द्वापरयुगकी समाप्तिके पूर्व वेदोंके उक्त चार विभाग नहीं माने जाते थे। उस समय तो 'ऋक्', 'यजुः', 'साम'—इन तीन शब्दशैलियोंकी संग्रहात्मक एक विशिष्ट अध्ययनीय शब्द-राशि ही वेद कहलाती थी। यहाँ यह कहना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि परमपिता परमेश्वरने प्रत्येक कल्पके आरम्भमें सर्वप्रथम ब्रह्माजी (परमेष्ठी प्रजापति)-के हृदयमें समस्त वेदोंका प्रादुर्भाव कराया था, जो उनके चारों मुखोंमें सर्वदा विद्यमान रहते हैं। ब्रह्माजीकी ऋषिसन्तानोंने आगे चलकर तपस्याके द्वारा इसी शब्द-राशिका साक्षात्कार किया और पठन-पाठनकी प्रणालीसे इनका संरक्षण किया।

विश्वमें शब्द-प्रयोगकी तीन ही शैलियाँ होती हैं, जिनकी (१) पद्य, (२) गद्य और (३) गानरूपसे जन-साधारणमें प्रसिद्धि है। पद्यमें अक्षर-संख्या, पाद एवं विरामका निश्चित नियम रहता है। अतः निश्चित अक्षर-संख्या, पाद एवं विरामवाले वेद-मन्त्रोंकी संज्ञा 'ऋक्' है। जिन मन्त्रोंमें छन्दके नियमानुसार अक्षर-संख्या, पाद एवं विराम नहीं हैं, वे गद्यात्मक मन्त्र 'यजुः' कहलाते हैं और जितने मन्त्र गानात्मक हैं—वे मन्त्र 'साम' कहलाते हैं। इन तीन प्रकारकी शैलियोंके आधारपर ही शास्त्र एवं लोकमें वेदके लिये 'त्रयी' शब्दका भी व्यवहार किया जाता है।

वेदका पठन-पाठन करनेका क्रम गुरुमुखसे सुनकर स्वयं अभ्यास करना अबतक चला आ रहा है। आज भी बिना गुरुमुखसे सुने केवल पुस्तकके आधारपर ही मन्त्राभ्यास करना निन्दनीय एवं निष्फल माना जाता है। इस प्रकार वेदके संरक्षण एवं सफलताकी दृष्टिसे गुरुमुखसे सुनने एवं उसे याद करनेका अत्यन्त महत्त्व है। इसी कारण वेदको 'श्रुति' तथा 'अनुश्रव' भी कहते हैं। तदतिरिक्त वेद परिश्रमपूर्वक अभ्यासद्वारा संरक्षणीय है। इस कारण इसका नाम 'आम्नाय' भी है। त्रयी, श्रुति और आम्नाय—ये तीनों शब्द आस्तिक ग्रन्थोंमें वेदके लिये व्यवहारमें लाये जाते हैं—

'श्रुतिः स्त्री वेद आम्नायः'

(अमरकोश ६।३)

---

१. नास्तिको वेदनिन्दकः। २. चरणव्यूह १।३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय द्वापरयुगकी समाप्तिके समय इस रूपमें एक वेदका पढ़ाना और अभ्यास कराना सरल कार्य नहीं था। कलियुगमें मनुष्योंकी शक्तिहीनता और कम आयु होनेकी बातको ध्यानमें रखकर भगवान्‌के अवतार

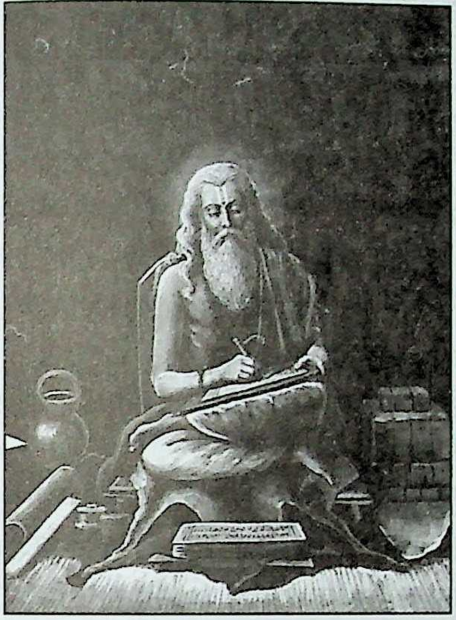

श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी महाराजने यज्ञानुष्ठानके उपयोगको दृष्टिमें रखकर उस एक वेदके चार विभाग कर दिये और इन चार विभागोंकी चार शिष्योंको शिक्षा दी। ये ही चार विभाग आजकल ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदके नामसे प्रसिद्ध हैं। पैल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु नामक चार शिष्योंने अपने अधीत वेदोंके संरक्षण एवं प्रसारके लिये अपने भिन्न-भिन्न शाकल आदि शिष्योंको पढ़ाया। उन्हीं शिष्योंके मनोयोग एवं प्रचारके कारण वे शाखाएँ उन्हींके नामसे आजतक प्रसिद्ध हो रही हैं।* यहाँ यह कहना अनुचित नहीं होगा कि शाखासम्बन्धित कोई भी मुनि मन्त्रद्रष्टा ऋषि नहीं है और न वह शाखा उनकी रचना है।

कर्मकाण्डमें भिन्न वर्गीकरण

वेदोंका प्रधान लक्ष्य आध्यात्मिक ज्ञान देना ही है, जिससे प्राणीमात्र इस असार संसारके बन्धनोंके कारणोंको समझकर इससे मुक्ति पा सके। अत: वेदमें कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड—इन दोनों विषयोंका सर्वांगीण निरूपण किया गया है। वेदोंका प्रारम्भिक भाग कर्मकाण्ड है और वह ज्ञानकाण्डवाले भागसे बहुत अधिक है। कर्मकाण्डमें यज्ञानुष्ठान-सम्बन्धी विधि-निषेध आदिका सर्वांगीण विवेचन है। इस भागका प्रधान उपयोग यज्ञानुष्ठानमें होता है। जिन वैदिक विद्वानोंको यज्ञ करानेका यजमानद्वारा अधिकार प्राप्त है, उनको 'ऋत्विक्' कहते हैं। इन ऋत्विकोंके चार भाग हैं—१-होतृगण, २-अध्वर्युगण, ३-उद्‌गातृगण और ४-ब्रह्मगण।

इन्हीं चारों गणों या वर्गोंके लिये उपयोगी मन्त्रोंके संग्रहके अनुसार वेद चार हुए हैं। उनका विभाजन निम्न प्रकारका किया गया है—

ऋग्वेद—इसमें होतृवर्गके लिये उपयोगी मन्त्रोंका संकलन है। इसका नाम ऋग्वेद इसीलिये पड़ा है कि इसमें 'ऋक्' संज्ञक (पद्यबद्ध) मन्त्रोंकी अधिकता है। इसमें होतृवर्गके उपयोगी गद्यात्मक (यजु:) स्वरूपके कुछ मन्त्र भी हैं।

'तेषां ऋग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था।'

(मीमांसादर्शन २।१।३५)

इसकी मन्त्रसंख्या अन्य वेदोंकी अपेक्षा अधिक है। इसके कई मन्त्र अन्य वेदोंमें भी मिलते हैं। सामवेदमें तो ऋग्वेदके मन्त्र ही अधिक हैं, स्वतन्त्र मन्त्र कम हैं।

यजुर्वेद—इसमें यज्ञानुष्ठानके—अध्वर्युवर्गके उपयोगी मन्त्रोंका संकलन है। इसका नाम यजुर्वेद इसीलिये पड़ा है कि इसमें 'गद्यात्मक' मन्त्रोंकी अधिकता है। इसमें कुछ पद्यबद्ध मन्त्र भी हैं, जो अध्वर्युवर्गके उपयोगी हैं—

'शेष यजु:शब्द:।' (मीमांसादर्शन २।१।३७)

इसके कुछ मन्त्र अथर्ववेदमें भी पाये जाते हैं। यजुर्वेदके दो विभाग हैं—१-शुक्ल यजुर्वेद, २-कृष्ण यजुर्वेद।

सामवेद—इसमें यज्ञानुष्ठानके—उद्‌गातृवर्गके उपयोगी मन्त्रोंका संकलन है। इनका नाम सामवेद इसलिये पड़ा कि इसमें गायन-पद्धतिके निश्चित मन्त्र ही हैं।

'गीतिषु सामाख्या' (मीमांसादर्शन २।१।३६)

इसके अधिकांश मन्त्र ऋग्वेदमें उपलब्ध होते हैं, कुछ मन्त्र स्वतन्त्र भी हैं।

अथर्ववेद—इसमें यज्ञानुष्ठानके—ब्रह्मवर्गके उपयोगी मन्त्रोंका संकलन है। इस ब्रह्मवर्गका कार्य है, यज्ञकी देख-रेख करना, समय-समयपर नियमानुसार निर्देश देना, यज्ञमें ऋत्विजों एवं यजमानके द्वारा कोई भूल हो जाय या कमी

* श्रीमद्भा० प्रथम स्कन्ध चतुर्थ अध्याय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रह जाय तो उसका सुधार या प्रायश्चित्त करना। अथर्वका अर्थ है, त्रुटियोंको हटाकर ठीक करना या त्रुटिरहित बनाना। अत: इसमें यज्ञसम्बन्धी एवं व्यक्ति-सम्बन्धी सुधार या कमी पूर्ति करनेवाले मन्त्र संकलित किये गये हैं। इसमें पद्यात्मक मन्त्रोंके साथ-साथ कुछ गद्यात्मक मन्त्र भी उपलब्ध हैं। इस वेदका नामकरण अन्य वेदोंकी भाँति शब्द-शैलीके आधारपर नहीं है, अपितु इसके प्रतिपाद्य विषयके अनुसार है। इस वैदिक शब्दराशिका प्रचार एवं प्रयोग मुख्यत: अथर्व नामके महर्षिद्वारा किया गया, इसलिये इसका नाम अथर्ववेद रखा गया—ऐसा भी उल्लेख मिलता है।

कुछ मन्त्र सभी वेदोंमें या एक-दो वेदोंमें समानरूपसे मिलते हैं, जिसका कारण यह है कि चारों वेदोंका विभाजन यज्ञानुष्ठानके—ऋत्विक्‌जनोंके उपयोगी होनेके आधारपर किया गया है। अत: विभिन्न यज्ञावसरोंपर विभिन्न वर्गोंके ऋत्विजोंके लिये उपयोगी मन्त्रोंका उस वेदमें आ जाना स्वाभाविक है, भले ही वह मन्त्र दूसरे ऋत्विक्‌के लिये भी अन्य अवसरपर उपयोगी होनेके कारण अन्यत्र भी मिलता हो।

वेदोंका विभाजन और शाखाविस्तार

आधुनिक विचारधाराके अनुसार चारों वेदोंकी शब्दराशिके वर्गीकरणमें तीन दृष्टियाँ पायी जाती हैं—१-याज्ञिक दृष्टि, २-प्रायोगिक दृष्टि और ३-साहित्यिक दृष्टि।

याज्ञिक दृष्टि—इसके अनुसार वेदोक्त यज्ञोंका अनुष्ठान ही वेदके शब्दोंका मुख्य उपयोग माना गया है। सृष्टिके आरम्भसे ही इसके करनेमें साधारणतया मन्त्रोच्चारणकी शैली, मन्त्राक्षर एवं कर्मविधिमें विविधता चली आयी है। इस विविधताके कारण ही वेदोंका शाखा-विस्तार हुआ है। प्रत्येक वेदकी अनेक शाखाएँ बतायी गयी हैं। यथा—ऋग्वेदकी २१ शाखाएँ, यजुर्वेदकी १०१ शाखाएँ, सामवेदकी १००० शाखाएँ और अथर्ववेदकी ९ शाखाएँ—इस प्रकार कुल ११३१ शाखाएँ हैं। इस संख्याका उल्लेख महर्षि पतंजलिने अपने महाभाष्यमें भी किया है। अन्य वेदोंकी अपेक्षा ऋग्वेदमें मन्त्र-संख्या अधिक है। फिर भी इसका शाखा-विस्तार यजुर्वेद और सामवेदकी अपेक्षा कम है। इसका कारण है कि ऋग्वेदमें देवताओंके मन्त्रोंका भण्डार है। स्तुति-वाक्योंकी अपेक्षा कर्मप्रयोगकी शैलीमें भिन्नता होनी स्वाभाविक है। अत: ऋग्वेदकी अपेक्षा यजुर्वेदकी शाखाएँ अधिक हैं। गायन-शैलीकी शाखाएँ सर्वाधिक होना आश्चर्यजनक नहीं है। अत: सामवेदकी १००० शाखाएँ बतायी गयी हैं। फलत: कोई भी वेद शाखा-विस्तारके कारण एक-दूसरेसे उपयोगिता, श्रद्धा एवं महत्त्वमें न्यूनाधिक नहीं है। चारोंका महत्त्व समान है।

उपर्युक्त ११३१ शाखाओंमेंसे वर्तमानमें केवल १२ शाखाएँ ही मूल ग्रन्थोंके रूपमें उपलब्ध हैं। वे ये हैं—

१-ऋग्वेदकी २१ शाखाओंमेंसे केवल २ शाखाओंके ही ग्रन्थ प्राप्त हैं—(क) शाकल शाखा, (ख) शांखायन शाखा।

२-यजुर्वेदमें कृष्ण यजुर्वेदकी ८६ शाखाओंमेंसे केवल ४ शाखाओंके ग्रन्थ ही प्राप्त हैं—(क) तैत्तिरीय शाखा, (ख) मैत्रायणीय शाखा, (ग) कठ शाखा और (४) कपिष्ठल शाखा।

शुक्ल यजुर्वेदकी १५ शाखाओंमेंसे केवल २ शाखाओंके ही ग्रन्थ प्राप्त हैं—

(क) माध्यन्दिनीय शाखा, (ख) काण्व शाखा।

३. सामवेदकी १००० शाखाओंमेंसे केवल २ शाखाओंके ही ग्रन्थ प्राप्त हैं—(क) कौथुम शाखा, (२) जैमिनीय शाखा।

४. अथर्ववेदकी ९ शाखाओंमेंसे केवल २ शाखाओंके ही ग्रन्थ प्राप्त हैं—(क) शौनक शाखा, (ख) पैप्पलाद शाखा।

उपर्युक्त १२ शाखाओंमेंसे केवल ६ शाखाओंकी अध्ययन-शैली प्राप्त है, जो नीचे दी जाती है—

ऋग्वेदमें केवल शाकल शाखा, यजुर्वेद (कृष्ण)-में केवल तैत्तिरीय शाखा और यजुर्वेद (शुक्ल)-में केवल माध्यन्दिनीय शाखा और काण्व शाखा, सामवेदमें केवल कौथुम शाखा, अथर्ववेदमें केवल शौनक शाखा। यह कहना भी अनुपयुक्त नहीं होगा कि अन्य शाखाओंके कुछ और भी ग्रन्थ उपलब्ध हैं। किंतु उनसे उस शाखाका पूरा परिचय नहीं मिल सकता एवं बहुत-सी शाखाओंके तो नाम भी उपलब्ध नहीं हैं।

प्रायोगिक दृष्टि—इसके अनुसार प्रत्येक शाखाके दो भाग बताये गये हैं—एक मन्त्रभाग और दूसरा ब्राह्मणभाग।

मन्त्र—मन्त्रभाग उस शब्दराशिको कहते हैं, जो यज्ञमें साक्षात्‌रूपसे प्रयोगमें आती है।

ब्राह्मण—ब्राह्मण शब्दसे उस शब्दराशिका संकेत है, जिसमें विधि (आज्ञाबोधक शब्द)—कथा, आख्यायिका एवं स्तुतिद्वारा यज्ञ करानेकी प्रवृत्ति उत्पन्न कराना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञानुष्ठान करनेकी पद्धति बताना, उसकी उपपत्ति और विवेचनके साथ उसके रहस्यका निरूपण करना है। इस प्रायोगिक दृष्टिके दो विभाजनोंमें साहित्यिक दृष्टिके चार विभाजनोंका समावेश हो जाता है।

साहित्यिक दृष्टि—इसके अनुसार प्रत्येक शाखाकी वैदिक शब्द-राशिका वर्गीकरण—१-संहिता, २-ब्राह्मण, ३-आरण्यक, ४-उपनिषद्—इन चारों भागोंमें है।

संहिता—वेदका जो भाग प्रतिदिन विशेषतः अध्ययनीय है, उसे संहिता कहते हैं। इस शब्दराशिका उपयोग श्रौत एवं स्मार्त दोनों प्रकारके यज्ञानुष्ठानोंमें होता है। प्रत्येक वेदकी अलग-अलग शाखाकी एक-एक संहिता है। वेदोंके अनुसार उनको—

१-ऋग्वेदसंहिता, २-यजुर्वेदसंहिता, ३-सामवेदसंहिता और ४-अथर्ववेदसंहिता कहा जाता है। इन संहिताओंके पाठमें उनके अक्षर, वर्ण, स्वर आदिका किंचिन्मात्र भी उलट-पुलट न होने पाये—इसलिये प्राचीन अध्ययन-अध्यापनके सम्प्रदायमें—

१-क्रम, २-पद, ३-जटा, ४-माला, ५-शिखा, ६-रेखा, ७-ध्वज, ८-दण्ड, ९-रथ और १०-घन—ये पाठ प्रचलित हैं।*

ब्राह्मण—वह वेद-भाग, जिसमें विशेषतया यज्ञानुष्ठानकी पद्धतिके साथ-ही-साथ तदुपयोगी प्रवृत्तिका उद्बोधन कराना, उसको दृढ़ करना तथा उसके द्वारा फलप्राप्ति आदिका निरूपण, विधि तथा अर्थवाद है, ब्राह्मण कहा जाता है।

आरण्यक—वह वेदभाग, जिसमें यज्ञानुष्ठान-पद्धति, याज्ञिक मन्त्र, पदार्थ एवं फल आदिमें आध्यात्मिकताका संकेत दिया गया है, आरण्यक कहलाता है। यह भाग मनुष्यको आध्यात्मिकताकी ओर झुकाकर सांसारिक बन्धनोंसे ऊपर उठाता है। अतः इसका अध्ययन भी संसार-त्यागकी भावनाके कारण अरण्य (जंगल)-में किया जाता है। इसीलिये इसका नाम आरण्यक प्रसिद्ध हुआ है।

उपनिषद्—यह वेदभाग, जिसमें विशुद्ध रीतिसे आध्यात्मिक चिन्तनको ही प्रधानता दी गयी है और फलसम्बन्धी दृढ़ानुरागको शिथिल करना सुझाया गया है, उपनिषद् कहलाता है। वेदका यह भाग उसकी सभी शाखाओंमें है। परंतु यह बात स्पष्टरूपसे समझ लेनी चाहिये कि वर्तमानमें उपनिषद्के नामसे जितने ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनमेंसे कुछ उपनिषदों (ईशावास्य, बृहदारण्यक, तैत्तिरीय, छान्दोग्य आदि)-को छोड़कर शेष उपनिषद् उसी रूपमें किसी-न-किसी शाखाके उपनिषद् भागमें उपलब्ध हों—ऐसी बात नहीं है। शाखागत उपनिषदोंमेंसे कुछ अंशको सामयिक, सामाजिक या वैयक्तिक आवश्यकताके आधारपर उपनिषद् संज्ञा दे दी गयी है। इसीलिये इनकी संख्या एवं उपलब्धियोंमें विविधता मिलती है। वेदोंमें जो उपनिषद् भाग हैं, वे अपनी शाखाओंमें सर्वथा अक्षुण्ण हैं। उनको तथा उन्हीं शाखाओंके नामसे उपनिषद् संज्ञाके ग्रन्थ उपलब्ध हैं, दोनोंको एक नहीं समझना चाहिये। उपलब्ध उपनिषद्-ग्रन्थोंकी संख्यामेंसे ईशादि १० उपनिषद् तो सर्वमान्य हैं। इनके अतिरिक्त ५ और उपनिषद् (श्वेताश्वतरादि) जिनपर आचार्योंकी टीका तथा प्रमाण आदि मिलते हैं, सर्वसम्मत कहे जाते हैं। इन १५ के अतिरिक्त जो उपनिषद् उपलब्ध हैं, उनकी शब्दगत ओजस्विता, प्रतिपादनशैली आदिकी विभिन्नता होनेपर भी यह अवश्य कहा जा सकता है कि इनका प्रतिपादन ब्रह्म या आत्मतत्त्वनिश्चयपूर्वक अपौरुषेय, नित्य, स्वतःप्रमाण वेद नामक शब्दराशिसे सम्बद्ध है।

ऋषि, छन्द और देवता

वेदके प्रत्येक मन्त्रमें किसी-न-किसी ऋषि, छन्द एवं देवताका उल्लेख होना आवश्यक है। कहीं-कहीं एक ही मन्त्रमें एक-से अधिक ऋषि, छन्द और देवताके नाम मिलते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि एक ही मन्त्रमें एक-से अधिक ऋषि, छन्द और देवता क्यों हैं, यह स्पष्ट कर दिया जाय। इसका विवेचन निम्न पंक्तियोंमें किया जाता है—

ऋषि—यह व्यक्ति है, जिसने मन्त्रके स्वरूपको यथार्थरूपमें समझा है। यथार्थ ज्ञान—

१-परम्पराके मूल पुरुष होनेसे, २-उस तत्त्वके

* जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः। अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः॥ (चरणव्यूह सू० ६ तथा उसका भाष्य)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षात् दर्शनसे, ३-श्रद्धापूर्वक प्रयोगसे और ४-इच्छित (अभिलषित) पूर्ण सफलतासे होता है, अतएव इन्हीं चार कारणोंसे मन्त्रसम्बन्धित ऋषियोंका निर्देश ग्रन्थोंमें मिलता है। जैसे—

१-कल्पके आदिमें सर्वप्रथम इस अनादि वैदिक शब्द-राशिका प्रथम उपदेश ब्रह्माजीके हृदयमें हुआ और ब्रह्माजीसे परम्परागत अध्ययन-अध्यापन होता रहा, जिसका निर्देश 'वंश-ब्राह्मण आदि' में उपलब्ध होता है। अतः समस्त वेदकी परम्पराके मूल पुरुष ब्रह्मा (ऋषि) हैं। इनका स्मरण परमेष्ठी प्रजापति ऋषिके रूपमें किया जाता है।

२-इन्हीं परमेष्ठी प्रजापतिकी परम्पराकी वैदिक शब्दराशिके किसी अंशके शब्द-तत्त्वका जिस ऋषिने अपनी तपश्चर्याके द्वारा किसी विशेष अवसरपर प्रत्यक्ष दर्शन किया, वह भी उस मन्त्रका ऋषि कहलाया। उस ऋषिका यह ऋषित्व शब्द-तत्त्व-साक्षात्कारके होनेके कारण माना गया है। इस प्रकार एक ही मन्त्रका शब्द-तत्त्व-साक्षात्कार अनेक ऋषियोंको भिन्न-भिन्न रूपसे या सामूहिक रूपसे हुआ था। अतः वे सभी उस मन्त्रके ऋषि माने गये हैं।

३-कल्प-ग्रन्थोंके निर्देशोंमें ऐसे व्यक्तियोंको भी ऋषि कहा गया है, जिन्होंने उस मन्त्र या कर्मका प्रयोग अति श्रद्धापूर्वक किया है।

४-वैदिक ग्रन्थों—विशेषतया पुराण-ग्रन्थोंके मननसे यह भी पता लगता है कि जिन व्यक्तियोंने किसी मन्त्रका एक विशेष प्रकारका प्रयोग करके सफलता प्राप्त की है, वे भी उस मन्त्रके ऋषि माने गये हैं।

उन निर्देशोंको ध्यानमें रखनेके साथ यह भी समझ लेना चाहिये कि एक ही मन्त्रके उक्त चारों प्रकारके या एक ही प्रकारके भिन्न-भिन्न व्यक्ति ऋषि हुए हैं। फलतः एक मन्त्रके अनेक ऋषि होनेमें परस्पर कोई विरोध नहीं है; क्योंकि मन्त्र ऋषियोंकी रचना या अनुभूतिसे सम्बन्ध नहीं रखता, अपितु ऋषि ही उस मन्त्रसे बहिरंग रूपसे सम्बद्ध व्यक्ति हैं।

छन्द—मन्त्रसे सम्बन्धित अक्षर, पाद, विरामकी विशेषताके आधारपर दी गयी जो संज्ञा है, वही छन्द है। एक ही पदार्थकी संज्ञा विभिन्न सिद्धान्त या व्यक्तिके विश्लेषणके भावसे नाना प्रकारकी हो सकती है। अतः एक ही मन्त्रके भिन्न नामके छन्द शास्त्रोंमें पाये जाते हैं। किसी भी संज्ञाका नियमन उसके तत्त्वज्ञ आप्त व्यक्तिके द्वारा ही होता है। अतः कात्यायन, शौनन्द, पिंगल आदि छन्दशास्त्रके आचार्योंकी एवं सर्वानुक्रमणीकारोंकी उक्तियाँ ही इस सम्बन्धमें मान्य होती हैं। इसलिये एक मन्त्रमें भिन्न नामोंके छन्दोंके मिलनेसे भ्रम नहीं होना चाहिये।

देवता—मन्त्रोंके अक्षर किसी पदार्थ या व्यक्तिके सम्बन्धमें कुछ कहते हैं। यह कथन जिस व्यक्ति या पदार्थके निमित्त होता है, वही उस मन्त्रका देवता होता है। परंतु यह स्मरण रखना चाहिये कि कौन मन्त्र किस व्यक्ति या पदार्थके लिये कब और कैसे प्रयोग किया जाय, इसका निर्णय वेदका ब्राह्मणभाग या तत्त्वज्ञ ऋषियोंके शास्त्रवचन ही करते हैं। एक ही मन्त्रका प्रयोग कई यज्ञीय अवसरों तथा कई कामनाओंके लिये मिलता है। ऐसी स्थितिमें उस एक ही मन्त्रके अनेक देवता बताये जाते हैं। अतः उन निर्देशोंके आधारपर ही कोई पदार्थ या व्यक्ति 'देवता' कहा जाता है। मन्त्रके द्वारा जो प्रार्थना की गयी है, उसकी पूर्ति करनेकी क्षमता उस देवतामें रहती है। लौकिक व्यक्ति या पदार्थ ही जहाँ देवता हैं, वहाँ वस्तुतः वह दृश्य जड़-पदार्थ या अक्षम व्यक्ति देवता नहीं है। अपितु उसमें अन्तर्हित एक प्रभु-शक्तिसम्पन्न देवता-तत्त्व है, जिससे हम प्रार्थना करते हैं। यही बात 'अभिमानिव्यपदेश' शब्दसे शास्त्रोंमें स्पष्ट की गयी है। लौकिक पदार्थ या व्यक्तिका अधिष्ठाता देवता-तत्त्व मन्त्रात्मक शब्द-तत्त्वसे अभिन्न है, यह मीमांसादर्शनका विचार है। वेदान्तशास्त्रमें मन्त्रद्वारा प्रतिपादित देवता-तत्त्वको शरीरधारी, चेतन और अतीन्द्रिय कहा गया है। पुराणोंमें कुछ देवताओंके स्थान, चरित्र, इतिहास आदिका वर्णन करके भारतीय संस्कृतिके इस देवता-तत्त्वके प्रभुत्वको हृदयंगम कराया गया है। निष्कर्ष यही है कि इच्छाकी पूर्ति कर सकनेवाले अतीन्द्रिय मन्त्रद्वारा प्रतिपादित तत्त्वको देवता कहते हैं और उस देवताका संकेत शास्त्र-वचनोंसे ही मिलता है, अतः वचनोंके अनुसार अवसर-भेदसे एक मन्त्रके विभिन्न देवता हो सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदोंकी जानकारीके लिये व्याकरण और कल्पसूत्र

वैदिक शब्दोंके अर्थ एवं उनके प्रयोगकी पूरी जानकारीके लिये वेदांग आदि शास्त्रोंकी व्यवस्था मानी गयी है। उनमें वैदिक स्वर और शब्दोंकी व्यवस्थाके लिये शिक्षा और व्याकरण दोनों अंगोंके वेदके उपयोगके लिये अलग-अलग 'प्रातिशाख्य' हैं, जिन्हें वैदिक व्याकरण भी कहते हैं। प्रयोग-पद्धतिकी सुव्यवस्थाके लिये कल्पशास्त्र माना जाता है। इसके तीन भेद हैं—१-श्रौतसूत्र, २-गृह्यसूत्र और ३-धर्मसूत्र।

इनका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

श्रौतसूत्र—इसमें श्रौत अग्नि (आहवनीय, गार्हपत्य एवं दक्षिणाग्नि)-में होनेवाले यज्ञसम्बन्धी विषयोंका स्पष्ट निरूपण किया गया है।

गृह्यसूत्र—इसमें गृह्य (औपासन) अग्निमें होनेवाले कर्मों एवं उपनयन, विवाह आदि संस्कारोंका निरूपण किया गया है।

धर्मसूत्र—इसमें वर्ण तथा आश्रमसम्बन्धी धर्म, आचार, व्यवहार आदिका निरूपण है। उपर्युक्त प्रकारसे प्रत्येक शाखाके लिये अलग-अलग व्याकरण और कल्पसूत्र हैं, जिससे उस शाखाका पूरा ज्ञान हो जाता है और कर्मानुष्ठानमें सुविधा होती है।

इस बातको भी ध्यानमें रखना चाहिये कि यथार्थमें ज्ञानस्वरूप होते हुए भी वेद कोई वेदान्त-सूत्रकी तरह केवल दार्शनिक ग्रन्थ नहीं है, जहाँ केवल आध्यात्मिक चिन्तनका ही समावेश हो। ज्ञान-भण्डारमें लौकिक और अलौकिक सभी विषयोंका समावेश रहता है और साक्षात् या परम्परासे ये सभी विषय परम तत्त्वकी प्राप्तिमें सहायक होते हैं। यद्यपि किसी दार्शनिक विषयका सांगोपांग विचार वेदमें किसी एक स्थानपर नहीं मिलता, फिर भी छोटे-से-छोटे तथा बड़े-से-बड़े तत्त्वोंके स्वरूपका साक्षात् दर्शन ऋषियोंको हुआ था और वे सब अनुभव वेदमें व्यक्त रूपसे किसी-न-किसी स्थानपर वर्णित हैं। उनमें लौकिक और अलौकिक सभी बातें हैं। स्थूलतम तथा सूक्ष्मतम रूपसे भिन्न-भिन्न तत्त्वोंका परिचय वेदके अध्ययनसे प्राप्त होता है। अतः वेदके सम्बन्धमें यह नहीं कहा जा सकता कि वेदका एक ही प्रतिपाद्य विषय है या एक ही दर्शन है या एक ही मन्तव्य है। यह तो साक्षात् प्राप्त ज्ञानके स्वरूपोंका शब्दभण्डार है। इसी शब्द-राशिके तत्त्वोंको निकालकर आचार्योंने अपनी-अपनी अनुभूति, दृष्टि एवं गुरु-परम्पराके आधारपर विभिन्न दर्शनों तथा दार्शनिक प्रस्थानों (मौलिक दृष्टिसे सुविचारित मतों)-का संचयन किया है।

वेदोंको समझनेके लिये आधुनिक अनुवाद उपयुक्त नहीं

वेदोंमें क्या है और उनके शब्दोंका क्या अर्थ है, यह जाननेकी उत्कण्ठा सर्वदासे चली आयी है। इसके समाधानके लिये कई भाष्य, व्याख्याएँ वेदोंकी बन चुकी हैं और बनती जा रही हैं। परंतु यहाँ यह स्पष्ट कह देना आवश्यक है कि वेदमन्त्र किसी एक ही अर्थमें सीमित नहीं हैं, प्रत्येक मन्त्रकी व्याख्या अनेक प्रकारसे अधियज्ञ, अधिदैव, अध्यात्म आदि भेदसे की जा सकती है और प्राचीन ग्रन्थोंमें भी इसका संकेत मिलता है। पर इस समय वैदिक साहित्यके समस्त ग्रन्थोंकी एकवाक्यता और मर्यादा रखते हुए किसी वेदका आदिसे अन्ततक भाष्य केवल याज्ञिकपद्धतिके ही 'भट्टभास्कर', 'वेंकटमाधव', 'सायण', 'महीधर' आदि आचार्योंके मिलते हैं। याज्ञिकपद्धतिको छोड़कर अन्य किसी भी दृष्टिकी पूरी व्याख्या जो समस्त वैदिक वाङ्मयकी उक्तियोंको सार्थक एवं सुव्यवस्थित कर सकती हो, उपलब्ध नहीं है। आजकल जो अँग्रेजी, हिन्दी आदि भाषाओंमें अनुवाद मिलते हैं, उनके आधारपर वेदका वास्तविक अर्थ या रहस्य समझना सम्भव नहीं है; क्योंकि वेदार्थ समझनेमें एक विशेष क्षमताकी आवश्यकता है। वह क्षमता संस्कृत भाषा, वेदांग और प्राचीन साम्प्रदायिक वैदिक ग्रन्थोंके अध्ययनसे ही प्राप्त हो सकती है। इसके बिना किया हुआ और समझा हुआ अर्थ वेदकी मर्यादापर आघात ही पहुँचाता है। अतः वेदका वास्तविक अर्थ जाननेके लिये वेदके पूरे भाग, वेदांग एवं प्राचीन सम्प्रदायके ग्रन्थोंको ही श्रम तथा परम श्रद्धासे पढ़ने-सुननेका प्रयत्न करना चाहिये। इसीके साथ-साथ वैदिक सदाचरण और तपकी भी आवश्यकता है। सदाचरण तथा तपके द्वारा विशुद्ध अन्तःकरणमें ही वेदार्थका प्रकाश सम्भव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी—

नवधा भक्ति

[१] श्रवण

(श्री 'चक्र')

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥

'तुम दोनों क्या कह रहे थे?'

'कुछ भी तो नहीं! यों ही हँसी कर रहे थे।'

'तुम छिपा रहे हो!'

'हाँ, छिपा ही रहे हैं! हम एक संतकी चर्चा कर रहे थे!' अन्तमें हम दोनों खूब जोरसे हँस पड़े, यह सफेद झूठ बोलकर।

'अच्छा, मत बताओ!' मुझे बड़ा खेद होता ये शब्द सुनकर। मुख फेर लेता। जानता था कि वे छोटे-छोटे नेत्र भर आये होंगे।

आरम्भमें जब मैं यहाँ रहने लगा था, ये शब्द मुझे बहुत चकित करते थे। बहुत दुःखी होता था इनसे। बहुत देरतक समझाता था उनको। धीरे-धीरे अभ्यस्त होता गया। फिर मैंने भी उपेक्षा प्रारम्भ की। दूसरा कोई उपाय था भी नहीं।

पता नहीं, क्यों यह बात उनकी समझमें ही नहीं आती कि हमारी चर्चा सदा सन्तों और भगवान्‌को लेकर ही नहीं होती। हम अभी ऐसे साधु नहीं। हँसी-मजाक, मित्रवर्ग, आसपास और काम-काजके बहुत-से दूसरे विषय भी हैं हमारी चर्चाके लिये। उनके घरमें या अन्यत्र कहीं भी दो क्षणके लिये जानेपर हमने कोई बात की और उन्होंने दूरसे हिलते होठ देखे, प्रश्न प्रारम्भ हो गये।

मेरा घर तो न होनेके बराबर है। लगभग तीन वर्षसे अपने इन्हीं मित्रके घर रहता हूँ। अब तो इसे ही मैंने घर समझ लिया है। वे मेरे सुहृद्‌की माता हैं—बस। उनकी हुलिया न दूँगा। मैं उन्हें माताजी कहता हूँ। उनका ध्यान मेरे ही मनमें रहने दीजिये। उससे आपका कुछ बनना-बिगड़ना है नहीं। हम दोनों मित्र प्रायः साथ ही रहते, खाते-पीते और कहीं बाहर जाना हुआ तो साथ ही जाते हैं।

माताजी नहीं चाहतीं कि हम घरसे कहीं दूर जायँ। हम जब स्नानादि करने लगते हैं, उसी समय झटपट वे भी स्नान कर लेती हैं। साथ ही भोजन कर लेती हैं। ऐसा न हो कि हम भगवच्चर्चा करने लगें और वे उपस्थित न हो सकें! इसका उन्हें बड़ा भय रहता है। दिनभर ही नहीं, रात्रिके दस-ग्यारह बजेतक बाहर दरवाजेपर ही बैठी रहती हैं। रात्रिमें जब हम नींद लेने लगते हैं, तब वे कहीं उठकर जाती हैं।

उन्हें कोई किसी कामसे घरमें बुलाये या उनसे कुछ पूछे, यह बहुत अखरता है। जहाँतक हो सकता है, टाल-मटोल कर जाती हैं। विवश होकर कभी उठना पड़ता है तो उस समय उनकी भाव-भंगी देखनेयोग्य होती है। मानो उनका प्रत्येक रोम कहता है—'कहाँकी विपत्ति आयी।'

मेरा एक खड़ाऊँ लेकर वे बैठ जाती हैं। यही उनका आसन है। निकट ही मिल जाता है। कोई बाहरका आदमी आता दिखायी पड़ा तो प्रश्न हो जाता है—'कौन आ रहा है?' अर्थात् 'मुझे बैठे रहना चाहिये, घर चले जाना चाहिये या दालानमें ही हो रहनेसे काम चल जायगा? मित्रोंमेंसे कोई हुआ तो वे प्रसन्न हो जायँगी; क्योंकि तब सत्संगकी आशा हो जाती है। कोई ऐसे भी हैं जो दुनियाभरकी बातें करेंगे और कुछ मध्यमें 'भजन कैसे हो?' भी पूछ लेंगे। माताजी ऐसोंको जानती हैं। दालानमेंसे वे सुनती रहेंगी कान लगाये। कुछ आते हैं इधर-उधरकी हाँकनेवाले। तब वे घर चली जायँगी। उनके कान या नेत्र सावधान रहेंगे। उनके जाते ही वे आ जायँगी। 'कहाँका घनचक्कर आ गया था!' कहना नहीं होगा कि ऐसे लोगोंका आना उन्हें तनिक भी पसन्द नहीं।

चुपचाप बैठी रहती हैं। उन्हें न कुछ पूछना रहता और न कहना। कुछ पूछना या कहना हो भी तो संकोचके कारण सप्ताह बीत जाते हैं उसे मनमें ही। हमलोग इधर-उधरकी बातें करते रहेंगे और वे सिर झुकाये बैठी रहेंगी। जैसे ही भगवच्चर्चा या किसी साधु-संतका नाम आया, बोलनेवालेके मुखपर उनके नेत्र जम जायँगे। मानो वे कह रही हों—'अब तुम ठीक कर रहे हो! व्यर्थकी बातोंमें न पड़कर प्रभुके गुणगानमें ही क्यों नहीं लगे रहते?'

गीता, भागवत—इतना तो नियमतः चलता है। कुछ और भी रहता ही है। माताजीको दिनभर यों ही नहीं बैठे रहना पड़ता। उनकी परितृप्ति कहाँ है? ऐसा नैष्ठिक श्रोता कोई मेरे देखनेमें नहीं आया। उन्हें कुछ-न-कुछ सुनते ही रहना चाहिये, चाहे वह दो सौ बार सुनी बात हो। उनके नेत्र और कान यही कहते मिलेंगे। 'कितनी सुन्दर कथा है!' उनमें वही प्यास, वही उत्सुकता मैंने सदा देखी है, जो किसी रामायणीसे एक गूढ़ चौपाईका अर्थ पूछनेके पश्चात् किसी ग्रामीणमें होती है। केवल वह भगवान् या उनके भक्तोंकी चर्चा भर होनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये। रामायणकी चौपाइयाँ वह किसीके मुखसे उतनी ही सावधानीसे सुनती हैं, जितनी सावधानीसे अपने पुत्रके मुखसे भागवतके श्लोकार्थ।

× × ×

(२)

'माताजी कहाँ हैं?'

'वृन्दावन गयी हैं! उन्हें गये तो आज एक महीना हो गया।'

मैं चौंका नहीं। जानता हूँ कि अब घरपर उनका मन लगता नहीं। उन्हें कुछ सुननेको यहाँ नहीं मिलता। मैं आज पूरे एक वर्षपर घर आया हूँ और मेरे मित्र बीचमें चार दिनके लिये आ चुके हैं। हम दोनोंने एक वर्ष पूर्व साथ ही प्रस्थान किया था। भाग्यने पृथक् कर दिया, पर घर कोई लौटा नहीं। अब वहाँ स्थिर रहनेकी कोई सम्भावना नहीं।

माताजी क्या करें? इस नन्हेसे गाँवमें सब अपने-अपने धन्धेमें लगे रहते हैं। उन्हें कौन रामायण सुनायेगा? वे कुछ पढ़ तो लेती हैं; अब दिनभर रामायण, भक्तमाल और ऐसी ही दूसरी पुस्तकोंके पीछे पड़ी रहती हैं। पर दृष्टि दुर्बल हो गयी है। थकावट आ जाती है नेत्रोंमें। पढ़नेमें उतना आनन्द भी तो नहीं आता, जितना सुननेमें आता है।

गंगाकिनारे दो मीलपर एक साधु रहते हैं। उन्हें घरसे आटा-दाल प्रायः भेज दिया जाता है। इस वृद्धावस्थामें भी माताजी प्रातः उतनी दूर स्नान करने जाती हैं। उन्होंने अपना साथ बना लिया है। कुछ और भी स्त्रियाँ स्नान करने जाती हैं। वहाँ साधु रामायण सुनाते हैं। वृद्ध हैं, पढ़े-लिखे नहीं; फिर भी किसी प्रकार रामायण पढ़ लेते हैं। अयोध्या, मिथिला, चित्रकूटकी कथाएँ या साधुओंके चमत्कार खूब सुनाते हैं। वहाँ बैठनेको बहुत थोड़ा समय है। साथकी स्त्रियाँ रुक नहीं सकतीं और अकेले आना इधर लोकाचारके विरुद्ध है। क्या हानि? थोड़ा समय तो मिलता है।

किसी-न-किसी वृद्धाको माताजी प्रस्तुत कर लेती हैं साथके लिये। काशी, प्रयाग, वृन्दावनमें अब उनके महीनेभरसे अधिक रहनेमें भी असुविधा नहीं। कहीं कोई सम्बन्धी हैं, कहीं मैं और कहीं मेरे मित्र (उनके पुत्र)। वे अब घर रहना ही नहीं चाहतीं। घरपर न रहनेसे कोई हानि होती है, यह उनके मनसे जाने कबकी निकल गयी है।

मैंने एक बार उन्हें वृन्दावनमें देखा। प्रातः पाँच बजे वे पहुँच जाती थीं कीर्तनमें। दिनमें कोई प्रोग्राम उनसे छूटता नहीं। कोई प्रोग्राम न चल रहा हो तो कहीं दो-चारकी टोली बैठी अवश्य कुछ चर्चा कर रही होगी। माताजी ऐसी ही किसी टोलीके पास पीछे एक ओर सिकुड़ी मिल जायँगी। उन्हें पता है कि किन-किन महात्माओंके पास सत्संग चलता रहता है.

उनको अपने कार्य तो कुछ रहते ही नहीं। कब स्नानादिसे वे छुट्टी पा लेती हैं, कुछ पता नहीं। सबसे कम समय लगता है उन्हें। सुनना जो रहता है। सुनना—बराबर सुनना।

× × × ×

'आज घरमें लड़ाई हो गयी दीखती है!' माताजी उदास थीं और मैं जानता हूँ कि भाभीसे उनकी पटती नहीं। आज अवश्य कुछ हो गया होगा।

'घरमें तो नहीं, मनमें लड़ाई हो गयी है!' मैं यह भी जानता हूँ कि माताजी अब बात-बातपर झुँझलातीं नहीं। वे अपनी ही समालोचना अधिक करने लगी हैं।

'भाभीने कुछ कहा क्या?' मेरा सन्तोष नहीं हुआ था।

उन्होंने कुछ नहीं कहा। यदि कह भी दें तो मुझे सुन लेना चाहिये! घरका सारा काम करती हैं, यदि झुँझला जायँ तो क्या मुझे नहीं चुप रहना चाहिये? मैंने देखा कि बात तो कुछ है।

'बात क्या हुई?'

'बात तो कुछ नहीं; पर मेरे सिर क्यों दुर्वासा सवार रहते हैं?' क्रोधका उन्होंने यह नाम रख लिया है।

धीरे-धीरे पता लगा कि वे रामायणमें ***'क्रोध पाप कर मूल'*** पढ़कर चौंकी हैं। इतना सुनना, इतना पढ़ना और उसपर भी मनन! मैं कम आश्चर्यमें नहीं था। वैसे माताजी पहले भी जब कभी कुछ बड़े संकोचसे पूछती थीं तो उनका प्रश्न इतना गम्भीर होता था कि कभी-कभी मैं कह पड़ता 'आप तो इन्हीं बातोंका स्वप्न भी देखती होंगी।'

उन्हें सुननेसे तृप्ति नहीं, सुनने या पढ़नेसे अवकाश नहीं; फिर भी उसे वे हृदयमें रखती जाती हैं! उसपर मनन भी कर लेती हैं। आश्चर्य करनेकी कोई बात है नहीं। ऐसा न होता तो उनका वह क्षण-क्षणपर रुष्ट होनेवाला स्वभाव इतना गम्भीर और शान्त न बन गया होता। वे इतनी उदार और अतिथि-सत्कारकी पक्षपातिनी न हो गयी होतीं।

'तूने क्या खाया है?' गाँवमें प्रायः गरीबोंके घर हैं। मजदूरोंके लड़कोंको दोनों समय भोजन कहाँ? माताजी पूछ लेती हैं प्रायः और उस लड़केको कुछ-न-कुछ मिल भी जाता है। यह क्या देहातमें उसके लिये, जिसने सदासे काम लेना ही सीखा हो, छोटा परिवर्तन है?

उनमें कितने परिवर्तन हो गये, सम्भवतः उन्हें स्वयं पता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। यह सब हो गया प्रयासके बिना ही, मैं ऐसा नहीं मानता। इतना सुनना और फिर उसे सोचना क्या छोटा प्रयास है?

× × × ×

(३)

'यह ढोल कहाँ बज रहा है?' मैं इस बार डेढ़ वर्षपर लौटा था।

'घरमें कीर्तन हो रहा है।' पता लग गया कि माताजीने लगभग छः महीनेसे यह कीर्तन प्रारम्भ कराया है। अपने-अपने घर सबको भोजनादि कराके स्त्रियाँ यहाँ एकत्र हो जाती हैं नौ-दस बजे और दो-तीन घण्टे रात्रिमें झाँझ-ढोल बजाकर वे कीर्तन करती हैं।

'कल तो अखण्ड कीर्तन है। प्रत्येक पूर्णिमाको अष्ट प्रहरका अखण्ड होता है!' मुझे आशा नहीं थी कि इस दस घरके ग्राममें केवल स्त्रियाँ अखण्ड कीर्तन भी चला सकती हैं। मजदूरोंकी स्त्रियोंको इतना अवकाश नहीं और ब्राह्मणोंके कुल चार-पाँच घर हैं। पता लगा कि यहाँ ड्यूटीका प्रश्न ही नहीं। सब बैठ जाती हैं और बारी-बारीसे अपने घरोंमें रोटी बनाकर घरके लोगोंको खिला भी आती हैं। जब प्रत्येक बीस घण्टे बैठे तो अखण्ड कीर्तनमें क्या बाधा?

'घरपर रहना तो पड़ता ही है। तुम दोनों तो पुरुष हो, पर झाड़कर छू हो गये!' माताजीने कुछ दुःखित होकर कहा। 'मुझे तो एकाध महीने ही कहीं रहनेको मिल पाता है। यहाँ भगवान्का नाम सुननेको मिल जाय, इसलिये यह किया है। थोड़ी देर रामायण भी होती है।'

मुझे किसी संतका एक दोहा स्मरण आ रहा था—

सुनिबेको फल गुनब है, गुनिबे को फल ग्यान।
ग्यान को फल हरिनाम है, कह स्रुति संत पुरान॥

ज्ञानकी बात तो मैं नहीं जानता; पर उस ज्ञानका फल यहाँ अवश्य मैं देख रहा हूँ। फलके पश्चात् पेड़ पानेकी आवश्यकता रह भी नहीं जाती।

'आपको कोई विचित्र अनुभव हुए हैं?' मैंने सहज ही पूछ लिया।

'मैं प्रायः स्वप्न देखती हूँ कि बहुत-से महात्मा जुटे हैं। कोई एक बड़े तेजस्वी महात्मा, सम्भवतः..... बीचकी चौकीपर बड़ी सुन्दर माला पहने बैठे हैं और कुछ उपदेश कर रहे हैं। भक्तोंकी भीड़ लगी है।' माताजीको बहुधा वे उपदेश भी स्मरण रहते थे।

'तो आप स्वप्नमें भी सत्संग ही करती हैं!' मैं हँस पड़ा। 'शायद मरनेके पश्चात् भी भगवान्को आपके लिये सत्संगकी व्यवस्था करनी पड़े!' मैंने व्यंग ही किया था।

'वे तुम दोनोंकी भाँति खिसक नहीं जायँगे!' माताजीके नेत्र भर गये।

'दिनभर आ उनके पास एक खड़ाऊँपर बैठी उनकी ओर ताकती रहेंगी कि वे कुछ सुनाते ही रहें तो वे भी ऊबकर खिसक जायँगे!' माताजीको मैं दुःखित नहीं करना चाहता था, पर बात बेढंगी निकल गयी। वे खड़ाऊँपरसे नीचे उतर गयीं और मेरी ओर भरे नेत्रोंसे देखने लगीं। खड़ाऊँ उन्होंने मेरे सामने नीचे रख दी खाटके।

'उनके पास बहुत-से महात्मा हैं। आपको कुछ सुनानेके लिये आपके अखण्ड कीर्तनकी भाँति वे उनकी ड्यूटी बाँध देंगे!' मेरे लिये वह दृष्टि असह्य हो रही थी। मैंने देखा कि मेरे चातुर्यका प्रभाव पड़ा नहीं।

'अच्छा, कभी आपने भगवान्को भी देखा है?' मैं किसी भी प्रकार उनका ध्यान दूसरी ओर करना चाहता था। यह युक्ति काम दे गयी।

'तुमसे क्या छिपाना है।' एक बार उन्होंने नेत्र झुकाये, दो क्षण गम्भीर रहीं। बड़ा संकोच लगता था जैसे उन्हें। अन्तमें अपने-आप ही उन्होंने कुछ निश्चय करके कहा—'उस दिन यहाँ सुमन्त्रका लौटना और महाराज दशरथका वैकुण्ठवास पढ़ा गया था। रोते-रोते ही सो गयी थी।' रोना तो उनके लिये साधारण बात है। नेत्र तो भरे ही रहते हैं।

'पता नहीं कब नींद खुल गयी। नेत्र खोले नहीं, पर अच्छी प्रकार जग गयी थी, यह स्मरण है।' माताजी एक ही नींदमें बारहसे पाँच बजा देती हैं। बारहसे पहले सोतीं नहीं। कीर्तन जो होता रहता है। पाँच बजे उठ बैठती हैं। हो सकता है, उस दिन जल्दी सो गयी हों।

'ऐसा लगा कि कोई गोदमें सो रहा है। हाथोंसे टटोला। चिकना, सुकुमार—कोई डेढ़-दो वर्षका बालक-जैसा। नेत्र खोलनेकी याद नहीं रही। खूब टटोलकर देखा। कैसा स्पर्श था? क्या कहूँ! हृदयसे लगा लिया और फिर नींद आ गयी।' माताजीके नेत्रोंसे झड़ी लग गयी।

'अच्छा, आप सावधानीसे सोयें! वे माताकी गोद छोड़ और कहीं न सोते होंगे!' मेरे नेत्र सूखे नहीं थे।

'आप मानें या न मानें; पर इस गोदको छोड़कर उन्हें कहीं भी अच्छी नींद आती न होगी।' माताजी तो यह माननेको तैयार नहीं थीं। आपकी क्या सम्मति है? क्या मैंने झूठ कहा था?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनकी मधुरताका नाशक—शंकालु स्वभाव

(श्रीहरिशंकर बी० जोशी)

शंकालु स्वभाव जीवनकी मधुरताका नाशक होता है, जो मानवको सदा निरर्थक चिन्ताओंमें घेरकर बेचैन बनाये रखता है। शंका कई प्रकारकी कल्पनाओंकी जननी है। शिक्षित, प्रतिष्ठित तथा साधक वर्ग भी इससे अछूते नहीं हैं। शंकालु मनुष्य अपने मनमें शंका पाले रहता है और दूसरोंके मनको भी शंकाओंसे भरता रहता है। शंका और श्रद्धा—दो विपरीत छोर हैं। जिस मनमें श्रद्धा होगी, वहाँ शंकाका विकास नहीं हो सकता। श्रद्धालुको भारतका हर स्थान तीर्थ दिखायी देता है, शंकालुकी शंका करनेकी भावना तीर्थको भी अतीर्थ बना देती है।

शंका मनुष्यकी निकृष्टतम भावना है, जो कभी-कभी हँसते-खेलते परिवारोंको आपसमें लड़वाकर नष्ट कर देती है। सुखी, खुशहाल तथा सुदृढ़ प्रतिष्ठानोंकी नींव हिला देती है। पिता, पुत्र, मित्र और अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंके सम्बन्धोंमें विष घोल देती है तथा निष्ठावान्, ईमानदार कार्यकर्ताका सारा प्रयत्न और हौसला विफल कर देती है।

इसी सन्दर्भकी एक घटना इस बातको दर्शाती है कि शंकालु व्यक्ति अपना कितना अनिष्ट कर बैठता है। घटना ऐसी है कि एक ग्रामीण गृहिणीने एक नेवला पाला, जो शनैः-शनैः उस महिलाके जीवनका एक अंग बन गया। नेवला भी अपनी मालकिनका एक वफादार प्राणी बनकर उसकी हर बात एवं सेवामें लगा रहता। महिला भी उसे पुत्रवत् स्नेह देती थी। एक दिन वह जब पानी भरनेके लिये बाहर कुएँपर जानेको निकली तो जाते-जाते नेवलेको यह हिदायत दे गयी कि मैं पानी भरने बाहर जा रही हूँ तथा तुम्हारा छोटा भाई सो रहा है, उसका ध्यान रखना—ऐसा कहकर वह पानी भरने चली गयी, इसी दौरान उस घरमें एक विषैला काला नाग कहींसे आकर उस सोये बच्चेके आस-पास घूमने लगा। लेकिन जैसे ही नेवलेने काले नागको देखा तो उसने झपटकर उस नागपर आक्रमण किया तथा इस लड़ाईमें नेवलेने उस विषैले नागको मारकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये तथा घरके दरवाजेपर आकर अपनी मालकिनकी प्रतीक्षा करने लगा। उसी समय वह गृहिणी पानीसे भरा घड़ा अपने सिरपर रख दरवाजेमें घुसने लगी तो क्या देखा कि नेवलेका मुँह खूनसे भरा है। इस भयानक दृश्यको देखते ही महिलाके मनमें शंका जाग्रत् हुई कि हो-न-हो इसने मेरे सोये बच्चेको काट खाया हो और इसी शंकामें उसने अपने सिरपर रखे पानीसे भरे घड़ेको उस नेवलेके ऊपर दे मारा, जिससे उसका प्राणान्त हो गया। लेकिन जैसे ही वह घरमें घुसी, यह देखकर आश्चर्यचकित हो गयी कि उसका नन्हा बालक वहाँ खेल रहा है तथा उसके पास टुकड़े-टुकड़े हुआ एक विषैला नाग मरा पड़ा है। महिलाको यह दृश्य देखते ही समझनेमें देर नहीं लगी कि नागके टुकड़े करके उसके पालतू नेवलेने ही उसके

बच्चेकी जान बचायी, वह जाकर नेवलेसे लिपट पड़ी, पर अब उसके रुदन एवं प्रायश्चित्तसे कुछ नहीं हो सकता था।

प्रायः मानवकी दुर्दशा उसके शंकालु स्वभावसे ही होती है, जिससे वह कई कल्पित शंकाओंको जन्म देकर अपने अन्दर भय एवं क्रोधको जगा देता है। जिसके फलस्वरूप वह जघन्य अपराध कर बैठता है और जीवनपर्यन्त बैचेनी तथा अशान्तिका शिकार बना रहता है।

इस रोगसे बचनेके लिये सिर्फ एक भावको जगाना रहता है कि जो कार्य मेरे द्वारा होने जा रहा है, वह उस सर्वशक्तिमान् पिताका है, मैं नियति बन उसे श्रेष्ठ प्रयत्नसे सम्पन्न करूँगा एवं उस पुरुषार्थकी लाभ-हानिकी जिम्मेदारी उस परमपिता परमेश्वर की होगी। यही भाव उस जीवात्माको सफलता तथा निश्चिन्तताकी शान्ति प्रदान करेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोवंशका विनाश—महान् अनर्थकारी

(श्रीसुभाषजी पटेल)

कृषिप्रधान अपने देश भारतवर्षमें गोपालनपर आधारित खेती एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था—परस्पर एक-दूसरेके पूरक रहते हुए कृषि-ऊर्जा-परिवहन और खाद्यान्नके क्षेत्रमें अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते आये हैं, किंतु विडम्बना है कि वर्तमानमें गोपालन छोड़कर समाजने जबसे बहुराष्ट्रीय कम्पनियोंके चक्करमें भोगवादी प्रवृत्तिके चलते मँहगी यान्त्रिकीय खेती और जहरीले कीटनाशकों एवं रासायनिक खादका प्रयोग शुरू किया है, तबसे क्षणिक लाभोपरान्त दीर्घकालीन हानियाँ उजागर हो रही हैं। मिट्टीमें रहनेवाले केंचुए-जैसे करोड़ों जीवाणु (जो मिट्टी खाकर खाद बनाकर फसलोंको पोषकतत्त्व देते थे)-के खत्म होनेसे जमीन बंजर हो रही है और खाद्यान्न विषैला होनेसे समस्त मानवजातिको नाना प्रकारके रोग हो रहे हैं। किसानोंकी दुर्दशा दिख रही है। इसके विपरीत गोपालनसे अमृततुल्य घी-दूधकी प्राप्ति होती थी, जिससे बढ़ती जनसंख्याको पौष्टिक आहार मिलता था एवं खेतोंकी जुताई तथा अनाजकी ढुलाईके साथ-साथ बहुमूल्य गोबर-गोमूत्र, जैविक खाद घर बैठे निःशुल्क प्राप्त हो जाते थे। कुछ वर्ष पूर्व इंस्टीट्यूट ऑफ इकोनामिक्स ग्रोथ, दिल्लीके एक सर्वेक्षणके अनुसार इस समय कृषिकार्यमें ८ करोड़ बैल प्रयुक्त हैं। यदि ये नहीं होंगे, जैसा कि गोवंशका विनाश जारी है तो इनके बदले २ करोड़ ट्रैक्टरोंकी आवश्यकता होगी, जिनकी लागत ४० खरब होगी और उन्हें चलानेके लिये ६४० अरब रुपयोंके विदेशी डीजलकी वार्षिक आवश्यकता होगी। जबकि लघु-सीमान्त कृषकों (जिनकी संख्या आधी है और १ एकड़से १० एकड़के अन्दर जमीन है)-को ट्रैक्टरकी जगह बैलकी आवश्यकता है। इससे कम लागतमें मुनाफेकी खेतीसे किसान खुशहाल एवं निरोग होंगे। ट्रैक्टरों-जैसी खेती-जुताई भैंस-पाड़ोंसे हो जाती है। उसी प्रकार गोवंश एवं अन्य पशुओंसे देशको ४० हजार मेगावाट ऊर्जा विभिन्न प्रकारसे प्राप्त होती है, जिसका वार्षिक मूल्य २७ हजार करोड़ रुपये है। इतने महान् उपयोगी गोवंशकी शासन-प्रशासन एवं समाजने घोर उपेक्षा की है, जिससे गोवंशका बड़ी तेजीसे विनाश हो रहा है और कसाई-तस्करोंकी पौ-बारह है। देशमें खुलेआम मांस, चमड़ा तथा हड्डीके लिये गोवंशका वध हो रहा है। वैध-अवैध हजारों कत्लखाने चल रहे हैं, लाखों गोवंश प्रतिमाह कसाईखाना जा रहा है। आँकड़े बताते हैं कि आजादीके वक्त देशमें ८३ करोड़ पशुधन था, जो आज घटकर १० करोड़ बचा है और यही हाल रहा तो २०२० ई० तक देश पशुविहीन हो जायगा।

गोपालन और जैविक खेती आजकी महती आवश्यकता—सदियोंसे गोपालन, गोरक्षा-संवर्धनकी धार्मिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, प्राकृतिक, नैतिक, लौकिक एवं पारलौकिक आवश्यकता रही है। महान् उपयोगिताके कारण गोवंश हमारी संस्कृति-सभ्यता, खुशहाली एवं समृद्धिका प्रतीक रहा है। वेदग्रन्थोंसे लेकर आचार्य ऋषि-मुनियोंके कथनोंमें गायकी महिमा-उपयोगिता उल्लिखित है, जो आज भी विज्ञानकी कसौटीपर खरी है। इसीसे देश अहिंसाका पुजारी, शान्तिका दूत, घी-दूधकी नदियोंवाला, सोनेकी चिड़िया आदि कहावतोंसे विश्वमें विख्यात था। भगवान् कृष्ण स्वयं सबसे बड़े गोपालक थे। किसान पशुपालक एवं गोरक्षक कहलाते थे, लेकिन आधुनिकता एवं विदेशी नकलके चलते गोपालन छोड़नेसे आज वे अनेक प्रकारकी बीमारियोंसे ग्रसित होनेके साथ-साथ खेतीसे भी विमुख हो रहे हैं। आज जरूरत है पुनः गोपालनपर आधारित खेतीकी, इससे जहाँ हजार गुना लाभकारी और दुग्ध-पदार्थोंसे पौष्टिक आहारकी पूर्ति होगी, वहीं बैलोंसे जुताई-ढुलाईद्वारा विदेशी डीजल और रासायनिक खादपरसे निर्भरता घटेगी, जंगलोंका विनाश रुकेगा। गोबर-गोमूत्रसे तैयार जैविक खादोंसे शुद्ध अनाज कम लागतमें प्राप्त किया जा सकता है। गोबर गैस-चूल्हेकी स्थापनासे भी ऊर्जा एवं खादका लाभ है, गोबर एवं गोमूत्रसे बननेवाली खादों एवं देशी कीटनाशकसे किसान विदेशी मँहगी रासायनिक खाद एवं जहरीले कीटनाशकोंसे मुक्ति पा सकता है और इसीसे किसान समृद्ध एवं खुशहाल होगा, किसानकी खुशहालीमें ही देशकी खुशहाली निहित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरगाथा—

वीर अभिमन्यु

(प्रो० श्रीकृष्णविहारीजी पाण्डेय)

महाभारतकी कथामें बालक अभिमन्युद्वारा चक्रव्यूह-भेदन एक अद्भुत घटना है। पितामहके शर-शय्यापर पड़ जानेके उपरान्त कौरव-दलके सेनापति गुरु द्रोणाचार्य बने। दुर्योधनद्वारा बार-बार उकसाये जानेपर एक दिन उन्होंने संकल्प लिया—'कलके युद्धमें एक पाण्डवका वध होगा।' इस हेतु उन्होंने अगले दिनके युद्धके लिये चक्रव्यूहकी रचना की। पाण्डव-दलमें चक्रव्यूह-भेदनकी कला अर्जुनको छोड़कर किसीको नहीं आती थी और अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णको साथ लेकर संसप्तकोंसे युद्ध करने बहुत दूर गये हुए थे।

युद्धमें चक्रव्यूहकी रचनाका समाचार पाकर सभी पाण्डव चिन्तित हो उठे और युधिष्ठिरके साथ बैठकर मन्त्रणा करने लगे, किंतु किसीको कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। यह समाचार जैसे ही अर्जुन-पुत्र अभिमन्युको

मिला, वह भागता हुआ युधिष्ठिरके पास आया और बोला—

कपट कीन्हा गुरु द्रोणाचार्य, तात बिनु किया जो व्यूह विचार,
सोच तजि दीजै धर्म-कुमार, आज रण देखा जायेगा।
खड्ग की जब चमकेगी धार, शत्रु-दल कर देगी संहार,
रहा जो कौरव दल ललकार, आज रण देखा जायेगा॥

उत्तेजित अभिमन्युको इस प्रकार ऊँचे बोल बोलते देख युधिष्ठिरको बहुत आश्चर्य हुआ। उसे अपने पास बुलाकर उसके सिरपर हाथ फेरते हुए युधिष्ठिर बोले—'बेटा, गुरु द्रोणने युद्धमें चक्रव्यूहकी रचना की है। जब हममेंसे कोई चक्रव्यूह-भेदनकी कला नहीं जानता तो भला तुम युद्धमें जाकर क्या करोगे?'

इसपर अभिमन्युने उत्तर दिया—'पिताजी, मुझे चक्रव्यूह-भेदनकी विद्या आती है।'

'पर तुमने यह विद्या सीखी कहाँ से?' युधिष्ठिरने पुनः प्रश्न किया।

युधिष्ठिरके इस प्रश्नका जो उत्तर अभिमन्युने दिया उसे सुनकर सब चकित रह गये। वह बोला—

गर्भ में था जब मेरा वास, पिता बैठे माता के पास,
व्यूह की रचना सहित हुलास, उसे समझाते जाते थे।
घड़ी पहली में पहला द्वार, दूसरी तिसरी का विस्तार,
थे उनमें जितने फाटक द्वार, सभी बतलाते जाते थे॥
चौथी घड़ी जिस समय आई, चौथे द्वार का भेद बताई,
सुना कर पाँचवें की लड़ाई, मन बहलाते जाते थे।
छठें फाटक तक का कुल हाल, कर लिया मैं मन-ही-मन ख्याल,
पिता को ज्ञात न था उस काल, कि हम अपनाते जाते थे॥
जान नहिं सके सातवाँ द्वार, मातु पै था निद्रा का भार,
उठे झट भीम दिये ललकार, आज रण देखा जायेगा।

अभिमन्युने जब छः फाटक तोड़नेतककी विद्या ज्ञात होनेकी बात बतायी तो भीमने उत्साहित होकर कहा—'बेटा, जब तुम छः फाटक तोड़ लोगे तो सातवाँ तो मैं अपनी गदासे मारकर चूर कर दूँगा।' इधर युधिष्ठिर अभिमन्युके उत्तरसे सन्तुष्ट तो हुए, किंतु अत्यन्त भारी मनसे उन्होंने अभिमन्युको युद्धमें जानेकी अनुमति दी।

सबेरा हुआ। रणभेरी बजी। दोनों ओरकी सेनाएँ युद्धक्षेत्रमें डट गयीं, किंतु पाण्डव-दलके सेनापतिके रूपमें बालक अभिमन्युको देखकर सभी हैरान रह गये। चमकते हुए सूर्यके समान आभावाला क्षत्रियकुमार धनुष-बाण सँभाले वीरासनमें अपने रथपर आरूढ़ है। उसका रथ तीव्र गतिसे चक्रव्यूहके प्रवेश-द्वारकी ओर बढ़ रहा है। पाण्डवोंकी शेष सेना उसके पीछे-पीछे चल रही है।

चक्रव्यूहके प्रवेश-द्वारपर गुरु द्रोणने योजनापूर्वक दुर्योधनके बहनोई जयद्रथको नियुक्त कर रखा है। जयद्रथको भगवान् शिवसे वरदान मिला था कि अर्जुनको छोड़कर अन्य कोई पाण्डव उसे परास्त नहीं कर सकता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परंतु अभिमन्यु तो अर्जुनका ही अंश था। सो, जयद्रथ उसे किसी भी प्रकारसे रोक न सका और अभिमन्यु का रथ धड़धड़ाता हुआ चक्रव्यूहके भीतर प्रवेश कर गया—

प्रवर्तमाने संग्रामे तस्मिन्नतिभयंकरे।
द्रोणस्य मिषतो व्यूहं भित्त्वा प्राविशदार्जुनिः॥

(महाभारत, द्रोणपर्व ३६।१५)

(वह अति भयंकर संग्राम चल ही रहा था कि द्रोणाचार्यके देखते-देखते अर्जुनकुमार अभिमन्यु व्यूह तोड़कर भीतर घुस गया।)

अन्य कोई पाण्डव जयद्रथके सामने युद्धमें नहीं टिक सका और चक्रव्यूहके अन्दर प्रवेश नहीं कर सका।

अन्दर जाकर व्यूहके एक-एक द्वारपर अभिमन्युका सामना कौरव-दलके एक-एक महारथीसे हुआ। उसने क्रमशः द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दु:शासन, शकुनी तथा दुर्योधन सभीको परास्त किया। जिधरसे भी उसका रथ गुजरता प्रलय मच जाता। पूरे कौरव-दलमें हाहाकार मच गया।

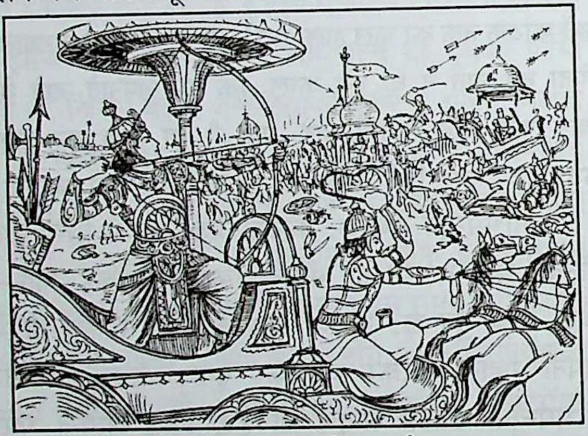

ततस्तेषां शरीरैश्च शरीरावयवैश्च सः।
संतस्तार क्षितिं क्षिप्रं कुशैर्वेदिमिवाध्वरे॥

(महाभारत, द्रोणपर्व ३६।२२)

(जैसे यज्ञमें वेदीके ऊपर कुश बिछाये जाते हैं, उसी प्रकार अभिमन्युने तुरंत ही शत्रुओंके शरीरों तथा विभिन्न अवयवोंके द्वारा सारी रणभूमिको पाट दिया।)

घबराकर दुर्योधनने कौरव-दलके छः महारथियोंको एक साथ मिलकर अभिमन्युपर प्रहार करनेका आदेश दिया। यह अधर्म युद्ध था; युद्ध-नीतिके सर्वथा विपरीत था। अन्ततः छः महारथियोंके साथ अकेले युद्ध करते-करते अभिमन्यु बुरी तरह घायल हो गया और पिता अर्जुन तथा मामा श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए वीरगतिको प्राप्त हुआ। उस समय अन्तरिक्षके प्राणियोंने कौरव-महारथियोंकी निन्दा करते हुए कहा—

द्रोणकर्णमुखैः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः।
एकोऽयं निहतः शेते नैष धर्मो मतो हि नः॥

(महाभारत, द्रोणपर्व ४९।२२)

(द्रोण और कर्ण आदि छः कौरव महारथियोंके द्वारा असहाय अवस्थामें मारा गया यह एक बालक यहाँ सो रहा है। हमारे मतमें यह धर्म नहीं है।)

कथा अद्भुत है! क्या कोई बालक चक्रव्यूह-भेदन-जैसी कठिन विद्या माँके गर्भमें ही सुनकर सीख सकता है? सभी जानते हैं कि माताएँ जब गर्भवती होती हैं तो प्राय: उनका मन उदास हो जाता है और चित्त अशान्त रहता है। ऐसेमें सब प्रकारसे उनको प्रसन्न रखनेकी चेष्टा की जाती है। ऐसे ही अभिमन्यु जब गर्भमें था, तब किसी दिन सुभद्रा उदास रही होगी और उसको प्रसन्न करनेके लिये, उसका मन बहलानेके लिये अर्जुनने चक्रव्यूह-भेदनकी विद्याका विस्तारसे वर्णन किया होगा। आखिर क्षत्रिय और क्षत्राणीमें और संवाद हो भी तो क्या हो? सुनते-सुनते सुभद्राका मन शान्त हुआ होगा, वह सो गयी होगी और गर्भस्थ शिशुने इस दुर्लभ विद्याको अक्षरशः ग्रहण कर लिया होगा। आजका विज्ञान इस स्तरतक नहीं पहुँच सका है कि मानव-जीवनके ऐसे रहस्योंको समझ सके और स्वीकार कर सके और फिर ऐसी दुरूह विद्याको कहने, सुनने और समझनेके लिये जैसा निर्मल मन चाहिये, वैसे निर्मल मन भी अब कहाँ हैं। यह भी हो सकता है कि नवजात अभिमन्युको माँ सुभद्राने चक्रव्यूह-भेदनकी विद्या लोरी गा-गाकर सुनायी हो। जो भी हो, अभिमन्यु-जैसा पराक्रमी पुत्र सुभद्रा-जैसी माँके गर्भसे ही जन्म लेता है। वैसे ही, जैसे माँ सीताके गर्भसे लव-कुश-जैसे वीर जनमे, जिन्होंने बारह वर्षकी आयुमें रामके अश्वमेध-यज्ञका घोड़ा बाँध लिया और अयोध्याकी पूरी सेनाको परास्त किया और वैसे ही, जैसे माँ जीजाबाईके गर्भसे वीर शिवाजी जनमे, जिन्होंने औरंगजेबकी सेनाके छक्के छुड़ाकर हिन्दू-साम्राज्यकी स्थापना की।

भयंकर आतंकवाद एवं भ्रष्टाचार की त्रासदीसे जूझ रहा अपना देश एक बार फिर सीता, सुभद्रा और जीजाबाई-जैसी माताओंकी कोखकी ओर आशाभरी नजरोंसे टकटकी लगाये निहार रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

गृहस्थीकी बेड़ी

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आपने लिखा—'जिसको बचपनसे ही संसारसे प्रीति नहीं, भगवच्चर्चामें मन लगता है, संसारसे बार-बार घृणा होती है और मन परमात्माकी ओर आकर्षित होता है, परंतु गृहस्थाश्रमकी बेड़ी पाँवमें पड़ी है, इसलिये वह क्या करे?' इसके उत्तरमें निवेदन है कि जब संसारमें प्रीति नहीं है और परमात्माकी ओर मन आकर्षित होता है, तब गृहस्थाश्रमकी बेड़ीके लिये चिन्ता क्यों करनी चाहिये। बेड़ी तो तभीतक है, जबतक मोह है। मनुष्य जब भगवान्‌का हो जाता है, तब दूसरे सारे बन्धन अपने-आप ही कट जाते हैं। श्रीब्रह्माजीने भगवान्‌से कहा है—

तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः॥

(श्रीमद्भा० १०। १४। ३६)

'श्रीकृष्ण! जबतक मनुष्य तुम्हारा नहीं हो जाता, तभीतक राग आदि चोर पीछे लगे रहते हैं, तभीतक घर कैदखानेकी तरह उसे बन्दी बनाये रखता है और तभीतक मोहकी बेड़ी पैरोंमें जकड़ी रहती है।'

भगवान्‌का हो जानेपर तो घर भी भगवान्‌का मन्दिर है, घरका काम भगवान्‌की सेवा है, घरके आदमी भगवान्‌के दिये हुए सेव्य स्वरूप हैं या उनके रूपमें भगवान् ही अभिव्यक्त हो रहे हैं और उनकी सेवा भगवान्‌की पूजा है। उनमें कहीं ममता, आसक्ति या मोह नहीं है। भगवान्‌के लिये ही उनकी सेवा करनी है। ऐसी गृहस्थीमें बन्धन कहाँ है? चिन्ता सारी भगवान् करेंगे, कब कैसे क्या होगा, उसका विधान भगवान् करेंगे। उसका काम तो भगवान्‌का चिन्तन करते हुए अपने योग्य कर्मोंके द्वारा भगवान्‌के आज्ञानुसार सेवा करनामात्र है। संसारमें घृणा होनी चाहिये उसके भोग्यरूपसे। पर जब वह भगवद्रूप हो जाय, तब तो पूजाका पात्र है। जिसकी भगवान्‌में प्रीति है, संसारमें प्रीति नहीं है, वह संसारमें नहीं बँधता। घर बन्धन नहीं है, बन्धन है घरमें मेरापन। जबतक यह मेरापन है, तबतक वह 'घर' का है—'भगवान्'का नहीं है। जहाँ भगवान्‌का हुआ, वहीं भगवान् उसके हुए। फिर घर 'उसका' नहीं रहता, न वह 'घरका' रहता है। घर भगवान्‌का है, वह भी भगवान्‌का है। फिर घरमें रहकर भी वह भगवान्‌के मन्दिरमें रहता है और अपने प्रत्येक कर्मसे भगवान्‌की सेवा करता है। इसके विपरीत घर-गृहस्थीको छोड़ भी दिया तो जंगलकी कुटियामें, पहननेकी कोपीनमें, उसका मेरापन हो जायगा। उन्हींमें मन फँस जायगा और बन्धन हो जायगा। अतएव उन सज्जनको घरसे घृणा न करके घरकी आसक्ति और ममतासे घृणा करनी चाहिये और उनका त्याग करके घरमें रहते हुए ही अपनेको भगवान्‌का बना देना चाहिये। सदा भगवान्‌का स्मरण करते हुए भगवान्‌की सेवाबुद्धिसे ही सारे कर्म यथायोग्य करने चाहिये, फिर समस्त भवबन्धन आप ही कट जायँगे।

(२) जिसे अपने अनुकूल बनाना हो, हमें पहले उसके अनुकूल बनना चाहिये। उसकी भर्त्सना, समालोचना न करके प्रेम करना चाहिये और उसकी अच्छी बातोंका हृदयसे तथा वाणीसे समर्थन करना चाहिये, उसकी सेवा तथा उसका हित करना चाहिये। जब उसके मनमें आपके प्रति आदर, प्रेम तथा सद्भाव उत्पन्न हो जाय, तब उपदेशके रूपमें नहीं, परामर्शके रूपमें उसे अच्छी-अच्छी बातें कहनी चाहिये। उपदेशसे काम वहाँ हुआ करता है, जहाँ श्रद्धा होती है। नहीं तो उपदेशसे काम नहीं हुआ करता। ऐसे स्थानमें उपर्युक्त रीतिसे बर्ताव करना चाहिये तथा उसे जो बात समझानी हो, वह भी किसी इतिहास-कथाके रूपमें दूसरेके द्वारा समझानी चाहिये। यदि हम दूसरेको अपने अनुकूल बनाना चाहते हैं तो अपने मनकी बात छोड़कर पहले उसके अनुकूल बन जाना चाहिये, फिर वह आप ही अनुकूल हो जायगा। यह उत्तम साधन है।

एक साधन यह है कि उसके दोष न देखकर गुणोंकी खोज करनी चाहिये और गुणोंकी मन-ही-मन प्रशंसा करते हुए उसके प्रति सदा सद्भावना करनी चाहिये। आपकी सद्भावनाका उसपर असर होगा और वह क्रमशः अनुकूल बनता चला जायगा। वशीकरणका मन्त्र प्रेम है, अधिकार तथा उपदेश आदि नहीं और जहाँ प्रेम है, वहीं सुख है। यह निश्चित सिद्धान्त है। शेष प्रभुकृपा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

पुत्रशोकसे तरनेका उपाय

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र प्राप्त हुआ था। आपके सुशील एवं आज्ञाकारी तरुण पुत्रकी मोटर-दुर्घटनासे मृत्यु हो गयी, यह समाचार वस्तुतः बड़ा ही दुःखद है। इस प्रकारके एकमात्र सुयोग्य पुत्रकी आकस्मिक मृत्युसे माता-पिताको मार्मिक पीड़ा होनी स्वाभाविक ही है। आपके कष्टका अनुभव दूसरा कोई नहीं कर सकता। भगवान् आप दोनोंको धैर्य, बोध तथा आपके स्वर्गीय पुत्रको शान्ति प्रदान करें।

संसार संयोग-वियोगशील है। जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि तथा भाँति-भाँतिके अभावोंका दुःख ही इस संसारका स्वरूप है। भगवान्ने गीतामें इसीलिये इसे 'दुःखालय' और 'अनित्य' कहा है। संसारके इस दुःखमय स्वरूपको अच्छी तरह समझ लेनेके बाद तो दुःख नहीं होता, क्योंकि वस्तुमात्र ही मृत्युको साथ लेकर उत्पन्न होती है। दूसरी दृष्टिसे संसारकी प्रत्येक वस्तु परमात्माकी धरोहर है। वे जब चाहें तब अपनी चीजको वापस ले सकते हैं। हमें दुःख इसीलिये होता है कि हम परमात्माकी उस वस्तुको अपनी मानकर उसमें ममता और आसक्ति कर बैठते हैं। जिस भगवान्ने आपको पुत्र दिया था, उसीने ले लिया। भगवान् जीवमात्रके परम सुहृद् और सच्चे सम्बन्धी हैं। आपके और हमारे सबके सच्चे मित्र और आत्मीय भी वही हैं। हमें संसारके पदार्थोंसे प्रीति और ममत्वको हटाकर अपने नित्य परमधनस्वरूप भगवान्में प्रीति और ममत्व करना चाहिये। भगवान् जबतक इस लोकमें रखें, प्रेमपूर्वक उनका भजन-चिन्तन करते हुए उनकी दी हुई प्रत्येक सेवाको निष्काम-भावसे करते रहना चाहिये और प्रतिक्षण उनके समीप जानेके लिये तथा उनकी आज्ञाका सहर्ष पालन करनेके लिये तैयार रहना चाहिये। भगवान् हमारे हैं और हम भगवान्के। वे अब भी हमसे अलग नहीं हैं, मरनेके बाद भी हमसे अलग नहीं होंगे और हम कभी उनके प्रेमसे वंचित नहीं होंगे। यह निश्चय रखना चाहिये।

शान्ति प्राप्त करनेका उपाय तो बस, इन भगवान्का स्मरण ही है। आपका सुपुत्र अपने सद्गुणोंके कारण सबका प्रिय था, इसलिये उसका अभाव सभीके लिये दुःखदायी है, परंतु सद्गुणोंसे प्रेम करनेवाले भगवान् आपके उस पुत्रपर, चाहे वह कहीं भी हो, स्नेह करते ही रहेंगे। आपको चाहिये कि उसकी सद्गतिके लिये भगवान्के नामका जप, गीताका पारायण, विधिवत् श्राद्धादि कर्म करायें। आपके अब एक लड़की है और वह भी कुछ वर्षोंके बाद ससुराल चली जायगी, सो ठीक ही है, पर आप यदि उस लड़कीको ही लड़का मान लें और उसीको अपने वंशकी चलानेवाली समझ लें तो आपके मनका समाधान हो सकता है। दूसरी बात यह है कि वंश चलनेकी इच्छा भी वास्तवमें मोहका ही परिणाम है। हम न मालूम पहले किस-किस जीवनमें कहाँ-कहाँ थे, वहाँ पता नहीं, हमारा वंश कितनी जगह चल रहा होगा, एक जन्ममें किसी जगह नहीं चला तो कोई खास हानिकी बात नहीं। मनुष्य-जीवनका असली उद्देश्य तो है भगवान्का भजन करके उन्हें प्राप्त कर लेना। आपको अब भगवान्में ही मन लगाना चाहिये। इस उम्रमें विवाह करनेकी तो बात भी सोचना सर्वथा अनुचित मालूम होती है। जीवनका कोई ठिकाना नहीं, कब इसका अन्त आ जाय, इसलिये मनुष्यका परम कर्तव्य जीवन रहते-रहते भगवान्को प्राप्त कर लेना ही है। शेष भगवत्कृपा।

(३)

भगवान्को पुकारें

सादर हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपकी स्थिति वास्तवमें बहुत ही विचारणीय है। सासका तथा पतिका आपके साथ जो बर्ताव है, वह असलमें बड़ा निन्दनीय है। जो सास अथवा पति अपनी बहू या पत्नीको इस प्रकारसे कष्ट देते हैं, वे बड़ा भीषण पाप करते हैं, परंतु इस समय उन्हें अपने पापका जरा भी ख्याल नहीं है। मनुष्य स्वार्थ या दम्भ-द्वेषवश जब बुराईपर उतर जाता है, तब वह मनुष्यसे असुर बन जाता है, उसके सुधारका उपाय है प्रभुसे प्रार्थना और सद्भावना। आप मन-ही-मन आर्तभावसे और करुण स्वरसे भगवान्से प्रार्थना कीजिये और उनसे कहिये कि वे आपके पतिको और सासको सद्बुद्धि दें। उनके चित्तमें जो बुराई आ बैठी है, उसे दूर करें।

आपको निरन्तर मानसिक पीड़ा रहती है, यह सत्य है। आप किस-किस प्रकारकी ऊँची अभिलाषाएँ लेकर पिताके घरसे ससुरालमें आयी थीं और अब उसके सर्वथा विपरीत पाकर आपका दुःखी होना स्वाभाविक है, परंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें धीरज छोड़ने या विषाद करनेसे कोई लाभ नहीं होगा। भगवान्‌को पुकारिये। सच्ची बात तो यह है कि संसारमें किसीका कोई नहीं है। सब अपना-अपना कर्मफल भोगने आये हैं। मनुष्यके अनमोल शरीरका सच्चा सदुपयोग तो भगवान्‌के भजनमें ही है। जीवनभर दुःखमें बीते, पर परिणाममें भगवान्‌की प्राप्ति हो जाय तो जीवनका वह दुःख भी महान् सुखका साधन है। इसलिये आपको तो मेरी यह सलाह है कि आप भगवान्‌की प्रार्थना कीजिये, भगवान्‌का भजन कीजिये। भगवान्‌ने चाहा तो यहाँ भी पति और सासका हृदय बदल जानेसे आप सुखी हो जायँगी और मानव-जीवनकी सफलता तो भजनसे निश्चित होती ही है। शेष भगवत्कृपा।

(४)

निज दोष देखनेवाले भाग्यवान् हैं

संसारमें ऐसा कौन है, जो सर्वथा निर्दोष हो। त्रिगुणमय संसारमें तम भी रहेगा ही। जिसको अपने दोष दीखते हैं, भयंकररूपमें दीखते हैं, जो दोषोंके कारण दुःखी रहता है, जिसके हृदयमें दोष चुभते हैं, चाहता है एक भी न रहे, प्रयत्न भी करता है, परंतु सर्वथा नाश नहीं कर सकता, वह तो बड़ा भाग्यवान् है। संसारमें ऐसे लोग भी हैं, जो अपने दोषोंको या तो देखते ही नहीं और देखते हैं तो 'गुण'-रूपमें तथा दूसरोंके दोष उनको राई-से भी पहाड़-जैसे लगते हैं।

'आप पापको नगर बसावत सहि न सकत पर खेरो।'

श्रीभगवान्‌का स्मरण आप करते ही हैं; उनका स्मरण ऐसी आग है जो सारे दोषोंको जला देती है और क्या उपाय है अपने पास। शेष प्रभुकृपा।

(५)

आप शरीर या देह नहीं हैं

प्रिय आत्मस्वरूप! क्या यह आप भलीभाँति अनुभव नहीं कर चुके हैं कि दुःख वास्तवमें देहको अपना स्वरूप समझनेपर ही उत्पन्न होता है। ऐसा कोई भी दुःख नहीं है कि जो शरीरको अपना न समझनेसे सदाके लिये न मिट जाय; क्योंकि सब प्रकारके दुःख शरीरको अपना समझनेपर ही होते हैं और इस भूलके निकल जानेपर सभी दुःखोंका अन्त अपने-आप हो जाता है। यह अखण्ड नियम है कि जबतक हम अपनेको शरीर समझते हैं, तभीतक दूसरेके शरीर तथा संसारके अनेक पदार्थोंमें आसक्त हो उनके गुलाम बन जाते हैं और यह विचार करनेपर स्वयं अनुभव होता है कि जब हम अपने-आपको किसी कालमें भी शरीर अनुभव नहीं करते, तब हमको किसी भी पदार्थकी इच्छा तथा किसी भी शरीरसे मिलने तथा दर्शन करनेकी अभिलाषा बाकी नहीं रहती और न कुछ करनेके लिये तथा जाननेके लिये शेष रहता है, प्रत्युत मानव आत्मभावको प्राप्त हो नित्य आनन्दका अनुभव करता है। वास्तवमें तो उस महापुरुषकी दृष्टिमें सृष्टिका लेशमात्र भी स्वरूप शेष नहीं रहता। आनन्द!

(६)

भगवान्‌की शरणमें ही जीवनकी सफलता

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। यह सत्य है—संसारमें किसी भी वस्तु, स्थिति या प्राणि-पदार्थमें शान्ति नहीं है। पर हम इन्हींसे शान्तिकी आशा रखते हैं, तब बताइये, शान्ति कैसे मिले। संसारके प्राणि-पदार्थोंकी ममता, उनकी कामना और उनकी आसक्ति तो निरन्तर काम-क्रोधादिका ही आश्रय दिलायेंगी, जो हमारे लिये दुःखोंकी परम्परा उत्पन्न कर देगा। इन काम-क्रोधादिके परायण होकर, इनके वशमें होकर, इनका आज्ञाकारी गुलाम बनकर मनुष्य क्या-क्या नहीं करता, पर ये कभी उसको सन्मार्गपर आने ही नहीं देते। एक साधकने इनसे घबराकर भगवान् श्रीकृष्णसे शरणकी प्रार्थना करते हुए कहा है—

कामादीनां कति न कतिधा पालिता दुर्निदेशा-
स्तेषां जाता मयि न करुणा न त्रपा नोपशान्तिः।
उत्सृज्यैतानथ यदुपते साम्प्रतं लब्धबुद्धि-
स्त्वामायातः शरणमभयं मां नियुङ्क्ष्वात्मदास्ये॥

'मैं कामादिके कितने बुरे-बुरे आदेश कितने प्रकारसे पालन करता रहा, पर मेरे प्रति न तो उन कामादिको दया आयी और न अपनेको दया करनेमें असमर्थ जानकर उन्हें लाज ही आयी, वे अपनी चालसे बाज आये ही नहीं। अब हे यदुनाथ! मुझमें बुद्धि आ गयी है और मैं उनको छोड़कर तुम्हारे अभय-चरणोंकी शरणमें आ गया हूँ। तुम मुझको अपने दासत्वमें नियुक्त कर लो।'

सभी आश्रयोंको छोड़कर एकमात्र भगवान्‌के चरणोंका आश्रय लेनेसे ही सुख-शान्ति मिलेगी और उसीसे जीवन सफल होगा। शेष भगवत्कृपा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७०, शक १९३५, सन् २०१३, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ७।३४ बजेतक द्वितीया रात्रिशेष ५।७ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा रात्रिमें ७।४१ बजेतक	२६ मई	**धनुराशि** रात्रिमें ७।४१ बजे।
तृतीया रात्रिमें २।३९ बजेतक	सोम	मूल सायं ६।०१ बजेतक	२७ "	**भद्रा** दिनमें ३।५३ बजेसे रात्रिमें २।३९ बजेतक **मूल समाप्त** सायं ६।१ बजे।
चतुर्थी ,, १२।१३ बजेतक	मंगल	पूर्वाषाढ़ दिनमें ४।२२ बजेतक	२८ "	**मकरराशि** रात्रिमें ९।५९ बजे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९।५५ बजे।
पंचमी " ९।५७ बजेतक	बुध	उत्तराषाढ़ " २।५१ बजेतक	२९ "	× × × × × × ×
षष्ठी " ७।५४ बजेतक	गुरु	श्रवण " १।३२ बजेतक	३० "	**भद्रा** रात्रिमें ७।५४ बजेसे, **कुम्भराशि** रात्रिमें १।१ बजे, **पंचक प्रारम्भ** रात्रिमें १।१ बजे।
सप्तमी सायं ६।८ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा " १२।२८ बजेतक	३१ "	**भद्रा** दिनमें ७।० बजेतक, **कालाष्टमी** (सायंकाल व्यापिनी)।
अष्टमी दिनमें ४।४४ बजेतक	शनि	शतभिषा " ११।४५ बजेतक	१ जून	**श्रीशीतलाष्टमीव्रत, त्रिलोचनाष्टमी** (बंगाल)।
नवमी ,, ३।४५ बजेतक	रवि	पूर्वाभाद्रपद " ११।२७ बजेतक	२ "	**मीनराशि** प्रातः ५।३२ बजे, **भद्रा** रात्रिमें ३।३० बजेसे।
दशमी ,, ३।१४ बजेतक	सोम	उत्तराभाद्रपद " ११।३५ बजेतक	३ "	**भद्रा** दिनमें ३।१४ बजेतक, **मूल** दिनमें ११।३५ बजेसे।
एकादशी ,, ३।१४ बजेतक	मंगल	रेवती " १२।१४ बजेतक	४ "	**मेषराशि** दिनमें १२।१४ बजे, **अचला एकादशीव्रत** (सबका), **पंचक समाप्त** दिनमें १२।१४ बजे।
द्वादशी ,, ३।४५ बजेतक	बुध	अश्विनी " १।२३ बजेतक	५ "	**प्रदोषव्रत, मूल समाप्त** दिनमें १।२३ बजे।
त्रयोदशी " ४।४५ बजेतक	गुरु	भरणी " ३।० बजेतक	६ "	**वृषराशि** रात्रिमें ९।३१ बजे, **भद्रा** दिनमें ४।४५ बजेसे, **मासशिवरात्रिव्रत।**
चतुर्दशी सायं ६।११ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका सायं ५।४ बजेतक	७ "	**भद्रा** प्रातः ५।२८ बजेतक।
अमावस्या रात्रिमें ७।५८ बजेतक	शनि	रोहिणी रात्रिमें ७।२६ बजेतक	८ "	**अमावस्या, वटसावित्रीव्रत, मृगशिराका सूर्य** दिनमें १०।५४ बजे।

सं० २०७०, शक १९३५, सन् २०१३, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ९।५७ बजेतक	रवि	मृगशिरा रात्रिमें १०।० बजेतक	९ जून	**मिथुनराशि** दिनमें ८।४३ बजे, **करवीरव्रत, द्विपुष्करयोग** रात्रिमें ९।५७ बजेसे रात्रि १०।० बजेतक।
द्वितीया " ११।५९ बजेतक	सोम	आर्द्रा ,, १२।३८ बजेतक	१० "	**चन्द्रदर्शन।**
तृतीया " १।५३ बजेतक	मंगल	पुनर्वसु ,, ३।७ बजेतक	११ "	**कर्कराशि** रात्रिमें ८।३० बजे, **हिजरी सन् १४३४, रम्भा तृतीयाव्रत।**
चतुर्थी " ३।२९ बजेतक	बुध	पुष्य (अहोरात्र)	१२ "	**भद्रा** दिनमें २।४० बजेसे रात्रिमें ३।२९ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, उमाचतुर्थी** (बंगाल)।
पंचमी रात्रिशेष ४।४१ बजेतक	गुरु	पुष्य प्रातः ५।१९ बजेतक	१३ "	**यायिजययोग** प्रातः ५।१९ बजेसे रात्रिशेष ४।४१ बजेतक, **मूल** प्रातः ५।१९ बजेसे।
षष्ठी (अहोरात्र)	शुक्र	आश्लेषा दिनमें ७।९ बजेतक	१४ "	**सिंहराशि** दिनमें ७।९ बजे, **श्रीस्कन्दषष्ठीव्रत।**
षष्ठी प्रातः ५।२९ बजेतक	शनि	मघा ,, ८।३२ बजेतक	१५ "	**मिथुनराशिका सूर्य** दिनमें ११।९ बजे, **मूल समाप्त** दिनमें ८।३२ बजे।
सप्तमी " ५।४३ बजेतक	रवि	पूर्वाफाल्गुनी,, ९।२३ बजेतक	१६ "	**भद्रा** प्रातः ५।४३ बजसे सायं ५।३५ बजेतक, **कन्याराशि** दिनमें ३।२९ बजे, **भानुसप्तमी, सौर आषाढ़मास प्रारम्भ।**
अष्टमी " ५।२६ बजेतक नवमी रात्रि शेष ४।४१ बजेतक	सोम	उत्तराफाल्गुनी ,, ९।४५ बजेतक	१७ "	× × × × × × ×
दशमी रात्रिमें ३।२८ बजेतक	मंगल	हस्त ,, ९।३८ बजेतक	१८ "	**तुलाराशि** रात्रिमें ९।२१ बजे, **श्रीगङ्गादशहरा, श्रीसेतुबन्ध-रामेश्वर-प्रतिष्ठा दिन।**
एकादशी " १।५३ बजेतक	बुध	चित्रा ,, ९।५ बजेतक	१९ "	**भद्रा** दिनमें २।४१ बजेसे रात्रिमें १।५३ बजेतक, **निर्जला एकादशी-व्रत** (सबका), **भीमसेनी एकादशी-व्रत।**
द्वादशी " ११।५७ बजेतक	गुरु	स्वाती ,, ८।१२ बजेतक	२० "	**वृश्चिकराशि** रात्रिमें १।१७ बजे, **कूर्म-जयन्ती।**
त्रयोदशी " ९।४७ बजेतक	शुक्र	विशाखा दिनमें ६।५९ बजेतक	२१ "	**प्रदोषव्रत, गोत्तमेश्वर दर्शन, सायन कर्कराशिका सूर्य** सायं ६।६ बजे।
चतुर्दशी " ७।२५ बजेतक	शनि	अनुराधा प्रातः ५।३३ बजेतक ज्येष्ठा रात्रिमें ३।५७ बजेतक	२२ "	**भद्रा** रात्रिमें ७।२५ बजेसे, **धनुराशि** रात्रिमें ३।५७ बजे, **व्रतकी पूर्णिमा, आर्द्राका सूर्य** दिनमें ११।४१ बजे, **मूल प्रारम्भ** प्रातः ५।३३ बजेसे।
पूर्णिमा दिनमें ४।५८ बजेतक	रवि	मूल ,, २।१७ बजेतक	२३ "	**भद्रा** प्रातः ६।१२ बजेतक, **पूर्णिमा, दाक्षिणात्य वटसावित्रीव्रत, मूल समाप्त** रात्रिमें २।१७ बजे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपानुभूति

बालाजीने अकाल मृत्युसे बचाया

यह घटना लगभग ४१ साल पुरानी मार्च सन् १९७२ ई० की है। मैं अपनी माताजीको लेकर अपनी मौसीजीके द्वादशाह कार्यक्रमपर गोरखपुरसे कलकत्ता गया था। कलकत्तेके पुराने इलाके बड़ाबाजारको मिनी राजस्थानके रूपमें जाना जाता है, वहाँके मुख्य मुहल्ला बड़तल्ला स्ट्रीटमें बड़े-बड़े बहुत-से पुराने मकान हैं। इन मकानोंको वहाँ बाड़ी कहते हैं। हर बाड़ीमें लगभग सौ-दो सौ कमरे होते हैं तथा उससे कहीं अधिक परिवार उसमें रहते हैं। ऐसी ही एक बाड़ीमें मौसीजीका परिवार दो कमरोंमें रहता था। ये कमरे दूसरे तलपर थे। द्वादशाहके सभी कार्यक्रम उसी तलपर उन कमरोंके थोड़ा आगेकी तरफ एक कमरेमें हो रहे थे। तीसरा तल खुली हुई छत थी तथा बाड़ीवालोंके किसी कार्यक्रमके समय मिठाई-भोजन आदि बनानेके काम आती थी।

मौसीजीके कमरेसे तैयार होकर सुबह लगभग ग्यारह बजे मैं अकेले ही द्वादशाहके कार्यक्रमवाले कमरेकी तरफ जा रहा था, तभी रास्तेमें मेरे चारों तरफ दस फुटके क्षेत्रमें खण्ड प्रलयका-सा दृश्य उपस्थित हो गया। ऊपरकी पुरानी छत, जो लकड़ीके मोटे-मोटे और विशाल शहतीरों तथा बड़े-बड़े शिलाखण्डोंसे बनी हुई थी, उनमेंसे सहसा एक शहतीर एक तरफसे टूटकर नीचेकी ओर लटक गया, बहुत तेज आवाज हुई और छतमें लटके हुए दो विशालकाय शिलाखण्डोंमेंसे एक मेरे आगे मेरे शरीरको छूते हुए और मेरे चश्मेको गिराकर चूर-चूर करते हुए नीचे गिरा। उसी क्षण दूसरा शिलाखण्ड भी मेरे एक पाँवके जूतेको पीछेकी तरफसे फाड़ते हुए नीचे गिरा। एक पल बाद गुबारका बादल छटनेपर जब अपने चारों तरफ मेरी नजर गयी तो मैंने देखा कि शिलाखण्डके कई टुकड़े मेरे चारों तरफ छितराये हुए हैं। जिस जगह मैं खड़ा था, वहाँका फर्श पत्थरोंके गिरनेसे कई जगहसे उखड़ गया था। इस प्रलयकी बरसात इसलिये हुई थी कि भट्ठीमें जलानेके लिये पत्थरके बड़े-बड़े कोयले शहतीरके ऊपर छतपर तोड़े जा रहे थे। कमजोर शहतीर उस झटकेको बरदाश्त नहीं कर पाया और एक तरफसे टूटकर ४५ अंशका कोण बनाते हुए लटक गया था। जिसके कारण उसपर रखे शिलाखण्ड अपने स्थानसे हट गये थे, उनमेंसे दो पत्थर गिर चुके थे तथा दो-तीन शिलाखण्ड छतमें शहतीरके सहारे लटके हुए थे तथा गिरनेवाले थे।

मैं यह सब देखकर एकदम किंकर्तव्यविमूढ़ मतिशून्य हो गया था, लेकिन मेरे पूरे शरीरमें कहीं चोट या खरोंचका निशानतक नहीं लगा था।

भयानक आवाजको सुनकर आसपाससे जो जहाँ था, भागकर यह देखने आया कि क्या हो गया है? माताजी तथा अन्य कई महिलाएँ तो रोते हुए दौड़कर मेरे पास पहुँचीं। मुझे देखकर कोई मेरा सिर सहला रहा था, कोई शरीरपरसे मिट्टी झाड़ रहा था। माताजीने साथके लोगोंको बताया कि सालासरके बालाजीकी कृपासे यह बच गया, नहीं तो कुछ भी हो सकता था। आज सुबह ही मैंने बालाजीकी मूर्तिवाली कण्ठी इसके गलेमें पहनायी थी। हुआ यह था कि बाड़ीमें ही कल शामको एक पुराने परिचित सोनारको उन्होंने कण्ठी बनानेको दिया था, जिसे सुबह ही वह बनाकर हमारे सामने ही माताजीको दे गया था। माताजीने मंगलवारका शुभ दिन जानकर बालाजीका स्मरण करके वह कण्ठी मेरे गलेमें पहना दी थी। माताजीको सालासरके बालाजीपर अटल विश्वास था। अब तो मुझे भी यही लगता है कि निश्चय ही बालाजी महाराजने प्रत्यक्ष आकर अपने हाथोंसे मुझे एकदम सुरक्षित बचाया था, नहीं तो किसी भी स्तरपर बचनेकी कोई आशा नहीं थी। धन्य हैं बालाजी महाराज, जिन्होंने इस प्रकार मेरी प्राणरक्षा की। मेरी माताजी सालासर हनुमान्‌जीकी भक्त हैं और उन्हें उनपर अटल श्रद्धा-विश्वास है, उन्हें वृद्धावस्थामें पुत्र-शोक न हो, इसलिये उन प्रभुने मुझे इस प्रकारकी अकाल मृत्युसे बचा लिया।

बालाजी महाराजकी जय—वीर बजरंगबलीकी जय!

—ओम प्रकाश सुरेका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

राम-नामके जपसे वर्षा

भगवान् श्रीरामका नाम 'राम' महामन्त्र है, इससे असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाते हैं—इसमें कोई आश्चर्य नहीं। गोस्वामीजीने श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामकी भक्तिको वर्षा-ऋतु कहा है—*'बरषा रितु रघुपति भगति।'* अर्थात् श्रीरामजीकी भक्ति (राम-नाम-जप) वर्षा-ऋतुके समान है। यह मात्र आलंकारिक कथन ही नहीं, बल्कि सत्य एवं प्रामाणिक सिद्धान्त है। बिहार राज्यके छपरा जिलेके एक गाँवकी बात है, वहाँ एक सन्तने ग्रामवासियोंसे श्रीराम-नामका जप कराकर वर्षा करायी और भयंकर जल-संकटको दूर किया। घटना इस प्रकार है—हमारा गाँव छपरा (बिहार)-से पन्द्रह किलोमीटर उत्तरमें है। यहाँ चार वर्ष पूर्वतक एक बड़े तपस्वी संत रहते थे। लोग उन्हें कण्ठाबाबा कहते थे। बचपनसे ही वे रामनामके अनुरागी थे। दिन-रात रामनाम जपते। कोई भक्त उनके पैर छूता तो नाराज होते। कहते कि *'राम-राम रट नहीं तो सामनेसे हट।'* वर्षभरमें चार बार वे अपने आश्रमपर अष्टयामका आयोजन करते। इसमें चौबीस घण्टे *'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥'* का मन्त्रजप होता था। वे इस मन्त्रको कलियुगका महामन्त्र कहते थे। युवावस्थामें उन्होंने गाँवके पश्चिममें एक मन्दिरका निर्माण कराया और वहीं साधु-जैसा जीवन बिताने लगे। यह मन्दिर और इसके साथ जुड़ा आश्रम आज भी इस क्षेत्रका प्रमुख धार्मिक और आध्यात्मिक केन्द्र बन गया है। यहाँ भक्तोंकी भीड़ लगी रहती है। रामनामका जप चलता रहता है। कण्ठाबाबा दूर-दूरतकके गाँवोंमें जाते। वहाँ 'हरे राम, हरे कृष्ण...' का अष्टयाम कराते। राम-नामके प्रतापसे उन्होंने अनेक सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। यहाँके लोगोंको विश्वास था कि वे जो भी कहते हैं, वह पूरा हो जाता है।

एक बारकी बात है किसी गाँवमें अष्टयाम हो रहा था। वहाँ कण्ठाबाबा उपस्थित थे। उस समय बिहारमें भयंकर सूखा पड़ा था। लोग परेशान थे, तालाबों और नदियोंका पानी सूख गया था। बहुत लोग कण्ठाबाबाका विरोध कर रहे थे। कहते थे कि यहाँ पानीके लिये त्राहि-त्राहि मची है और आपको अष्टयामकी लगी है। फिर भी बाबाके मुखपर सन्तोषका भाव था। उन्होंने कहा सभी लोग महामन्त्रका जप करो, रातमें वर्षा होगी। बाबाका कहा सत्य हुआ, रात्रिमें दस बजेसे प्रातः तीन बजेतक भारी मुसलाधार वर्षा हुई। कुएँ, नाले, तालाब, नदियाँ आदि पानीसे लबालब भर गये। हर जगह खुशियाँ छा गयीं। पाँच वर्ष पूर्व सन् २००८ ई० में उनकी मृत्यु हुई। उस समय उनकी आयु नब्बे वर्षकी थी। उन्होंने अपने जीवनके ८० वर्ष नामजपमें ही लगाये।—**उमेश प्रसाद सिंह**

(२)

भक्तके लिये प्रभु बने पहरेदार

भगवान् अपने भक्तकी वैसे ही रक्षा करते हैं, जैसे माता अपने अबोध शिशुकी रक्षा करती है—

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥

—इसी भावबोधकी एक सत्य घटना इस प्रकार है—

बहुत दिनकी बात नहीं है, बिहार प्रान्तके पश्चिमी चम्पारण जिलेमें बेतिया नामक राज्य था। जब उस राज्यके राजाकी मृत्यु हो गयी, तब वह राज्य कोर्ट ऑफ वार्डके अनुसार अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया गया और वहाँ अंग्रेज मैनेजर मि० ईरवीनको मैनेजर बनाकर भेजा गया। उसने बेतियाकी विधवा रानीको पागल करार करवा दिया और उनका सारा अधिकार हस्तगतकर मनमानी करने लगा। उस समय शिवधारी मिश्र नामका एक व्यक्ति मवेशी विभागमें पहरेदारका काम करता था। उसका काम था कि वह रातमें वहाँके मवेशियोंकी रखवाली करे। लेकिन वह रामभक्त था, इसलिये वह रातमें जहाँ कहीं कीर्तन होता, वहाँ जाकर राम-कीर्तन करता था। यह बात बहुत लोगोंको खराब लगती, इसलिये उसमेंसे एकने जाकर अंग्रेज मैनेजरसे शिकायत की कि मिश्र अपना काम ठीक प्रकारसे नहीं करता है। इसकी जाँच करनेके लिये मैनेजर स्वयं तैयार होकर उस आदमीके साथ उसको देखनेके लिये चल दिया। जहाँ मिश्रजी काम करते थे, वहाँ जाकर पुकारा तो वहाँ मिश्रजी मौजूद मिले। तब उस आदमीने मैनेजरसे कहा, 'नहीं सरकार! वह तो अमुक जगहपर कीर्तन कर रहे हैं।' तब वे अंग्रेज मैनेजर महोदय उस आदमीके साथ वहाँ गये तो देखा वहाँ भी शिवधारी मिश्र तन्मय होकर राम-कीर्तन गा रहे हैं। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखकर मैनेजरको बड़ा विस्मय हुआ। वह समझ गया कि मिश्रके बदले स्वयं उसके आराध्यदेव श्रीराम उसका काम करते हैं। जब यह बात मिश्रजीको मालूम हुई तो वे रोने लगे और कहने लगे कि मेरे रामको मेरे लिये इतना कष्ट उठाना पड़ा। उन्होंने अपना त्यागपत्र लिखकर मैनेजरको दे दिया। मैनेजरने उनका त्यागपत्र नामंजूरकर उन्हें कीर्तन करनेके लिये एक गाड़ी मुफ्तमें दे दी और वेतन भी देता रहा।

जबतक उन्होंने काम किया, तबतक यह सिलसिला चलता रहा और सेवानिवृत्त होनेके बाद उनको राज्यसे जमीन दे दी गयी। अभी हालहीमें उनकी मृत्यु हुई है। वे अपने जीवनपर्यन्त राम-कीर्तन करते रहे। मैंने उनको देखा है, वे अपने बुढ़ापेमें भी कीर्तन गाते थे। वही सुरीली तान और वही तन्मयता। धन्य हैं ऐसे लोग, जिनका मन भगवान्‌में इस प्रकार लग जाता है। ऐसे ही लोगोंके लिये स्वयं भगवान् कहते हैं—**'योगक्षेमं वहाम्यहम्'**।—**जनार्दन पाण्डेय विप्र**

(३)

विवाहमें भी त्याग

श्रीगोंदवलेकर महाराजकी पहली पत्नीका देहान्त हो चुका था। दो-चार मासके बाद उनकी माँने उन्हें दूसरी शादी करनेपर मजबूर किया। मातृ-भक्तिके कारण महाराज 'ना' नहीं कह सके; परंतु उन्होंने माँसे एक शर्त मंजूर करा ली कि वे स्वयं अपनी दूसरी पत्नीको पसन्द करेंगे। शर्तपर ही क्यों न हो, किंतु महाराज विवाह करनेको राजी हो गये। घरके सब लोग इससे प्रसन्न थे।

घरमें विवाहकी बातचीत चलने लगी। आसपासके गाँवोंके लोग अपनी-अपनी विवाहयोग्य कन्याओंको लेकर महाराजके पसन्दके लिये आने लगे, परंतु महाराजने सभीसे अस्वीकृतिकी बात कह दी। लोगोंको चिन्ता हुई कि महाराज शादी करेंगे या नहीं।

महाराजकी चिन्ता तो अलग ही थी। वे पूरे अन्तर्ज्ञानी थे। आटपाडी गाँवका निवासी श्रीसखाराम पन्त देशपाण्डे नामक गरीब ब्राह्मण अपनी नेत्रहीन कन्याके विवाहकी चिन्तामें रात-दिन डूबा रहता है, यह जानकर महाराज दयार्द्र हो गये। वे आटपाडी गये और ब्राह्मणसे मिलकर उन्होंने कहा कि 'मैं एक गोसावी हूँ, आप चाहें तो अपनी कन्याका विवाह मेरे साथ कर सकते हैं।' रोटीके एक टुकड़ेको तरसनेवाला मानो बढ़िया पक्वान्न पा गया। ब्राह्मणने अपनी कन्याका विवाह महाराजसे कर दिया। कन्याका उद्धार हो गया।

(४)

तुलसीका चमत्कार

श्रीठाकुरसाहब लदाणा (जयपुर)-के पास एक मुसलमान सज्जन आये। उनके गलेमें तुलसीकी कण्ठी बँधी हुई थी। ठाकुरसाहबने पूछा कि 'आप मुसलमान होते हुए तुलसीकी कण्ठी कैसे पहने हुए हैं!' उत्तरमें उन्होंने कहा कि ठाकुरसाहब! इसके लिये एक समय मैंने प्रत्यक्ष बड़ा चमत्कार देखा है, तभीसे यह तुलसीकी माला हमेशा रखता हूँ। चमत्कार क्या देखा, सो आपसे निवेदन करता हूँ—

एक समय मैं पैदल ही किसी दूसरे गाँव जा रहा था। रास्तेमें एक जंगल था। उस जंगलमें एक पेड़के नीचे बड़े आकारके दो मनुष्य मिले। मैं उनको देखकर डर गया। मुझे डरा हुआ जानकर उन्होंने विश्वास दिलाया कि घबराओ मत, आपको कुछ नहीं कहेंगे। हम यमराजके दूत हैं। अभी थोड़ी देरमें एक मनुष्य गाड़ी लेकर यहाँ आयेगा, उसके बैलकी जोती (जो जुआसे बैलके कन्धेपर बाँधी जाती है) टूट जायगी। फिर हम बैलरूपी काल बनकर उसको मारकर यमलोक ले जायँगे।

यह बात सुनकर मैं भी वहाँ ठहर गया। थोड़ी देर बाद एक गाड़ीवान गाड़ी लेकर आया और उसी जगह वह जोती टूट गयी और गाड़ीवान सुधारनेके लिये नीचे उतरा, उसी समय बैलने उसके पेटमें इतने जोरसे सींग मारा कि तत्काल वह एक पेड़ोंके झुरमुटमें जा गिरा और उसके प्राण छूट गये।

तब यमके दोनों दूत निराश होकर मुझसे बोले कि हम तो खाली हाथ जा रहे हैं, अब हमारा इसपर अधिकार नहीं रहा। इसे भगवान्‌के दूत ले गये जो आपको नजर नहीं आये। मैंने यमदूतोंसे कारण पूछा, तब बोले कि उस झुरमुटमें तुलसीके पौधे थे। इसके शरीरसे उनका स्पर्श हो गया। अतः इसे यमलोकमें ले जानेका अधिकार नहीं रहा।

इस प्रकार मैंने स्वयं जब तुलसीका चमत्कार देखा, तभीसे मैं तुलसीकी माला पहनता हूँ।

(५)

ज्ञानकी खेती

एक बार भगवान् बुद्ध वाराणसीमें एक किसानके घर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिक्षा माँगने गये। साथमें कुछ शिष्य भी थे। किसानने एक बार उन्हें ऊपरसे नीचेतक देखा और फिर कहा—'मैं तो किसान हूँ। कठोर श्रम करके अपना पेट पालता हूँ। आप क्यों बिना श्रम किये आहार प्राप्त करना चाहते हैं?'

बुद्धने शान्त भावसे उत्तर दिया—'भैया, मैं भी किसान हूँ, खेती करता हूँ।'

किसान बोला—'कैसे?' भगवान् बुद्धने किसानकी शंकाका समाधान करते हुए कहा—'मैं ज्ञानकी खेती करता हूँ। आत्मा मेरा खेत है। मैं ज्ञानके हलसे श्रद्धाके बीज बोता हूँ। तपस्या एवं साधनाके जलसे उसे सींचता हूँ। सत्य एवं अहिंसाके सतत प्रयाससे निर्वाह करता हूँ। यदि तुम मुझे अपनी खेतीका कुछ भाग दोगे तो मैं भी तुम्हें अपनी खेतीका कुछ भाग दूँगा।'

किसानको भगवान् बुद्धकी बात पसन्द आ गयी, वह उनके चरणोंमें नतमस्तक हो गया।

(६)

मानस-सिद्ध-मन्त्रका चमत्कार

घटना लगभग ५ वर्ष पुरानी है। हम दो बहनोंका एक बैंकमें संयुक्त लॉकर था, जिसमें आवश्यक कागज तथा सोने-चाँदीके कुछ आभूषण आदि रखे जाते थे। एक दिन लॉकर खोला तो देखा कि आभूषणोंका एक डिब्बा नहीं है। देखते ही हम दोनों सकते में आ गयीं कि अब क्या करें? यह क्या हो गया? सिर चकरा गया, समझ न आये कि किससे कहें। बैंकवालोंको बताया तो उन्होंने कहा ऐसा सम्भव नहीं है, इसका पूर्ण उत्तरदायित्व आपका ही है। अब परेशानी और बढ़ गयी। ईश्वरसे प्रार्थना की कि कोई रास्ता दिखायें। ईश्वरकी अनुकम्पासे याद आया कि जून, सन् २००२ ई० के कल्याण साधारण अंकमें 'मानस-सिद्ध-मन्त्र' पढ़ा था कि कोई चीज खो जाय तो उसका जप निम्न प्रकारसे तबतक करें, जबतक प्राप्त न हो जाय। वह मानस-सिद्ध-मन्त्र इस प्रकार है—

गई बहोर गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥

मन्त्र सिद्ध करनेके लिये अपने चारों ओर शुद्ध जलादिसे रक्षाकी रेखा खींच लेनी चाहिये। इसे रक्षा-मन्त्रकी १०८ आहुतियोंद्वारा आगे दी गयी विधिके अनुसार सिद्ध कर लेना चाहिये। रक्षा-मन्त्र इस प्रकार है—

मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक॥

चौपाई-मन्त्र सिद्ध करनेका विधान यह है कि रात १० बजेके बाद अष्टांगहवन सामग्री* और एक माला लेकर एकान्तमें बैठ जाना चाहिये। अपना मुख काशीजीकी ओर कर लेना चाहिये। एक बार चौपाई पढ़कर हवन करें और मालाका एक मनका पीछे करें। इस प्रकार एक सौ आठ बार करें। बस, मन्त्र सिद्ध हो जायगा फिर जिस कार्यके लिये आवश्यकता हो, श्रद्धापूर्वक जबतक कार्य सिद्ध न हो, सिद्ध मन्त्रका नित्य जप करते रहना चाहिये।

मैंने उक्त विधिद्वारा प्रथम दिन रात्रिमें रक्षामन्त्र सिद्धकर पुनः हवनकर नित्य जप शुरू किया और ईश्वरकी महिमा कि कुछ दिनों बाद लॉकर पुनः खोलने गयी तो डिब्बा मौजूद था, यह देखकर मैं रोमांचित हो उठी कि ईश्वरकी शक्ति-भक्तिसे क्या नहीं हो सकता! इस घटनाका उल्लेख मैं इसीलिये कर रही हूँ कि पढ़नेवालोंको प्रेरणा एवं लाभ मिले और श्रीराम तथा श्रीरामचरितमानसमें आस्था बढ़े।—**सुश्री रीता जौहरी**

(७)

धोबिनकी ईमानदारी

बात सन् २०१० ई० के मई महीनेकी है। मैं सपरिवार दिल्लीसे रामपुरडीह (भागलपुर) गया था। शामको लगभग ४ बजे गाँवमें लगनेवाले हाटसे कुछ घरेलू सामान लाने मैं बाहर चला गया। इसी बीच मेरी पत्नीने सभी गन्दे कपड़े धोबिनको धुलनेके लिये दे दिये, जो पासके गाँव दासपुरसे आती थी। जब मैं घर लौटा तो इस बातका मुझे पता चला; मैंने अपनी पत्नीसे कहा कि मेरी कमीजमें २२०० रुपये थे, यह सुनकर वह अवाक् रह गयी। मैं उलटे पाँव धोबिनके घरकी ओर चला गया। वहाँ उसके घरके दरवाजेपर एक बच्ची मिली, मैंने उससे पूछा कि तुम्हारी माँ कहाँ हैं? उसने कहा—'अभी तो आयी थी, कहीं चली गयी।' मैं कुछ देर वहाँ रुका, फिर लौट आया। घर लौटनेपर पता चला कि धोबिनने पैसे लौटा दिये हैं। उसको मिठाई खानेके लिये १००

* **अष्टांग हवनकी सामग्री**—(१) चन्दनका बुरादा, (२) तिल, (३) शुद्ध घी, (४) शुद्ध चीनी, (५) अगर, (६) तगर, (७) कपूर, (८) शुद्ध केसर, (९) नागरमोथा, (१०) पंचमेवा (पिश्ता, बादाम, किसमिस, अखरोट, काजू), (११) जौ और (१२) चावल। पंचमेवामें किसी मेवेकी कमी हो तो उसके स्थानपर मिश्री मिला लेनी चाहिये। समस्त सामग्री लगभग ११०० ग्राम और प्रत्येक आहुति लगभग १० ग्रामकी देनी चाहिये। सामग्रीमें कोई वस्तु कम-ज्यादा मात्रामें हो तो आपत्ति नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुपये दिये जानेपर उसने रुपये लेनेसे इनकार कर दिया। गरीबीमें भी उसने जो 'ईमानदारी'की अनोखी मिसाल कायम की, वह आजके युगमें आश्चर्य ही है।—रमाकान्त झा

(८)

जब गोवत्सने प्रार्थना सुनी

बात लगभग तीस वर्ष पहलेकी है। हमारे गाँवसे हमारे फूफाका गाँव २०० कि०मी० दूर पड़ता है। फूफा खेतीबाड़ीका काम करते थे और उन्हें अच्छी नस्लके गाय-बैल रखनेका शौक था। एक बार मेरे चाचा उनसे मिलनेके लिये उनके गाँव गये तो चाचासे उन्होंने कहा कि मेरे पास दो सालका एक बहुत बढ़िया नस्लका बछड़ा है, पर वह घरकी गायका है और हमारे सम्प्रदायमें बैल बधिया न करवानेका नियम है, इसलिये मैं इसे साँड़ छोड़ दूँगा। बछड़ा देखनेपर चाचाके मनमें लोभ आ गया और उन्होंने फूफासे वह बछड़ा माँग लिया। फूफाने जब नियमका हवाला दिया तो चाचाने कहा, 'पाप मुझे लगेगा, आप बछड़ा दे दें।' दूसरे दिन सुबह चाचा उस बछड़ेको लेकर पैदल ही फूफाके गाँव ठरबा (जिला हिसार)-से अपने गाँव हिम्मतपुरा (पंजाब, जिला फिरोजपुर)-की ओर चल पड़े, दो दिनके सफरके बाद तीसरे दिन जब वे गाँवसे ३० कि०मी०-की दूरीपर थे तो उन्हें एक परिचितकी ट्रैक्टर-ट्राली मिल गयी और वे बछड़ेसमेत उसपर सवार हो गये, जब वे गाँवसे सात-आठ कि०मी० दूर रह गये तो अचानक उस बछड़ेने ट्रालीसे छलाँग लगा दी, चलती ट्रालीसे गिरनेपर उसे चोट लगी और वह गिर पड़ा। बहुत कोशिश करनेपर भी जब वह नहीं उठा तो चाचा गाँव आ गये और बैलगाड़ी ले जाकर उसपर लादकर उसे गाँव ले आये। पशु-चिकित्सकोंसे इलाज करवाया, कोई गम्भीर चोट उसे नहीं थी, पर वह उठा नहीं, चार-पाँच आदमियोंके लगनेपर भी वह थोड़ा उठनेपर पुनः गिर पड़ता, इस प्रकार उसे पड़े-पड़े तीन महीने बीत गये। चाचाको अपने-आपपर बहुत ग्लानि हुई, लालचमें आकर नियम-भंग करनेका निर्णय किया, पर इस बेचारे गौके जाये का क्या दोष है, जो मेरे बुरे संकल्पका दण्ड भोग रहा है? ऐसे ही एक दिन दुविधामें पड़े चाचाको गाँवके एक बुजुर्ग आदमी मिले, उन्होंने चाचासे कहा कि तुम बछड़ेके कानमें कह दो कि 'मेरी भूलको क्षमा करो, तुम उठ जाओ; मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि मैं तुम्हें साँड़ छोड़ दूँगा।' चाचा परेशान तो थे ही, उनके मनमें पश्चात्ताप भी था, अतः उन्होंने उन बुजुर्गकी बतायी बातको बड़े ही करुण मनसे बछड़ेके कानमें कह दिया।

इतना कहकर चाचा घरके अन्दर चले गये। उन्हें लग रहा था कि ऐसे कानमें बोलनेसे क्या होगा, पर कुछ देर बाद जब वे बाहर आये तो उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा, उन्होंने देखा कि वह बछड़ा जो तीन महीनेसे उठानेसे भी नहीं उठ रहा था, वह स्वयं उठकर बैलोंके साथ घास चर रहा है! उन्होंने लोगोंको यह बात बतायी तो किसीको विश्वास नहीं हुआ, पर आकर देखनेपर सभी विस्मित रह गये। चाचाने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उसे साँड़ छोड़ दिया, जो बहुत अच्छी नस्ल और कद-काठीका साँड़ बना और अपने अन्तिम समयतक गाँवमें रहा।—विनोद जम्भदास कड़वासरा

(९)

पाँच वर्षपूर्व मृत बालकका पुनर्जन्म

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णका वचन है—**'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।'** अर्थात् जन्मे हुएकी मृत्यु और मरे हुएका जन्म निश्चित है। सीहोर जनपद मुख्यालयसे १० कि०मी० दूर लसूडियामें चार सालके बच्चेके पुनर्जन्मकी एक घटना गीताके इस वचनको प्रमाणित करती है। प्राप्त विवरणसे पता चला है कि उसने अपने पिछले जन्मकी कई बातें बतायीं, जो सच साबित हुईं।

विशाल नामके इस बच्चेका ११ अगस्त, सन् २००८ ई० को ग्राम लसूडियामें आत्मारामके यहाँ जन्म हुआ। करीब चार सालके इस बच्चेने बोलना शुरू किया कि वह तो ग्राम मोगरारामका निवासी मेहताब सिंह है और उसकी मौत हो गयी थी।

बच्चेने उस गाँवमें अपने बच्चोंसे मिलनेकी इच्छा व्यक्त की। विशालको मोगराराम ले जाया गया। वहाँ पता चला कि मेहताब सिंह नामका व्यक्ति था और ११ जून, सन् २००७ ई० को उसका निधन हो गया था। इतना ही नहीं, विशालने परिवारके सभी लोगोंको भी पहचान लिया। उसने मेहताब सिंहके साथ हुई लूटकी घटनासे लेकर, खेत-खलिहानसहित कई रिश्तेदारोंके बारेमें भी बताया। 'बेटे-बहू' ने पिता मान लिया। अब मेहताब सिंहके बेटे-बहू विशालको पिता-ससुर समझकर सम्मान दे रहे हैं। इस घटनासे हमारे धर्मशास्त्रोंमें वर्णित पुनर्जन्म सत्य प्रमाणित होता है। [प्रेषक—श्रीललित गोविन्दजी शास्त्री]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

उपकारका बदला

सन् २००३ ई० में सूरीनाम (दक्षिण अमेरिका)-में सातवाँ विश्व-हिन्दी-सम्मेलन हो रहा था। भारत-सरकारद्वारा भेजे गये शिष्ट मण्डलके एक सदस्यके रूपमें मैं भी शामिल हुआ था।

सूरीनाम एक छोटा किंतु अत्यन्त सुन्दर देश है। इसकी राजधानी 'पारामारिबो' है, जिसका अर्थ है—फूलोंका शहर। यहाँसे प्रति मास करोड़ों डॉलरके फूलोंका निर्यात किया जाता है। प्रशान्त महासागरके समीप बसा यह देश पहले डच उपनिवेश था, अब स्वतन्त्र है।

आजसे डेढ़ सौ वर्षपूर्व कुछ भारतीय वहाँ गिरमिटिया (अनुबन्धित कुली) बनकर गये थे। विषम परिस्थितियोंमें अमानवीय पीड़ा सहकर भी वे वहाँ रहे और स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद वे वहाँके प्रतिष्ठित नागरिक बन गये। सम्मेलनके समय श्रीराम अयोध्या सूरीनामके उपराष्ट्रपति थे।

हम लोग 'स्टार डस्ट' होटलमें ठहरे थे। मेरी भारतीय वेश-भूषा (धोती-कुर्ता) देखकर सूरीनामी भारतवंशी मुझे गुरुजी कहने लगे और मेरे कमरेमें आकर घण्टों वार्तालाप करते। एक मित्र थे—रामपदारथ। वे प्रतिदिन आते और सूरीनामके विषयमें बताते। एक दिन हमें 'सनातन धर्म मन्दिर' भी ले गये।

'स्टार डस्ट' के सामने एक बहुत बड़ा फार्म था। उसमें नारियलके सैकड़ों वृक्ष थे। आलूकी खेती होती थी एवं एक सुन्दर बँगला भी था। रामपदारथने बताया कि यह 'डोमन साहब' का बँगला है। फिर हँसकर बोले—'एक डच जमीनदार थे मिस्टर डायमण्ड। उन्हें हिन्दुस्तानी डोमन साहब कहते थे। इस करोड़ों डॉलरके बगीचेके स्वामी अब भोला हैं, कल उन्हें लेकर आऊँगा।' दूसरे दिन रामपदारथके साथ भोला आये। वे सरल और शान्त थे। उन्होंने अपनी रामकहानी इस प्रकार सुनायी—आजसे पचास साल पहले मेरे बाबू डोमन साहबके यहाँ काम करते थे। मैं दस-बारह सालका बच्चा था। माँ मर चुकी थी। डोमन साहब बहुत क्रूर था। छोटी-छोटी गलतीपर कोड़ेसे मारता था। बहुत कष्टसे दिन बीतते थे। एक बार मैने एक पपीता तोड़ लिया था। डोमन साहबने खूब पीटा था। बाबूने भी मुझे डाँटा।

बाबूने कहा था—दुःखमें यह मन्त्र बार-बार पढ़ना—

'संकट से हनुमान छुड़ावे। मन क्रम बचन ध्यान जो लावे॥'

मैं सूरीनाम नदीके किनारे जाकर घण्टों मन्त्र जपता रहता। कहता—हे हनुमान्‌जी! मेरे ऊपर और बाबूके ऊपर कृपा करो।

एक दिन मैंने देखा—थोड़े पानीमें डोमन साहब डूब रहा था। वह शराब पीकर नदीमें नहाने आया था। गिर पड़ा और उठ नहीं पा रहा था। सोचा—अच्छा है, मर जाय। पर कुछ सोचकर मैं डरते-डरते गया और मैंने उसका हाथ पकड़कर उठा दिया। वह हाँफ रहा था। मैं डरसे वहाँसे भाग आया।

कुछ देरके बाद स्वस्थ होकर साहब बँगलेमें वापस आया। उसने बाबूसे कहा—भोलवाको बुलाओ। बाबू डर गये। सोचा—मैंने कोई शरारत की है और साहब पीटेगा। आकर बोले—'चल, साहबके पैर पकड़ लेना नहीं तो वह पुलिसमें दे देगा। मेरी नौकरी छूट जायगी। भूखों मरना पड़ेगा।' मैं हनुमान्‌जीका नाम लेते डरते-डरते साहबके सामने गया। डोमन साहब सोफेसे खड़े हुए, मेरा हाथ पकड़कर सोफेपर बैठाया और बोले—मेरा भोलवा बहादुर है। इसने मेरी जान बचायी।

बाबू आश्चर्यचकित थे। उनकी कुछ समझमें नहीं आ रहा था। वे साहबकी डूबनेवाली घटना नहीं जानते थे। डोमन साहबने कहा—नॉर्थ साइडके पचास नारियलके पेड़ मैं भोलवाको देता हूँ। उसकी आमदनी यही लेगा। बाबूकी खुशीका ठिकाना नहीं रहा। हमलोग शामको हनुमान्‌जीको प्रसाद चढ़ा आये। समय बीतता गया। बाबू मर गये, मैं साहबका विश्वासी बन गया। मेरे पास भी कुछ धन जमा हो गया। सूरीनाम आजाद हुआ। ज्यादातर डच जमीनदार अपनी जायदाद बेचकर हालैण्ड चले गये।

एक दिन साहबने कहा—भोलवा! मैं हालैण्ड जाऊँगा। तू भी चल। वहाँ इससे बहुत बड़ा बँगला है।

मैंने कहा—अंकल, मुझे यहीं रहने दो। बचपन यहाँ बीता है। मन्दिर भी पासमें है।

साहब हँसे—ठीक है, तू यहीं रह। यह पूरा बँगला और फार्म मैं तुम्हें लिख देता हूँ। तबसे मैं इस बँगलेका मालिक हूँ। डोमन अंकल जरूर रघुपतिपुर गये होंगे। मैं भोलाकी भक्ति और हनुमान्‌जीकी कृपा सुनकर गद्‌गद था।

—श्रीबच्चन पाठक 'सलिल'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Dear Contributors,

The annual number of **Kalyana-Kalpataru** on **'Shiksha'** published last year has got very good response and was much appreciated by our intelligent readers. This all is the outcome of Divine Grace and efforts of our respected contributors. We propose to publish **'Karmayoga Number'** this year in **October 2013**.

The world is passing through chaotic conditions. Everywhere people are clamouring for rights. Very few people are devoted to their own duties. Further selfishness and corruption have reached enormous proportions practically in every individual life. Our this issue containing inspiring articles for rendering selfless service may inspire ideas of selfless service in our readers and public at large. With this view, this number is being published.

A tentative list of suggested topics is given below. The contributors may choose any topic from the list or may select any related issue for their write up. The write up should be concise and expression simple and lucid. The write up may please be sent to reach us by **15th June, 2013**.

Karmayoga Number

1. What is Karmayoga?
2. Karmayoga—an independent discipline for God-realization.
3. Superiority of Karmayoga
4. What is meant by desireless action?
5. Is selfless action possible?
6. Tattva of Karmayoga
7. Gītā and Karmayoga
8. Definitions of Yoga in Gītā
9. 'समत्वं योग उच्यते'—Is this the definition of Karmayoga?
10. What is meant by 'योगः कर्मसु कौशलम्'
11. Karmayoga—the way of life of all realized souls
12. Karmayoga—an easy path for all spiritual aspirants
13. The role of Jñāna in Karmayoga
14. The role of Bhakti in Karmayoga
15. Karmayoga the main subject of Gītā
16. Does Karmayoga lead to redemption or only purification of mind?
17. Characteristics of a Karmayogī
18. The secret of Karmayoga
19. Essentiality of Karmayoga in modern world
20. Analysis of Karmayoga
21. Comparison of Jñānayoga with Karmayoga
22. Comparison of Bhaktiyoga with Karmayoga
23. What do we mean by Action, Inaction in Gītā?
24. What are the hindrances in the practice of Karmayoga?
25. कर्मयोगो विशिष्यते
26. संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयस्करौ
27. A Karmayogī is Sannyasi and Yogī both
28. A little practice of Karmayoga saves from the fear of birth and death 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥'
29. Determinate intellect 'व्यवसायात्मिका बुद्धि' is essential in Karmayoga
30. Karmayoga and Duty
31. Yoga and Karmayoga
32. Essential factors in Karmayoga
33. Karmayoga is not devoid of Bhakti
34. Distinction between 'काम्यकर्म' and 'सकाम कर्तव्य कर्म'
35. Karmayoga in Vedas
36. Karmayoga in Śrīmad Bhāgavata
37. Karmayoga in Jain and Buddha Philosophy
38. 'यज्ञ' in Gītā denotes Karmayoga
39. Comments on Karmayoga—
    (i) Śaṅkarācārya
    (ii) Rāmānujācārya
    (iii) Vivekānanda
    (iv) Arvinda
    (v) Lokamānya Tilaka
    (vi) Jayadayal Goyandka
40. Ideal Karmayogīs—Different inspirational stories

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र० ति० २०-३-२०१३

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत-संख्या—NP/GR-13/2011-201…

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT	LICENCE No. WPP/GR-03/2011-2013

'कल्याण' के ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

'कल्याण' वर्ष ८७ के अप्रैल माहका अङ्क [संख्या ४] आपके समक्ष है। जिन ग्राहकोंका सदस्यता-शुल्क प्राप्त हो गया है, उन सभी महानुभावोंको विशेषाङ्क एवं फरवरी तथा मार्च माहका अङ्क भेज दिया गया है। **सदस्यता-शुल्क भेजनेके उपरान्त अभी भी यदि किसी ग्राहकको विशेषाङ्क तथा अन्य अङ्क प्राप्त नहीं हो रहे हैं तो उन्हें डाकघरमें तुरन्त शिकायत कर देनी चाहिये। यदि रकम यहाँ पहुँचनेकी पावती-रसीद मिल गयी हो तो उसकी फोटो नकल विवरणसहित यहाँ जाँच-हेतु अविलम्ब भेजनी चाहिये।**

मासिक अङ्कोंके न पहुँचनेमें सामान्यतया डाक-विभागकी गड़बड़ी अथवा अपूर्ण (गलत) पता कारण हो सकता है। अतएव **अङ्कके रैपरपर चिपकाया गया अपना पता जाँच लें और कोई त्रुटि हो तो पत्र/फैक्स/ई-मेल भेजकर सुधार करा देना चाहिये।** पतेमें पिनकोड एवं मोबाइल नं० अवश्य लिखें।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

नवीन प्रकाशन—अप्रैल २०१२ से मार्च २०१३ तक

कोड	पुस्तक-नाम	मू० रु०
1935	मानस-पीयूष—परिशिष्ट	७५
1944	परम सेवा	१५
1927	जीवन-संजीवनी	३५
1938	गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ—पुस्तकाकार	८
1953	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—सुन्दरकाण्ड, मूल	३०
	तेलुगु	
975	संक्षिप्त शिवपुराण	१५०
981	श्रीमद्वाल्मीकि रामायणमु-वचनमु	२३०
979	संक्षिप्त महाभारतमु-प्रथम खण्डमु	१५०
980	संक्षिप्त महाभारतमु-द्वितीय खण्डमु	१५०
976	गुरु और माता-पिताके भक्त बालक—रंगीन	१०
977	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ—रंगीन	१०
978	सच्चे और ईमानदार बालक—रंगीन	१०
	बँगला	
1937	संक्षिप्त शिवपुराण	१२५

कोड	पुस्तक-नाम	मू० रु०
1946	रामायण-महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	१…
1948	यह विकास या विनाश? जरा सोचिये	[illegible]
1936	ईश्वरेरप्रति विश्वास	[illegible]
	मराठी	
1934	संतश्रेष्ठ एकनाथ	१…
1818	उपयोगी कहानियाँ	१…
1942	जगद्गुरु तुकाराम	१…
1950	हरि विजय	८…
	गुजराती	
1939	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—सटीक, खण्ड-१	२०…
1940	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—सटीक, खण्ड-२	२०…
1941	श्रीशिवसहस्त्रनामस्तोत्र नामावलिसहित	[illegible]
1943	गीता-माहात्म्य	३…
	कन्नड़	
1949	श्रीमद्भागवत-सुधासागर	२५…

पुनः छपकर तैयार—श्रीरामचरितमानस (मूल) बृहदाकार (कोड 1436)—श्रीरामचरितमानसकी उपयोगितासे आजका जनमानस भलीभाँति परिचित है। श्रद्धालु भक्त इसका नित्य और नवाह्नपारायण करके अपनी लौकिक एवं पारमार्थिक कामनाओंकी सिद्धि प्राप्त करता है। बृहदाकार तथा आकर्षक आवरण तथा मोटे टाइपमें प्रकाशित यह ग्रन्थ आबाल-वृद्ध सबके पाठके लिये परमोपयोगी है। मूल्य रु० २५०

धर्मशास्त्राङ्क (कोड 1132)—इस विशेषाङ्कमें शास्त्रोंकी महत्ता और उनके अनुसार कार्य करनेकी कलाप… विभिन्न विद्वानों, सन्त-महात्माओंके शोधपूर्ण लेखों एवं दृष्टान्तोंका अद्भुत संकलन है। मूल्य रु० १२०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

वर्ष ८७

संख्या ५

गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भगवान् परशुराम

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिदेवोंद्वारा आदिशक्ति जगदम्बाकी स्तुति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

Central Library Gurukul Kangri University Haridwar-249404 (U.A.)

वर्ष ८७ | गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७०, श्रीकृष्ण-सं० ५२३९, मई २०१३ ई० | संख्या ५
पूर्ण संख्या १०३८

त्रिदेवोंद्वारा आदिशक्ति पराम्बाकी स्तुति

त्वं नित्या परमा विद्या जगच्चैतन्यरूपिणी। पूर्णब्रह्ममयी देवी स्वच्छेया धृतविग्रहा॥
अद्वैतं ते परं रूपं वेदागमसुनिश्चितम्। नमामो ब्रह्म विज्ञानगम्यं परमगोपितम्॥
सृष्ट्यर्थं सशरीरा त्वं प्रधानं पुरुषः स्वयम्। कल्पितं श्रुतिभिस्तेन द्वैतरूपा त्वमुच्यसे॥
तत्रापि त्वां विनापूर्णः पुरुषः शवरूपवत्। अतः सर्वेषु देवेषु तव प्राधान्यमुच्यते॥

[**ब्रह्मा, विष्णु और शिव बोले**—हे शिवे!] आप नित्या, परमा विद्या, जगत्में चैतन्यरूपसे व्याप्त और पूर्ण-ब्रह्मस्वरूपा देवी हैं। आप स्वेच्छासे शरीर धारण करती हैं। आपका वह परम रूप वेद और आगमसे सुनिश्चित अद्वैत ब्रह्म ही है। अपरोक्षानुभूतिसे जाननेयोग्य तथा परम गोपनीय आपको हम नमस्कार करते हैं। आप सृष्टिके निमित्त प्रकृति और पुरुषके रूपमें स्वयं ही शरीर धारण करती हैं, इसलिये वेदोंके द्वारा आपको कल्पित द्वैतरूपा कहा गया है। उस सृष्टिप्रक्रियामें भी आपके बिना पुरुष अपूर्ण और शवके समान ही है। अतः सभी देवताओंमें आपकी प्रधानता कही जाती है। [देवीपुराण]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७०, श्रीकृष्ण-सं० ५२३९, मई २०१३ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- त्रिदेवोंद्वारा आदिशक्ति पराम्बाकी स्तुति	६६७
२- कल्याण	६६९
३- हृदयके उत्तम भावोंसे परम लाभ (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	६७०
४- जीवात्मा और परमात्माका मिलन (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	६७४
५- 'जगत में रहना है दिन चार' [कविता] (सन्त श्रीसरसमाधुरीजी महाराज)	६७६
६- पाप होने कैसे बन्द हों? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	६७७
७- घट-घटमें वह साईं रमता [बोधकथा] (श्रीशरद्चन्द्रजी पेंढारकर)	६७९
८- मनका इकतारा (डॉ० श्रीसुरेशचन्द्रजी सेठ, एम० ए०, पी-एच० डी०)	६८०
९- 'मधुबन श्याम बिना नहिं भावै' [कविता] (कु० वन्दना पाण्डेय 'शायद')	६८१
१०- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	६८२
११- मरणधर्मा प्राणी (श्रीमूलनारायणजी मालवीय)	६८३
१२- योगवासिष्ठका उपशम-प्रकरण (श्रीरघुनाथप्रसादजी सराफ)	६८६
१३- 'नामु राम को कलपतरु' (श्रीदेवेन्द्रजी शर्मा)	६९१
१४- आस्तिकताकी आधारशिलाएँ	६९४
१५- नवधा भक्ति—[२] कीर्तन [कहानी] (श्री 'चक्र')	६९५
१६- सन्त-उद्बोधन (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	६९८
१७- श्रीदेवराहा बाबाका अमृतमय उपदेश (श्रीरामकृष्णजी रामानुजदास 'श्रीसन्तजी महाराज')	६९९
१८- महाराज श्रीगोपालसिंहजी [भक्तगाथा] (श्रीदेवेन्द्रकुमारजी गोयल)	७००
१९- साधनोपयोगी पत्र	७०२
२०- व्रतोत्सव-पर्व [आषाढ़मासके व्रत-पर्व]	७०४
२१- कृपानुभूति	७०५
२२- पढ़ो, समझो और करो	७०६
२३- मनन करने योग्य	७१०
२४- 'कल्याण' का आगामी ८८वें वर्ष (सन् २०१४ ई०)-का विशेषाङ्क 'ज्योतिषतत्त्वाङ्क'	७११

चित्र-सूची

१- भगवान् परशुराम	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- त्रिदेवोंद्वारा आदिशक्ति जगदम्बाकी स्तुति	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- सुभद्राका विलाप	(इकरंगा)	६८४
४- यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद	(इकरंगा)	६८४
५- बलि-विरोचन-संवाद	(,,)	६८७
६- शुक्राचार्य और दैत्यगण	(,,)	६८८
७- चिन्तनमग्न मुनि उद्दालक	(,,)	६८९

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द १८० रु०
सजिल्द २०० रु०

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ९०० रु०
सजिल्द १००० रु०

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 40 (Rs. 2200), पंचवर्षीय US$ 200 (Rs. 11000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—जबतक तुम्हें अपना लाभ और दूसरेका नुकसान सुखदायक प्रतीत होता है, तबतक तुम नुकसान ही उठाते रहोगे!

जबतक तुम्हें अपनी प्रशंसा और दूसरेकी निन्दा प्यारी लगती है, तबतक तुम निन्दनीय ही रहोगे।

जबतक तुम्हें अपना सम्मान और दूसरेका अपमान सुख देता है, तबतक तुम अपमानित ही होते रहोगे।

जबतक तुम्हें अपने लिये सुखकी और दूसरेके लिये दुःखकी चाह है, तबतक तुम सदा दुःखी ही रहोगे।

जबतक तुम्हें अपनेको न ठगाना और दूसरेको ठगना अच्छा लगता है, तबतक तुम ठगाते ही रहोगे।

जबतक तुम्हें अपने दोष नहीं दिखते और दूसरेमें दोष खूब दिखते हैं, तबतक तुम दोषयुक्त ही रहोगे।

जबतक तुम्हें अपने हितकी और दूसरेके अहितकी चाह है, तबतक तुम्हारा अहित ही होता रहेगा।

जबतक तुम्हें सेवा करानेमें सुख और सेवा करनेमें दुःख होता है, तबतक तुम्हारी सच्ची सेवा कोई नहीं क़रेगा।

याद रखो—जबतक तुम्हें लेनेमें सुख और देनेमें दुःखका अनुभव होता है, तबतक तुम्हें उत्तम वस्तु कभी नहीं मिलेगी।

जबतक तुम्हें भोगमें सुख और त्यागमें दुःख होता है, तबतक तुम असली सुखसे वंचित ही रहोगे।

जबतक तुम्हें विषयोंमें प्रीति और भगवान्में अप्रीति है, तबतक तुम सच्ची शान्तिसे शून्य ही रहोगे।

जबतक तुम्हें शास्त्रोंमें अश्रद्धा और मनमाने आचरणोंमें रति है, तबतक तुम्हारा कल्याण नहीं होगा।

याद रखो—जबतक तुम्हें साधुओंसे द्वेष और असाधुओंसे प्रेम है, तबतक तुम्हें सच्चा सुपथ नहीं मिलेगा।

जबतक तुम्हें सत्संगसे अरुचि और कुसंगमें प्रीति है, तबतक तुम्हारे आचरण अशुद्ध ही रहेंगे।

जबतक तुम्हें जगत्‌में ममता और भगवान्‌से लापरवाही है, तबतक तुम्हारे बन्धन नहीं कटेंगे।

जबतक तुम्हें अभिमानसे मित्रता और विनयसे शत्रुता है, तबतक तुम्हें सच्चा आदर नहीं मिलेगा।

जबतक तुम्हें स्वार्थकी परवा है और परार्थकी नहीं, तबतक तुम्हारा स्वार्थ सिद्ध नहीं होगा।

जबतक तुम्हें बाहरी रोगोंसे डर है और काम-क्रोधादि भीतरी रोगोंसे प्रीति है, तबतक तुम नीरोग नहीं हो सकोगे।

याद रखो—जबतक तुम्हें धर्मसे उदासीनता और अधर्मसे प्रीति है, तबतक तुम सदा असहाय ही रहोगे।

जबतक तुम्हें मृत्युका डर है और मुक्तिकी चाह नहीं है, तबतक तुम बार-बार मरते ही रहोगे।

जबतक तुम्हें घर-परिवारकी चिन्ता है और भगवान्‌की कृपापर भरोसा नहीं है, तबतक तुम्हें चिन्तायुक्त ही रहना पड़ेगा।

याद रखो—जबतक तुम्हें प्रतिशोधसे प्रेम है और क्षमासे अरुचि है, तबतक तुम शत्रुओंसे घिरे ही रहोगे।

जबतक तुम्हें विपत्तिसे भय है और प्रभुमें अविश्वास है, तबतक तुमपर विपत्ति बनी ही रहेगी। **'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदयके उत्तम भावोंसे परम लाभ

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मनुष्यको अपने हृदयका भाव उत्तम-से-उत्तम बनाना चाहिये। हृदयका भाव उत्तम होनेपर मनुष्यकी सारी चेष्टाएँ अपने-आप उत्तम होने लगती हैं। इसके विपरीत उत्तम-से-उत्तम कर्म भी भाव-दूषित होनेके कारण निम्न श्रेणीका बन जाता है। एक मनुष्य यज्ञ, दान, तप, देवताओंकी उपासना आदिका अनुष्ठान यदि अपने शत्रुको मारने या दु:ख पहुँचानेके उद्देश्यसे करता है तो उसके वे यज्ञ, दान, तप, उपासना आदि अनुष्ठान यद्यपि शास्त्र-विहित होनेसे स्वरूपतः सात्त्विक हैं, फिर भी दूसरेका अनिष्ट करनेका दुर्भाव होनेके कारण तामसी हो जाते हैं और **'अधो गच्छन्ति तामसाः'** (गीता १४। १८)—इस न्यायके अनुसार उनके करनेवाले मनुष्य अधोगतिको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार बर्तन माँजना, झाड़ू देना आदि सेवारूप कर्म निम्न श्रेणीके होनेपर भी निष्कामभावसे किये जानेपर करनेवालेका भाव उत्तम होनेके कारण सात्त्विक हो जाते हैं और **'ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था'** (गीता १४। १८)—इस न्यायके अनुसार वैसे कर्म करनेवाले मनुष्य उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं। अतः समझना चाहिये कि क्रियाकी अपेक्षा भाव प्रधान है।

यज्ञ-दान-तपरूप क्रियाकी अपेक्षा भी भगवान्के नामका जप और उनके स्वरूपका ध्यानरूप क्रिया उत्तम है, किंतु यह क्रिया सात्त्विक होनेपर भी सकाम भावसे की जाय तो राजसी बन जाती है। इसी प्रकार यज्ञ-दान-तपरूप क्रिया जप-ध्यानकी अपेक्षा निम्न श्रेणीकी होनेपर भी यदि फल और आसक्तिका त्याग करके निष्कामभावसे की जाय तो परमशान्तिरूप परमात्माकी प्राप्ति करा सकती है। इसलिये जप-ध्यानसे भी वह श्रेष्ठ मानी गयी है। गीता (१२। १२)-में भी कहा गया है—

ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥

'ध्यानसे भी सब कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है; क्योंकि त्यागसे तत्काल ही परमशान्ति होती है।'

अब यह बतलाया जाता है कि उत्तम क्रियाएँ और भाव कौन-कौन-से हैं? नमस्कार करना, स्नान करना, धर्मके लिये कष्ट सहना आदि शरीरकी क्रियाएँ हैं, तीर्थयात्रा करना पैरोंकी क्रिया है, यज्ञ और दान देना हाथकी क्रियाएँ हैं। गीता, भागवत, रामायण आदि सद्ग्रन्थोंका पठन-पाठन करना वाणीकी क्रिया है। देवताओं और महात्माओंका दर्शन करना नेत्रोंकी क्रिया है। भगवान्के गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्यको सुनना कानोंकी क्रिया है, इसी प्रकार भगवान्के नाम, चरित्र और गुणोंका मनन एवं चिन्तन करना तथा भगवान्के स्वरूपका ध्यान करना मनकी क्रियाएँ हैं एवं किसी आध्यात्मिक विषयका निश्चय करना बुद्धिकी क्रिया है। ये सभी उत्तम क्रियाएँ हैं। इन सब उत्तम-से-उत्तम क्रियाओंकी अपेक्षा भी हृदयका उच्च भाव सर्वोत्तम है।

श्रद्धा, प्रेम, दया, क्षमा, शान्ति, समता, सन्तोष, सरलता, ज्ञान, वैराग्य, निर्भयता, आन्तरिक पवित्रता, निष्कामता आदि—ये सब हृदयके उत्तम भाव हैं। ये सभी आत्माका उद्धार करनेवाले हैं। जिस क्रियाके साथ इनका संयोग हो जाता है, वह क्रिया भी उत्तम-से-उत्तम बन जाती है। मनुष्यको चाहिये कि उपर्युक्त भावोंको ईश्वरकी कृपाके प्रभावसे अपने हृदयमें उत्तरोत्तर बढ़ते हुए देखता रहे। इस प्रकार देखनेवालेकी उत्तरोत्तर उन्नति होती चली जाती है। हृदयके भाव उत्तम होनेपर मनुष्यके आचरण स्वतः ही उत्तम होने लगते हैं। उसे अपने आचरण सुधारनेके लिये कोई अलग प्रयत्न नहीं करना पड़ता। उसके दुर्गुण-दुराचारोंका अपने-आप ही अभाव हो जाता है; क्योंकि जहाँ प्रेम होता है, वहाँ द्वेष सम्भव नहीं; जहाँ दया है, वहाँ हिंसाके लिये स्थान नहीं; जहाँ क्षमा है, वहाँ क्रोध रह ही नहीं सकता; जहाँ समता है, वहाँ विषमता कहाँ और जहाँ शान्ति है, वहाँ विक्षेप असम्भव है। इसी प्रकार अन्य सभी भावोंके विषयमें समझ लेना चाहिये।

जब हम किसीके साथ व्यवहार करें, उस समय हमें उसके साथ प्रेम, विनय, निरभिमानिता, उदारता और निष्काम भाव आदिसे युक्त होकर व्यवहार करना चाहिये। इस प्रकार करनेपर क्रिया स्वाभाविक ही उत्तम-से-उत्तम होने लगती है।

प्रथम हमें गीताके सोलहवें अध्यायके पहलेसे तीसरे श्लोकतक बतलाये हुए दैवी सम्पदाके लक्षणोंको अपने हृदयमें देखते रहना चाहिये। ऐसा करनेपर ईश्वरकी कृपासे हम दैवी सम्पदासे सम्पन्न हो सकते हैं। फिर हमें गीताके बारहवें अध्यायके १३वेंसे १९वें श्लोकतक जो भगवत्प्राप्त भक्तोंके लक्षण बतलाये गये हैं, उनको अपनाना चाहिये। वे लक्षण उन भक्तोंमें तो स्वाभाविक होते हैं और साधकके लिये वे अनुकरणीय हैं। अतः उन भक्तोंके भावोंसे भावित होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें उनको अपने हृदयमें देखते रहना चाहिये। ऐसा करनेपर ईश्वरकी कृपासे हम वैसे ही बन सकते हैं। जो मनुष्य उन भक्तोंके भावोंको लक्ष्य बनाकर उनका अनुकरण करता है, वह भगवान्‌का अतिशय प्यारा है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥

(१२।२०)

जो श्रद्धायुक्त पुरुष मेरे परायण होकर इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृतको निष्काम-प्रेमभावसे सेवन करते हैं, वे भक्त तो मुझको अतिशय प्रिय हैं।

भावका बड़ा भारी महत्त्व है। एक तो वास्तवमें भगवत्प्राप्त महापुरुष है और दूसरा एक उच्चकोटिका साधक सच्चा जिज्ञासु है। वह जिज्ञासु जब महात्माको पाकर उनको तत्त्वसे जान जाता है, तब वह भी उसी प्रकार तुरन्त महात्मा बन जाता है, जिस प्रकार वास्तविक पारसमणिके साथ स्पर्श होते ही लोहा तुरन्त सोना बन जाता है। यदि वह सोना न बने तो समझ लेना चाहिये कि या तो वह पारस पारस नहीं है, कोई पत्थर है, या वह लोहा लोहा नहीं है, लोहेका मैल है, अथवा उन दोनोंके बीच काष्ठ, वस्त्र आदि किसी तीसरे पदार्थका व्यवधान है। इसी प्रकार यदि महात्माका संग करके जिज्ञासु महात्मा नहीं बन जाता तो समझना चाहिये कि या तो वह महात्मा सच्चा महात्मा नहीं है या वह जिज्ञासु सच्चा श्रद्धालु नहीं है, अथवा जिज्ञासुमें कोई संशय, भ्रम आदिका व्यवधान है।

यह पारसकी तुलना भी महापुरुषके लिये उपयुक्त उदाहरण नहीं है; क्योंकि महापुरुष तो पारससे भी बढ़कर है। किसी कविने कहा है—

पारस में अरु संत में, बहुत अंतरो जान।
वह लोहा कंचन करै, वह करै आप समान॥

अभिप्राय यह कि पारस लोहेको सोना बना सकता है, पर उसे पारस नहीं बना सकता, किंतु महात्मा तो जिज्ञासुको अपने समान महात्मा बना सकता है।

प्रथम तो ज्ञानी महात्माओंका मिलना ही दुर्लभ है और यदि वैसे महात्मा मिल जायँ तो उनको तत्त्वसे पहचानना कठिन है। तत्त्वसे जाननेके बाद तो उनमें श्रद्धा होकर तुरन्त ही परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। बिना पहचाने तो भगवान्‌के दर्शनसे भी कल्याण नहीं हो सकता। उदाहरणके लिये दुर्योधन भगवान् श्रीकृष्णको यथार्थरूपसे नहीं जानता था, वरं अश्रद्धाके कारण उसका उनमें उलटा दुर्भाव था, अतः वह उनका दर्शन करके भी उनसे मिलनेवाले यथार्थ लाभसे वंचित रहा। इधर अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णको यथार्थरूपसे जानते थे, इसलिये वे भगवान्‌के परम धाममें चले गये। भगवान्‌के प्रति जिसका जैसा भाव होता है, उसीके अनुसार उसे लाभ होता है। दुर्योधन भगवान्‌की एक अक्षौहिणी सेना लेकर ही सन्तुष्ट हो गया, किंतु अर्जुनने तो भगवान्‌का ही वरण किया। इसमें भाव ही प्रधान है। भगवान् श्रीकृष्ण जिस समय कंसके धनुषयज्ञमें गये, उस समय वहाँ जिनकी जैसी भावना थी, उसीके अनुसार उनको वे दीख पड़े।

'जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ रंगभूमिमें पधारे, उस समय वे पहलवानोंको वज्रके समान कठोर शरीर, साधारण मनुष्योंको नररत्न, स्त्रियोंको मूर्तिमान् कामदेव, गोपोंको स्वजन, दुष्ट राजाओंको दण्ड देनेवाले शासक, माता-पिताको शिशु, कंसको मृत्यु, अज्ञानियोंको विराट् (बड़े भयंकर), योगियोंको परम तत्त्व और भक्तशिरोमणि वृष्णिवंशियोंको साक्षात् अपने इष्टदेव जान पड़े।' (भागवत १०।४३।१७)

श्रीतुलसीकृत रामायणके बालकाण्डमें भी धनुषयज्ञके समय भगवान् श्रीरामके सम्बन्धमें यही बात कही गयी है—

जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

(रा०च०मा० १।२४१।४)

'जिनकी जैसी भावना थी, प्रभुकी मूर्ति उन्होंने वैसी ही देखी।' भगवान्‌को जो पुरुष जिस भावसे देखता है, भगवान् उसके लिये वैसे ही हैं। गीतामें भी कहा गया है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

(४।११)

'हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ।'

भगवान् तो दर्पणकी भाँति हैं। मनुष्य जिस रूप और आकृतिको लेकर दर्पणके सम्मुख होता है, वैसा ही उसमें दीखता है। इसी प्रकार जिसके मनका जैसा भाव होता है, वैसा ही भगवान्‌में प्रदर्शित होता है। सूर्यभगवान् सब जगह समान हैं, अर्थात् सबको समान भावसे प्रकाश देते हैं, किंतु दर्पणमें उनका प्रतिबिम्ब पड़ता है, काठमें नहीं और सूर्यमुखी शीशा तो उनकी रोशनीको लेकर कपड़े, रूई आदिको जला देता है, किंतु साधारण शीशा नहीं जला सकता। इसमें उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यमुखी शीशेकी ही विशेषता है, सूर्यका प्रभाव तो सब जगह समान ही है। इसी प्रकार भगवान् तो सब जगह समान ही हैं, किंतु मनुष्य अपनी श्रद्धा और भक्तिसे उनसे अधिक-से-अधिक चाहे जितना लाभ उठा सकता है।

भगवान्ने कहा है—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(गीता ९। २९)

'मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मुझे अप्रिय है और न प्रिय है, परंतु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।'

इसमें भक्तके भावकी प्रधानता है। भगवान् सभी जगह विराजमान हैं, किंतु बिना श्रद्धाके उनसे कोई कुछ भी लाभ नहीं उठा सकता। जिसमें भगवद्विषयक आस्तिकबुद्धि नहीं है, वह नास्तिकताके कारण परम शान्ति और परम आनन्दस्वरूप परमात्माकी प्राप्तिसे वंचित रहता है। गीतामें कहा गया है—

'न जीते हुए मन और इन्द्रियोंवाले पुरुषमें निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती और न उस अयुक्त मनुष्यके अन्तःकरणमें भावना ही होती है तथा भावनाहीन मनुष्यको शान्ति नहीं मिलती और शान्तिरहित मनुष्यको सुख तो मिल ही कैसे सकता है।' (गीता २। ६६)

श्रीहनुमान्जीका भगवान् श्रीरामके प्रति बहुत उच्चकोटिका भाव था*, इस कारण भगवान्ने उनके लिये कहा है—

समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ॥

(रा०च०मा० ४। ३। ८)

'सब कोई मुझे समदर्शी कहते हैं, पर मुझको सेवक प्रिय हैं; क्योंकि वह अनन्यगति होता है।'

इसमें भाव ही प्रधान है। अतः अपना भाव उत्तम-से-उत्तम बनाना चाहिये। सबको उत्तम भावसे देखनेपर देखनेवालेको भी लाभ है और जिसको देखा जाता है, उसे भी लाभ है। इसी प्रकार दूसरेको दुर्भावसे देखनेपर देखनेवालेकी भी हानि है और जिसे देखा जाता है, उसकी भी हानि है। यदि हम अपने लड़के, छात्र या नौकरके लिये यह कहते हैं कि वह नीच है, दुष्ट है और इस प्रकार समय-समयपर उनके दुर्गुण-दुराचारोंकी चर्चा करते रहते हैं तो इससे उन छात्र, बालक तथा नौकरपर बुरा प्रभाव पड़ता है और वे हमसे विमुख या उपरत हो जाते हैं एवं वे उस भावसे भावित होकर निम्न श्रेणीके बन जाते हैं। अतः इस तरह कहने और सुननेवाले दोनोंकी ही सिवा हानिके कोई लाभ नहीं है। ऐसे व्यवहारसे दोनोंका ही पतन है। अतः ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये। जिसके साथ उत्तम व्यवहार किया जाता है, वह भी सुधर सकता है। एक व्यक्ति विश्वास करनेयोग्य नहीं है और उसका हम विश्वास करते हैं तो दिन पाकर वह विश्वासपात्र बन सकता है; क्योंकि वह समझता है कि ये मुझपर विश्वास करते हैं तो मुझे इनके विश्वासके अनुसार ही रहना चाहिये। इस प्रकार हमारे उच्च भावसे उसका और हमारा—दोनोंका उत्थान होना सम्भव है। अतः हमें सबको उच्च भावसे ही देखना चाहिये।

अपने स्त्री-पुत्र, भाई-बन्धु, मित्र आदिमें कोई अवगुण हो तो उसे दूर करनेके लिये उसकी चर्चा नहीं करनी चाहिये और उसमें गुण बढ़ानेकी चेष्टा करनी चाहिये। इस प्रकार करनेसे उसके साथ अपना प्रेम बढ़ता है और उसका सुधार भी होता है। भगवान् श्रीरामने सुग्रीवको प्रेमका तत्त्व समझाते समय प्रेमीके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, यह बतलाते हुए कहा है—

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥

मनुष्यका कर्तव्य है कि अपने प्रेमी मित्रको बुरे मार्गसे रोककर अच्छे मार्गपर चलाये, उसके गुण प्रकट करे और अवगुणोंको छिपाये। भगवान् श्रीराम जिस प्रकार अपने भक्तोंके अवगुणोंकी ओर नहीं देखते थे, उसी प्रकार हमें भी अपने आश्रित स्त्री, पुत्र, नौकर आदिके अवगुणोंको न देखकर उनके साथ दयापूर्वक कोमलता और प्रेमका व्यवहार करना चाहिये। इस विषयमें भगवान् श्रीरामका भाव हमारे लिये अनुकरणीय है। भगवान् श्रीरामके स्वभावके विषयमें श्रीभरतजी महाराज कहते हैं—

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥

'प्रभु सेवकका अवगुण कभी नहीं मानते। वे दीनबन्धु हैं और अत्यन्त ही कोमल स्वभावके हैं।'

अतः हमें सबके साथ दया, प्रेम, विनय, कोमलता, त्याग और उदारतापूर्वक व्यवहार करना चाहिये।

सर्वोत्तम भाव तो यह है कि सब कुछ परमात्माका

* श्रीहनुमान्जी भगवान् रामसे कहते हैं—की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ॥
जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार। की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार॥ (रा०च०मा० ४। १। ८, ४। ११)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप है। जैसे स्वप्नमें मनुष्य जिस संसारको देखता है, वह उसके मनका संकल्प होनेके कारण उससे अभिन्न है, उसी प्रकार यह सारा संसार भगवान्‌का संकल्प होनेके कारण उनसे अभिन्न है, अर्थात् भगवान्‌का स्वरूप ही है, इस भावसे देखनेवाला मनुष्य उच्च कोटिका माना जाता है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—'बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही हैं'—इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है (७।१९)। यह सर्वोत्तम भाव है। ऐसा न हो तो दूसरा उत्तम भाव यह है कि सबमें भगवान् व्यापक हैं। भगवान् कहते हैं—

'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।'

(गीता ९।४)

'मुझ निराकार परमात्मासे यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है।' **यो मां पश्यति सर्वत्र** (गीता ६।३०) 'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है।' तथा श्रुति भी कहती है—

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।'

(शुक्लयजुर्वेद ४०।१)

'अखिल ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी है, वह समस्त ईश्वरसे व्याप्त है।' उपर्युक्त उद्धरणोंसे यह समझना चाहिये कि जैसे बादलोंमें आकाश व्यापक है, वैसे ही भगवान् सबमें व्यापक हैं, अतः सबकी सेवा ही भगवान्‌की सेवा है और सबका आदर करना ही भगवान्‌का आदर करना है। यह भाव भी बहुत उत्तम है।

यदि ऐसा भाव भी न हो तो सब भगवान्‌के भक्त हैं या सब भगवान्‌की प्रजा हैं, अतः सभी हमारे भाई हैं—इस प्रकार देखना चाहिये; क्योंकि सब ईश्वरके अंश होनेसे ईश्वरकी प्रजा हैं। श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

(रा०च०मा० ७।११७।२)

अभिप्राय यह है कि परमात्मा नित्य, शुद्ध, ज्ञान और आनन्दस्वरूप है एवं उसका अंश होनेसे आत्मा भी नित्य, शुद्ध, ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। अतएव सब प्राणी ईश्वरके अंश होनेके नाते हमारे भाई हैं।

जैसे अपने भाईको हैजे या प्लेगकी बीमारी हो जाती है तो हम उसके उस संक्रामक रोगसे अपनी रक्षा करते हुए उसके हितके लिये वैद्य-डॉक्टरोंको बुलाकर या उसीको वैद्य-डॉक्टरोंके पास ले जाकर प्रेमपूर्वक उसका इलाज करवाते हैं। उसी प्रकार हमें सबके साथ व्यवहार करना चाहिये; क्योंकि संसारमें जितने भी प्राणी हैं, सभी हमारे भाई हैं और उनमें मनुष्य प्रधानतासे हमारे भाई हैं। इसलिये सबका जिस प्रकार परम हित हो, वैसे ही हमें करना चाहिये। यहाँ अध्यात्मविषयमें यों समझना चाहिये—दुर्गुण-दुराचारोंका जो समूह है, वही बीमारी है। ज्ञानी, भक्त—महात्मा ही वैद्य हैं। उनके पास लोगोंको ले जाना या उनको लाकर उनसे मिला देना ही रोगीकी वैद्य-डॉक्टरोंसे भेंट कराना है। उनके दुर्गुण-दुराचार और दुर्व्यसनोंसे अपनेको बचाना ही संक्रामक रोगसे अपनी रक्षा करना है। अतएव हमें हर प्रकारसे निष्काम-भावपूर्वक सबका परम हित करना चाहिये।

ऐसा भी न हो तो चौथी बात यह है कि संसारमें गुण और दोष भरे हुए हैं, किंतु अपनेको तो गुणग्राही होना चाहिये, किसीके दोषकी ओर दृष्टि नहीं डालनी चाहिये। अवधूतशिरोमणि श्रीदत्तात्रेयजीने जड-चेतनात्मक चौबीस पदार्थोंसे शिक्षा ग्रहण की और उनके गुणोंको धारण किया, इसी प्रकार हमें भी सबके गुण ही ग्रहण करने चाहिये। इस प्रसंगको श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके ७वें, ८वें और ९वें अध्यायोंमें विस्तारसे देखना चाहिये।

भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणसे संत और असंतके लक्षण बतलाकर अन्तमें यही कहा है—

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक॥

(रा०च०मा० ७।४१)

इसका भाव यह है कि संसारमें मायासे रचित गुण और दोष भरे हुए हैं। हमारे लिये सबसे बढ़कर गुण (भाव) यह है कि किसीके अवगुण और गुण दोनोंको ही न देखें; क्योंकि गुण-दोषोंको देखना ही मूर्खता है। पर यदि देखे बिना न रहा जाय तो गुणोंको ही देखना चाहिये, अवगुणोंको नहीं; क्योंकि दूसरोंके अवगुणोंको देखने, सुनने-कहने और माननेमें महान् हानि है। नेत्रोंसे देखने, कानोंसे सुनने, वाणीसे कहने और मनसे माननेपर हृदयमें वैसे ही संस्कारोंका संग्रह होता है और वह मनुष्य फिर वैसा ही बन जाता है। इसके सिवा दूसरोंके अवगुणोंको कहने-सुननेसे एक तो हम उसके दोषोंके हिस्सेदार बन जाते हैं और दूसरे उसकी आत्माको दुःख पहुँचता है, इसलिये भी हम पापके भागी होते हैं। अतएव किसीके दुर्गुण-दुराचारोंको न तो कहे, न सुने, न देखे और न हृदयमें ही स्थान दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवात्मा और परमात्माका मिलन

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

जीवात्मा और परमात्माके मिलनका अनेक भावोंसे शास्त्रोंमें वर्णन किया गया है। यद्यपि शुद्ध प्रत्यक्चैतन्याभिन्न परमात्मा नित्यप्राप्त वस्तु है तथापि जब प्राप्तिका वर्णन किया जाता है, तब कहीं तो **'अत्र ब्रह्म समश्नुते'** ब्रह्मविद्का यहाँ ही ब्रह्म-सम्भोग करना कहा जाता है और कहीं **'सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तसुखमश्नुते'** बाह्य संस्पर्शसे अत्यन्त विरक्त ज्ञानीका ब्रह्मसंस्पर्शजन्य लोकोत्तर सुखका भोग करना कहा जाता है। निर्विशेष चित्सुखस्वरूप ब्रह्मके संस्पर्शकी कल्पना अद्भुत है।

कहीं श्रुतियोंने इसे अन्य दृष्टान्तसे स्पष्ट किया है— **'तद् यथा प्रियया स्त्रिया सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरम्।'** (बृहदारण्यकोपनिषद् ४।३।२१) जैसे कान्त अपनी प्रियतमा भार्यासे परिरम्भण करके प्रेमानन्दके उद्रेकमें बाह्याभ्यन्तर प्रपंचको भूल जाता है, भेदमें व्यवधानकी आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं होती। अतः भेदयुक्त सम्मिलनसे रसिकोंको सन्तोष नहीं होता। पुत्र, देह, मन, अन्तरात्मासे जितनी अन्तरंगता, व्यवधानशून्यता उपलब्ध होती है, उतनी अधिक प्रीति व्यक्त होती है।

सर्वान्तर सर्वापेक्षया सन्निहित अन्तरात्मासे ही प्राणियोंको निरतिशय एवं निरुपाधिक परमात्मापर प्रेम होता है, अतः भगवान्के साथ घनिष्ठ प्रेम तभी होता है, जब उनकी नितान्त अन्तरंगता व्यक्त हो। अतः अभेदबोध आवश्यक होता है, फिर भी अत्यन्त अभेदमें ब्रह्मसे स्पर्श या प्राज्ञात्माका परिष्वंग नहीं बनता, अतः काल्पनिक भेद और पारमार्थिक अभेद स्वीकार किया जाता है। घटाकाशका यथा महाकाशके साथ सम्मिलन है, तथैव जीवात्माका परमात्माके साथ सम्मिलन होता है, परंतु इससे भी सरस सुन्दर दृष्टान्त है, तरंग-जलका।

जैसे वीचीके भीतर, बाहर, मध्य या सर्वांगमें जल भरपूर रहता है, इसी तरह जीवात्मामें ब्रह्मात्माका सम्मिलन है। वीची और वारिके निर्जीव दृष्टान्तको सजीवरूपमें लाते हुए उसीको नायिका और नायकका रूपक दे दिया गया। सजीव दृष्टान्तोंमें नायिका-नायकसे बढ़कर कोई भी ऐसा दृष्टान्त नहीं है, जहाँ घनिष्ठ व्यवधानरहित सम्मिलन बनता हो, अतएव अन्तरंग पति-पत्नीका वही सम्बन्ध माना गया है, जो वारि-वीचिका है।

उक्त प्रकारसे यद्यपि भगवान् परमानन्दघन ही सब कुछ हैं और वे ही सर्वान्तरात्मा और सर्वद्रष्टा एवं सर्वविज्ञाता हैं, फिर विज्ञाताको किससे जानें—**'विज्ञातारमरे केन विजानीयात्'** तथापि निरुपाधिक निर्दृश्यरूपसे सदानन्दघन भगवान्का साक्षात्कार बिना उनकी कृपाके नहीं होता, तभी भगवती श्रुतिने भगवान्को जाननेके लिये श्रद्धा, भक्ति और ध्यान-योगको प्रधान कारण कहा है— **'श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवेहि'**। श्रीब्रह्माजीने भी यही कहा था कि 'हे नाथ! यद्यपि आपका सर्वावभासक दिव्यस्वरूप अत्यन्त स्पष्ट है तथापि आपके श्रीचरणकमलके प्रसादसे अनुगृहीत प्राणी ही इसे जान सकता है, अन्यथा नाना प्रकारकी युक्तियोंसे सदा विवेचन करनेपर भी यह दुर्लभ ही है।'

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय-
प्रसादलेशानुगृहीत एव हि।
जानाति तत्त्वं भगवन् महिम्नो
न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्॥

(श्रीमद्भा० १०।१४।२९)

यद्यपि पूर्ण विरक्त एवं शान्त समाहित महापुरुष वेदान्तोंके श्रवण-मनन-निदिध्यासनसे परम तत्त्वका साक्षात्कार कर सकते हैं, तथापि शीघ्रातिशीघ्र तत्त्व-साक्षात्कारके लिये किसी विशेष स्वरूपकी उपासना अत्यन्त आवश्यक है, कारण कि प्राणियोंके चित्तमें नाना प्रकारके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध एवं अन्धकार, प्रकाश आदि दृश्योंका स्फुरण ही बना रहता है, निद्रा या विक्षेपसे शून्य अवस्था दुर्लभ है। दृश्यके स्फुरणनिरोध बिना, दृश्यातीत निर्दृश्य विशुद्ध तत्त्वका स्फुरण अत्यन्त असम्भव है। जगत् यद्यपि दुःखमय है तथापि मोहवश जगत्के चिन्तनमें मिठास प्रतीत होती है और प्रपंचातीत भगवान् परमानन्दमय एवं सर्वानर्थनिवर्तक हैं तथापि उनमें जीवका आकर्षण नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता। जैसे ज्वराक्रान्त व्यक्तिको तिग्म आतपमें स्वाद किंवा सर्पदंशनके विषसे प्रभावित प्राणीको कडुवी नीममें मिठास प्रतीत होती है, वैसे ही मायामोहित प्राणियोंको विषम विषमय विषयोंमें ही स्वाद आता है। जैसे पित्तदोषसे दूषित रसनावाले प्राणीको मधुर मिश्रीमें तिक्तताका अनुभव होता है, वैसे ही अनादि दुर्वासनाओंसे दूषितान्तःकरण प्राणियोंको भगवान्‌में रूक्षता भासित होती है। तभी तो मन्त्रद्रष्टा ऋषि भगवान्‌से इस बातकी भी प्रार्थना करते हैं कि हे देव! आप मेरा निराकरण न करें और आप ही मुझपर ऐसी कृपा करें कि आपका निराकरण (उपेक्षा या विस्मरण) न करूँ, क्योंकि मैं आपको न भूलूँ, यह मेरे वशकी बात नहीं है।

'माहं ब्रह्म निराकुर्याम् मा मां ब्रह्म निराकरोत्॥'

नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा॥

(रा०च०मा० ४।३।२)

इससे यह स्पष्ट है कि प्रभुकृपासे ही प्राणियोंकी प्रवृत्ति प्रभुकी ओर होती है। तभी महानुभावोंने कहा है—

सोऽहं तवाङ्घ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं
तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये।
पुंसो भवेद् यर्हि संसरणापवर्ग-
स्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात्॥

(श्रीमद्भा० १०।४०।२८)

हे कृपामय! असतोंको दुष्प्राप आपके श्रीचरण-पंकजकी शरण मैं आया हूँ, यह आपका ही अनुग्रह है; क्योंकि जब संसारकी निवृत्ति होनेको होती है, तभी हे अब्जनाभ! प्राणियोंकी सदुपासनाके द्वारा आपमें प्रीति होती है। ठीक ही है, प्रभुकी अनुकम्पा बिना प्रभुमें प्रीति नहीं, परंतु प्रभुमें प्रीति बिना भास्वती भगवती अनुकम्पा देवीका प्राकट्य भी कैसे हो। वास्तवमें बीज और अंकुरकी तरह श्रीअनुकम्पा और भगवती भक्तिमें इतरेतर निमित्तनैमित्तिकभाव ही युक्त है, अतएव श्रीजगद्धरभट्टने स्तुतिकुसुमांजलि (९।३३)-में कहा है—

नानुग्रहस्तव विना त्वयि भक्तियोगं
नानुग्रहं तव विना त्वयि भक्तियोगः।
बीजप्ररोहवदसावनयोर्न कस्य
भूत्यै परस्परनिमित्तनिमित्तिभावः॥

परम कृपामय भगवान् यह देखकर कि मायामोहित जीवोंकी प्रवृत्ति शब्दादि प्रपंचकी ओर ही अधिक प्रवृत्त होती है और बिना मेरा समाश्रयण किये, अनर्थ-निवृत्ति कथमपि सम्भव नहीं है, जैसे कोई परम कारुणिक चिकित्सक किसी अदीर्घदर्शी अबोध शिशुका कुपथ्यमें अभिनिवेश और महौषध एवं पथ्यमें विद्वेष देखकर महौषधिको ही परम मनोहर तदभिलषित रूपमें प्रकट करके प्रदान करता है, ठीक वैसे ही भगवान् अपने उसी वेदान्तवेद्य अखण्ड अनन्त परमानन्दघन निराकार निर्विकार लोचनातीत स्वरूपको अपनी अचिन्त्य दिव्य लीलाशक्तिके दिव्य प्रभावसे ऐसे सर्वमनोहर सुमधुर स्वरूपमें प्रकट करते हैं कि जिसके दर्शन-स्मरण-श्रवणसे ऐसा कौन सचेतन है, जो मोहित न हो जाय।

कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी॥
श्रवनवंत अस को जग माहीं। जाहि न रघुपति चरित सोहाहीं॥

(रा०च०मा० १।२२१।१; ७।५३।५)

अक्षरनिष्ठ अमलात्मा परमहंस महामुनीन्द्र ब्रह्ममहेन्द्रप्रभृति देवाधिदेवसे लेकर खग, मृग, वन, गिरि, सरित, सरोवर, वृक्ष-लताओंमें भी उस मधुर मनोरम मंगलमय स्वरूपदर्शन-स्पर्शसे आनन्दोद्रेकमें पुलकावली और आनन्दाश्रुओंका संचार होता है।

तभी व्रजांगनाओंने कहा है—

का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन
सम्मोहितार्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम्।
त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं
यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन्॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।४०)

हे जीवनधन! वृन्दावनचन्द्र मनमोहन! आपके अमृतमय मुखचन्द्रसे निःसृत कलपदायत गीत-मूर्च्छनासे कौन स्त्री आर्यचरितसे चलायमान नहीं हो सकी, त्रैलोक्यसौभग जिस मंगलमय वपुका निरीक्षण करके गौ, द्विज, मृगद्रुमोंमें भी पुलकावलीका संचार होता है, जहाँ प्राणियोंका मन प्राकृत शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धकी ओर आकर्षित होता था, वहाँ अपनी दिव्यलीला शक्तिसे अशब्द, अस्पर्श, अरूप, वेदान्तवेद्य सदानन्दघन भगवान् ही निखिलरसामृतमूर्ति धारणकर अपने दिव्य ब्रह्मरसात्मक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धोंसे हठात् प्राणियोंके मनको आकर्षित करते हैं। जो भगवान् भक्तोंके सर्वस्व एवं ज्ञानियोंके एकमात्र परमतत्त्व हैं, वे ही नास्तिक-से-नास्तिकके भी सब कुछ हैं, भेद इतना ही है कि वे अपने सर्वस्वमें निरतिशय प्रेम करते हुए भी उन्हें पहचानते नहीं। यद्यपि यह बात असम्भव-सी प्रतीत होती है, परंतु विवेचन करनेमें अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है। चाहे कैसा भी नास्तिक क्यों न हो, वह अपने अभाव (या मरने)-से घबड़ाता है। वह यही चाहता है कि मैं सदा रहूँ।

जब किसी साधारण-से-साधारणकी आत्मरक्षा और अस्तित्वके लिये व्यग्रता होती है, तब एक मनुष्य, चाहे नास्तिक ही क्यों न हो, क्या अपना अस्तित्व नहीं चाहता? क्या वह अपने अस्तित्वको मिटाना पसन्द करेगा? यदि नहीं तो फिर ब्रह्म अस्तित्वका पूर्णानुरागी हुआ या नहीं? अब यह बात दूसरी है कि वह अपने-आप कौन है, जिसका अस्तित्व चाहता है। यदि सौभाग्यवश कभी इस ओर दृष्टि जायगी, बस तभी वह समझ लेगा कि विनश्वर देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार—ये सभी दृश्य हमारे हैं। हम इनसे पृथक् इनके द्रष्टा हैं और उसी निर्विकार स्वरूप स्वात्माका ही सदा अस्तित्व चाहते हैं। विवेचन करनेसे यह विदित हो जाता है, स्वप्रकाश दृक्का अस्तित्व तत् स्वरूप ही है, अतएव आत्मा स्वप्रकाश कहा जाता है। इसलिये जगत्को अनेकानेक वस्तुओंमें चाहे जितना भी संदेह, विपर्यय या अज्ञान हो, परंतु स्वात्मा है या नहीं या नहीं ही है, इस प्रकार आत्मविषयक संदेहादि किसीको नहीं है।

जीव, जगत्, परमेश्वर, धर्म, कर्म सभीका अभाव साबित करनेवाले शून्यवादीको भी अनिच्छया स्वात्माका अस्तित्व मानना पड़ेगा; क्योंकि जो सबके अभावका सिद्ध करनेवाला है, अगर वह रह गया, तब तो स्वातिरिक्त ही सबका अभाव सिद्ध होगा। अपना अभाव नहीं हो सकता, सर्व निराकर्ता सर्व निषेधकी अवधि एवं साक्षिभूतके अस्वीकार करनेपर शून्य भी अप्रामाणिक होगा। अतः वही अत्यन्त अबाधित, सर्व-बाधका अधिष्ठान एवं साक्षिभूत, अस्तित्व या सत्ता भगवान्का रूप है, साथ ही बोध और प्रकाशके लिये प्राणीमात्रमें उत्सुकता दिखायी देती है, पशु-पक्षी भी स्पर्शसे, आघ्राणसे, किसी-न-किसी तरहसे ज्ञानके प्रेमी हैं। यह ज्ञानकी वांछा प्राणीमें उत्तरोत्तर बढ़ती दिखायी देती है कि हमें अब अमुक तत्त्वका ज्ञान हो, अब अमुकका ज्ञान हो।

इतिहास, भूगोल, खगोल, भूततत्त्व एवं अधिभूत, अध्यात्म, अधिदैव सभी तत्त्वोंको जाननेके लिये मन चाहता है, किं बहुना, सर्वज्ञता बिना ज्ञानसे सन्तोष नहीं होता। पूरी-पूरी सर्वज्ञता कहाँ हो सकती है, यह विवेचन करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि सर्व (पदार्थ) जिस स्वप्रकाश अखण्ड विशुद्ध भान (बोध)-में कल्पित है, वही सर्वावभासक एवं सर्वज्ञ हो सकता है; क्योंकि प्रकाश या भान अत्यन्त असंग एवं निरवयव और अनन्त है, दृश्यके साथ सिवाय आध्यात्मिक सम्बन्धके और संयोग, समवाय आदि सम्बन्ध नहीं हो सकता, अतः यदि सर्वज्ञ होनेकी वांछा है तो सर्वावभासक सर्वाधिष्ठान विशुद्ध अखण्ड बोध होनेकी क्या वांछा है? यह अखण्ड बोध ही सच्चिदानन्द भगवान्का चिद्रूप है। जैसे पूर्वोक्त अखण्ड अनन्त स्वप्रकाश सत्ता या अस्तित्व ही अपना तथा सबका निजी रूप है, वैसे ही यह अबाध्य अखण्ड बोध भी सबका अन्तरात्मा है।

'जगत में रहना है दिन चार'

जगत में रहना है दिन चार।
चेत हेत कर हरि सों प्यारे, हरि सुमरन की बार॥
घरी पलक का नाहिं भरोसा, मौत बिछाया जार। इन्द्री भोग विषय बस हूये, फँसे सकल नर नार॥
कर ले भजन संत गुरु सेवा, सब करनी को सार। सुकृत सौदा सत्य यही है, जीत जनम मत हार॥
चला चली लग रही रैन दिन, मन में सोच विचार। चला गया कोइ चला जात, कोइ चलने को तैयार॥
स्वाँस स्वाँस में सुमिर श्याम को, दया धर्म उर धार। सरसमाधुरी नाम नाव चढ़, उतरो भव जल पार॥

(सन्त श्रीसरसमाधुरीजी महाराज)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाप होने कैसे बन्द हों ?

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गताङ्क ४ पृ०-सं० ६२३ से आगे]

साधक और विषयीमें बड़ा दृष्टिभेद है। विषयी व्यक्ति, जिसके सामने संसार है और संसारका लाभ-हानि है वह आदमी जिस कार्यमें, जिस वस्तुमें, जिस स्थितिमें हानि समझता है या लाभ समझता है, उससे दूसरे दृष्टिकोणवाला साधक उससे विपरीत समझता है। दोनों ईमानदार हैं, परंतु दोनोंकी दो तरहकी आँखें हैं। साधक अपने मूल स्वरूप—साधक-स्वरूप अर्थात् जिसकी वृत्ति भगवान्में निरन्तर लगी हुई हो, वह कभी भी उस प्रवाहको भगवान्की ओरसे मोड़कर दूसरी ओर नहीं ले जाना चाहेगा, उसमें रुकावट नहीं डालना चाहेगा; चाहे उसमें सांसारिक हानि-लाभ कुछ भी होता हो। यह बड़ा दृष्टिभेद है। इसी दृष्टिभेदको लेकर ही अपनी-अपनी आँखें होती हैं और अलग-अलग आँखोंसे आदमी देखता है।

जगत्के जो भी होनेवाले परिवर्तन हैं, इनको लोग अपनी दृष्टिसे देखते हैं। एक इसको भगवान्का लीलाभिनय मानता है और दूसरा इसको अलीक, असत्य, स्वप्नवत्, मृगजलवत् मानता है और तीसरा इसको परमसत्य हानि-लाभयुक्त मानता है। अलग-अलग दृष्टिके अनुसार उनकी अलग-अलग भावना होती है। अलग-अलग भावनाओंके अनुसार अलग-अलग रूपोंका दर्शन और अनुभव होता है, सिद्धकी बात तो बहुत उच्चकोटिकी है, उसे करनेके हम अधिकारी नहीं है। विषयी हम हैं ही, पर हमें साधक बनना चाहिये। इसलिये साधक-दृष्टि आनी चाहिये। साधक-दृष्टिके लिये थोड़ा-सा जगत्से मुँह मोड़ना पड़ेगा। जगत्की ओरसे दृष्टि हटाये बिना हम साधनाके मार्गपर नहीं आ सकते। चाहे हम चलें एक-दो कदम ही रोज, अधिक न चल सकें, न शक्ति हो, परंतु पथपर आरूढ़ हो जायँ, रास्तेपर आ जायँ। जिधरको जाना है उधर मुँह कर लें और चलना शुरू कर दें। उलटी बुद्धिमें क्या होता है कि चलता है उलटा और समझता है सीधा। जैसे चोरोंसे बचनेके लिये कोई व्यक्ति चोरोंके गिरोहकी शरण ले ले तो चोरोंसे छुटकारा थोड़े ही मिलेगा। इसी प्रकार सांसारिक बन्धनसे मुक्त होनेके लिये मनुष्य जहाँतक सांसारिक बुद्धि-कौशलका आश्रय लेगा, वहाँतक संसारके बन्धन सुदृढ़ होंगे। यह गाँठ और गहरी होगी, खुलेगी नहीं। इसको खोलनेमें प्रारम्भमें जरा दुःख होगा; क्योंकि इस बन्धनका अभ्यास हो गया है।

चीनमें एक कैदी तीस वर्षतक एक गीली अँधेरी कोठरीमें रहा। कोई नया राजा आया तो उसने सभी कैदियोंको छोड़ दिया। वह भी बाहर आया। वह जब प्रकाशमें आया तो उसे बड़ा बुरा लगा। उसने कहा कि मुझे वहीं ले चलो, यहाँ तो मैं मर जाऊँगा। उससे कहा गया कि तुम स्वतन्त्र हो गये। उसने कहा—मुझे स्वतन्त्रता नहीं चाहिये, मुझे तो वही कोठरी, वही अँधेरा, वही गीली जगह, वही चूहे-छिपकली जो हमारे साथी थे, वह सब चाहिये। इसी प्रकारसे विषयोंके साथ बहुत कालसे मनको लगाये हुए हम लोगोंको जब उन विषयोंको छोड़नेकी, उनसे मोह-त्यागकी बात आती है, तब परेशानीका अनुभव होता है। कई बार जब विषयोंके त्यागकी बात कही जाती है तो वह दूसरे रूपमें विषयोंके ग्रहणकी बात कही जाती है। वह चाहे बड़ाई-प्रशंसाके रूपमें मिल जाय—ये विषय ही हैं। विषयके परित्यागकी बात आनेपर यदि मनकी वृत्ति प्रसन्न हो तो प्रसन्नताकी एक कसौटी है। जैसे कोई सामान छीनकर हमें घरसे निकाल दे और हमें प्रसन्नता हो, तब हम समझें कि हम वास्तवमें इनसे छूटना चाहते हैं।

पहले-पहले जब हम अपनी विषयोंमें अभिनिविष्ट मतिको भगवान्की ओर लगाना चाहेंगे, तब वह मति-बुद्धि जरा घबरायेगी, लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिये। यह अमृतका कड़वा घूँट है। पीना तो अमृत है, पर पहले थोड़ा कड़वा लगता है। इस विषयमें भगवान्ने कहा है—

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्॥

(गीता १८। ३७)

जो आत्मबुद्धिके प्रसादसे सात्त्विक सुख प्राप्त होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, वह पहले जहर-सा प्रतीत होता है। जब कभी अपनी मनोभिलषित संसारकी वस्तु छूटना चाहती है या उससे हम अपनी वृत्ति हटाना चाहते हैं, तब वह बड़ा बुरा मालूम होता है, परंतु यदि वह अमृत है तो पहले भले ही जहर-सा मालूम पड़े, लेकिन वह आगे चलकर अमृतका काम करता है। विषय-प्रवण बुद्धि मीठी लगनेपर भी जहरका काम करती है और भगवान्में लगनेवाली बुद्धि पहले कड़वी मालूम होनेपर भी अमृतका काम करती है; क्योंकि यह अमृत ही है और वह जहर ही है। **'विषयान् विषवत् त्यज।'**—इस बातको समझकर जो व्यक्ति इसके लिये तैयार हो कि इन सांसारिक पदार्थोंको जहर मानेंगे और जहर मानकर इनका त्याग करेंगे तथा इस त्यागमें दुःख दिखनेपर भी सुख मानेंगे, जगत्से विपरीत बुद्धि करेंगे, तब वह साधककी श्रेणीमें आ सकता है और यदि वह जहरको साथ लेकर, जहरमें प्रेम रखकर, जहरको पीनेमें रुचि रखकर जहरसे बचना चाहेगा तो जहरसे कैसे बचेगा? भोग-बुद्धिसे, भोगकी कुशलतासे, भोगमय सांसारिक बुद्धि-कौशलसे यदि हम संसारके बन्धनसे मुक्त होना चाहेंगे तो वह सांसारिक बुद्धि-कौशल उस गाँठको और भी अधिक जकड़ देगा और गाँठ खुलेगी नहीं। गाँठ खोलनेके लिये तो सांसारिक बुद्धि-कौशलसे मूर्ख होना पड़ेगा। सांसारिक बुद्धि-कौशलमें वे बुद्धिमान् लोग श्रीकृष्ण हैं, जनक हैं उनकी बात नहीं है। हम तो अपनी बात करते हैं कि सांसारिक बुद्धि-कौशलसे संसारकी गाँठ कभी नहीं खुलेगी। संसारकी ओरसे दृष्टि हटाकर, संसारके हानि-लाभके विपरीत बुद्धि करके, भगवान्की कृपापर अपनेको सर्वथा, सर्वदा छोड़कर बिना किसी शर्तके, भगवान्की सेवामें जब लगेंगे, भजन करेंगे, तब यह गाँठ अपने-आप ढीली हो जायगी और जहाँ भगवान्के साथ गाँठ लगी कि यहाँकी गाँठ खुली। उनसे गठबन्धन हुआ कि यहाँका सारा बन्धन खत्म हो गया। यहाँका गठबन्धन रखते हुए उनसे गठबन्धन करना चाहेंगे तो कहेंगे कि तुम तो एक जगह ब्याहे हुए हो; हमारे पास क्यों आते हो? हमारे पास आना हो तो निश्चय करके आओ, फिर हम उस गाँठको तोड़ डालेंगे। उस गाँठको भी रखो और यहाँ भी गाँठ बाँधो तो यह चीज नहीं होगी—

जहाँ राम तहँ काम नहिं जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहुँक रहि सकै रबि रजनी इक ठाम॥

इसलिये अगर हमलोग साधककी श्रेणीमें आना चाहें तो जगत्के बन्धनसे मुक्त होनेकी यथार्थ इच्छा हमारे मनमें जागनी चाहिये। इसको बड़ा दुर्लभ कहा गया है। वेदान्तकी साधन-प्रक्रियामें जहाँ साधन-चतुष्टय बताया है, वहाँ मुमुक्षुपना सहज नहीं माना है। पहले विवेक हो फिर विवेकसे वैराग्यका उदय हो, षट्-सम्पत्तिकी प्राप्ति हो, तब मोक्षकी यथार्थ इच्छा जागती है। पहले तो साधक कहता ही है कि मोक्ष हो जाय—बन्धन छूट जाय, परंतु जब छोड़नेकी बात आती है तो डर जाता है कि अभी रहने दो। अभी कुछ दिन बाद छोड़ेंगे। वह छोड़ना चाहता नहीं है। मुमुक्षुपना आया नहीं है। मुमुक्षुत्व मामूली बात नहीं है, हम लोग कहते हैं मोक्षको मत मानो। अरे, मोक्षको तो नहीं माने हैं ही। मोक्ष-परित्याग तो किये ही हुए हैं। मोक्षका परित्याग नहीं किये होते तो बन्धनमें प्रेम कैसे करते? हम तो जगत्के मामूली बन्धनोंसे राग करते हैं साथ ही और भी कोई बन्धन आ जाय तो उसमें भी बँधना चाहते हैं। ममताके बन्धनमें बँधना ही चाहते हैं। एक मकान है तो दो हो जायँ, तीन हो जायँ। सम्पति और बढ़ जाय—यह ममताके बन्धनोंको और बढ़ाये रखना है। हम इसे तोड़ना कहाँ चाहते हैं, छोड़ना कहाँ चाहते हैं? हम तो रात-दिन ज्ञानकी बात करते हैं, भक्तिकी बात करते हैं, दम्भ करते हैं। असली चीज जो मनमें है, वह तो स्थिर है ही। हम गाँठ खोलना कहाँ चाहते हैं? ममताके बन्धनमें अधिकाधिक बँधना चाहते हैं। गाँठ खोलनेके लिये मुमुक्षुत्वकी तीव्र इच्छा जाग्रत् होनी चाहिये। वह जागती है कब? जब संसारसे वैराग्य हो। वैराग्य कब आता है? जब संसारका रूप हम ठीक-ठीक देखते हैं। यह नित्य है, वह अनित्य है। यह सत् है, वह असत् है। यह बुरा है, वह भला है। जब इन्हें यथार्थ देखते हैं। जब ठीक देखेंगे तो जो बेठीक चीज है, उससे वैराग्य होगा। जब वैराग्य होगा तो शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान—ये छः सम्पत्तियाँ प्राप्त होंगी।* जब यह षट्-सम्पत्ति प्राप्त

* शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षु समाहितो भूत्वा आत्मन्येव आत्मानं पश्येत्। (बृहदारण्यकोपनिषद् ४।४।२३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगी, तब मोक्षकी इच्छा होगी।

हम तो मोक्षका केवल नाम लेते हैं और चाहते हैं बन्धन। रहना चाहते हैं बन्धनमें और बढ़ाना चाहते हैं बन्धन। साधक-श्रेणीमें आनेपर देर नहीं लगती है। मोक्षकी इच्छा और मोक्ष—प्राय: समान समयमें हुआ करते हैं; क्योंकि वह इच्छाकी वस्तु है। जबकि भोग इच्छाकी वस्तु नहीं है। जगत्‌के भोगमें तो कर्मकी अपेक्षा है। कर्म होगा तब भोग प्राप्त होगा, परंतु भगवान्‌की प्राप्ति, मोक्षकी प्राप्ति अज्ञानजनित है। मोक्षकी इच्छा तीव्र हो और मोक्ष होनेमें देर लगे, भगवान्‌को प्राप्त होनेकी इच्छा जाग उठे और भगवान् न मिलें—यह सम्भव नहीं है, किंतु हममें इच्छा ही नहीं है। हम केवल नाम करते हैं साधकका, दम्भ करते हैं या अपनेको ठगते हैं। सच्चे साधक बननेका एक क्रम ठीक-ठीक दिखे कि यह जगत् असत्य है। इसमें मोह क्यों करते हैं? जगत् जब असत् और अनित्य दिखेगा, तब अपने-आप इससे वैराग्य होगा। जब इस लोक और परलोकके भोगोंसे विराग हो गया तो अपने-आप षट्-सम्पत्तियाँ प्राप्त होंगी। मन निगृहीत हो जायगा। इन्द्रियाँ निगृहीत हो जायँगी। सहनशीलता आ जायगी, शम आयेगा, दम आयेगा, उपरति आयेगी और तितिक्षा आयेगी। भोग सामने रहेंगे, परंतु मन नहीं जायगा। तितिक्षाके बाद श्रद्धा आयेगी और सारी शंकाओंका समाधान हो जायगा। तब मोक्षकी इच्छा जाग्रत् होगी, इच्छा जाग्रत् हुई कि मोक्ष हो जायगा।

इसलिये असली साधक बनना है। यह जो नकली नकाब लगाये हैं, इसे उतारना पड़ेगा। नकली नकाब पहननेसे कोई बादशाह थोड़े हो जाता है। भक्तका स्वाँग बनानेसे कुछ नहीं होगा। स्वाँग तो नाटकोंमें होता है। हम भी नाटक कर रहे हैं। वह नाटकका नाम है और वे पात्रानुसार सच कहते हैं। हम झूठ बोलते हैं और नाटकका स्वाँग रचते हैं। यह अन्तर है। इसलिये सच्चे रूपमें साधक बनें, सच्ची साधना करें और प्रभुसे कृपाकी प्रार्थना करते रहें—

यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस-बिस्वास-भरोसो, हरो जीव-जड़ताई॥
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि-सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई॥
कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ-अंडकी नाईं॥
या जगमें जहँ लगि या तनुकी प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाईं॥

(विनय-पत्रिका १०३)

[समाप्त]

बोधकथा—

घट-घटमें वह साईं रमता

एक बार सन्त उमरको रास्तेमें एक गुलाम बकरियाँ चराते हुए दिखायी दिया। वे उसके पास गये और उन्होंने उससे पूछा, 'क्या इनमेंसे एक बकरी मुझे बेचेगा?' गुलामने जवाब दिया, 'माफ करें, ये बकरियाँ मेरी नहीं हैं। इनका मालिक दूसरा है, मैं तो इन्हें केवल चराता हूँ।' तब उमरने कहा, 'अभी तो यहाँ मालिक नहीं है, तू चुपचाप मुझे एक बेच दे। बादमें जब मालिक पूछे तो कह देना कि बकरीको भेड़िया चुरा ले गया।' चरवाहेने उत्तर दिया, 'बकरियोंका मालिक यहाँ नहीं है तो क्या हुआ? घट-घट व्यापी मालिक तो देख रहा है, उससे भला यह बात कैसे छिपी रह सकती है? मैं आपसे फिर माफी माँगता हूँ कि आप मुझे गलत काम करनेको न कहें।'

उमरने सुना तो बोले—'तू सचमुच नेकदिल और बड़ा आदमी है। खुदा तुझ-जैसे आदमियोंको ही पसन्द करता है।' उन्होंने उस गुलामके मालिकको मुँहमाँगा दाम देकर उसे मुक्त कराया। फिर यह कहकर विदा किया—'जैसा मैंने तुझे गुलामीसे छुड़ाया है, वैसा ही खुदा भी तुझे दोजखके दु:ख-दर्दसे छुटकारा देकर जन्नतमें जगह देगा।'—श्रीशरद्‌चन्द्रजी पेंढारकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनका इकतारा

(डॉ० श्रीसुरेशचन्द्रजी सेठ, एम० ए०, पी-एच० डी०)

हमारे घरके निकटसे एक 'इकतारा' बेचनेवाला प्रायः निकला करता था। वह एक ही तारपर ऐसी सुन्दर-सुन्दर राग-रागिनियाँ निकाला करता, जिसकी मधुर ध्वनिपर मुग्ध होकर छोटे-छोटे बच्चे उसे घेर लेते और घरसे पैसे लाकर इकतारा खरीद लिया करते। एक दिन एक बुद्धिमान् बालकने उससे एक इकतारा खरीदा और जब उसने उसीके सामने उसे बजानेका प्रयत्न किया तो प्रयत्न करनेपर भी वह उसे बजा न सका। उसने निराश होकर बेचनेवालेसे कहा—'तुमने तो मुझे बिलकुल बेकार इकतारा दे दिया है, इसमें तो राग निकलते ही नहीं हैं।' बच्चेका आग्रह था कि वह उसे वही इकतारा दे दे, जिसे स्वयं बजा रहा था। बेचनेवालेने बालकको तत्काल अपना इकतारा दे दिया। किंतु बालकके लिये उस एक तारसे इकतारावालेकी तरह सप्तस्वर निकाल पाना सम्भव नहीं था। अभ्यासके बिना केवल देखकर वह तारसे राग उत्पन्न भी कैसे करता?

बिलकुल यही बात 'साधक' के जीवनकी है। साधना-पथके प्रत्येक पथिकको विधाताने ऐसा ही इकतारा देकर संसारमें भेजा है। लेकिन कुछ लोग तो उसके द्वारा जीवनमें सप्तस्वरोंकी मधुर झंकृतिका आनन्द ले लेते हैं और दूसरे बच्चेके समान निराश होकर या तो जीवनसे हार मान बैठते हैं या दूसरेके इकतारोंको देखकर विवशताका अनुभव करने लगते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि एक तारके द्वारा सप्तस्वरोंको जिस प्रकार निरन्तर अभ्यासके बलपर प्रकट करना पड़ता है, उसी प्रकार जीवनमें सोये सत्यको प्रकट करनेके लिये साधकको सतत जागरूक रहकर साधना करनी होती है। जब हम किसी संतके मुखसे सत्यका विवेचन सुनते हैं, तब हम जीवनके तथ्योंपर सन्देह करके निराश होने लगते हैं। इकतारा बता रहा है कि सभी तारोंमें स्वरोंको प्रकट करनेकी शक्ति है। अन्तर इतना ही है कि स्वर प्रकट करनेके लिये तारका स्पर्शकर एक-एक रागके लिये धीरे-धीरे अभ्यास करना पड़ता है और फिर साधककी दीर्घकालीन साधना उसे मुखरित बना देती है।

इस सत्यका जीवनसे भी यही सम्बन्ध है। जिन व्यक्तियोंने अपने इकतारेके तारको स्पर्श करनेकी कला सीख ली है, वे जीवनके सत्यको प्रकट करनेमें समर्थ हो सके हैं। 'वाणी' उसका साधन है, 'मन' उसकी शक्ति है, 'भाव' उसका प्राण है और 'बुद्धि' उसे विवेक प्रदान करती है। ऐसे साधककी वाणीसे शब्द प्रकट होते हैं तो लगता है कि फूल झड़ रहे हैं। वाणीके द्वारा हमारे मानसमें हलचल मचानेवाले भावोंकी ही अभिव्यक्ति होती है। सामान्य रूपसे मनके सन्दर्भमें व्यक्ति यही कहता हुआ पाया जाता है कि 'हमारा मन तो इतने विकारोंसे भरा पड़ा है कि वह जीवनके वास्तविक स्वरूपको देख ही नहीं पाता।' साधकको यह समस्या इतना अधिक परेशान किये रहती है कि साधारण व्यक्तिको यह भरोसा ही नहीं हो पाता कि जिस मनको वह दोष दे रहा है, वह बेचारा तो बिलकुल निर्दोष है। वह यह सर्वथा भूल जाता है कि मन तो इकतारेके तारके समान कारण है, कर्ता नहीं। उससे कौन-सा राग निकले, यह तो बजानेवालेपर निर्भर करता है, न कि स्वयं तारपर। अतः हम सभी साधकोंके लिये यह बड़े उत्साहकी बात है कि हम अपने मनको अब दोष देना छोड़ दें। मनमें स्वतः कार्य करनेकी क्षमता है ही नहीं।

मनको दोष देनेके स्थानपर साधकको यह देखना चाहिये कि मनमें विकार क्यों आते हैं, जिसके कारण हमारे मुखसे वे शब्द निकल ही नहीं पाते, जिन्हें निकलना चाहिये था। यदि मनमें स्वभावसे ही विकार हुए होते तो वह लाख प्रयास करनेपर भी कभी विकाररहित हो ही नहीं पाता। सत्य तो यह है कि मनमें कोई विकार स्वभावसे है ही नहीं। मन तो विचारोंकी हलचलका केन्द्र है। यह तो हमारे समर्थनपर निर्भर करता है कि हम अपने मुखसे किन बातोंको प्रकट करते हैं। हम जिन विचारोंको प्रिय मानकर हृदयमें स्थान दे देते हैं, वे ही समय पाकर मुखसे प्रकट हो जाते हैं। विषयोंमें भोगकी रुचिके कारण हमसे इतनी बड़ी भूल हो जाती है कि जिन पदार्थोंमें जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देनेकी शक्ति है ही नहीं, उनमें हम जीवन मान बैठते हैं और जहाँसे जीवन मिलता है, उस ओरसे हम विमुख हो उठते हैं। जबतक हम मनमें उत्पन्न होनेवाले विचारोंको अपना समर्थन नहीं देते, तबतक विचारोंके आनेमात्रसे मनमें कोई विकार या पाप उत्पन्न होता ही नहीं।

इसलिये सन्तोंने साधकोंको एक बहुत बड़ा आश्वासन दिया है कि 'अरे मानव! तेरे मनमें स्वभावसे कोई विकार नहीं है। जब तुम कुविचारों अथवा असद्-विचारोंका समर्थन करने लगते हो, तब तुम्हारा मन भी विकृत हो जाता है और फिर तुम्हारे मुखसे ऐसे अटपटे स्वर निकलने लगते हैं, जिनका जीवनके सत्यसे कोई मेल नहीं होता।' जीवनमें सबसे बड़ी समस्या भोगोंमें रुचि है। व्यक्ति जब भोगकी रुचिमें आबद्ध हो जाता है, तब वह जीवनमें उन सभी कार्योंको कर डालता है, जिन्हें वह अपने ज्ञानसे यह समझता चलता है कि उनका करना उचित नहीं है। मनुष्यकी दुर्दशाका यह कैसा अनूठा चित्र है कि जिन भोगोंने आजतक उसे तृप्त ही नहीं किया, उन्हींमें वह बार-बार जीवनकी तृप्ति खोज रहा है। यदि संसारके भोग्य पदार्थोंमें तृप्त बना देनेकी सामर्थ्य हुई होती तो विश्वके सम्पन्न राष्ट्र तो शान्त हो ही जाते; पर ऐसा नहीं देखा जाता। अविचारकी भूमिमें भोगरूपी बीज उत्पन्न होकर मनको भी दूषित कर देता है और फिर व्यक्ति भोग-विलासमें आबद्ध हो जाता है। सन्तोंके मुखसे मैंने अनेक बार यह सुना है कि सार्थक कामोंको पूरा कर देनेके पश्चात् और निरर्थक कार्योंका ज्ञानसे त्याग कर देनेके उपरान्त मनका निग्रह स्वत: हो जाता है। जिन कार्योंके करनेसे शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति होती है, वे ही 'सार्थक कर्म' कहे जाते हैं। बुराईका चिन्तन करनेसे बुराई और भलाईका चिन्तन करनेसे भलाई स्वत: होने लगती है तथा मन भी स्वत: उधर ही चलने लगता है। अत: साधकोंको बड़ी ही सजगतासे इस रहस्यको समझ लेना चाहिये।

विचार करके देखिये कि मनमें वासनाएँ क्यों उत्पन्न होती हैं? वासना उत्पन्न होनेका मूल कारण इतना ही है कि अभीतक हमने अपने ज्ञानकी दृष्टिसे वासनाके मूल स्वरूपका दर्शन ही नहीं किया है। जिसे भोगका सही ज्ञान हो जाता है, उसकी भोग-वासना स्वत: मिट जाती है और मन बड़ी ही सरलतासे निर्विकार हो जाता है। 'वासनाओंके समूहका नाम ही मन है'—ऐसा सन्तोंने कहा है। समस्त वासनाओंका अन्त कर देनेपर मन मर जाता है और फिर काम, क्रोध, मोह आदि विकार साधकको विचलित नहीं कर पाते। वासनाओंका अन्त निजज्ञानसे ही सम्भव है। जबतक हम अपने जाने हुए सत्का संग नहीं करते हैं, तबतक सच्चा सत्संग भी नहीं हो पाता। अत: वासनाओंका अन्त यथार्थ ज्ञानसे ही सम्भव है। यथार्थ ज्ञान हृदयके शुद्ध होनेपर ही होता है और हृदयकी शुद्धि इच्छाओं-कामनाओंके त्यागसे ही सम्भव है। जब हम निर्विकार हो जाते हैं तो जीवनके इकतारेसे वही ध्वनि निकलने लगती है, जिसमें जीवनकी मधुरिमा होती है, जीवनका आनन्द होता है और जीवनका सत्य होता है। अत: हमें सजग होकर अपनी स्वरतन्त्रीको उस महिमावान्‌की स्वर-लहरीसे एकतार कर देना चाहिये।

'मधुबन श्याम बिना नहिं भावै'

(कु० वन्दना पाण्डेय 'शायद')

मधुबन श्याम बिना नहिं भावै।
मधुर चन्द्रिका अगन लगत है, सारा वदन जरावै॥
शीतल, मन्द, सुगन्ध समीरा, तीर समान चुभ जावै।
स्याम बिना सब सुख साधन, सर्प बनि डस जावै॥
नैना पंथ निहार थकित हैं, अब आवै अब आवै।
कृष्णा-कृष्ण पुकारे बैना, एक ही टेर लगावै॥
ज्यों-ज्यों जरूँ विरह में त्यों-त्यों विरहा प्रीत बढ़ावै।
विरह पे तेरे मेरे कन्हइया, 'वन्दन' बलि-बलि जावै॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

तत्त्वकी प्राप्ति हो जाय और होते ही वह दृढ़ हो जाय, ऐसी बात बतायी जाती है। बिलकुल सबके अनुभवकी बात है। जड़ प्रकृति परिवर्तनशील है और चेतन परमात्मतत्त्वमें कभी परिवर्तन नहीं होता। वह सदा ज्यों-का-त्यों रहता है। न बदलनेवालेका और निरन्तर बदलनेवालेका—दोनोंका हमें अनुभव है। बचपनसे लेकर अभीतक मैं वही हूँ—इसमें 'मैं वही हूँ' यह अनुभव न बदलनेवालेका है। संसार, शरीर, मनोवृत्ति, भाव, घटना, परिस्थिति, अवस्था आदि बदलनेवाले हैं। यह सबका अनुभव है, परंतु उन बदलनेवालेको जाननेवाले हम नहीं बदलते। बदलनेवालेमें जब हम स्थित रहते हैं, तब हमें सुख और दुःख होता है—'**पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते**' (गीता १३। २०) अर्थात् पुरुष सुख-दुःखके भोगनेमें हेतु होता है। कौन-सा पुरुष? '**पुरुषः प्रकृतिस्थो हि**' (गीता १३। २१) अर्थात् प्रकृतिमें स्थित पुरुष ही भोक्ता बनता है। जो हमारी मनोवृत्ति बदलती है, हमारी अवस्था बदलती है, हमारी दशा बदलती है, हमारे भाव बदलते हैं, हमारी क्रियाएँ बदलती हैं, हमारी परिस्थितियाँ बदलती हैं—इन बदलनेवालोंमें जब हम स्थित होते हैं, तब हम प्रकृतिमें स्थित होते हैं। मनमें जो काम-क्रोध, हर्ष-शोक, राग-द्वेष आदि वृत्तियाँ पैदा होती हैं, उनमें जब हम स्थित होते हैं, तब हम पराधीन होते हैं और सुख-दुःखका भोग करते हैं।

वास्तवमें एक दुःखके ही दो नाम सुख और दुःख हैं। जैसे दादकी बीमारी एक है, पर उसीके दो नाम खुजली और जलन हैं। खुजली अच्छी लगती है और जलन बुरी लगती है। तो जो अच्छी लगती है, वह भी बीमारी है और जो बुरी लगती है, वह भी बीमारी है। ऐसे ही बदलनेवालेके साथ मिलकर जो हम सुखी और दुःखी होते हैं, यह भी एक बीमारी है। बीमारीका मतलब यह कि हम अपने स्वरूपमें स्थित (स्वस्थ) नहीं हैं, प्रकृतिमें स्थित हैं। जब बदलनेवाली वृत्तियोंमें, भावोंमें, क्रियाओंमें स्थित नहीं होते, इनसे अलग रहते हैं, तब हम स्वस्थ रहते हैं। तब हम सुख-दुःखमें समान रहते हैं—'**समदुःखसुखः स्वस्थः**' (गीता १४। २४)। सम्पूर्ण अवस्थाओं, दशाओं, परिस्थितियों और घटनाओंमें हम रहते हैं, यह हमारा अनुभव है। अगर ऐसा नहीं हो तो सम्पूर्ण अवस्थाओं, दशाओं आदिका ज्ञान हमें कैसे होता? हमें इनका ज्ञान होता है, इससे सिद्ध होता है कि हम रहते हैं। हमें जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्च्छा, समाधिका ज्ञान होता है। सुख-दुःखका भी ज्ञान होता है। शोक, मोह, चिन्ता, राग, द्वेष आदिका भी हमें ज्ञान होता है तो हम शोक, मोह, चिन्ता, भय, उद्वेग आदिसे रहित हैं। अगर ऐसा नहीं है तो हमें सुखका अनुभव होगा, दुःखका अनुभव नहीं होगा; हम शोकमें ही रात-दिन रहते हैं तो प्रसन्नताका हमें अनुभव नहीं होगा, परंतु ऐसा है नहीं। अनुकूलता-प्रतिकूलताको लेकर ठीक और बेठीक—दोनोंका ज्ञान हमें होता है तो वास्तवमें हम ठीक-बेठीकसे ऊँचे हैं। इस निर्द्वन्द्वतामें हम स्थित हो जायँ तो सुगमतासे मुक्त हो जायँ—'**निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते**' (गीता ५। ३)। वास्तवमें तो मुक्त ही हैं, पर द्वन्द्वोंको अपना मान करके हम फँस जाते हैं—

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप॥

(गीता ७। २७)

इच्छा (राग) और द्वेष, हर्ष और शोक—इन द्वन्द्वमोहसे मोहित होकर इनसे परे उस परमात्माको नहीं जानते। '**सर्गे यान्ति**' का मतलब—आरम्भमें ही यह जीवन मोहको प्राप्त हो जाता है और बार-बार जन्मता-मरता रहता है। बदलनेवालेमें न स्थित होकर अपने स्वरूपमें, जो कि सम्पूर्णको जानता है, स्थित हो जायँ और जाननेमें आनेवाली तथा बदलनेवाली वस्तुके साथ न बदलें अर्थात् उसके साथ अपनी एकता न मानें तो हमारी स्थिति स्वतः स्वरूपमें है। स्वतः स्वरूपमें स्थितिका नाम है—जीवन्मुक्ति। पर स्वतः रहनेवालेके साथ न रहकर बदलनेवालेके साथ मिल जाते हैं, इसका नाम है—बन्धन। बन्धनको हम जब चाहें, तब छोड़ दें और जब चाहें, तब पकड़ लें। इसमें हम पराधीन नहीं हैं, स्वाधीन हैं। बन्धन पकड़कर बन्धनमें कभी स्थित रह नहीं सकते और स्वरूपसे विमुख होकर स्वरूपसे अलग कभी रह नहीं सकते; क्योंकि बन्धन तो मिटते रहते हैं, हम नये-नये पकड़ते रहते हैं और हमारा जो स्वरूप है, वह ज्यों-का-त्यों ही रहता है, कभी बदलता नहीं। स्वरूपमें हमारी स्थिति स्वतःसिद्ध है। स्वतःसिद्ध स्थितिका आदर न करके परतः स्थितिका, जो बदलती रहती है, आदर करते हैं—महत्त्व देते हैं, इसीसे जन्म-मरणमें भटकते हैं और दुःख पाते हैं।

जब हम बदलनेवालेके साथ न रहकर, जो सम्पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदलनेवालेको जानता है, उसमें स्थित हो जायँ तो हम अभी मुक्त हैं। मुक्तिके लिये भविष्य नहीं होगा। अमुक चीज नहीं है, अमुक अवस्था नहीं है, अमुक परिस्थिति नहीं है तो वह समय पाकर होगी, परंतु यह समय पाकर नहीं होगा। यह समयसे अतीत है और सब समयमें है, किसी देशमें नहीं है और सम्पूर्ण देशोंमें है किसी वस्तुमें नहीं है और सम्पूर्ण वस्तुओंमें है। देश, काल, वस्तु, व्यक्तिसे सर्वथा अतीत होते हुए भी सबमें परिपूर्ण है। उसमें स्थित होना स्वरूपमें स्थित होना है।

वृत्तियाँ तो बदलती रहती हैं। ज्ञानीकी भी वृत्तियाँ बदलती हैं—**'प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव'** (गीता १४।२२) अर्थात् तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त महापुरुषमें भी प्रकाश, प्रवृत्ति और मोहकी वृत्तियाँ होती हैं। वृत्तियाँ तो बदलती रहती हैं। बदलना इनका स्वभाव है और न बदलना हमारा स्वभाव है। उस स्वरूपमें हम स्वतः-स्वाभाविक स्थित हैं। केवल प्रकृतिमें स्थित नहीं होना है।

अब कोई प्रश्न करे कि यह बात समझमें तो आती है, पर टिकती नहीं तो उसका उत्तर यह है कि वास्तवमें यह बात मिटती ही नहीं, प्रत्युत निरन्तर रहती है; क्योंकि यह बात टिकती नहीं—इसे तो हम जानते ही हैं। 'टिकती नहीं' यह प्रकृति है और 'जानते हैं' यह स्वरूप है। प्रकृतिके साथ मिलें नहीं, इतनी ही बात है। वह तो मिटती ही है और स्वरूप टिकता ही है।

यह टिकती नहीं—इसे जाननेवाला भी मिटता है क्या? यदि मिटता है तो जानता कौन है? मिटनेको जाननेवाला न रहे तो मिटनेको जानेगा कौन? प्रकृति परिवर्तनशील है। वह तो बदलेगी ही। जाग्रत् होगा, स्वप्न होगा, सुषुप्ति होगी, ठीक होगा, बेठीक होगा, अनुकूल होगा, प्रतिकूल होगा—यह तो सदा ही होगा। पर इसे जाननेवालेमें क्या फर्क पड़ा? हम बदलनेवालेमें स्थित न हों, बदलनेवालेकी परवाह न करें। हम अपने स्वरूपमें ही स्थित रहें। अपने स्वरूपकी परवाह करनी है, उससे च्युत नहीं होना है। यह निश्चय हम पक्का रखें। फिर इसमें गलती नहीं होगी। इसपर जितना टिक जायँ, उतना ही लाभ होगा।

मरणधर्मा प्राणी

(श्रीमूलनारायणजी मालवीय)

प्रातः-वेला थी, शीतल-मन्द समीर बह रहा था। रसालकी डालपर बैठी हुई कोकिलाके कल-कण्ठसे निकला हुआ शब्द कानोंको सुखद लग रहा था। उसी समय एक भक्त गायक गा रहा था—

माटीके पुतले, काहेको बिसारा हरिनाम।
इस जीवनका कौन भरोसा, सुबह जाय चाहे शाम॥

स्वभावतः इस गानकी ओर मन आकृष्ट हुआ और पूज्य गुरुदेवके मृत्यु-सम्बन्धी उपदेशका स्मरण हो आया तथा महात्माओं, विद्वानों, भक्तोंकी भावनाएँ, जो पढ़ी-सुनी गयी थीं, वे मन-मन्दिरमें गूँजने लगीं। श्रीमद्वाल्मीकि-रामायणमें आया है कि रावणकी घोर तपस्यासे सन्तुष्ट होकर सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने उससे वर-माँगनेके लिये कहा तो रावणने यह वर माँगा—

भगवन् प्राणिनां नित्यं नान्यत्र मरणाद् भयम्।
नास्ति मृत्युसमः शत्रुरमरत्वमहं वृणे॥

(७।१०।१६)

'भगवन्! प्राणियोंको मृत्युके सिवा और किसीका भय नहीं रहता, इसलिये मैं अमर होना चाहता हूँ; क्योंकि मृत्युके समान दूसरा कोई शत्रु नहीं है।' पर ब्रह्माजीने अमरत्व देनेसे इनकार कर दिया।

भीष्मपितामह और गुरु द्रोणाचार्य-जैसे महान् पुरुषोंको भी मरना पड़ा। इसपर धृतराष्ट्रने संजयसे कहा था—

न ह्येव ब्रह्मचर्येण न वेदाध्ययनेन च।
न क्रियाभिर्न चास्त्रेण मृत्युः कैश्चिन्निवार्यते॥

'जान पड़ता है कि कोई भी न तो ब्रह्मचर्यके पालनसे, न वेदोंके स्वाध्यायसे, न कर्मोंके अनुष्ठानसे और न अस्त्रोंके प्रयोगसे ही अपनेको मृत्युसे बचा सकता है।'

शरीरकी उपमा पानीकी बूँदसे दी गयी है। जब भगवान् रामके हाथों वालीका वध हो चुका, तारा विलाप करने लगी, तब श्रीहनुमान्जीने उसे समझाते हुए कहा—

'कश्च कस्यानुशोच्योऽस्ति देहेऽस्मिन् बुद्बुदोपमे॥'

(वाल्मीकि० ४।२१।३)

'पानीके बुलबुलेके समान इस शरीरमें रहता हुआ कौन जीव किस जीवके लिये शोचनीय है?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार अभिमन्युके वीरगति प्राप्त होनेपर माता

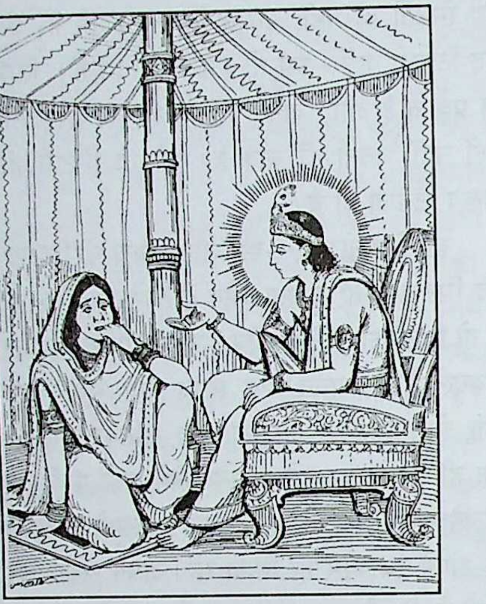

सुभद्रा रोती और विलखती हुई कहती हैं—

'अहो ह्यनित्यं मानुष्यं जलबुद्बुदचञ्चलम्।'

(महाभारत, द्रोण० ७८।१७)

'अहो! यह मनुष्यजीवन पानीके बुलबुलेके समान चंचल और अनित्य है।'

महाभारतकी कथा है। बृहस्पतिजीने युधिष्ठिरसे कहा—'प्राणी अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरता है, अकेला ही दुःखसे पार होता है तथा अकेला ही दुर्गति भोगता है। पिता, माता, भ्राता, गुरु, पुत्र, सम्बन्धी और मित्रवर्ग—कोई भी इसके सहायक नहीं होते। लोग मरे हुए शरीरको काठ और मिट्टीके ढेलेके समान फेंककर कुछ देर रोते हैं और फिर उसकी ओरसे मुख मोड़कर चल देते हैं। एकमात्र धर्म ही जीवात्माका साथ देता है। केवल धर्मयुक्त प्राणी ही उत्तम स्वर्गको जाता है और अधर्म करनेवाला जीव नरकमें जाता है।'

महाभारतमें मृत्यु-सम्बन्धी अनेकों आख्यायिकाएँ हैं, जिनका भगवान् व्यासजीने अद्भुत ढंगसे उल्लेख किया है, जिन्हें पढ़कर मृत्यु क्या है और मानवका क्या कर्तव्य है, यह पता चलता है। यह ध्रुव सत्य है कि जो जन्मता है, वह मरता भी है। यह सब कुछ होते हुए भी लोग मृत्युको भूले हुए-से रहते हैं। गहन वनमें भूख-प्याससे पीड़ित पाण्डव बरगदकी शीतल छायामें थके-माँदे बैठे हुए थे। नकुलने युधिष्ठिरसे कहा—'हमारे कुलमें कभी आलस्यवश धर्मका लोप नहीं हुआ, फिर भी हम धर्मसंकटमें कैसे पड़ गये?' इसके उत्तरमें धर्मराजने कहा—

नापदामस्ति मर्यादा न निमित्तं न कारणम्।
धर्मस्तु विभजत्यर्थमुभयोः पुण्यपापयोः॥

(महा०, वन० ३१२।१)

'आपत्तियोंकी न तो कोई सीमा है, न कोई निमित्त ही दिखायी देता है और न कोई विशेष कारण ही परिलक्षित होता है। पहलेका किया हुआ पुण्य और पापरूप कर्म ही प्रारब्ध बनकर सुख और दुःखरूप फल बाँटता रहता है।' इस तरह अन्य भाइयोंसे बातें करते हुए धर्मराजने नकुलसे कहा कि 'तुम्हारे सभी भाई पिपासित हैं, इन लोगोंके लिये जलकी व्यवस्था करो।' नकुल जलाशयके पास पहुँचे। वे जल पीना ही चाहते थे कि उन्हें आकाशवाणी सुनायी पड़ी—'मेरे प्रश्नोंका उत्तर देकर ही पानी पियो और साथ भी ले जाओ।' यक्षकी वाणीकी अवहेलना करनेका परिणाम यह हुआ कि वे अचेत होकर गिर पड़े। यही दशा भीम, अर्जुन और सहदेवकी भी हुई। अन्ततः युधिष्ठिर स्वयं पहुँचे तो उनसे भी प्रश्न किया

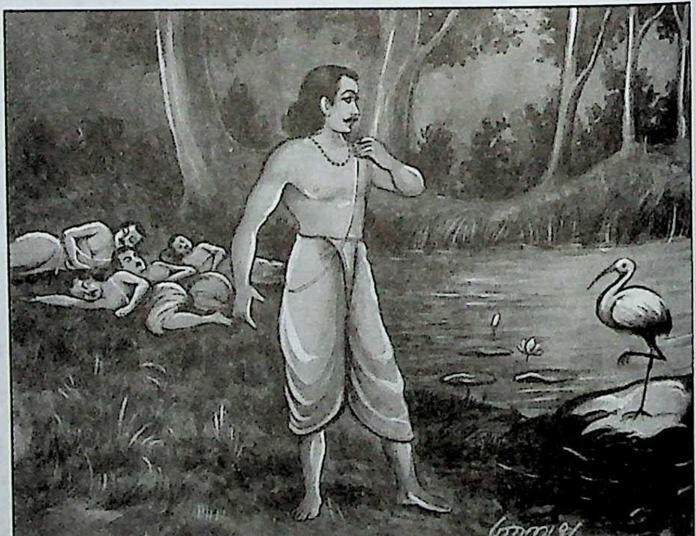

गया। धर्मराजने समुचित उत्तर दिया। अनेक प्रश्नोंके बाद यक्षने पूछा 'आश्चर्य क्या है?' धर्मराजने उत्तर दिया—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

(महा०, वन० ३१३।११६)

'संसारमें नित्य-प्रति प्राणी यमलोकमें जा रहे हैं, किंतु जो बचे हुए हैं, वे सर्वदा जीनेकी इच्छा करते हैं। इससे बढ़कर आश्चर्य क्या हो सकता है?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांसारिक सुखोंमें आसक्त पुरुषोंके लिये गुरु नानक-देवजी कहते हैं—

जगतमें झूठी देखी प्रीत।
अपने ही सुख सों सुख मानै, क्या दारा, क्या मीत॥
अंत समय कोई नहिं साथी, यह अचरज की रीत।
'नानक' सोइ भवपार तरै जो गावै प्रभु के गीत॥

बीरबलकी भी उक्ति है—

पेट में पौढ़ि के पौढ़े मही पर, पालना पौढ़ि के बाल कहाये।
आइ जबैं तरुनाई, तिया-सँग सेज पै पौढ़ि के रंग जमाये॥
छीर-समुद्र के पौढ़नहार कौ नेकहुँ ध्यान हृदय नहिं लाये।
पौढ़त पौढ़त पौढ़ि गये, अब चिता पै पौढ़न के दिन आये॥

बड़े अच्छे ढंगसे छविनाथजीका कहना है—

रहा है न कोई यहाँ, रहिहै न कोई यहाँ,
जानै सब कोई, पै न मानै मोह परिगे।
हाथी रथ घोड़े सब छाँड़ि दीने ठौर-ठौर,
भौमन के गाड़े मूँडि माँड ते बिसरिगे॥
कहै 'छबिनाथ' रघुनाथ के भजन बिन,
ऐसे ही बिचारे जन्म कोटिन निसरिगे।
जोरवारे, जंगवारे, जाहिर जरबवारे,
जोशवारे जालिम चिता की आग जरिगे॥

कवि-कुल-प्रभाकर भक्त सूरदासजीने मरणधर्मा प्राणीका बड़ा सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है—

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन-तरुवर के सबै पात झरि जैहैं॥
या देही कौ गरब न करिऐ, स्यार-काग-गिध खैहैं।
तीननि में तन कृमि, कै निष्ठा, कै ह्वै खाक उड़ैहैं॥
कहँ वह नीर, कहाँ वह सोभा, कहँ रँग-रूप दिखैहैं।
बिन लोगनि सौं नेह करत है, तेई देखि घिनैहैं॥
जिन पुत्रनिहिं बहुत प्रतिपाल्यौ, देवी-देव मनैहैं।
तेई लै खोपरी बाँस दै, सीस फोरि बिखरैहैं॥
अजहूँ मूढ़ करौ सत संगति, संतनि में कछु पैहैं।
नर-बपु धारि नाहिं जन हरि कौ, जम की मार सो खैहै।
'सूरदास' भगवंत-भजन बिनु बृथा सु जनम गँवैहै॥

श्मशानके लिये ले जाये जाते एक शवको देखकर भगवान् बुद्धने अपने सारथिसे पूछा—'यह कौन है? इसे चार पुरुष लिये जा रहे हैं और इसके लिये रोया जा रहा है।'

सारथिने बताया—

'हीनस्य मध्यस्थ महात्मनो वा
सर्वस्य लोके नियतो विनाशः।'

'हीन, मध्यस्थ तथा महात्मा—सबका संसारमें विनाश निश्चित है।' इन सब बातोंको तथा ऐसी अन्य बातोंको देख-सुनकर सुर-सुन्दरियोंके बीच रहते हुए भगवान् बुद्धने विचार किया कि 'जब मरना ध्रुव सत्य है, तब जरा, व्याधि और मृत्युको जाननेवाला कौन बुद्धिमान् इस संसारमें रहना चाहेगा?'

मृत्युव्याधिजराधर्मा मृत्युव्याधिजरात्मभिः।
रममाणो ह्यसंविग्नः समानो मृगपक्षिभिः॥

'मृत्यु, व्याधि तथा जराके अधीन रहनेवाला मनुष्य यदि मृत्यु, व्याधि और जराके अधीन रहनेवालोंके साथ रमण करता हुआ विरक्त न हो तो वह पशु-पक्षियोंके समान है।'

उर्दूके किसी शायरने लिखा है—

हँस के दुनिया में मरा कोई, कोई रो के मरा।
जिंदगी पाई मगर उसने, जो कुछ हो के मरा॥
जी उठा मरने से वह, जिसकी खुदा पर थी नजर।
जिसने दुनिया ही को पाया था, वह सब खो के मरा॥

जैन-सम्प्रदायके भगवान् महावीरने कहा था—

'धीर पुरुषको भी मरना है और कायर पुरुषको भी अवश्य मरना है। जब मरण अनिवार्य है, तब धीर पुरुषोंके लिये दुर्लभ एवं प्रशंसनीय मृत्युका वरण करना ही श्रेयस्कर है।'

गो-रक्षण आदि धर्मके नामपर मरना हिन्दूधर्ममें उत्तम माना गया है। धर्मके लिये गुरु गोविन्दसिंहके पुत्र दीवालमें चुनवा दिये गये। इसपर मालवीय माधव शुक्लने लिखा है—

आनेवाला इस दुनिया में सभी एक दिन जायेगा।
मरकर जिंदा वही, जो सर दे अपना धर्म बचायेगा॥

एक-न-एक दिन मरना अवश्यम्भावी है। कब किसकी मौत कहाँ आ जाय, यह कोई नहीं जानता। ठीक है—

आगाह अपनी मौत से कोई बशर नहीं।
सामान है सौ बरस का, पल की खबर नहीं॥

मृत्युकी इस विभीषिकाको देखते हुए शुभ कार्य अत्यन्त शीघ्र कर लेनेमें ही बुद्धिमानी है। महाभारतका वचन है—

मृत्युनाभ्याहतो लोको जरया परिवारितः।
अहोरात्राः पतन्तीमे तच्च कस्मान्न बुद्ध्यसे॥

'मृत्यु सारे जगत्‌का हनन कर रही है, बुढ़ापेने उसे घेर रखा है; ये दिन और रात्रियाँ हमपर बीत रही हैं, इस बातको आप क्यों नहीं समझ रहे हैं।'

हम इस स्वाभाविक स्थितिको समझें और अपने जीवनकी गति-विधियोंमें परिवर्तन लायें। जितना शीघ्र चेत जायें, उतना ही उत्तम है; अन्यथा मृत्यु आकर हमें दबोच लेगी और हमारा मानव-जीवन व्यर्थ चला जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगवासिष्ठका उपशम-प्रकरण

(श्रीरघुनाथप्रसादजी सराफ)

[महर्षि वाल्मीकिद्वारा उद्भूत वासिष्ठरामायण तथा महारामायणके नामसे विख्यात योगवासिष्ठ ग्रन्थ ब्रह्मतत्त्व-मीमांसाका बड़ा ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। योग, योगसाधन, सदाचार, शास्त्रविधिपालन आदि महत्त्वपूर्ण विषयोंपर इसमें बहुत ही प्रभावशाली विवेचन प्रस्तुत हुआ है। इसमें दार्शनिक विषयोंको बड़े ही सुन्दर ढंगसे आख्यानोंके माध्यमसे उद्बुद्ध किया गया है। महर्षि वसिष्ठ तथा श्रीरामके संवादमें उपनिबद्ध योगवासिष्ठ (१) वैराग्य, (२) मुमुक्षुव्यवहार, (३) उत्पत्ति, (४) स्थिति, (५) उपशम तथा (६) निर्वाण—इस प्रकारसे छः प्रकरणोंमें विभक्त है। इसका उपशम-प्रकरण बड़े ही महत्त्वका है। इसमें मुख्यरूपसे महर्षि वसिष्ठजीद्वारा जगत्‌की असत्ता, अनासक्त कर्मयोगकी महिमा, राजर्षि जनककी उपरामता, जीवन्मुक्तिका स्वरूप, भक्तराज बलिका आख्यान, प्रह्लादकी भक्ति, वासनाका स्वरूप, चित्तके उपशमके उपाय, मनोनाशसे परमपदकी प्राप्ति तथा जीवन्मुक्त महात्माओंकी स्थिति आदि अनेक विषय श्रीरामको उद्देश्यकर समझाये गये हैं। यहाँ संक्षेपमें उपशम-प्रकरणके कुछ विषय प्रस्तुत हैं—सम्पादक]

राजा दशरथकी निश्चल सभामें महर्षि वसिष्ठ सबके हृदयोंको आह्लाद प्रदान करनेवाला परम पवित्र प्रवचन कर रहे थे। अपनी उपदेश-वाणीका प्रसार जारी रखते हुए उन्होंने कहा—रघुनन्दन! अब तुम सावधान होकर 'उपशम-प्रकरण' को सुनो। विवेक-विचारके द्वारा जिसने जाननेयोग्य वस्तुको जान लिया है, उस पुरुषकी बुद्धि उसकी सारी मानसिक चिन्ताओंको उसी तरह शान्त कर देती है, जैसे सुवर्णका ज्ञान रखनेवाला सुनार राखमें पड़े हुए सोनेको 'यह सोना है, यह राख है'—इस तरह साफ-साफ समझ लेता है, अतः उसे सुवर्णकी अप्राप्तिके कारण होनेवाला मोह नहीं सताता; उसी तरह यह जीव चिरकालतक विचारद्वारा अपने स्वरूपका परिज्ञान कर लेनेपर स्वतः अपने अविनाशी स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है।

राजा जनककी जीवन्मुक्त-रूप स्थिति

श्रीराम! विदेह देशमें जनक नामसे एक पराक्रमी राजा राज्य करते थे। एक दिनकी बात है, वे पर्वत-शिखरपर उगे हुए कुंजोंमें विचरण करने लगे। वहाँ किसी तमाल वनके निकुंजमें कुछ सिद्ध पुरुष बैठे हुए थे, जो दूसरोंको दिखायी नहीं देते थे। राजाने उनके मुखसे निकले हुए कुछ उपदेशात्मक गीत (वचन) सुने—

'जिसमें सब है, जिसका सब है, जिससे सब है, जिसके लिये ये सब हैं, जिसके द्वारा सब है तथा जो स्वयं ही सब कुछ है, उस परमतत्त्वकी हम उपासना करते हैं।'

'जो भोग्य पदार्थोंकी नीरसताको जानकर भी उनमें मनकी भावनाको बाँधता है, वह मनुष्य नहीं, पशु है।'

'उपशम या शान्तिके पवित्र सुखको प्राप्त करना चाहिये। जो उत्तम शमसे अर्थात् मनोनिग्रहसे सम्पन्न है, उसीको अपने स्वरूपमें दीर्घकालके लिये उत्तम स्थिति प्राप्त होती है।'

सिद्धगणोंके मुखसे निकले हुए ऐसे गीतोंको सुनकर राजा शीघ्र ही निर्वेदको प्राप्त हो गये। वे विचार करने लगे—हाय! जन्म, जरा, रोग और मरण आदिसे ग्रस्त क्षणिक जीवनमें मैं आसक्त हो रहा हूँ। ये महान् भोग मेरे कौन हैं, ये भाई-बन्धु भी मेरे कौन हैं? संसारमें रमणीयसे रमणीय और सुस्थिरसे सुस्थिर पदार्थ-सम्पत्ति अन्ततोगत्वा चिन्ता और दुःखका ही कारण होती है। सिद्ध महापुरुषोंने नाना प्रकारके उपदेशोंद्वारा मुझे अच्छी तरह बोध करा दिया है। अब मैं परमात्मज्ञानरूपी मणिको पाकर एकान्तमें उसीके सहारे अन्य सारी इच्छाओंको शान्त करके सुखपूर्वक स्थित होऊँगा।

राजा जनकने अपने चित्तको इस प्रकार समझाना आरम्भ किया—'मेरे चंचल चित्त! यह संसार आत्माके सुखका साधन नहीं है। तुम शमका आश्रय लो। शमसे शान्त (विक्षेपरहित) सारभूत आत्मसुखकी प्राप्ति होती है।' ऐसा निश्चयकर वे अपने राज्यके सारे काम-काज सँभालने लगे, फिर उनके मनमें ममता और आसक्ति नहीं जागी। परमात्मविषयक विवेकपूर्ण विचारद्वारा ही (उन्हें) पानेयोग्य परब्रह्म परमात्मरूप वस्तुकी पूर्णतया प्राप्ति हो गयी। श्रीवसिष्ठजी बोले—रघुनन्दन! पुरुषको पहले सत्संग एवं विवेक-वैराग्यद्वारा इस बुद्धिका ही शोधन करना चाहिये। ठीक उसी तरह जैसे—धान्य आदिकी वृद्धि चाहनेवाला किसान सबसे पहले पृथ्वीको ही जोतकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्ध बनाता है।

अनासक्त भावोंसे युक्त पुरुषार्थ

श्रीराम! बिना जीती हुई मनसहित इन्द्रियाँ शत्रुके समान हैं, इन्हें तबतक बारम्बार जीतकर परमात्मामें लगानेका प्रयत्न करे, जबतक अन्त:करण स्वयं ही परमात्माके ध्यानमें एकाग्र होकर शुद्ध एवं प्रसन्न न हो जाय। संसारसे भयभीत हुए पुरुषोंके उद्धारके लिये परमात्माके ध्यानस्वरूप परम पुरुषार्थको छोड़कर अन्य आश्रय नहीं है। न दैव शरण देनेवाला है और न कर्म। न धन आश्रय देनेवाला है और न भाई-बन्धु। भाग्यके आधीन रहनेवालोंकी मन्दमति उन्हें विनाशकी ओर ले जाती है। निकृष्ट विषयोंकी ओर बहते हुए मनको विवेक-वैराग्यके बाँधसे रोकना चाहिये। खड़े होते, चलते, सोते, जागते, कहीं निवास करते, उछलते और गिरते-पड़ते अर्थात् सब समय 'यह दृश्य-प्रपंच असत् ही है' ऐसा मनमें निश्चय करके इसके प्रति आस्थाका परित्याग कर देना चाहिये। समताका भलीभाँति आश्रय ले प्राप्त हुए कर्तव्यका पालन करते हुए अप्राप्तका चिन्तन न करके निर्द्वन्द्व हो इस लोकमें विचरना चाहिये। हे रघुनन्दन! विचारवान् पुरुषके हृदयमें चार प्रकारका दृढ़ निश्चय होता है—

(१) मैं सिरसे लेकर पैरतक माता-पिताके द्वारा रचा गया हूँ।

(२) मैं देह-इन्द्रियसे रहित सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर हूँ।

(३) सारे पदार्थ मुझ अविनाशी परमात्माके ही स्वरूप है।

(४) अहंकाररूपी यह सारा जगत् सदा आकाशके समान शून्य ही है।

—इन चार निश्चयोंमेंसे जो पहला है, उसे बन्धनकारक कहा गया है। शुद्ध भावनासे उत्पन्न हुए शेष तीन प्रकारके निश्चय मोक्षदायक कहे गये हैं।

जिसे वस्तुको खोनेका दु:ख नहीं, पानेकी इच्छा नहीं, कर्तव्य कर्मोंमें आलस्य नहीं और जो सबके अनुकूल बोलता है, प्रश्नोंका उक्तियोंद्वारा समाधान करता है, सबके मनोभावोंको समझ लेता है, जगत्की क्षणभंगुरताको हँसते हुए-से देखता है अर्थात् जिन्होंने अपने चित्तको जीत लिया है, उन्हें साक्षात्कारी महात्मा समझो। अपने चित्तको न जीतनेवाले मूढ़ मनुष्योंके जो यज्ञ आदि कर्म हैं, वे नाना प्रकारके दम्भ, मान, मद आदि दुर्गुणोंसे भरे होते हैं और पुनर्जन्म आदिके कारण होनेवाले सुख-दु:खोंसे परिपूर्ण हुआ करते हैं।

राजा बलिका दृष्टान्त

वसिष्ठजीने राजा बलिका वृतान्त सुनाया। 'बलि' ने भोगोंकी क्षणभंगुरताका अनुभवकर यथार्थ सुखका विचार करनेहेतु ध्यान किया। उन्हें अपने पिता 'विरोचन' से हुआ संवाद याद आया। बचपनमें बलिने पूछा था—पूज्य पिताजी! अविनाशी आनन्दसे परम सुन्दर किसी ऐसे परम पदका मेरे लिये वर्णन कीजिये, जहाँ स्थित होकर मैं सदाके लिये परम शान्ति प्राप्त कर लूँ। तब उन्होंने अज्ञान-निवारण (सम्मोह-शान्ति)-के लिये कहा था—'पुत्र! जैसे

बोये बिना धान नहीं प्राप्त होता, वैसे ही यदि विरक्तिके लिये अभ्यास न किया जाय तो विषय-लोलुप पुरुष कितना ही क्यों न चाहे, वह विरक्ति उसे नहीं मिलती। अत: तुम क्रमश: विषयोंसे विरक्त होनेका अभ्यास करो। प्रारब्ध भी पुरुषार्थसे ही जाता है। परमात्माका चिन्तन करना चाहिये। परमात्मविषयक विचार, भोगोंसे वैराग्य और नित्य आत्मदर्शन—ये तीनों एक-दूसरेको पुष्ट करते हैं। इन साधनोंसे जीवके अन्त:करणमें विषयोंकी ओरसे वैराग्य दृढ़तापूर्वक स्थित होता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी स्मृतिसे बलिके अन्त:करणमें अपार हर्ष हुआ। गुरुदेव शुक्राचार्यसे भी उन्हें उपदेश मिला कि विषयाकार-रहित चेतन ही पूर्ण ब्रह्म है, इस सिद्धान्तको ग्रहण करके तुम अपने-आपका यथार्थ अनुभव करो।

बलि समाधिस्थ हो गये। दीपककी लौके समान अविचल, मूर्तिवत् बैठे रह गये। अनुचरोंने दैत्यगुरु शुक्राचार्यकी शरण ली। शुक्राचार्यजीने कहा—दानवो!

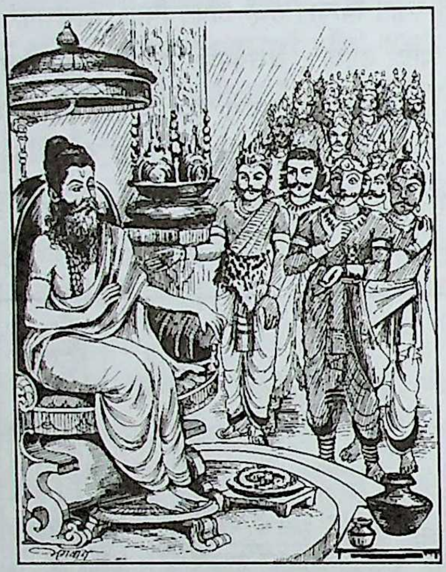

राजा बलि चित्तकी भ्रान्तिसे रहित हो परम विश्रामको प्राप्त हुए हैं। तुम सबलोग अपने स्वामीके कार्योंमें संलग्न रहो। ये अब एक सहस्र वर्षपर्यन्त समाधिस्थ रहेंगे।

एक सहस्र वर्ष बीतनेपर दैत्येन्द्र बलि समाधिसे जागे। उन्हें विचार हुआ—मैं शान्तस्वरूप हो परमात्मामें स्थित हूँ। अब मेरे लिये कर्तव्य-कर्म कुछ भी शेष नहीं है तो भी राज्यपालन आदि प्रस्तुत कर्म हैं, इन्हें मैं क्यों न करूँ? अत: वे समस्त राजकार्य करने लगे। उन्होंने अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान भी किया। राजा बलिको भोग-समूहोंकी अभिलाषा नहीं है, ऐसा निश्चय करके सिद्धिदाता प्रभु उसके अभीष्ट मनोरथकी सिद्धिके लिये 'वामन' रूपसे यज्ञमें पधारे। मात्र भोगोंमें आसक्त इन्द्रको जगत्‌रूपी जंजालका भाग देनेके लिये, उन्होंने पैर बढ़ाकर तीनों लोकोंको नाप लिया और बलिको वैभव-भोगोंसे वंचित करके पातालमें ही भावी इन्द्र-पदकी प्राप्तितक विराजित कर दिया। बलिको न खोनेका उद्वेग हुआ और न भावी प्राप्तिका हर्ष। वे अनासक्त हुए ब्रह्मस्वरूप आत्मामें नित्य स्थित हैं।

श्रीराम! भोग-समूहोंमें रसका अभाव है और दु:खका बाहुल्य है। इसीसे तो बलिने अन्तमें उनसे विरक्ति ले ली। जबतक आत्मसाक्षात्कारके लिये पुरुषार्थ करके स्वयंपर अनुग्रह नहीं किया जाता, तबतक आत्माका प्राकट्य नहीं होता।

प्रह्लादजीकी अनुपम भगवद्भक्ति

हे रघुनन्दन! बलिके दादा प्रह्लादजीपर अनुग्रह करके भगवान्‌ने नृसिंहरूप धारण किया था। प्रह्लादजी द्वन्द्वातीत थे। भावना-भाषित समस्त सामग्रियोंसे सुशोभित मानसिक पूजाद्वारा उन्होंने श्रीहरिका पूजन किया। अन्तमें अपने-आपको श्रीहरिके चरणोंमें भेंट कर दिया। इससे उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ। प्रतिदिन पूजा होने लगी। दैत्य-प्रजा भी राजाका अनुसरणकर वैष्णव बन गयी। जैसे भूना हुआ बीज अंकुरित नहीं होता, वैसे ही ज्ञानाग्निसे दग्ध हुए ये कर्म बन्धनकारक नहीं रहे। भगवान्‌ने प्रकट होकर भक्त-शिरोमणि प्रह्लादको वर दिया—जबतक तुम्हें ब्रह्मत्वकी प्राप्ति न हो जाय, तबतक तुम सम्पूर्ण संशयोंकी पूर्णतया शान्ति और परमात्मारूपी फलके लिये विचार-परायण बने रहो। प्रह्लादजीकी बाह्यदृष्टि शून्य हो गयी और वे हजारों वर्षोंतक समाधिस्थ रहे। अधिपतिके अभावमें अराजकताका राज्य हो गया। शेषशायी श्रीहरिने क्षीरसागरसे आकर उन्हें पांचजन्य फूँककर जगाया और कहा—तुम विदेह हो। संसारमें कर्तृत्व और भोक्तृत्वका उपशम हो जानेपर एकमात्र शान्ति ही शेष रहती है। भगवान्‌ने राज्याभिषेक करके उन्हें पाताल-पालनके हेतुसे सिंहासनपर बैठा दिया।

श्रीराम! प्रह्लादकी ज्ञानप्राप्ति सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाली है तथा अमृतके समान शीतल है। इस सिद्धिका विवेकपूर्वक विचार करनेवाले लोगोंके पूर्वके सात जन्मोंमें किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। महामनस्वी प्रह्लादने परम पुरुषार्थसे जो भक्ति की, उसीसे भगवान्‌ने उनको वर दिया। कभी तो आत्मा अपने-आप ही अपनी शक्तिसे प्रबुद्ध हो जाता है और कभी भक्तिरूपी प्रयत्नसे प्राप्त होनेवाले विष्णुरूपसे प्रबोधित किया जाता है। इसलिये किसीको जहाँ कहींसे भी जो कुछ प्राप्त होता है, वह सब उसे अपने सामर्थ्यरूप प्रयत्नसे ही मिलता है, किसी अन्य कारणसे नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मायाचक्रका निरूपण—मुनि उद्दालककी चेष्टा

श्रीरामने पूछा—ब्रह्मन्! मायाचक्रका निरोध कैसे किया जाय?

हे महाबाहु राम! पुरुष प्रयत्नपूर्वक बुद्धिद्वारा चित्तको स्तम्भित कर दे, तब जिसकी नाभि पकड़ ली गयी हो, वैसी स्थिति होकर यह मायाचक्र शीघ्र ही आगे बढ़नेसे रुक जाता है; क्योंकि चित्त ही मायाचक्रकी महानाभि है। यह चित्त विषवृक्षके समान है। शरीररूपी बुरे गड्ढेमें उगा हुआ है। इसमें आशाएँ विशाल शाखाएँ हैं, विकल्प पत्ते हैं, चिन्ताएँ लम्बी-लम्बी मंजरियाँ हैं, कामोपभोगके समूह खिले हुए पुण्य हैं। जरा-मरण और व्याधिरूपी फलोंके भारसे यह झुका हुआ है। विवेक, वैराग्य, गुरुसन्निधि तथा प्रयत्न एवं मन्त्र आदि उपायोंद्वारा अपने हृदयसे इसे उखाड़कर फेंक देनेपर ही आत्मसिद्धिकी प्राप्ति सम्भव है।

हे राघव! गन्धमादनपर्वतपर 'उद्दालक' नामके मुनि निवास करते थे। नियमपूर्वक शास्त्र-चिन्तन, तपस्या और शास्त्राभ्यासके क्रमोंसे उनके हृदयमें विवेक जाग उठा।

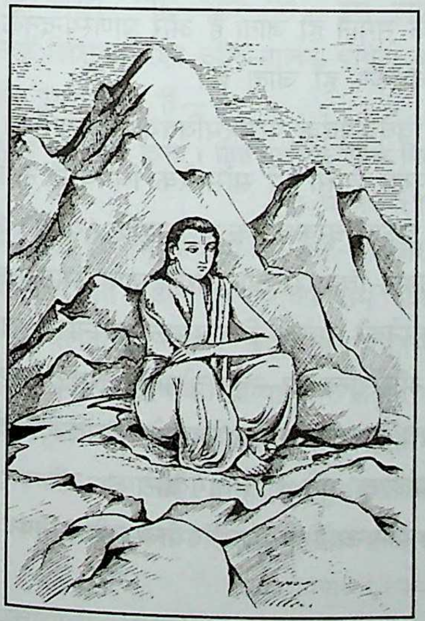

संसाररूपी रोगसे भयभीत हो वे एकान्तमें विचार करने लगे कि जिसमें विश्राम पाकर शोकका अत्यन्त अभाव हो जाता है, पुनः जन्म नहीं होता, वह प्राप्त करनेयोग्य प्रधान वस्तु क्या है? कब मैं मनके व्यापारसे मुक्त होकर परम शान्ति पाऊँगा और कब मौनव्रती हो अचल ध्यानमें निमग्न होऊँगा?

उद्दालकमुनि विक्षिप्तचित्तसे होकर पर्वतपर भ्रमण करने लगे। बहुत समय बाद एक गुफामें प्रविष्ट हुए। आसन बिछाकर मनकी वृत्तियोंको सूक्ष्म करते हुए विराजमान हो गये। अपने मनको समझाने लगे—'अरे मूर्ख मन! इन सांसारिक वृत्तियोंसे तेरा क्या प्रयोजन है! इनसे कभी सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती। तू अहंकारका बीजस्वरूप है, तुझसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। भूतलपर जो कुछ स्थित है, वह ब्रह्मस्वरूप है। वह 'सत्' अर्थात् ब्रह्म मैं ही हूँ और वह 'तत्' (ब्रह्म) भी मैं ही हूँ; फिर मैं व्यर्थ ही शोक क्यों करूँ? मैं तो नित्य अविनाशी ज्योतिस्वरूप हूँ। इस देहसे अतीत हुआ मैं न तो अज्ञानी हूँ, न मुझे कोई दुःख है और न दुःखका कोई कारण ही है। इच्छा-अनिच्छासे परे, सुख-दुःखविहीन हो मन अमनीभावको प्राप्त हो गया है। चित्तके संकल्प-विकल्प दूर हो गये हैं; अतः मैं शान्तस्वरूप परमात्मामें रमण कर रहा हूँ।'

आत्माराम-भावका निरूपण

श्रीरामने पूछा—भगवन्! कोई ज्ञानी पुरुष व्यवहार करता हुआ भी समाधिस्थके समान शान्त रहता है और कोई एकान्तमें ध्यान-समाधिमें निमग्न रहता है। इन दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है?

वसिष्ठजीने कहा—वत्स राम! मन ही दृश्य पदार्थोंसे सम्बन्ध रखता है। जो मनसे रहित होकर परम शान्तिको प्राप्त हो चुका है, ऐसा कोई पुरुष तो व्यवहारमें लगा रहता है और कोई ध्यान-समाधिमें तल्लीन हो जाता है। यदि उनके अन्तःकरणमें परमशान्तिरूप शीतलता है तो वे दोनों ही सुखी हैं। वे दोनों ही सर्वथा समान हैं; क्योंकि दोनोंको ही सम्पूर्ण सन्देहोंसे रहित परमपदकी प्राप्ति हो गयी है। ज्ञानी जो कार्य करता है, जो खाता है, दान और हवनादि करता है—उन सब कर्मोंको करता हुआ भी वह कुछ नहीं करता एवं न उनमें रत ही रहता है; क्योंकि वह अंहता-ममतासे रहित हो जाता है। उसका न तो कर्मोंके करनेसे कोई प्रयोजन है और न कर्मोंके न करनेसे ही कोई मतलब है तो भी उसके द्वारा केवल लोकहितार्थ कर्म किये जाते हैं।

कल्याणकामी विवेकी पुरुषको चाहिये कि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वत्र स्थित रहते हुए, सबके साथ रहते हुए और सभी न्याययुक्त कर्मोंमें लगे हुए भी मनको अनासक्त और सम बनाये रखे।

आत्माराम होनेसे ही मनुष्य संसारमें असंगभावको प्राप्त होता है। जब जीवात्मा समस्त कल्पनाओंके कारणभूत मलोंसे रहित हुआ अध्यानावस्थामें भी परमात्माके स्वरूपानुभवमें निमग्न रहता है, तब वह आत्माराम कहलाता है। उस पुरुषको यन्त्रकी पुतलीके समान सुख-दुःखका अनुभव नहीं होता।

संसाररूपी सागरमें अति चंचल, अत्यन्त भयंकर, मुग्ध अंगनारूपी विस्तृत तरंगें हैं। जो मनुष्य श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ परब्रह्मका विचार करके अपनी शुद्ध-तीक्ष्ण बुद्धिरूपी नौकामें संसारसागरका तत्त्व समझकर विवेकरूपी नाविकके सहारे जगत्‌में विचरण करता है, वही परम पुरुषार्थी है।

चित्तविनाशके उपाय—योग और ज्ञान

हे राघव! चित्त और संकल्प एक-दूसरेसे अभिन्न रूप हैं। चित्तके विनाशके लिये शास्त्रोंमें दो उपाय दिखलाये गये हैं—योग और ज्ञान। चित्तवृत्तिका निरोध योग है और परमात्माका यथार्थ साक्षात्कार ही ज्ञान है। प्राणके स्पन्दनसे चित्तका स्पन्दन होता है और चित्तके स्पन्दनसे ही पदार्थोंकी अनुभूतियाँ होती हैं। योगशास्त्रोंमें प्रदर्शित पवन-निरोधके अभ्याससे ऊर्ध्वरन्ध्रके द्वारा (सुषुम्णा-मार्गसे) तालुके ऊपर जो ब्रह्मरन्ध्र है, उसमें स्थित प्राणवायु जब विलीन हो जाता है, तब प्राणवायुका स्पन्दन रुक जाता है। भृकुटिके मध्यमें चक्षु-इन्द्रियकी वृत्तिके शान्त होनेसे आज्ञा-चक्रमें प्राणोंके विलीन हो जानेपर जब चिन्मय परमात्माका अनुभव होता है, तब प्राणोंका स्पन्दन रुक जाता है। ईश्वरके अनुग्रहसे तुरंत उत्पन्न हुए दृढ़ीभूत, विकल्पांशोंसे रहित परमात्मज्ञानके हो जानेपर प्राणोंका स्पन्दन निरुद्ध हो जाता है। हृदयमें स्थित परमात्माके ज्ञानसे, विषय वासनाके अभावसे और मनके द्वारा उनका निरन्तर ध्यान करनेसे प्राणोंका स्पन्दन अर्थात् चित्तका स्पन्दन निरुद्ध हो जाता है।

हे मननशील श्रीरामजी! चेतन परमात्मा ही सभी प्राणियोंका हृदय कहा जाता है। जड़ और जीर्ण पत्थरके सदृश देहके अवयवका मांस-खण्डरूप एक अंश (Physical Heart) वास्तविक हृदय नहीं है। चित्तके विनाश होनेपर समता, शान्ति, सरलता, क्षमा, दया आदि सभी शुभ श्रियाँ ज्ञानरूपी प्रकाशसे युक्त प्रफुल्लित हो उठती हैं। अतः विवेक-विचाररूप अभ्याससे इसके संकल्प-विकल्पात्मक तन्तुका विनाश करें कि—

हे चित्त! तुम रहो चाहे जाओ, तुम न तो मेरे हो और न तुम जीते (Alive) हो। समस्त ब्रह्माण्ड एक ब्रह्म ही है, यह मैं निश्चयपूर्वक जानता हूँ।' और अब मनरूपी राक्षसका स्व-विवेकसे विनाशकर मैं विषमताओंसे रहित हुआ, अपने स्वरूपमें स्थित हूँ।

हे राघव! वासनाक्षय, परमात्माके तत्त्वका यथार्थज्ञान और मनोनाश—यद्यपि ये दुःसाध्य लगते हैं, किंतु असाध्य नहीं है। एतदर्थ उपाय हैं—

१. विवेकयुक्त पौरुषप्रयत्नोंके द्वारा भोगेच्छाका दूरसे ही परित्याग।

२. प्राण-निरोधका अभ्यास। भोगेच्छाके त्यागसे मन भूने बीजके समान हो जाता है और प्राणस्पन्दनके निरोधसे चित्त अचित्तरूप हो जाता है।

३. विवेकपूर्वक परमात्मविषयक विचारोंका अनुभवी ज्ञानवान् पुरुष किसी भी सांसारिक विषयोंमें नहीं फँसता।

इस प्रकार चिरकालतक प्राणायामके (योग्य) अभ्याससे, उचित आहार-विहारसे और परमात्माके स्वरूपका साक्षात् अनुभव करनेकी विवेक-विचारयुक्त साधनासे—वासनाक्षय, मनोनाश और तत्त्वज्ञान—इन तीनोंकी सिद्धि सम्भव है—**'वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशा महामते। समकालं चिराभ्यस्ता भवन्ति फलदा मुने॥'** (योगवासिष्ठ, उप० ९२। १७)

इस सम्बन्धमें श्रीरामचरितमानसकी कतिपय चौपाइयाँ उद्धृत हैं—

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥
जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाई॥
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई॥
बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नामु राम को कलपतरु'

(श्रीदेवेन्द्रजी शर्मा)

[गताङ्क ४ पृ०-सं० ६३७ से आगे]

श्रीगोस्वामीजी 'श्रीराम-नाम' के दोनों श्रेष्ठ वर्णों 'रा' और 'म' की महिमाके विषयमें कहते हैं कि भगवान् श्रीरामकी भक्तिरूपी वर्षा-ऋतुके लिये 'श्रीराम-नाम' के ये दोनों 'वर्ण' सावन-भादोंके महीनोंके समान हैं। अर्थात् यदि श्रीभगवान्‌की भक्तिरूपी वर्षाका परम लाभ लेना है तो 'श्रीराम-नाम' जपना चाहिये। ब्रजरानी श्रीयशोदारूपी जिह्वाके लिये ये दोनों अक्षर 'रा' और 'म', उन्हें परम प्रिय लगनेवाले दोनों पुत्रों—श्रीकृष्णजी और श्रीबलरामजीकी भाँति हैं।

कहने, सुनने तथा स्मरण करनेमें सुन्दर और मधुर लगनेवाले ये दोनों अक्षर 'रा' और 'म' तुलसीदासजीको भगवान् श्रीराम और श्रीलक्ष्मणजीकी भाँति सदा ही प्रिय हैं—

कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के॥

(रा०च०मा० १। २०। ३)

इस कलियुगमें इच्छित पदार्थोंको प्रदान करनेवाले, लोक और परलोक दोनोंको सुधारनेवाले, 'श्रीराम-नाम' के ये दोनों अक्षर—'रा' और 'म', इस लोकमें तो भक्तरूपी नन्हें शिशुकी रक्षा और पालन-पोषण करनेवाले माता-पिताके समान ही हैं—

राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥

(रा०च०मा० १। २७। ६)

संसारमें आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—ये चार प्रकारके श्रीभगवान्‌के भक्त होते हैं और इन चारोंका काम 'श्रीरामनाम' के सहारेसे ही चलता है। वैराग्य, ब्रह्मसुख, परमात्माके गूढ़ रहस्य, अणिमादिक सिद्धियोंकी प्राप्ति और प्राकृत संकटोंसे मुक्ति श्रीभगवान्‌के 'श्रीनामजप' के सहारेसे ही होती है—

साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥
जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥

(रा०च०मा० १। २२। ४-५)

श्रीगोस्वामीजी 'नाम' का महत्त्व और इसकी आवश्यकताकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए कहते हैं कि किसी भी पदार्थ अथवा प्राणीकी पहचान 'नाम' के बिना नहीं हो सकती। निर्गुण-निराकार-ब्रह्मको माननेवालोंको भी 'नाम' का सहारा लेना ही पड़ता है; क्योंकि 'निर्गुण-निराकार-ब्रह्म' का ज्ञान करानेवाला शब्दोंका समूह भी अपने आपमें एक 'नाम' है, जो सर्वव्यापी, सर्वसत्तामय और केवल अनुभवगम्य परमात्माका परिचायक है। विभिन्नरूपोंमें पूजित अथवा अवतरित हुए सगुण-ब्रह्म जैसे—भगवान् श्रीब्रह्माजी, श्रीविष्णुजी, श्रीशंकरजी, श्रीगणेशजी, श्रीरामजी, श्रीकृष्णजी अथवा भगवती श्रीदुर्गाजी आदि ये सब तो अपने-अपने 'श्रीनाम' (और स्वरूप)-से ही जाने-पहचाने जाते हैं।

श्रीगोस्वामीजी आगे कहते हैं कि विरोधाभासी प्रतीत होनेवाले 'निर्गुण और सगुण' ब्रह्मके बीच 'नाम' ही दोनोंका बोध करानेवाले एक चतुर दुभाषियेका अथवा 'निर्गुण एवं सगुण' साधनारूपी नदीके दोनों किनारोंको मिलानेके लिये एक सुन्दर और सशक्त पुलका काम करता है। इसीलिये योगी-वैरागी-ज्ञानी साधक भी अपनी जिह्वासे कोई-न-कोई 'नाम' ही जपते हुए अपने आपको इस मोहरूपी अन्धकारमय संसारमें सदा जाग्रत् रखते हैं। वे भी 'श्रीनाम-जप' के प्रभावसे ही परमात्माकी गूढ़ गतिको जान पाते हैं और ब्रह्म-सुखका अनुभव करते हैं। श्रीगोस्वामीजी पूरे विश्वाससे कहते हैं—***'उभय अगम जुग सुगम नाम तें'*** अर्थात् सर्वव्यापी और सर्वसत्तामय परमात्माको निर्गुण और सगुण केवल दो ही 'नाम' अथवा 'स्वरूपों' में जाना जाता है। निर्गुण-अवस्थामें अत्यधिक कठिनतासे अनुभवमें आनेवाले और सगुणरूपमें भी कठिनतासे प्राप्त होनेवाले दोनों ही प्रकारके ईश्वरकी प्राप्तिको केवल 'श्रीनाम' ही सुगम बनाता है।

श्रीभगवान् भक्तों, पृथ्वी, ब्राह्मणों, गायों और देवताओंके संकट-हरण और कल्याणके लिये अवतार लेते हैं और अपने अवतारका निश्चित हेतु पूरा होनेपर वापस अपने श्रीधाम पधार जाते हैं। लेकिन श्रीभगवान्‌का 'श्रीराम-नाम' तो उनसे भी बढ़कर अनन्त और अधिक प्रभावशाली है। कभी न लुप्त होनेवाले 'श्रीराम-नाम' के अवतार-स्थान तो भक्तों/साधकोंके अन्तःकरण-चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) तथा उनके कान, नेत्र, जिह्वा और हृदय हैं—

भक्तों/साधकोंके 'मन' में अवतार—कहते हैं कि भक्ति 'मन' के बिना, यानी कि 'मन' को श्रीभगवान्‌में लगाये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना नहीं हो सकती। यह भी कहा जाता है कि श्रीभगवान्‌की भक्ति उनके प्रति पूर्ण समर्पणके बिना अधूरी रहती है, जो 'बुद्धि'के बिना नहीं होता। इसीलिये श्रीभगवान् कहते हैं—**'मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्'** (गीता ८। ७) अर्थात् यदि तुम अपने 'मन और बुद्धि' दोनोंको मुझे अर्पण कर दोगे तो तुम मुझे (श्रीभगवान्‌को) प्राप्त हो जाओगे—यहाँपर मन और बुद्धि दोनोंको श्रीभगवान्‌को अर्पण कर देना और अपने 'मन और बुद्धि' दोनोंमें उनको (श्रीभगवान्‌को) अवतरित कर लेना या बसा लेना—एक ही बात है, जो उनके 'श्रीनाम' के पूर्ण श्रद्धा-विश्वासके जपके सहारेसे ही होना सम्भव बताया गया है। श्रीगोस्वामीजी श्रीरामचरितमानसका समापन करते हुए लिखते हैं—

जासु पतित पावन बड़ बाना। गावहिं कबि श्रुति संत पुराना॥
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजें गति केहिं नहिं पाई॥
(रा०च०मा० ७। १३०। ७-८)

भक्तों/साधकोंकी 'बुद्धि' में अवतार—

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ॥
(रा०च०मा० १। २२। १—३)

नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥
(रा०च०मा० १। २३। ८)

अर्थात् श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि ब्रह्म-सुखके आनन्दमें सदा मग्न रहनेवाले ज्ञानी-वैरागी साधकजन भी अपनी इस परमानन्दमयी अवस्थाको प्राप्त करनेके लिये 'श्रीनाम'को पहले अपनी 'बुद्धि' में अवतरित करके उसका निरूपण करते हैं यानी उसकी महिमा और महत्ताको भली-भाँति जानते-समझते हैं, जो 'बुद्धि' के बिना नहीं हो सकती, फिर पूर्ण श्रद्धा-विश्वाससे उसके (श्रीनामके) जपके सहारेसे ब्रह्मसुखरूपी, ज्ञानरूपी और वैराग्यरूपी फलको प्राप्त करनेमें सफल होते हैं।

भक्तों/साधकोंके 'चित्त' में अवतार—'चित्त' का सम्बन्ध चेतनासे है और चेतनाका सम्बन्ध किसी विषय-वस्तुके ज्ञानको जाग्रत् रखनेसे बताया गया है। 'चित्त'को दैविक, प्राकृतिक और धार्मिक वृत्तियोंका संचय-स्थान भी कहते हैं, जिसमें ईश्वरका वास होता है—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥
(रा०च०मा० ७। ११७। २)

इस कलिकालमें योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत और पूजा-जैसे कठिन नियमोंवाले कर्म/साधनोंद्वारा भगवत्प्राप्ति कर लेना अथवा अपना लोक-परलोक सुधार लेना आसान नहीं है। अत: श्रीभगवान्‌के परम पावन 'श्रीनाम'के निरन्तर स्मरण, उनके 'परम पावन गुणों' के निरन्तर गायन-श्रवणके अलावा जीवके कल्याणका और कोई दूसरा साधन नहीं है—

एहिं कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥
(रा०च०मा० ७। १३०। ५-६)

चेतनाको 'चित्त' में जाग्रत् कर लेना, संचय कर लेना अथवा बसा लेना ही, 'चित्' में 'श्रीभगवान् और उनके श्रीनाम-स्वरूप'का अवतरण/अवतार माना जाता है।

भक्तों/साधकोंके 'अहंकार' में अवतार—

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥
(रा०च०मा० ३। ११। २१)

महर्षि सुतीक्ष्ण श्रीभगवान्‌से कहते हैं—प्रभो! मेरे मन-बुद्धिसे एक 'अभिमान' कभी न जाय कि श्रीरघुपति मेरे स्वामी हैं और मैं उनका सेवक हूँ। इसी स्थितिको भक्तों/साधकोंके 'अहंकार' में 'श्रीभगवान् तथा उनके श्रीनाम-स्वरूप' का अवतार माना जाता है।

भक्तोंके 'श्रवण (कानों)' में अवतार—

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥
(रा०च०मा० २। १२८। ४-५)

भक्तोंके 'कान' समुद्रके समान होते हैं और 'श्रीनाम' से युक्त श्रीभगवान्‌की आनन्ददायक नाना प्रकारकी कथारूपी नदियाँ आकर निरन्तर उनमें लीन होती रहती हैं, फिर भी उनके 'कान' कभी तृप्त नहीं होते हैं। भक्तोंद्वारा श्रीभगवान्‌की 'श्रीनाम' से युक्त कथाओंको और अधिकाधिक सुनते रहनेकी सदैव ही बनी रहनेवाली लालसाको ही उनके 'कानों' (श्रवण)-में श्रीभगवान्‌के परम पावन 'श्रीनाम-स्वरूप'-का शाश्वत अवतार माना जाता है।

भक्तोंके 'लोचन (नेत्रों)' में अवतार—

लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥
(रा०च०मा० २। १२८। ६-७)

भक्तोंकी एक बड़ी प्रबल लालसा रहती है कि उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके इष्टदेवके दर्शन यथाशीघ्र हो जायँ। इसलिये, जैसे चातक पक्षी मेघों (बादलों)-के दर्शनके लिये सदैव आकाशकी ओर टकटकी लगाये देखता रहता है, वैसे ही भक्तजन भी श्रीभगवान्‌के दर्शनोंके लिये सदैव पलक-पावँड़े बिछाये रहते हैं। 'श्रीनाम' से चिह्नित श्रीभगवान्‌के इष्ट स्वरूपको नेत्रोंमें सदैव बसाये रखना ही भक्तोंके 'नेत्रों' में 'श्रीनाम-स्वरूप' का अवतार माना जाता है।

भक्तोंकी 'जीहा (जिह्वा)' में अवतार—

जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु॥

(रा०च०मा० २।१२८)

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि श्रीभगवान्‌का यश/कीर्ति एक विमल सरोवरके समान है और भक्तोंकी जीहा (जिह्वा)-रूपी हंसिनी इस सरोवरमेंसे श्रीभगवान्‌के 'श्रीनाम' और उससे युक्त उनके श्रीरूप, श्रीलीला और श्रीधामके महिमा-कथारूपी मुक्ताहल (मोतियों)-को निरन्तर चुनती रहती है, अर्थात् उनका निरन्तर गायन करती रहती है। यह 'श्रीनाम'-रूप-लीला-धामका निरन्तर गायन ही उनकी जिह्वापर 'श्रीनाम-स्वरूप'का अवतार माना जाता है।

भक्तोंके 'उर (हृदय)' में अवतार—

जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई॥

(रा०च०मा० २।१३१।५-६)

भक्तजन सांसारिक सुख देनेवाले जाति-पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, प्रिय और परिवारजन तथा घरबार—इन सबको त्यागकर केवल एक विशेष 'श्रीनाम' से युक्त अपने इष्ट-देवके स्वरूपको ही सदैव अपने 'उर यानी हृदय' में बसाकर रखते हैं। यहाँपर भक्तोंद्वारा विशेष 'श्रीनाम' से युक्त अपने इष्टदेवके स्वरूपको सदैव अपने 'हृदय' में बसाये रखना ही उनके 'हृदय' में 'श्रीनाम-स्वरूप' का अवतार माना जायगा।

श्रीगोस्वामीजी 'श्रीनाम-वन्दना-प्रसंग' में कहते हैं—

नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥
देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥
रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

(रा०च०मा० १।२१।२, ४—६)

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी॥

(रा०च०मा० १।२१।१)

अर्थात् भगवान् और उनका 'श्रीनाम' ये दोनों उन (ईश्वर)-की ही उपाधियाँ हैं, जो अनादि, अविनाशी, दिव्य और सुन्दर हैं। इनकी अकथनीय महिमाको शुद्ध भक्तियुक्त बुद्धिद्वारा ही थोड़ा-बहुत समझा जा सकता है। किसी भी स्वरूपमें, यदि बिना नामकी कोई वस्तु अपनी हथेलीपर भी रखी हो तो भी उसकी पहचानके लिये उस वस्तुको कोई-न-कोई नाम तो देना ही होता है; क्योंकि किसी भी रूप-स्वरूपकी पहचान तो उसके 'नाम' से ही होती है। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि 'नाम' की महिमा ही ऐसी है कि यदि स्वरूपको जाने बिना भी 'नाम' का स्मरण किया जाय तो भी 'नाम' का स्मरण उस अनजाने स्वरूपके प्रति हृदयमें स्नेह उत्पन्न कर देता है और अन्तमें उस स्वरूपको हृदयमें प्रकट भी कर देता है।

श्रीभगवान्‌का स्वरूप उनके 'श्रीनाम' के आधीन बताया गया है। श्रीगोस्वामीजी तो श्रीभगवान्‌के 'श्रीनाम' और श्रीभगवान्‌में 'स्वामी' और 'सेवक' का सम्बन्ध बताते हुए कहते हैं कि जैसे 'स्वामी' के पीछे 'सेवक' चलता है, वैसे ही 'नाम' के पीछे 'नामी' अर्थात् श्रीभगवान् चलते हैं, यानी कि जहाँ-जहाँ श्रीभगवान्‌के 'श्रीनाम' का सुमिरन-कीर्तन होता है, वहाँ-वहाँ श्रीभगवान् स्वयं पहुँच जाते हैं।

भगवान् स्वयं कहते हैं—

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥

(रा०च०मा० ३।१६)

हे प्रिय लक्ष्मण! जो जन मन, वचन और कर्म तीनों प्रकारसे मेरे प्रति ही समर्पित रहकर निष्काम भावसे मेरा भजन करते हैं, मैं तो ऐसे भक्तोंके हृदयरूपी कमलमें सुखपूर्वक विश्राम करता हूँ अर्थात् सुखपूर्वक निवास करता हूँ।

इस प्रकार, जैसे श्रीभगवान् और उनके 'श्रीनाम'में अभिन्न सम्बन्ध है, वैसे ही श्रीभगवान्‌से भक्तका सम्बन्ध भी अभिन्न ही है और 'श्रीनाम' रूपमें श्रीभगवान्‌के ये उपर्युक्त अवतार भी शाश्वत हैं, जो कभी लुप्त नहीं होते, इनका नित्य-धाम तो अनन्य भक्तोंके मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, कान, नेत्र, जिह्वा और हृदय ही होते हैं।

[क्रमशः]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आस्तिकताकी आधारशिलाएँ

प्रतिकूलताकी अनुभूति हमारा भ्रममात्र है

जब सर्वत्र प्रभुका ही सच्चिदानन्दमय विलास निरन्तर चल रहा है, उनकी सच्चिन्मयी लीलाके अतिरिक्त यहाँ कुछ भी नहीं है, तब हमें प्रतिकूलताकी अनुभूति क्यों होनी चाहिये? क्या अनन्त दयामय प्रभुमें इतना विवेक नहीं है कि वे हमारे लिये, अपने शिशुके लिये कोई ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देंगे, जो परिणाममें सुखद न हो? माँके द्वारा अपने बच्चोंके लिये कोई ऐसी चेष्टा होती है क्या, जो उन्हें दुःखमें डालनेवाली हो? माँ तो भूल कर भी सकती है; क्योंकि वह सर्वत्र अवस्थित नहीं है, वह सर्वशक्तिसमन्विता नहीं है, उसमें सम्पूर्ण सर्वज्ञताका विकास नहीं हुआ है और अहैतुक सौहार्दमय, सम्पूर्ण विश्वके लिये निरन्तर लहरानेवाला सागर भी वह नहीं बन सकी है, किंतु प्रभुमें तो ये चारों बातें निरन्तर वर्तमान हैं। वे हमारे लिये प्रतिकूल परिस्थिति क्यों उत्पन्न करेंगे? प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न करके हमें दुःखी क्यों करेंगे? सचमुच, सचमुच—यह हमारा भ्रम ही है।

वास्तवमें कोई भी प्रतिकूल लगनेवाली परिस्थिति सचमुचमें हमारे लिये अनन्त अपरिसीम सुखका द्वार खोलनेके लिये निर्मित हुई है। उसके कण-कणमें ही आत्यन्तिक अनुकूलता है। आस्तिकताके अभावके कारण ही हम उस अनुकूलताको देख नहीं पाते हैं। कदाचित् हम यह दृष्टि अपना सकें अर्थात् लीलामय प्रभुके चिद्विलासकी सत्ता हमारे मनमें स्थान पा सके तो फिर हम प्रतिकूलताकी भावनाको सहज ही जीत सकते हैं।

× × ×

हम यही भाव जीवनमें लानेकी चेष्टा करें, हमारी ऐसी भावना बने कि 'प्रभो! अनन्त विपत्तियोंके जालसे तू मुझे भले ही बाँध ले, पर अब मुझे ऊपर उठा ले। मुझे अपने अंकमें ले ले।' सचमुच, अगर भीतरी मनसे हम प्रभुके सामने ऐसा प्रस्ताव रख सकें तो देखेंगे कि प्रतिकूलताके बादल हटने लगेंगे; क्योंकि वास्तवमें प्रतिकूलताकी अनुभूति तो हमारा भ्रममात्र है। भ्रम कोई वस्तु नहीं होती। जैसे अन्धकार है, वैसे ही भ्रम है। आलोकके अभावका ही अर्थ है—अन्धकार—भ्रम। उषाकी लालिमा जैसे घोर रात्रिके अन्धकारको आत्मसात् करने लगती है, वैसे ही प्रतिकूलताका हमारा भ्रम प्रभुके आलोकसे क्षीण-क्षीणतर होने लगेगा और दीखने लगेगा कि अरे, जिसे हम प्रतिकूलता समझ रहे थे, वह तो कोई वस्तु ही नहीं है। आजतक किसीके लिये भी, क्षणभरके लिये भी प्रभुके परम मंगलमय विधानमें अनादिकालसे कोई भी प्रतिकूलताकी परिस्थिति सृष्ट न हुई है और न अनन्तकालतक सृष्ट होगी। चाहें तो हम भी विश्वास करके सुखी हो सकते हैं।

भय मनकी कल्पना है

हम सोचकर देखें—हमें भय क्यों होना चाहिये? जब सब जगह अनन्तशक्तिसम्पन्न, सब कुछ जाननेवाले, हमारे प्रति अनन्तसौहार्दमय प्रभु ही नित्य-निरन्तर अवस्थित हैं तो किस प्राणी-पदार्थसे हम भय करें? खूब गहराईसे सोचें, भय एक झूठमूठ अनादिकालसे कल्पित मनकी कल्पना है। हमें मामूली-से-मामूली बातमें भय होने लगता है; न जाने कितने प्रकारके भय हमें घेरे हुए हैं। क्यों नहीं हम प्रत्येक प्रतिकूल लगनेवाली परिस्थितिमें अपनी आँख प्रभुकी ओर कर लेते और निरन्तर पासमें रहनेवाले, सर्वशक्तिमय, सब कुछ जाननेवाले, अनन्त, अपरिसीम सौहार्दमय प्रभुपर ही सब प्रकारके भयको पूजाके रूपमें सदाके लिये समर्पित कर देते? हम सब स्थितियोंमें सोचने लग जायँ—'जैसे प्रभुकी इच्छा होगी, हो जायगा। इसमें डरनेकी क्या बात है?'—सच मानें, भयकी सम्पूर्ण स्थितियाँ बदलने लगेंगी और हमारा मन सच्चिन्मय आनन्दसे भरने लगेगा।

क्रोधसे अपना और दूसरोंका अनिष्ट ही होता है

क्रोधको भी हम जीतें। क्रोध अपनेसे कमजोरपर आता है। हमारा रोष निकलेगा बच्चोंपर, नौकरोंपर तथा जिनसे हमें हानिकी सम्भावना नहीं है, उनपर। किंतु जिसके निमित्तसे क्रोध निकला हो, उसकी उस बुराईको तो वह दूर करनेसे रहा, उलटे वह बुराई एक बार दबकर अन्तश्चेतनामें वापस जाकर गहरी बन जायगी। अतएव क्रोधसे अपना और दूसरेका अनिष्ट ही होता है।

सोचें, क्या हमने सबके मंगलका ठेका ले रखा है और हमारे क्रोध करनेसे ही उसका मंगल हो जायगा? उसकी बुराई मिट जायगी? किंतु यह भ्रम है कि मैं डाँट-डपटकर किसीको सुधार लूँगा। अपने बच्चोंपर हम प्यारभरा शासन कर सकते हैं, पर उनमें क्रोधकी गन्ध भी नहीं आनी चाहिये। हम जान भी नहीं पाते, उन-उन अवसरोंपर उन बच्चोंका, नौकरोंका सुधार तो होता नहीं, उलटे हमारी आस्तिकताकी नींव भूकम्पकी भाँति हिलने लगती है, जो अभी-अभी आगे आनेवाली विपत्तियोंमें हमें और भी खिन्न बना देती है। इस दोषको सर्वथा सर्वांशमें जितना शीघ्र-से-शीघ्र हम कुचल सकें, कुचल डालें। नहीं तो उपासनाका प्रसाद इस वर्तमान नींवपर निर्मित नहीं हो सकेगा। क्रोधकी गन्ध भी उस उपासनाके महलकी दीवारोंमें दरार डाल ही देती है। अतएव खूब सावधानीसे व्रत लेकर इस दोषपर हम काबू पायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी—

नवधा भक्ति

[२] कीर्तन

(श्री 'चक्र')

जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु॥

बबूलोंकी अच्छी हरियाली है। उनकी पंक्ति सटी हुई और सघन है। भले उनके नीचे कोई विश्राम न कर सके, पर नेत्रोंको बड़ी अच्छी लगती है वह हरी-हरी रेखा। झड़बेरियोंके झुरमुट प्रकृति-बालिकाने यत्र-तत्र बिखेर दिये हैं और खेतोंकी मेंड़ोंपर पत्थर रखे हैं। उन्हें खेतोंसे चुनकर अलग किया गया है। जाड़ेमें किसी गरीबके पैरकी भाँति खेतोंकी काली मिट्टी शतशः विदीर्ण हो रही है। छोटे-छोटे काले पाषाण उनमें बिखरे पड़े हैं, कौन चुन पायेगा इन्हें।

उस झोंपड़ेके समीपसे यह सब आप देख सकते हैं। गाँव कुछ बड़ा नहीं होगा। उसमें चालीसके लगभग घर हैं—और वे भी सब कच्चे। कुछपर खपरैलें हैं और कुछपर फूस। यह एक झोंपड़ा सबसे अलग दक्खिन ओर क्यों है? है तो स्वच्छ, लिपा-पुता और आकर्षक। गाँव है ब्राह्मणोंका, उसमें एक-दो घर कुर्मी भी हैं और सम्भवतः एकाध घर कोष्ठी भी। यह चाण्डालका झोंपड़ा है।

चाण्डालका झोंपड़ा? इतना स्वच्छ, लिपा-पुता! और उसकी दीवालपर गेरूसे क्या लिखा है—'गोविन्द, नारायण, विट्ठल, पाण्डुरंग!' सामने तुलसी-चबूतरा और गेदोंके पेड़। तुलसीजीपर पुष्प चढ़ाये गये जान पड़ते हैं। घरमें बालक नहीं, तभी तो इतनी शान्ति है। बच्चे होते तो बाहर अवश्य आ जाते। घरमें किसीके बोलनेतकका शब्द क्यों नहीं होता?

झोंपड़ा बड़ा नहीं है। एक या दो कोठरियाँ होंगी उसमें। अवश्य ही एक छोटा आँगन है। झाँककर देखनेसे सब कुछ नहीं, तो भी बहुत कुछ देखा जा सकता है। एक गाय बँधी है, सिरसे पैरतक काली। उसे अच्छी सेवा मिलती होगी, यह उसका शरीर कह रहा है। गलेमें एक फूलोंकी माला पड़ी है। दूध-जैसा उज्ज्वल बछड़ा उसके समीप शान्त खड़ा है। दूध उसने पी लिया होगा, नहीं तो पीता नहीं? ऐसे सुघर, सजे बछड़े मैंने कम देखे हैं। अपने गलेकी माला उसे अच्छी नहीं लगती। फूलोंसे उसे प्रेम नहीं। रह-रहकर गर्दन हिलाता है उसे निकालनेको। वह फुदकता क्यों नहीं? क्या देख रहा है?

एक काला-कलूटा आदमी लेटा है पेटके बल हाथ फैलाकर। वह सम्भवतः गो-माताको प्रणाम कर रहा है। हड्डीके ढाँचेपर मढ़ा हुआ काला चमड़ा। स्नायुजाल बाहर आ जानेको उतावले हैं। कमरमें एक मैली, फटी कछनी है। दोनों हाथोंके समीप जो गायके पैरोंके पासतक लम्बे फैले हैं, कुछ फूल बिखरे हैं। गो-माता बड़े प्रेमसे अपने चतुष्पादको छोड़कर इस द्विपाद वत्सका मस्तक चाट रही हैं। बछड़ा बड़े आश्चर्यसे देख रहा है उसे। वह समझ नहीं पाता कि वह भी उसे चाटे या केवल चौकड़ी भरते हुए बार-बार सूँघे।

'यह चाण्डालका घर है।' यह बात विस्मृत हो गयी। घरके सामने जो चबूतरा था, मैं उसपर चढ़ आया था और मेरी भीतर जानेकी इच्छा हो रही थी। 'उसके काममें बाधा होगी' इसी विचारसे मैं ठिठक रहा था। पूजा समाप्त हो गयी। उसने धीरेसे हाथ समेटे, घुटनोंके बल बैठकर फिर एक बार गायके खुरोंपर मस्तक रख हाथसे वहाँकी धूल नेत्रोंमें लगाकर उसने बछड़ेके पैरोंके पास सिर रखा। अब उस चंचलने सिर सूँघा और उछल पड़ा। हाथसे पैर छूनेका अवसर दिया नहीं उसने। अब उसके पास जाना व्यर्थ था। उछल रहा था वह तो। दरवाजेकी ओर उस काले आदमीने देखा नहीं। उसने केवल हाथ फैलाकर एक जोड़ी करतालें उठायीं। वे आड़में रखी थीं। वह तो उछल-उछलकर नाचने लगा—आकाशकी ओर मुख करके दोनों हाथ उठाये करतालकी लयमें कीर्तनके स्वरसे आँगन गूँज उठा। बछड़ा फुदकना भूल गया और गाय एकटक उसे देखने लगी।

'गोविन्द हरि नारायण, विट्ठल पाण्डुरंग!'

× × ×

'उस दिन मुझे सबसे अधिक कष्ट हुआ प्रणाम करनेसे। यों अनेकों लोग प्रणाम करते हैं। जब कोई प्रणाम करता है, यदि वह अवस्थामें बहुत छोटा न हुआ तो बहुत बुरा लगता है। अच्छा होता यदि प्रणाम करनेके बदले उसने गाली दी होती या चपत मारी होती।' ऐसा क्यों होता है, कह नहीं सकता। जब उस बुड्ढेका कीर्तन समाप्त हुआ, उसकी दृष्टि द्वारकी ओर गयी। पृथ्वीपर सिर रखकर उसने कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'महाराज!' वह समझ ही नहीं पाता था कि क्यों एक सफेदपोश उसके झोंपड़ेपर आया है। वह डर गया था।

'वह क्या करे?' समझ नहीं पाता था। समीप जाय तो छाया पड़ जायगी, बैठनेके लिये कहनेका साहस वह करे कैसे? वहींसे बोला, 'क्या आज्ञा है, सरकार!'

'इधर आओ!' मैंने संकेत किया और वह आकर पाँच हाथ दूर खड़ा रहा। मैं पृथ्वीपर बैठ गया और मेरे संकेतपर वह भी पृथ्वीपर हाथ जोड़े बैठ रहा। सभ्यताके नाते मैंने पूछ लिया था कि 'तुम्हारे किसी काममें बाधा तो नहीं पड़ेगी?' प्रश्न व्यर्थ था। वह एक उच्चवर्णके पुरुषसे कैसे कह सकता था कि 'अमुक काम करना है।' मेरे प्रश्नोंके उत्तरमें उसने बताया कि उसने बचपनमें एक ईसाई पाठशालामें कुछ पढ़ा है। उसके पास एक भजनोंकी पोथी है और वह उसे अच्छी प्रकार पढ़ लेता है।

आजसे दस वर्ष पहलेकी बात है। शहरमें एक बुआजी आये थे। बड़ी प्रसिद्धि थी उनकी। वह भी उनके दर्शनोंको गया था। उस छोटी-सी नदीके किनारे बड़े मैदानमें उनका कीर्तन हो रहा था। सबसे दूर, एक कोनेमें वह खड़ा था। उसे कुछ भी सुनायी नहीं पड़ा। भीड़ बहुत थी और लोगोंको वह छू न सकता था। दूर खड़ा था। केवल बुआजीके दर्शन कर सका था। उनके हाथ करताल लिये आकाशमें उठे थे और वे आकाशकी ओर देखते नाचते थे। बीचमें खड़े होकर कुछ कहते भी थे। इतना देख सका, यही क्या कम सौभाग्य था उसका।

उसी दिन उसने ये करतालें खरीदी थीं। ठाकुरजी तो चाण्डालके घर प्रतिष्ठित हो नहीं सकते थे। वह तुलसीजी और गो-माताकी पूजा करता है। खजूरके पत्ते काटकर झाड़ू बना लेता है और बाँसकी टोकरियाँ बनाता है। बाँस टोकरियाँ बेचकर खरीद लेता है। इतनेसे उसका पेट भर जाता है। उसकी स्त्रीको मरे बीस वर्ष हो गये। फिर दूसरी नहीं लाया। कामसे बचे समयमें अब वह अपनी करतालें लेकर भजन गाता है।

पूछनेपर इतना और भी ज्ञात हो गया कि गो-माता केवल पूजाके लिये हैं। दूधसे उसे कोई मतलब नहीं। वह तो उनके प्यारे बछड़ेकी वस्तु है। उसका काम उनकी सेवा करना है और जहाँतक उसकी शक्ति है, वह उनकी सेवामें कोई त्रुटि नहीं करता।

एक ही इच्छा है उसमें। एक बार पण्ढरपुर जाना चाहता है। मन्दिरमें तो जा सकेगा नहीं। केवल कलश और गरुड़-स्तम्भके दर्शन करेगा। इतनेके लिये उसकी लालसा मचल उठी है। वर्षोंसे वह दो पैसे जुटानेमें लगा है। पता नहीं कब उस लोकका बुलावा आ जाय, इसी वर्ष जायगा वह। मार्गमें टोकरियाँ और झाड़ू बनाकर पेट भर लेगा, पर गो-माताका क्या हो? वह इसी उलझनमें था। अभी चल दे, दो-चार दिनमें आषाढ़ी एकादशीतक तो पहुँच ही जायगा। मेरा मन भारी हो गया था। मैंने गाय रखनेकी प्रस्तावना की। बहुत कुछ हिदायतें देकर उसने उसी समय गाय खोल दी। मेरे पीछे चल पड़ा वह उनको लेकर।

× × ×

हाथोंमें करताल, बगलमें झंडा और झोलेमें बाँस काटने-छीलनेकी 'बाँसकी'! आजतक ऐसा पण्ढरपुरका यात्री किसीने नहीं देखा था। अभी तो यात्रा प्रारम्भ होनेको तीन महीने हैं और यह एकाकी चाण्डाल! लोगोंने बड़े कौतुकसे देखा उसे। यह करेगा क्या वहाँ जाकर! दर्शन तो होनेके नहीं। कानोंकान समाचार फैलने लगा।

अब उसे भूख कम लगती है। दो-तीन दिनपर कहीं बनाता है। रात्रिको जो गाँव दिखायी पड़ा, उसके बाहर कहीं पानीकी सुविधा देखकर अपना गैरिक झंडा गाड़ देता है। गर्मीके दिन हैं, रात्रिमें ओढ़नेको कुछ चाहिये नहीं। दिनकी धूप तो सदासे सहता आया है। कभी-कभी तीसरे-चौथे दिन वह विश्राम करता है दिनको भी। उस दिन खजूरके पत्ते काटता है, झाड़ू बनाता है और बेचता है। इन्हीं पैसोंसे उसके कई दिन कट जाते हैं। यात्रामें बाँसकी खटखट उसने की नहीं।

उसे गिरकर मूर्च्छित होना नहीं आता। हाथ-पैर बचाकर गिरना सीखे भी तो क्या लाभ। उसे क्या मंचपर या भीड़में कीर्तन करना है। उसकी करतालकी ध्वनि नीरव पहाड़ियोंमें टकराकर लौट आती है। उसका 'गोविन्द, हरि, विट्ठल' मार्गके टीलों, बबूलके वृक्षों, बेरकी झाड़ियों और काले खेतोंपर घूमकर, ढेलेके नीचे दुबके पतिंगोंको सावधान करके बबूलपरकी चिड़ियोंको चहकाकर, मार्गमें चरती गायों और उनके चरवाहोंको चौंकाकर उस नीले नभ-मार्गसे सीधे कहीं चली जाती है। सम्भवतः पण्ढरपुर! जहाँ वह ईंटपर खड़ा देवता मुसकरा रहा है, उसीके समीप।

नेत्रोंसे दो धाराएँ अवश्य झरती रहती हैं। उसे पता नहीं रहता कि वह खड़ा है, चल रहा है या नाच रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपरके उस नीले पर्देपर उसकी भीतर घुसी छोटी-छोटी निस्तेज आँखें कुछ देखती हैं, पता नहीं क्या। उसके इस कीर्तनको देखने और सुननेवाला कोई नहीं। कोई होता तो वह ऐसा नृत्यमय कीर्तन शायद ही कर पाता।

साधारण मानव सुने या न सुने, पर सभी तो साधारण नहीं होते। भक्तमण्डली चौंकी। योगीजी अपने व्याघ्रचर्मसे उठे। उन्होंने न तो ऊपर मृगचर्म डाला और न त्रिशूल लिया, जैसा वे सदा नीचे उतरते समय करते हैं। पैदल पहाड़ीसे नीचेकी ओर झपटे। मार्ग छोड़ दिया उन्होंने। चिलम जली नहीं थी। एकने उसे हाथमें लेकर खड़े-खड़े दम लगाया और फिर डाल दिया। धूनी छोड़कर सब नीचे उतरने लगे। वे मार्गसे उतर रहे थे। पाँच भक्तोंकी मण्डली थी वहाँ।

पहाड़ीके ठीक नीचेसे पण्ढरपुरका मार्ग जाता है। योगीजी ऊपर रहते हैं। नीचेसे एक ध्वनि पहुँची और उसने बलात् उस साधकको खींचा। एक नंगा काला आदमी करताल उठाये नाच रहा है। बगलमें झंडा गिरकर एक पेड़के सहारे टिका खड़ा है। कंधेपर झोली है। एक क्षण योगीजी रुके और फिर वे दुगुने वेगसे उधर झपटे। मार्गसे भक्तमण्डली चिल्ला रही थी—'वह चाण्डाल है!' वे लोग इस यात्राका वर्णन सुन चुके थे। योगीजीने सुना नहीं। वे दण्डवत् उसके आगे गिर पड़े।

उसके नेत्र ऊपर थे। पैर हाथपर पड़ते ही ध्यान टूटा। चौंककर पीछे हट गया। 'गुरुदेव!' योगीजी रो रहे थे। झपटकर उन्होंने दोनों पैर भुजाओंमें कस लिये। वह स्तब्ध खड़ा था। भक्तोंने देखा और समझा योगीजी पागल हो गये। 'मैं अब नहीं छोड़ता इन चरणोंको! आज ही रात्रिमें तो पाण्डुरंगने मुझे कहा है।' उसकी समझमें कुछ आया नहीं। भक्तमण्डली खिसक चली।

जीवनमें आज ही उसे ऐसी विपत्तिमें पड़ना पड़ा था। वह कुछ भी समझ पाता नहीं था। चाण्डाल बतानेपर भी उसे छुटकारा नहीं मिला। यह साधु उसके पैर पकड़े है! इस पापसे कैसे छूटेगा वह। उधर योगिराजको, जब वे रोते-रोते दुःखी होकर सो गये थे, रात्रिमें स्वप्नमें भगवान्ने कहा था कि 'कल पहाड़ीके नीचे मेरा एक प्यारा भक्त इधरसे कीर्तन करता आयेगा, उसके साथ पण्ढरपुर आओ।' अन्तमें योगीजीके साथ चलनेकी बात उसने मान ली इस शर्तपर कि वे आगे-आगे चलेंगे।

× × ×

वह भीड़, उतना बड़ा जनसमुदाय! कैसे गरुड़-स्तम्भके दर्शन होंगे। योगीजी उसे किसी भी भाँति जनसमूहमें ले जानेको राजी न कर सके। मार्गमें वह प्रायः आपेमें नहीं रहा है। उसे पकड़कर लाये हैं योगीजी। जंगलके कन्द वे खोद लाते थे और कभी भूनकर, कभी कच्चा दोनों खा लेते थे। वह तो अपने कीर्तनमें इतना मग्न हो गया कि खजूरके पत्ते काटनेकी स्मृति ही न रही। वस्तुतः जब कन्द मिल जाते थे, तब वह क्यों उधर ध्यान देने लगा।

एकादशीको यों ही भीड़ होती है। इस देवशयनीको तो पूरा वारकरी-सम्प्रदाय आता ही है, दूसरे भक्तवृन्द भी आते हैं। सड़कपर शरीर छिला जाता है। नगरके बाहर ही दोनोंने अपने झंडे गाड़ दिये। निश्चय हुआ कि रात्रिमें जब भीड़ कुछ घटेगी, दर्शन हो जायँगे। कलश-दर्शन तो हो ही गये, गरुड़स्तम्भ दूरसे भी दीख जाय तो पर्याप्त है। भीड़ तो रात्रिभर रहेगी ही।

जबसे कलश दृष्टि पड़ा, वह आपेमें है नहीं। उसकी करताल बन्द नहीं होती और न उसके पैर रुकते। उसे न कुछ सुनायी पड़ता और न कुछ दीखता। वह अपने कीर्तनमें मस्त है और योगीजी उसकी सम्हालमें। रात बढ़ती जाती है, पर भीड़ भी सड़कपर बढ़ती जाती है। उसके घटनेके कोई लक्षण नहीं।

'आपलोग दर्शन करने नहीं चलेंगे?' दो बजे रात्रिको ये लम्बे गौरवर्ण पीताम्बरधारी पुरुष हैं कौन, जो सेवकके साथ पूछने आये हैं? योगीजी चकित थे। सेवकके हाथमें लालटैन थी। इस भीड़में दूसरेको पूछनेवाला कहाँसे निकल सकता है कोई। 'आइये चलें।' उन्होंने आग्रह किया।

वह तो आपेमें था नहीं। योगीजीने एक कंधा पकड़ा और खींच ले चले। 'जहाँतक भीड़ न मिले, वहाँतक पहुँचनेमें तो कोई बाधा नहीं। आगे देखा जायगा।' उन्हें रुकना नहीं पड़ा। काईकी भाँति भीड़ हटती जाती थी और उनके लिये स्थान बनता जाता था।

'हमें आगे नहीं जाना है।' योगीजी गरुड़स्तम्भके पास रुक गये। 'हमारे गुरुदेव चाण्डाल हैं!' उन्होंने कहकर उसकी ओर संकेत किया। वह ज्यों-का-त्यों नाच रहा था।

'आप तो आ सकते हैं!' वे भद्रपुरुष मुसकराये।

'मैं श्रीगुरुचरणोंसे आगे नहीं जा सकूँगा।' योगीजीने गम्भीरतासे उत्तर दिया। उन्होंने कुछ कहा नहीं। खुलकर हँस पड़े और मन्दिरमें चले गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाचते-नाचते पैर लड़खड़ाये। योगीजी न सम्हालते तो गरुड़स्तम्भसे सिर टकरा जाता और ....। फिर भी वह गिरा और कुछ चोट भी आ ही गयी।

'यह क्या?' योगीजी चौंके।' 'भगवान्की मूर्ति गरुड़स्तम्भसे तो दीखती नहीं थी। वे पहले भी पण्ढरपुर आ चुके हैं। नेत्र धोखा देते हैं या वे ही भूल रहे हैं?' सामने ही कमरपर हाथ रखे ईंटोंपर खड़े रुक्माई और विठोबाकी पुष्पसज्जित मूर्तियाँ स्पष्ट हैं। कह नहीं सकते—वे मन्दिरमें हैं, बरामदेमें या प्रांगणमें? यह देखनेका अवकाश किसे था।

योगीजीने देखा—उसने पृथ्वीपर मस्तक रखा। दोनों मूर्तियोंके दक्षिण कर लम्बे फैले आशीर्वाद देने और वह दृश्य अदृश्य हो गया। वे तो नगरके बाहर उसी बबूलके नीचे खड़े हैं और वह नाच-नाचकर गा रहा है 'रुक्माई-विट्ठल!'

तब क्या वे सो रहे थे? अब भी हाथमें वह गेंदेका पुष्प है, जो उन्होंने उठाया था और मस्तकमें प्रणाम करते समय लगा जल सूखा नहीं है। उन्होंने अपने गुरुदेवके श्रीचरणोंमें मस्तक रख दिया।

सन्त-उद्‌बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

मेरे निजस्वरूप! सत्संगका अर्थ है—सत्यका संग करना, यानी अपने जीवनमें सत्यनिष्ठाको धारण करना यानी सत्यका व्रत लेना। सत्यका संग करनेके लिये साधकको पहले तो श्रमरहित होना पड़ेगा।

शरीरसे काम न करनेका नाम श्रमरहित होना नहीं है। श्रमरहित होनेका अर्थ है कि संकल्परहित होना। करने और पानेके जो संकल्प हैं, ये ही साधकके जीवनमें श्रम हैं।

मनुष्य करने और पानेमें ही उलझा रहता है। इसलिये संकल्परहित होना बहुत जरूरी बात है। प्रश्न होता है कि हम श्रमरहित कैसे बनें?

श्रमरहित होनेका यह उपाय है—जो काम करनेलायक हो, उसको फलासक्ति छोड़कर सही ढंगसे पूरा करके रागरहित हो जायँ और पानेका लालच छोड़कर चाहरहित हो जायँ और करनेकी रुचिका भी त्याग करके कर्तृत्वके अभिमानसे रहित हो जायँ।

ये तीनों बातें चाहे तो कर्तव्य-परायण होकर कर लें, चाहे असंग होकर कर लें और चाहे भगवान्की शरण होकर कर लें। इन तीनों बातोंके होनेपर ही मनुष्य श्रमरहित हो सकता है।

श्रमरहित होनेपर ही सत्यका संग होता है और तभी सत्यकी प्राप्ति होती है। यही मानव-जीवनका उद्देश्य है।

साधन सभी अवस्थाओंमें किया जा सकता है। जो परिस्थितिविशेषकी अपेक्षा रखता है, उसको तो साधन ही नहीं कह सकते।

शरीरसे काम कर देने तथा वस्तु दे देनेका नाम ही सेवा नहीं है। सेवा तो हृदयका भाव है, जो हर परिस्थितिमें मानव भली प्रकार कर सकता है।

सेवाका मूल-मन्त्र यह है कि जो हमको मिला है, वह मेरा नहीं है और मेरे लिये भी नहीं है। यहाँसे सेवाका आरम्भ होता है।

अपनेको जो मिला है, उसको पर-सेवामें लगा देना सेवा है। सबसे बड़ी सेवा तो अपनेको सदाचारी और संयमी बना लेना है अथवा किसीको बुरा न मानना और किसीका बुरा नहीं चाहना है अथवा सुखीको देखकर प्रसन्न और दु:खीको देखकर करुणित होना है।

अपना सुधार कर लेना ही सच्ची सेवा है। जिसने अपना सुधार कर लिया, उसको सारे विश्वकी पूरी सेवासे उत्पन्न होनेवाले फलकी प्राप्ति होती है।

अपना सुधार क्या है? शरीरको श्रमशील और सदाचारी बना लेना—स्थूल शरीरका सुधार है।

मनको संयमी और संकल्परहित बना लेना, बुद्धिको विवेकवती तथा इन्द्रियज्ञानपर विजयी बना लेना, चित्तको अनुरागी और व्यर्थ चिन्तनसे रहित तथा अहंको सब प्रकारके अभिमानसे रहित बना लेना—सूक्ष्मशरीरका सुधार है।

सर्व प्रकारकी वासनाओंका त्याग करके असंग हो जाना कारणशरीरका सुधार है।

इस प्रकार जिसने अपने तीनों शरीरोंका सुधार कर लिया, उसको सारे विश्वकी सेवाका फल मिलता है।

उसके शरीरके परमाणुओंद्वारा सारे विश्वका हित होता है और सबका हित करना तथा चाहना ही सबसे उत्तम सेवा है।

जो दीख रहा है, वह मेरा नहीं है और मेरे लिये भी नहीं है—यह भजनका मूल मन्त्र है।

सेवा और भजन दोनोंसे ही प्रेमकी प्राप्ति होती है।

ॐ आनन्द!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीदेवराहा बाबाका अमृतमय उपदेश

(श्रीरामकृष्णजी रामानुजदास 'श्रीसन्तजी महाराज')

सभी सद्ग्रन्थों तथा धर्मशास्त्रोंका उपदेश है कि मनुष्य भगवान्‌की अनुभूति प्राप्तकर अपने मानव-जीवनको सफल बनाये, वैसे ही पूज्य श्रीबाबाका अमृतमय उपदेश है कि प्रत्येक मनुष्यको भगवान्‌की अनुभूति प्राप्तकर परम आनन्दमय जीवन जीनेका जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त है। इसी प्रसंगमें पूज्य बाबाश्रीने निर्देश करते हुए कहा—बच्चा! एक लकड़ी रामनाम है और दूसरी लकड़ी मनुष्यका हृदय है। रामनाममें भगवत्प्राप्ति करानेकी महान् शक्ति विद्यमान है। जब कोई साधक प्रेमपूर्वक रामनाम जपने लगता है तो हृदयके सारे विकार मिट जाते हैं और हृदयके पवित्र होनेपर स्वयं परम कृपालु भगवान् साधकके हृदयमें परमानन्दराशिके रूपमें प्रकट हो जाते हैं। तुलसीदासजी महाराजने भी कहा है—

नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥

(रा०च०मा० १।२३।८)

भगवान्‌का नाम जपनेसे साधकके जीवनके तीनों दोष—मल, विक्षेप और आवरण नष्ट हो जाते हैं और वे सच्चिदानन्दघनके दिव्य भावमें प्रकट हो जाते हैं।

भगवान्‌का नाम भक्तिका प्रधान अंग है। इसी उद्देश्यसे श्रीतुलसीदासजी महाराजने कहा है—

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥

(रा०च०मा० १।२१)

भगवान्‌की भक्ति-भावनाको 'मणिदीप' कहा गया है। कलिकालके सारे दोषोंसे मुक्त होनेके लिये रामनामकी साधना सर्वश्रेष्ठ है। इसीलिये रामनामको मणिदीप कहकर भक्तिकी सर्वश्रेष्ठ साधना बतायी गयी है। रामनामका आश्रय लेना भक्तिमणि है। जीव भगवान्‌का ही अंश है, अतः वह जब रामनाम जपता है तो उसके जीवनमें आनन्दकी वर्षा-ऋतु आ जाती है। तुलसीदासजी महाराजने सत्य ही कहा है—

बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास॥

(रा०च०मा० १।१९)

रामनाम भवरोगकी असली औषधि है। रामनामकी भक्तिसे अद्वितीय सच्चिदानन्दस्वरूप भगवत्तत्त्वका अनुभव हो जाता है, जिसकी चर्चा श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार की गयी है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

(१।२।११)

भगवत्तत्त्व एक ही है, जिसका अनुभव करना मानव-जीवनका चरम लक्ष्य है। सभी साधनोंका साध्यतत्त्व यही है। इसी एक ही तत्त्वको कोई ब्रह्म कहता है, कोई परमात्मा कहता है और कोई भगवान् भी कहता है। एक ही भगवान् हमारे अन्दर और बाहर सर्वत्र आनन्दमयी लीला कर रहे हैं। भगवान्‌की आनन्दमयी भक्तिकी आनन्दमयी वर्षा-ऋतुसे तुलना करना उचित ही प्रतीत होता है। नामकी साधना करनेवाला भक्त सारी सृष्टिमें भगवान्‌की आनन्दमयी लीलासे अपने जीवनमें सर्वदा आनन्दकी वर्षाकी अनुभूतिकर अपने जीवनको सफल और सार्थक बना लेता है।

पूज्य बाबाश्रीने बताया है कि भक्ति-भावकी चर्चा दो रूपोंमें की जाती है—(१) भक्तिमणिकी चर्चा साधन-भक्तिके रूपमें है, जैसे रामभक्तिमणि रामनामरूपी भजनकी महिमाका वर्णन है। (२) भक्तिचिन्तामणिका वर्णन साध्यभक्तिके रूपमें है। इसके अन्तर्गत ज्ञान, वैराग्य, मुक्ति और चरित्रके सारे उत्तम गुण एवं आचरण रहते हैं। इसकी चर्चा करते हुए श्रीरामचरितमानसमें बताया गया है—

राम भगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर॥
परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥
प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥

(रा०च०मा० ७।१२०।२—५)

भक्तिकी साधना—भक्तिमणि कितनी सुगम और सुलभ है—इसके विषयमें श्रीरामचरितमानसमें कहा गया है—

सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥
सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हतभाग्य देहिं भटभेरे॥

(रा०च०मा० ७।१२०।११-१२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार मानव-जीवनका सौन्दर्य भक्ति-साधनामें लगना ही है। भगवान्की ओर मुड़नेके लिये नाम-साधनामें लगना अति आवश्यक है। इसी उद्देश्यसे कहा गया है—

भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी॥
असि हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई॥

(रा०च०मा० ७।११९।९-१०)

इस प्रसंगमें पूज्य बाबाश्रीने कहा कि नाम-साधनामें प्रत्येक व्यक्तिको समान अधिकार कृपालु भगवान्ने दिया है, चाहे स्त्री हो, पुरुष हो, ब्राह्मण हो या चाण्डाल हो।

जिस प्रकार श्रीराम और श्रीकृष्ण भगवान्के अवतार हैं, उसी प्रकार उनके सारे नाम अवतार ही हैं। भक्तिकी दृष्टिसे नामावतारकी विशेष उपयोगिता मानव-जीवनमें है। भगवन्नाम-कीर्तन करनेका उपदेश श्रीरामचरितमानस, श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीमद्भागवतमें सर्वत्र है। 'भजन' शब्दका अर्थ भगवन्नाम-संकीर्तन ही समझना चाहिये। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने भजनका महत्त्व बताते हुए कहा है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(१०।१०)

भजन साधनभक्ति है और बुद्धियोग अर्थात् ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्ति साध्यभक्ति है। साधना करनेपर सिद्धि अवश्य मिलती है। इसी उद्देश्यसे श्रीमद्भागवतमें भी कहा गया है—

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥

(१२।१३।२३)

कलिकालमें मनुष्योंके कल्याणके लिये नाम-साधनासे बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है। आदर्श, सदाचारी, चरित्रवान् और भगवद्भक्त बननेके लिये पूज्य बाबाश्रीने सबको नाम-साधना करनेका अमृतमय सन्देश दिया है। विश्व-कल्याणका यही एकमात्र साधन है। प्रेमपूर्वक नाम-संकीर्तन करना चाहिये—

श्रीराम जय राम जय जय राम।

भक्तगाथा—

महाराज श्रीगोपालसिंहजी

(श्रीदेवेन्द्रकुमारजी गोयल)

करौली (राजस्थान)-के प्रायः सभी यदुवंशी राजा श्रीकृष्णभक्त होते आये हैं। उसी वंशमें उत्पन्न महाराज चन्द्रपालसिंहकी नौवीं पीढ़ीमें हुए महाराज श्रीकुँवरपालजी। कुँवरपालजी भी बड़े भक्त थे। उन्हींकी आराधनाके फलस्वरूप उनके पुत्ररूपमें जन्मे श्रीगोपालसिंह।

गोपालसिंहजी प्रारम्भसे ही बड़े सरल स्वभावके, निष्ठावान्, चरित्रवान् और वीर थे। उन्हें पहलवानीका शौक था। वे कृष्णभक्त होते हुए भी हनुमान्जीमें बड़ी श्रद्धा रखते थे। एक बार हनुमान्जीने उनसे स्वप्नमें कहा—'जिस अखाड़ेमें तुम कुश्ती लड़ते हो, उसके नीचे मेरी श्रीमूर्ति है। उसे निकालकर उसकी सेवा-पूजाकी व्यवस्था करो।' गोपालसिंहजीने अखाड़ेमें खुदाई करवायी तो सचमुच राघवेन्द्रके ध्यानमें बैठी मुद्रामें सुन्दर हनुमान्जीकी मूर्ति निकली। वह मूर्ति आज भी करौलीमें भद्रावतीके तटपर विराजमान है।

वि० सं० १७७८ में महाराज कुँवरपालजीका देहान्त हो गया। तब गोपालसिंहजी गद्दीपर बैठे। पर वे उस समय नाबालिग थे। इसलिये राज्यका काम-काज उनके मन्त्री नवलसिंहजी और खाण्डेरायजी देखा करते थे।

बालिग होनेपर गोपालसिंहजी राज्यका संचालन स्वयं करने लगे। उन्होंने बड़ी कुशलतासे शासन किया। उन्हींके शासनकालमें करौलीका लाल पत्थरका परकोटा बनवाया गया। उन्होंने महलका निर्माण दिल्लीके बादशाही महल-जैसा किया, जो बादशाह मोहम्मदशाहको अच्छा न लगा। पर मोहम्मदशाह उनके कार्य-कौशल और साहसी स्वभावसे इतना प्रभावित था कि उनसे कुछ कह न सका। उसके विपरीत उन्हें 'माहीमरातिब' का रुतबा दिया।

गोपालसिंहजी राज-काज करते हुए भी अधिकतर अपना समय भजन-पूजनमें व्यतीत करते। एक बार ठाकुर मदनमोहनजीने उन्हें स्वप्नमें दर्शन दिया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयपुरसे करौली आकर उनकी सेवा ग्रहण करनेकी इच्छा प्रकट की।

ठाकुर मदनमोहनजीका प्राचीन इतिहास है। कहते हैं कि सत्ययुगमें महाराजा अम्बरीष इनकी सेवा करते थे। कालक्रमसे ये लंकापति रावणके पास पहुँचे। रामचन्द्रद्वारा लंका-विजयके पश्चात् श्रीजानकीजीने इनकी सेवा की। फिर शत्रुघ्नद्वारा इन्हें मथुरा लाया गया। कुछ लोगोंका कहना है कि श्रीकृष्णके प्रपौत्र महाराजा वज्रनाभने व्रजमण्डलमें अनुसन्धानके फलस्वरूप जिन आठ विग्रहोंका आविष्कार किया था, उनमें इन मदनमोहनजीका भी श्रीविग्रह था। बहुत दिन बाद श्रीअद्वैताचार्यजीने आदित्य टीलाके भूगर्भसे इनका उद्धारकर मथुराके चौबे परिवारको इनकी सेवाका भार दिया। चौबे परिवारके सौजन्यसे ये सनातन गोस्वामीको प्राप्त हुए। सनातन गोस्वामीने वृन्दावनमें इनका भव्य मन्दिर बनवाया और सेवा-पूजाकी सुन्दर व्यवस्था की। औरंगजेबके समयमें उसके आक्रमणके भयसे इन्हें पहले कामवन, फिर जयपुर ले जाया गया।

इस प्रकार मदनमोहनजी जगह-जगह घूमते रहे। अब गोपालसिंहजीके भक्तिभावसे प्रभावित हो उन्हें उनकी सेवा ग्रहण करनेका लोभ जागा, जयपुरके महाराजा सवाई जयसिंहजी गोपालसिंहके परम मित्र थे। उन्होंने जयपुर जाकर जयसिंहजीसे मदनमोहनके स्वप्नादेशकी बात कही और मदनमोहनजीको करौली ले जानेकी माँग की। जयसिंहजी संकटमें पड़ गये। वे मदनमोहनजीको देना नहीं चाहते थे और गोपालसिंहजीको मना भी नहीं कर सकते थे। फिर भी उन्होंने कहा—'मुझे मदनमोहनजीको करौली भेजनेमें तो आपत्ति नहीं, पर मुझे शंका यह है कि यदि सचमुच वे करौली जाना चाहते हैं तो उन्होंने मुझे आदेश क्यों नहीं दिया? किसी भी प्रकार यदि मदनमोहनजी मुझे यह विश्वास दिला दें कि उनकी इच्छा करौली जानेकी है तो मैं उन्हें अवश्य भेज दूँ।' फिर कुछ हँसकर बोले—'एक उपाय हो सकता है, यदि आप उससे सहमत हों। मैं आपकी आँखोंमें पट्टी बाँध दूँ। मदनमोहनजीके निकट दो अन्य विग्रहोंको पधरा दूँ। आप पट्टीबँधी अवस्थामें मदनमोहनजीका अन्य कोई अंग स्पर्श किये बिना चरणस्पर्श कर लें तो मैं समझूँ कि वे सचमुच आपके साथ करौली जाना चाहते हैं।' गोपालसिंहजीने प्रसन्न हो विश्वासके साथ कहा—'हाँ, आप ऐसा ही करें। मदनमोहनजी अवश्य मुझे अपने चरणस्पर्श करा देंगे।' जयसिंहजीने ऐसा ही किया। वे जान रहे थे कि आँखोंपर पट्टी बँधी होनेसे गोपालसिंहजी मदनमोहनजीके चरणस्पर्श करना तो दूर विग्रहोंके निकटतक भी नहीं जा सकेंगे, यदि चले गये तो न जाने किस विग्रहका स्पर्श करेंगे और यदि मदनमोहनजीको ही स्पर्श किया तो न जाने उनका कौन-सा अंग स्पर्श करेंगे। वे निश्चय ही अपने मनोरथमें असफल होंगे।

जयसिंहजीने गोपालसिंहजीकी आँखमें पट्टी अपने हाथसे बाँधी; पर वे चकित रह गये, जब गोपालसिंहजीने लपककर मदनमोहनजीके चरण ऐसे स्पर्श कर लिये, जैसे वे उन्हें प्रत्यक्ष देख रहे हों। निश्चय ही मदनमोहनजीकी कृपासे पट्टी बँधी होते हुए भी उन्हें उनके प्रत्यक्ष दर्शन होते रहे। जयसिंहजीको मदनमोहनको करौली भेज देना पड़ा। वे स्वयं उन्हें और उनके साथ उनके सेवाइत गोस्वामी सबलदासजीको अपने राज्यकी सरहदतक पहुँचाने गये।*

गोपालसिंहजीने मदनमोहनजीका सुन्दर मन्दिर बनवाया ऐसे स्थानपर कि उनके महलके झरोखेसे उनके दर्शन होते रहें।

वि०सं० १८०४, चैत सुदी अष्टमीको उनका धाम-गमन हुआ। शरीर छोड़नेके पहले उन्होंने अपनी छतरीके लिये एक ऐसे स्थानका निर्देश किया, जो मदनमोहनके मन्दिरसे दीखता रहे। वहीं उनकी सुन्दर छतरी बनी हुई है।

* यह विवरण इस घटनासे सम्बन्धित उस सामग्रीके अनुसार है, जो महाराजा सवाई मानसिंह द्वितीयने जयपुर राज्यके रेकार्डके आधारपर करौलीके वर्तमान महाराजाके दादा महाराजा गणेशपालजीको लिखकर भेजी थी। लेखकने इस घटनाका यथार्थ ब्योरा प्राप्त करनेके लिये मण्डावा, जयपुरके कुँवर देवीसिंहजीको पत्र लिखा था। उत्तरमें उन्होंने करौलीके वर्तमान महाराजासे प्राप्त यह विवरण लिख भेजा। लेखक उनका आभारी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

वैराग्यका भ्रम

आपका कृपापत्र मिला। आप लिखते हैं—'मुझे घरसे वैराग्य हो गया है, घरमें माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री-बालक सभी हैं, परंतु किसीमें मन नहीं अटकता, उनसे मनका मेल ही नहीं खाता। सबसे नफरत-सी हो चली है। चाहता हूँ—संसार-त्यागकर वनमें चला जाऊँ। परंतु कठिनता यह है कि शरीरके सुख और आरामकी इच्छा अभी बनी हुई है। कभी-कभी पाप-भावना भी मनमें आ जाती है। काम-क्रोध तो हैं ही। शारीरिक तकलीफ सहन नहीं होती। यहाँ तो कुछ-कुछ लोग सेवा भी करते हैं। दुःख तो यह है कि मुझसे भगवान्का भजन भी नहीं होता। चित्तमें उचाट-सी रहती है कि कहीं भाग जाऊँ। न घर सुहाता है, न कहीं भागते ही बनता है। चित्त शान्त नहीं है। बताइये क्या करूँ?'

आपने अपनी सच्ची हालत लिख दी, कुछ छिपाया नहीं, इससे मालूम होता है, आपका हृदय बड़ा सरल है और सरल हृदय साधना करनेपर बहुत ही शीघ्र भगवान्का निवासस्थान बन सकता है। सच्ची बात तो यह है कि आपको वैराग्य नहीं हुआ है। वैराग्य होनेपर काम-क्रोध नहीं रह पाते। न सुख और आरामका ही खयाल रहता है। जब किसी विषयमें आसक्ति ही नहीं रही, तब कामना कहाँसे पैदा होती और कामना न होनेपर क्रोध भी क्योंकर होता? आपने इस स्थितिको वैराग्य समझ लिया—यही आपकी भूल है। यह तो वस्तुतः आसक्तिका ही एक रूपान्तरमात्र है। आपको जो नफरत-सी हो चली है, घरवालोंके प्रति घृणा होती है, इसका कारण यही है कि आप उनसे जैसा और जितना सुख चाहते हैं, अपनी कामनाकी जितनी पूर्ति आप उनसे करवाना चाहते हैं, उतनी नहीं हो पाती। बल्कि कभी-कभी आपको ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग तो मेरे सुखके मार्गमें बाधक हैं, मेरे मनोरथके प्रतिकूल हैं। इसीसे आपहीके शब्दोंमें—उनसे 'आपके मनका मेल ही नहीं खाता।' इसीसे नफरत होती है और आश्चर्यकी बात तो यही है कि इसको आपने वैराग्य मान लिया है। यह वैराग्य नहीं है, यह है झुँझलाहटभरी अकर्मण्यता, जो आपको कर्तव्यपथसे विमुख करना चाहती है। असलमें आप जिनसे घृणा करते हैं—उनको छोड़ना नहीं चाहते, उनको छोड़ते आपको दुःख होता है; क्योंकि उनमें आपकी सुदृढ़ आसक्ति है और आप उनको सर्वथा अपने अनुकूल तथा अपने सुखके साधक देखना चाहते हैं। इसीलिये चित्तमें उचाट है, इसीलिये अशान्ति है और इसीमें आपकी बुद्धि कर्तव्यका निर्णय करनेमें असमर्थ हो रही है। आप मेरी इन बातोंसे अपनी स्थितिका मिलान करके देखिये, मुझे विश्वास है मेरी धारणा अक्षरशः सत्य साबित होगी।

आप लिखते हैं—'भगवान्का भजन नहीं होता' और मैं कहता हूँ—भजन हुए बिना 'वैराग्य' हो ही नहीं सकता।

जब भजनमें रस मिलेगा और उससे भगवत्प्रेमका प्रादुर्भाव होगा तब विषयोंसे वैराग्य आप ही हो जायगा। फिर कोई मनोरथ भी अपूर्ण नहीं रह जायगा। आप जो कुछ भी चाहते हैं, सभी कुछ भगवान्में पूर्ण है। सारे सुख, सारा आराम, कामिनी-काँचन, कीर्ति, भोग, मोक्ष सभी कुछ उनमें हैं। उनको भूलकर—उनकी ओरसे लापरवाह रहकर, भजनमें चित्त न लगाकर जहाँ संसारको छोड़ने जायँगे, वहाँ संसार और भी जोरसे आपको जकड़ लेगा। यों भागनेसे बन्धनकी रस्सी टूटेगी नहीं, उसकी गाँठ और भी गहरी घुल जायगी, पक्की हो जायगी। अतएव पहले भगवान्में अनुराग कीजिये, फिर अपने-आप ही विषयोंमें विराग हो जायगा। श्रीमद्भागवतमें ब्रह्माजी कहते हैं—

न भारती मेऽङ्ग मृषोपलक्ष्यते
न वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गतिः।
न मे हृषीकाणि पतन्त्यसत्पथे
यन्मे हृदौत्कण्ठ्यवता धृतो हरिः॥
(२।६।३३)

'हे प्रिय नारद! मैंने प्रेमपूर्ण और उत्कण्ठित हृदयसे भगवान्को हृदयमें धारण कर लिया है, इससे न तो कभी मेरी वाणी असत्यको लक्ष्य करके निकलती है, न कभी मनकी गति मिथ्याकी ओर होती है और न मेरी इन्द्रियाँ ही कभी असत्-मार्गपर जाती हैं।' मतलब यह कि भगवान्में मन लगनेपर असत्-विषयोंकी ओर मन जाता ही नहीं (यह याद रखना चाहिये कि एकमात्र भगवान् ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत् हैं और सब असत् हैं) यही असली वैराग्य है।

अतएव आप उसे वैराग्य न समझकर अपनी एक दुर्बलता समझिये और घरमें ही प्रतिकूलताको सानन्द सहते हुए भगवान्का भजन कीजिये। जबतक मनमें राग-द्वेष है, तबतक पूरी अनुकूलता कहीं भी नहीं मिलेगी। भगवान्ने गीता (३।३४)-में कहा है—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥

'प्रत्येक इन्द्रियके विषयमें राग और द्वेष भरे हैं। इन राग-द्वेषके वशमें नहीं होना चाहिये; क्योंकि ये दोनों ही परमार्थ-धनके लुटेरे हैं।'

यह समझ रखिये कि राग-द्वेषके रहते अनुकूलताके साथ प्रतिकूलता भी रहेगी ही। वनमें ही क्यों, कहीं भी चले जायँ—मन तो आपके साथ ही जायगा न? फिर केवल स्थान बदलनेसे क्या होगा। जो तकलीफ यहाँ है, वही वहाँ भी रहेगी। बल्कि नयी जगहमें शारीरिक आराम न मिलनेपर और भी कष्टका अनुभव होगा। घरवाले कितने ही प्रतिकूल हों, आखिर आपके दुःखमें कुछ तो साथ देते ही हैं। सेवा भी करते ही हैं। यह आपने भी स्वीकार किया है। अलग जानेपर यह भी नहीं मिलेगा। एक बात यह भी विचारणीय है कि जब आपको उनकी बातें प्रतिकूल मालूम होती हैं, तब निश्चय ही आपके विचार उनके प्रतिकूल हैं और जब वे लोग अपने प्रतिकूल विचारवाले आपको अपने साथ रखना चाहते हैं और समय-समयपर आपकी सेवा करते हैं तब आपको तो और भी नम्र होना चाहिये तथा उनके प्रतिकूल विचारोंको आनन्दके साथ सहकर उन्हें सुख पहुँचानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

साथ ही यह भी सत्य है कि यहाँ जो कुछ भी सुख-दुःख आपको मिलता है, यह आपके ही पूर्वकृत कर्मोंका फल है और भगवान्ने आपके कल्याणके लिये इसका मंगल-विधान किया है। इसके भोगसे आपका प्रारब्ध क्षय होता है और यदि इसे भगवान्का विधान मानकर सिर चढ़ायें तो भगवान्की कृपा प्राप्त होती है। इसलिये मेरी तो यही सलाह है कि सहनशील बनकर घरमें रहिये, घरको भगवान्का मन्दिर और घरवालोंको भगवत्स्वरूप जानकर उनकी यथायोग्य सेवा कीजिये तथा श्रीभगवान्की कृपापर विश्वास करके उनके पवित्र नामका जप करते हुए उनके दिये हुए जीवनको उन्हींको समर्पण करते आनन्दसे संसार-यात्रा पूरी कीजिये। आप निश्चय समझिये, जब आपको उनकी याद बनी रहने लगेगी, तब आपके सारे पाप-संताप, आसक्ति-कामना, विरक्ति-अशान्ति, मोह-भय अपने-आप ही भाग जायँगे। उस समय आप स्वतः ही सच्चे वैराग्यको प्राप्त होकर परम सुखी हो जायँगे। शेष भगवत्कृपा!

(२)

सर्वत्र सबमें भगवान्को देखो

आपके कई पत्र मिल चुके। मेरा स्वाभाविक आलस्य आप जानते ही हैं। इसके सिवा इधर कामकी भी कुछ भीड़ रही। सर्वत्र सबमें भगवान्को देखनेका प्रयत्न करना और यथासाध्य अधिकाधिक भगवान्का स्मरण करना एवं स्मरण होनेपर न भूलनेकी चेष्टा करना—ये बड़े ही उत्तम साधन हैं। सर्वत्र सबमें परमात्माको देखनेके साधनसे बहुत ही शीघ्र जीवन पलट सकता है। पाप, ताप, छल, द्रोह, दम्भ, वैर आदिका आप ही नाश हो जाता है। जो सामने आया, तत्काल उसीमें भगवान् हैं, ऐसा स्मरण हो आनेसे उसके साथ दूषित बर्ताव हो ही नहीं सकता। नाटकमें नाटकका स्वामी या अपना साक्षात् पिता भी शिष्य बनकर आ सकता है। उसको स्वामी या पिता पहचानते हुए जो शिक्षकका नाट्य किया जाता है, वह स्वामीके आज्ञानुसार लीलावत् ही होता है। उसमें दोष प्रायः आ ही नहीं सकता। इसी प्रकार आप भी विद्यार्थियोंको पढ़ाते समय 'उसमें भगवान् हैं या स्वयं भगवान् ही उन स्वरूपोंमें प्रकट हो रहे हैं', ऐसा समझकर उन्हें पढ़ाइये। यही व्यवहार घरके लोगों, मित्रों, सम्बन्धियों, नौकरों आदिके साथ कीजिये तो बहुत ही शीघ्र समस्त दोषोंका ध्वंस सम्भव है। चित्तमें अपूर्व शान्ति और आनन्द तो इस साधनके संगी ही हैं। **'वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।'** दूसरोंके साथ बुरा बर्ताव, विषम व्यवहार तभीतक होता है, जबतक हम उन्हें आत्मासे अतिरिक्त कोई दूसरा समझते हैं। जब हम यह देखेंगे कि ये सब तो हमारे आत्मा ही हैं, तब बुरा बर्ताव कैसे होगा? अपने प्रति क्या कभी कोई बुरा बर्ताव करता है? फिर जब वे हमें भगवान् दीखेंगे, तब तो हमारे पूज्य और सब प्रकारसे सेवाके पात्र बन जायँगे। शेष प्रभुकृपा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७०, शक १९३५, सन् २०१३, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, आषाढ़ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें २। २९ बजेतक	सोम	पू०षा० रात्रिमें १२। ३७ बजेतक	२४ जून	× × × × × × ×
द्वितीया ,, १२। ४ बजेतक	मंगल	उ० षा० रात्रिमें ११। ४ बजेतक	२५ ,,	भद्रा रात्रिमें १०। ५५ बजेसे, **मकरराशि** प्रात: ६। १३ बजे।
तृतीया ,, ९। ४६ बजेतक	बुध	श्रवण ,, ९। ४१ बजेतक	२६ ,,	भद्रा दिनमें ९। ४६ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत**, **चन्द्रोदय** रात्रिमें ९। २१ बजे।
चतुर्थी ,, ७। ४१ बजेतक	गुरु	धनिष्ठा ,, ८। ३३ बजेतक	२७ ,,	**कुम्भराशि** दिनमें ९। ७ बजे, **पंचकारम्भ** दिनमें ९। ७ बजे।
पंचमी प्रात: ५।५३ बजेतक षष्ठी रात्रिशेष ४। २७ बजेतक	शुक्र	शतभिषा ,, ७। ४७ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ४। २७ बजेसे।
सप्तमी रात्रिमें ३। २५बजेतक	शनि	पू० भा० ,, ७। २१ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें ३। ५६ बजेतक, **मीनराशि** दिनमें १। २७ बजे।
अष्टमी ,, २।५२ बजेतक	रवि	उ० भा० ,, ७। २३ बजेतक	३० ,,	**श्रीशीतलाष्टमीव्रत**, **मूल** रात्रिमें ७। २३ बजेसे।
नवमी ,, २। ४९ बजेतक	सोम	रेवती ,, ७। ५३ बजेतक	१ जुलाई	**मेषराशि** रात्रिमें ७। ५४ बजे, **पंचक** समाप्त रात्रिमें ७। ५३ बजे।
दशमी ,, ३। १८ बजेतक	मंगल	अश्विनी ,, ८। ५७ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** दिनमें ३। ३ बजेसे रात्रिमें ३। १८ बजेतक, **गुरु-उदय पूर्वमें** रात्रिमें १०। ५३ बजे, **मूल** समाप्त रात्रिमें ८। ५७ बजे।
एकादशी रात्रिशेष ४। १५ बजेतक	बुध	भरणी ,, १०। २८ बजेतक	३ ,,	**वृषराशि** रात्रिशेष ४। ५८ बजे, **योगिनी एकादशीव्रत** (स्मार्त)।
द्वादशी अहोरात्र	गुरु	कृत्तिका ,, १२। २६ बजेतक	४ ,,	**योगिनी एकादशीव्रत** (**वैष्णव**)।
द्वादशी प्रात: ५। ३९ बजेतक	शुक्र	रोहिणी ,, २। ४४ बजेतक	५ ,,	**प्रदोषव्रत**, **गुरू बालत्त्वनिवृत्ति** दिनमें १०। ५३ बजे।
त्रयोदशी दिनमें ७। २४ बजेतक	शनि	मृगशिरा अहोरात्र	६ ,,	**भद्रा** दिनमें ७। २४ बजेसे रात्रिमें ८। २२ बजेतक, **मिथुनराशि** दिनमें ४ बजे, **मास शिवरात्रिव्रत**, **पुनर्वसुका सूर्य** दिनमें १। १६ बजे।
चतुर्दशी ,, ९। २१ बजेतक	रवि	मृगशिरा प्रात: ५। १७ बजेतक	७ ,,	**श्राद्धकी अमावस्या**।
अमावस्या ,, ११। २३ बजेतक	सोम	आर्द्रा ,, ६। ४३ बजेतक	८ ,,	**कर्कराशि** रात्रिमें ३। ४९ बजे, **सोमवती अमावास्या**।

सं० २०७०, शक १९३५, सूर्य उत्तरायण-दक्षिणायन, ग्रीष्म-वर्षा-ऋतु, आषाढ़ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १। १८ बजेतक	मंगल	पुनर्वसु दिनमें १०। २७ बजेतक	९ जुलाई	**चन्द्रदर्शन**।
द्वितीया ,, २। ५५ बजेतक	बुध	पुष्य ,, १२। ४३ बजेतक	१० ,,	**श्रीजगदीश-रथयात्रा**, **मूल** दिनमें १२। ४३ बजेसे।
तृतीया ,, ४। १० बजेतक	गुरु	आश्लेषा ,, २। ४० बजेतक	११ ,,	**भद्रा** रात्रि शेष ४। ३५ बजेसे, **सिंहराशि** दिनमें २। ४० बजे।
चतुर्थी ,, ४। ५९ बजेतक	शुक्र	मघा ,, ४। ९ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** दिनमें ४। ५९ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत**, **मूल** दिनमें ४। ९ बजेतक
पंचमी सायं ५। १६ बजेतक	शनि	पू०फा० सायं ५। ८ बजेतक	१३ ,,	**कन्याराशि** रात्रिमें ११। १४ बजे।
षष्ठी ,, ५। १ बजेतक	रवि	उ० फा० ५। ३५ बजेतक	१४ ,,	**स्कन्दषष्ठीव्रत**, **कर्दमषष्ठी** (बंगाल)।
सप्तमी दिनमें ४। १८ बजेतक	सोम	हस्त ,, ५। ३६ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** दिनमें ४। १८ बजेसे रात्रिमें ३। २७ बजेतक।
अष्टमी ,, २। ३७ बजेतक	मंगल	चित्रा ,, ५। ३२ बजेतक	१६ ,,	**तुलाराशि** प्रात: ५। ३४ बजे, **श्रीपरशुरामाष्टमी** (उड़ीसा), **खर्ची पूजा** (त्रिपुरा), **कर्कका सूर्य** रात्रिमें २। २५ बजे, **वर्षाऋतु प्रारम्भ**, **दक्षिणायन प्रारम्भ**।
नवमी ,, १। ३२ बजेतक	बुध	स्वाती दिनमें ४। १९ बजेतक	१७ ,,	**सौर श्रावणमासारम्भ**
दशमी ,, ११। ३८ बजेतक	गुरु	विशाखा दिनमें ३। ११ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** राशिमें १०। ३४ बजेसे, **वृश्चिकराशि** दिनमें ९। ४६ बजे।
एकादशी ,, ९। २१ बजेतक	शुक्र	अनुराधा ,, १। ४६ बजेतक	१९ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। २८ बजेतक, **श्रीविष्णुशयनीएकादशी-व्रत** (**सबका**), **मूल** दिनमें १। ४६ बजेसे।
द्वादशी ,, ७। ९ बजेतक त्रयोदशी रात्रिशेष ४। ४१ बजेतक	शनि	ज्येष्ठा ,, १२। १३ बजेतक	२० ,,	**धनुराशि** दिनमें १२। १३ बजे, **एकादशीव्रतकी पारणा** दिनमें ७। ९ बजेतक, **शनिप्रदोषव्रत**, **चातुर्मास्यव्रतारम्भ**, **पुष्यका सूर्य** दिनमें २। ४३ बजे।
चतुर्दशी रात्रिमें २। ११ बजेतक	रवि	मूल ,, १०। ३३ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २। ११ बजेसे, **मूल** दिनमें १०। ३३ बजेतक, **चौमासी चौदस** (जैन)।
पूर्णिमा ,, ११। ४६ बजेतक	सोम	पू०षा० ,, ८। ५४ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। ५९ बजेतक, **मकरराशि** दिनमें २। ३० बजेतक, **पूर्णिमा**, **गुरुपूर्णिमा**, **श्रीव्यासपूजा**।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपानुभूति

प्रार्थनाकी शक्ति

घटना २४ अप्रैल २०१२ ई० की है। मेरी बहूकी भतीजीकी शादी २५ अप्रैलको हैदराबादमें थी। मैं और मेरी बहू शादीमें सम्मिलित होनेहेतु २४ अप्रैलकी शाम ५ बजे कर्नाटक सम्पर्कक्रान्ति एक्सप्रेससे हैदराबादके लिये रवाना हुए। हमारा टिकट भोपालसे काँचेगुडातकका था। यह हैदराबादका सब स्टेशन है। हम हैदराबाद पहली बार जा रहे थे।

यह ट्रेन सुपरफास्ट है, जो भोपालसे रवाना होकर बैतूल एवं नागपुर रुककर २५ तारीखकी प्रात: ८ बजे काँचेगुडा पहुँच गयी। मार्गमें बहूके कुछ परिचित मिल गये, जिन्होंने बहूसे कहा आगे नदी क्रास करके सिकन्दराबाद आयेगा, जो कि हैदराबादका ही सब स्टेशन है। शादी उसी स्थानपर थी, मैंने बहूसे पूछा कि कहाँ उतरना है तो उसने कहा सिकन्दराबाद उतरेंगे। आधे घण्टे हम दोनों ट्रेनमें बैठे रहे; चूँकि टिकट बहूके पर्समें था, मैंने टिकट देखा नहीं था, अत: विश्वास कर लिया कि वह सही कह रही है। ८.३० बजनेपर ट्रेन चल दी। तब सामने बैठी एक महिलाने मुझसे पूछा कि आन्टी! आपको कहाँ जाना है? मैंने कहा कि सिकन्दराबाद, तब वह बोली, 'यह ट्रेन सिकन्दराबाद तो जाती ही नहीं है!'

अब तो मेरे पैरोंतलेकी जमीन खिसक गयी। मैं परेशान हो गयी कि अब क्या होगा? ट्रेनमें बैठे अन्य यात्रियोंने कहा कि अब तो अगला स्टेशन ५ घण्टे बाद आयेगा। साथ बैठे लोगोंने चेन भी खींची, पर ट्रेन नहीं रुकी। लोग कहने लगे अब कुछ नहीं हो सकता, आप बैठिये। वहाँसे आपको पैसेन्जर मिलेगी, उससे आप वापस सिकन्दराबाद आ जाना। मैं बहुत बैचेन हो गयी थी और मन-ही-मन कह रही थी कि प्रभु! यह क्या हो गया। गत जुलाई २०११ को मैंने घरके पासके मन्दिरमें राधा-कृष्णकी मूर्तिकी स्थापना की थी। मैंने उन्हींका ध्यान किया और प्रार्थना आरम्भ की कि हे प्रभो! इस संकटसे मुक्त करो। मुझे अन्दरसे बहुत घबड़ाहट और बेचैनी लग रही थी। सहसा मुझे ऐसा लगा कि जैसे प्रभुने मेरी पुकार सुन ली है और उनकी कृपासे ३० किलोमीटर जाकर अचानक ट्रेन रुक गयी, जो बीचमें कभी नहीं रुकती थी, वह भी ऐसे स्थानपर जहाँ रेलवे ट्रैकसे लगा हुआ क्रिश्चियनका कब्रिस्तान था और उस पार पक्की सड़क थी। वहीपर लाल रंगकी एक कार खड़ी थी तथा कुछ लोग भी वहाँपर खड़े थे। जैसे ही ट्रेन रुकी, मैंने गाड़ीसे अपना बैग नीचे फेंका और गिट्टीपर कूद गयी। बहूसे भी वैसा ही करनेको कहा। कब्रिस्तान क्रास करके हम दोनों सड़कपर पहुँचे। वहाँ खड़े व्यक्तियोंसे पूछनेपर ज्ञात हुआ कि वह स्थान शमशाबाद एयरपोर्ट है। मैंने उनसे कहा कि हमें सिकन्दराबाद जाना है। कृपया आप हमें कोई बस या टैक्सी दिलवा दें। वहाँ भाषाकी समस्या थी; क्योंकि वहाँ सब लोग तेलगू बोलते हैं, फिर भी उन लोगोंने मेरी बात समझी और उनमेंसे एक सज्जन व्यक्तिने हमें टैक्सी करवा दी, जिससे हम सिकन्दराबाद डिपो पहुँच गये। वहाँसे हमें शादीवाले स्थान उप्पल जाना था। चूँकि हम नये थे, इसलिये हम बसवालेसे 'उप्पल जाना है, बस वहाँ जायगी क्या?'—यह पूछ रहे थे, परंतु कोई भी बस उप्पल जानेहेतु वहाँसे नहीं मिली। तब एक नौजवानने आगे बढ़कर कहा—'आन्टी! यहाँसे बस उप्पल नहीं जाती है, आप धोबीघाट जाओ।' उस नौजवानके बतानेके अनुसार हम बसद्वारा धोबीघाट पहुँचे। फिर वहाँसे उप्पल जानेवाली बस मिली। उस बसमें एक लड़की मिली, जो दिल्लीकी रहनेवाली थी और वहाँपर नौकरी कर रही थी। उस लड़कीके बतानेके अनुसार हम अगले स्टापपर उतरकर उसके साथ गये, उसने हमें एक ऑटो तय करा दिया, जिससे हम अपने गंतव्यतक पहुँच गये।

मेरा यह विचार है कि यदि 'हम सच्चे मनसे प्रभुको याद करें तो वे हमारी प्रार्थना जरूर सुनते हैं और हमारी सहायता करते हैं।' इसके बादसे मेरा विश्वास प्रभुपर और दृढ़ हो गया, प्रार्थनामें बड़ी शक्ति है।—**राजकुमारी गुप्ता**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

मानवताकी जीत

एक सच्ची घटना है, पर नाम कल्पित हैं, जगतनारायण नामक एक व्यक्तिने घोर आर्थिक संकटमें पड़ जानेके कारण श्रीचन्द्रशेखर नामक एक ब्राह्मणसे कुछ रुपये उधार लिये। जगतनारायण चन्द्रशेखरका मित्र ही था। रुपये मिल जानेसे उसका संकट दूर हो गया और उसने कृतज्ञता भी प्रकट की। आर्थिक स्थिति दयनीय होनेके कारण वह उसे शीघ्र लौटा नहीं सकता था, इसलिये प्रत्येक तीसरे वर्षपर वह स्वयं ही चन्द्रशेखरके घरपर आकर हैण्डनोट बदल देता था।

कुछ दिनों बाद कुछ कुसंगतियोंके कारण उसकी नैतिकतामें गिरावट आयी तथा उसके मनमें बेईमानी और चालाकीने घर कर लिया। इस बार वह हैण्डनोट बदलनेसे मुकर गया। अपने कुछ दोस्तोंके बहकावेमें आकर अपने खेत तथा सामान भी अपने नामसे हटाकर उनके नामपर कर दिये, जिससे कानूनद्वारा भी उससे वसूला नहीं जा सके। चन्द्रशेखरजीने जब यह सारी स्थिति देखी, तब अपने पुराने सम्बन्धोंको ध्यानमें रखते हुए उन्होंने यह उचित समझा कि किसी प्रकार मूलधन लेकर भी जगतनारायणको ऋणमुक्त कर दिया जाय।

पर जगतनारायणका तो रवैया ही बदल चुका था। अब वह अपने पुराने ऋणसे उऋण होना अपनी मूर्खता मानने लगा। रुपया माँगनेपर वह जवाब देता कि मैं पण्डितजीका छप्पर उखाड़ डालूँगा, घरकी एक-एक ईंट निकलवा लूँगा, बगीचेका एक-एक पेड़ काट डालूँगा— ऐसी कार्यवाही करूँगा कि चन्द्रशेखरजी कहीं मुँह दिखानेके काबिल भी नहीं रह जायेंगे; यहाँतक कि उसने चन्द्रशेखरजीको शस्त्रोंसे मार डालने तथा मुरब्बेकी तरह छेदनेकी भी धमकी दी। गुण्डे-बदमाशोंसे सभी डरते हैं। अतः चन्द्रशेखरके परिवारमें भी इन बातोंका आतंक फैल गया। लोगोंने चन्द्रशेखरको यह राय दी कि वे गाँव छोड़कर कहीं चले जायँ, पर चन्द्रशेखरजी बड़े सात्त्विक तथा विचारशील व्यक्ति थे। उन्होंने सबको धैर्य बँधाया तथा सान्त्वना दी एवं परिवारके लोगोंको समझाया कि ऐसे अवसरपर धैर्यके साथ काम लेना चाहिये। यदि हमने किसीका नुकसान नहीं किया है तो उसके चाहनेपर भी हमारी कोई हानि नहीं हो सकती। हमारी दृष्टिमें जगतनारायण दयाका पात्र है। कुसंगतिके कारण ही उसकी ऐसी बुद्धि हो गयी है, जो उसके स्वयंके लिये घातक प्रतीत होती है। चन्द्रशेखरजीने एक आस्तिक व्यक्ति होनेके कारण और परिवारवालोंके सन्तोष एवं इन उपद्रवोंके शमनके लिये वाल्मीकिरामायण सुन्दरकाण्डके सात सर्गोंका प्रतिदिन पाठका क्रम प्रारम्भ करा दिया।

दूसरी ओर अपने हककी सुरक्षाके लिये न्यायालयमें कानूनी कार्यवाही कर दी। जगतनारायणके व्यवहारमें कोई अन्तर नहीं आया। असत्यका आश्रय लेना ही उसने अपने जीवनका लक्ष्य बना लिया था। पर विजय तो अन्तमें सत्यकी ही होती है। न्यायालयमें जब उसे पराजय हाथ लगी तो उसने कुछ कुत्सित हथकण्डे अपनानेकी चेष्टा की; पर उसकी कुछ न चली।

इसके विपरीत उसने चन्द्रशेखरको जो धमकियाँ प्रारम्भमें दी थीं, वे सारी विपत्तियाँ स्वयं उसपर ही आ पड़ीं। उसका एक हरा-भरा बगीचा किसीने काट गिराया। अपयश तथा उसकी बदनामी तो चारों तरफ हो ही गयी। साथ ही रात्रिमें कुछ व्यक्तियोंने सहसा उसपर आक्रमण कर दिया और भालेसे उसके सारे शरीरको छेद दिया। उसके दिली दोस्त, जिनके नामसे उसने अपनी सम्पत्ति कर दी थी, उन्होंने भी अपनी नियत खराब कर ली और वे भी उसके दुश्मन बन गये और उसके सारे खेत आदि सम्पत्तिको भी हड़प लिया।

चन्द्रशेखरजीको जब इन सब बातोंका पता लगा तो वे अत्यन्त दुःखी हुए तथा अस्पतालमें जगतनारायणको देखनेके लिये गये। उन्होंने उसके इलाज और सेवाका भी प्रबन्ध किया। पहली मुलाकातमें ही जगतनारायण चन्द्रशेखरको देखकर फूट-फूटकर रोने लगा। उसने यह स्वीकार किया कि मैंने खराब संगतिके कारण आपका जो मेरे प्रति प्रेम-सद्भाव था, उसका दुरुपयोग किया और जो धमकी मैंने आपको दी थी, वह सब मेरे ऊपर ही घटी। अब मैं इसका क्या प्रायश्चित्त कर सकता हूँ? मेरा पश्चात्ताप समाता नहीं, असत्य और दुराचारके आश्रयका फल मुझे पूरी तरह प्राप्त हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने चन्द्रशेखरका चरण धोया तथा यह कहते हुए उसका पान किया कि इस चरणामृतके लेनेसे मेरे नरकका त्रास कुछ तो हलका होगा। इस प्रकार मित्रताका वह प्रवाह जो वर्षोंसे विच्छिन्न हो चुका था, पुनः जुड़ गया। अन्तमें मानवताकी विजय हुई।—लालबिहारी मिश्र

(२)

पुनर्जन्मकी एक सत्य घटना

आजके इस भौतिकवादी युगमें भी कुछ ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं, जो अध्यात्म, परमात्म-तत्त्व, ईश्वरवाद एवं पुनर्जन्मके सिद्धान्तको अक्षरशः प्रमाणित करती हैं।

ऐसी ही एक घटना मेरे परम मित्र श्रीअजयकुमार, आयु ५२ वर्षके साथ घटी, जो उनके ही शब्दोंमें इस प्रकार है—दिनांक १७ अप्रैल २०१० की बात है, प्रातः पाँच बजे मेरे सीनेमें अचानक बेचैनी तथा बहुत तेज दर्द हुआ। दर्द इतना तीव्र था कि मुझे हृदयाघातका अन्देशा हुआ। घरमें मैं तथा मेरी पुत्री ही थी, मेरी पत्नी जो कि राजकीय शिक्षिका है, वह निकटवर्ती गाँवके स्कूलमें पढ़ाने गयी थी। मैंने अपनी पत्नीको मोबाइलपर सूचना दी और मैं पुत्रीको लेकर तुरंत कारद्वारा राजकीय चिकित्सालय, बीकानेरके इमरजेन्सी वार्डमें गया, जहाँ डॉक्टरोंद्वारा ईसीजी करनेपर हालत गम्भीर पायी गयी और मुझे तुरंत बीकानेरके ही दूसरे अस्पतालके लिये रैफर कर दिया गया, जो हृदयकी चिकित्साके लिये प्रसिद्ध है। उस अस्पतालमें मुझे तत्काल भर्ती कर लिया गया तथा मेरे शरीरपर कई मशीनें लगाकर उपचार शुरू कर दिया गया। उस समयतक मेरी पत्नी भी अस्पताल पहुँच गयी थी। इसके बाद मेरे शरीरका उन्होंने क्या किया, मुझे इसकी कोई जानकारी नहीं है। मेरी पत्नीके अनुसार मुझे डॉक्टरोंद्वारा थोड़े ही उपचारके बाद मृत घोषित कर दिया गया। मेरी पत्नीके ज्यादा आग्रह करनेपर डॉक्टरोंद्वारा पुनः मशीन लगाकर मृत होनेकी पुष्टि की गयी, जिसमें (मशीनमें) सीधी सपाट लाइन आ रही थी।

इसी दौरान मुझे ऐसा लगा कि मेरे गलेमें रस्सी डालकर मुझे कोई ऊपर एकदम सीधे गोल पाइपनुमा घेरेमें (जैसे लिफ्टमें जाते हैं, वैसे) ले जा रहा है, उसने काली कम्बलनुमा कोई वस्तु ओढ़ रखी है, चेहरा उसका काला होनेसे कुछ स्पष्ट दीख नहीं रहा था, वह बड़ी तेजीसे मुझे ले जा रहा था। थोड़ी देरमें ऐसा लगा जैसे कोई गाड़ी क्रास होनेपर रुकती है, वैसे ही एक अन्य परछाईंनुमा आकृति जो ऊपरसे नीचेकी ओर आ रही है, वहाँ आकर रुकी। वह आकृति भी वैसी ही थी, जैसी मुझे ले जानेवाली थी। उन्होंने आपसमें बातचीत की, उनकी बातचीतमें मुझे केवल इतना ही सुनायी दिया कि इसको नीचे बुला रहे हैं, इसको वापस नीचे ले जाओ। फिर वे दोनों आकृतियाँ मुझे बड़ी तेजीसे नीचेकी ओर लायीं, नीचे आनेपर मैंने देखा कि डॉक्टर मेरे शरीरको घेरकर खड़े हैं तथा शरीरसे छेड़छाड़ कर रहे हैं। मैंने पहली बार अपने भौतिक शरीरको स्पष्टतः स्वयंसे अलग पड़े देखा तथा फिर डॉक्टरोंके घेरेमेंसे सिरकी साइडमेंसे मुझे मेरे शरीरमें प्रवेश करा दिया गया। इसके बाद जैसे एक गहरी दूरबीनसे अत्यन्त दूर देखते हैं, वैसे ही मुझे मेरे साथी अत्यन्त दूर तथा सूक्ष्म रूपमें दिखे। फिर लगभग सायं चार बजे मुझे होश आया। होश आनेपर मेरी पत्नीद्वारा बताया गया कि 'आपका फोन आनेपर मैंने आपके मित्रको फोन कर दिया था तथा मैं उनको लेकर शीघ्र अस्पताल आ गयी, थोड़ी देरमें डॉक्टरोंद्वारा आपको मृत घोषित कर दिया गया। मेरे द्वारा विश्वास नहीं करनेपर, डॉक्टरोंद्वारा मशीनपर इसकी पुष्टि करवायी गयी, तब हम सब रोने लगे तथा हमें कहा गया कि बॉडीको ले जायँ, अन्यथा इसे मोर्चरीमें रखा जायगा। आपके मित्र थोड़ी देरमें एक अन्य डॉक्टरको लाये। साथ आये डॉक्टरने नस हिलाते हुए नकारात्मकमें उत्तर दिया, परंतु मेरे ज्यादा आग्रह करनेपर उन्होंने आपकी बॉडीको बिजलीके झटके दिये, दो झटके निष्फल गये, लेकिन तीसरे एवं अन्तिम प्रयासमें आपके शरीरमें कुछ हरकत हुई। उसके बाद उन्होंने वापस मशीनें लगाकर आपका उपचार शुरू किया। चार बजे आपको होश आया तो मेरी जानमें जान आयी।'

यह घटना पूर्णतः सत्य है तथा मेरे कॉलेजके अन्य साथी कर्मचारियोंने भी इसकी पुष्टि की, जो उस समय अस्पताल पहुँच गये थे और उन्होंने घटनाको स्वयं देखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। कहना न होगा कि इससे हमारे पुनर्जन्म एवं कर्मका सिद्धान्त अक्षरशः प्रमाणित होता है।

मेरे मित्रका यह भी कथन है कि—'मैं यह विशेष रूपसे उल्लेख करना चाहूँगा कि उक्त घटनासे पूर्व मेरे अन्दर आस्तिक भाव कम ही था, इस घटनाके पश्चात् मैं पूर्णत: आस्तिक हो गया हूँ और आध्यात्मिक चर्चामें मेरी विशेष रुचि हुई है। मेरा यह भी विश्वास है कि जन्मसे पहले एवं मृत्युके बाद भी कोई अन्य लोक एवं व्यवस्था है।' [प्रे०—महेन्द्र स्वामी]

(३)

गायत्री-मन्त्रका प्रत्यक्ष प्रभाव

बात सन् २००२ ई०की है। मेरी माताजी मना करनेके बावजूद भी ब्याजकी चाहमें अनेक व्यक्तियोंको धन उधार दे देती थीं। इससे अनेक व्यक्ति वापस धन लौटाते ही नहीं थे। वे कहते थे कि 'जो करना हो कर लेना'। मेरे पिताजीका स्वर्गवास पहले ही हो चुका था, इकलौता पुत्र होनेके कारण माताजी मुझे उन लोगोंसे कुछ कहने भी नहीं देती थीं कि कहीं मेरे इकलौते पुत्रको कोई नुकसान न पहुँचा दे। इस उधार दिये धनके डूबनेसे और कई व्यक्तियोंसे शत्रुता होनेके कारण मेरा पूरा परिवार अवसादमें डूब गया। उन्हीं दिनों एक सज्जन पुरुष जो शिक्षक हैं, उन्होंने मुझे बताया कि तुम चिन्ता मत करो और गायत्रीमाताका आँचल थाम लो। गायत्री कामधेनु है, कल्पवृक्ष है। गायत्री-साधना कभी निष्फल नहीं जाती। मेरा यज्ञोपवीत-संस्कार भी हो चुका था। उनकी बात मानकर और गायत्रीमातापर श्रद्धा-विश्वासकर मैंने भी नित्य आधा घण्टा करीब ५०० जप (५ माला) रोज प्रारम्भ कर दिया। गायत्री-साधनासे मुझे अनेक छोटे-छोटे चमत्कार दिखने लगे, मुझे किसी घटनाका घटनेके पूर्व ही आभास हो जाता था। इसी क्रममें २-३ माह साधनाके बाद ही एक घटना घटी। अर्धरात्रिमें लगभग साढ़े बारह बजे होंगे, उस समय मैं सो रहा था। स्वप्नमें एक स्त्री आयी, जो लाल साड़ी पहने थी। उसके हाथमें कमण्डलु था तथा पैरोंमें मेंहदी रची हुई थी, उसका वर्ण गुलाबी प्रतीत हो रहा था। उन्होंने मेरी तरफ नोटोंकी गड्डियाँ फेंकीं, जो मैंने उठा लीं। जब सुबह हुई स्वप्न-विचार किया तो सोचा कि यूँ ही स्वप्न आ गया होगा और यह सोचकर मैं कामपर चला गया। जब शामको घर आया तो माताजीके मुँहसे यह सुनकर दंग रह गया कि जिस व्यक्तिसे हमारा धनको लेकर विवाद हुआ था, वह सारी राशि लगभग सत्तावन हजार रुपये चुकाकर चला गया। तब मैंने सोचा कि हो-न-हो स्वप्नमें गायत्रीमाताने ही दर्शन दिये हैं, उन्हींकी कृपासे ये धन प्राप्त हुआ है। तब मैंने गायत्रीमाताको मन-ही-मन प्रणाम किया और उन बुजुर्गको धन्यवाद दिया, जिन्होंने मुझे गायत्री-साधनाकी ओर प्रेरित किया था। सत्य है, गायत्री-साधना निष्फल नहीं जाती।—**विनोद सैन**

(४)

परमात्मा जो करता है, अच्छा ही करता है

तरसेमलाल एक किसान था, साथ ही वह बिजली विभागमें मुलाजिम भी था। वह धार्मिक खयालोंवाला तथा परमात्मामें विश्वास रखनेवाला आदमी था। अपनी नेक कमाईसे वह धार्मिक कार्योंके लिये दसवन्ध (हिस्सा) निकालता रहता था। सारा परिवार ही धार्मिक विचारोंवाला था। एक दिन वह अपने स्कूटरपर गाँवसे शहर जा रहा था कि अचानक ही एक बेकाबू ट्रकने इतनी तेज गतिसे उसे टक्कर मारी कि वह स्कूटरसहित ही कितनी दूरतक घिसटता हुआ चला गया। खैर! उसको अस्पताल पहुँचाया गया। उसकी पत्नी तथा उसके दो नवयुवक पुत्र भी अस्पताल पहुँच गये। डॉक्टरोंने अपनी पूरी-पूरी कोशिश जारी रखी, पर सफलता न मिली। दो दिनके पश्चात् डॉक्टरोंने फैसला लिया कि उसकी टाँग जगह-जगहसे टूट गयी है, लगभग सारी टाँग बेकार हो चुकी है। उनके सभी उपचार जब जवाब दे गये तो उन्होंने टाँग काटनेका निर्णय लिया। घुटनेसे नीचे तककी टाँग काटनी पड़ी।

टाँग कटनेसे तरसेम बहुत परेशान तथा दुःखी हुआ। वह परमात्माको कोसने लगा। वह दुःखी होकर कहता—'परमात्माने मेरे साथ नाइन्साफी की है।' परमात्माके प्रति उसकी अथाह श्रद्धा तथा आस्था डगमगाने लगी, परंतु उसकी पत्नी कहती—'परमात्मा जो करता है, अच्छा ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है, शायद परमात्माने आपके भलेके लिये ही ऐसा किया हो, आप परेशान न हुआ करें, जो हुआ सो हुआ, अब उसे भूल जायँ। उसकी लीला बहुत अपरंपार है।' परंतु तरसेमके मनमें शान्ति न आती।

तरसेम अब नकली टाँगसे चलता था, परंतु उसको एक हीनता भीतर-ही-भीतर काटती रहती। समाजमें वह अपने-आपको अधूरा-सा महसूस करता। विवाह-शादियों तथा अन्य समारोहोंमें वह अब कम ही जाता था। पत्नीके कहनेपर वह अपनी जीवनचर्या परमात्माके भरोसे चलाने लगा।

एक दिन वह अपने खेतमें गया था। खेतमें मजदूर काम कर रहे थे। वह काम-काज देखनेके बाद पानी पीनेके लिये नलतक गया। नलके आसपास ऊँची-ऊँची झाड़ियाँ उगी हुई थीं। वह जब नलका पानी पी रहा था कि अचानक ही एक जहरीले साँपने उसकी टाँगपर जोरसे डंक मारा। उसके होश उड़ गये। वह उस शक्तिशाली साँपकी दहशतसे गिर पड़ा। साँप अपना काम करके जा चुका था। वह घबरा गया तथा उसको चक्कर-सा आ गया, पर थोड़ी देर बाद होश आनेपर उसने उठकर देखा कि साँपने डंक तो उसकी नकली टाँगपर मारा है। अब उसे बोध हुआ कि परमात्मा जो करता है, अच्छा ही करता है। आज अगर उसकी टाँग न कटी होती तो जीवनकी डोर ही कट जाती। उसके दोनों हाथ परमात्माके प्रति कृतज्ञतामें जुड़कर ऊपर उठ गये। उसके मुँहसे स्वयं निकल पड़ा—परमात्मा जो करता है, अच्छा ही करता है; क्योंकि मेरी टाँग अगर आज ठीक होती तो इस जहरीले साँपके डँसनेसे मैं जीवनसे हाथ धो बैठा होता।—**बलविन्दर 'बालम'**

(५)

गीतासे जीवनरक्षा

घटना १२ जून सन् १९६३ ई०की है। फैजाबादके हवाई अड्डेके निकट तमसा नदीके पास रातके ११ बजेका समय था। सूँ सूँ करके तेज हवाएँ बह रही थीं। बारह नम्बर बैरिकमें पी०एस०डी० कमाण्डरके प्रदेशीय शिक्षा दलके बारह कमाण्डर विश्राम कर रहे थे। उन बारह कमाण्डरोंमें एक मैं भी था। पंखे पूरी गतिसे चल रहे थे कि तभी बैरिककी एक खिड़की उखड़कर एक कमाण्डरके सिरपर गिरी। बिजली गुल हो गयी। जोरसे आकाशीय बिजली चमकी। बैरिक नं० १२ तेजीसे उखड़ा, उसकी एसबेस्टसकी छत ऊपरको उठी। आकाशीय बिजलीके प्रकाशमें मैंने देखा कि वह छत दीवारोंसहित उड़ती चली गयी।

चन्द मिनटोंमें मैं पलंगसहित ऊपरको उठा। गीताका १६वाँ अध्याय, जिसका मैं पाठ कर रहा था, वह छातीपर रखा हुआ था। तेज तूफानने मुझे ऊपर उठाया। मैं गीताकी पुस्तक छातीसे दबाये हवामें पलंगसहित लहराता हुआ एक ओर शायद पूर्व दिशा थी, उस ओर उड़ चला। पलंग गोल-गोल चक्कर काटता हुआ मुझे लिये जा रहा था। तूफान बहुत तेज था। गीताकी पुस्तक हाथोंसे छूट गयी। मैंने पलंगकी निवाड़ जोरसे पकड़ ली। पलंग चक्कर काटता हुआ एक आमके पेड़के ऊपरी हिस्सेपर टकराकर उलझ गया। मैं पलंगपर चिपका हुआ था। थोड़ी देरमें वह डाल भी टूट गयी और मैं टूटी हुई डाल तथा पलंगसहित पास खड़े दूसरे आमके पेड़पर जा गिरा।

एक घण्टे बाद तूफान थम गया। वर्षा होने लगी। लगभग दो बजे होंगे, कुछ आवाजें आ रही थीं। सूँडजी! योगीजी! कहीं हो तो बोलो, मैं कमाण्डर मेघसिंह भदौरिया बोल रहा हूँ।

मैंने भदौरियाकी आवाज पहिचानी। मैं होशमें था। मैंने कहा—'मैं पेड़पर लटका हूँ। जीवित हूँ।'

मेजर साहब तथा तीन सिपाही कमाण्डर भदौरियाके साथ उस पेड़के नीचे आये। मैंने जोरसे कहा—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥

वे लोग मेरेवाले वृक्षके नीचे आ गये। रस्सी डालकर मुझे उतारा गया। मेरे शरीरमें कहीं खरोंच भी नहीं आयी थी।

मैंने अपने अनुज ८० वर्षीय साधु हरिश्याम पारथका स्मरण किया, जिन्होंने मुझे गीता कण्ठस्थ करनेकी प्रेरणा दी थी। आज उस गीतापाठका मैंने प्रत्यक्ष चमत्कार देखा, जो कि इतने भीषण तूफानमें भी मेरी जीवनरक्षा हुई।—**राधेश्याम योगी**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

अद्भुत क्षमा

जिसने दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास पढ़ा होगा, वह भलीभाँति जानता होगा कि निरपराध होते तथा परोपकार करते हुए महात्मा गाँधी-जितना दूसरा कोई भी व्यक्ति न पिटा होगा। इतनेपर भी इन्होंने किसीपर हाथ उठाना तो दूर रहा, अपने प्रतिरोधीके अकल्याणकी बात कभी मनमें भी न आने दी। क्षमा तो उसे तुरन्त कर ही दिया, दण्डसे भी बचानेकी भरपूर चेष्टा की। इतना ही नहीं, जहाँतक हो सका, बड़े प्रेमसे शक्तिभर जी लगाकर उसकी भलाई की। आदिसे अन्ततक ऐसी घटनाओंको पढ़कर मानवहृदय सर्वथा दु:खित, चकित, विस्मित और क्या-क्या होता जाता है, यह कौन बताये। ऐसी घटनाएँ उनके जीवनमें एक-दो नहीं, पग-पगपर और जीवनके अन्ततक होती दीखती हैं, उनकी गणना कौन करे? पर इनमें ट्रान्सवाल (दक्षिण अफ्रीका)-की एक घटना बड़ी मर्मस्पर्शी है। वह नीचे दी जा रही है—

जनवरी, सन् १९०८ ई० की बात है। ट्रान्सवालमें उपनिवेशवाद (भारतीयोंके वहाँ बसने-न-बसने)-का सत्याग्रह चल रहा था। कुछ लोगोंने मिलकर गाँधीजीके एक पुराने मुवक्किल मीर आलमको उनके विरुद्ध बहकाया और उनको मारनेके लिये ठीक किया। एक दिन वे फॉन ब्राडिस स्क्वायर स्थित एशियाटिक आफिसमें आम मार्गसे चले जा रहे थे। वे गिन्सनकी कोठीके पार ही हुए थे कि मीर आलम उनकी बगलमें आ गया और उनसे पूछा, 'कहाँ जाते हो?' गाँधीजीने पहले दिनके दिये भाषणके अनुसार बतलाया कि 'मैं दस अँगुलियोंकी निशानी देकर रजिस्ट्रीका सर्टिफिकेट लेने जा रहा हूँ। अगर तुम भी चलो तो तुम्हें दसों अँगुलियोंकी निशानी न देकर केवल दोनों अँगूठेकी निशानी देनेपर ही पहले सर्टिफिकेट दिलवा दूँ।' गाँधीजी अभी यह कह ही रहे थे कि इतनेमें उसने ताबड़तोड़ उनके सिरपर लाठी बरसाना आरम्भ किया। गाँधीजी तो पहली लाठीमें ही 'हे राम' कहकर गिर पड़े और बेहोश हो गये। गिरते समय उनका शिरोभाग एक नुकीले पत्थरपर गिरा; परिणामत: ऊपरका ओठ और ठुड्डी बुरी तरह फट गयी, एक दाँत टूट गया। दूसरे नुकीले पत्थरसे ललाट फटा और तीसरेसे आँखमें गहरी चोट आयी। इतनेपर भी आलम और उसके साथी गाँधीजीको लाठियों और लातोंसे मारते ही रहे। उनमेंसे कुछ इसप मियाँ और थम्बी नायडूको भी लगे।

शोर हुआ। गोरे आ गये। आलम और उसके साथी भागने लगे, पर गोरोंने उन्हें पकड़ लिया। गाँधीजीको लोग मि० गिप्सनके दफ्तरमें ले गये। होश आते ही उन्होंने पूछा—'मीर आलम कहाँ हैं?' रेवरेंड डोक उनके पास थे। उन्होंने बतलाया 'वह और उसके सभी साथी पकड़ लिये गये हैं।' गाँधीजीने तुरन्त कहा—'उन्हें छूटना चाहिये।' लोगोंने लाख समझाया कि अभी इतनी क्या जल्दी है, अभी आप आराम करें; पर गाँधीजीने एक न सुनी और ऐटर्नी-जेनरलके नाम तुरन्त तार भेजा—'मीर आलम और उनके साथियोंने मेरे ऊपर जो हमला किया, उसके लिये मैं उन्हें दोषी नहीं मानता। उनपर फौजदारी मुकदमा न चलाकर मेरी खातिर उन्हें तुरन्त छोड़ दिया जाय।' इस तारके उत्तरमें वे छोड़ दिये गये।

पर जोहान्सबर्गके गोरोंने तुरन्त ऐटर्नी-जेनरलको एक कड़ा पत्र लिखा—'गाँधीजीके निजी विचार यहाँ नहीं चल सकते। अपराधियोंने उन्हें सरेआम बीच रास्तेमें मारा है। यह सार्वजनिक अपराध है। अपराधियोंको पकड़ना ही होगा।' फलत: वे पुन: पकड़ लिये गये। गाँधीजीकी छुड़ानेकी चेष्टाके बावजूद भी उन्हें तीन मासकी सख़्त सजा मिली।

मुश्किलसे चार महीने बीते होंगे। जुलाईकी एक सभामें मीर आलमको गाँधीजीने देखा। उसने सभामें अपनी भूल स्वीकार की और उनसे क्षमा माँगी। गाँधीजीने उसका हाथ पकड़ लिया और बड़े स्नेहसे उसे दबाते हुए कहा—'मैंने तुम्हारे विरुद्ध कभी कुछ नहीं सोचा। इसमें तो तुम्हारा कोई अपराध था ही नहीं। तुम बिलकुल निश्चिन्त रहो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण' का आगामी ८८वें वर्ष (सन् २०१४ ई०)-का विशेषाङ्क

'ज्योतिषतत्त्वाङ्क'

भारतीय सनातनशास्त्र सत्यकी उद्भावनाकर जीवनको अध्यात्म-पथकी ओर अग्रसर करते हैं। ज्योतिषशास्त्र भी वेदका अंग [चक्षुःस्वरूप] होनेसे इसी तथ्यका उद्घाटन करता है। मूलतः ज्योतिषशास्त्र कर्तव्यशास्त्र है, व्यवहारशास्त्र है। यह प्रारब्धका ज्ञान कराकर पुरुषार्थ करनेकी प्रेरणा देता है और सत्कर्म करनेके लिये प्रवृत्त करता है। भारतीय चिन्तनका प्रवाह मुख्यतः दो धाराओंमें विभक्त है—प्रथम है पराविद्या और द्वितीय है अपराविद्या। पराविद्याका प्रतिपाद्य है—अक्षरब्रह्म और अपराविद्याका विषय है—क्षरब्रह्म। श्रुतिमें दोनों विद्याओंकी राशि संचित है और भारतीय सनातन संस्कृतिमें इन दोनोंको समन्वितकर जीवनको सौम्य और उदात्त बनानेकी चेष्टा की गयी है। ज्योतिषविज्ञान प्रत्यक्षमें अपराविद्या और अप्रत्यक्षरूपसे पराविद्याका सन्देश देता है। यह शास्त्र स्थूलके अध्ययनसे सूक्ष्मतत्त्वका ज्ञान करानेकी और स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर ले जानेकी विद्या है। यह शास्त्र समस्त मानवीय जीवनके प्रत्यक्ष और परोक्ष, व्यक्त और अव्यक्त, व्यवहित और अव्यवहित रहस्योंका विवेचन करता है और प्रतीकोंद्वारा समस्त जीवनको तथा भूत-भविष्यको उसी प्रकार व्यक्त करता है, जैसे दीपक अन्धकारकी वस्तुको प्रकाशित करता है।

मूलतः ज्योतिष कालविधायक शास्त्र है। शास्त्रोंमें कालको भगवान्‌का स्वरूप बताया गया है और इस कालरूप भगवान्‌के दो स्वरूप हैं—एक विश्वको उत्पन्न करनेवाला, उसका पालन करनेवाला तथा अन्तमें समस्त प्रपंचको अपनेमें लीन करनेवाला रूप है; जो कि अव्यक्त, निर्गुण, निराकार और अनन्त है, इसीका नाम महाकाल है। दूसरा रूप है—कलनात्मक अर्थात् जो पल, विपल, घटी, दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, मन्वन्तर तथा कल्प आदिके रूपमें विभाजित होकर व्यवहारकी सिद्धिहेतु अभिव्यक्त होता है। सूक्ष्मकालकी अमूर्त संज्ञा है। वस्तुतः कालकी न तो सूक्ष्मरूपमें इयत्ता है और न स्थूलरूपमें। वह एक अनिर्वचनीय तत्त्व है। हम जिस जगत्‌में रहते हैं, उसके नियामक कालरूप सूर्य ही अपनी कलाओंके विस्तारसे ग्रह-उपग्रहों, नक्षत्रमण्डल एवं तारासमूहोंकी सृष्टिकर उन्हें गतिशील तथा प्रकाशित करते हैं। यह सौरमण्डल ही जीवोंके कर्मका साक्षी और उन कर्मोंके परिपाकका हेतु है। ज्योतिषशास्त्र इन्हीं सौरमण्डलके ग्रह-नक्षत्रों तथा राशिसमूहों और पृथ्वीके जीवोंके परस्पर सम्बन्धों तथा परस्पर पड़नेवाले प्रभावोंकी व्याख्या करता है।

कालको दैव भी कहते हैं और कालके लक्षणोंको जाननेवाला आचारनिष्ठ पुरुष दैवज्ञ कहलाता है। कालविद्याको ज्योतिर्विज्ञान या ज्योतिषशास्त्र भी कहते हैं। इसीलिये इस विद्याके ज्ञाता ज्योतिषी या ज्यौतिषी कहलाते हैं। ज्योतिषशास्त्रमें विस्तृतरूपसे ज्योतिषी या दैवज्ञके लक्षण दिये गये हैं, उसकी मर्यादाएँ स्थापित की गयी हैं और यह भी बताया गया है कि जो इस शास्त्रको सम्यक्‌रूपसे जाने बिना दैवज्ञ होनेकी घोषणा करता है, वह पंक्तिदूषक तथा नक्षत्रसूचक कहलाता है और अन्तमें अधमगतिको प्राप्त होता है।

देवर्षि नारद, जिनकी नारदीय संहिता ज्योतिषका विशिष्ट ग्रन्थ है, उसमें बताया गया है कि बिना ज्योतिषशास्त्रके ज्ञानके किसी भी श्रौत एवं स्मार्तकर्मका यथाविधि सम्पादन सम्भव नहीं है। इसीलिये ब्रह्माजीने संसारके कल्याणके लिये सर्वप्रथम इस शास्त्रकी संरचना की—

विनैतदखिलश्रौतस्मार्तकर्म न सिद्ध्यति। तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा रचितं पुरा॥

मनुष्यके समस्त कार्य ज्योतिषके द्वारा ही चलते हैं। व्यवहारके लिये उपयोगी दिन, पक्ष, मास, वर्ष आदिका ज्ञान इसीके द्वारा होता है। यदि मानवको समयका ज्ञान न रहे तो कोई भी कृत्य यथासमय सम्पन्न न किया जा सकेगा। विश्वमें कालज्ञानके लिये जो साधन आज उपलब्ध हैं, उन सबका आधार ज्योतिष ही है। ज्योतिष ही बताता है कि आज कौन-सा दिन है, कौन-सी तिथि है, कौन-सा नक्षत्र है, कौन-सा मास है, कौन-सा संवत्सर है, कौन-सा युग चल रहा है, सूर्योदय कब हुआ, सूर्यास्त कब होगा इत्यादि। वेद तो मुख्यरूपसे यज्ञानुष्ठानके लिये ही प्रवृत्त हैं, दर्शपौर्णमास आदि जितने श्रौत तथा गृह्याग्निमें होनेवाले पाकयज्ञ हैं, उन सबका अनुष्ठान कालाधीन है। ज्योतिषके ज्ञानके बिना कालपर आधारित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनयन, विवाह आदि संस्कार, तिथि-वार तथा नक्षत्रके सम्बन्धसे वर्षभरमें होनेवाले व्रतपर्वोत्सव, संक्रान्तियाँ और उनके दानादि कर्म, विविध शुभाशुभ मुहूर्तोंमें होनेवाले कृत्य, यात्रा आदिका विचार, वास्तुविचार, देवप्रतिमा-स्थापन, प्रतिष्ठा आदि कर्म, तीर्थयात्रा तथा श्राद्धादि पितृयज्ञ, ग्रहण-विचार एवं सन्ध्यावन्दन आदि नित्यकर्म—इनका सम्पादन लगभग असम्भव है। प्रत्येक धार्मिक कार्य, पूजा आदिमें जो संकल्प किया जाता है, उसका ज्ञान बिना ज्योतिषके हो नहीं सकता; क्योंकि संकल्पमें देश और कालकी योजना ही मुख्यरूपसे रहती है। ज्योतिषके ज्ञानके बिना खेती करनेवाला किसान भी नहीं जान सकेगा कि किस नक्षत्रमें वर्षा होती है, बुआई कब करनी चाहिये इत्यादि। इतिहास तो पूर्णतः कालपर ही निर्भर करता है, कालका पता नहीं रहेगा तो तिथि-निर्धारण कैसे होगा? सृष्टिका रहस्य और क्रम, भूगर्भकी स्थिति, मौसमका ज्ञान और खगोलीय गतिविधियाँ—ये सभी बातें ज्योतिषके ज्ञानपर ही निर्भर हैं। इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र अत्यन्त उपादेय तथा सभीके लिये परम उपयोगी है, इसीलिये व्यावहारिक जीवनकी सफलताके लिये ज्योतिषका ज्ञान होना आवश्यक है।

इन्हीं सब दृष्टियोंसे गीताप्रेससे कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें इस वर्ष (२०१४ ई०) **'ज्योतिषतत्त्वाङ्क'** प्रकाशित करनेका विचार है। इसमें मुख्यरूपसे ज्योतिषशास्त्रका परिचय, ग्रह-नक्षत्रोंका जीवनसे सम्बन्ध, कालतत्त्वमीमांसा, दैवज्ञके लक्षण, वैदिक ज्योतिष, वेदांग ज्योतिष, स्कन्धत्रयात्मक ज्योतिष, ज्योतिषशास्त्रका बृहद् इतिहास, पूर्वजन्म, पुनर्जन्म और ज्योतिष, प्रारब्ध, पुरुषार्थ और फलित ज्योतिषका तात्त्विक विवेचन, पंचांग-परम्परा, ज्योतिर्विज्ञान तथा उससे सम्बद्ध शास्त्र, विविध धर्मोंमें ज्योतिषतत्त्वनिरूपण, पाश्चात्य विचारधारा और भारतीय ज्योतिष, भारतीय गणितशास्त्र और अंक-विज्ञान, ज्योतिषके प्रमुख आचार्य, कुण्डली-निर्माण तथा फलित शास्त्र, उपासना-विज्ञान, दशा-अन्तर्दशा-विचार, प्रश्नविज्ञान तथा प्राचीन वेधशालाओंका परिचय आदि बातोंपर महत्त्वपूर्ण सामग्री देनेका विचार है, ताकि हम अपने शुभाशुभ कर्मोंको जानकर उनसे प्रेरणा ले सकें और सन्मार्गपर आरूढ़ हो अपने परम उद्देश्यकी प्राप्तिमें सफल हों।

हमारा विचार है कि ज्योतिषशास्त्रका वास्तविक शास्त्रीय मूलस्वरूप सर्वसाधारणके समक्ष आ सके और ज्योतिषसम्बन्धी भ्रान्त धारणाओंका निराकरण भी हो सके। इसी दृष्टिसे हम भारतके गण्यमान्य ज्योतिर्विद् आचार्यों, आदरणीय सन्त-महात्माओं तथा ज्योतिषका विशिष्ट ज्ञान रखनेवाले विद्वानों, अधिकारी मनीषी लेखकोंसे सादर सहयोगकी प्रार्थना करते हैं। विद्वान् लेखकों तथा दैवज्ञजनोंकी सेवामें विशेषाङ्ककी संक्षिप्त वांछनीय सूची दिशा-निर्देशके रूपमें दी जा रही है। हमारी प्रार्थना है कि प्रस्तुत सूचीमें उल्लिखित विषयोंपर अथवा सूचीसे अतिरिक्त सम्बद्ध विषयोंपर अपनी महत्त्वपूर्ण सामग्री ३१ अगस्त सन् २०१३ ई० तक भेजनेकी कृपा करें। इसके बाद प्राप्त होनेवाली सामग्रीका उपयोग होना कठिन प्रतीत होता है।

(सरल एवं रोचक भाषामें विषयसे सम्बद्ध संक्षिप्त विशिष्ट सामग्रीको प्रकाशनमें प्राथमिकता दी जा सकेगी।)

विनीत—

राधेश्याम खेमका

(सम्पादक)

विषय-सूची

[क] ज्योतिषतत्त्व-मीमांसा

१- ज्योतिषशास्त्रका सामान्य परिचय।

२- ज्योतिषकी उपादेयता और इसके ज्ञानकी आवश्यकता।

३- ज्योतिष और जीवनका घनिष्ठ सम्बन्ध।

४- ज्योतिषशास्त्र और कालज्ञान।

५- कालका स्वरूप और कालमीमांसा।

६- कालके मूर्त (व्यक्त-स्थूल) और अमूर्त (अव्यक्त-सूक्ष्म) रूप।

७- कालातीत भगवान् ही कालके रूपमें व्यक्त होते हैं।

८- **'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धः'** (गीता ११। ३२)।

९- **'कालः कलयतामहम्'** (गीता १०। ३०)।

१०- **'अहमेवाक्षयः कालः'** (गीता १०। ३३)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११- काल और कालातीत चिन्तन।
१२- कालके उत्पादक महाकाल शिव।
१३- त्रुटि आदि काल-विभाजन और काल-चक्र।
१४- विभाज्य और अविभाज्य कालतत्त्वविमर्श।
१५- जगत्के नियामक गतिरूप भगवान् सूर्य।
१६- बृहत्संहितामें वर्णित दैवज्ञकी सदाचार-मीमांसा।
१७- दैवज्ञ और सिद्धयोगी।
१८- ज्योतिषशास्त्र—भारतीय सनातन संस्कृतिका अभिन्न अंग।
१९- ज्योतिष भगवान् वेदका नेत्र है।
२०- ज्योतिषशास्त्र प्रत्यक्ष शास्त्र है।
२१- वेदांगोंमें ज्योतिषका स्थान।
२२- ऋग्वेदीय ज्योतिष, यजुर्वेदीय ज्योतिष तथा अथर्व ज्योतिष।
२३- ज्योतिषके तीन स्कन्ध—[(१) सिद्धान्त, (२) संहिता और (३) होरा]।
२४- पंचस्कन्धात्मक ज्योतिष—[(१) सिद्धान्त, (२) संहिता, (३) होरा, (४) प्रश्न और (५) शकुन]।
२५- पूर्वजन्म, पुनर्जन्म और ज्योतिष।
२६- कर्मविपाक और ज्योतिषीय योग।
२७- प्रारब्ध, पुरुषार्थ और फलित ज्योतिष।
२८- **'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'** तथा फलित ज्योतिषकी संगति।
२९- भारतीय पंचांग-परम्पराका इतिहास तथा स्थानीय पंचांग, केरोपन्थी पंचांग।
३०- संवत्सर, वर्ष, मास और वारप्रवृत्ति।
३१- मानक समय (स्टैण्डर्ड टाइम), ग्रीनविच टाइम और लोकल टाइम।
३२- ज्योतिषके पाँच सिद्धान्त—[(१) पैतामह, (२) वासिष्ठ, (३) रोमक, (४) पौलिस तथा (५) सूर्यसिद्धान्त]।
३३- सूर्यसिद्धान्तकी व्यापकता।
३४- मेदिनीय ज्योतिष।

[ख] ज्योतिर्विज्ञान और विविध शास्त्रोंका सम्बन्ध

१- ज्योतिर्विज्ञान और अध्यात्मशास्त्र।
२- ज्योतिर्विद्या और योगशास्त्र।
३- अठारहविद्यास्थान और ज्योतिष।
४- सामुद्रिकशास्त्र और ज्योतिष।
५- धर्मशास्त्र और ज्योतिष।
६- वास्तुशास्त्र और ज्योतिष।
७- स्वरोदयशास्त्र और ज्योतिष।
८- शकुनशास्त्र (निमित्तशास्त्र) और ज्योतिष।
९- नक्षत्रविज्ञान तथा ज्योतिष।
१०- वायुपरीक्षा, संग्राम-विजय और ज्योतिषशास्त्र।
११- खगोल-विज्ञान और ज्योतिष।
१२- भैषज्यशास्त्र और ज्योतिष।
१३- रत्नविज्ञान और ज्योतिष।
१४- प्रश्नविद्या और ज्योतिषशास्त्र।
१५- अंगविद्या और प्रश्नज्योतिष।
१६- अंकज्योतिष और फलित ज्योतिष।
१७- मुहूर्तशास्त्र और ज्योतिष।
१८- यात्राविज्ञान एवं ज्योतिष।
१९- स्वप्नविज्ञान और ज्योतिष।
२०- भूगर्भशास्त्र और ज्योतिष।
२१- कृषिशास्त्र, मौसम-विज्ञान और ज्योतिष।
२२- प्रतिष्ठाशास्त्र और ज्योतिष।
२३- कर्मकाण्ड और ज्योतिष।
२४- परलोकविज्ञान और ज्योतिषशास्त्र।
२५- आराधना-उपासना और ज्योतिषतत्त्व।

[ग] सत्साहित्य तथा विविध धर्मोंमें ज्योतिषतत्त्व-निरूपण

१- वैदिक संहिताओं तथा ब्राह्मणग्रन्थोंमें ज्योतिषके मूल सूत्र।
२- आरण्यक एवं उपनिषदोंमें ज्योतिषतत्त्व-सन्निवेश।
३- आश्वलायन तथा पारस्कर आदिके कल्पसूत्र-ग्रन्थोंमें ज्योतिषकी धर्मशास्त्रीय मीमांसा।
४- निरुक्त एवं व्याकरणशास्त्रमें ज्योतिषकी अवधारणा।
५- वेदांगोंमें ज्योतिष-निरूपण।
६- मन्वादि स्मृतियोंमें ज्योतिष-संकलन।
७- वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारतादि इतिहास-ग्रन्थोंमें ज्योतिषके प्रकरण।
८- श्रीमद्भगवद्गीताका काल-तत्त्व-विवेचन।
९- नारद, अग्नि, विष्णुधर्मोत्तर, मार्कण्डेय तथा भविष्य आदि पुराणोंमें उपलब्ध ज्योतिषका विशाल वाङ्मय।
१०- पुराणोंमें वर्णित कूर्मचक्र तथा शिशुमारचक्र।
११- दर्शनशास्त्रोंमें कालतत्त्वकी व्याख्या।
१२- संस्कृत काव्यग्रन्थोंमें उपलब्ध ज्योतिषके आख्यान।
१३- तुलसी, सूरके काव्यों तथा हिन्दी-साहित्यमें निरूपित ज्योतिषकी बातें एवं शकुन-निरूपण।
१४- योगवासिष्ठमें वर्णित दैवके प्राबल्यके विषयमें वसिष्ठजीका श्रीरामको उपदेश।
१५- कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें निरूपित ज्योतिषतत्त्व।
१६- सूर्यविज्ञप्ति, चन्द्रविज्ञप्ति तथा ज्योतिष्करण्डक आदि प्राचीन जैन-ग्रन्थोंमें ज्योतिर्विज्ञान-मीमांसा।
१७- विश्वके विभिन्न धर्म-सम्प्रदायोंमें ज्योतिषकी अवधारणा।
१८- यावनीय ज्योतिष-विज्ञान।
१९- बेबीलोन, यूनान तथा ग्रीस आदि देशोंका ज्योतिष-विषयक साहित्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२०- भारतीय ज्योतिषके सम्बन्धमें पाश्चात्य विचारकोंके विचार [अलबरूनी, मैक्समूलर, वर्नियर, कर्नल टॉड, विलसन, कोलब्रुक, थीबो तथा वर्जेस आदि]।

२१- राजदरबारोंमें ज्योतिषकी प्रतिष्ठा।

[घ] ज्योतिषशास्त्रका इतिहास [ग्रन्थ और ग्रन्थकार]

१- भारतीय ज्योतिषशास्त्रके आधारभूत ग्रन्थ।

२- ज्योतिषशास्त्रके प्रवर्तक ऋषि-मुनियोंका दिव्य जीवन-चरित्र [सूर्य, पितामह, व्यास, वसिष्ठ, अत्रि, पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, मरीचि, मनु, अंगिरा, लोमश, पौलिश, च्यवन, यवन, भृगु, शौनक तथा पुलस्त्य]

३- ज्योतिषशास्त्रके परवर्ती आचार्य—

[आर्यभट्ट प्रथम, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, लल्लाचार्य, पद्मनाभ,श्रीधर, बलभद्र, मुंजाल, आर्यभट्ट द्वितीय, पृथूयश स्वामी, भट्टोत्पल, श्रीपति, भास्कराचार्य, केशव, मकरन्द, गणेशदैवज्ञ, ढुण्ढिराज, विश्वनाथ, कमलाकरभट्ट, मथुरानाथ, चिन्तामणिदीक्षित, दिनकर, बापूदेवशास्त्री, कृष्णशास्त्री गोडबोले, वेंकटेश बापूजी केतकर, बालगंगाधर तिलक, विनायक पाण्डुरंग, सुधाकर द्विवेदी, ह० ने० काटवे, पं० सूर्यनारायण व्यास, डॉ० बी० वी० रमन आदि।]

[ङ] जातकतत्त्वमीमांसा

१- सौरमण्डलका परिचय।

२- नवग्रहोंका स्वरूप और उनके अधिदेवता तथा प्रत्यधिदेवता।

४- बारह राशियोंका स्वरूप।

५- अभिजित्सहित अश्विनी आदि अट्ठाईस नक्षत्रोंका परिचय।

६- पंचांग—तिथि, वार, नक्षत्र, योग तथा करण।

७- कुण्डली-निर्माणके लिये आवश्यक ज्ञातव्य बातें।

८- कुण्डलीके तन्वादि द्वादश भावोंका रहस्य तथा उनके विचारणीय विषय।

९- प्रथम भाव—लग्नका रहस्य और लग्नपरिचय **(राशीनामुदयो लग्नः)**।

१०- लंकोदय आदिका मान।

११- लग्नज्ञानके लिये इष्टकाल आदिका शोधन।

१२- औदयिक स्पष्ट सूर्य तथा तात्कालिक सूर्यका ज्ञान।

१३- ग्रहस्पष्ट, चन्द्रस्पष्ट तथा चन्द्रगति।

१४- लग्नसारिणी, लग्नशुद्धि तथा दशम लग्नसारिणी।

१५- पलभा, अयनांश तथा प्रस्तार (पंक्ति)।

१६- आधान लग्न, जन्मलग्न, आरूढलग्न, उपपदलग्न तथा दशम लग्न।

१७- ताम्रघटी, बालुकाघटी, जलघटी, सूर्यघटीका परिचय।

१८- जन्मकुण्डली (लग्नकुण्डली—सूर्यकुण्डली) तथा चन्द्रकुण्डली-निर्माणविधि।

१९- दशवर्गीकुण्डली-विचार तथा निर्माणविधि।

२०- नक्षत्रज्ञान तथा भयात और भभोग साधन।

२१- विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी एवं योगिनी दशा तथा दशा-फलविचार।

२२- ग्रहोंका स्थान, दृष्टिबल, उच्च, मूलत्रिकोण तथा दीप्तादि बल।

२३- ग्रहोंकी नैसर्गिक, तात्कालिक मैत्री तथा पंचधा मैत्रीचक्र।

२४- अष्टकवर्ग-विचार।

२५- विविध योग तथा और उनका फल।

२६- ग्रहगोचर-विचार।

२७- अवकहडाचक्र (शतपदचक्र)-का परिचय।

२८- जातक, सूतिका एवं सूतिकागृहविचार।

२९- नष्टजातक एवं वियोनिजन्मज्ञान।

३०- त्रिविध गण्डान्त, मूलशान्ति, पंचक, द्विपुष्कर एवं त्रिपुष्करशान्ति।

३१- शनिचरण (पाया) विचार।

३२- स्त्रीजातक-विचार।

३३- विवाहमेलापक तथा मंगली आदि विचार।

३४- अर्कविवाह, कुम्भविवाह आदि।

३५- ग्रहण-मीमांसा

३६- मास एवं मलमास तत्त्व, पूर्णिमान्त और अमान्त-मासविचार।

३७- तिथि एवं विज्ञान।

३८- मेषादि द्वादश संक्रान्तियोंका पुण्यकाल तथा इनमें अनुष्ठित होनेवाले दानादि पुण्यकर्म।

३९- जैमिनीय आयुर्दाय विचार।

४०- नवग्रहोंके लिये दान, औषधि-स्नान, रत्नधारण, जप, उपासना आदि।

४१- बालारिष्टयोग तथा शान्तिके उपाय।

४२- व्रतोपवास और ज्योतिषीय कालगणना।

४३- मुहूर्तविज्ञान तथा विविध संस्कारों एवं प्रतिष्ठा आदि कर्मोंके मुहूर्त।

४४- यात्रा-विचार तथा यात्राका प्रस्थान।

४५- भद्रा, कालसर्प तथा राहुवेलाविचार।

४६- ताजिक (हायन) वर्षफल निर्माणविधि, ताजिकनील-कण्ठीके विविध योग मुन्था तथा इत्थसाल आदि योग।

४७- प्रश्न-ज्योतिष, केरलीय प्रश्नज्योतिष, रमल ज्योतिष तथा मूकप्रश्न।

४८- प्राचीन वेधशालाएँ।

४९- महाराज जयसिंह और उनके द्वारा स्थापित वेधशालाएँ।

५०- **'यो ज्योतिषं वेद स वेद सर्वम्'**।

५१- **'ज्योतिर्ज्ञानं तु यो वेत्ति स याति परमां गतिम्'**।

नया प्रकाशन—श्रीमद्भागवत-महापुराण (ग्रन्थाकार, दो खण्डोंमें) [कोड 1951, 1952] सटीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

नया प्रकाशन—श्रीमद्भागवत-महापुराण (ग्रन्थाकार, दो खण्डोंमें)[कोड 1951, 1952] सटीक मोटे अक्षरोंमें, पत्राकारकी तरह, सजिल्द, मूल्य रु० ७०० (दोनों खण्डोंका), डाकखर्च रु० १००

एक पृष्ठका नमूना

सूत उवाच

अत्र ते कीर्तयिष्यामि भक्तियुक्तं कथानकम्। शुकेन मम यत्प्रोक्तं रहः शिष्यं विचार्य च। २४
एकदा हि विशालायां चत्वार ऋषयोऽमलाः। सत्सङ्गार्थं समायाता ददृशुस्तत्र नारदम्। २५

कुमारा ऊचुः

कथं ब्रह्मन्दीनमुखः कुतश्चिन्तातुरो भवान्। त्वरितं गम्यते कुत्र कुतश्चागमनं तव। २६
इदानीं शून्यचित्तोऽसि गतवित्तो यथा जनः। त्वेदं मुक्तसङ्गस्य नोचितं वद कारणम्। २७

अहं तु पृथिवीं यातो ज्ञात्वा ... च काशीं गोदावरीं तथा। २८
हरिक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं श्रीरङ्गं सेतुबन्धनम्। एवमादिषु तीर्थेषु भ्रममाण इतस्ततः। २९
नापश्यं कुत्रचिच्छर्म मनःसंतोषकारकम्। कलिनाधर्ममित्रेण धरेयं बाधिताधुना। ३०

सूतजीने कहा—अब मैं तुम्हें वह भक्तिपूर्ण कथानक सुनाता हूँ, जो श्रीशुकदेवजीने मुझे अपना अनन्य शिष्य जानकर एकान्तमें सुनाया था॥ २४॥ एक दिन विशालापुरीमें वे चारों निर्मल ऋषि सत्संगके लिये आये। वहाँ उन्होंने नारदजीको देखा॥ २५॥

सनकादिने पूछा—ब्रह्मन्! आपका मुख उदास क्यों हो रहा है? आप चिन्तातुर कैसे हैं? इतनी जल्दी-जल्दी आप कहाँ जा रहे हैं? और आपका आगमन कहाँसे हो रहा है?॥ २६॥ इस समय तो आप उस पुरुषके समान व्याकुल जान पड़ते हैं जिसका सारा धन लुट गया हो; आप-जैसे आसक्तिरहित पुरुषोंके लिये यह उचित नहीं है। इसका कारण बताइये॥ २७॥

नारदजीने कहा—मैं सर्वोत्तम लोक समझकर पृथ्वीमें आया था। यहाँ पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी (नासिक), हरिद्वार, कुरुक्षेत्र, श्रीरंग और सेतुबन्ध आदि कई तीर्थोंमें मैं इधर-उधर विचरता रहा; किन्तु मुझे कहीं भी मनको संतोष देनेवाली शान्ति नहीं मिली। इस समय अधर्मके सहायक कलियुगने सारी पृथ्वीको पीड़ित कर रखा है॥ २८—३०॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र० ति० २०-४-२०१३
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत-संख्या—NP/GR-13/2011-2013
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2011-2013

गीताप्रेससे प्रकाशित १७ महापुराण

कोड	पुस्तक-नाम		मू० रु०
1897	श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण (मतान्तरसे) सटीक		३००
1898	,, ,, ,, ,, ,,	,,	
26,27	श्रीमद्भागवतमहापुराण	,,	४००
557	श्रीमत्स्यमहापुराण	,,	२००
48	श्रीविष्णुपुराण	,,	*
1432	श्रीवामनपुराण	,,	११०
1131	श्रीकूर्मपुराण	,,	१००
	केवल हिन्दीमें		
1362	श्रीअग्निपुराण—सम्पूर्ण (श्लोकाङ्कसहित)		१७०
789	संक्षिप्त श्रीशिवपुराण—मोटा टाइप		१७५
44	संक्षिप्त पद्मपुराण		२००
1183	संक्षिप्त श्रीनारदपुराण		१७०
279	संक्षिप्त श्रीस्कन्दपुराण		२५०
1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण		१००
539	संक्षिप्त श्रीमार्कण्डेयपुराण		७५
1189	संक्षिप्त श्रीगरुड़पुराण		१४०
1361	संक्षिप्त श्रीवराहपुराण		८५
631	संक्षिप्त श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण		१७५
584	संक्षिप्त श्रीभविष्यपुराण		*
1932	श्रीलिङ्गमहापुराण		*

नोट— गीताप्रेससे प्रकाशित संक्षिप्त पुराण सम्पूर्ण पुराणके हिन्दी भाषामें भावानुवाद हैं। केवल कुछ विस्तृत प्रसंगोंको संक्षिप्त किया गया हो सकता है।

* शीघ्र उपलब्धि सम्भावित।

गीताप्रेससे प्रकाशित अन्य पुराण

1113	नरसिंहपुराण—सटीक	७०
38	हरिवंशपुराण—सटीक	२७५
1589	हरिवंशपुराण—केवल हिन्दी	२२०
1610	देवीपुराण (महाभागवत) शक्तिपीठाङ्क	९०

गीताप्रेससे प्रकाशित बाल-साहित्य

कोड	पुस्तक-नाम		मू० रु०
	बालकोपयोगी पुस्तकें रंगीन चित्रोंके साथ		
1690	बालकके गुण	ग्रन्थाकार	३०
1689	आओ बच्चों तुम्हें बतायें	,,	२०
1692	बालककी दिनचर्या	,,	२०
1693	बालकोंकी सीख	,,	२०
1694	बालकके आचरण	,,	२०
1691	बालकोंकी बातें	पुस्तकाकार	१२
1437	वीर बालक	,,	१२
1451	गुरु और माता-पिताके भक्त बालक	,,	१२
1450	सच्चे और ईमानदार बालक	,,	१०
1449	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ	,,	१०
1448	वीर बालिकाएँ	,,	१०
	सत्य घटनाओंपर आधारित कहानियाँ		
159	आदर्श उपकार		१७
160	कलेजेके अक्षर		१७
161	हृदयकी आदर्श विशालता		१५
162	उपकारका बदला		१५
163	आदर्श मानव हृदय		१५
164	भगवान्‌के सामने सच्चा सो सच्चा		१७
165	मानवताका पुजारी		१७
166	परोपकार और सच्चाईका फल		१५
510	असीम नीचता और असीम साधुता		१७
	रोचक कहानियाँ		
1669	पौराणिक कहानियाँ		१४
1624	पौराणिक कथाएँ		१२
1673	सत्य एवं प्रेरक घटनाएँ		२०
1093	आदर्श कहानियाँ		८
137	उपयोगी कहानियाँ		१२
147	चोखी कहानियाँ		८
122	एक लोटा पानी		१७
1308	प्रेरक कहानियाँ		८
680	उपदेशप्रद कहानियाँ		१२

खुल गया है— गीताप्रेस, गोरखपुरकी नई थोक पुस्तक दूकान, जी ७, आकार टावर, सी ब्लाक, हर्ष पैलेसके सामने, गान्धीनगर, भीलवाड़ा—३११००१ (राजस्थान) ✆ (०१४८२) २४८३३०

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

Central Library Gurukul Kangri University Haridwar-249404

मुनियोंद्वारा गरुडासीन लक्ष्मी-नारायणकी स्तुति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगावतरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

Gurukul Kangri University Library Haridwar-249404 (U.A.)

वाग् गद्‌गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्‌गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

वर्ष ८७ | गोरखपुर, सौर आषाढ़, वि० सं० २०७०, श्रीकृष्ण-सं० ५२३९, जून २०१३ ई० | संख्या ६

पूर्ण संख्या १०३९

श्रीगंगा-माहात्म्य

देवनदी कहँ जो जन जान किए मनसा, कुल कोटि उधारे।
देखि चले झगरैं सुरनारि, सुरेस बनाइ बिमान सँवारे॥
पूजाको साजु बिरंचि रचैं तुलसी, जे महातम जाननिहारे।
ओककी नीव परी हरिलोक बिलोकत गंग! तरंग तिहारे॥

जिस मनुष्यने गंगास्नानके लिये मनमें जानेका विचारमात्र कर लिया, उसके करोड़ों पीढ़ियोंका उद्धार हो गया। उसे चलता देखकर [उसे वरण करनेके लिये] देवांगनाएँ आपसमें झगड़ने लगती हैं, देवराज इन्द्र उसके लिये विमान बनाकर सजाने लगते हैं, ब्रह्माजी; जो कि उसके माहात्म्यको जाननेवाले हैं, उसके पूजनकी सामग्री जुटाने लगते हैं और हे गंगाजी! तुम्हारी तरंगोंका दर्शन होते ही विष्णुलोकमें (उसके लिये) घरकी नींव पड़ जाती है। (अर्थात् उसका विष्णुलोकमें जाना निश्चित हो जाता है)। **[कवितावली]**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर आषाढ़, वि० सं० २०७०, श्रीकृष्ण-सं० ५२३९, जून २०१३ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- श्रीगंगा-माहात्म्य	७१९
२- कल्याण	७२१
३- भगवन्नाम (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७२२
४- अभिलाषा [विनय-पत्रिका]	७२४
५- आत्मोद्धारके कतिपय सुगम उपाय (पं० श्रीविष्णुदत्त रामचन्द्रजी दूबे)	७२५
६- विनाशके पथपर (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	७२७
७- सन्त-वचन [सन्त थॉमस ए० केम्पिस]	७२९
८- पुराणोक्त कालगणना-विज्ञान (डॉ० श्रीकौमुदीजी श्रीवास्तव एवं डॉ० श्रीसंजयजी श्रीवास्तव)	७३०
९- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	७३४
१०- 'नामु राम को कलपतरु' (श्रीदेवेन्द्रजी शर्मा)	७३५
११- मौनकी साधना [सन्त श्रीविनोबा भावेके विचार]	७३८
१२- भक्त एवं भगवान्‌का सम्बन्ध (अनन्तश्री अनिरुद्धाचार्य वेंकटाचार्यजी महाराज)	७३९
१३- शरणागतिमें निहित है जीवनका सुख (श्रीगजाननजी पाण्डेय)	७४१
१४- आत्मसम्मानके आगे कुछ भी नहीं [महारानी पद्मिनीकी शौर्यकथा] (जौहरगाथा) (श्रीसौजन्यजी गोयल)	७४२
१५- दिव्य गुणोंसे युक्त प्राणी—गौ (श्रीबाबूलालजी शर्मा)	७४४
१६- वृद्धजनहिताय-सर्वजनसुखाय (श्रीइन्द्रमलजी राठी) [प्रे०—श्रीरामेश्वरलालजी तापड़िया]	७४७
१७- प्रेमीका प्रलाप (श्रीरमेशजी दूबे, बी०ए०, विशारद)	७४८
१८- सफल-जीवन बनिये! (श्रीसाँवरमलजी सुरेका, बी०कॉम०)	७४९
१९- वेदोंमें राष्ट्रीयता और लोकमंगलकी भावना (श्रीगदाधरजी भट्ट)	७५२
२०- ज्येष्ठमासके मुख्य व्रतपर्व	७५३
२१- महान् सन्त स्वामी रामतीर्थ [सन्त-चरित] (श्रीनारायणजी स्वामी) [प्रे०—श्रीदेवव्रतजी वशिष्ठ]	७५६
२२- निवेदन [कविता] (श्रीपरमानन्दजी प्रभाकर, साहित्याचार्य)	७५९
२३- साधनोपयोगी पत्र	७६०
२४- कृपानुभूति	७६२
२५- पढ़ो, समझो और करो	७६३
२६- मनन करने योग्य	७६६

चित्र-सूची

१- मुनियोंद्वारा गरुडासीन लक्ष्मी-नारायणकी स्तुति	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- गंगावतरण	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- तलाकका पाप-ताण्डव	(इकरंगा)	७२९
४- राजपूतोंका यवनसेनापर आक्रमण	(,,)	७४३
५- जौहरकी ज्वाला	(इकरंगा)	७४३
६- वटवृक्षका पूजन	(,,)	७५३
७- मकरवाहिनी श्रीगंगाजी	(,,)	७५४
८- स्वामी रामतीर्थ	(,,)	७५६

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द १८० रु०
सजिल्द २०० रु०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ९०० रु०
सजिल्द १००० रु०

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 40 (Rs. 2200), पंचवर्षीय US$ 200 (Rs. 11000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—जो धन न्याय एवं सत्यके साथ उपार्जित किया गया है तथा जिसके उपार्जनमें किसीका अहित नहीं होता और किसीके साथ विश्वासघात नहीं होता, वही धन पवित्र और सुखदायक है।

जिसके पास ऐसा भगवान्‌की सम्पत्तिरूप पवित्र धन है और जो उसे निरन्तर भगवान्‌की सेवामें लगा रहा है, वही वास्तवमें धनी है। उसीके लिये धन सुखरूप और वरदानरूप है।

जिस धनको प्राप्त करनेमें असत्यका आश्रय लेना पड़े, झूठ बोलना पड़े, चोरी-बेईमानी करनी पड़े, खाद्य पदार्थमें अखाद्य वस्तुका मिश्रण करना पड़े, वह धन सदा दुःखरूप तथा अभिशापरूप है। ऐसे धनसे नये-नये पाप ही बनते रहते हैं।

धनका कोई भी महत्त्व नहीं है। महत्त्व है—सदाचारका, धर्मनिष्ठाका और त्यागका। धन तो असुर-राक्षसोंके पास भी होता है—चोर-लुटेरोंके पास भी हो सकता है।

धर्मनिष्ठा, सदाचार और त्यागसे ही धनकी पवित्रता रहती है। जो धन धर्मके द्वारा नियन्त्रित नहीं है, जिससे असदाचार और भ्रष्टाचार होता है या जो अधर्म एवं भ्रष्टाचारके द्वारा उपार्जित और रक्षित होता है, जिसका निरभिमानिताके साथ त्याग नहीं होता, वह धन जहाँ रहता है एवं जहाँ जाता है, वहीं अपवित्रता उत्पन्न करता है, गन्दगी फैलाता है, नैतिक पतनका प्रधान कारण बनता है।

धनको धनके रूपमें महत्त्व मिलनेपर वह मनुष्यको चोरी, डकैती, अनाचार और मिथ्याचारमें प्रवृत्त कराता है। मनुष्य देखता है कि जिसके पास धन है, उसीका समाजमें आदर है, वही श्रेष्ठ माना जाता है और उसके सारे दोष ढक जाते हैं; इसलिये वह किसी भी प्रकारसे धन-उपार्जन करके समाजमें सर्वश्रेष्ठ तथा सम्मान्य बनना चाहता है। इस प्रकार धनका महत्त्व होनेपर समाज 'चोर-पूजा' करने लगता है। फिर चोरी, डकैती, मिथ्याचार, भ्रष्टाचार आदि घृणाकी वस्तु न रहकर गौरवकी वस्तु बन जाते हैं। इसलिये कभी धनको महत्त्व मत दो; धर्मनिष्ठा, सदाचार तथा त्यागको महत्त्व दो। जिसमें धर्मनिष्ठा, सदाचार और त्याग है, वह श्रेष्ठ है, वही सम्मान्य और पूज्य है, धनवान् नहीं। यही समझो और समझाओ। कम-से-कम अपने लिये तो यही निश्चय करो कि यदि हमारा धन सत्य तथा न्यायके द्वारा उपार्जित है, हमें धनका अभिमान नहीं है और वह भगवान्‌की सेवामें लग रहा है, तभी हम श्रेष्ठ हैं; नहीं तो धनराशि भले ही कितनी ही प्रचुर हो, हम श्रेष्ठ नहीं हैं, नीच हैं और सर्वथा घृणाके पात्र हैं।

याद रखो—जिस समाजमें धर्मनिष्ठा, सदाचार और त्यागका आदर-सम्मान होता है तथा इनसे रहित धनका तिरस्कार होता है, उस समाजमें उत्तरोत्तर पवित्र आचारका प्रसार अधिक-से-अधिक होता है। वही समाज आदर्श और सुखी होता है। वहाँ चोरपूजा नहीं होती, सत्यताकी पूजा होती है और जहाँ सच्चे एवं ईमानदार व्यक्तिका आदर होता है, वहाँ सभी लोग ईमानदार बनना चाहते हैं।

त्यागमें ही शान्ति है और जहाँ शान्ति है, वहीं सुख है। **'शिव'**

Kalyan June 13_Section_1_2_Front
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवन्नाम

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

जिसका भगवान्‌के जिस नामसे प्रेम हो, उसके लिये वही नाम विशेष लाभप्रद है। जिस पुरुषको जिस नामसे विशेष लाभ पहुँचा है, उसने उसी नामकी विशेष महिमा गायी है।

परमात्माके सभी नाम समान प्रभावशाली हैं। जिसे जो इष्ट हो, जो प्रिय हो, जिसमें जिसकी विशेष श्रद्धा और रुचि हो, उसके लिये वही श्रेष्ठ है।

मन्त्रका जोरसे उच्चारण करके जप करनेपर जो फल मिलता है, उससे दसगुना अधिक फल उपांशु अर्थात् जिह्वासे किये जानेवाले जपसे प्राप्त होता है। मानसिक जपका फल उपांशुसे दसगुना तथा साधारण जपसे सौगुना अधिक होता है। इससे मानसिक जप ही सबसे उत्तम है।

मनुष्य सौ वर्षोंमें साधारण जपसे जो फल प्राप्त कर सकता है, वही मानसिक जपद्वारा उसे एक ही वर्षमें प्राप्त हो सकता है; फिर वही भजन यदि निष्कामभाव और गुप्तरीतिसे किया जाय तो यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि सौ वर्षोंमें जो फल नहीं हो सकता, वह छः मासमें ही प्राप्त हो सकता है।

निष्काम और गुप्त भजन ही शीघ्रातिशीघ्र फलदायक होता है।

मन्त्रका जप अर्थसहित, आदर और प्रेमपूर्वक किया जाना चाहिये।

यदि अर्थ समझमें न आता हो तो भगवान्‌के ध्यानसहित जप करना चाहिये।

चारों वेदोंमें गायत्रीके समान किसी भी मन्त्रका महत्त्व नहीं बतलाया गया है।

जो व्यक्ति गायत्रीकी दस मालाएँ नित्य जपता है, वह केवल तीन ही वर्षमें भारी-से-भारी पापसे छूट जाता है।

साधकको तो भगवान्‌को रिझाना है, फिर भजनमें प्रेम और आदरकी कमी क्यों करनी चाहिये?

संसारसे तरनेके लिये भगवान्‌का भजन ही मुख्य है। भजनके पीछे सारे गुण आप ही आ जाते हैं।

भगवान्‌के नामका जप तो सभीको करना चाहिये। मनुष्यको प्रायः प्रतिदिन २१६०० श्वास आते हैं। इसलिये इतने नामोंका जप तो प्रतिदिन अवश्य ही कर लेना चाहिये।

परम दयालु, परम सुहृद्, परम प्रेमी, परम उदार, विज्ञानानन्दमय, नित्य, चेतन, अनन्त, शान्त, सर्वशक्तिमान्, सृष्टिकर्ता परमात्मदेव एक ही हैं, उन्हींको लोग ब्रह्म, विष्णु, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, शक्ति, गणेश, अरिहन्त, बुद्ध, अल्लाह, जिहोवा, गॉड आदि अनेक नामोंसे पुकारते हैं। इस भावनासे परमात्माके किसी भी नाम-रूपका स्मरण-पूजन करनेसे जीवका निस्तार हो सकता है।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस षोडश नामवाले मन्त्रका जप सभी जातियोंके स्त्री-पुरुष सब समय कर सकते हैं। यह बहुत ही उपयोगी मन्त्र है। कलिसन्तरणोपनिषद्‌में इस मन्त्रका बहुत माहात्म्य बतलाया गया है।

विशेष महत्त्वका भजन वह है, जिसमें ये छः बातें होती हैं—

१-जिस मन्त्र या नामका जप हो, उसके अर्थको भी समझते जाना।

२-भजनसे मनमें किसी प्रकारकी भी लौकिक-पारलौकिक कामना न रखना।

३-मन्त्रजप या भजनके समय बार-बार शरीरका पुलकित होना, मनमें आनन्द होना, आनन्द न हो तो आनन्दका संकल्प या भावना करनी चाहिये।

४-यथासाध्य भजन निरन्तर करना।

५-भजनमें श्रद्धा रखना और उसे सत्कार-बुद्धिसे करना।

६-जहाँतक हो भजनको गुप्त रखना।

भगवान्‌का भजन गुप्तरूपसे करना चाहिये, नहीं तो वह कपूरकी भाँति मान-बड़ाईमें उड़ जाता है।

भगवान्‌का भजन अमृतसे भी बढ़कर है, यह बात कहनेसे समझमें नहीं आ सकती। जिनका भजनमें प्रेम है, वे इस बातका अनुभव करते हैं।

श्रीभगवान्‌के नाम-जपसे मनकी स्फुरणाएँ रुकती हैं, पापोंका नाश होता है, मनुष्य गिरनेसे बचता है और उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्ति मिलती है।

नाम-जप ईश्वर-प्राप्तिका सर्वश्रेष्ठ साधन है।

यज्ञ, दान, तप, सेवा आदि कुछ भी न बन सके तो केवल नाम-जपसे ही भगवान्‌की स्मृति रह सकती है।

नाम-महिमा सर्वशास्त्रसम्मत है और युक्ति तथा अनुभवसे सिद्ध है। इसीलिये निरन्तर निष्कामभावसे नाम-जपकी चेष्टा करनी चाहिये।

× × ×

हाथसे माला फेरते हैं, मुँहसे राम-नाम कहते हैं और मनसे संसारके विषयोंका चिन्तन करते हैं, यह तो संसारका भजन है, रामका नहीं।

भजन-ध्यानके प्रभाव और रहस्यको समझ लेनेपर निद्रा, आलस्य और संसारकी स्फुरणाकी तो बात ही क्या है, खान-पानकी भी चिन्ता नहीं रह सकती। रात-दिन भजन-ध्यानकी ही धुन सवार हो जाती है।

भजन-ध्यानके प्रभावको जाननेवाले साधकको भगवद्भजनके सिवा और कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती। उसे तो मधुरसे भी मधुर और पवित्रसे भी पवित्र ध्यानसहित हरिका नाम ही मंगलमय प्रतीत होता है।

इस घोर कलिकालमें सुख-साध्य और सर्वोत्तम साधन ध्यानसहित भगवान्‌का भजन ही है।

संसारमें भजनसे बढ़कर हमारे लिये और कोई भी आवश्यक कार्य नहीं है।

अहो! भयंकर कष्ट है, भारी आपत्ति है, जो विषयरूपी काँचके लिये भजन-ध्यानरूपी अमूल्य रत्नको लोग बिसार रहे हैं।

उठो, जागो, सावधान होओ और अमृतमय हरिके नाम और गुणोंको कानोंके द्वारा सुनो तथा वाणीके द्वारा उनका कीर्तन करो और मनसे उनके स्वरूपका ध्यान करो। संसारके सम्पूर्ण भोगोंको तृणके समान त्यागकर शरीरसे भगवान्‌की सेवा करो और अपने इस अमूल्य समयका अमूल्य कार्यमें ही उपयोग करो!

निर्जन-पवित्र एकान्त स्थानमें बैठकर ध्यानसहित भगवान्‌के नामका जप तथा भगवत्-तत्त्वका विचार करो।

मानसिक जप श्रद्धापूर्वक नित्य-निरन्तर किया जाय तो वह और भी विशेष लाभप्रद हो जाता है। वही जप निष्काम प्रेमभावसे किया जाय तो फिर उसकी महिमाका कोई वर्णन ही नहीं कर सकता।

श्रद्धापूर्वक प्रेमसे किये हुए केवल जपसे भी इष्टदेवताका साक्षात् दर्शन हो सकता है।

जपके साथ-साथ ईश्वरके स्वरूपका चिन्तन अवश्य करना चाहिये।

जपसे सब विघ्नोंका नाश एवं परमात्माके स्वरूपकी प्राप्ति भी हो जाती है।

जपके सात्त्विक, राजस और तामस भेद होनेमें भाव ही प्रधान कारण है।

श्रद्धा, प्रेम तथा निष्काम-भावसे भगवत्प्रीत्यर्थ किया हुआ जप सात्त्विक समझा जाता है।

इस लोक और परलोकके भोगोंकी प्राप्तिके लिये एवं मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाके लिये किया हुआ जप राजसिक समझा जाता है।

दूसरोंके अनिष्टके लिये अज्ञानपूर्वक किया हुआ जप तामसी समझा जाता है।

कलिसन्तरणोपनिषद्‌में लिखा है—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस षोडश नामवाले मन्त्रका साढ़े तीन करोड़ जप करनेसे सब पापोंका नाश होकर परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

'नारायण' शब्दके उच्चारणमात्रसे मनुष्य पापरहित होकर परम अविनाशी गतिको प्राप्त हो जाता है।

जानकर अथवा बिना जाने भी वासुदेवका कीर्तन करनेसे समस्त पाप जलमें पड़े हुए लवणके समान विनष्ट हो जाते हैं।

हरिके नामकी महिमाको अर्थवाद नहीं समझना चाहिये। जो कुछ महिमा शास्त्रोंमें लिखी है, वह ध्रुव सत्य है, परंतु श्रद्धा और प्रेमकी कमीके कारण नामका प्रभाव समझमें नहीं आता तथा फल भी पूरा नहीं मिलता।

ईश्वरकी प्राप्तिके विषयमें जपकी संख्याका नियम सब जगह ठीक-ठीक लागू नहीं पड़ता। प्रेम और श्रद्धा जिसमें जितनी अधिक होती है, उसे उतना ही शीघ्र भगवत्प्राप्ति होती है। भगवत्प्राप्तिके लिये संख्याका ठेका नहीं करना चाहिये। ठेका करनेवाला सच्चा भक्त नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो भगवान्‌की प्राप्तिसे भी बढ़कर भगवान्‌के प्रेमको एवं भजनको समझता है, वही भगवान्‌के नामके प्रभावको जाननेवाला सच्चा भक्त है।

प्रेम और श्रद्धापूर्वक निष्कामभावसे किया हुआ भगवान्‌का भजन भगवान्‌से भी बढ़कर है। तब फिर भगवान्‌से मिलनेके लिये भगवान्‌के जपकी संख्याका ठेका करना भारी भूल नहीं तो और क्या है?

राग-द्वेष, ममता और अभिमानको छोड़कर निन्दा-स्तुति और मान-अपमानको समान समझता हुआ, जो पुरुष परवा छोड़कर भगवान्‌के भजन-ध्यानमें मस्त हुआ विचरता है, वही पुरुष मुक्त है।

श्रद्धा और प्रेमकी कमी होनेके कारण भजनके लिये यथोचित चेष्टा नहीं की जाती। इसीलिये भजन-ध्यान निरन्तर नहीं बनता।

संसारमें निष्कामभावसे किये हुए भजन-ध्यानके समान भगवत्प्राप्तिका और कोई भी सहज और सुगम उपाय नहीं है। वह होता है सत्पुरुषोंके संग और सत्-शास्त्रोंके विचार करनेसे। अतएव निष्काम प्रेमभावसे निरन्तर भजन-ध्यान होनेके लिये सत्पुरुषोंका संग एवं सत्-शास्त्रोंका विचार तत्पर होकर करना चाहिये।

यह हमारा शरीर ही क्षेत्र है। इस खेतमें कर्मरूप जैसा बीज बोया जायगा, वैसा ही फल उपजेगा। बीज तो परमात्माका प्रेमपूर्वक ध्यानसहित जप है; परंतु जल बिना बीज उग नहीं सकता। वह जल है हरि-कथा और हरि-कृपा, जो सन्तोंके संगसे ही प्राप्त होती है।

हम प्रेमपूर्वक भगवान्‌के ध्यान और जपका बीज बोयेंगे तो फलरूपमें हमें प्रेममय भगवान् ही मिलेंगे।

साधारण बीज तो धूलिमें पड़कर नष्ट भी हो जाते हैं, परंतु निष्काम रामनामका वह अमर बीज कभी नष्ट नहीं होता।

दीवालपर या हृदयपर या प्रभुकी मूर्तिपर मनसे प्रभुके नामको लिखकर चिन्तन करना या मनसे जप करना प्रभुके नामका चिन्तन है।

अभिलाषा

कबहुँ सो कर-सरोज रघुनायक! धरिहौ नाथ सीस मेरे।
जेहि कर अभय किये जन आरत, बारक बिबस नाम टेरे॥ १॥
जेहि कर-कमल कठोर संभुधनु भंजि जनक-संसय मेट्यो।
जेहि कर-कमल उठाइ बंधु ज्यों, परम प्रीती केवट भेंट्यो॥ २॥
जेहि कर-कमल कृपालु गीधकहँ, पिंड देइ निजधाम दियो।
जेहि कर बालि बिदारि दास-हित, कपिकुल-पति सुग्रीव कियो॥ ३॥
आयो सरन सभीत बिभीषन जेहि कर-कमल तिलक कीन्हों।
जेहि कर गहि सर चाप असुर हति, अभयदान देवन्ह दीन्हों॥ ४॥
सीतल सुखद छाँह जेहि करकी, मेटति पाप, ताप, माया।
निसि-बासर तेहि कर सरोजकी, चाहत तुलसिदास छाया॥ ५॥

हे रघुनाथजी! हे स्वामी! क्या आप कभी अपने उस कर-कमलको मेरे माथेपर रखेंगे, जिससे आपने, परतन्त्रतावश एक बार आपका नाम लेकर पुकार करनेवाले आर्त्त भक्तोंको अभय कर दिया था॥ १॥ जिस कर-कमलसे महादेवजीका कठोर धनुष तोड़कर आपने महाराज जनकका सन्देह दूर किया था और जिस कर-कमलसे गुह-निषादको उठाकर भाईके समान बड़े ही प्रेमसे हृदयसे लगा लिया था॥ २॥ हे कृपालु! जिस कर-कमलसे आपने (जटायु) गीधको (पिताके समान) पिण्ड-दान देकर अपना परम धाम दिया था और जिस हाथसे अपने दासके लिये बालिको मारकर सुग्रीवको बन्दरोंके कुलका राजा बना दिया था॥ ३॥ जिस कर-कमलसे आपने भयभीत शरणागत विभीषणका राज्याभिषेक किया था और जिस हाथसे धनुष-बाण चढ़ा राक्षसोंका विनाशकर देवताओंको अभयदान दिया था॥ ४॥ तथा जिस कर-कमलकी शीतल और सुखदायक छाया पाप, सन्ताप और मायाका नाश कर डालती है, हे प्रभु! आपके उसी कर-कमलकी छाया यह तुलसीदास रात-दिन चाहा करता है॥ ५॥ [विनय-पत्रिका]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मोद्धारके कतिपय सुगम उपाय

(पं० श्रीविष्णुदत्त रामचन्द्रजी दूबे)

मनुष्य-जन्म भगवान्‌ने इसीलिये दया करके दिया है कि विषय-वासनाको छोड़कर हम मुक्तिका मार्ग ग्रहण करें। मनुष्य इन्द्रियोंके सुखमें ऐसा फँसा हुआ है कि उसे अपने लक्ष्यका ध्यान नहीं रहता। शरीर, स्त्री, संतान—सब कुछ असत्य है, फिर भी उनके मोहमें वह ऐसा पागल बन गया है कि उसे समय और लक्ष्यका भी भान नहीं रहता। अपनी महिमामें नित्य प्रतिष्ठित भगवान्‌के चरणकमलोंकी नित्य-निरन्तर उपासना करना ही सर्वथा भयशून्य श्रेष्ठ मार्ग है। यह जीवात्मा परमात्माका ही अंश है और देहधारियोंके हृदयमें विराजमान है। देहमें जो अहंबुद्धि हो गयी है अर्थात् देहाध्यास हो गया है, उसकी निवृत्ति होते ही उसके सारे दुःखोंका अन्त हो जाता है। जीवका अर्थ है देहाध्यासयुक्त चेतन अर्थात् वह चेतन जिसका देहाध्यास दृढ़ हो गया है, जिसकी स्थिति शुद्ध स्वरूपमें नहीं है, जन्म-जन्मान्तरके संचित कर्म सूक्ष्मरूपसे अन्तःकरणमें रहते हैं और वे ही जन्म-मरणके कारण बनते हैं। चैतन्यका आभास स्थूल शरीरको भी चेतनवाला बनाता है।

परमात्मप्राप्तिके लिये इष्टमें अनन्य ममता, सात्त्विक आहार, निरन्तर भगवन्नामस्मरण-जप तथा चिन्तन आवश्यक है, संसारमें सबसे बढ़कर और सबसे उत्तम वस्तु परमप्रेममय परमात्माके स्वरूपकी प्राप्ति है, परंतु वह होती है संसारसे अत्यन्त वैराग्य होकर भगवान्‌में अनन्य ममता और विशुद्ध प्रेमसे। प्रभुकी कृपापर विश्वास करनेसे, उनका नाम लेनेसे और उनके प्रति आत्मसमर्पण करनेसे हमारे पाप-ताप शान्त हो जायेंगे। तत्त्व-ज्ञान या सत्कर्मसे ही भवरोगका नाश होता है और उत्तम पदकी प्राप्ति होती है। भजनसे ही अन्तःकरण शुद्ध होता है, तब शरीर और संसारकी सत्ता मिट जाती है, एक परमात्म-सत्ता ही रह जाती है। नरक-यन्त्रणा भोगते हुए भी भजन हो तो उत्तम है और ऊँची-से-ऊँची गतिमें भी भजन छूट जाय तो निकृष्ट है। मृत्युको हर समय याद रखना और सांसारिक पदार्थों तथा शरीरको क्षणभंगुर समझना चाहिये। साथ ही भगवान्‌के नामका जप, स्मरण-चिन्तन और ध्यानका तीव्र अभ्यास करना चाहिये। जो ऐसा करता है, वह परिणाममें परमात्माको प्राप्त होता है। जिस पुरुषकी भगवान्‌में निष्काम भक्ति है, उसके हृदयमें समस्त देवता, धर्म-ज्ञानादि षडैश्वर्य सम्पूर्ण सद्‌गुणोंके सहित सदा निवास करते हैं।

ईश्वरमें रागात्मिका भक्तिका उदय होनेपर संसारके राग-द्वेष स्वयं निवृत्त हो जाते हैं—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०।१०)

अर्थात् जो निरन्तर मेरेमें लगे हुए हैं और जो मुझे भजते हैं, उन्हें मैं वह दिव्य ज्ञान देता हूँ, जिससे उनको शीघ्र ही मेरी प्राप्ति हो जाती है। भगवान् कहते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

(गीता ९।३४)

अर्थात् मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको प्रणाम कर। इस प्रकार आत्माको मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा।

जो पुरुष निरन्तर चिन्तन करता हुआ मेरी भक्ति करता है, उसके लिये मैं सुलभ अर्थात् सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८।१४)

संसारारण्यमें भटकते हुए जीवको अकारणकरुण भगवान्‌की कृपासे इस पावन भारतभूमिमें देवदुर्लभ मनुष्य-शरीर भगवत्प्राप्ति (मोक्ष)-के लिये मिलता है, लेकिन जीव विषयोंका अर्जनकर उनके उपभोगसे प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख, जो अनित्य और अल्प है, उसमें इतना आसक्त हो जाता है कि अपने लक्ष्य—भगवत्प्राप्तिको—भगवान्‌को भूल जाता है, जिससे **'पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्'** से छुटकारा नहीं मिलता। परमात्माकी प्राप्ति—नित्य सच्चे सुख (अखण्ड सुख)-की प्राप्तिके तीन साधन—भक्ति, कर्म तथा ज्ञानरूपसे शास्त्रोंमें निर्दिष्ट हैं। वैराग्यके द्वारा इनकी पुष्टि होती है। इनमें कलियुगमें तो भक्ति ही परमात्माकी प्राप्ति करानेवाला सुगम साधन है। शंकराचार्यजीने तीन वस्तुओंको दुर्लभ बताया है—**'दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम्। मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः॥'** अर्थात् भगवत्कृपा ही जिनकी प्राप्तिका कारण है—वे मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व (मुक्त होनेकी इच्छा) और महान् पुरुषोंका संग—ये तीनों ही दुर्लभ हैं। आत्माके अत्यन्त स्वच्छ होनेपर भी अनन्त जन्मोंके किये हुए कर्मोंके संस्कारसे मलिन हो जानेके कारण वह प्रत्यक्ष प्रकट नहीं होता, परंतु मनुष्य ध्यानयोग आदि साधनोंके द्वारा समस्त मलोंको धोकर आत्माके यथार्थ स्वरूपको प्रत्यक्ष कर लेता है, तब वह उससे सर्वदा कृतकृत्य हो जाता है, उसके सब दुःखोंका अन्त हो जाता है, उसका मनुष्य-जन्म सार्थक हो जाता है। साधकको चाहिये कि वे शरीरको अपनेसे अलग अनुभव करें। यह मनुष्य-शरीररूपी सम्पदा तप, ज्ञान, भक्ति और धर्मके लिये मिली है। अतः सदा-सर्वदा भगवान्‌का स्मरण करते रहना चाहिये, जिससे अन्त समयमें भी भगवान्‌की स्मृति हो आये।

समस्त शास्त्रोंका निर्णय यही है कि भगवान्‌के नामोंका कीर्तन करें। भगवान्‌ने अपने नामोंमें अपनी सम्पूर्ण शक्ति रख दी है। संसारमें रहनेकी यह रीति है कि मिथ्या समझकर प्रपंच करना और परमात्माका होकर रहना।

भगवान्‌के अतिरिक्त जो कुछ भी है, असत्य है, माया है, उसको जीवनसे निकालना है। भगवान्‌के शरणापन्न होनेपर जीवनसे यह मिथ्यापन निकल सकता है।

भगवान्‌को केवल भक्ति ही प्यारी है, केवल भक्तिसे ही वे सन्तुष्ट होते हैं, आचरण, गुण, विद्या आदिसे नहीं—

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का
कुब्जायाः किमु नाम रूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनम्।
वंशः को विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषं
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः॥

अर्थात् व्याधके पास कौन-सा सदाचार था, ध्रुवकी क्या अवस्था थी, गजेन्द्रके पास कौन-सी विद्या थी, कुब्जाके पास कौन-सा रूप था और सुदामाके पास कौन-सा धन था? विदुर कौन-से उच्च वर्णके थे, यादवपति उग्रसेनके पास कौन-सा पौरुष था, भगवान्‌को पानेके लिये इन सबकी आवश्यकता नहीं रहती, वे तो केवल भक्ति-भावसे प्रसन्न होते हैं; क्योंकि वे माधव तो भक्तिप्रिय हैं।

जगत्‌में सबसे बड़ा बन्धन ममता है। ममता ऐसी वस्तुसे करनी चाहिये जो अपनी हो। अपनी वस्तु हैं—भगवान्। भगवान्‌की कृपा होती है उनकी शरण ग्रहण करनेसे और शरण होनेमें संसारका त्याग मुख्य है। जो परमेश्वरकी भक्ति करता है, उसकी वे सब प्रकारसे रक्षा करते हैं, उसका योगक्षेम वहन करते हैं। भगवान्‌के गुण, तत्त्व, प्रभाव, रहस्यको जानकर निरन्तर चिन्तन करनेसे भगवान्‌की प्राप्ति शीघ्र हो जाती है। जो भगवतत्त्वको जान लेता है, फिर उसके लिये कुछ जानना, करना और पाना शेष नहीं रह जाता। मनुष्यके लिये सबसे बड़ी कल्याणप्राप्ति यही है कि उसका चित्त तीव्र भक्तियोगके द्वारा भगवान्‌में लगकर स्थित हो जाय। भगवान्‌की भक्तिमें मन लगनेसे, नित्य नियमपूर्वक भगवन्नामजप करनेसे, अपने वर्णाश्रमधर्मके अनुसार नित्य-नैमित्तिक कर्म करनेसे, भगवान्‌का ध्यान करनेसे, भगवान्‌की सेवा-पूजा करनेसे, भगवान्‌के साथ आत्मीय भाव रखनेसे, भगवान्‌की शरण ग्रहण करनेसे जीवन सार्थक हो जाता है। जीव कर्मवश जन्म लेता है और अवधि पूरी करके चला जाता है, किंतु जीवका सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ इसीमें है कि वह भगवान्‌की कृपाका अनुभव करे। चित्त यदि विषयों या गुणोंमें रमण करनेवाला हो तो बन्धन कराता है और यदि चित्त भगवान्‌में आसक्तिवाला हो, भगवान्‌में रमण करनेवाला हो तो भगवत्प्राप्ति कराता है। मनुष्यको अन्नदोष और संगदोषसे बचना चाहिये। क्षणभंगुर शरीरका कब अन्त हो जाय पता नहीं, इसलिये शीघ्र ही गीतामें वर्णित दैवी-सम्पदाका आश्रय तथा आसुरी-सम्पदाका त्याग करके सन्मार्गमें प्रवृत्त होना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनाशके पथपर

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

एक सज्जनने बड़ी करुणापूर्ण भाषामें पढ़े-लिखे युवक-युवतियोंमें फैलते हुए व्यभिचारकी चर्चा करते हुए इस पापसे समाजके बचनेका उपाय पूछा है। आप लिखते हैं—'हमारा पतन हो गया, हमारे राम-लक्ष्मण और भीष्मार्जुनका आदर्श आज नष्ट हो गया। सीता-सावित्रीका नाम लेते जी काँपता है, हमारी जबान उनका नाम लेने लायक नहीं रही।''''दूसरे प्रान्तोंका तो मुझे पता नहीं; परंतु हमारे यहाँ जो कुछ हो रहा है, उसे देख-सुनकर दिलके टूक-टूक हुए जा रहे हैं। मेरी आँखोंसे आँसू कभी सूखते नहीं।''''धर्मका खयाल जाता रहा, विवाहका बखेड़ा क्यों किया जाय—यह भाव बढ़ रहा है, जवान लड़कियोंमें भी यह भाव फैल रहा है। कालेज युवक-युवतियोंके परस्परके आकर्षणकेन्द्र बन रहे हैं और सिनेमा या सिनेमाके बहाने मिलने की उच्छृंखल प्रवृत्ति बढ़ रही है। आजकल संतति-निरोधके कृत्रिम उपायोंके सहज हो जानेसे तो अनर्थ और भी बढ़ गया है। अब तो कोई डर ही नहीं रहा। चारों ओर स्वतन्त्रताके नामपर मर्यादाके नाशका नंगा नाच हो रहा है। अदूरदर्शी जवान लड़के और लड़कियाँ मनमानी कर रहे हैं, भागने-भगानेकी वारदातें भी बढ़ रही हैं। क्या-क्या लिखूँ, एक-एक घटनाके लिये हृदयमें आग सुलग रही है।''''ऐसा कोई उपाय बतलाइये, जिससे यह पापका प्रवाह रुके। समाजमें यह पाप घर कर गया है, ऊपरसे नहीं मालूम होता, परंतु अन्दरकी हालत बहुत ही बुरी है!''''

पता नहीं, पत्रलेखक महोदयका कथन कहाँतक सत्य है, परंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इसमें आंशिक सत्यता तो अवश्य ही है—कुछ अतिशयोक्ति भले ही हो। ये भाई बहुत ही दुःखी मालूम होते हैं, सम्भव है किसी घटनाका इनपर असर पड़ा हो। मैं इस बारेमें कुछ लिखना नहीं चाहता था; परंतु इन्होंने बहुत ही आग्रहपूर्वक आज्ञा दी है, इसलिये लिखना पड़ता है। वास्तवमें आज हमारे नौजवानोंकी दशा बहुत ही शोचनीय हो रही है। इस बुराईके विषयमें विचार करनेपर मुख्यतया निम्नलिखित कारण जान पड़ते हैं—

१. स्कूल-कालेजोंकी धर्महीन पढ़ाई, २. यूरोपीय सभ्यता-संस्कृतिका प्रभाव, ३. स्कूल-कालेजोंमें लड़के-लड़कियोंको एक साथ पढ़ाया जाना, ४. युवती-विवाह, ५. सिनेमाओंका बढ़ता हुआ प्रचार, ६. विलासिता, फैशन, आरामतलबी और आलस्य, ७. शारीरिक सौन्दर्यका महत्त्व और रूपप्रतियोगिताका प्रचार, ८. सभी बातोंमें स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता और समानताका दावा, ९. सन्तान-निरोधके कृत्रिम उपायोंका प्रचार तथा १०. सुधारोन्मत्तता।

अब इनपर संक्षेपमें कुछ विचार करें।

भारतवर्षका प्राण धर्म है, धर्मज्ञान ही शिक्षाका मुख्य विषय है, धर्मज्ञानहीन मनुष्य आर्य सभ्यतामें पशु माना जाता है। परंतु आजकी शिक्षामें धर्मका कहीं नामनिशान भी नहीं है। केवल अर्थकरी विद्या वास्तविक विद्या नहीं है। फिर आज तो यह विद्या अर्थकरी भी नहीं रह गयी। विश्वविद्यालयोंसे प्रत्येक वर्ष लाखों विद्यार्थी डिग्रियाँ पाकर निकलते हैं और फिर उन्हें कहीं नौकरी नहीं मिलती। वर्तमान शिक्षाक्रम तो इस दृष्टिसे भी लाभदायक सिद्ध नहीं हो रहा है। धर्मको तो इस शिक्षाक्रमने उड़ा ही दिया है। इस शिक्षाका ही यह परिणाम है कि आज धर्मके नामसे भी पढ़े-लिखे होनेका अभिमान करनेवाले लोग नाक-भौं सिकोड़ते हैं। जहाँ धर्म-भाव लुप्त होगा, वहाँ संयम नहीं रहेगा और संयमके नाशसे व्यभिचार फैलेगा ही।

वर्तमान शिक्षाका एक बहुत बुरा परिणाम यह हुआ है कि भारतवासियोंको अपने पूर्वपुरुष, अपने साहित्य, अपनी सभ्यता और संस्कृति एवं अपनी सारी त्यागमयी जीवनप्रणालीके प्रति अश्रद्धा हो गयी है। देशकी गुलामी इस मनकी गुलामीसे कहीं कम खतरनाक होती है। शारीरिक परतन्त्रता प्रयाससे सहज छूट सकती है, परंतु इस मानसिक परतन्त्रताका छूटना शारीरिक स्वतन्त्रताकी हालतमें भी बहुत कठिन है। भारतवासियोंने अपना मन पाश्चात्य संस्कृतिके हाथों बेच दिया। इसीसे आज बात-बातमें हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी सभ्यता अच्छी लगती है। उनके साहित्यपर हमारी श्रद्धा बढ़ रही है, उनके महात्माओंको ही हम वास्तविक महात्मा मानते हैं, हमारे धर्मग्रन्थोंकी बात भी यदि उनकी वाणीसे या कलमके माध्यमसे उनकी भावना बनकर हमें मिलती है तो हम उसे मान लेते हैं। अपना मस्तिष्क तो हमने उनकी गुलामीके लिये ही सौंप दिया है। परिणाम यह हुआ कि रीति-नीति, वेश-भूषा, बोल-चाल, विवाह-शादी, व्यवहार-बर्ताव सभी बातोंमें आज हम उनकी नकल करनेमें ही अपने को धन्य समझने लगे हैं। पुरानी चालके मनुष्योंको अन्धविश्वासी बतलाया जाता है, फलतः पाश्चात्योंकी यह अन्ध-नकल इतनी बढ़ गयी है कि जिसकी कोई सीमा ही नहीं रही। महात्मा गाँधीके प्रभावसे वेश-भूषामें कुछ सादगी या भारतीयता आयी थी, परंतु अधिकतर लोगोंके मन अब भी उसी ओर खिंचे चले जा रहे हैं। इस संस्कृतिका प्रभाव हमारे नौजवानोंपर सबसे अधिक पड़ा है। कारण स्पष्ट है, होश सँभलते ही स्कूलोंमें गये और वहाँके नौजवान गुरुओं—मास्टरोंसे—जिनमेंसे अधिकांश अपना मन और मस्तिष्क बहुत अंशमें पाश्चात्य संस्कृतिको अर्पण कर चुके हैं—उन्हें वैसी ही शिक्षा मिली, फिर कालेजमें भरती हुए, धर्मग्रन्थोंका कहीं अक्षर भी पढ़नेको नहीं मिला। यदि कहीं मिला तो वह पाश्चात्यजनों और पाश्चात्य सभ्यताके भक्त विद्वानोंके द्वारा विकृत किया हुआ। धर्मज्ञान प्राप्त ही नहीं हुआ। परिणाम यह हुआ कि इन्हें पुराना सोना भी लोहा दीखने लगा। पुराने गुलाबमें भी नाबदानकी बदबू आने लगी; क्योंकि दृष्टि और नाक ही बदल गयी। इसीका परिणाम आज हमारी लड़कियोंपर भी पड़ रहा है और पढ़-लिखकर वे भी उसी साँचेमें ढल रही हैं। इस सभ्यताके प्रभावके कारण धर्म, लज्जा, शील, मर्यादा, भोगोंसे वैराग्य, परमार्थ-साधन आदि बातें मनोंमेंसे निकल गयीं; व्यभिचारवृद्धिमें यह भी एक प्रधान कारण है।

बालविवाहसे समाजकी हानि हुई और होती है, परंतु उस बालविवाहका परिवर्तन जिस 'युवतीविवाह' और 'विवाहकी आवश्यकता' के रूपमें हो रहा है, यह तो और भी भयंकर है। बालविवाहमें बुराई थी और है, बालविवाहकी प्रथाका बहुत दुरुपयोग हुआ और अब भी हो रहा है, इसलिये उसका निषेध आवश्यक था और अब भी है, परंतु उसमें एक बड़ा भारी लाभ अन्तर्हित था, जो अब नष्ट हो रहा है। हिन्दू धर्मके अनुसार विवाह एक धार्मिक संस्कार है। दो आत्माओंका परस्पर सात्त्विक मिलन है। उसमें कामवासनाको स्थान नहीं है। वहाँ धर्म है, रूपपर मोह नहीं है। इसी उद्देश्यसे लड़के और लड़कियोंके माता-पिता और अभिभावक अपने कुल, धर्म और आचारके अनुकूल घर ढूँढ़कर सम्बन्ध करते थे। उसमें लड़के और लड़कियोंकी उम्र, स्वभाव आदि तो अवश्य ही देखे जाते थे। यहाँतक कि बालकोंके माता-पितातकके स्वभावका पता लगाया जाता था और परीक्षा की जाती थी। दोनोंका जीवन सुखमय रहे, इस बातके लिये पूरा ध्यान रखा जाता था। अवश्य ही दहेजकी प्रथाका विकृत रूप हो जानेसे तथा अन्य कई कारणोंसे माता-पिताद्वारा वर-कन्याके चुनावमें दोष आ गये तथापि वह लाभ तो बहुत अंशमें था ही। जिस दिन सगाई हुई और लड़के-लड़कियोंको इस बातका पता लगता था तभीसे उनका परस्पर स्नेहसूत्र बँध जाता था। ममत्व बढ़ता जाता था। यह निश्चय उन दोनोंके मनमें हो ही जाता था कि हम दोनों पति-पत्नी हो गये। अतएव प्रेम बढ़ता था और किसी कारणसे दूसरी किसी ओर देखनेकी गुंजाइश बहुत ही कम हो जाती थी। कोर्टशिपकी कल्पना भी उनके मनमें नहीं आने पाती थी। इस प्रकार माता-पिताद्वारा किये जानेवाले निश्चित सम्बन्धमें उच्छृंखलता और रूपपर मोहको स्थान नहीं था। भूल वहाँ भी होती थी; परंतु बच्चोंके भावी हितकी चिन्तामें लगे हुए माता-पिता आदि अभिभावकगण किसी आवेगके वशमें न होकर शान्त-चित्तसे निर्णय करते थे। उन्हें अपने कर्तव्यका ध्यान रहता था। उनके अन्दर सब तरहसे 'बराबरकी जोड़ी' ढूँढ़नेकी एक सुन्दर पवित्र भावना काम करती थी। इससे उनके निर्णयमें भूल कम होती थी। परंतु जवानीकी उम्रमें पहुँचे हुए युवक-युवती भाँति-भाँतिके आवेगोंके वशमें होकर आवेशवश जो परस्पर चुनाव करते हैं, उसमें बड़ी भारी भूल हो जानेकी सम्भावना है। भूलें ऐसी होती हैं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनके परिणाममें या तो उनका जीवन मृत्युकालपर्यन्त दुःखी रहता है अथवा उन्हें तलाकका मार्ग ढूँढ़ना पड़ता है। मेरी समझमें 'कोर्टशिप', 'जाती पसंदगी' की प्रथाने ही तलाकके कानूनकी सृष्टि की है। यहाँ भी यही दशा

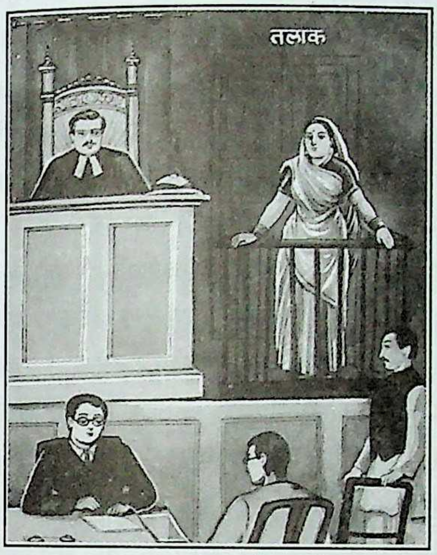

रही तो तलाकका पाप-ताण्डव होगा ही। अस्तु, लड़कोंका बड़ी उम्रमें विवाह करनेकी चर्चाने ज्यों जोर पकड़ा त्यों ही लड़कियोंके लिये भी ऐसा ही विचार आने लगा। लड़कियाँ भी युवती होनेतक कुमारी रहने लगीं। इसीका परिणाम यह हुआ है कि जिससे हमारे पत्रलेखक भाई आज दुःखके आँसू बहा रहे हैं।

उच्च शिक्षाप्रचारके लिये तो पुकार मची ही हुई थी। लड़कोंके साथ ही उदार महानुभावोंकी शुद्ध भावनाके योगदानसे और प्रचारकोंकी सदिच्छासे लड़कियोंको उच्च शिक्षा दिलानेकी व्यवस्था हुई। उच्चशिक्षासे तात्पर्य बी० ए०, एम० ए० की डिग्रियोंके प्राप्त करनेसे ही है। इसके लिये लड़कियाँ भी कालेज जाने लगीं। धर्महीन पढ़ाई, धर्ममें अश्रद्धा, युवा-अवस्था और संयमकी शिक्षाका अभाव तो था ही, फिर जवान लड़के-लड़कियोंका एक साथ पढ़ना, काठ और आगके संयोगकी भाँति बुराईकी लहर पैदा करनेमें बहुत ही सहायक हुआ। इसीके साथ एक बीमारी लड़कियोंमें फैशनकी बढ़ी, विलासिताने जोर पकड़ा। आरामतलबी तो इस शिक्षाका प्रत्यक्ष प्रमाण ही है, किसान या दूकानदारका लड़का अंग्रेजी पढ़कर खेती या दूकानदारी नहीं कर सकता। कई प्रकारके जूते, क्रीम, लोशन, स्नो, साबुन, पाउडर, चश्मा, फोटोग्राफीका सामान आदि कई ऐसी चीजोंको रखनेकी उसे आदत हो जाती है, जो उसके जीवनको आलसी, खर्चीला और आरामतलब बना देती है। यह रोग हमारी लड़कियोंमें तो और भी जोरसे बढ़ रहा है। पढ़ी-लिखी लड़कियाँ घरका काम न सीखती हैं, न करना चाहती हैं। उनसे उनको घृणा है। फैशन बनाना, सजना, अखबार पढ़ना—उपन्यास और काव्य पढ़ना, फोटो उतारना, लेख लिखना, सभाओं और जलसोंमें जाना आदि इतने काम उनके बढ़ गये हैं कि अब घरके कामोंके लिये उन्हें फुरसत ही नहीं मिलती। सुना जाता है कि करोड़ों रुपये वार्षिक इन सौन्दर्यके सामानोंके लिये विदेश जाते हैं। फैशन और आरामतलबीसे कामुकता बढ़ती है—यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है। [क्रमशः]

सन्त-वचन

जो प्रभुको प्राप्त कर लेता है, वह संसारका सर्वोत्कृष्ट धन और वैभव प्राप्त कर लेता है और जो प्रभुको खो देता है, वह सभी कुछ खो देता है। जो प्रभुसे हीन है, वही दरिद्र है और जो उसके साथ आलाप करता है, वही सच्चा धनी है।

किस प्रकार प्रभुसे बातचीत की जाती है, इसे जानना ही विज्ञता है और किस प्रकार प्रभुको हृदयमें प्रत्यक्ष करना, यह जानना ही परम ज्ञानका विषय है।

कष्टोंसे पराजित और निराश न हो, वरं भगवान्‌की इच्छापर अपनेको सम्पूर्णतया छोड़ दे। जो भी कष्ट-दुःख आ पड़े, उसे प्रभुकी महिमाके लिये चुपचाप सहन कर। यह याद रख कि शिशिरके बाद वसन्त, रातके बाद दिन और तूफानके बाद शान्तिका आगमन अवश्य होता है। [सन्त थॉमस ए० केम्पिस]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराणोक्त कालगणना-विज्ञान

(डॉ० श्रीकौमुदीजी श्रीवास्तव एवं डॉ० श्रीसंजयजी श्रीवास्तव)

भारतीय वाङ्मयमें पुराणोंका अत्यन्त महत्त्व है। वेदोंमें जो ज्ञान सूत्ररूपमें परोक्ष पद्धतिसे अनुस्यूत है, पुराणोंने बहुविधरूपमें उसी ज्ञानको स्पष्ट, व्याख्यायित एवं विस्तृत किया है। पुराणोंमें एक साथ तीनों व्याख्याएँ चलती हैं—आधिभौतिकी, आधिदैविकी और आध्यात्मिकी। आध्यात्मिक नित्य जगत्के अनुसार ही आधिदैविक जगत् है, जिससे आधिभौतिक जगत् व्यक्त होता है। वेदोंमें सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान है, समस्त घटनादि मूलरूपमें सूत्रबद्ध हैं और उनका नित्यत्व है, जिसकी हर सृष्टिमें आवृत्ति होती रहती है। वेदोक्त लघु मन्त्रोंमें उकेरे गये हर सूक्ष्मातिसूक्ष्म रेखाचित्रको विस्तीर्ण करके पुराणोंने उनमें अमिट चटक रंग भरे हैं, जिससे अर्थावबोध और अधिक बोधगम्य, मुखर एवं विशद हुआ है।

जहाँ एक ओर पुराणोंमें वस्तुके सूक्ष्मतम और महत्तम स्वरूपपर व्यापक विचार-विमर्श हुआ है, वहीं दूसरी ओर कालकी सूक्ष्मता और स्थूलताका भी निर्धारण किया गया है। जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयके क्रम कभी भी नहीं रुकते, वे निरन्तर प्रवहमान बने रहते हैं। सम्पूर्ण संसारमें जो कुछ भी उत्पन्न हुआ है, उसकी आयुके परिमाणका परिगणन पुराणोंमें मिलता है।

वैशेषिक दर्शनके अनुसार परमाणु सूक्ष्मतम अविभाज्य अवयव हैं, जो नित्य द्रव्य तो होते हैं, लेकिन अनेक-समवेत नहीं होते। समवाय-सम्बन्धद्वारा उनसे अन्ततः बननेवाले महास्थूल कार्यभूत पृथिवी, जल, तेज और वायु अनित्य होते हैं। अतः जितने भी चराचर जीव हैं, उन सबकी आयुके परिमाणका मान निर्दिष्ट है; क्योंकि वे सभी अनित्य हैं।

मूलतः काल तो सर्वथा अविभाज्य सूक्ष्म तत्त्व है, अमूर्त रूप है तथापि व्यवहारकी सिद्धिके लिये उसका विभाजन किया गया है, ज्योतिषशास्त्र तथा पुराणोंमें इसपर बहुत विचार हुआ है। यहाँ पुराणोंकी दृष्टिसे संक्षिप्त विचार किया गया है—

मनुष्यका अहोरात्र एवं वर्षका मान

एक सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदयतकके कालसे मनुष्यके अहोरात्र (दिन-रात)-का निर्धारण होता है। इसी अहोरात्रको सूक्ष्मतम विभाजन करके काल-गणनाका श्रीगणेश होता है। पुराणोंके आधारपर मनुष्यके एक अहोरात्रको सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंशोंमें विभाजित करनेका क्रम बड़ा ही वैज्ञानिक है। श्रीमद्भागवतमें बताया गया है कि दो परमाणु (समवाय-सम्बन्धसे) संयुक्त होकर एक 'अणु' होता है और तीन अणुओंके मिलनेसे एक 'त्रसरेणु' बनता है, जिसे झरोखेमेंसे होकर आयी हुई सूर्यकी किरणोंके प्रकाशके माध्यमसे आकाशमें उड़ते हुए देखा जा सकता है। ऐसे तीन त्रसरेणुओंको पार करनेमें सूर्यकी किरणोंको जितना समय लगता है, उसे 'त्रुटि' कहते हैं। इससे सौ गुना काल 'वेध' कहलाता है और तीन 'वेध' का एक 'लव' होता है। तीन 'लव' को एक 'निमेष' और तीन निमेषको एक 'क्षण' कहते हैं।*

उपर्युक्त काल-विभाजनको अग्रलिखित समीकरणोंके माध्यमसे व्यक्त किया जा सकता है—

१ त्रुटि = ३ त्रसरेणुओंको पार करनेमें सूर्यकी किरणोंद्वारा लिया गया समय

१०० त्रुटि = १ वेध

३ वेध = १ लव

३ लव = १ निमेष

३ निमेष = १ क्षण

मनुष्यका निमेष ही एक मात्रावाले अक्षरके उच्चारण-कालके समान परिमाणवाला होनेसे मात्रा कहलाता है; उन पन्द्रह निमेषोंकी एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठाकी एक कला कही जाती है। पन्द्रह कला एक नाडिकाका प्रमाण है। ऐसी दो नाडिकाओंका एक मुहूर्त होता है, तीस मुहूर्तका एक दिन-रात होता है

---

* अणुर्द्वौ परमाणू स्यात्त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः। जालार्करश्म्यवगतः खमेवानुपतन्नगात्॥
त्रसरेणुत्रिकं भुङ्क्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः। शतभागस्तु वेधः स्यात्तैस्त्रिभिस्तु लवः स्मृतः॥
निमेषस्त्रिलवो ज्ञेय आम्नातस्ते त्रयः क्षणः। (श्रीमद्भा० ३। ११। ५—७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा इतने (तीस) दिन-रातका एक मास होता है।[1]

उपर्युक्त काल-विभाजनको निम्नलिखितरूपमें समीकरणबद्ध किया जा सकता है—

१५ निमेष	=	१ काष्ठा
३० काष्ठा	=	१ कला
१५ कला	=	१ नाडिका
३० कला	=	१ मुहूर्त (२ नाडिका)
३० मुहूर्त	=	१ दिन-रात
३० दिन-रात	=	१ मास

ऐसा ही वर्णन श्रीहरिवंशपुराणमें भी मिलता है—पन्द्रह निमेषोंकी एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठाओंकी एक कला होती है। तीस कलाओंका एक मुहूर्त होता है और बुद्धिमान् पुरुष तीस मुहूर्तोंको एक दिन-रात कहते हैं, जिसका निर्माण चन्द्रमा तथा सूर्यकी गतिद्वारा होता है। विशेष रूपसे सूर्य-चन्द्रमाके उदय-अस्तसे मेरुके परिवर्ती भू-प्रदेशमें रात-दिन होता है। पन्द्रह अहोरात्र (दिन-रात)-का नाम पक्ष है और दो पक्षों या पखवाड़ोंका एक महीना माना जाता है तथा दो महीनोंकी एक ऋतु कहलाती है। तीन ऋतुओंका एक अयन होता है और दो अयनोंका एक वर्ष होता है। संख्याके तत्त्वको जाननेमें चतुर पुरुषोंने उन दोनों अयनोंका नाम दक्षिणायन और उत्तरायण बताया है।[2]

उपर्युक्त निष्कर्ष निम्नलिखित रूपमें द्रष्टव्य हैं—

१५ अहोरात्र	=	१ पक्ष
२ पक्ष	=	१ मास
२ मास	=	१ ऋतु
३ ऋतु	=	१ अयन
२ अयन	=	१ वर्ष

ऐसे १०० वर्षोंको मनुष्यकी परमायु बताया गया है।

दिव्यवर्ष और उसका विभाजन एवं मान

मनुष्योंके मानसे जो एक वर्ष है, वह देवताओंका एक अहोरात्र (दिन-रात) है। उत्तरायण देवताओंका दिन है और दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि। तात्पर्य यह है कि मकर-संक्रान्तिसे मिथुन-संक्रान्तिके अन्ततक सूर्यके रथकी किरणों और अक्षांशकी किरणोंके प्रतिदिन ध्रुवकी ओर खिंचते रहनेसे उत्तरकी ओर चलनेवाला सूर्य मेरुपर्वतके शिखरपर रहनेवाले देवताओंको दीखता रहता है, अतः उत्तरायण देवताओंका दिन होता है तथा कर्क-संक्रान्तिसे धनु-संक्रान्तिके अन्ततक उन दोनों प्रकारकी किरणोंके ध्रुवको प्रतिदिन क्रमशः छोड़ते रहनेसे दक्षिणकी ओर चलता हुआ सूर्य देवताओंको नहीं दीखता, अतएव दक्षिणायन देवताओंकी रात है। देवलोकमें एक दिन-रातका समय एक मानवी वर्षके बराबर होता है। इस प्रकार तीन सौ साठ मानवी वर्षका एक दिव्य वर्ष अर्थात् देवताओंके एक वर्षके बराबर होते हैं। दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि है और उत्तरायण दिन।

मानवीमानसे बारह मासका एक वर्ष होता है, देवलोकमें यही एक दिन-रात होता है। ऐसे तीन सौ साठ वर्षोंका देवताओंका एक वर्ष होता है—

मासैर्द्वादशभिर्वर्षमहोरात्रं तु तद्दिवि।
त्रिभिर्वर्षशतैर्वर्षं षष्ट्या चैवासुरद्विषाम्॥

(श्रीविष्णुपु० ६। ३। १०)

दिव्य वर्षों एवं मानुष वर्षोंमें एक चतुर्युगका मान

सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगसे मिलकर एक चतुर्युग बनता है। बारह हजार (१२,०००) दिव्य वर्षोंका एक चतुर्युग होता है। इसको मानुष वर्ष बनानेके लिये तीन सौ साठका गुणा करना पड़ेगा, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि एक चतुर्युगमें तैंतालिस लाख बीस हजार (१२,०००×३६०=४३,२००००) मानुष वर्ष होते हैं।

प्रत्येक युगका परिमाण तीन भागोंमें विभाजित होता

---

१. निमेषो मानुषो योऽसौ मात्रा मात्राप्रमाणतः। तैः पञ्चदशभिः काष्ठा त्रिंशत्काष्ठा कला स्मृता॥
नाडिका तु प्रमाणेन सा कला दश पञ्च च।
नाडिकाभ्यामथ द्वाभ्यां मुहूर्तो द्विजसत्तम। अहोरात्रं मुहूर्तास्तु त्रिंशन्मासो दिनैस्तथा॥
(श्रीविष्णुपुराण ६। ३। ६-७, ९)

२. निमेषैः पञ्चदशभिः काष्ठा त्रिशंत् तु ताः कलाः। त्रिंशत्कलो मुहूर्तस्तु त्रिंशता तैर्मनीषिणः॥
अहोरात्रमिति प्राहुश्चन्द्रसूर्यगतिं नृप। विशेषेण तु सर्वेषु अहोरात्रे च नित्यशः॥
अहोरात्राः पञ्चदश पक्ष इत्यभिशब्दितः। द्वौ पक्षौ तु स्मृतो मासो मासौ द्वावृतुरुच्यते॥
अब्दं द्व्ययनमुक्तं च अयनं त्वृतुभिस्त्रिभिः। दक्षिणं चोत्तरं चैव संख्यातत्त्वविशारदैः॥
(श्रीहरिवंशपु० हरिवंशपर्व ८। ३—६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—१. सन्ध्या, २. नियतकाल एवं ३. सन्ध्यांश। सत्ययुगकी सन्ध्यामें चार सौ दिव्यवर्ष तथा उसके नियतकालमें चार हजार दिव्य वर्ष एवं उसके सन्ध्यांशमें चार सौ दिव्य वर्ष होते हैं। त्रेताकी सन्ध्या तीन सौ दिव्य वर्षोंकी होती है, तीन हजार दिव्य वर्षोंका उसका नियतकाल है तथा उसके सन्ध्यांशमें तीन सौ दिव्य वर्ष होते हैं। द्वापरमें सन्ध्या दो सौ दिव्य वर्षोंकी होती है तथा उसके नियतकालमें दो हजार दिव्यवर्ष एवं उसके सन्ध्यांशमें दो सौ दिव्य वर्ष होते हैं। इसी प्रकार कलियुगकी सन्ध्या सौ वर्षोंकी होती है। उसका नियतकाल एक हजार वर्षोंका बताया गया है तथा उसके सन्ध्यांशका निर्दिष्ट मान सौ दिव्यवर्ष है। इन सबको मिलाकर एक चतुर्युगी १२,००० दिव्यवर्षोंकी होती है। इस सम्बन्धमें श्रीहरिवंशपुराणमें वर्णित चतुर्युगी वर्ष-व्यवस्था उल्लेखनीय है।

देवताओंके चार हजार वर्षोंका एक सत्ययुग होता है, चार सौ वर्षोंकी उसकी सन्ध्या होती है और इतना ही उसका सन्ध्यांश होता है। तीन हजार वर्षोंके परिमाणका त्रेतायुग होता है, तीन सौ वर्षोंकी उसकी सन्ध्या होती है तथा इतना ही उसका सन्ध्यांश होता है। इसी प्रकार दो हजार वर्षोंका द्वापरयुग कहा गया है, दो सौ वर्षोंकी उसकी सन्ध्या होती है तथा इतना ही उसका सन्ध्यांश होता है। इसी गणनाके अनुसार बुद्धिमान् पुरुषोंने कलियुगको एक हजार वर्षोंवाला बताया है। सौ वर्षोंकी उसकी सन्ध्या होती है और इतना ही उसका सन्ध्यांश होता है।*

निष्कर्षत: दिव्य एवं मानवी वर्षोंमें एक चतुर्युगीका मान अग्रलिखित स्वरूपमें तालिकाबद्ध किया जा सकता है—

युग	सन्ध्या		नियतकाल		सन्ध्यांश		सम्पूर्ण कालमान	
	दिव्य वर्षोंमें	मानवी वर्षोंमें	दिव्य वर्षोंमें	मानवी वर्षोंमें	दिव्य वर्षोंमें	मानवी वर्षोंमें	दिव्य वर्षोंमें	मानवी वर्षोंमें
सत्ययुग	४००	१,४४,०००	४०००	१४,४०,०००	४००	१,४४,०००	४,८००	१७,२८,०००
त्रेता	३००	१,०८,०००	३०००	१०,८०,०००	३००	१,०८,०००	३,६००	१२,९६,०००
द्वापर	२००	७२,०००	२०००	७,२०,०००	२००	७२,०००	२,४००	८,६४,०००
कलियुग	१००	३६,०००	१०००	३,६०,०००	१००	३६,०००	१२००	४,३२,०००
एक चतुर्युगीका कालमान							१२,०००	४३,२०,०००

ब्रह्माकी परमायु

पुराणोंके अनुसार ब्रह्माके एक दिनमें एक हजार चतुर्युग होते हैं, जिनका सम्पूर्ण मान एक कल्प कहलाता है। इतनी ही बड़ी अर्थात् एक हजार चतुर्युगियोंकी ब्रह्माकी एक रात्रि भी होती है। कल्पका क्रम तबतक चलता रहता है, जबतक ब्रह्माका दिन रहता है। श्रीमद्भागवत-महापुराणमें कहा गया है—

त्रिलोक्या युगसाहस्रं बहिराब्रह्मणो दिनम्।
तावत्येव निशा तात यन्निमीलति विश्वसृक्॥
निशावसान आरब्धो लोककल्पोऽनुवर्तते।
यावद्दिनं भगवतो मनून् भुञ्जंश्चतुर्दश॥
स्वं स्वं कालं मनुर्भुङ्क्ते साधिकां ह्येकसप्ततिम्।

(श्रीमद्भा० ३। ११। २२-२४)

अर्थात् त्रिलोकीसे बाहर महर्लोकसे ब्रह्मलोकपर्यन्त यहाँकी एक सहस्र चतुर्युगीका एक दिन होता है और इतनी ही बड़ी रात्रि होती है, जिसमें जगत्कर्ता ब्रह्मा शयन करते हैं। उस रात्रिका अन्त होनेपर इस लोकका कल्प आरम्भ होता है, उसका क्रम जबतक ब्रह्माका दिन रहता है, तबतक चलता रहता है। उस एक कल्पमें चौदह मनु हो जाते हैं। प्रत्येक मनु इकहत्तर चतुर्युगीसे कुछ अधिक काल (७१$^{६}/_{१४}$ चतुर्युगी)-तक अपना अधिकार भोगता है।

उक्त मानसे ब्रह्माके एक अहोरात्र (दिन-रात)-की गणना होती है। एक मासमें तीस अहोरात्र होंगे और बारह मासका एक वर्ष होगा। इस प्रकार ब्रह्माकी परमायु उनके कालमानसे सौ वर्ष होगी। श्रीविष्णुपुराणमें कहा गया है—

* चत्वार्येव सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम्। तावच्छती भवेत् सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथा नृप॥
त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेता स्यात् परिमाणतः। तस्याश्च त्रिशती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः॥
तथा वर्षसहस्रे द्वे द्वापरं परिकीर्तितम्। तस्यापि द्विशती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः॥
कलिर्वर्षसहस्रं च सङ्ख्यातोऽत्र मनीषिभिः। तस्यापि शतिका सन्ध्या सन्ध्यांशश्चैव तद्विधः॥ (श्रीहरिवंशपु० हरिवंशपर्व ८। १२—१५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं तु ब्रह्मणो वर्षमेवं वर्षशतं च यत्।
शतं हि तस्य वर्षाणां परमायुर्महात्मनः॥

(श्रीविष्णुपु० १।३।२६)

इसी प्रकार (अहोरात्र, पक्ष, मास आदिकी) गणनासे ब्रह्माका एक वर्ष और फिर सौ वर्ष होते हैं। ब्रह्माके सौ वर्ष ही उनकी परमायु है।

पूर्वोक्त कालमानके आधारपर ब्राह्मवर्ष-गणनाको चरणबद्ध ढंगसे निम्नलिखित रूपमें समीकरणबद्ध किया जा सकता है—

१ चतुर्युग	= ४३,२०,००० मानवी वर्ष
१,००० चतुर्युग	= ४,३२,००,००,००० मानवी वर्ष
ब्रह्माका १ दिन	= ४,३२,००,००,००० मानवी वर्ष
ब्रह्माकी १ रात्रि	= ४,३२,००,००,००० मानवी वर्ष
ब्रह्माका १ अहोरात्र	= ८,६४,००,००,००० मानवी वर्ष
ब्रह्माका १ मास	= २,५९,२०,००,००,००० मानवी वर्ष
ब्रह्माका १ वर्ष	= ३१,१०,४०,००,००,००० मानवी वर्ष
ब्रह्माकी परमायु	= ३१,१०,४०,००,००,००,००० मानवी वर्ष

ब्रह्माकी परमायु इस ब्राह्म वर्षके मानसे एक सौ वर्ष है। इसे 'पर' कहते हैं। इस समय ब्रह्माजी अपनी आयुका आधा भाग अर्थात् एक परार्ध (५० वर्ष) बिताकर दूसरे परार्धमें चल रहे हैं। यह उनके ५१वें वर्षका प्रथम दिन या कल्प है। दोनों परार्धोंके आदि और अन्तमें क्रमशः ब्राह्म तथा पाद्म नामक दो विशेष कल्प होते हैं। इस प्रकार ब्रह्माजीके एक मास ३० दिनके ३० कल्प + २ कल्प = ३२ कल्प होते हैं।[१] ब्रह्माके प्रथम परार्धमें कल्पोंकी गणना रथन्तर-कल्पसे होती है, परंतु ब्रह्माके द्वितीय परार्धके आदिका कल्प श्वेतवाराहकल्प होता है। अतः वर्तमान कल्पको श्वेतवाराहकल्प कहा जाता है। यह द्वितीय परार्धका प्रथम कल्प है। इस कल्पके चौदह मन्वन्तरों (चौदह मनुओं)-में ६ मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं। वर्तमानमें सप्तम वैवस्वत मन्वन्तरके २७ चतुर्युग (महायुग) बीत चुके हैं और २८वें महायुगके सत्य, त्रेता, द्वापर बीतकर २८वाँ कलियुग चल रहा है।

सृष्टि तथा मन्वन्तरादिकी यह काल-गणना पुराणोंका महत्त्वपूर्ण प्रतिपाद्य विषय है। प्रत्येक धर्म-कर्मादिके अनुष्ठान-कार्योंमें आरम्भमें जो संकल्प किया जाता है, उसमें देश और कालका ही स्मरण किया जाता है। संकल्पमें इस ब्रह्माण्डके चतुर्दश भुवनों, सप्तद्वीपों, खण्ड, वर्ष आदि देशके परिमाणके साथ ही सृष्टिकर्ता ब्रह्माके परार्ध, कल्प, मन्वन्तर, युगादिसे लेकर संवत्, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वार, लग्नादिका उच्चारण किया जाता है।

इस प्रकार प्रतिकल्प (ब्रह्माके एक दिन)-में चौदह मनु होते हैं। चौदहों मनु तथा मनुपुत्र एक-एक कर समस्त पृथ्वीके राजा होकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हैं और अपने-अपने भोग्यकालतक राज्य करते हैं। मनुओंके नामानुसार ही चौदह मन्वन्तरोंके चौदह भिन्न-भिन्न नाम पड़े हैं।

भगवान् विष्णुके नाभिपद्मसे चतुर्मुख ब्रह्माने आविर्भूत होकर मैथुनी सृष्टिके संकल्पको लेकर अपने ही शरीरसे स्वायम्भुव मनु तथा महारानी शतरूपाको प्रकट किया। ये आदिमनु ही स्वयम्भू या स्वायम्भुव प्रथम मनु हैं, जिनके नामसे स्वायम्भुव मन्वन्तर नाम पड़ा। द्वितीय मनुका नाम स्वारोचिष है। इसी प्रकार क्रमशः औत्तम, तामस, रैवत तथा चाक्षुष—ये छः मनु हुए। इन मनुओं या मन्वन्तरोंका समय व्यतीत हो चुका है। वर्तमानमें वैवस्वत मनु नामके सप्तम मनुका समय चल रहा है। वैवस्वत मन्वन्तरके बाद सात मनु और होंगे, जिनके नाम इस प्रकार हैं—८-सूर्यसावर्णि, ९-दक्षसावर्णि, १०-ब्रह्मसावर्णि, ११-धर्मसावर्णि, १२-रुद्रसावर्णि, १३-रौच्य और १४-भौत्य।[२]

इन मन्वन्तरोंका समय बीत जानेपर सृष्टिमें प्रलय होता है, जो अवान्तर या पार्थिव प्रलय कहलाता है। चौदहों मन्वन्तरोंका पूर्ण समय एक कल्प (ब्रह्माका एक दिन)-के बराबर होता है। इस कल्पके अन्तमें होनेवाला प्रलय नैमित्तिक, दैनन्दिन या कल्प-प्रलय कहलाता है। बह्माकी आयुके दोनों परार्धोंकी समाप्तिपर प्राकृतिक महाप्रलय होता है, जिसमें सृष्टिकर्ता ब्रह्माका लय होता है। तदनन्तर समस्त ब्रह्माण्डका पूर्ण ब्रह्म परमात्मामें लय होता है, जो आत्यन्तिक प्रलय कहलाता है। पुनः काल, कर्म और स्वभावसे उस निराकारसे साकार सृष्टिकी उत्पत्ति होती है। यही सृष्टि और प्रलयका क्रम अनादिकालसे चला आ रहा है।

---

१. प्रतिवर्ष सौर गणनासे श्रावण मास (कर्कसे सिंह-संक्रान्तितक) ३२ दिनका होता है और आषाढ़ मास (मिथुनसे कर्क-संक्रान्तितक) भी प्रायः ३२ दिनका होता है। इसलिये ३२ कल्पोंकी गणना की गयी है। शेष ब्राह्म मास ३० दिनों (=३० कल्पों) के ही होंगे। इसलिये मुख्य कल्प ३० ही हैं।

२. ये नाम मार्कण्डेयपुराण अ० ५३ से लिये गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

साधक अगर 'ऐसा होना चाहिये, ऐसा नहीं होना चाहिये'—इन दो बातोंको छोड़ दे और भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार कार्य करता रहे, तो उसको भगवान्‌की प्राप्ति हो जाय! जिसको मुक्ति कहते हैं, कल्याण कहते हैं, वह हो जाय! रामायणमें आता है—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥
(७।४३।३)

बिना हेतु कृपा करनेवाले प्रभु अपनी तरफसे कृपा करके जीवको मनुष्यशरीर देते हैं। कृपाका तात्पर्य यह हुआ कि मनुष्य अपना कल्याण कर ले। मनुष्यका कल्याण हो जाय—इस भावसे भगवान् मनुष्यशरीर देते हैं। अतः भगवान्‌की तरफसे तो इसके उद्धारका संकल्प हो गया। परंतु मनुष्य 'ऐसा होना चाहिये, ऐसा नहीं होना चाहिये'—इस बातको पकड़ लेता है और इसीसे बन्धनमें पड़ जाता है; और इसीको कामना कहते हैं।

गीताने जो कामना-त्यागकी बात कही है, उसका तात्पर्य है कि 'ऐसा हो जाय और ऐसा न हो जाय'—ये दोनों छोड़ दें। इस तरह कामनाका त्याग करनेसे मनुष्यका संसारके साथ सम्बन्ध नहीं रहेगा और भगवान्‌की कृपासे, भगवान्‌के संकल्पसे इसका उद्धार हो ही जायगा—यह निश्चित बात है।

प्रभु स्वाभाविक बिना कारण कृपा करते हैं, किसी कारणसे नहीं—*'बिनु हेतु सनेही।'* अतः भगवान्‌का यह संकल्प है कि मनुष्य अपना उद्धार कर ले। भगवान्‌का संकल्प सत्य होता है, नित्य होता है और स्वतः सिद्ध होता है। इसलिये मनुष्यको अपने कल्याणके लिये कुछ भी करना नहीं पड़ता। बस, केवल एक बात है कि मनुष्य अपनी आड़ नहीं लगाये अर्थात् 'ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये'—इसको मिटा दे। फिर इसका कल्याण स्वतः हो जायगा।

ऐसा हो जाय और ऐसा न हो जाय—इससे होता कुछ नहीं। कारण कि 'ऐसा हो जाय'—ऐसा चाहनेसे क्या ऐसा हो जाता है? और 'ऐसा न हो जाय'—ऐसा चाहनेसे क्या ऐसा नहीं होता? एक-एक भाई-बहन इसपर विचार करके देखें कि जैसा हम चाहें, वैसा हो जाय और जो नहीं चाहें, वह नहीं हो—यह बात होती नहीं। अभीतक किसीके भी मनकी बात पूरी नहीं हुई तो अब कैसे हो जायगी? आपलोग अपना-अपना जीवन देख लें कि हमने जैसा चाहा, वैसा हुआ है क्या? जो नहीं चाहा, वह नहीं हुआ है क्या? आपकी उम्रभरका है ऐसा अनुभव? अतः हमारे चाहनेसे क्या होता है? प्रभुकी प्राप्तिमें बाधा लगनेके सिवाय कुछ नहीं होता। जिसको तत्त्वज्ञान, जीवन्मुक्ति, भगवत्प्रेम, भगवत्प्राप्ति, कल्याण, उद्धार कहते हैं, केवल उसमें बाधा लगती है और कुछ नहीं होता।

कहते हैं 'बात तो ठीक है, पर मनमें ऐसी कामना हो जाती है, क्या करें?' इसमें एक बात बताते हैं। जो हो जाता है, वह दोषी नहीं होता, प्रत्युत जो करते हैं, वह दोषी होता है। जैसे, वर्षा हो जाय, न हो जाय तो क्या हमें उलाहना मिलता है? क्या इसमें हमारी कोई जिम्मेवारी होती है? जो स्वतः होता है, उसकी हमारेपर कोई जिम्मेवारी नहीं होती, उसका हमें कोई पाप-पुण्य नहीं लगता। अतः मनमें 'ऐसा हो और ऐसा न हो'—ऐसा आ भी जाय, तो उसकी उपेक्षा कर दें कि 'नहीं' हमें यह कामना नहीं करनी है, हमें यह बात बिलकुल ही नहीं रखनी है।' इसपर अगर आप दृढ़तासे टिक जायँ, तो यह कामना मिट जायगी।

हमारे मनमें तो यही बात रहनी चाहिये कि 'जैसा भगवान् चाहें, वैसा होना चाहिये और जैसा भगवान् नहीं चाहें, वैसा नहीं होना चाहिये'—

मेरी चाही मत करो, मैं मूरख अज्ञान।
तेरी चाही में प्रभो, है मेरा कल्यान॥

अगर चाह हो भी जाय, तो प्रभुसे कह दें कि 'हे नाथ! मेरी चाही मत करना। नारदजीने चाहा कि मेरा विवाह हो जाय, तो क्या विवाह हो गया? उन्होंने भगवान्‌से भी माँग लिया, तो भगवान्‌ने कहा कि 'जैसा तुम्हारा परम हित होगा, वैसा करूँगा।'* नारदजीने अपने-आपको भगवान्‌को दे रखा था; अतः उनके माँगनेपर भी भगवान्‌ने नहीं दिया। इसलिये माँगकर अपनी इज्जत क्यों खोयें; क्योंकि प्रभु तो अपनी मरजीसे करेंगे! जब वे अच्छे-से-

* जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार। सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार॥ (मानस १।१३२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छे भक्तका कहना भी नहीं करते, तब वे हमारा कहना कैसे करेंगे? तो फिर कहना ही क्यों? कुछ भी नहीं चाहेंगे तो हमारी इज्जत रह जायगी।

जब हनुमान्‌जी सीताजीका पता लगाकर, उनका सन्देश लेकर आये, तब भगवान्‌ने उनसे कहा कि 'मैं तुम्हें क्या दूँ? देनेके लिये मेरे पास कुछ है ही नहीं; अतः मैं तुम्हारा ऋणी हूँ।' इसलिये जो भगवान्‌से कुछ नहीं चाहता, भगवान् उसके ऋणी हो जाते हैं। जैसे, आपको यह मालूम हो जाय कि ये महात्मा, ये पण्डितजी कुछ नहीं चाहते तो आपके मनमें भाव होगा कि इनको कुछ दे दूँ। ये हमसे कुछ ले लें—ऐसी आपकी स्वाभाविक एक रुचि होती है। ऐसे ही जो कुछ नहीं चाहता, उसका कल्याण हो जाय—ऐसी प्रभुके मनमें आती है।

एक सन्तने कहा था—यह हमारे काममें ली हुई, अनुभव की हुई बात है कि मनसे पूछे—तेरेको क्या चाहिये? मनसे उत्तर दे—कुछ नहीं। बोल, क्या चाहिये? कुछ नहीं—ऐसे बार-बार मनसे कहो तो चाहना मिट जायगी। हमें कुछ चाहिये ही नहीं; क्योंकि सबकी अन्न-जलकी व्यवस्था अपने-आप होती है। हम जी रहे हैं तो जीनेकी सामग्री अपने-आप आयेगी। फिर चाहना क्यों करें? सुख मिले और दुःख न मिले—ऐसा सब चाहते हैं, पर आजतक एक भी प्राणी ऐसा नहीं हुआ, जिसको दुःख न मिला हो और सुख-ही-सुख मिला हो। इसलिये प्रभुकी मरजीमें अपनी मरजी मिला दें। प्रभु जो कर रहे हैं, उसमें हमारा हित भरा है। ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये—यही बन्धन है। यह न रहे तो फिर प्रभुका भजन ही होगा।

प्रभुकी मरजीमें अपनी मरजी मिला देना, अपनी कोई अलग चाह न रखना ही पूजा है। अगर अपने मनमें 'यह हो और यह न हो' ऐसा रहेगा तो पूजामें बाधा होगी। एक सन्त मिले थे। उन्होंने कहा कि 'हमारी तो सदा मनचाही होती है।' दुनियामें ऐसा कोई नहीं है, जिसकी सदा मनचाही होती हो। उनसे पूछा कि 'महाराज! आपकी सदा मनचाही कैसे होती है?' वे बोले कि 'हम अपनी कोई चाहना रखते ही नहीं, हमने अपनी चाहना भगवान्‌की चाहनामें मिला दी। अब वे जो कुछ करें, उसमें हमारी भी यही चाहना है अर्थात् ऐसा हो गया, तो हम भी ऐसा ही चाहते हैं; अतः जो होता है, वह हमारी चाहनाके अनुसार ही होता है।'

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥

(मानस १।१२७।१)

इसलिये साधक अपनी कोई चाहना न रखे।

'नामु राम को कलपतरु'

(श्रीदेवेन्द्रजी शर्मा)

[गताङ्क ५ पृ०-सं० ६९३ से आगे]

श्रीगोस्वामीजी विशेष प्रयोजनहेतु काल-विशेषमें सगुणरूपमें अवतरित 'भगवान् श्रीराम' और सदैव ही अवतरित रहनेवाले 'श्रीराम-नाम' के कार्योंकी तुलना करते हुए कहते हैं—

भगवान् श्रीरामने भक्तोंके हित-हेतु अवतार धारण किया और शरीरसे महान् कष्ट सहकर कुछ ही साधु-सन्तों-भक्तोंके कष्टोंका नाश करके उन्हें सुखी बनाया, परंतु 'श्रीराम-नाम' का जप-स्मरण करके तो अनगिनत भक्तोंने सुख और प्रसन्नता प्राप्त की है। भगवान् श्रीरामने तो एक मलिन-मति अहल्याका उद्धार किया, परंतु 'श्रीराम-नाम' के स्मरणसे तो अनेक दुष्टोंके मन-बुद्धि सुधर गये। भगवान् श्रीरामने तो महर्षि विश्वामित्रकी यज्ञकी रक्षाके लिये एक ताड़का और सुबाहुका सेनासहित नाश किया, लेकिन 'श्रीराम-नाम' का स्मरण तो अनेक भक्तोंके दोष, दुर्गुण और दुराशाओंरूपी राक्षसोंका इस प्रकार नाश कर देता है, जैसे सूर्य सारे संसारके अन्धकारका। भगवान् श्रीरामको स्वयं जनकपुर जाकर भव-चाप (भगवान् श्रीशिवजीके धनुष)-को तोड़ना पड़ा, लेकिन 'श्रीराम-नाम' का स्मरण तो भव-बन्धनके सारे भयोंका भंजन करनेवाला है। भगवान् श्रीरामने तो एक अपवित्र दण्डक वनको स्वयं जाकर पवित्र किया, परंतु 'श्रीराम-नाम' के स्मरणके द्वारा तो अनेक साधकोंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मनरूपी वन' पवित्र हो गये। भगवान् श्रीरामने तो गिनतीके राक्षसोंका नाश किया, लेकिन 'श्रीराम-नाम' के स्मरणसे तो कलियुगके अनगिनत दोषोंरूपी राक्षसोंका नाश हो जाता है। भगवान् श्रीरामने तो शबरी और गीध-जैसे कुछ गिनतीके उत्तम सेवकोंका उद्धार किया, लेकिन उनके 'श्रीराम-नाम' के स्मरणने तो असंख्य अधम-जनोंका उद्धार कर दिया। भगवान् श्रीरामने तो सुग्रीव और विभीषण—दो जनोंको शरणागति प्रदानकर अभय किया, परंतु 'श्रीराम-नाम' की कृपाने तो अनेक रंकोंको राजा बना दिया। भगवान् श्रीरामने लंका पहुँचनेके लिये समुद्रपर बड़े परिश्रमसे पुल बनाया, लेकिन 'श्रीराम-नाम' के स्मरणसे तो भव-सिन्धु स्वतः ही सूख जाते हैं। भगवान् श्रीरामको महामोहरूपी रावण और उसके दलका विनाश करनेमें कितना परिश्रम करना पड़ा, यह सब जानते हैं, लेकिन भक्तगण तो केवल 'श्रीराम-नाम' के स्मरणमात्रसे समस्त मोहदलको सहज ही जीत लेते हैं और संसारमें आनन्दपूर्वक विचरण क़रते हैं।

भगवान् श्रीराम और उनके 'श्रीनाम' के कार्योंके उपर्युक्त तुलनात्मक विवरणके निष्कर्षमें श्रीगोस्वामीजी भगवान् श्रीरामसे उनके 'श्रीनाम' को हर हालतमें बड़ा बताते हुए कहते हैं—

ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि॥

(रा०च०मा० १। २५)

अर्थात् निर्गुण ब्रह्म और सगुण श्रीराम दोनों ही से इनका 'नाम' बड़ा है और यह वरदान देनेवालोंको भी वरदान देनेवाला है—ऐसा अपने हृदयमें अच्छी तरहसे विचार करके भगवान् श्रीशंकरने सौ करोड़ श्रीरामचरित्रोंमेंसे उनका साररूप केवल दो अक्षरोंवाला 'श्रीराम-नाम' अपने लिये चुन लिया।

श्रीगोस्वामीजी 'श्रीराम-नाम' की महिमाके बारेमें आगे लिखते हैं कि—सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और इस घोर कलियुग—चारों युगोंमें, भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों कालोंमें और पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल—तीनों लोकोंमें प्राणियोंके शोकरहित होनेके लिये 'श्रीराम-नाम' का स्मरण ही एकमात्र साधन है, जो कठिन समयमें आर्त-भावसे स्मरण करनेपर कल्पवृक्षके समान सब मनोरथोंको पूर्ण करता है और समस्त संकटोंसे मुक्ति प्रदान करता है। इस घोर कलियुगमें योग-यज्ञ-जप-तप-व्रत और श्रीभगवान्की पूजा तो ठीकसे सफल हो नहीं पाते हैं, ऐसी स्थितिमें 'श्रीराम-नाम' के निरन्तर स्मरण, गायन और श्रवणके अतिरिक्त जीवके कल्याणका कोई अन्य दूसरा साधन है ही नहीं—

एहिं कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥

(रा०च०मा० ७। १३०। ५-६)

श्रीगोस्वामीजी, 'श्रीराम-नाम' के माध्यमसे एक अनोखी गृहस्थीकी बात भी करते हैं—

दंपति रस रसना दसन परिजन बदन सुगेह।
तुलसी हर हित बरन सिसु संपति सहज सनेह॥

(दोहावली २४)

यह एक बसी-बसाई गृहस्थी है और इसका आधार पूर्णरूपसे 'श्रीराम-नाम' है। आवश्यकता केवल इसे समझकर इसका भरपूर आनन्द लेनेकी है और उपर्युक्त चारों ही प्रकारके भक्त, यहाँतक कि विरक्त/संन्यासीजन भी इस गृहस्थीका पूरा-पूरा सुख भोग सकते हैं। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि इस गृहस्थीका सृजन इस प्रकार है—'श्रीराम-नाम' जपनेमें जो 'रस' (आनन्द) आता है, वह इस गृहस्थीमें 'पति' स्वरूप है। 'जिह्वा' जिसके माध्यमसे 'श्रीराम-नाम' का जप होता है, वह इस गृहस्थीमें 'पत्नी' स्वरूपा है। मुँहमें जो 'दाँत' हैं, वे इस गृहस्थीके अन्य परिजन और स्नेहीजन हैं। 'श्रीराम-नाम' जपसे विभूषित साधकका जो मुँह है, वही इस गृहस्थीके लिये 'सुन्दर घर' है। श्रीमहादेवजीके परम प्रिय 'श्रीराम-नाम' के जो दो वर्ण—'रा' और 'म' हैं, वे ही इस घर-गृहस्थीमें सबको आनन्द देनेवाले हँसते-खेलते 'परम-सुन्दर दो बालक' हैं और जिस 'सहज-स्नेह' से 'श्रीराम-नाम' जपा जाता है, वही इस गृहस्थीकी 'अचल और अपार सम्पत्ति' है। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि किसी भी परमार्थ-साधकके लिये 'श्रीराम-नाम' पर आधारित यह 'गृहस्थी' उसके परमार्थको निश्चित तौरपर सिद्धि प्रदान करती है।

श्रीगोस्वामीजी 'श्रीराम-नाम' की विशद महिमाको गणितके एक रोचक सूत्रके रूपमें भी प्रस्तुत करते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते हैं—

नाम राम को अंक है सब साधन हैं सून।
अंक गएँ कछु हाथ नहिं अंक रहें दस गून॥

(दोहावली १०)

श्रीभगवान्‌की भक्तिके साधनोंकी गिनतीमें 'श्रीराम-नाम' तो एक (१)-का अंक (संख्या) है और बाकी सब साधन शून्य (०)-के अंक (संख्या) हैं। अब इन दोनों अंकोंमेंसे यदि एक (१)-के अंकको हटा दिया जाय तो केवल शून्य (०) ही अपने हाथमें रह जाता है और यदि इस एकके अंकको शून्यसे पहले साथमें रखा जाय तो यह संख्या दस (१०) गुनी हो जाती है। कहनेका भाव यह है कि 'श्रीराम-नाम' जपरूपी साधन अपनानेसे भक्ति-साधनाका स्तर अथवा महत्त्व दस गुना (श्रेष्ठ) हो जाता है।

श्रीगोस्वामीजी 'श्रीराम-नाम' के महत्त्व, महिमा और प्रभावके वर्णनका समापन अपने इन शब्दोंमें करते हैं—

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

(रा०च०मा० १।२६।८)

मैं भगवान् श्रीरामके 'नाम' की बड़ाई कहाँतक करूँ? वे प्रभु श्रीराम स्वयं भी अपने 'नाम' के गुणोंका गान करनेमें असमर्थ हैं। अब, जब भगवान् श्रीराम ही अपने 'श्रीनाम' का गुण-गान नहीं कर सकते तो फिर और कौन कर सकता है? कलियुगमें रामका नाम कल्पतरु (मनचाहा पदार्थ देनेवाला) और कल्याणका निवास (मुक्तिका घर) है, जिसको स्मरण करनेसे भाँग-सा (निकृष्ट) तुलसीदास तुलसीके समान [पवित्र] हो गया। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—

नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु॥

(रा०च०मा० १।२६)

—हे कलियुगके प्राणियो! ध्यानसे और विश्वासपूर्वक सुनो। इस घोर कलियुगमें 'श्रीराम-नाम' ही कल्याणका निवास है; क्योंकि यह कल्पवृक्षके समान सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है। ***'जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।'*** (रा०च०मा० ७।१२४क) यह 'श्रीराम-नाम' भक्तोंके तीनों प्रकारके (दैहिक-दैविक-भौतिक) तापोंका हरण करनेवाली और समस्त भव रोगोंको नष्ट करनेवाली, पूर्णतया विश्वसनीय और सफल औषधि है और जहाँतक मेरा प्रश्न है तो मैं डंकेकी चोटपर कहता हूँ कि 'श्रीराम-नाम' का आश्रय लेनेसे पूर्व तो मैं एक 'भाँग' का पौधा था, जो नशा आदि दुर्गुणोंके लिये जाना जाता है। लेकिन इस परम पावन, अनन्त महत्त्व महिमा और प्रभाववाले 'श्रीराम-नाम' का आश्रय लेने और इसके निरन्तर जपके प्रभावसे ही मैं तुलसीदास, श्रीभगवान्‌को सदा ही प्रिय लगनेवाले 'तुलसी' के पौधेके रूपमें परिणत हो गया, यानी कि मैं सदाके लिये श्रीभगवान्‌का प्रिय बन गया और इस भाँगके पौधेसे तुलसीके पौधेके रूपमें परिणत होने-जैसे असम्भव कार्यके होनेपर मैं तुलसीदास 'श्रीराम-नाम' के प्रति अपने प्रेम और विश्वासके बलपर ढोल-डंका बजाकर अपने अनुभवकी दुहाई देकर कहता हूँ, घोषणा करता हूँ कि—

भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो, बाम रे।
राम-नाम ही सों अंत सब ही को काम रे॥

(विनय-पत्रिका ६६।३)

चाहे कोई 'भला' (सज्जन) हो, 'पोच' (नीच/दुष्ट) हो, उलटा हो या फिर सीधा हो, अन्त समयमें तो सबका काम 'श्रीराम-नाम' से ही पड़ता है; क्योंकि मृत्यु होनेपर सबकी अन्तिम यात्राका आरम्भ और समापन 'श्रीराम-नाम सत्य है' के उच्चारणसे ही होता है। अन्तर केवल इतना है कि उस समय भी हमलोग मृतककी मुक्तिके लिये तो 'श्रीराम-नाम' का उच्चारण करते हैं। अपने लिये तो फिर भी नहीं करते, जो हमें सदा ही करना चाहिये।

इसीलिये—

राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे।
एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साधि रे।
राम-नाम कामतरु देत फल चारि रे॥
कहत पुरान, बेद, पंडित, पुरारि रे।

(विनय-पत्रिका ६६।१-२, ६७।४)

जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल॥

(रा०च०मा० ७।१२४क)

[समाप्त]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौनकी साधना

[सन्त श्रीविनोबा भावेके विचार]

यों तो मेरा मौनका व्यक्तिगत अभ्यास बहुत ही पुराना है। चिन्तनके लिये मन पूर्णरूपसे मुक्त रहे—यही प्रारम्भमें मेरी मौन-साधनाको अभिप्रेत रहा है।

जहाँतक मुझे स्मरण है, लगभग सन् १९२७ ई०में मैंने मौन-व्रत लिया। वह मतलबी मौन था। वह सन्ध्याकालीन प्रार्थनाके बाद प्रारम्भ होकर प्रात:कालीन प्रार्थनाके पश्चात् छूटता था। दो प्रार्थनाओंके बीच ९-१० घण्टोंका अन्तर हुआ करता है। फिर सन्ध्याकालीन प्रार्थना देरीसे तथा प्रात:कालीन प्रार्थना शीघ्रतासे करनेकी पद्धति चली। इससे यह अन्तर और भी कम होता गया। पीछे बहुत कम समय मौनके लिये बच गया। जो चन्द घण्टे मौनके लिये रहे, उन्हीं घण्टोंमें नींदका भी समय था। निद्रामें तो सभी मौन रहते ही हैं।

मौनसे विचारोंका विकास

मौन-व्रतमें विचार करनेसे तरह-तरहकी अनुभूतियाँ होती हैं। कई लोग मौनका बाह्य उपयोग देखते हैं। मेरा ध्यान प्रारम्भसे ही बाह्य उपयोगकी ओर नहीं रहा। यद्यपि यह सच है कि रातको देरतक बातें चलती रहें तो बीमारोंको कष्ट तथा दूसरोंको व्यवधान होता है। इससे वातावरणको शान्त करनेमें भी मौनका उपयोग है। यह स्थूल उपयोग है। मैंने इसे गौण माना है।

गीतामें भगवान्ने अन्तकालमें परमेश्वरके स्मरणका महत्त्व बतलाया है।* अन्तकालमें भगवान्का स्मरण तभी हो सकता है, जब जीवनभर उनका स्मरण होता रहे। अन्तिम समयमें सार्वकालिक जीवनका परिणाम होता है। यही पाथेय लेकर मानव आगे बढ़ता है। मर जानेके बाद क्या होगा?—इस बातपर गीतामें अत्यन्त बलपूर्वक कहा गया है कि अन्तिम स्मरणके अनुरूप ही जीवको आगेकी प्रेरणा मिलती है।

इसीपर मुझे लगा कि अन्तिम कालका नाटक प्रतिदिन होना चाहिये। अन्तिम काल कब आयेगा और किस तरह आयेगा—इसकी कल्पना तो की नहीं जा सकती; किंतु यों देखा जाय तो प्रतिदिन हमारे जीवनका अन्त हुआ करता है। आखिर निद्रा भी तो मरणकी पूर्व-प्रक्रिया ही है, जो नित्यकी अनुभूति है। इसलिये यदि हम नित्य सोते समय अन्तकालके स्मरणका नाटक करें तो भगवत्कृपासे अन्तकालके समय बाजी अपने हाथमें रह सकती है। प्रतिदिनका अभ्यास मौकेपर सफलता दे सकता है।

सोनेसे पूर्व ऐसा सोचना सम्भवत: कुछ लोगोंको अच्छा न लगे। वे कह सकते हैं कि 'जब भगवान्का बुलावा आयेगा तब जैसा होगा, कर लिया जायगा', किंतु इस तरह सोचना ठीक नहीं है।

मृत्यु नित्य आती है, यह मानकर पवित्र स्मरणके साथ सो जाना चाहिये। यही मैंने सोचा। फिर मैंने इसकी घोषणा भी कर दी कि सायं-प्रार्थनाके बाद मैं मौन रखूँगा। सायंकी प्रार्थना सात बजे हुआ करती थी, तबसे प्रात:की दूसरी प्रार्थनातक मैंने मौन प्रारम्भ कर दिया।

मौनके प्रथम दिन ही मुझे विलक्षण शान्तिका अनुभव हुआ। बोलना बन्द हो जानेसे मानसिक स्वाध्याय प्रारम्भ हो गया। यह स्वाध्याय धार्मिक पुस्तकोंका ही हुआ करता था, यह अलग बतानेकी आवश्यकता नहीं है। आजतक मैंने जितनी भी पुस्तकें पढ़ी हैं, वे अधिकांश धार्मिक ही थीं। दूसरी भी यदि पढ़ी गयीं तो वे धर्मके अंगरूपमें ही पढ़ी गयी हैं। पढ़नेके अनन्तर केवल ध्यान और चिन्तन ही करता था। इससे कितनी शक्ति मिलती है, इसकी कल्पना मुझे पहले नहीं थी। सचमुच अद्भुत अनुभव हुआ। परिणामस्वरूप विचारोंके विकासका एक शास्त्र ही मेरे हाथ लग गया। जिस तरह खेतमें बीज बोकर उसपर मिट्टी डाल दी जाय तो बीज दिखायी नहीं पड़ता, फिर भी अन्दर-ही-अन्दर वह विकसित होता रहता है और तीन दिनोंके पश्चात् जब अंकुर फूटता है, तभी अनुमान होता है कि अन्दर कितनी सूक्ष्म क्रियाएँ सम्पन्न हुई होंगी। इसी तरह प्रार्थना, ध्यान एवं चिन्तन करनेवाले मनुष्यपर निद्रारूपी मिट्टी डाल दी जाय तो कभी-कभी जागृतिमें हम जिन समस्याओंका समाधान नहीं कर सकते, उनका समाधान निद्रामें मिल जाता है अथवा कई बार प्रात: उठते ही बड़े सुन्दर निर्णय हो जाते हैं। समाधिमें गहरे उतरनेपर विचारोंका विकास होता है; किंतु गहरे उतरनेके बाद भी कभी-कभी जो फल नहीं मिल पाता, वह निद्राकी प्रक्रियामें मिल जाता है, यह मुझे एकाधिक बार अनुभव हुआ है। उस समय मेरे सामने श्रीशंकराचार्यके इस कथनका पूरा तथ्य प्रकट हो गया—**'निद्रा समाधिस्थिति:'** (शिव-मानसपूजा ४)।

* अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्। य: प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशय:॥

'जो पुरुष अन्तकालमें भी मेरा स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त एवं भगवान्‌का सम्बन्ध

(अनन्तश्री अनिरुद्धाचार्य वेंकटाचार्यजी महाराज)

यहाँ निगम, आगम एवं भक्तोंद्वारा रचित 'भक्ति-ग्रन्थों' के आधारपर 'भक्त एवं भगवान्‌का सम्बन्ध' इस विषयपर संक्षेपमें चर्चा की जा रही है। श्रीरामानुज-सम्प्रदायमें अर्थषट्क—छः अर्थोंके ज्ञानको मुक्तिका साक्षात् साधन माना गया है, जिनमें एक भक्त एवं भगवान्‌का सम्बन्ध-ज्ञान भी है। परस्पर साक्षात् सम्बन्धके होनेपर भी जबतक वह अज्ञात है, तबतक अकिंचित्कर रहता है, अतः भक्तिमार्गके आचार्योंने अपने उज्जीवनके लिये भक्तोंको अपने भजनीय भगवान्‌के साथ विद्यमान सम्बन्धोंका ज्ञान होना परम आवश्यक माना है।

यह सम्बन्ध-ज्ञान चार प्रकारका है—सम्बन्ध-ज्ञान, सम्बन्ध-याथात्म्य-ज्ञान, सम्बन्ध-स्वरूप-ज्ञान एवं सम्बन्ध-स्वरूप-याथात्म्य-ज्ञान। इसका विशद वर्णन भक्तिशास्त्रोंमें प्राप्त होता है। इस विषयमें सन्त कवि महाभागवत गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने 'विनय-पत्रिका' में भगवान् श्रीरामसे विनय की है—

तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै।
ज्यों-त्यों तुलसी कृपालु! चरन-सरन पावै॥

अर्थात् 'आपके और मेरे अनेक नाते हैं, जो आपको भला लगे, आप उसे ही मान लें। बस, मुझे तो किसी प्रकार आपके चरणोंकी शरण प्राप्त होनी चाहिये।'

नवविध सम्बन्ध—भगवान्‌के साथ भक्तोंके अनेक सम्बन्ध हैं। कतिपय संत भगवान्‌के साथ भक्तोंके सोलह सम्बन्ध मानते हैं। परमात्मा सदा जीवात्माका माता-पिता, रक्षक, शेषी, भर्ता, स्वामी, आधार, भोक्ता, शरीरी, गुरु, मित्र, बान्धव, धन, राजा, देव और सेव्य है। अर्थात् परमात्माके साथ भक्तोंके मातृपुत्रभाव, पितृपुत्रभाव, रक्षक-रक्ष्यभाव आदि सोलह सम्बन्ध मुख्य हैं। श्रीरामानुज-सम्प्रदाय नौ सम्बन्धोंको मुख्य मानता है—१. शेषशेषिभाव, २. आधाराधेयभाव, ३. शरीर-शरीरिभाव, ४. नियन्तृ-नियम्यभाव, ५. स्व-स्वामिभाव, ६. रक्ष्य-रक्षकभाव, ७. दास्य-स्वामिभाव, ८. पितृ-पुत्रभाव और ९. सख्यभाव।

शेष-शेषिभाव—प्रथम सम्बन्ध 'शेषशेषि-भाव' है, इसका विवरण श्रीसम्प्रदायके आचार्य श्रीवेंकटनाथ (श्रीवेदान्तदेशिक)-ने 'श्रीरहस्यत्रयसार' में **'शेषं परार्थवत्'** इस 'कर्ममीमांसा' सूत्रके आधारपर इस रूपमें दिया है—जिस वस्तुकी सत्ता परके प्रयोजनके लिये ही हो, वह 'शेष' एवं जिस परके लिये है, वह 'शेषी' है, परंतु हमने यहाँ 'शेष' शब्दका वेदोक्त अंशरूप अर्थ लिया है। वेदोंमें 'शेष' का एक अर्थ 'अंश' भी है। जीवात्मा परमात्माका अंश है। अतः वह शेष एवं उसका अंशी परमात्मा 'शेषी' है। जीव अंश है, यह प्रसिद्ध है। **'अंशो नानाव्यपदेशात्'** (१५) इस ब्रह्मसूत्रमें भगवान् व्यासने जीवको परमात्माका अंश माना है। **'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः'** (१५।७)-में गीता भी जीवको भगवान्‌का अंश मानती है। अतः भक्तों (जीवों)-का भगवान्‌के साथ अंशांशिभाव (शेषशेषिभाव) सम्बन्ध सिद्ध होता है।

प्रकृति (वेद)-का यह नियम है कि जबतक अंश (शेष) अंशी (शेषी)-की प्राप्ति नहीं कर लेता, तबतक वह पूर्णता, पूर्ण सुख एवं पूर्ण शान्तिका अनुभव नहीं कर पाता, अतः किसी भी अवस्थामें स्थिर सुख एवं स्थिर शान्तिका अनुभव नहीं करता। इस सम्बन्ध-ज्ञानका फल है—शाश्वत सुखकी प्राप्तिके लिये अपने शेषी (परमात्मा)-की प्राप्तिके साधनोंमें तत्परतापूर्वक अग्रसर होना।

आधाराधेयभाव—दूसरा सम्बन्ध 'आधाराधेयभाव' है। अंशी सदा अंशका आधार (विधारक) होता है, यह लोक-वेदप्रसिद्ध है। परमात्मा जीव तथा प्रकृति—दोनोंका आधार है। अतः जीवात्मा (भक्त)-का परमात्माके साथ आधाराधेयभाव सम्बन्ध सिद्ध होता है। इस विषयमें भगवान् व्यासका 'विष्णुसहस्रनाम' में निर्देश है—

द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधिः।
वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः॥

(महाभारत १३।१४९।१३४)

अर्थात् चेतनात्मक विश्वके भगवान् 'वासुदेव' ही विधारक (आधार) हैं। इस सम्बन्ध-ज्ञानका फल है—परमात्माके साथ अपृथक् सिद्धस्वरूपज्ञानका ज्ञान। इस ज्ञानका भी यह प्रतिफल है कि जीवात्मा अनन्याधार है, अर्थात् परमात्माको छोड़कर इसका दूसरा आधार नहीं है।

शरीर-शरीरिभाव—भक्तोंका भगवान्‌के साथ तीसरा सम्बन्ध शरीर-शरीरिभाव है। जो जिस पदार्थका नियमसे धारक, नियन्ता एवं अंशी है, वह उस पदार्थका शरीरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आत्मा) धार्य, नियम्य एवं अंश या अंग है। परमात्मा स्वरूपसे चेतन-अचेतन विश्वका धारक तथा संकल्पसे विश्वकी सत्ता, स्थिति एवं प्रवृत्तिका नियामक है। विश्व उसका अंश, प्रत्यंश है। अतः वह विश्वका शरीरी (आत्मा) एवं विश्व उसका शरीर है। इस सम्बन्धज्ञानका फल है—परमात्मा स्वरूप और संकल्पसे चेतनाचेतनके स्वरूपानुरूप उनकी सत्ता, स्थिति और प्रवृत्तिके प्रयोजक हैं। दूसरे शब्दोंमें जड और चेतन परमात्माके अपृथक् (कदापि अलग न होनेवाले) विशेषण हैं।

नियन्तृ-नियम्यभाव—चौथा सम्बन्ध 'नियन्तृ-नियम्यभाव' है अर्थात् श्रीविष्णु सब जड-चेतन वस्तुओंके नियामक हैं। दूसरे शब्दोंमें श्रीविष्णुके संकल्पसे जड और चेतन पदार्थोंकी सत्ता, स्थिति और प्रवृत्ति है, अतः वे सबके नियन्ता एवं अन्य सभी नियम्य हैं। स्वरूपसे सबके आधार एवं संकल्पसे नियामक हैं। इस सम्बन्ध-ज्ञानका फल है, स्वरूपानुरूप पुरुषार्थके अनुरूप निरपेक्ष उपाय-विशेषका ज्ञान। अल्पाक्षरोंमें अनन्य प्रयोजनताका ज्ञान।

स्व-स्वामिभाव—पाँचवाँ सम्बन्ध 'स्व-स्वामिभाव' है। '**ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्**' (ईशोपनिषद् १)-के आधारसे पदार्थमात्र (जड और चेतन) परमात्माका 'स्व' (वस्तु) है। परमात्मा उसका स्वामी है। भक्त भी भगवान्‌की चेतनरूप स्वीय वस्तु है, अतः वह परमात्माका 'स्व' एवं परमात्मा उसके स्वामी (मालिक) हैं। इसके ज्ञानका फल है—जीवात्मा अनाथ न होकर सनाथ है।

रक्ष्य-रक्षकभाव—छठा सम्बन्ध 'रक्ष्य-रक्षकभाव' है। स्व-स्वामिभाव-सम्बन्धके स्वरूपका वर्णन करते हुए कहा गया है कि भक्त भगवान्‌का 'स्व' है। परमात्मा उसका स्वामी है। जब भक्त भगवान्‌का 'स्व' (वस्तु) हो गया, तब उसकी रक्षा करना स्वामीका कर्तव्य हो जाता है। परमात्मा रक्षामें समर्थ हैं। जीवात्मा असमर्थ है। समर्थका असमर्थकी रक्षा करना स्वतःप्राप्त धर्म है। इस सम्बन्ध-ज्ञानका फल है—अपनी रक्षामें निर्भरता और निर्भयता।

दास्य-स्वामिभाव—सातवाँ सम्बन्ध 'दास्य-स्वामिभाव' है। 'शेष-शेषिभाव' सम्बन्धका वर्णन करते हुए कहा गया है कि शेष (जीव) शेषी (परमात्मा)-का अंश है, परंतु यह 'शेषत्व' जड-चेतन उभय-साधारण है, अतः केवल चेतन (जीव)-में रहनेका और शेषत्वका दासत्व-रूपमें परिणत करके अनुसन्धान करना आवश्यक है। जब जीवात्माका 'शेषत्व' दासत्वरूप धारण कर लेता है, तब परमात्मामें स्थित 'शेषित्व'का भी अनुसन्धान 'स्वामित्व' रूपमें करना आवश्यक हो जाता है, यही दास्य-स्वामिभाव-सम्बन्धका स्वरूप है। इसके ज्ञानका फल है—आत्मनिक्षेप भगवत्कैंकर्य।

पितृ-पुत्रभाव—आठवाँ सम्बन्ध 'पितृ-पुत्रभाव' है। जीवात्मा (भक्त) भगवान्‌का अंश है। यह 'अंशत्व' जड-चेतन उभय-साधारण है। अतः 'भागवतधर्म' के आचार्योंने इस अंशत्वका चेतनमें पुत्रत्वरूप एवं परमात्माके अंशित्वका 'पितृत्व' रूपमें अनुसन्धान किया है। इसके ज्ञानका फल है—भक्तोंको श्रीवैकुण्ठकी प्राप्ति। पिताका दासभाव प्राप्तकर मुक्तिमें निश्चिन्त रहना।

सख्यभाव—नवाँ सम्बन्ध 'सख्यभाव' है। 'भक्ति' मार्गमें भक्तोंका भगवान्‌के साथ एक 'सख्य' सम्बन्ध भी माना गया है। '**सख्युर्भावं सख्यम्**'—इस निर्वचनके आधारसे सख्यमात्र (सखिभाव)-का अर्थ एक मित्रके प्रति दूसरे मित्रका भाव है। 'भक्ति-रसायन' ग्रन्थमें 'सख्यभाव'का विस्तृत वर्णन है। इसके अनुसार सख्य आठवीं 'भक्ति' है। यह श्रवण, कीर्तन, स्मरण एवं पाद-सेवन आदि सात भक्तियोंका फल है। यह 'पराभक्ति'का साधन भी है। यह दो प्रकारका माना यगा है—'**तवाहमस्मीश, ममासि चेति**' अर्थात् हे ईश! मैं आपका दास हूँ और आप मेरे स्वामी हैं। '**ममासि**' में वात्सल्यभावरूप भक्ति है। '**तवास्मि**' में दासभावरूप भक्ति है।

जिसका शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा—ये सब एक ईशके ही अवयव हो जाते हैं, वह 'ईश'का सखा है। यही वेदोंमें प्रतिपादित 'प्रपत्ति' है। इसकी प्राप्तिके अनन्तर 'भक्त' 'महाभागवत' शब्दसे अभिहित होता है। इस सम्बन्ध-ज्ञानका फल है—पुष्प, फल आदि सब कुछ निवेदन करके ग्रहण करना। भगवान्‌का सखा कभी अपने प्रिय सखाके अनिवेदित वस्तुको ग्रहण नहीं करता। अन्तमें हम सम्बन्ध-ज्ञाता भगवान्‌की निम्नलिखित प्रार्थनाके साथ इस लेखका उपसंहार करते हैं—

पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥

(गीता ११।४४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरणागतिमें निहित है जीवनका सुख

(श्रीगजाननजी पाण्डेय)

'जो भी होता है, अच्छेके लिये होता है;' क्योंकि उसमें उस परमपिता परमात्माकी इच्छा होती है। हम जब उस स्थितिका पुनरावलोकन करते हैं तो हमें आभास होता है कि यह जो हुआ है, इसमें हमारी किसी इच्छाकी ही पूर्ति हुई है और परमात्माने अप्रत्यक्षरूपमें उसे पूरा करनेमें हमारी सहायता की है। वे कितने दयालु हैं, कितने हितैषी हैं कि हमारी हर सद् इच्छाको पूरा कर देते हैं। दुःखोंमें राह बता देते हैं। हमारे लिये सुख, खुशीका प्रबन्ध कर देते हैं। हमें इसके लिये उनका ऋणी होना चाहिये। कृतज्ञतासहित निरन्तर उनका ध्यान करना चाहिये। इन सौगातोंके लिये हमें उनपर निर्भर रहना होगा, वे सब जानते हैं, अतः उनपर सब भार डालकर उनकी आज्ञा (संकेत)-से सभी कार्य करने हैं। यश, कीर्ति तथा कर्मफल उन्हें समर्पित करनेपर ही हम झूठे अहंकार, दम्भ और 'यह मैंने किया है'-जैसी स्व-प्रशंसासे अपनेको दूर रख सकेंगे; क्योंकि यही मायाका प्रभाव है। अतः निष्काम-भावसे हम उनकी चाकरी करें।

परंतु इस मार्गपर चलनेके लिये कुछ सिद्धान्त हैं, प्रत्येक साधकको उनका पालन करना होगा। यह संसार सेवाके लिये है, अतः सत्यमार्गसे सत्याचरणद्वारा अपने नित्य प्रतिके कार्य करने चाहिये। सत्पथपर चलनेकी यह पहली शर्त है। दूसरी शर्त है हमें निरन्तर अपने हृदयको सरल एवं शुद्ध (निर्मल) बनाना; जैसा कि श्रीरामचरितमानसमें आया है—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

(रा०च०मा० ५।४४।५)

विभीषण श्रीरामकी शरणमें आये। उन्हें यह सच्चा विश्वास था कि 'राम' ईश्वर हैं, उनकी शरणमें जानेपर ही जीवात्माकी मुक्ति सम्भव है, उनसे जुड़नेमें ही आत्मकल्याण निहित है, उनसे विमुख होकर दुःख और कष्ट ही प्राप्त होगा।

रावणके भ्राता विभीषणको देखकर समस्त वानरों और सुग्रीवको लगा कि यह भी रावणकी कोई चाल है। उसने विभीषणको भेद लेनेके लिये भेजा होगा, परंतु ईश्वर तो अन्तरके ज्ञाता हैं, उन्होंने कहा—

भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा॥

(रा०च०मा० ५।४४।६)

यह आशंका नहीं रखनी चाहिये कि अन्य आश्रयोंको छोड़कर भगवदाश्रय ग्रहण करनेसे हमारी कुछ हानि हो सकती है, ऐसेमें हमारा कुछ भी अहित न होगा; क्योंकि जिसके साथ ईश्वर हैं, उसे फिर कैसा भय, कैसी दुविधा? वह तो निमित्तमात्र है 'करने' और 'करानेवाला' तो वह है, अतः यदि हम अपना सुख चाहते हैं तो हमें उसका दासत्व स्वीकार करने, उसकी शरण जानेमें बिलकुल देर नहीं करनी चाहिये।

हम बहुत देर यहाँ-वहाँ भटकते रहे, व्यर्थके भ्रम और विवादमें उलझे रहे, परंतु अब हमें सन्मार्ग हाथ लग गया है, हमें उसने थाम लिया है।

विनय-पत्रिकामें आया है—

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं।

राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं॥

ईश्वरकी कृपासे हममें जागृति आयी है, अब जागकर फिर फेरमें नहीं पड़ना है। जागकर फिर सोना नहीं है।

उनसे जुड़कर, एकाकार होकर हम परमतत्त्वको प्राप्त करनेके अधिकारी होंगे, जो सबके लिये सुलभ नहीं है। सच्चा जीव ही उस आनन्दकी अनुभूति कर सकता है। ईश्वरकी प्राप्ति ही जीवनका परम लक्ष्य है और अनन्य शरणागतिमें आत्मोद्धार निहित है। अन्यथा असीमित इच्छाओंकी प्राप्तिकी दौड़में तृष्णाओंकी अन्धी भूख, मोह-ममता और ईर्ष्या-द्वेषके चक्करमें दुर्लभ जीवन यूँ ही बीत जायगा।

अतः यदि हम अपना कल्याण चाहते हैं तो हमें मनसा, वाचा, कर्मणा प्रभुके बताये कल्याणकारी मार्गपर चलना चाहिये। निरन्तर उनका ध्यान, चिन्तन और श्रेष्ठ ग्रन्थोंका पठन-पाठन और नित्य प्रति 'नाम-जप' को जीवनका ध्येय बनाना चाहिये। इससे हम व्यर्थकी बातोंमें समयको नष्ट न करेंगे, नामस्मरणसे हृदय शुद्ध और निर्मल बनेगा और हम बुराईसे बचेंगे तथा अच्छाई और बुराईमें भेद कर पायेंगे।

केवल ईश्वर ही एकमात्र दिव्य और परम सुन्दर हैं, उनकी तुलना किसी औरसे नहीं हो सकती। वे अतुलनीय, परम दयालु और इस भवसागरसे पार लगानेवाले हैं। रे मन! रामको भज, नित्य उनका ध्यान कर। वे परम प्रिय, अति सुन्दर और करुणाके सागर हैं—

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरन भवभय दारुणं।

नवकंज-लोचन कंज-मुख कर-कंज पद कंजारुणं॥

इस निस्सार जीवनसे उद्धारकी इच्छा है तो प्रभुचरणोंमें प्रीति रखकर उनको हृदयमें बिठाकर तथा उनके संकेतको शिरोधार्य मानकर आत्मकल्याणके लिये तीव्रतम प्रयत्न करते रहना चाहिये, जो उनकी शरणागतिसे सहज ही सुलभ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जौहरगाथा—

आत्मसम्मानके आगे कुछ भी नहीं

[महारानी पद्मिनीकी शौर्यकथा]

(श्रीसौजन्यजी गोयल)

[महारानी पद्मिनी भारतीय नारीके पातिव्रत्य, सतीत्व, साहस और तेजस्विताकी प्रतीक हैं। अनुपम सौन्दर्यके साथ ही उनमें बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिताका मणिकांचन-संयोग था। अपने धर्म और आत्मसम्मानके लिये मर-मिटनेवाली चित्तौड़की बलिदानी-परम्पराकी वे प्रतिनिधि हैं। प्रस्तुत है उन्हीं वीरांगना महारानी पद्मिनीकी शौर्यगाथा—सम्पादक]

रावल समरसिंहके बाद उनका पुत्र रत्नसिंह चित्तौड़की राजगद्दीपर बैठा। रत्नसिंहकी रानी पद्मिनी अपूर्व सुन्दरी थीं। उनकी सुन्दरताकी ख्याति दूर-दूरतक फैली थी, जिसे सुनकर दिल्लीका तत्कालीन बादशाह अलाउद्दीन खिलजी लालायित हो उठा और उसने चित्तौड़-दुर्गपर एक विशाल सेनाके साथ चढ़ाई कर दी। उसने चित्तौड़के किलेको कई महीनों घेरे रखा, पर दुर्गके रक्षार्थ तैनात राजपूत सैनिकोंके अदम्य साहस तथा वीरताके चलते कई महीनोंकी घेराबन्दी तथा युद्धके बावजूद भी वह चित्तौड़के किलेमें घुस नहीं पाया। तब उसने कूटनीतिसे काम लेनेकी योजना बनायी और अपने दूतके द्वारा चित्तौड़नरेश रत्नसिंहके पास सन्देश भेजा कि 'हम तो आपसे मित्रता करना चाहते हैं। रानीकी सुन्दरताके बारेमें हमने बहुत सुना है, सो हमें सिर्फ एक बार रानीका मुँह दिखा दीजिये, हम घेरा उठाकर दिल्ली लौट जायँगे।'

यह अपमानजनक सन्देश सुनकर रत्नसिंह आगबबूला हो उठे, पर रानी पद्मिनीने इस अवसरपर दूरदर्शिताका परिचय देते हुए अपने पति रत्नसिंहको समझाया कि 'मेरे कारण व्यर्थ ही चित्तौड़के सैनिकोंका रक्त बहाना बुद्धिमानी नहीं है।'

रानीको अपनी नहीं पूरे मेवाड़की चिन्ता थी। वह नहीं चाहती थी कि उसके चलते पूरा मेवाड़ राज्य तबाह हो जाय और प्रजाको भारी दुःख उठाना पड़े; क्योंकि मेवाड़की सेना अलाउद्दीनकी विशाल सेनाके आगे बहुत छोटी थी। सो उसने बीचका रास्ता निकालते हुए कहा कि रानी प्रत्यक्ष तो उसके सामने नहीं आयेंगी, अलाउद्दीन चाहे तो रानीका मुख आइनेमें देख सकता है।

अलाउद्दीन भी समझ रहा था कि राजपूत वीरोंको हराना बहुत कठिन काम है। बिना जीतके घेरा उठानेसे उसके सैनिकोंका मनोबल टूट सकता है और साथ ही उसकी बदनामी भी होगी, अतः उसने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

चित्तौड़के किलेमें अलाउद्दीनका स्वागत रत्नसिंहने अतिथिकी तरह किया। रानी पद्मिनीका महल सरोवरके बीचोबीच था, अलाउद्दीनको दूरसे आइनेमें रानीके मुखारविन्दका प्रतिबिम्ब दिखाया गया। उनके अनुपम सौन्दर्यको देखकर अलाउद्दीन चकित रह गया और उसने मन-ही-मन रानीको पानेके लिये कुटिल चाल चलनेकी सोच ली। जब रत्नसिंह अलाउद्दीनको वापस जानेके लिये किलेके द्वारतक छोड़ने आये तो उसने अपने सैनिकोंको संकेतकर रत्नसिंहको धोखेसे गिरफ्तार करवा लिया। रत्नसिंहको कैद करनेके बाद अलाउद्दीनने प्रस्ताव रखा कि रानीको उसे सौंपनेके बाद ही वह रत्नसिंहको मुक्त करेगा। रानीने भी कूटनीतिका जवाब कूटनीतिसे देनेका निश्चय किया और उसने अलाउद्दीनको सन्देश भेजा कि 'मैं मेवाड़की महारानी अपनी सात सौ दासियोंके साथ आपके सम्मुख उपस्थित होनेसे पूर्व अपने पतिके दर्शन करना चाहूँगी। यदि आपको मेरी यह शर्त स्वीकार है तो मुझे सूचित करें।' रानीका ऐसा सन्देश पाकर कामुक अलाउद्दीनकी खुशीका ठिकाना न रहा और उस अद्भुत सुन्दरी रानीको पानेके लिये बेताब उसने तुरन्त रानीकी शर्त स्वीकारकर सन्देश भिजवा दिया।

उधर रानीने गोरा तथा बादलके साथ रणनीति तैयारकर सात सौ डोलियाँ तैयार करवायीं और इन डोलियोंमें छः-छः हथियारबन्द राजपूत वीर सैनिक बिठा दिये। डोलियोंको उठानेके लिये भी कहारोंके स्थानपर छाँटे हुए वीर सैनिकोंको कहारोंके वेशमें लगाया गया। इस तरह पूरी तैयारीकर रानी अलाउद्दीनके शिविरमें अपने पतिको छुड़ानेहेतु चलीं। उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डोलीके साथ गोरा तथा बादल-जैसे युद्ध-कलामें निपुण वीर चल रहे थे। अलाउद्दीन एवं उसके सैनिक रानीके काफिलेको दूरसे देख रहे थे। सारी पालकियाँ अलाउद्दीनके शिविरके पास आकर रुकीं और उनमेंसे राजपूत वीर अपनी तलवारें निकालकर यवन-सेनापर अचानक टूट पड़े। इस तरह

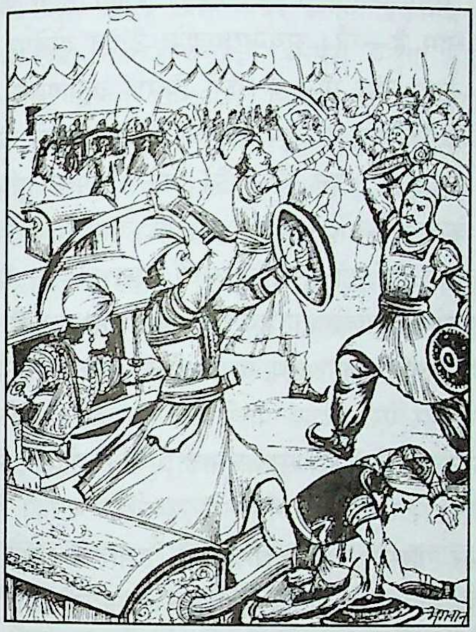

अचानक हमलेसे अलाउद्दीनकी सेना हक्की-बक्की रह गयी और गोरा तथा बादलने तत्परतासे रत्नसिंहको अलाउद्दीनकी कैदसे मुक्त कराकर सकुशल चित्तौड़के दुर्गमें पहुँचा दिया।

इस हारसे अलाउद्दीन बहुत लज्जित हुआ और उसने चित्तौड़पर विजय प्राप्त करनेकी ठान ली। फिर तो भयंकर युद्ध छिड़ गया, किला चारों ओरसे अलाउद्दीनके सैनिकोंसे घिरा था, बाहरसे किलेमें कोई खाद्य-सामग्री आ नहीं सकती थी, अतः युद्धके कारण किलेमें खाद्य-सामग्रीका अभाव हो गया। राजपूतों तथा वीरांगनाओंने अलाउद्दीनकी अधीनता स्वीकार करनेसे आत्मबलिदान दे देना ठीक समझा। ऐसी कठिन परिस्थितिमें राजपूत सैनिकोंने केसरिया बाना पहनकर युद्ध करने और वीरांगनाओंने दहकती चितामें प्रवेशकर जौहर करनेका निश्चय किया। जौहरके लिये गोमुखके उत्तरवाले मैदानमें एक विशाल चिताका निर्माण किया गया। रानी पद्मिनीके नेतृत्वमें सोलह हजार राजपूत रमणियोंने गोमुखमें स्नानकर तथा अपने सम्बन्धियोंको अन्तिम प्रणामकर जौहर-चितामें प्रवेश किया। थोड़ी ही देरमें देवदुर्लभ सौन्दर्य अग्निकी लपटोंमें स्वाहा होकर कीर्ति-कुन्दन बन गया। जौहरकी ज्वालाकी लपटोंको देखकर अलाउद्दीन खिलजी भी हतप्रभ हो गया। महाराणा रत्नसिंहके नेतृत्वमें केसरिया बाना धारणकर तीस हजार राजपूत सैनिक किलेके द्वार खोल भूखे सिंहोंकी भाँति खिलजीकी सेनापर टूट पड़े। भयंकर युद्ध हुआ, गोरा और उसके भतीजे बादलने अद्भुत पराक्रम दिखाया। बादलकी आयु उस वक्त सिर्फ बारह वर्षकी ही थी। उसकी वीरताका एक गीतकारने इस तरह वर्णन किया—

बादल बारह बरस रो, लड़ियों लाखां साथ।
सारी दुनिया पेखियो, वो खाडा वै हाथ॥

इस प्रकार छः माह सात दिनके खूनी संघर्षके बाद विजयकी असीम उत्सुकताके साथ खिलजीने चित्तौड़-दुर्गमें प्रवेश किया, लेकिन उसे एक भी पुरुष-स्त्री या बालक जीवित नहीं मिला, जो यह बता सके कि आखिर विजय किसकी हुई और जो उसकी अधीनता स्वीकार कर सके। उसके स्वागतके लिये बची तो सिर्फ जौहरकी प्रज्वलित ज्वाला और क्षत-विक्षत लाशें तथा उनपर मँडराते गिद्ध-कौवे। रत्नसिंह युद्धके मैदानमें वीरगतिको प्राप्त हुए और रानी पद्मिनी राजपूत नारियोंकी कुल-परम्पराकी मर्यादा और

अपने कुलगौरवके रक्षार्थ जौहरकी ज्वालाओंमें जलकर स्वाहा हो गयीं, जिसकी कीर्तिगाथा आज भी अमर है और सदियोंतक आनेवाली पीढ़ीको अपने आत्मसम्मानके लिये गौरवपूर्ण आत्मबलिदानकी प्रेरणा प्रदान करती रहेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिव्य गुणोंसे युक्त प्राणी—गौ

(श्रीबाबूलालजी शर्मा)

भारतवर्षकी सबसे प्राचीनतम, पवित्र एवं सत्य विद्या 'वेद' है, जिसमें समस्त विद्या-विषयोंका शाश्वत-ज्ञान समाहित है और यह अपौरुषेय है, नित्य है।

वेदमें देवों एवं ऋषियोंद्वारा गौकी महिमाका गुणगान अपार श्रद्धा, प्रेम एवं भक्तिके साथ हुआ है। ऋषियोंका गौके प्रति अगाध लगाव एवं प्रेम था।

वेदमें गायको परम ऐश्वर्य माना गया है और कहा गया है—हे मनुष्यो! ये जो गायें हैं, ये ही परम ऐश्वर्य हैं—

'इमा या गावः स जनास इन्द्रः।'

(ऋग्वेद ६। २८। ५)

अथर्ववेदकी ऋचामें कहा गया है कि जो पुरुष गौको ठोकर मारता है और सूर्यकी ओर मुख करके मूत्रोत्सर्ग करता है, ऐसे मनुष्यको मैं जड़-मूलसे नष्ट करता हूँ, जिससे वह इस प्रकारका अपमानजनक कार्य न करे—

'यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम्॥'

(अथर्ववेद १३। १। ५६)

ऋषियों-मुनियोंद्वारा गोपालन, गोसेवाके साथ ही गोप्रदत्त पंचगव्य—गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, गोमूत्र और गोमय (गोबर)-का परीक्षण और विश्लेषणकर विविध प्रकारके रोगोपचारमें उनकी गुणवत्ताके आधारपर भारतीय औषध-प्रणालीका आविष्कार हुआ था।

सामवेदकी ऋचामें कहा गया है—**'मातरः सर्वभूतानाम्।'** अर्थात् गाय पृथ्वीके समस्त प्राणियोंकी माता है। अतः वह पूजनीय एवं आदरणीय है।

ऐसी मान्यता भी है कि दूध देनेवाले पशु विशेषकर गाय, जिसका दूध आहारके रूपमें प्रयोग किया जाता है, सत्त्वगुणी प्राणी है, जो दुग्धाहार देकर निःस्वार्थ-भावसे उपकार करनेवाली है। हिन्दू सद्ग्रन्थोंमें गोपूजाका तथा गायमें देवताओंका वास होनेका उल्लेख मिलता है।

भविष्यपुराणमें 'गौ' की उत्पत्तिके विषयमें ऐसा लिखा है कि समुद्रमन्थनसे पाँच गौएँ उत्पन्न हुईं, जिनके नाम हैं—नन्दा, सुभद्रा, सुरभि, सुशीला तथा बहुला—ये पाँचों शुक्लवर्ण हैं और देवताओंकी तृप्ति तथा लोकोपकारके लिये उत्पन्न हुई हैं। इन पाँचों धेनुओंको महर्षि जमदग्नि, भरद्वाज, वसिष्ठ, असित और गौतमने देवताओंसे ग्रहण किया। इसी कारण इनमें देवताओंका वास माना गया है। भगवान् सूर्यदेवकी एक किरण, जो प्रधान मानी जाती है, उसका नाम है—गौ। सूर्यनारायणके उदित होनेपर उनकी ज्योति, आयु और गौ—ये तीनों किरणें ब्रह्माण्डके समस्त प्राणियोंमें विभिन्न मात्रामें प्रविष्ट होकर उनमें चेतनाका संचार करती हैं। इन किरणोंसे 'गौ' नामक पुष्टिवर्धक किरण केवल गौओंद्वारा ही ग्रहण की जाती है और उसका घनीभूतसार हमें गो-दुग्धके रूपमें सुलभ होता है।

गायोंको लोकमाता एवं कामधेनु कहा गया है। इनका आविर्भाव लोकोपकार तथा देवताओंकी तृप्तिके लिये हुआ।

गौ ही ऐसा दिव्य प्राणी है, जिसकी रीढ़की हड्डीमें 'सूर्यकेतुनाडी' होती है। सूर्यकेतुनाडी सूर्यकिरणोंको आकर्षित करती है। ये सूर्यकिरणें गौरक्तमें स्वर्णक्षार बनाती हैं। यही स्वर्णक्षार गोरसमें भी विद्यमान है, इसलिये गायका दूध, मक्खन, घी आदि पदार्थ स्वर्णिम आभावाले होते हैं।

संसारके प्राचीनतम ग्रन्थों—वेदोंमें उनकी पूज्यताका उल्लेख है। दीपावलीके बादके दिन—गोवर्धनकी पूजाके दिन गायकी पूजा विधिपूर्वक की जाती है। गायको अत्यन्त पवित्र माना जाता है। गायमें सभी तीर्थोंका वास है।

भगवान् श्रीकृष्णने **'धेनूनामस्मि कामधुक्'** (गीता १०। २८) 'धेनुओंमें मैं कामधेनु हूँ', कहते हुए गौको अपनी विभूति बताया है। भगवान् श्रीकृष्ण पवित्र गोरोचनका तिलक लगाया करते थे। भगवान्‌का गौओंके प्रति अपार प्रेम तथा उनके गोपालन, गोचारण एवं गोसेवाके प्रसंग शास्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं। हिन्दू-धर्ममें देवोंका दुग्धाभिषेक करना महान् फलदायी बताया गया है। भारतदेशमें गौको 'गोमाता' कहकर आदर दिया जाता है। रसोईघरमें भोजन तैयार होनेपर सर्वप्रथम अग्निको जिमाकर गायका भाग गोग्रास निकालकर उसको खिलाया जाता है, यह परम्परा पुरातन कालसे चली आ रही है। इन दिव्य गुणोंसे युक्त होनेके कारण भारतदेशमें समस्त पशु-प्राणियोंमें गायको ही सर्वश्रेष्ठ लोकोपकारक प्राणी माना जाता है। ऋषिजनोंने ईश्वर-ध्यान, योगाभ्यास तथा यज्ञादिके साथ-साथ गोपालन, गोसेवा तथा गोशुश्रूषा करते हुए अपना सम्पूर्ण जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यतीत किया और वे परमलक्ष्य—मोक्षको प्राप्त हुए। हिन्दू सद्‌ग्रन्थ इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

गायसे प्राप्त होनेवाला प्रकृतिका बहुमूल्य उत्पाद गोरोचन, जो पूजन, तिलक तथा औषधिके कार्यमें आता है, अत्यन्त पवित्र एवं पुण्यप्रद है। गोप्रदत्त 'पंचगव्य'—दूध, दही, घी, गोमूत्र और गोबर अनेक प्रकारके रोगोंके उपचारमें तथा कायशोधनादिके कर्ममें प्रयुक्त होता है। महर्षि चरक, सुश्रुत, धन्वन्तरि, निघण्टु, वाग्भट तथा अन्य अनेकों आयुर्वेदाचार्योंके रचित शास्त्रोंमें पुरातनकालके महर्षियोंका रोगोपचार-सम्बन्धी पंचगव्य-प्रयोगका सन्दर्भ उपदेशके रूपमें देखने एवं पढ़नेको मिलता है।

भारतीय शास्त्रोंमें 'पंचगव्य' के दिव्य गुणयुक्त होने तथा रोगोपचारमें इसके चमत्कारी प्रभावको दिखाया गया है। यहाँ पंचगव्यके गोदुग्ध आदि द्रव्योंका संक्षेपमें विवेचन दिया जा रहा है—

(१) गायका दूध—गोदुग्धके देवता 'सोम' माने गये हैं। 'सोम' को अमृत भी कहा जाता है। 'गाय'का दूध अमृतके समान गुणकारी तथा अत्यन्त सुपाच्य होता है, इसके दूधमें ३.५ से ४ प्रतिशततक चिकनाई होती है, जबकि भैंसके दूधमें ५.५ से ६ प्रतिशततक चिकनाई होती है। भैंसके दूधमें कॉलस्ट्राल होता है, जो रक्त-धमनियोंमें जम जाता है तथा दिलके दौरे (हार्ट अटैक)-का कारण बनता है। इसके विपरीत गायके दूधमें स्वर्णिम आभावाला 'कैरोटिन' तत्त्व (पदार्थ) होता है, जो शरीरमें स्वर्णधातुकी पूर्ति करता है। गोदुग्धका पीलापन या स्वर्ण-जैसी आभा उसमें निहित 'स्वर्ण तत्त्व' ही है। स्वर्ण 'हृदयरोग' के निदानके लिये अति आवश्यक तत्त्व है, अतः 'गाय' का दूध और घी हृदयकी शिकायतोंके लिये सुरक्षा कवच है।

गायका दूध कायाको निरोगी रखनेवाला तथा बुद्धिवर्धक है। महाभारतमें 'यक्ष' का प्रश्न 'अमृत क्या है?' प्रत्युत्तरमें युधिष्ठिर कहते हैं—गायका दूध 'अमृत' है। पुरातन कालसे देवताओं, ऋषियों, मुनियों, योगियों, तपस्वियोंका प्रधान आहार 'गोदुग्ध' ही रहा है।

(२) गायका दही —गोदधिके देवता 'वायु' माने गये हैं। दही और छाछ (मट्ठा) उदरके लिये 'अमृत' तत्त्व हैं और पाचन-तन्त्रको व्यवस्थित एवं सामान्य रखनेमें इनका विशेष महत्त्व है।

गायका तक्र वात, पित्त और कफ—तीनों दोषोंका शमन करनेवाला उत्तम पथ्य, भूखको बढ़ानेवाला, रुचिकारक, मेधाजनक, बवासीर आदि उदर रोग-विकारोंको दूर करनेवाला होता है। मट्ठा नेत्र-विकारोंको दूर करता है, प्राणोंकी रक्षा करता है, रक्त और मांसवर्धक है। मट्ठेमें विटामिन 'ए' पाया जाता है, जो नेत्रोंके लिये बहुत लाभदायक है। 'मट्ठा' अपनी खटाससे वातका, मधुरतासे पित्तका और कषैलेपनसे कफका शमन करता है, अतः इसे त्रिदोषनाशक माना गया है। जिस प्रकार देवताओंके लिये अमृत भोजन है, उसी प्रकार पृथ्वीलोकके मनुष्योंके लिये मट्ठा हितकारी एवं अमृतके समान है। संस्कृतमें मट्ठेको तक्र कहते हैं।

गायके मक्खनके गुण—गायका मक्खन हितकारी, वृष्य, वर्णको उत्तम करनेवाला, बलकारी, अग्निप्रदीपक, ग्राही और वात-पित्त-रक्त-विकार, क्षय, बवासीर, लकवा तथा खाँसीको नष्ट करता है। मक्खन बालक एवं वृद्धोंके लिये विशेष हितकारी है। बच्चोंके लिये तो अमृतकी तरह है।

(३) गोघृत—गायका घी विशेषकर नेत्रोंके लिये हितकारी, वृष्य, अग्निप्रदीपक, पाकमें मधुर, शीतल, वात-पित्त तथा कफनाशक, बुद्धि-लावण्य-कान्ति-ओज तथा तेजकी वृद्धि करनेवाला, बलवर्द्धक, पवित्र, आयुवर्द्धक, मंगल रसायन, सुगन्धयुक्त, रुचिवर्धक, सुन्दर और सम्पूर्ण घृतोंमें उत्तम है।

गोघृतके देवता 'सूर्य' माने गये हैं। गोघृतको देवताओं एवं महर्षियोंने और आयुर्वेद-विज्ञानियोंने पवित्र, दिव्य गुणोंसे युक्त, परम रसायन, पापोंकी शुद्धि करनेवाला शरीरको हृष्टपुष्ट, बलयुक्त बनाकर आयुकी वृद्धि करनेवाला बताया है। गोघृतको 'अमृत' माना गया है। समस्त ब्रह्माण्डमें गायका घी ही एकमात्र ऐसी पवित्र अनुपम आदित्यरसायन है, जिसमें अधिकतम प्राणवायु-निर्माणकारक रसायनतत्त्व विद्यमान रहते हैं। गोघृत शरीरके ऊतकोंके लिये ऊर्जा और पोषक तत्त्वोंका प्रमुख और समृद्ध स्रोत है।

गोघृतके सेवनसे शरीरकी रोगप्रतिरोधक शक्ति आश्चर्यजनक रूपसे सुधर जाती है और हृदयाघातकी सम्भावना कम हो जाती है। यह हृदयसे मस्तिष्क-कोशिकाओंतक रक्तके माध्यमसे ऑक्सीजन पहुँचानेमें मदद करता है और उन्हें मृत होनेसे रोकता है। अतः नश्यक्रियाद्वारा गोघृतका नासिकामें प्रयोग करते रहना चाहिये, चाहे सूँघकर अथवा तरलरूपमें एक-दो बूँद। यह विस्मृति तथा मस्तिष्क-सम्बन्धी रोगोंको दूर करता है तथा दृष्टि और श्रवणसे सम्बन्धित रोगोंके लिये भी लाभप्रद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताया गया है। गोघृत पुराने संक्रमणकारी रोगोंके लिये सशक्त प्रतिरोधक है। यह अनिद्रा, नींदमें श्वसन-अवरोध, अत्यधिक निद्रा, करवटें बदलते रहना, पैरोंमें विचित्र प्रकारके अनुभव इत्यादिको दूर करता है।

गोघृत अपने प्राणवायुकारक गुणोंके कारण पैरोंके तलवेपर लगानेसे मस्तिष्क, आँखों, छाती, पेट, अँगुलियोंके अग्रभाग और पाँवकी संवेदनाओंका संचालन करता है। 'प्राणवायु'की कमीसे छाती, हृदय एवं फेफड़ोंपर तनाव पड़ता है, जो 'गोघृत' से सामान्य हो जाता है।

जिन्हें निद्रा नहीं आती हो, वे नासिका-पुटोंमें गायका घी लगायें, उनकी नींदमें सुधार अवश्य होगा।

'नाभि' में गायके घीकी एक बूँद डालकर उसे दाहिने और बाँयें अनामिकासे घुमाकर मालिश की जाय तो व्यक्तिके शरीरकी प्रतिरोधक शक्ति उच्च और तेज रहेगी।

घीके गुणोंको अनिर्वचनीय माना गया है, इसी कारण यज्ञ-अनुष्ठान, देवपूजन, मांगलिक, धार्मिक कार्यों तथा सायंकालीन हवन एवं दीप प्रज्वलित करनेमें गायके घीका प्रयोग शुभ माना गया है। यह वातावरणकी शुद्धि करता है। हवनमें दी गयी गोघृतकी आहुति एवं जड़ी-बूटी—वनस्पति सामग्री तथा अन्नादि जौ, तिल वायुद्वारा आकाशमें सूक्ष्मरूपमें जाकर दूषित वायुको दूरकर पर्यावरणकी शुद्धि बनाये रखते हैं। यज्ञका एक उद्देश्य पर्यावरणकी शुद्धि बनाये रखना भी है।

(४) गोमूत्र—'गोमूत्र' चरपरा, कड़ुवा, तीक्ष्ण, खारा, हल्का, अग्निप्रदीपक, बुद्धि बढ़ानेवाला, पित्तकारक और कफ, वात, शूल, गुल्म, उदररोग, खुजली, नेत्ररोग, मुखरोग, खाँसी, कोढ़, श्वास, सूजन, कामला तथा पाण्डुरोगनाशक है। कानमें डालनेसे यह कानके रोगको दूर करनेवाला है। गोमूत्रका पान करनेसे खुजली, किलास (कोढ़), शूल (दर्द), मुखरोग, नेत्ररोग, खाँसी, गलित कुष्ठ, उदर रोग, कृमि और पाण्डुरोग नष्ट होते हैं।

गोमूत्रके देवता वरुण माने गये हैं। गोमूत्र परम रसायन है, पथ्य है, हृदयको आनन्द देनेवाला, बल-बुद्धिको बढ़ानेवाला, दीर्घ आयु प्रदान करनेवाला, रक्तके समस्त दोषोंको दूर करनेवाला, हृदयरोग और विषके प्रभावको दूर करनेवाला तथा सर्वरोगनाशक है। सत्त्वगुणवाला होनेसे यह विचारोंमें सात्त्विकता लाता है तथा रजोगुण और तमोगुणको नष्ट करता है। यह मूत्र, पसीना एवं मलके द्वारा विजातीय द्रव्यों—विषोंको बाहर निकालता है। आयुर्वेदके अनुसार इसमें पाँच रस होते हैं—कटु, तिक्त, कषाय, मधुर और लवण। यह रोगाणुनाशक, संक्रमणनाशक एवं विषैले प्रभावोंका निवारण करनेवाला है। गोमूत्रको गंगाके समान पवित्र बताया गया है।

(५) गोमय—इसके देवता 'अग्नि' बताये गये हैं। गायके गोबर-गोमूत्रसे हमें कृषिके लिये आवश्यक खाद प्राप्त होती है। ऐसी खाद, जिसे देनेके बाद कीटनाशक डालनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। गायके गोबरकी खादसे उत्पादित सामग्री रोगरहित, पौष्टिक एवं सुस्वादु होती है। गाय यदि बंजर जमीनपर रहती है तो वह जमीन भी गायके गोबर एवं मूत्रसे उपजाऊ हो जाती है। गायके गोबरमें सब गुण हैं, जिनसे पर्यावरणको प्रदूषणमुक्त रखा जा सकता है। इसके कारण कोई विकिरणीय दुष्प्रभाव नहीं होता, यह कीटाणुनाशक है, त्वचा-सम्बन्धी रोगोंका गोबरके उपचारसे निदान हो सकता है। इसमें घाव भरनेकी अद्भुत क्षमता है।

जो दिव्य गुण एवं विशेषता 'गौ' के दूध, दही, घी, मूत्र और गोमय (गोबर)-में है, वह विशेषता अन्य किसी भी पशुसे प्राप्त होनेवाले द्रव्यमें नहीं है। पाश्चात्य देशोंने भी इस तथ्यको स्वीकार किया है। इटली देशमें अब भी हैजा, अतिसारके रोगीको पानीमें गौका ताजा गोबर घोलकर (गोमयरस) पिलाते हैं और जिस तालाबके पानीमें हैजेके जन्तु उत्पन्न हो गये हों, उसमें गायका गोबर डालते हैं। उनका अनुभव है कि इससे हैजेके जन्तु तुरन्त मर जाते हैं।

सभी प्रकारके प्रायश्चित्तोंमें, धार्मिक अनुष्ठानोंके कार्योंमें, यज्ञादि कार्योंमें पंचगव्यप्राशनका विधान है। वेदों, पुराणों, धर्मशास्त्रों एवं आयुर्वेद-ग्रन्थोंमें 'पंचगव्य' की निर्माण-विधि एवं सेवन-विधिका वृत्तान्त मिलता है।

पंचगव्यप्राशनका मन्त्र इस प्रकार है—'**यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके। प्राशनात् पञ्चगव्यस्य दहत्वग्निरिवेन्धनम्॥**' अर्थात् त्वचा, मज्जा, मेदा और हड्डियोंतक जो पाप मुझमें प्रविष्ट हो गये हैं, वे सब इस 'पंचगव्य' के प्राशन करनेसे वैसे ही नष्ट हो जायँ, जैसे प्रज्वलित अग्निमें सूखी लकड़ी डालनेपर वह भस्म हो जाती है।

गोमूत्र, गोमय, गोदुग्ध, गोदधि और गोघृतका एक निश्चित अनुपातमें तैयार मिश्रण 'पंचगव्य' कहलाता है। जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—पंचमहाभूत सृष्टिके आधार हैं, वैसे ही स्वस्थ, सुखी, विकाररहित जीवनके आधार गोप्रदत्त ये पाँच अमूल्य द्रव्य हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृद्धजनहिताय-सर्वजनसुखाय

(श्रीइन्द्रमलजी राठी)

१. मत बोलो—यदि आप मीठा नहीं बोल सकते।

२. मत सुनो—यदि आप अपनी एवं अपनोंकी बुराई/आलोचना नहीं सुन सकते।

३. मत देखो—यदि आप अच्छा एवं कटु सत्य नहीं देख सकते।

४. मत सोचो—यदि आप भला एवं अच्छा नहीं सोच सकते।

५. यथासम्भव मौन रहिये। आवश्यक होनेपर ही न्यूनतम मीठे शब्दोंमें अपने भाव व्यक्त कीजिये और वह भी सामनेवालेकी मनोदशा देख एवं समझकर। वृद्धावस्थामें आपके प्रत्येक शब्द/भावका बहुधा विपरीतार्थ ही लिया जाता है। वाणीका संयम सुखी जीवनका मूलाधार है।

६. आदेशात्मक भाषासे सदैव ही बचिये। माँगनेकी प्रवृत्तिका यथासम्भव ही नहीं, वरन् पूर्णतः त्याग करिये। अपनी देह एवं स्वास्थ्यका दायित्व उस परमपितापर छोड़ दीजिये, वह आपकी अपरिहार्य आवश्यकताओंकी आपूर्ति अवश्य करेगा।

७. जब मिले, जैसा मिले और जितना मिले, बिना किसी प्रकारकी आलोचनाके ईश्वरका प्रसाद मानकर ग्रहण करिये। भोजनमें किसी प्रकारका खोट न निकालिये, घृणित दृष्टिसे अमृत भी विष बन जाता है।

८. अपना एवं अपने क्रिया-कलापोंका परिवारके सदस्योंपर न्यूनतम भार डालनेका प्रयास कीजिये। अपनी आवश्यकताओंको घटाते रहिये, फिर देखिये घरमें भी आपको वैराग्यमय जीवनका आनन्दोपभोग प्राप्त होगा।

९. उपेक्षा तथा अपमान—इन दोनों स्थितियोंमें यथासम्भव कोई प्रतिक्रिया मत कीजिये। मान-सम्मान जीवनमें जितना मिलना था मिल गया, अब तो देहाभिमानसे रहित होनेका समय आ गया है, इसलिये अस्मिता-बोधका परित्यागकर उस परम प्रभुकी शरण ग्रहण कीजिये, जिसने आपको यहाँतक पहुँचा दिया है। भजन एवं नाम-जप सब प्रकारके दुःखोंसे छुटकारा पानेका एकमात्र उपाय है।

१०. प्रेम देकर प्रेम, शान्ति देकर शान्ति एवं मान देकर मान लें। घृणा देकर घृणाकी ओर न बढ़ें।

११. अपने भीतर झाँकिये। स्वदोष देखकर उनसे यथाशीघ्र छुटकारा पा लीजिये। दूसरोंका दोषदर्शन सबसे बड़ा पाप है। अपनेपर इसका भार न लादिये। दूसरोंमें दोष देखनेपर वे दोष अपने अन्दर आ जाते हैं, अतः दैनिकचर्यामें बहुत सावधान रहनेकी आवश्यकता है।

१२. यथासम्भव अपने दैनिक क्रिया-कलापोंमें नियमितताका अनुपालन कीजिये। शक्तिके अनुसार प्रातःभ्रमण अवश्य करिये। सामर्थ्यानुसार प्राणायाम एवं सूक्ष्म व्यायाम आपको चुस्त एवं दुरुस्त रखनेमें बड़ा भारी योगदान देगा।

१३. दृढ़ इच्छाशक्ति एवं सकारात्मक सोचसे शारीरिक मानसिक एवं भौतिक रोगोंपर विजय प्राप्त कीजिये।

१४. मनकी एकाग्रताके लिये गहरा श्वास लेते हुए उसके साथ अपने इष्टका मन्त्र-जप कीजिये। इष्ट अथवा इच्छित विग्रहका मानसिक दर्शन करते हुए हरिनाम जपिये। हरिनामसे बड़ा और कोई सहारा नहीं है।

१५. श्रीमद्भगवद्गीताके बारहवें अध्यायके श्लोक-संख्या तेरह-चौदह* का मनन कीजिये और उसे अपने जीवनमें उतारनेकी चेष्टा कीजिये, परम शान्ति प्राप्त होगी।

१६. निजी सामर्थ्य एवं शक्तिके अनुसार सेवा अवश्य कीजिये। जो भी कार्य करें, उसे परमपिताकी सेवा मानकर उसीको समर्पित कर दीजिये। कर्तव्यबुद्धिसे किया गया अपना देहसम्बन्धी प्रत्येक कार्य भी उस परम प्रभुकी सेवा ही है। [प्रे०—श्रीरामेश्वरलालजी तापड़िया]

---

* अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च। निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः। मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥ (गीता १२। १३-१४)

भगवान् कहते हैं—जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहंकारसे रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है तथा जो योगी निरन्तर सन्तुष्ट है, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है—वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमीका प्रलाप

(श्रीरमेशजी दूबे, बी०ए०, विशारद)

प्यारे मोहन! लोगोंका कहना है कि तुम्हें पाना अत्यन्त कठिन है। अवश्य है, क्यों न हो? यदि कहीं तुम्हारा मूल्य धनसे आँका जाता, तब तो तुम आज किसी गगनचुम्बी प्रासादकी शोभा बढ़ाते होते, जगन्नाथ होते हुए भी केवल नामके ही जगन्नाथ रह जाते; क्योंकि जो बिक गया, वह नाथ कैसा? किंतु तुम बिके ही कहाँ? धनके द्वारा खरीदना तो दूर रहा, बेचारे धनी पुरुष तो धनी होनेके नाते तुम्हारे राज्यमें घुसने भी नहीं पाते। ईसामसीह कहते हैं—

It is easier for a camel to go through the eye of a needle than for a rich man to enter into the kingdom of heaven. (Bible, N. Testament Mathew 19, 24)

'एक ऊँटके लिये सूईके छेदसे पार हो जाना सरल है, किंतु एक धनी मनुष्यके लिये ईश्वरके राज्यमें प्रवेश पाना उसकी अपेक्षा बहुत कठिन है।'

तो फिर तुम मिलोगे किसे? मान लिया, तुम्हारा मूल्य धनसे नहीं आँका जा सकता तो क्या फिर राज्यके आधारपर आँका जाता है? यदि ऐसा होता तो तुम किसी महाराजाधिराजकी सभामें बैठकर आनन्द उड़ाते होते।

नहीं, कदापि नहीं! शासक तुम्हें कैसे पा सकते हैं? वे तो केवल दूसरोंपर ही शासन करना जानते हैं, स्वयंपर नहीं। ज्ञात हो गया, नाथ! तुम्हारा मूल्य राज्य भी नहीं हो सकता; फिर आखिर मिलोगे भी किसीको?

स्मरण हो आया, तुम्हारा नाम दीनबन्धु है। भला, बन्धुको बन्धु क्यों न पायेंगे? दीनबन्धु दीनोंको न मिलेगा तो किसे मिलेगा? दीनोंको तुम मिलोगे और दीन ही तुम्हें पायेंगे। तुम तो उन्हींसे ठीक रहते हो, जो केवट बनकर खरी-खोटी सुना देते हैं, शबरी बनकर जूठे बेर खिला देते हैं, व्रजकी गोपिका बनकर ***'छछिया भर छाछ पर'*** सरे बाजार नचाते हैं। तुम्हें इसीमें आनन्द मिलता है, तभी तो उन्हीं गोपिकाओंकी याद करके कहते हो—***'ऊधौ! मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।'*** नाथ! उस व्रजमें वह कौन-सा रहस्य छिपा है, जिसके लिये तुम इतने उत्सुक रहा करते हो? बताओ तो सही! मैं तुम्हींसे पूछ रहा हूँ।

मैं तो तुमसे पूछ रहा था, पर बीचमें ही यह कौन गाने लगा—

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥
(रा०च०मा० २।१३७।१)

समझा—तुम्हें 'प्रेम' प्यारा है, प्रेम ही तुम्हारा मूल्य है। त्रिलोकीनाथ होनेपर भी तुम प्रेमके अधीन हो। प्रेमके सामने तुम्हारी एक भी नहीं चलती। 'सर्वेश होकर भी सदा तुम प्रेमवश्य प्रसिद्ध हो'—के अनुसार तुम्हें प्रेमका अनुशासन मानना ही पड़ेगा—

गावैं गुनी, गनिका गन्धर्व औ सारद, सेष सबै गुन गावैं।
नाम अनन्त गनन्त गनेस-ज्यों ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावैं॥
जोगी, जती, तपसी अरु सिद्ध, निरन्तर जाहि समाधि लगावैं।

लगाते रहें समाधि, तुम्हें नहीं पायेंगे; क्योंकि वे प्रेम-प्रदेशके बाहर हैं। उस प्रेमनगरीमें प्रवेश पानेपर—

ताहि अहीरकी छोहरियाँ, छछियाभरि छाछपै नाच नचावैं॥

परब्रह्म, सर्वव्यापक, अनादि, अनन्त, कर्ता, भर्ता, हर्ता आदि सम्पूर्ण उपाधियाँ प्रेम-प्रदेशमें घुसते ही तुमसे छीन ली गयीं और बदलेमें क्या मिला? थोड़ी-सी छाछ ओर एक छोटा-सा नाम 'कन्हैया'; फिर भी तुम प्रसन्न हो? सच है, तुम्हारी प्रसन्नता वस्तु, क्रिया अथवा बाह्याडम्बरसे नहीं, प्रत्युत भावपूर्ण समर्पणसे प्राप्त होती है। तभी तो तुमने राजा दुर्योधनके वैभव-विलासपूर्ण आतिथ्यको ठुकराकर विदुर-पत्नीके हाथसे केलोंके छिलके खाकर परमतृप्तिका अनुभव किया। कन्हैया! लोग कहते हैं कि तुम्हारा दर्शन पानेके लिये प्रेम-मन्दिरमें पहुँचना होता है।

मोहन! पर बताओ तो तुम्हारा वह प्रेम-मन्दिर है कहाँ, जहाँ प्रेमके वशमें हो तुम भक्तोंको अपना सब कुछ सौंपकर निश्चिन्त हो जाते हो? मान लिया कि—

जपमें, तपमें, योग-क्रियामें निर्गुण जो कहलाते हो।
वही प्रेम-मन्दिरमें आकर सगुण रूप बन जाते हो॥

प्यारे! ले न चलो मुझे भी वहाँ! मैं भी वहाँ पहुँचकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारा दर्शन कर लूँ।

क्या कहा? 'अपने हृदयमें खोजो?' नाथ! मैं क्या सुन रहा हूँ? मेरा हृदय आपका प्रेममन्दिर? नहीं, नहीं प्रभो! इस उर-प्रदेशमें तो कुवासनाओंका आधिपत्य है। घोर अन्धकारपूर्ण इस मानस-प्रदेशमें तो चोरोंका बोलबाला है। बेचारा चंचल मन भी उन्हींके साथ मारा-मारा फिरता है। आज यदि वह कंचनके लोभमें जा रहा है तो कल किसी कामिनीकी रूप-सुधा पीनेके लिये दौड़ रहा है। प्यारे! इस चंचल मनको अवकाश कहाँ कि अपनेमें तुम्हारे प्रेमको रख सके?

इसीलिये तो कह रहा हूँ, एक बार चले आओ इस अन्धकारपूर्ण मानस-प्रदेशमें। तुम्हारे आनेमात्रसे कुवासनाएँ भाग जायँगी, अन्धकार दूर हो जायगा, चोर छिप जायँगे और चंचल मन शान्त हो जायगा।

प्यारे मोहन! प्यारे प्रेमदेव! क्या कभी होगी ऐसी स्वर्णवेला, जब तुम उसी भुवनमोहनी मुसकानके साथ मेरे हृदय-मन्दिरमें ***'मोर मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल'*** से सुशोभित हो विराजोगे और मैं मस्त होकर गाऊँगा—

'या लकुटी अरु कामरियापर, राज तिहूँ पुरकौ तजि डारौं।'

सफल-जीवन बनिये!

(श्रीसाँवरमलजी सुरेका, बी०कॉम०)

संयत व्यवहार रेशमकी एक ऐसी डोरी है, जो सभी कल्याणमयी भावनाओंको एक लड़ीके रूपमें आबद्ध करती है। मानव-जीवनकी सफलता संयत व्यवहारमें ही निहित है। लक्ष्य या किसी निश्चित उद्देश्यको लेकर अग्रसर होनेवाले मनुष्यका जीवन ही संयत और सुखी होता है।

'यदि मैं असफल हो गया तो?' बस, इसी सन्देह और अविश्वासने अनेकों व्यक्तियोंका जीवन उजाड़ दिया है, यदि हम आशापूर्ण ढंगसे सोचना आरम्भ कर दें, सन्देह और आशंकाको हृदयसे निकाल दें तो सचमुच जीवन ही बदल जाय। हम तभी असफल होते हैं, जब अपनी योग्यतापर सन्देहकर आत्मविश्वास छोड़ बैठते हैं। हमें अपने जीवनको आशा और उल्लाससे परिपूर्णकर आत्म-विश्वासके साथ जीवनके लक्ष्यभूत कार्योंकी ओर सतत बढ़ते रहना चाहिये। सत्य तो यह है कि विश्वास ही हमें सच्चे अर्थोंमें जीना सिखाता है। आत्म-विश्वास हमारे लिये उस अमर शक्तिके द्वार खोल देता है, जहाँसे जीवनका प्रवाह बहता है।

वही जीवन सफल है, जो सर्वदा आशाकी किरणोंसे लहलहाता रहता है, जिसमें निराशाके तमसावृत बादलोंको कोई स्थान नहीं होता। जीवनमें निराशा, हार, असफलता एवं दुःखोंकी प्राप्तिपर घबरानेसे काम नहीं चलेगा; प्रत्युत आशा, विश्वास, साहस और दृढ़तासे उनका सामना करना होगा, ठोकर खाकर भी सँभलते रहना होगा, भूल भी हो जाय तो पश्चात्ताप तथा मनोयोगसे उसे सुधारनेका प्रयास करना होगा, तब हार जीतमें बदल जायगी, निराशाके घने बादलोंमें आशाकी किरण-रश्मियाँ जगमगा उठेंगी, असफलता और दुःखकी शुष्क भूमिपर सफलता एवं सुखकी लता-वल्लरियाँ लहलहाकर जीवनको आनन्दसे परिपूर्ण कर देंगी। इसे हमें आत्म-विश्वास एवं साहसका चमत्कार ही कहना होगा।

सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि हम बहुधा निराश हो अपना उत्साह एवं आत्म-विश्वास खो बैठते हैं। यदि हम असफलताओंसे घबरायें नहीं, दुःख-कष्टोंमें भी साहसका सम्बल न छोड़ें, विपत्तिमें भी धीरजसे काम लें तो निश्चय ही हमारे जीवनका प्रवाह सुखोन्मुख होगा, मन आनन्दसे आप्लावित हो जायगा एवं सफलता हमारी सहचरी हो जायगी। अनमने भावसे चलनेवाला पथिक अवश्य ठोकर-पर-ठोकर खाता है, अव्यवस्थित चित्तसे चलनेवाला मनुष्य ही पराजयके गर्तमें गिरता है। ठोकर खाकर सँभलनेकी एवं गिरकर उठनेकी चेष्टा ही सफलताका सोपान है। मनुष्यको बार-बार तन्मय होकर लक्ष्यपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलनेका प्रयास करते रहना चाहिये।

एक विद्वान्के उद्गार हैं—'बीते समयपर आँसू बहाना कायरोंका काम है। परिस्थितियोंको कोसना अपनेको धोखा देना है। इस प्रकारसे अपनी शक्तिका अपव्यय मत कीजिये। सदा नयी आशा, दृढ़ विश्वास एवं साहसका सम्बल लेकर कार्य करते रहिये। सफलताके दीपककी ज्योतिसे निश्चय ही आपका जीवन जगमगा उठेगा।'

यह संसार एक तीव्र बहाववाली पथरीली नदीके समान है, जिसे उत्साह एवं मनोयोगपूर्वक कार्य करते हुए साहस एवं शक्तिसे पार करनेका प्रयास ही विजयका चिह्न है। जीवनको स्वास्थ्य, ऐश्वर्य, शक्ति और ज्ञानसे सम्पन्न एवं परिपूर्ण बनाकर ही हम रोग-शोकरूपी पत्थरोंसे बचकर संसाररूपी नदीको सुगमतासे पार कर सकेंगे। विघ्न-बाधाओंके उपस्थित होनेपर हमारे हृदयमें नवीन उत्साह एवं नयी उमंगोंकी जागृति होनी चाहिये। ये हमारे लिये अभिशाप नहीं, अपितु वरदान हैं। विघ्नोंके रूपमें प्रकृति हमें यह चेतावनी देती है कि हम गलत मार्गपर न चलें, बाधाओंसे न घबरायें। जो परिस्थितियाँ हमारे चारों ओर उपलब्ध हैं, उनका अधिकाधिक सदुपयोग करनेके लिये आवश्यक है कि हम दत्तचित्त होकर अपनी छिन्न-भिन्न शक्तियोंको निश्चित लक्ष्य और उद्देश्यकी ओर केन्द्रित कर दें। अधीरता प्रायः आत्मविश्वासकी न्यूनतासे होती है।

सफलताएँ बिना संघर्ष किये नहीं मिलतीं, कोई भी मंजिल बिना भटके पार नहीं होती, कोई भी उद्देश्य बिना परिश्रम किये पूरा नहीं होता; वस्तुतः जीवनकी सफलताका मूल मन्त्र है—परिश्रम, अध्यवसाय और उद्योग। हमारे सतत प्रयासमें ही जीवनकी सफलता निहित है। सुख, शान्ति, स्वास्थ्य और सम्पन्नता—सभी परिश्रमके अधीन हैं। जीवन उसीका सुखमय एवं सफल है, जो सतत कार्यरत है, सदैव परिश्रम करता रहता है।

मानसिक निर्बलतासे जीवनमें दुःख, निराशा और शुष्कताका समावेश हो जाता है, इसलिये हम आत्माकी शक्तिको समझकर मनको इतना सबल बनायें कि जीवनके संघर्षोंमें विचलित न हो सकें, विघ्न-बाधाओंसे घबरायें नहीं; अपितु हँसते हुए उनका सामना करें। दुःखोंसे जूझना एवं कष्टोंमें मुसकराना सीखें, तभी हम अपने जीवनमें सफल हो सकते हैं।

फूल काँटोंमें फूलता है, धूपके साथ खिलता है, पानीके साथ बढ़ता है और हवाके साथ हँसता है। माली उसे तोड़ता है, परंतु फिर भी वह अपनी सुन्दरता और सुगन्ध नहीं छोड़ता, इसी प्रकार मनुष्यके चारों ओर विघ्न-बाधाओंके काँटे लगे हुए हैं, दुःखोंकी धूपमें उसे तपना पड़ता है, निराशा एवं पराजयकी अशान्तिमें उसे झुलसना पड़ता है; पर यदि वह ऐसे अवसरपर भी पुष्पकी भाँति हँसता, खिलता और मुसकराता रहता है तो जीवनकी कसौटीपर स्वर्णकी तरह खरा उतरता है। किसीके हँसने या रोनेसे संसारका चक्र नहीं रुकता। जिस प्रकार जन्मके साथ ही मृत्यु बँधी है, उसी प्रकार दुःखके साथ सुख, हारके साथ जीत और निराशाके साथ आशा सुनिश्चित है। हँस-हँसकर रहो, चाहे रो-रोकर; यदि संसारमें रहना है तो सभी कुछ सहना पड़ेगा, अतः सफलता एवं बहादुरी इसीमें है कि हँसते हुए कष्टोंका सामना करो।

जीवनकी सफलताके सन्दर्भमें एक बात यह भी ध्यान देनेयोग्य है कि छोटे-छोटे कार्योंको भी तुच्छ या हेय दृष्टिसे न देखें; क्योंकि तुच्छतामें भी महत्ता छिपी रहती है, लघुतामें भी प्रभुताका स्वरूप है। किसी अंग्रेजीके कविने कार्योंका मानवीकरणकर उनकी महत्ताकी अभिव्यक्ति की है—

O small beginnings, you are great and strong,
Based on faithful heart and weariless brain.
You build the future fair, you conquer wrong,
You earn the crown and wear it not in vain.

'विश्वस्त मन एवं अविथकित मस्तिष्कके ओ लघु शुभारम्भो! तुम कितने महान् एवं शक्तिशाली हो। तुम उज्ज्वल भविष्यका निर्माण करते हो। त्रुटियोंपर विजय प्राप्त करते हो, (इतना ही नहीं) तुम विजयश्रीका अर्जनकर उसे अव्यर्थरूपमें धारण भी करते हो।'

जीवनमें सिद्धि या सफलताके लिये पुरुषार्थकी नितान्त आवश्यकता है। सच्ची लगन, परिश्रम एवं उत्साहके साथ कार्य करनेकी इच्छाशक्ति ही पुरुषार्थका स्वरूप है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यके लिये यही उचित है कि परिणाम और फलकी चिन्ता न करके सच्चे मनसे परिश्रम एवं उद्योग करते हुए निरन्तर कर्म करता रहे; क्योंकि पुरुषार्थी स्वयं अपने भाग्यका निर्माता है।

आवश्यकतासे अधिक गम्भीरता मानसिक शक्तियोंका ह्रासकर कार्यक्षमताको नष्ट कर देती है। वही मनुष्य संसारमें प्रसन्न, स्वस्थ और सफल-जीवन बन सकता है, जो काम करते हुए भी प्रसन्न रहता है। परिश्रममें भी मुसकराहटभरा संगीत होना चाहिये। जीवनमें दुःख और निराशाका कोई भी स्थान नहीं है।

उल्लास ही जीवन है, प्रसन्नतामें ही स्वास्थ्य और सफलता है। सफलताके लिये मनुष्यके मनमें सदैव उत्साह रहना चाहिये। उत्साही मनुष्य यदि थक भी जाता है, ठोकरें भी खाता है तो वह रुकता नहीं, आगे बढ़ता ही जाता है। वह अपनी पराजयसे न घबराकर उसे जीतमें बदलनेके लिये उद्योग करता रहता है। ऊँचे उद्देश्योंका आकर्षण उसकी नस-नसमें बिजलीकी-सी शक्ति भर देता है, उसके शरीर और मनमें उत्साहकी अनुपम तरंगें उठने लगती हैं और वह परिवर्धित उत्साह एवं उमंगके साथ अपनी मंजिलकी ओर पुनः अग्रसर होता है। जीवनमें सफलताकी उपलब्धिके लिये हमें चाहिये कि स्थिर बुद्धि और संयत-सुव्यवस्थित चाल-चलनेसे उत्साहके साथ अपनी मंजिलोंकी यात्रा करें।

हमें चाहिये कि अवगुणों एवं बुराइयोंके लिये अपना अन्तर टटोलें तथा दूसरोंका गुण देखकर उन्हें ग्रहण करनेका प्रयास करें। अपने दोषोंको दूर करनेकी चेष्टा करें। यदि हम दूसरोंके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए उन्हें अपने जीवनमें लानेका प्रयास करेंगे तो हमारे दोष एवं अवगुण स्वयमेव घटते चले जायँगे और अन्ततोगत्वा यह बात हमारे जीवनकी सफलतामें सर्वाधिक उपयोगी रहेगी।

प्यारसे दूसरोंके हृदयको जीतो, स्नेहका सभीपर अमिट प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त मनुष्यके हृदयमें आत्म-प्रशंसाकी भी प्रच्छन्न भावनाएँ सदैव रहती हैं। वे अधिक काम कर सकें और हम उनसे अधिक काम करवा सकें, इसके लिये यह आवश्यक है कि हम उनके सत्कार्योंकी सराहना करते हुए उन्हें मीठे स्वरमें प्रेमपूर्वक वह कार्य करनेको कहें, इस प्रकार निश्चित ही हमें अपने प्रयत्नोंमें सफलताकी प्राप्ति होगी तथा हम अपने सहयोगी एवं प्रेमियोंकी संख्यामें वृद्धिकर अपने जीवनमें सफलताकी प्राप्ति कर सकेंगे।

जीवनमें आलस्यका कोई महत्त्व नहीं है। कर्ममय जीवन व्यतीत करना ही सफलताकी सच्ची साधना है। कर्तव्य-कर्मका सम्पादन सभीके लिये आवश्यक है। आलस्य तो मनुष्यकी तामसिक प्रवृत्तियों—निद्रा, प्रमाद, चिन्ता आदिको बढ़ांकर उसकी कर्म-गतिमें अवरोध पैदा करता है। आलस्यका कार्य-सिद्धिसे वैर है; अतः हमें उसका यथासम्भव परित्यागकर सदैव कर्ममय जीवन व्यतीत करनेका प्रयास करना चाहिये।

जिस हृदय-सागरमें प्रत्येक परिस्थितिमें उत्साहकी उत्ताल तरंगें न तरंगित हों, उसे स्पन्दनहीन या गतिहीन जीवन ही समझना चाहिये। उत्साह ही जीवन है और यही हमारी इच्छा एवं कार्यशक्तिको जाग्रत् रखता है। मनमें हारको प्रश्रय न दें; क्योंकि 'मनके जीते जीत है, मनके हारे हार।' मनमें सदैव विजेताका-सा उत्साह रखकर कार्य करते रहेंगे तो सफलता हमारे चरण चूमेगी।

अपनेपर भरोसा करके, अपनी शक्तिको पहचानकर, अपने विचारोंपर दृढ़ रहकर एकाग्रचित्तसे कार्य करना सफलताका उपयोगी साधन है। यदि हम बिना विचारे, शीघ्रतासे, हर किसीके बहकावेसे अपने विचार बदल देते हैं अथवा बिना सोचे-समझे दूसरोंकी बातोंका विश्वासकर अनुसरण करने लग जाते हैं तो इससे कभी बहुत बड़ा धोखा भी हो सकता है, हम अपने सच्चे पथसे भटक भी सकते हैं। मनको एकाग्रकर स्थिर एवं दृढ़ विचारपूर्वक कार्य करनेसे ही सफलता मिलती है।

मनको निराशा और दुःखकी विषम छायासे निकालकर आशा-विश्वास एवं सुखकी आनन्दमयी भावनाओंसे आप्लावित करते हुए विपत्तियोंसे संघर्ष करें और अपने व्यवहार-वाणीको संयत एवं मधुर रखते हुए उत्साह तथा आत्मशक्तिसे कार्य करें तो हम जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें सफलता प्राप्त कर सकेंगे, यह सुनिश्चित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदोंमें राष्ट्रीयता और लोकमंगलकी भावना

(श्रीगदाधरजी भट्ट)

वेद ज्ञान-विज्ञानके अक्षय भण्डार हैं। मानवकी प्राचीन सभ्यता और संस्कृतिके दर्शन करने हैं तो वैदिक साहित्यका अनुशीलन करना चाहिये। वैदिक ग्रन्थोंमें राष्ट्रीयता और लोकमंगलकी भावना कूट-कूटकर भरी हुई है। उदात्त भावनाओंके कारण वैदिक साहित्य काल और देशकी सीमाओंको लाँघकर सार्वकालिक और सार्वदेशिक रूपमें प्रतिष्ठित है।

वेदोंने हमें मातृभूमि-प्रेमकी शिक्षा दी है, अथर्ववेद (१२।१।१२)-का कहना है—**'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः'** अर्थात् भूमि माता है और मैं पृथिवीका पुत्र हूँ। **'नमो मात्रे पृथिव्यै'** (यजु० ९।२२) पृथ्वीमाताको प्रणाम है। वेदमें मातृभूमिको चिन्मय रूपमें देखा गया है। ऋषि कहते हैं **'उप सर्प मातरं भूमिम्'** (ऋक्० १०।१८।१०) मातृभूमिकी सेवा करें। मातृऋण तो रक्तकी एक-एक बूँदसे भी चुकाया नहीं जा सकता।

अथर्ववेदमें पृथ्वी-सूक्तमें भूमिके प्रति अनन्य भक्तिको अभिव्यक्ति दी गयी है। हे पृथ्वी! तुम हमारे पूर्वजोंकी माता हो, तुम्हारी गोदमें जन्म लेकर पूर्वजोंने अनेक विक्रम-पूर्ण कार्य पूर्ण किये हैं—**'यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे'** (अथर्व० १२।५)। पृथ्वीसूक्तमें दीप्ति, बल और उत्तम राष्ट्रको प्रदान करनेकी प्रार्थना की गयी है और कहा गया है कि इस भूमिपर हम अविजित, अक्षत और आघातरहित होकर निवास करें—**'अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम्'** (अथर्व० १२।१।११)।

ऋग्वेदमें आदर्श जनतन्त्रके दर्शन होते हैं। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, उत्थान और संगठनकी चेतनाको इस प्रकार स्वर दिये गये हैं—**'वयः राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः'** (यजु० ९।२३) साथ ही यह बताया गया है कि हम स्वराज्यमें सबके कल्याणके लिये प्रयत्न करेंगे—**'यतेमहि स्वराज्ये'** (ऋक्० ५।६६।६)। वेदमें राष्ट्राध्यक्षसे सदैव राष्ट्र की उन्नतिमें तत्पर रहनेकी कामना की गयी है—**'बृहद्राष्ट्र दधातु नः'** (अथर्व०)। राष्ट्रके निर्वाचित सदस्योंसे अपेक्षा की गयी है कि वे राष्ट्रके अध्यक्षके साथ एक स्वरमें बोलें और राष्ट्राध्यक्ष भी उनके ज्ञान और शक्तिका पूरा उपयोग करें, **'सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः। एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञान माददे'** (अथर्व० ७।१२।२३)।

वेदोंमें व्यक्तिगत स्वार्थोंसे ऊपर उठकर समष्टि-भावनासे प्रेरित होकर सबके मंगलकी कामना की गयी है—**'स्वस्ति पन्थामनु चरेम'** (ऋक्० ५।५१।१५) हम कल्याणके मार्गके पथिक बनें। हमारे हृदय एक समान हों—**'समाना हृदयानि वः'** (ऋक्० १०।१९१।४)। वैदिक शान्तिपाठमें लोक-कल्याणकी भावनाके ऊँचे स्वर मुखरित हुए हैं—**'भद्रं कर्णेभिः श‍ृणुयाम'** (यजु० २५।२१) अर्थात् कानोंसे हम सदा मंगल सुनें। हमारा सब कुछ कल्याणकारी हो—**'सर्वमेव शमस्तु नः'** (अथर्व० १९।९।१४)। हमारे सद्विचार और शुभ अभिलाषाएँ सफल हों, प्रकाशमान् देव हम सबको सन्मार्गपर चलनेकी प्रेरणा दें—**'सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे'** (यजु० १।१)।

वेदोंमें दैन्यभावसे रहित होकर पूर्ण आयुकी कामना की गयी है—**'अदीनाः स्याम शरदः शतम्'** (यजु० ३६।२४)।

मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंने विश्वबन्धुता और एकात्मभावको देखा है—**'मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे'** (यजु० ३६।१८) मित्रकी दृष्टिसे मैं समस्त प्राणियोंको देखूँ। हमसे कोई द्वेष न करे—**'मा नो द्विक्षत कश्चन'** (अथर्व० १२।१।२४)। यह एकात्म दृष्टि ही हमको लोक-मंगलकी चरमावस्थाकी ओर ले जाती है। इसके मूलमें मानवीय आध्यात्मिकता है। यह भारतीय संस्कृतिकी अमर देन है। ऋग्वेद परस्पर सहयोग तथा मैत्रीभावको प्रदर्शित करते हुए कहता है—**'सं गच्छध्वं सं वदध्वम्'** (ऋग्वेद १०।१९१।२) अर्थात् सभीको मिलकर चलना चाहिये और मिलकर बोलना चाहिये। वेद हमें सन्मार्गमें चलनेके लिये प्रेरित करते हैं—**'ऋतस्य पथा प्रेत'** (यजु० ७।४५) अर्थात् सत्यके मार्गपर चलो। हमारा मन शुभ-कल्याणकारी संकल्पवाला बने—**'तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु'** (यजु० ३४।१)। मेरी वाणी मीठी हो जाय और मैं मधुर वचनोंका ही प्रयोग करूँ, इस सम्बन्धमें वेदमें प्रार्थना है—**'मधुमतीं वाचमुदेयम्'** (अथर्व० १६।२।२)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्येष्ठमासके मुख्य व्रतपर्व

(१) वटसावित्रीव्रत

वट देववृक्ष है। वटवृक्षके मूलमें भगवान् ब्रह्मा,

मध्यमें जनार्दन विष्णु तथा अग्रभागमें देवाधिदेव शिव स्थित रहते हैं। देवी सावित्री भी वटवृक्षमें प्रतिष्ठित रहती हैं।[१] वटवृक्ष दीर्घकालतक अक्षय बना रहता है, अतः दीर्घ आयु, अक्षय सौभाग्य तथा निरन्तर अभ्युदयकी प्राप्तिके लिये वटवृक्षकी आराधना की जाती है।

वटवृक्षके नीचे ही सावित्रीने अपने पातिव्रतसे मृत पतिको पुनः जीवित किया था। तबसे यह व्रत वट-सावित्रीके नामसे किया जाता है। ज्येष्ठमासके व्रतोंमें 'वटसावित्रीव्रत' एक प्रभावी व्रत है। महिलाएँ अपने अखण्ड सौभाग्य एवं कल्याणके लिये यह व्रत करती हैं। सभी सौभाग्यवती महिलाएँ श्रद्धाके साथ उत्तर भारतमें ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशीसे अमावास्यातक तथा दक्षिण भारतमें ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशीसे पूर्णिमातक तीन दिनोंका उपवास रखती हैं। यदि तीन दिनतक उपवासका सामर्थ्य न हो तो त्रयोदशीको रात्रिभोजन, चतुर्दशीको अयाचित तथा अमावास्याको उपवास करके प्रतिपदाको पारण करना चाहिये। अमावास्याको एक बाँसकी टोकरीमें सप्तधान्यके ऊपर ब्रह्मा तथा ब्रह्मसावित्री एवं दूसरी टोकरीमें सत्यवान् और सावित्रीकी प्रतिमा स्थापितकर यथाविधि पूजन करना चाहिये। साथ ही यमका भी पूजन करना चाहिये। पूजनके अनन्तर स्त्रियाँ चन्द्रमाको अर्घ्य देनेके बाद वटकी पूजा करती हैं तथा उसके मूलको जलसे सींचती हैं। वटकी परिक्रमा करते समय एक सौ आठ बार या यथाशक्ति सूत लपेटा जाता है।

तदनन्तर चनेपर रुपया रखकर बायनेके रूपमें अपनी सासको देकर आशीर्वाद लिया जाता है। सौभाग्य-सामग्री और पूजा-सामग्री किसी योग्य ब्राह्मणको दी जाती है। सौभाग्यवती स्त्रियोंका भी पूजन होता है। कुछ महिलाएँ केवल अमावास्याको एक दिनका ही व्रत रखती हैं।[२] प्राचीनकालमें सावित्री नामक एक राजकन्याने इस व्रतके प्रभावसे अपने पति सत्यवान्के प्राणोंको यमराजसे पुनः वापस प्राप्त कर लिया था, इसलिये प्रत्येक सौभाग्यवती नारीको यह वट-सावित्रीका व्रत रखकर सावित्री-सत्यवान्की कथा सुननी चाहिये।

(२) गंगादशहरा

गंगाजी देवनदी हैं, वे मनुष्यमात्रके कल्याणके लिये धरतीपर आयीं, धरतीपर इनका अवतरण ज्येष्ठ शुक्लपक्षकी दशमीको हुआ। अतः यह तिथि उनके नामपर गंगादशहराके नामसे प्रसिद्ध हुई—

दशमी शुक्लपक्षे तु ज्येष्ठमासे बुधेऽहनि।
अवतीर्णा यतः स्वर्गाद्धस्तर्क्षे च सरिद्वरा॥

इस तिथिको यदि सोमवार और हस्तनक्षत्र हो तो यह तिथि सब पापोंका हरण करनेवाली होती है—

ज्येष्ठशुक्लदशम्यान्तु भवेत्सौम्यदिनं यदि।
ज्ञेया हस्तर्क्षसंयुक्ता सर्वपापहरा तिथिः॥

ज्येष्ठ शुक्ल दशमी सम्वत्सरका मुख कही जाती है। इस दिन स्नान और दानका विशेष महत्त्व है—

ज्येष्ठस्य शुक्लादशमी सम्वत्सरमुखा स्मृता।
तस्यां स्नानं प्रकुर्वीत दानं चैव विशेषतः॥

इस तिथिको गंगास्नान एवं श्रीगंगाजीके पूजनसे दस

---

१. वटमूले स्थितो ब्रह्मा वटमध्ये जनार्दनः। वटाग्रे तु शिवो देवः सावित्री वटसंश्रिता॥

२. देशभेद, कालभेद एवं उपचारभेदसे वटसावित्रीके अनेक रूप हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकारके पापों* (तीन कायिक, चार वाचिक तथा तीन मानसिक)-का नाश होता है। इसलिये इसे दशहरा कहा गया है—

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता।
हरते दश पापानि तस्माद् दशहरा स्मृता॥

(ब्रह्मपुराण)

इस दिन गंगाजीमें अथवा सामर्थ्य न हो तो समीपकी किसी पवित्र नदी या सरोवरके जलमें स्नानकर अभयमुद्रायुक्त

मकरवाहिनी गंगाजीका ध्यान करे और निम्न मन्त्रसे आवाहनादि षोडशोपचार पूजन करे—

'ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गङ्गायै नमः।'

पूजामें दस प्रकारके पुष्प, दशांग धूप, दस दीपक, दस प्रकारके नैवेद्य, दस ताम्बूल एवं दस फल होने चाहिये। सभी वस्तु दक्षिणासहित दस ब्राह्मणोंको देनी चाहिये।

भगवती गंगा सर्वपापहारिणी हैं। अतः दस प्रकारके पापोंकी निवृत्तिके लिये सभी वस्तुएँ दसकी संख्यामें ही निवेदित की जाती हैं। स्नान करते समय गोते भी दस बार लगाये जाते हैं। इस दिन सत्तूका भी दान किया जाता है।

इस दिन गंगावतरणकी कथा सुननेका विधान है। वह कथा इस प्रकार है—

कथा—भगवान् श्रीरामके एक पूर्वज थे महाराज सगर। महाराज सगर चक्रवर्ती सम्राट् थे, उनकी केशिनी और सुमति नामकी दो रानियाँ थीं। केशिनीके पुत्रका नाम असमंजस था और सुमतिके साठ हजार पुत्र थे। असमंजसके पुत्रका नाम अंशुमान् था। राजा सगरके असमंजससहित सभी पुत्र अत्यन्त उद्दण्ड और दुष्ट प्रकृतिके थे, परंतु पौत्र अंशुमान् धार्मिक और देवगुरुपूजक था। दुःखी होकर महाराज सगरने असमंजसको देश-निकाला दे दिया और अंशुमान्को उत्तराधिकारी बनाया। सगरके अन्य साठ हजार पुत्रोंसे तो देवता भी दुःखी रहते थे।

एक बार महाराज सगरने अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान किया और उसके लिये घोड़ा छोड़ा। इन्द्रने अश्वमेधयज्ञके उस घोड़ेको चुराकर पातालमें ले जाकर कपिलमुनिके आश्रममें बाँध दिया, परंतु ध्यानावस्थित मुनि इस बातको जान न सके। सगरके साठ हजार अहंकारी पुत्रोंने पृथ्वीका कोना-कोना छान मारा, परंतु वे घोड़ेको न पा सके। अन्तमें उन लोगोंने पृथ्वीसे पातालतक मार्ग खोद डाला और कपिलमुनिके आश्रममें जा पहुँचे। वहाँ घोड़ा बँधा देखकर वे क्रोधित हो शस्त्र उठाकर कपिल मुनिको मारने दौड़े। तपस्यामें बाधा पड़नेपर मुनिने अपनी आँखें खोलीं। उनके तेजसे सगरके साठ हजार उद्दण्ड पुत्र तत्काल भस्म हो गये।

गरुडके द्वारा इस घटनाकी जानकारी मिलनेपर अंशुमान् कपिलमुनिके आश्रममें आये तथा उनकी स्तुति की। कपिलमुनि उनकी विनयभावनासे प्रसन्न होकर बोले—अंशुमन्! घोड़ा ले जाओ और अपने पितामहका यज्ञ पूरा कराओ। ये सगरपुत्र उद्दण्ड, अहंकारी और अधार्मिक थे, इनकी मुक्ति तभी हो सकती है जब गंगाजलसे इनकी राखका स्पर्श हो।

अंशुमान्ने घोड़ा ले जाकर अपने पितामह महाराज सगरका यज्ञ पूरा कराया। महाराज सगरके बाद अंशुमान्

* अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः। परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम्॥
पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः। असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्। वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम्॥ (मनु० १२। ७, ६, ५)

अर्थात् बिना दिये हुए दूसरेकी वस्तु लेना, शास्त्रवर्जित हिंसा करना तथा परस्त्रीगमन करना—तीन प्रकारके शारीरिक (कायिक) पाप हैं। कटु बोलना, झूठ बोलना, परोक्षमें किसीका दोष कहना तथा निष्प्रयोजन बातें करना वाचिक पाप हैं और दूसरेके द्रव्यको अन्यायसे लेनेका विचार करना, मनसे दूसरेका अनिष्ट चिन्तन करना तथा नास्तिक बुद्धि रखना मानसिक पाप हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा बने, परंतु उन्हें अपने चाचाओंकी मुक्तिकी चिन्ता बनी रही। कुछ समय बाद अपने पुत्र दिलीपको राज्यका कार्यभार देकर वे वनमें चले गये तथा गंगाजीको स्वर्गसे पृथ्वीपर लानेके लिये तपस्या करने लगे और तपस्यामें ही उनका शरीरान्त भी हो गया। महाराज दिलीपने भी अपने पुत्र भगीरथको राज्यभार देकर स्वयं पिताके मार्गका अनुसरण किया। उनका भी तपस्यामें ही शरीरान्त हुआ, परंतु वे भी गंगाजीको पृथ्वीपर न ला सके। महाराज दिलीपके बाद भगीरथने ब्रह्माजीकी घोर तपस्या की। अन्तमें तीन पीढ़ियोंकी इस तपस्यासे प्रसन्न हो पितामह ब्रह्माने भगीरथको दर्शन देकर वर माँगनेको कहा। भगीरथने कहा—हे पितामह! मेरे साठ हजार पूर्वज कपिलमुनिके शापसे भस्म हो गये हैं, उनकी मुक्तिके लिये आप गंगाजीको पृथ्वीपर भेजनेकी कृपा करें। ब्रह्माजीने कहा—मैं गंगाजीको पृथ्वीलोकपर भेज तो अवश्य दूँगा, परंतु उनके वेगको कौन रोकेगा? इसके लिये तुम्हें देवाधिदेव भगवान् शंकरकी आराधना करनी चाहिये। भगीरथने एक पैरपर खड़े होकर भगवान् शंकरकी आराधना करनी शुरू कर दी। उनकी तपस्यासे भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और उन्होंने ब्रह्माजीके कमण्डलुसे निःसृत गंगाको अपनी जटाओंमें रोक लिया और उसमेंसे एक जटाको पृथ्वीकी ओर छोड़ दिया। इस प्रकार गंगाजी पृथ्वीकी ओर चलीं। अब आगे-आगे राजा भगीरथका रथ और पीछे-पीछे गंगाजी। मार्गमें जह्नुऋषिका आश्रम पड़ा, गंगाजी उनके कमण्डलु, दण्ड आदि बहाते हुए जाने लगीं। यह देख ऋषिने उन्हें पी लिया। कुछ दूर जानेपर भगीरथने पीछे मुड़कर देखा तो गंगाजीको न देख वे ऋषिके आश्रमपर आकर उनकी वन्दना करने लगे। प्रसन्न हो ऋषिने अपनी पुत्री बनाकर उन्हें अपनी जाँघसे निकाल दिया। इसलिये देवी गंगा 'जाह्नवी' नामसे भी जानी जाती हैं। भगीरथकी तपस्यासे अवतरित होनेके कारण उन्हें 'भागीरथी' भी कहा जाता है।

इसके बाद भगवती भागीरथी गंगाजी मार्गको हरा-भरा शस्य-श्यामल करते हुए कपिलमुनिके आश्रममें पहुँचीं, जहाँ महाराज भगीरथके साठ हजार पूर्वज भस्मकी ढेरी बने पड़े थे। गंगाजलके स्पर्शमात्रसे वे सभी दिव्यरूपधारी हो दिव्य लोकोंको चले गये।

(३) निर्जला एकादशी

ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी एकादशी निर्जला एकादशी कहलाती है। अन्य महीनोंमें एकादशीको फलाहार करते हैं, परंतु इस एकादशीको फल तो क्या जलकी एक बूँद भी ग्रहण नहीं करनेका विधान है। इस प्रकार यह एकादशी ग्रीष्म-ऋतुमें बड़े कष्ट और तपस्यासे की जाती है। अतः अन्य एकादशियोंसे इसका महत्त्व सर्वोपरि है। इस एकादशीके करनेसे आयु और आरोग्यकी वृद्धि तथा उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है। महाभारतके अनुसार अधिमाससहित एक वर्षकी छब्बीस एकादशी न की जा सकें तो केवल निर्जला एकादशीका ही व्रत कर लेनेसे पूरा फल प्राप्त हो जाता है।

निर्जला व्रत करनेवालेको अपवित्र-अवस्थामें आचमनके सिवा बिन्दुमात्र भी जल ग्रहण नहीं करना चाहिये। यदि किसी प्रकार जल उपयोगमें ले लिया जाय तो निर्जलव्रत भंग हो जाता है।

निर्जला एकादशीको सम्पूर्ण दिन-रात निर्जलव्रत रहकर द्वादशीको प्रातः स्नान करना चाहिये तथा सामर्थ्यके अनुसार सुवर्ण और जलयुक्त कलशका दान करना चाहिये। इसके अनन्तर व्रतका पारायणकर प्रसाद ग्रहण करना चाहिये। इस व्रतकी कथा इस प्रकार है—

कथा—पाण्डवोंमें भीमसेन शारीरिक शक्तिमें सबसे बढ़-चढ़कर थे। वे जन्मजात शक्तिशाली तो थे ही, नागलोकमें जाकर वहाँके दस कुण्डोंका रस पी लेनेसे उनमें दस हजार हाथियोंके समान शक्ति हो गयी थी। इस रसपानके प्रभावसे उनकी भोजन पचानेकी क्षमता और भूख भी बढ़ गयी थी। सभी पाण्डव तथा द्रौपदी एकादशियोंका व्रत करते थे, परंतु भीमके लिये एकादशीव्रत दुष्कर थे। अतः व्यासजीने उनसे ज्येष्ठ मासकी शुक्लपक्षकी एकादशीका व्रत निर्जल रहते हुए करनेको कहा तथा बताया कि इसके प्रभावसे तुम्हें वर्षभरकी एकादशियोंके बराबर फल प्राप्त होगा। व्यासजीके आदेशानुसार भीमसेनने इस एकादशीका व्रत किया। इसलिये यह एकादशी 'भीमसेनी एकादशी' के नामसे भी जानी जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्त-चरित—

महान् सन्त स्वामी रामतीर्थ

(श्रीनारायणजी स्वामी)

भारत विश्वके अति भाग्यशाली देशोंमें शीर्षपर है, जहाँ सनातन कालसे महान् सन्तों तथा महापुरुषोंका आविर्भाव होता रहा है।

अठारहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें संयुक्त पंजाबमें एक ऐसे ही महान् विद्वान् सन्तका जन्म हुआ, जो कालान्तरमें

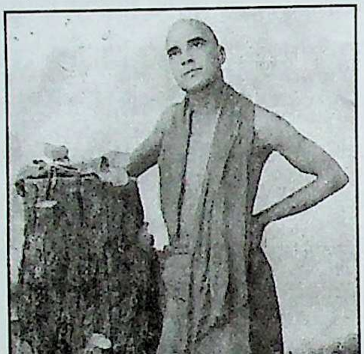

स्वामी रामतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुए। वे उच्च कोटिके विद्वान् होनेके साथ ही अर्थशास्त्रके गहन अध्येता भी थे। प्रथम श्रेणीमें एम०ए० तककी शिक्षा प्राप्तकर संन्यास धारण करनेसे पूर्व वे पंजाब विश्वविद्यालयमें कुछ समयके लिये प्रोफेसर भी रहे थे। स्वामी रामतीर्थका जन्म २२ अक्टूबर १८७३ ई० (दीपावलीके आगामी दिवस)-को ग्राम मुरलीवाला, जिला गुजराँवाला-पंजाबमें गोस्वामी कुलमें गोसाईं हीरानन्दके यहाँ हुआ। इनके बचपनका नाम तीर्थराम था। रामतीर्थके जन्मके बाद उनकी साध्वी स्वभावकी माताका निधन हो गया। ऐसा सुना जाता है कि रामतीर्थका जन्मलग्न देखकर ज्योतिषियोंने भविष्यवाणी की थी 'यह बालक सांसारिक सुख-दुःखकी उपेक्षाकर परमानन्द-सागरकी तरंगोंपर तैरेगा और सांसारिक प्रेमानन्दको पार करके ईश्वरी प्रेमके अथाह और अनन्त जलमें निमग्न होगा। संसारका पर्यटन करेगा और केवल अपने वंशकी ही नहीं, अपितु भारतभूमिके इतिहासको नये सिरेसे सुनहरा चोला पहनायेगा।'

तीर्थरामकी प्रारम्भिक शिक्षा उनके जन्म-ग्राम मुरलीवालाके सरकारी वर्नाक्युलर प्राइमरी स्कूलमें हुई। मदरसेके प्रधानाध्यापक मौलवी मोहम्मद अली थे, जो तीर्थरामके मेधावीपनपर आश्चर्यचकित थे। तीर्थरामने स्कूली किताबोंके अतिरिक्त फारसी भाषामें गुलिस्ताँ तथा बोस्ताँ भी पढ़ डाली। आरम्भिक शिक्षाके बाद तीर्थराम गुजराँवाला हाई स्कूलमें प्रविष्ट हुए, जो उनके जन्म-ग्रामसे सात मीलकी दूरीपर था। वहाँ उन्होंने अंग्रेजीकी स्पेशल क्लासमें प्रवेश लिया। लगभग दस वर्षकी आयुमें उनके पिता हीरानन्दने उनका विवाह कर दिया, जिसपर उन्होंने कहा था, 'मुझे आपने अल्पायुमें किस जंजालमें फँसा दिया?'

तीर्थराम रूठकर कॉलेजमें प्रविष्ट होनेके लिये लाहौर चले गये। उनके पिता उन्हें आगे पढ़ाना नहीं चाहते थे, इसी कारण वे वर्षभर अपने गाँव नहीं गये और स्कूलमें प्रथम रहनेके कारण नगरपालिका गुजराँवालासे मिली छात्रवृत्तिसे एफ०ए० तक अपना निर्वाह करते रहे। एफ०ए० के दूसरे साल (सेकेण्ड ईयर)-में कठिन परिश्रमके कारण वे प्रायः बीमार रहने लगे तथापि सन् १८९० ई० में एफ०ए० की परीक्षामें वे अपने कॉलेजमें प्रथम रहे, फलस्वरूप उन्हें सरकारी छात्रवृत्ति भी मिली। उन्होंने बी०ए० की शिक्षा भी उसी मिशन कॉलेजमें जारी रखी।

कालान्तरमें बी०ए० की परीक्षा पास करनेके बाद वे इसी कॉलेजमें गणित-शिक्षकके पदपर नियुक्त हो गये।

एम०ए० की पढ़ाई उन्होंने १८९३ ई० में गवर्नमेण्ट कॉलेज, लाहौरसे की। जिस वर्ष रामतीर्थने बी०ए० में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया, उससे प्रभावित हो गवर्नमेण्ट कॉलेजके प्रिंसिपल श्रीबैलने पंजाब विश्वविद्यालयकी ओरसे उन्हें उच्च शिक्षाके लिये इंगलैण्ड भेजनेका प्रयास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया था, किंतु उन्होंने वहाँ जानेके प्रति अरुचि दिखायी, जिससे उनके स्थानपर किसी अन्य विद्यार्थीको इंग्लैण्ड भेजा गया। अत्यन्त सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए अपने एम०ए० के अध्ययनकालमें वे काफी समयतक केवल दूधका ही सेवन करते रहे। रामतीर्थने कुछ समय स्यालकोटमें बोर्डिंग हाउसके निरीक्षकके पदपर भी काम किया, बादमें अप्रैल १८८६ ई० में मिशन कॉलेज, लाहौरमें गणितके आचार्य नियुक्त हुए और मई १८९६ ई० तक इस पदपर रहे।

कालान्तरमें उनका मन सांसारिक कार्योंके प्रति कम होता गया और उनमें विरक्तिका भाव उत्पन्न हो गया। १९०१ ई० के प्रारम्भमें उनमें संन्यास-आश्रमकी उत्कण्ठा होने लगी, तब उन्होंने संन्यासी बननेकी अपनी कल्पनाको मूर्तरूप दे दिया। द्वारकामठकी गद्दीके द्वारकाधीश श्री १००८ स्वामी शंकराचार्य महाराजने उन्हें यह आज्ञा पहले ही दे रखी थी कि जब अन्त:करणकी मस्ती बहुत वेगसे फूटे तो गंगातटपर संन्यास ले लेना। तीर्थरामने इस आदेशका स्मरणकर नारायणदास स्वामीको बार-बार नाई बुलाने तथा कपड़े रँगनेहेतु गेरू आदि लानेकी आज्ञा दी। अन्ततः नापित बुलाया गया और रामके आज्ञानुसार नारायणदासजी तथा लाला तुलारामने कपड़े रँगे। श्रीगंगाजीके प्रवाहमें खड़े होकर रामने यज्ञोपवीत आदिको गंगाजीकी धारामें बहा दिया और काफी समयतक ॐ का उच्चारण करते हुए गेरुए वस्त्र धारण कर लिये। अब संन्यास धारण करनेके बाद उनका नाम तीर्थरामके स्थानपर रामतीर्थ हो गया। १४ जून १९०१ ई० को स्वामी रामतीर्थ टिहरीसे लगभग छः मील दूर गंगातटके समीप समरौली गुफामें रहने लगे। समरौली गुफामें कुछ मास रहनेके पश्चात् आपने १६ अगस्त १९०१ ई० को नारायणदास और तुलारामजीको साथ लेकर यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, त्रियुगीनारायण, केदारनाथ तथा बदरीनाथकी यात्रा की। फिर ५ सितम्बर १९०१ ई० को जन्माष्टमीपर यमुनोत्तरी मन्दिरमें पहुँचे।

विदेशोंकी यात्रा—जुलाई १९०२ ई० को समाचार पत्रोंमें समाचार छपा कि 'शिकागोकी तरह जापानमें भी संसारभरके सब धर्मोंकी रिलीजन्स-कांफ्रेंस शीघ्र होगी, उसमें भारतके सब धर्मों एवं सम्प्रदायोंके लीडरोंको निमन्त्रित किया गया है, इत्यादि।' टिहरीके महाराज समाचार-पत्रमें यह संवाद पढ़ते ही स्वयं अखबार हाथमें लिये तत्काल स्वामीजीके पास पहुँचे और उन्हें समाचार पढ़कर सुनाया और स्वामीजीसे निवेदन किया कि 'यदि आप-जैसे श्रीमान् महात्मा इस धर्म-महोत्सवमें विराजमान हों तो भारतका भी नाम रह जायगा, वेदान्तका तत्त्व भी इधर-उधर खूब फैलेगा और इस सम्मेलनकी ख्याति भी भलीभाँति हो जायगी।' महाराजकी इस प्रार्थनापर स्वामीजी जापान जानेके लिये तत्काल उद्यत हो गये। स्वामी राम कभी एक कौड़ीतक अपने पास नहीं रखते थे। इसलिये महाराजने स्वयं ही जहाजके भाड़े आदिका सारा प्रबन्ध करवा दिया। प्रबन्ध होनेपर स्वामीजी टिहरीसे कलकत्ताकी ओर चल दिये। २८ अगस्त, १९०२ ई० को जहाजपर सवार होकर आपने जापानको प्रस्थान किया और अक्टूबरके प्रथम सप्ताहमें जापानके योकोहामा बन्दरगाह पहुँचे। जापानके अल्पकालीन प्रवासके दौरान स्वामीजीने कई शिक्षण-संस्थाओंमें व्याख्यान दिये। टोकियो कॉलेजमें सफलताका रहस्य (Secret of Success) व्याख्यानका अनेक जापानी विद्यार्थियों तथा प्रोफेसरोंपर गम्भीर प्रभाव पड़ा। इसके पश्चात् स्वामीजी प्रोफेसर छत्रेके प्रार्थना करनेपर अमेरिका चले गये। अमेरिकामें जहाँ बिना टैक्स दिये किसी प्रकार उत्तम उपदेश सुननेको नहीं मिलता, वहाँ रामस्वामीने बिना किसी प्रकारका टिकट लगाये अति उत्तम और उपयोगी विषयोंपर लगातार व्याख्यान दिये और लगभग कई मासतक प्रतिदिन उनके व्याख्यान होते रहे। सैनफ्रांसिस्को केलिफोर्नियाका प्रसिद्ध कस्बा तथा बन्दरगाह है। सैनफ्रांसिस्कोमें स्वामीजी डॉक्टर एलबर्ट हिल्लरके पास रहे। डॉक्टर महोदयने स्वामीजीको पूरे डेढ़ वर्ष अपने पास रखा और तन-मन-धनसे उनकी सेवा की और अपना बँगला केवल उनके लिये सुरक्षित कर दिया। वहाँके लोगोंने स्वामीजीकी प्रेरणापर कई सोसाइटियाँ बनायीं, जिनका उद्देश्य गरीब भारतीयोंको शिक्षाके लिये अमेरिकामें हर प्रकारकी सहायता करना था। समाचार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रोंके संवाददाताओंने स्वामीजीकी ईसा मसीहकी तरह फोटो लेकर Living Christ has come to America 'अमेरिकामें जीवित ईसा मसीह आया हुआ है' शीर्षकसे प्रकाशितकर स्वामीजीकी प्रशंसामें कई लेख लिखे। अमेरिकाके प्रेसिडेंटने भी उनके दर्शन किये। न्यूयार्कके एक समाचार-पत्रने लिखा था (जैसा कि लाहौरके ट्रिब्यूनने प्रकाशित किया था) कि अमेरिकामें एक विचित्र भारतीय साधु आया हुआ है, जो किसी धातुको सिवाय अपनी ऐनकके नहीं छूता, अपने साथ भोजनकी कोई सामग्री नहीं रखता। जब सैर करने निकलता है तो एक सामान्य कपड़ेमें कई-कई दिन अत्यन्त शान्त-शीत स्थानोंमें घूमता रहता है। जब व्याख्यान देता है, तो दिनमें कई बार और एक बारमें तीन-तीन घण्टा लगातार बोलता रहता है। उसका रूप और उसकी छवि बड़ी ही मनोहर है।

अमेरिकामें एथिस्ट सोसायटी (नास्तिक समाज)-की एक विदुषी लेडी रामके पास बहस करनेकी इच्छासे आयी। अमेरिकाका एक समाचार-पत्र लिखता है कि राम बादशाह उस समय समाधिमें थे। (उस समाधि-अवस्थाकी फोटो भी संवाददाताने उस पत्रमें छपवा दी थी।) नास्तिक लेडी जबतक राम समाधिकी अवस्थामें थे, चुपचाप बैठी रही। समाधि खुलनेके बाद तर्कके लिये उत्सुक लेडीने मौन भंग किया और बोली—'माई लार्ड! मैं नास्तिक नहीं हूँ, आपके दर्शनसे मेरा सन्देह दूर हो गया।'

मिसेज वैल्मैन अमेरिकाकी एक अत्यन्त प्रेममयी लेडी थी। रामकी ॐ की ध्वनियोंको सुनकर ऐसी आसक्त हुई कि वह अपनी पश्चिमी वेशभूषाको त्यागकर संन्यासिन बन गयी और भारतवर्षके संन्यासियोंकी तरह वह भी बिना नकदी साथ लिये केवल ईश्वरपर सब प्रकारका भरोसा रखती हुई देश-विदेश विचरण करने लगी और रामके प्रेममें मतवाली होकर अमेरिकासे भारत आयी। रामकी जन्मभूमिके दर्शन करनेके लिये मुरलीवाला गाँव (जिला गुजराँवाला)-में गयी और उस छोटे गाँवको देखकर प्रफुल्लित हुई। मिसेज वैल्मैनके अतिरिक्त कई अन्य महिलाएँ भी अमेरिकासे भारत आयीं और उन्होंने रामकी जन्मभूमि देखी।

स्वदेश-आगमन—लगभग ढाई वर्ष विदेशोंमें वेदान्तका प्रचार करके स्वामी राम भारत लौटे। ८ दिसम्बर १९०४ ई० को वे बम्बई पहुँचे। अक्टूबर १९०५ ई० में जब स्वामी हरिद्वार पधारे तो वहाँ कुछ दिन ठहरनेके बाद उनका शरीर ऐसा रोगग्रस्त हो गया कि वे लगातार आठ दिनतक बिछौनेसे उठ न सके। स्वास्थ्य और शक्तिलाभके बाद स्वामी राम हरिद्वारसे ऋषीकेश आ गये। वहाँसे चलकर मार्च १९०६ ई० में वसिष्ठ आ गये और वसिष्ठमुनिकी गुफामें आसन जमा दिया।

महाप्रयाण—उत्तराखण्डके टिहरी पहाड़में लोग अत्यधिक शीतके कारण प्राय: प्रतिदिन स्नान नहीं करते। टिहरी नगरसे दो मील दूर एक पटियान गाँव है। रसोइया उसी गाँवका ब्राह्मण था। बताया जाता है कि स्वामी रामका अन्तिम लेख, जिसमें उनकी लेखनीसे यमराजके नाम आदेश भी था, उनकी मेजपर खुले पन्नोंमें विशृंखल पाया गया था। उनके रसोइयेने बताया था कि गंगातटपर जानेसे कुछ घण्टे पूर्व स्वामीजी इन कागजोंपर कुछ लिख रहे थे। रसोइयेने कहा—महाराज! आज मैं भी स्नान करके भोजन करूँगा। आपको स्नान कराकर मैंने नहानेका विचार किया था। स्वामीजीने कहा—प्यारे! आज तुम्हारे स्नान करनेका क्या कारण है? मैंने (रसोइयाने) उत्तर दिया। महाराज! पहले तो आज दीपमाला है, दूसरे संक्रान्ति और तीसरे अमावस्या। ऐसे पर्वके दिन मैं स्नान करके ही भोजन करूँगा। पहले वे (रामतीर्थ) ऊपर जल मँगवाकर स्नान करते थे, परंतु इस उत्तरको सुनकर उन्होंने कहा आज ऐसा भारी पर्वका दिन है तो राम भी गंगाकिनारे जाकर स्नान करेगा। इस तरह कागजोंको मेजपर छोड़कर ही दोनों साथ चले। स्नान करते हुए कुछ ही मिनट बाद स्वामीजीके जलमें बह जानेकी घटना हुई। स्वामी रामतीर्थका शरीर दीपमालिकाके दिन १७ अक्टूबर १९०६ ई० (कार्तिक कृष्ण १५ सं० १९६३)-को मध्याह्नके समय टिहरीनरेशके सिमलासु बगीचेके नीचे भृगुगंगामें बह गया। स्वामीजीका शरीर एक सप्ताह पश्चात् जलके ऊपर तैरकर आया। शरीर उस समय समाधिस्थ-अवस्थामें था। स्वामीजीके शवको एक सन्दूकमें बन्द करके गंगाको अर्पण करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय पत्थर सन्दूकके बाहर लटकाये जानेके कारण गंगाघाटसे कोई सौ फीटकी दूरीपर जाकर एक बड़ी चट्टानसे टकराकर सन्दूक उलटकर फट गया और शव पत्थरोंके नीचे दब गया। यह देखकर सबने कहा—रामकी ऐसी ही इच्छा बहुत कालसे थी। राम तो इसी स्वाभाविक दशामें गंगाकी लहरोंपर सवारी करना चाहते थे। इसी दशामें गंगासे मिलाप करना और उनकी मछलियोंकी भेंट होना उन्हें भाता था। इस प्रकार यह महान् सन्त मात्र तैंतीस वर्षकी अल्प आयुमें महाप्रयाण कर गया।

स्वामी रामतीर्थ एक सच्चे संत थे, उनके जीवन-चरित और कार्योंसे प्राणियोंका महान् उपकार हुआ है। उनके कुछ उपदेश इस प्रकार हैं—

उपदेश—परिणामके लिये चिन्ता मत करो, लोगोंसे कुछ भी आशा न रखो; अपने कामपर अनुकूल अथवा प्रतिकूल आलोचनाके विषयमें व्याकुल मत होओ।

अपने चित्तको शान्त रखो, अपने मनको शुद्ध विचारोंसे भर दो। तब कोई भी आपके विरुद्ध खड़ा नहीं हो सकता। ऐसा दैवी विधान है।

यदि आप मनुष्यकी पूजा करें; दूसरे शब्दोंमें, यदि आप मनुष्यको मनुष्य नहीं, ईश्वररूप मानें; यदि आप सभीको ईश्वररूप, परमात्मरूप समझें और इस प्रकार मनुष्यकी उपासना करें तो यह ईश्वरकी उपासना होगी।

प्रेमका अर्थ है व्यवहारमें अपने पड़ोसियोंके साथ, उन लोगोंके साथ जिनसे आप मिलते-जुलते हैं, एकता और अभेदताका अनुभव करना।

यदि अपने किसी मित्रके विषयमें कोई अयोग्य बात मालूम हो तो उसे भूल जाओ; यदि उसके सम्बन्धमें कोई अच्छी बात मालूम हो तो उसे फौरन कह दो।

जब कभी मनुष्य किसी सांसारिक वस्तुसे दिल लगाता है; जब कभी मनुष्य किसी पदार्थके साथ उसीके लिये प्रेम करने लगता है; जब कभी मनुष्य उस पदार्थमें सुख ढूँढ़नेका प्रयत्न करता है; तभी उसको धोखा होता है। इन्द्रियाँ उसे उल्लू बना देती हैं। आप सांसारिक पदार्थोंमें आसक्ति रखकर सुख नहीं पा सकते। यही दैवी विधान है।

सत्संग, उत्तम ग्रन्थ और भजन-बन्दगी—ये तीन चीजें तीनों लोकोंका राजा बना देती हैं और हमारा कुसंग परमेश्वरको हमसे अप्रसन्न करवा देता है, जिसके कारण हमपर तरह-तरहके कष्ट आते हैं।

[प्रेषक—श्रीदेवव्रतजी वशिष्ठ]

निवेदन

(श्रीपरमानन्दजी प्रभाकर, साहित्याचार्य)

हैं फैलते नित जा रहे शिशुपाल के वंशज यहाँ।
हे कृष्ण! फिर अपना सुदर्शन चक्र आप उठाइये॥
फिर दुशासन द्रौपदी को चाहता बेपर्द करना।
हे कृष्ण! फिर ले 'वस्त्र का अवतार' लाज बचाइये॥

है आज 'भारत' फँस चुका फिर मोह के भ्रम-जाल में।
हे कृष्ण! बनकर सारथी फिर कर्म-पथ दिखलाइये॥
फिर धर्म का मस्तक कुचलकर पाप बढ़ता जा रहा।
हे कृष्ण! फिर से धर्म की सुस्थापना को आइये॥

है साधुता नित मर रही फलती-विहँसती दुष्टता।
हे कृष्ण! आकर साधुता को अंक आप लगाइये॥
है द्वेष, ईर्ष्या और कटुता रोज बढ़ती जा रही।
हे कृष्ण! आकर प्रेम की सुरसरि यहाँ लहराइये॥

है एकता का ह्रास होता जा रहा फिर देश में।
हे कृष्ण! आकर एकता का सौम्य पाठ पढ़ाइये॥
हैं बारूदी बरसात करने को विकल सुरपति यहाँ।
हे कृष्ण! फिर परित्राण को, गिरि को उठाने आइये॥

है आज फिर अध्यात्म की यमुना विषैली हो रही।
हे कृष्ण! 'कालिय' का हरण करने हलाहल आइये॥
हर ओर है आतंक, हाहाकार फैला है यहाँ।
हे कृष्ण! भारत पर कृपा की दृष्टि फिर बरसाइये॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

परदोष और परनिन्दासे बचना चाहिये

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपा-पत्र मिला। जहाँतक बने; दूसरोंके दोष देखने और दूसरोंकी निन्दा करनेसे बचना चाहिये। यदि कहीं किसी कारणवश किसीकी निन्दा हो जाय तो उसके लिये चित्तमें पश्चात्ताप होना चाहिये तथा 'भविष्यमें ऐसा नहीं होगा' इस प्रकारका मनमें दृढ़ निश्चय करना चाहिये। इसी प्रकार अपने बड़े पुरुषोंका कभी तिरस्कार न करके सदा सम्मान करना चाहिये। साधु-स्वभावके साधक ऐसा ही किया करते हैं। महाभारतमें आया है—

अन्यान् परिवदन् साधुर्यथा हि परितप्यते।
तथा परिवदन्नन्यांस्तुष्टो भवति दुर्जनः॥
अभिवाद्य यथा वृद्धान् सन्तो गच्छन्ति निर्वृतिम्।
एवं सज्जनमाक्रुश्य मूर्खो भवति निर्वृतः॥

'साधुलोग दूसरोंकी निन्दा करके जैसे परितप्त होते हैं, दुष्टलोग दूसरोंकी निन्दा करके वैसे ही सन्तुष्ट होते हैं। इसी प्रकार जैसे सत्पुरुष बड़े-बूढ़ोंका अभिवादन करके सुखी होते हैं, वैसे ही मूर्खलोग सत्पुरुषोंकी निन्दा करके प्रसन्न होते हैं।'

दूसरोंके दोषदर्शन, परनिन्दा और वृद्धों तथा सत्पुरुषोंका अपमान करनेमें मनुष्यका अभिमान ही प्रधान कारण है। अभिमानसे जिसकी आँखें चौंधियाई हुई होती हैं, उसे सभीमें दोष दीखते हैं। वह अपनेको तथा अपनी बुद्धिको ही सर्वश्रेष्ठ मानता है; इसलिये सबकी निन्दा करता है तथा सभीका अपमान-तिरस्कार कर बैठता है। मनुष्य यदि अपनी ओर तथा अपने ज्ञानकी ओर यथार्थरूपसे देखे तो उसे पता लगेगा कि अनन्त अपार ज्ञानके समुद्रका एक कण भी उसे प्राप्त नहीं है, वह जन्मभर दिन-रात सीखता ही रहे तो भी ज्ञानका अन्त नहीं आयेगा। उसकी अपेक्षा बहुत अधिक जाननेवाले लोगोंकी इतनी अधिक संख्या है कि उनके सामने उसका कहीं पता ही नहीं लगता, परंतु वे भी सब कुछ जान गये हों, ऐसी बात नहीं है, उनसे अधिक जाननेवाले भी हैं। जिस प्रकार ज्ञानका अभिमान मिथ्या और मूर्खतापूर्ण है, उसी प्रकार धन, अधिकार तथा अन्यान्य पदार्थों या स्थितियोंका अभिमान भी है। धन, अधिकार और उच्च स्थिति आदिका क्या मूल्य है। प्रथम तो वे स्वल्प और अपूर्ण हैं, दूसरे जितने जो कुछ हैं, वे भी अनित्य ही हैं। आज हैं, कल नहीं। ऐसी अवस्थामें उनपर गर्व करना, उनको लेकर अपनेमें उच्चताका आरोप करना और दूसरोंको नीचा समझना वास्तवमें मूर्खता ही है।

मनुष्यको जहाँतक बने, अपने दोष देखने चाहिये, उनके लिये मन-ही-मन अपनी निन्दा करनी चाहिये तथा अपनेको निर्दोष बनानेका सतत प्रयत्न करना चाहिये। सब लोग ऐसा करने लगें तो सभी निर्दोष हो जायँ और समाजका अपने-आप सुधार हो जाय। व्यक्तियोंका समुदाय ही तो समाज है। समाजका प्रत्येक व्यक्ति निर्दोष हो गया तो समाज स्वयमेव निर्दोष हो गया, परंतु भूल तो यही होती है कि मनुष्य अपनी बुराइयोंकी ओर नहीं देखता, अपितु छोटी बुराई भी बहुत बड़ी दीखे, इस प्रकारका चश्मा चढ़ाकर दूसरोंकी बुराइयोंको देखता है, अपने द्वेष, दम्भ और हिंसा-प्रतिहिंसाभरे हृदयमें दूसरोंकी बुराइयोंको मिटानेका प्रयत्न करता है। फलतः बुराइयाँ और भी बढ़ जाती हैं—अपनेमें भी तथा दूसरोंमें भी। इससे सभीकी हानि होती है। साधकको तो बड़ी सावधानीसे इस दोषसे अपनेको बचाना चाहिये। दूसरोंके दोष देखनेका उसे न तो अवकाश मिलना चाहिये और न उसके पास ऐसी आँखें ही होनी चाहिये।

तेरे भावै जो करो भलो बुरो संसार।
नारायण तू बैठ कर अपनो भवन बुहार॥

फिर यदि दूसरेमें कोई दोष दिखलायी दे भी तो वहाँ यह विचार करना चाहिये कि 'सम्भव है, यह दोष इसमें न हो, मेरी दोष-दृष्टिसे ही ऐसा दिखायी देता हो।' बहुत बार हम ऐसा अनुभव करते हैं कि हमने किसी मनुष्यके सम्बन्धमें जो धारणा की थी, वह गलत थी, हमारी ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझकी भूल थी और उस भूलके लिये हम कभी-कभी पश्चात्ताप भी करते हैं। सम्भव है, इस बार भी वैसी ही भूल हुई हो। दूसरे, यह देखना चाहिये कि उसमें जो दोष है, (जैसे वह झूठ बोलता है, चोरी करता है, क्रोध करता है आदि) वही या वैसा ही दूसरा कोई दोष हममें है या नहीं। यदि शान्तवृत्तिसे देखा जायगा तो स्पष्ट दिखलायी देगा कि दूसरोंकी अपेक्षा हममें वैसा दोष बहुत अधिक मात्रामें है—

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न पाया कोय।
जो तन देखा आपना मुझ-सा बुरा न कोय॥

तीसरे, यह सोचना चाहिये कि उसने किस परिस्थितिमें पड़कर यह दोष किया है। उस परिस्थितिमें हम होते तो क्या करते। दूसरेकी आलोचना करना, उसके दोषोंका बखान करना और उपदेशकी बातें कहना जितना सहज है, परिस्थितिमें पड़कर धीरता-वीरताके साथ उससे बच निकलना उतना ही कठिन है। चौथे, यह बात अवश्य विचारणीय है कि हमारा लाभ दूसरोंके दोष देखने, उनकी निन्दा करनेमें है या गुण देखकर उन्हें ग्रहण करनेमें है। इसपर विचार किया जाय तो यह निर्विवाद सिद्ध होगा कि हमारा लाभ गुण देखने और उनके ग्रहण करनेमें ही है।

इन सब बातोंपर विचार करके आप अपनी आदतको ठीक कीजिये। अभी आप नौजवान हैं, आपके सामने आगे बढ़नेके लिये बड़ा विस्तृत क्षेत्र है। दूसरोंकी ओर ध्यान न देकर आप अपनेको सुधारनेमें ही लगे रहिये, इसीमें आपका कल्याण है। × × × शेष भगवत्कृपा।

(२)

पतित होकर पतितपावनको पुकारो

भाई! तुम इतना घबड़ाते क्यों हो? परमात्माकी असीम दयालुतापर विश्वास करो। हम पतित हैं तो क्या हुआ, वे तो 'पतितपावन' हैं। सचमुच पतित बनकर पतितपावनको पुकारो—अशरण होकर अशरणशरणकी शरण हो जाओ। फिर देखो—करोड़ों स्नेहमयी जननीके हृदयोंको भी लजा देनेवाला परमात्माका स्नेह-स्रोत उमड़ता दिखलायी देगा और तुम उसके प्रवाहमें आनन्दरूप होकर बह जाओगे। हालत खराब है तो क्या है? लाख वर्षकी अँधेरी कोठरी प्रकाश आते ही प्रकाशित हो जाती है। यह लाख वर्षकी अपेक्षा नहीं करती। इसी प्रकार भगवान्के शरण होते ही सारे पाप तुरन्त भस्म हो जाते हैं। मनमें दृढ़ता धारणकर भगवान्का स्मरण करो और अपनेको सर्वतोभावेन उनके चरणोंपर न्योछावर कर देनेकी चेष्टा करो। उनकी दयालुतापर विश्वास करो और यह दृढ़ धारणा कर लो कि 'मैं उनका हूँ, उनका अभय-हस्त मेरे मस्तकपर सदा ही टिका हुआ है।' यह भावना जितनी ही बढ़ेगी, उतना ही आनन्द बढ़ेगा। नाम-जपमें मन ऊबता है तो जबरदस्ती कड़वी दवाकी भाँति ही उसका नियमपूर्वक सेवन करो। भगवान्के बलपर मनमें धीरज रखो। आचरणोंको उज्ज्वल बनानेकी कोशिश करो। शेष भगवत्कृपा।

(३)

दहेज-प्रथा

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपा-पत्र मिला। मेरी समझसे अपनी कन्याको दहेज देना बुरी वस्तु नहीं है, अपितु विवाहका एक आवश्यक अंग है; परंतु हिन्दू-समाजमें इस समय जिस प्रकारसे कन्याके पिताको बाध्य होकर दहेज देना पड़ता है, वैसा लेना तो पाप है। पहलेसे सौदा तय किया जाता है, मोल-तोल होता है और कन्याके पितासे अधिक-से-अधिक लूटनेकी चेष्टा की जाती है। परिणामस्वरूप लड़कियाँ युवती हो जाती हैं, उनके विवाह नहीं हो पाते और यदि विवाह हो भी जाता है तो वरके माता-पिताके द्वारा कन्याको अपने माता-पिताके नाम गन्दी गालियाँ सुननी पड़ती हैं। कन्याके अभिभावकोंकी बड़ी बुरी दशा होती है और उन्हें जीवनभर ऋणी रहना पड़ता है। यह प्रत्यक्ष पाप है। इसको दूर करनेका उपाय तो यही है कि वर-पक्षवाले दहेज लेना बन्द कर दें। कम-से-कम सयाने लड़कोंको इस त्यागके लिये तैयार होना चाहिये और प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम अपना विवाह तभी करेंगे, जब दहेज नहीं लिया जायगा। विशेष भगवत्कृपा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपानुभूति

(१)

राम-नामने रक्षा की

मेरे पिताजी बड़े ही आस्तिक विचारोंके व्यक्ति थे। राम-नाममें उनकी गहरी आस्था थी। एक बार उनका कानपुर जाना हुआ, वहाँ गंगाजीके सुरम्य तटपर बहती शीतल वायु और सम्पूर्ण अलौकिक वातावरणमें उनकी एक इच्छा जाग्रत् हुई कि यदि यहाँ १५-२० दिनतक रहने तथा स्नान-ध्यान करनेका अवसर मिल जाता तो कितना अच्छा होता!

कुछ ही समय बाद गंगाजीपर बने पुलके अचानक टूट जानेसे एक रेलगाड़ी डिरेल हो गयी। उसके कई डिब्बे इंजनसहित नदीमें गिर गये, कुछ लटक गये तथा शेष हिस्सा ऊपर ही बच गया। उसे निकालनेके कामका जिम्मा बाबूजीको मिला। अब उन्हें गंगाजीके तटपर ही शिविर लगाकर रहना था। काम काफी लम्बा चला।

इस दौरान घटी एक घटना बाबूजी सुनाते थे। तैरना उन्हें भलीभाँति आता था, वस्तुत: वे एक अच्छे तैराक थे। एक बार स्नान करते समय उन्होंने गंगाजीमें डुबकी लगायी। गंगातटपर ऊपर-नीचे तख्तोंकी शृंखला थी, जिनमेंसे कुछ जलके भीतरतक चले गये थे। स्नान करते समय उन्होंने जैसे ही डुबकी मारी, अनायास ही वे एक तख्तेके नीचे चले गये। इसके बाद जब निकलनेकी कोशिश की तो सिर तख्तेसे टकरा गया। जितनी बार निकलनेकी कोशिश करते हर बार कोई-न-कोई तख्ता सिरसे टकरा जाता। अन्तमें बाबूजीको लगा कि निकलना असम्भव है, तब उन्होंने जीवनका अन्तिम समय जानकर रामनाम लिया, ताकि जीवन सफल हो। अचानक श्रीरामचन्द्रजीका नाम लेते ही उनका सिर तख्तेके नीचेसे हटकर बगलमें आ गया और वे अपने-आप ऊपर निकल आये।

ये सब बातें पिताजी निरन्तर बार-बार बताया करते थे। इससे मेरे मनमें भी स्वाभाविक सहजरूपसे आस्तिकताका संचार हुआ, जिससे विज्ञान और इंजीनियरिंगका विद्यार्थी होते हुए तथा आजके भौतिकवादी परिवेशमें भी मनमें सदैव यह संस्कार बना रहा कि प्रभु श्रीराम सर्वत्र, सबकी रक्षा करते हैं, आवश्यकता है—श्रद्धा-विश्वासपूर्वक नाम-स्मरणकी। ये सब बचपनकी बातें सेवानिवृत्तिके अनेक वर्षोंके बाद भी मनमें गूँजती रहती हैं तथा मनको शान्ति एवं प्रेरणा देती रहती हैं।—**सुरेशचन्द्र**

(२)

जंगलदासपर माता गंगाकी कृपा

घटना लगभग ८०-९० वर्ष पूर्वकी है। मेरे पितामहकी उम्रके लोग इसे सुनाया करते थे। पूर्णिया जिलेमें एक विशाल जंगल था। जंगलके निकट एक गाँवमें एक सम्पन्न कृषक रहते थे। उनके यहाँ जंगलदास नामका एक हलवाहा था। वह प्रतिदिन हल चलाने खेतपर जाया करता था। समयपर दूसरा नौकर उसके लिये जलपान लेकर जाया करता था। खाना-पानी जाते ही जंगलदास अपना कमण्डलु लेकर वृक्षकी ओटमें जाकर स्नान करता और पीनेके लिये पानी लेता आता था। वही पानी पीता था। प्रतिदिन नौकर देरसे लौटता था। इसका कारण पूछनेपर नौकरने कहा—'मालिक! जलपान एवं पानी लेकर जानेके बाद जंगली स्नान करने चला जाता है और वहींसे कमण्डलुमें पानी लाकर वही पानी पीता भी है।'

एक दिन मालिक स्वयं गया। छिपकर देखा कि जलपानके आते ही जंगली स्नान करने चला गया है। मालिकको बहुत क्रोध हुआ और वह जंगलीको अपशब्द कहता हुआ हाथमें डण्डा लेकर मारनेके लिये तत्पर हो गया। पर एकाएक दिमागमें आया कि यह नहाता कहाँ है? जबकि आस-पासमें नदी-तालाब आदि कुछ भी नहीं है? आश्चर्यचकित होकर मालिकने जंगलदाससे पूछा—तुम कहाँ स्नान करते हो, जबकि निकटमें कहीं पानी नहीं है? जंगलदासने आँसू बहाते हुए मालिकका पैर पकड़ लिया और हाथ जोड़कर कहा—मालिक! मुझे मार लीजिये, वेतन काट लीजिये, पर यह कहनेके लिये बाध्य न कीजिये, इससे मेरी बहुत बड़ी क्षति होगी। पर मालिक अपनी बातपर अड़े रहे, अन्तमें जंगलदासने रोते हुए कहा—मैं गंगामाताका एकान्तमें स्मरण करता हूँ तो माता आ जाती हैं। पानीकी धारा बहने लगती है। मैं वहीं स्नान करता हूँ और पानी लाता हूँ। पर यह भेद प्रकट करनेके कारण मेरी पुकारपर अब वे नहीं आयेंगी, पानीका स्रोत भी नहीं बहेगा। आज मेरा सर्वनाश हो गया। यह सुनकर मालिकको बड़ा आश्चर्य हुआ, वह उसकी गंगाके प्रति अनन्य भक्ति देखकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ, उसने उसका कर्ज माफ कर दिया। जंगलके निकट उसके लिये एक घर बनवा दिया। वहीं धीरे-धीरे गाँव बस गया है। इसीसे उस गाँवका नाम जंगलटोला पड़ा।—**अजय कुमार**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

आस्थाकी जीत

भारतकी सनातन संस्कृतिमें आस्था एवं विश्वासका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन गुणोंके आधारपर अनेक दुरूह कार्य सरल हो जाते हैं। अनेक परिणाम सकारात्मक हो जाते हैं, अनेक ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती हैं, जिन्हें साधारण मनुष्य चमत्कार मान लेते हैं। ऐसा ही एक अपना अनुभव में निवेदन कर रहा हूँ—मेरे दादाजी ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे, साक्षरमात्र थे। वे गाँवमें अपनी खेती-बाड़ीके साथ-साथ शौकिया पशु-चिकित्सा किया करते थे। पेड़-पौधोंके गुण-धर्मकी उन्हें बहुत अच्छी जानकारी थी। कुछ पेड़-पौधोंकी सहायतासे और कुछ सिद्धमन्त्रोंकी सहायतासे वे लोगोंको सामान्यत: रोगमुक्त कर देते थे। यह सेवा वे नि:शुल्क किया करते थे, इसलिये उनके पास अपने गाँवके अलावा आसपासके गाँवोंके लोग भी चिकित्साके लिये आते रहते थे। मैं बचपनसे ही उनके पास रहा, इसलिये मुझपर उनकी विशेष कृपा रही। कुछ बातें उन्होंने मुझे भी सिखा दीं, जिनसे लोगोंका भला हो सके और साथ ही मुझे निर्देश भी दे दिया कि सेवा नि:शुल्क करनी है, यदि बदलेमें कुछ लिया तो सब कुछ व्यर्थ हो जायगा।

उनकी मृत्युके बाद गाँवके लोग मुझसे भी अनुरोध करने लगे, मैंने भी संकोचसहित चिकित्सादि कार्य शुरू कर दिया। दादाजीके आशीर्वादस्वरूप लोगोंको लाभ मिलने लगा। मुझे एक कठिनाई आने लगी कि १४ कि०मी० साइकिल चलाकर मैं अपने विद्यालय (गाजियाबाद) जाता था, वहाँ समयसे पूर्व ही पहुँचना मेरी आदत रही, अत: सुबहके समयमें सेवा देनेमें विवश हो जाता था। सायंकाल मैं अवश्य उनकी सेवा कर दिया करता। एक बार ग्रीष्मावकाश चल रहा था, मुझे खेतमें सिंचाई करनी थी और हमारे गाँवमें उस वक्त दोपहर एक बजे बिजली आनेका समय होता था। बिजली आनेपर नलकूप चलवाकर शीघ्र खेतमें पहुँचना पड़ता था, ताकि पानी बीचमें बेकार न हो जाय। जैसे ही एक बजे बिजली आयी। मैं नलकूप चलवाकर खेतकी ओर तेजीसे बढ़ा, थोड़ा चलते ही एक युवकने मुझे रोक लिया और बोला—'मास्टरजी, मुझे तेइया (तीसरे दिन होनेवाला ज्वर) होनेवाला है... आप कृपया ये मिर्च पढ़ दें।' मैं पिसी हुई लाल मिर्चोंको प्राय: अभिमन्त्रित करके रोगीके हाथमें बँधवा देता था। प्रभुकी कृपासे रोगी ज्वरमुक्त हो जाते थे। इस कार्यके लिये मुझे स्वयंकी पवित्रताका पालन करना होता था और प्रात: अथवा सायंकी सन्ध्याके उपरान्त यह कार्य करना होता था, परंतु वह समय भी दोपहरका था और मेरे मस्तिष्कमें सिंचाईका कार्य ज्यादा महत्त्वपूर्ण था तथापि मैं उस युवकको मना नहीं कर सका। मैंने उससे पूछा कि 'ज्वर किस समय होगा?' तो वह सकपकाता-सा बोला, 'जी... तीन बजे।' मैंने वहीं खड़े-खड़े उससे मिर्च लेकर मुँह फेरकर मिर्च अभिमन्त्रित करनेका नाटक-सा किया और कपड़ेमें गाँठ लगाकर युवकको दे दी और कहा—'दायें बाजूमें बाँध लेना।' युवककी मुखमुद्रा एवं आँखोंसे लगा कि वह आभार मान रहा है, परंतु मैं अपने द्वारा किये गये छलके कारण अन्दरसे काँप गया। मुझे लगा कि मैंने उस युवकको धोखा दिया है। मैं अपने खेतपर चला गया और युवक अपने घर चला गया। मेरे मनमें तरह-तरहकी बातें उठने लगीं कि कहीं वह युवक ठीक नहीं हुआ तो लोग मेरा विश्वास नहीं करेंगे...। मैंने अपनी पवित्रताका ध्यान क्यों नहीं रखा? आदि बातें मेरे मन-मस्तिष्कमें घूमती रहीं। सिंचाईका कार्य भी चलता रहा। अब ईश्वरकी लीला देखिये—तपती दोपहरमें मुझे सर्दीका आभास होने लगा और कुछ ही देरमें मुझे तेज ज्वर हो आया। मैंने समय देखा तो तीन बज रहे थे। जैसे-तैसे सिंचाईका कार्य ज्वरमें ही पूरा किया और सायं पाँच बजे घर आया तो मुझे पता चला कि रोगी युवकको तीन बजे ज्वर नहीं हुआ। वह स्वस्थ था और मैंने चूँकि छल किया था, इसलिये बदलेमें मुझे ज्वर हो गया।

मैं अपने कियेपर रुआँसा हो गया, ईश्वरको और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने दादाजीको याद करके इस कृत्यके लिये क्षमा माँगी और भविष्यमें इस भूलको न दोहरानेका संकल्प भी किया तो दो दिनमें स्वस्थ हो पाया। धन्य है उस युवककी आस्था एवं विश्वास!—नरेन्द्र कुमार

(२)

मन्त्र-जपसे पुत्रकी प्राप्ति

बात एक वर्ष पूर्वकी है। मेरे एक मित्र शिक्षा विभागमें क्लर्क हैं। उनकी शादीको सात वर्ष हो गये थे, परंतु ईश्वरने उनको सन्तान नहीं दी थी। उनकी पत्नी आस्तिक एवं धर्मपरायण महिला हैं, परंतु संतान न होनेसे वे बेहद दुःखी रहने लगीं। एक दिन सास-श्वसुरने भी खरी-खोटी कही और पुत्रकी दूसरी शादी करनेकी चर्चा आये दिन होने लगी। पत्नीको जब दूसरी शादीकी चर्चा सुनायी दी तो वह बेचारी दिन-रात रोने लगी और भगवान्‌को कोसने लगी। कुछ दिन गुजरे, जन्माष्टमीका पर्व हर्षोल्लाससे मनाया जा रहा था। लोगोंकी काफी भीड़ मन्दिरोंमें दर्शनोंके लिये जा रही थी, परंतु वह बेचारी अपने पतिके कहनेपर भी पर्वमें सम्मिलित नहीं हुई और कृष्णके बारेमें कहने लगी कि 'ये कृष्ण हमारी प्रार्थना तो सुनते नहीं हैं; मैं क्यों इनको मानूँ?' तभी एक वृद्ध भिखारी रमाबाईके द्वारपर भीख माँगने आया, उसे भी उसने खरी-खोटी सुनायी और बोली—'तुम्हारी भी दुआ काम नहीं करती है, जाओ यहाँसे।' वृद्ध भिखारीने उसके पतिसे सारा वृत्तान्त सुना और बोला—यदि आपकी पत्नी रातभर जागरणकर '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' का जप करें तो कल्याण होगा। पतिकी आज्ञासे रमाबाईने उपर्युक्त मन्त्रका जप किया और सालभरमें ही उसके एक सुन्दर बच्चेका जन्म हुआ। अब रमाबाई कृष्णकी पक्की उपासक हो गयी हैं और बच्चेका नाम 'वासुदेव' रख दिया है। सच है, ईश्वरपर विश्वास रखनेसे दुःख दूर होता है।

—घनश्यामशरण

(३)

देशी गायने एक मरणासन्नके प्राण बचाये

वर्ष १९९९ ई० में भटिण्डा (पंजाब)-के पासके एक कस्बे मानसाके देवेन्द्रपाल सिंहके दोनों गुर्दे खराब हो गये। कुछ दिन तो डायलिसिससे काम चला, किंतु बादमें यह प्रक्रिया भी नाकाम होने लगी। आखिरकार डॉक्टरोंने सारे परीक्षण करने और अपनी ओरसे हर सम्भव कोशिश करनेके बाद जवाब दे दिया। परिजनोंको समझा दिया गया कि देवेन्द्रपाल सिंह आठ-दस दिनोंके मेहमान हैं।

घरमें कोहराम मच गया। दो दिन बाद ही संयोगसे एक संन्यासी वहाँ आये। उन्हें सब बताया गया तो उन्होंने घरवालोंको सान्त्वना दी कि मैं कोशिश करता हूँ, बाकी तो सब भगवान्‌पर है। उन्होंने अपने पाससे एक बोतल निकाली, जिसमें कोई अर्क था। उन्होंने दिनमें तीन बार वह अर्क रोगीको देना शुरू किया। तीन दिनोंमें स्थितिमें कुछ सुधार आने लगा। उस संन्यासीने अपना ठिकाना बताया और कहा—'इसी तरह दिनमें तीन बार देते रहो, खत्म हो जाय तो और ले जाना।'

दवा चलने लगी। दस दिन निकल गये, महीना निकला और तीन महीने निकल गये। घरवाले संन्यासीसे अर्क लाकर नियमसे देवेन्द्रपालको देते रहे। स्वास्थ्य तेजीसे सुधरने लगा। महीनेभर बाद तो वे अपनेको पूर्ण स्वस्थ अनुभव करने लगे। इस बार वे खुद डॉक्टरके पास गये। डॉक्टर उन्हें जीवित देखकर भौचक्का रह गया। उसने सारे परीक्षण फिरसे किये तो निष्कर्ष आया कि देवेन्द्रपालके दोनों गुर्दे एकदम ठीक हैं। चिकित्सक महोदयके कुछ समझमें नहीं आ रहा था कि यह चमत्कार कैसे घटित हुआ! उनके जोर देनेपर देवेन्द्रपाल उन्हें भी उस संन्यासीके पास ले गये। पूछनेपर संन्यासीने कहा—

'यह सब गोमाताकी कृपा है। बोतलमें देशी गायके मूत्रका अर्क था। गोमूत्रमें असाध्य रोगोंको ठीक कर देनेकी क्षमता है।'

उसी दिन देवेन्द्रपालने अपना शेष जीवन गोसेवामें ही निकालनेका निर्णय किया। गोमूत्र, गोमय, दूध, दही और गोघृतसे अनेक प्रकारकी दवाएँ बनानेकी कला उन्होंने सीखी। अब वे खुद औषधियाँ बनाते हैं और चिकित्सा करते हैं। पूरे जिलेमें पंचगव्यके वैद्यके रूपमें वे जाने जाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इसीके साथ वे स्थान-स्थानपर औषधियाँ बनानेका प्रशिक्षण भी देते हैं। [गो-सेवा-संघ]

(४)

हनुमान्‌जीके भक्तका प्रभाव

घटना सन् १९७६ ई०के सितम्बर माहकी है। मेरा ट्रान्सफर पदोन्नतिके रूपमें अजमेरसे भिलाईमें हुआ था। वहाँ मैंने यूको बैंककी भिलाई-शाखामें अधिकारीके पदपर कार्य ग्रहण किया। उस समय मेरा परिवार जयपुरमें रहता था। उन लोगोंको भी भिलाई ले जाना था, अतः मैं जयपुर आया। यहाँसे मैं प्रथम श्रेणीके चार टिकट खरीदकर सपरिवार आगरा फोर्ट जानेवाली ट्रेनमें सुबह १० बजे बैठ गया। आगे हमें आगरा कैण्टसे ट्रेन बदलनी थी, वहाँसे सायं ७ बजे दुर्गके लिये छत्तीसगढ़ एक्सप्रेस रवाना होती थी।

जिस डिब्बेमें हम लोग बैठे थे, उसी डिब्बेमें बाँदीकुई नामक स्टेशनसे एक साधु, जो देखनेमें बहुत दीन-हीन लग रहा था, जिसके वस्त्र भी मैले-कुचैले थे, आकर अन्दर घुसने लगा। मैंने उसे रोकनेकी कोशिश की कि यह डिब्बा प्रथम श्रेणीका है, तुम इसमें नहीं बैठ सकते तो वह यह कहते हुए जबरदस्ती करने लगा कि मेरे पास प्रथम श्रेणीका टिकट है और वह मुझे नहीं केवल टी०टी० को ही दिखायेगा। मैं भी गेटसे उसे न घुसने देनेके लिये गेट जबरन बन्द करने लगा, लेकिन उसने अपना हाथ दरवाजेमें फँसा दिया। इसी दौरान उसके हाथपर चोट लगी और खून बहने लगा। यह देख मैंने उसे घुस जाने दिया और टी०टी० के पास जाकर कहा—'हमारे कम्पार्टमेण्टमें एक भिखारी बैठ गया, उसे उतारिये।' टी०टी० ने कहा—'आप चलें, मैं अभी टिकट चैक करने आऊँगा।' थोड़ी देर बाद वह आया और सबके टिकट चैक करके उतर गया। यह देख मैंने तुरन्त टी०टी० के पास जाकर उससे साधुके न उतारनेका कारण पूछा। इसपर टी०टी० ने कहा कि उसके पास प्रथम श्रेणीका पास है, जो उसे स्टेशन-मास्टरने देकर बिठाया है। यह सुनते ही मुझे अपनी गलतीका आभास हुआ और मैं पश्चात्ताप करने लगा। जब गाड़ी बाँदीकुईसे रवाना होने लगी, तब कुछ और भक्तगण उस साधुके पास बैठकर रामायणकी चौपाइयाँ सुनने लगे। कुछ समय पश्चात् वहाँका माहौल ही बदल गया। रामायणके सुन्दरकाण्डपर चर्चा चलने लगी, चूँकि मैं भी सुन्दरकाण्डका पाठ प्रतिदिन करता हूँ, सो मैं भी अपने-आपको रोक न सका और उस चर्चामें शामिल हो लिया। इसी बीच एक भक्तने साधु महाराजसे उनके हाथके अँगूठेकी चोटका कारण पूछा तो उन्होंने सहजतासे जवाब दिया कि यह एक भक्तकी गुस्ताखी है, जिसका रात्रि ११ बजेतक दोष-निवारण होगा। हमारी ट्रेनको आगरा पहुँचते-पहुँचते रात्रिके ८ बज गये, परिणामतः हमें जो ट्रेन बदलनी थी, वह छूट गयी; क्योंकि उसका समय ७ बजे ही था। अब क्या करें। बहरहाल मैंने स्टेशन-मास्टरसे दुर्ग अथवा नागपुर जानेवाली ट्रेनोंमें व्यवस्था करनेके लिये प्रार्थना की, परंतु उन्होंने कोई रुचि न दिखायी, बहुत प्रयास किया, लेकिन सब व्यर्थ। फिर मैंने उनसे रिटायरिंग रूमके लिये कहा तो उन्होंने कहा कि सभी कमरे फुल हैं। मेरे सामनेसे कई ट्रेनें गुजर गयीं, लेकिन हमें किसीमें भी स्थान नहीं मिल पाया। अन्तमें रात्रि ११ बजकर ५ मिनटपर जब पंजाब मेल आयी, मैंने अनमने ढंगसे टी०टी० से उसमें प्रथम श्रेणीकी बर्थ माँगी तो उसने अन्दर बैठनेके लिये कहा कि जहाँ इच्छा हो वहाँ बैठ जाइये, पूरा डिब्बा खाली है। हम खुशी-खुशी उसमें बैठ गये। कुछ समय पश्चात् मुझे साधुकी कही वह बात ध्यान आयी कि रात्रि ग्यारह बजेतक भक्तका दोष-निवारण हो जायगा।

यह था उस हनुमद्भक्त साधुके साथ किये गये दुर्व्यवहारका परिणाम! बादमें मैंने उन साधु महाराजसे सज्जनतापूर्ण व्यवहार किया था, जिसका परिणाम हुआ कि मेरी आगेकी यात्रा मंगलमय रही। यहाँ मैंने यह सीखा कि किसीकी शक्ल या पहनावा देखकर उस व्यक्तिके सम्बन्धमें गलत धारणा नहीं बनानी चाहिये।

—भँवरलाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

दुर्गादासकी धार्मिक सहिष्णुता

बादशाह औरंगजेबने जोधपुर-राज्यको हस्तगत करनेकी बहुत चेष्टा की; किंतु वह अपने प्रयत्नोंमें सफल नहीं हुआ। महाराज जसवन्तसिंहके उपकारको वह भूल चुका था। किसीके उपकार और सम्बन्धको स्मरण रखना उसके स्वभावमें ही नहीं था। राजनीतिमें वह निष्ठुर था और धर्मके विषयमें अत्यन्त संकीर्ण, दुराग्रही; किंतु महाराज जसवन्तसिंहके बालक पुत्र अजीतसिंहका स्वत्व-रक्षक बनकर जो राठौर वीर दुर्गादास निरन्तर युद्धके लिये सन्नद्ध होकर बैठा था, उससे बादशाहकी चल नहीं पाती थी।

बादशाहने अपने पुत्रको सेनाके साथ दुर्गादासका दमन करने भेजा। वह लगभग घिर चुका था; किंतु उसने जब मित्रताकी प्रार्थना की, दुर्गादासने उसे अस्वीकार नहीं किया। यह समाचार बादशाहको मिला तो उसने पुत्रके विरुद्ध सेना भेज दी। औरंगजेबके कूटनीतिक पत्रसे राजपूतोंने संदिग्ध होकर शाहजादेको आश्रय देनेसे इनकार कर दिया, फलस्वरूप वह ईरान चला गया। शाही सेनाको वीर दुर्गादासके हाथों पराजय प्राप्त हुई।

शाहजादा ईरान जाते समय अपने पुत्र बुलन्द अख्तर तथा पुत्री सफायतुन्निशाको जोधपुर ही छोड़ गया था। यात्रामें बच्चोंको लेकर वह कहाँ भटकता? बादशाहको यह समाचार भी मिला। शाही सेना हारकर लौट चुकी थी। बादशाहने अपना प्रतिनिधि बनाकर ईश्वरदास नागरको जोधपुर भेजा।

दुर्गादासने अपना मन्तव्य स्पष्ट किया, 'शाही बच्चोंको मैं स्वयं सुरक्षित दिल्ली पहुँचा दूँगा; किंतु बादशाहको अजीतसिंहको जोधपुर-नरेश स्वीकार कर लेना चाहिये।'

बादशाहके पास दूसरा कोई उपाय न था। उन्होंने शर्त स्वीकार कर ली। दुर्गादास जितने वीर थे, उतने ही नीति-कुशल भी थे। औरंगजेबकी बात विश्वास करनेयोग्य नहीं है, यह वे जानते थे। वे केवल शाहजादीको लेकर दिल्ली गये, किंतु शाहजादेको उन्होंने जोधपुर ही रहने दिया। बादशाहके लिये यह चेतावनी थी कि यदि तुमने धोखा किया तो तुम्हारा पौत्र हमारे सरदारोंके हाथमें है।

उस समय औरंगजेब दिल्लीसे दूर ब्रह्मपुरीमें था। पौत्रीने पहुँचकर उसके कदमोंमें सिर झुकाया तो प्यारसे उसे पास बैठाकर वह बोला—'बेटी! तुम सोलह वर्षकी हो गयी, अबतक तुम्हें अपने मजहबका पता नहीं है। काफिरोंके साथ तुम्हें रहना पड़ा; अब कुरान पढ़नेमें मन लगाओ।'

शाहजादीने कहा—'बाबाजान! मैंने तो कुरान पढ़ा है। चाचा दुर्गादासजीने मुझे पढ़ानेके लिये एक मुसलमान औरत नियुक्त कर दी थी। आप पूछकर देखिये, मुझे कुरानकी पूरी आयतें याद हैं।'

'ओह! हिन्दुओंकी बहुत-सी बातें ऐसी हैं कि उनमें उनका मुकाबला शायद फरिश्ते ही कर सकें।' बादशाह पौत्रीकी बात सुनकर आश्चर्यचकित हो गया था।

'यह हमारा कर्तव्य था, जहाँपनाह!' यह कहते हुए उसी समय दुर्गादासने आकर अभिवादन किया। वे कह रहे थे—'हमारा किसी धर्मसे द्वेष नहीं। अपने स्वामीकी रक्षाके लिये हम तलवार उठाते हैं; किंतु हमारी दुश्मनी औरंगजेबसे है, किसीके धर्मसे अथवा किसीके बच्चोंसे नहीं।'

बादशाह बोला—'दुर्गादास! तुम फरिश्ते हो।' उसने राठौर केसरीको सम्मानपूर्वक बैठाया और अजीतसिंहको जोधपुर-महाराज माननेका फरमान जारी कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल संस्कृतमें पाठ-पारायण-हेतु प्रमुख प्रकाशन

श्रीमद्देवीभागवत-मूल, ग्रन्थाकार (कोड 1770)—यह पुराण परम पवित्र वेदकी श्रुतियोंके अर्थसे अनुमोदित, अखिल शास्त्रोंके रहस्यका स्रोत तथा आगमोंमें अपना प्रसिद्ध स्थान रखता है। पराम्बा भगवतीके इस विस्तृत चरित्रके नवाह्नपारायणसे त्रितापोंका शमन तथा लौकिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। मूल्य रु० १२०

श्रीमद्भागवत-महापुराण—मूल, मोटा टाइप, ग्रन्थाकार (कोड 29)—श्रीमद्भागवत-महापुराण भक्ति और मोक्षका अनुपम सोपान है। इसके प्रत्येक श्लोकमें भक्ति, प्रेमकी अनुपम सुगन्धि है। भव-बन्धनोंसे मुक्ति प्राप्त करनेकी कामनासे इस पुराणके सप्ताह अनुष्ठानकी परम्परा है। मूल श्लोकोंका पाठ करनेकी दृष्टिसे यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य रु० १२५ **(कोड 124) मूल, मझला साइजमें मूल्य रु० ८०** (कोड 1855) विशिष्ट संस्करण मूल्य रु० १०० भी।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-मूल, ग्रन्थाकार (कोड 583)—महर्षि वाल्मीकिके द्वारा प्रणीत श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी आस्तिक जगत्में वेदतुल्य प्रतिष्ठा है। भक्तोंमें इसके नवाह्नपारायणकी परम्परा है। इसके श्रद्धापूर्वक पाठसे लौकिक और पारलौकिक सिद्धियाँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं। नित्यपाठ तथा नवाह्नपारायणकी दृष्टिसे यह संस्करण विशेष उपयोगी है। मूल्य रु० १६०

सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह (कोड 1594) पुस्तकाकार, सजिल्द—इसमें विभिन्न देवी-देवताओंके उपासकोंको एक साथ पाठकी सुविधा प्रदान करनेके लिये विष्णु, शिव, राम, हनुमान्, गायत्री आदि सहस्रनामको नामावलीसहित संग्रह किया गया है। मूल्य रु० ८५

शतनामस्तोत्र-संग्रह (कोड 1850) पुस्तकाकार—इस पुस्तकमें चालीस शतनामस्तोत्रोंका संग्रह किया गया है; जिससे श्रीराम, कृष्ण, शिव, गणेश, दुर्गा, सूर्य आदि विभिन्न देवी-देवताओंके उपासक अपने इष्टकी उपासना-पूजाका यथोचित लाभ उठा सकें। मूल्य रु० २२

डाकद्वारा पुस्तक मँगवानेवाले पाठकोंसे निवेदन—यदि आप अपने पुस्तककी रकम मनीआर्डरद्वारा भिजवाते हैं तो उस रकमकी कौन-कौनसी पुस्तक या कोड कितनी संख्यामें चाहिये, संदेशके स्थानपर अवश्य लिखें एवं पोस्ट आफिसमें मनीआर्डर करते समय पोस्ट आफिसवाले बाबूको अपना संदेश टाइप करनेके लिये निवेदन करें तथा हमें भी मनीआर्डरका विवरण तथा मँगाई हुई पुस्तकोंकी जानकारी भिजवायें जिससे आपको पुस्तकें समयसे प्राप्त हो सकें।

गीताप्रेस, गोरखपुरके खातेमें सीधे रुपया जमा न करें—बहुतसे पुस्तक-विक्रेता एवं 'कल्याण'के पाठक बैंकमें गीताप्रेस, गोरखपुरके खातेमें रुपये तो सीधे जमा कर देते हैं पर बैंकसे मिले जमा स्लिपको फैक्स/ डाक आदिसे नहीं भिजवाते हैं। जमाकर्ताका नाम, पता आदिकी पूरी सूचना बैंकसे हमें प्राप्त नहीं होती है जिसके कारण बैंकमें रुपये किसका जमा हुआ है पता नहीं लग पाता है।

पुस्तकें मँगवानेके लिये अपने आर्डरके साथ ड्राफ्ट 'गोबिन्द-भवन-कार्यालय' यूनिट-गीताप्रेसके नामसे गोरखपुरका बनवाकर भिजवाना चाहिये। ५०० रुपयेतक मनीआर्डरद्वारा भिजवा सकते हैं।

बड़े टाइपमें—बृहदाकार साइजमें उपलब्ध ग्रन्थ

कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०	कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०
1907	**श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण**—केवल हिन्दी	४००	1	**गीता-तत्त्व-विवेचनी**—हिन्दी-टीका	२००
1389	**श्रीरामचरितमानस**—टीकासहित, वि० सं०	५००	5	**गीता-साधक-संजीवनी**—हिन्दी-टीका	३००
1436	**श्रीरामचरितमानस**—केवल मूल	२५०	25	**श्रीशुक-सुधा-सागर**—केवल हिन्दी	४००
80	**श्रीरामचरितमानस**—टीकासहित	४००		व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—273005	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र० ति० २०-५-२०१३
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत-संख्या—NP/GR-13/2011-20
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2011-20

नवीन प्रकाशन—अब उपलब्ध

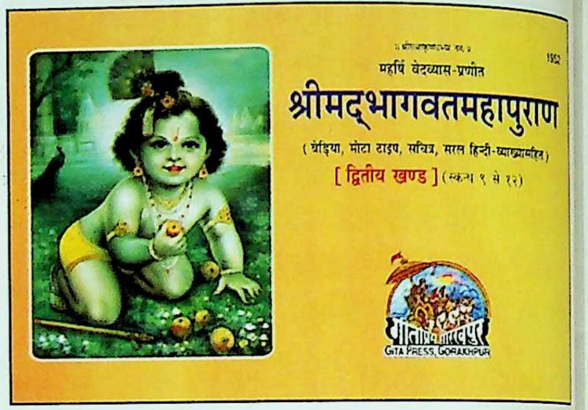

श्रीमद्भागवत-महापुराण—बेड़िया, सटीक, सजिल्द, मोटा टाइप—श्रीमद्भागवत-महापुराण सटीकको पत्राकारकी तरह बेड़िआ ग्रन्थाकार, मोटा टाइपमें प्रकाशित किया गया है, जिससे भागवतका पाठ करनेवालोंको सुविधा होगी एवं व्यास-पीठपर भी इसको प्रतिस्थापित किया जा सकता है। **(कोड 1951-1952)** दो खण्डोंमें आकर्षक डिब्बेमें पैक। दोनों खण्डोंका मू०रु० ७०० (रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंगखर्च रु० १०० अतिरिक्त

श्रीमद्भागवतके विभिन्न संस्करण—

	रु०
श्रीमद्भागवत-महापुराण (कोड 26-27) सटीक दो खण्डोंमें सेट	४००
श्रीमद्भागवत-महापुराण [अंग्रेजी अनुवाद] (कोड 564-565) दो खण्डोंमें सेट	३४०
श्रीमद्भागवत-सुधासागर (कोड 1930) सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका भाषानुवाद, मोटा टाइप, सचित्र, लेमिनेटेड आवरणसहित। **(कोड 1949)** कन्नड़, **(कोड 1776)** मराठी, **(कोड 1608)** गुजरातीमें	२५०
श्रीमद्भागवत-सुधासागर (कोड 1945) ग्रन्थाकार—विशिष्ट संस्करण, मोटा टाइप,	३००

	रु
श्रीशुक-सुधासागर (कोड 25) बृहदाकार—भाषानुवाद।	४
श्रीमद्भागवत-महापुराण (कोड 29) ग्रन्थाकार—मूल, मोटा टाइप **(कोड 1573)** तेलुगुमें भी उपलब्ध	१
श्रीमद्भागवत-महापुराण (कोड 124) मझला आकार—मूल।	८
श्रीमद्भागवत-महापुराण (कोड 1855) मझला मूल, विशेष पतले कागजपर, विशिष्ट सं०	१
श्रीप्रेमसुधासागर (कोड 30) ग्रन्थाकार	८

नवीन प्रकाशन [छपकर तैयार]—श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, सुन्दरकाण्ड (मूल) मोटा टाइप (कोड 1953) पुस्तकाकार—पहले गुटका आकारमें प्रकाशित श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड (मूल) **(कोड 78)** को अब मोटे टाइपमें पुस्तकाकारमें प्रकाशित किया गया है। मूल्य रु० ३०

जीवनचर्या-विज्ञान (कोड 1955)—प्रस्तुत पुस्तकमें प्रातः जागरणसे लेकर रात्रि शयनपर्यन्त मनुष्यके कर्तव्यकर्मकी और जन्मसे मृत्युकालतकके समस्त करणीय कर्मकी वैदिक एवं वैज्ञानिक विधिसे शास्त्रसम्मत एवं तर्कसंगत व्याख्या की गयी है। इस प्रकार यह पुस्तक जीवन जीनेकी कला एवं जीवन-सिद्धान्तके बोधके लिये अध्ययन और मनन करने योग्य है। मूल्य रु० ३५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

Central Library
...ul Kangri University
...war-249404 (U.A.)

वर्ष ८७

संख्या ७

गीताप्रेस, गोरखपुर

भगवान् कार्तिकेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तोंके प्रेमाराध्य भगवान् जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

Central Library Gurukul Kangri University Haridwar-249404 (U.A.)

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

वर्ष ८७ | गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०७०, श्रीकृष्ण-सं० ५२३९, जुलाई २०१३ ई० | संख्या ७
पूर्ण संख्या १०४०

राजा इन्द्रद्युम्नद्वारा भगवान् जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्राकी स्तुति

क्व निर्मलं त्वच्चरणाब्जयुग्मं विरिञ्चिरुद्रेन्द्रकिरीटमग्नम्। क्वाहं कुदीनः शकृदस्त्रमांसमूत्रास्थिसङ्घैः पिहितस्त्वचा वै॥
असारसंसारपरिभ्रमेण श्रमातुरस्त्वां कथमीश जाने। ××× वेदान्तवेद्याव्यय विश्वनाथ त्वमीशिषे हन्तुमघौघराशीन्॥
×× त्वमेक एवाखिललोककर्ता फणासहस्रैः परिवीतमूर्तिः॥
पर्यायवृत्या बलिनांवरिष्ठ त्वामीशितारं शरणं प्रपद्ये। यया सृजस्यत्सि जगन्ति नाथ वक्षःसरोजासनया स्वशक्त्या॥
तां भद्ररूपां जगदाश्रयां ते देवारणिं पादयुगे नतोऽस्मि।

[**राजा इन्द्रद्युम्न बोले—**][हे प्रभो!] कहाँ तो ब्रह्मा, रुद्र तथा इन्द्रके मुकुटोंमें मग्न हुए आपके निर्मल युगलचरणारविन्द और कहाँ मल, मूत्र, रक्त, मांस एवं हड्डियोंसे बना और चमड़ेसे ढका हुआ मुझ दीनका यह अधम शरीर? हे ईश! इस असार-संसारमें भटकते रहनेके कारण मैं श्रमसे व्याकुल हूँ। भला, आपको कैसे जानूँ? हे वेदान्तवेद्य! अव्यय! विश्वनाथ! आप ही समस्त पापराशियोंका नाश करनेमें समर्थ हैं। बलवानोंमें श्रेष्ठ बलभद्र! आप ही सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र कर्ता हैं। आपका विग्रह सहस्रों फणोंसे आवृत है। आप ईश्वर हैं, मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे नाथ! आप अपने हृदयकमलमें निवास करनेवाली अपनी ही जिस शक्तिके द्वारा संसारका सृजन-पालन तथा संहार करते हैं, मैं उन संसारको आश्रय देनेवाली तथा सम्पूर्ण देवताओंको उत्पन्न करनेवाली मंगलमयी सुभद्राके दोनों चरणोंको प्रणाम करता हूँ। [स्कन्दपुराण, उत्कलखण्ड]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०७०, श्रीकृष्ण-सं० ५२३९, जुलाई २०१३ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- राजा इन्द्रद्युम्नद्वारा भगवान् जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्राकी स्तुति	७७१
२- कल्याण	७७३
३- परमानन्दकी खेती (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७७४
४- भक्तकी प्रतीक्षा और ईश्वरके दर्शन (श्रीभूपेन्द्रकुमारजी दवे)	७७६
५- विनाशके पथपर (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	७७९
६- अपमान—एक ईश्वरीय अनुग्रह	७८२
७- साधकोंके प्रति—[नाम-जपकी आवश्यकता] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	७८३
८- 'राम नाम अवलंबन एकू' (गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी) [प्रे०—श्रीधर्मेन्द्रजी गोयल]	७८५
९- मीरा [कविता] (श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)	७८६
१०- अद्भुत सेवक श्रीहनुमान् (डॉ० श्रीअभिमन्युसिंहजी)	७८७
११- शास्त्रवाद [अनश्वर परमेश्वरका अनश्वर-संविधान] (श्रद्धेय पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)	७९०
१२- 'हरि का किस विधि भजन करूँ' [कविता] (श्रीकमलसिंहजी सोलंकी 'कमल')	७९३
१३- नवधा भक्ति—पाद-सेवन [कहानी] (श्री 'चक्र')	७९४
१४- श्रीरामके स्वभावके कुछ सूत्र (श्रीहरनारायणजी खत्री)	७९८
१५- सार्थक जीवनके दस सूत्र (श्रीप्रकाशजी रातड़िया)	८०१
१६- मुक्ति-पथ (स्वामी श्रीआशुतोषजी 'गुरुस्नेही') [प्रे०—श्रीअजेन्द्रपतिजी त्रिपाठी]	८०२
१७- अण्डा नहीं, गोदुग्ध ही स्वास्थ्यप्रद है (श्रीमुलखराजजी विरमानी)	८०५
१८- 'स्वाध्यायान्मा प्रमदः' (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी द्विवेदी)	८०६
१९- कैंसरविहीन दुनिया [प्रेषक—श्रीमधुसूदनजी मोर]	८०८
२०- साधनोपयोगी पत्र	८१०
२१- व्रतोत्सव-पर्व [श्रावणमासके व्रत-पर्व]	८१२
२२- कृपानुभूति	८१३
२३- पढ़ो, समझो और करो	८१४
२४- मनन करने योग्य	८१७

चित्र-सूची

चित्र		पृष्ठ
१- भगवान् कार्तिकेय	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- भक्तोंके प्रेमाराध्य भगवान् जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा	(")	मुख-पृष्ठ
३- बुद्धिमती नारीका घर	(इकरंगा)	७८०
४- हनुमान्जीको मुद्रिका देते श्रीराम	(")	७८७
५- जामवन्तद्वारा हनुमान्जीका उद्बोधन	(इकरंगा)	७८८
६- प्रह्लादजीपर असुरोंका शस्त्र-प्रहार	(")	७९१
७- अग्निसे प्रह्लादकी रक्षा	(")	७९१
८- कृत्याका प्रह्लादके गुरुओंको जलाना	(")	७९२
९- श्रीरामका हनुमान्को उपदेश देना	(")	८०३

सन् २०१४ के लिये शुल्क
एकवर्षीय
अजिल्द २०० रु०
सजिल्द २२० रु०
पंचवर्षीय
अजिल्द १००० रु०
सजिल्द ११०० रु०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 45 (Rs. 2200), पंचवर्षीय US$ 225 (Rs. 11000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

चालू वर्षका शुल्क
एकवर्षीय
अजिल्द १८० रु०
सजिल्द २०० रु०
पंचवर्षीय
अजिल्द १००० रु०
सजिल्द ११०० रु०

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—प्रेम सारी दैवी सम्पत्तियोंका मूल स्रोत है। जहाँ प्रेम है, वहाँ त्याग, सद्भावना, सहिष्णुता, क्षमा, उदारता, वदान्यता, मैत्री, अहिंसा, सेवा, सरलता, उन्मुक्तहृदयता, निष्कामता, प्रसन्नता, सत्य, विश्वास, साहस और सौजन्य आदि सद्गुण अपने-आप आ जाते हैं। इसके विपरीत जहाँ स्वार्थ है, वहीं भय है और जहाँ भय है, वहाँ परिग्रह, दुर्भाव, असहिष्णुता, कामना, क्रोध, कृपणता, अनुदारता, द्वेष, वैर, कपट, दम्भ, विषाद, अविश्वास, घृणा, लोभ, प्रतारणा, कायरता और कुटिलता आदि नीच वृत्तियाँ अपने-आप उत्पन्न हो जाती हैं।

जहाँ दैवी सम्पत्ति है, वहाँ सहज सुख, उल्लास, आनन्द, आत्मीयता रहते हैं और जहाँ आसुरी सम्पत्ति है, वहाँ शोक, विषाद, दुःख, परायापन रहते हैं।

याद रखो—प्रेम जितना शुद्ध होगा, उतना ही भगवदभिमुखी होगा और जहाँ भगवत्प्रेम होगा, वहाँ मनुष्यमें निर्भयता और निश्चिन्तता इतनी अधिक बढ़ जायगी कि वह कर्तव्यपालनमें, सत्यभाषणमें, दूसरोंका उपकार करनेमें, अपना सर्वस्व देकर भी सेवा करनेमें और जीवनकी महान् कठिनाइयोंमें जरा भी नहीं डरेगा। वह दृढ़प्रतिज्ञ, मनस्वी, तेजस्वी, साहसी और वीर होनेके साथ ही अत्यन्त विनम्र, आदर्श, विनयी, मधुरभाषी, समझकर करनेवाला और शान्तिप्रिय होगा। उससे किसीका अपकार तो होगा ही नहीं। वह सर्वथा निःस्वार्थ, भगवद्विश्वासी, भगवत्कृपापर निर्भर करनेवाला और सदा आनन्दमें निमग्न रहनेवाला होगा।

याद रखो—भगवत्प्रेमी या तो सारे संसारमें भगवान्‌को देखता है या सारे संसारको भगवान्‌में देखता है। इसलिये वह स्वाभाविक ही निर्भय, नमनशील, विश्वप्रेमी, विश्वसेवक और विशालहृदय होगा। उसका न तो कोई वैरी रहेगा और न उसकी किसी वस्तुविशेषमें आसक्ति ही होगी। वह नित्य भगवत्-कर्म-रत, भक्तिरसाप्लुतहृदय और भगवत्परायण होगा।

याद रखो—किसी भी भयमें इतनी शक्ति नहीं है, जो भगवत्कृपाकी अपार शक्तिके सामने ठहर सके।

किसी भी पापमें इतनी शक्ति नहीं है, जो भगवद्भक्तिके सामने टिक सके।

किसी भी तापमें इतनी शक्ति नहीं है, जो भगवत्प्रेमकी शीतलताके सामने रह सके।

याद रखो—तुमपर भगवान्‌की अनन्त कृपा है, इसलिये भगवान्‌की भक्ति तुम्हारे हृदयमें लहरा रही है और भगवत्प्रेममें तुम डूबना ही चाहते हो। फिर भय, पाप, ताप कहाँ रहेंगे? उनको तो नष्ट हुए ही समझो। जबतक तुम्हें पाप-ताप तथा भय सताते हैं, तबतक तुमने सचमुच भगवत्कृपापर विश्वास ही नहीं किया। भगवान्‌ने स्वयं घोषणा की है—जो मुझमें विश्वास करता है, वह मेरी कृपासे सारी कठिनाइयोंसे तर जाता है।

याद रखो—तुम भगवान्‌के हो, भगवान् तुम्हारे हैं। उनसे अधिक निकटस्थ आत्मीय तुम्हारा और कोई नहीं है। वे तुम्हारी जितनी और जहाँतक सँभाल करते हैं, उतनी और वहाँतककी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते।

भगवान् तुम्हारे दोषोंको तुरत क्षमा कर देंगे और तुम्हें सदाके लिये अपना लेंगे। तुम एक बार उनकी सुहृदयता और आत्मीयतापर पूर्ण विश्वास करके उन्हें मुक्तहृदयसे पुकार तो लो! **'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमानन्दकी खेती

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

'भैया, इतनी दूर कैसे आये ?'—स्वागत करनेके बाद पंजाबमें रहनेवाले मित्रने पूछा। राजपूतानासे पंजाब आनेका कोई विशेष कारण अवश्य होगा, उसने समझ लिया था।

'मेरे यहाँ अकाल पड़ा हुआ है। लोग दाने-दानेके लिये तरस रहे हैं और क्षुधासे तड़प-तड़पकर प्राण छोड़ रहे हैं। व्याकुल होकर मैं आपके पास आ गया।'—राजपूतानाके वैश्यने अपने मित्रसे सच्ची बात बता दी। अपने मित्रके पास अन्नका ढेर देखकर वह मन-ही-मन प्रसन्न भी हो रहा था।

'आप यहाँ आ गये, बड़ा अच्छा किया। आपका ही घर है, आनन्दपूर्वक रहिये।'—वैश्यके मित्रने बड़े प्रेमसे उत्तरमें कहा।

'आपके यहाँ तो अन्नराशि बिखरी पड़ी है, पर हमारे देशमें तो अन्नके दर्शन भी किसी भाग्यशालीको होते हैं, वहाँ तो एक-एक दानेके लिये चील्ह-कौओंकी तरह छीना-झपटी हो रही है। आपके यहाँ सहस्त्रों मन एकत्र गल्लेको देखकर तो मेरे जी-में-जी आ गया।' वैश्यने स्थिति स्पष्ट की।

'यहाँ तो भगवत्कृपासे अन्नका अभाव नहीं है। इसमें आश्चर्यकी कोई बात भी नहीं है, यहाँ तो कोई भी आये उसके लिये अन्नकी कमी नहीं रहेगी। आप तो हमारे मित्र हैं, यहाँ तो सब कुछ आपका ही है। यहाँ आकर आपने बड़ा अच्छा किया।'—मित्र बोला। वह चतुर और अनुभवी किसान था।

'आपकी सभी वस्तुएँ हमारी हैं, इसमें तो सन्देह नहीं है, पर मैं जानना चाहता हूँ कि इतनी अन्नराशि आपके पास आयी कहाँसे ?'—वैश्यने चकित होकर पूछा।

'हमारे यहाँ बराबर खेती होती रहती है। उसीका यह प्रताप है।' किसान मित्रने वैश्य-बन्धुका समाधान करना चाहा—'आप भी खेती करने लगें तो आपके पास भी अन्नके ढेर लग जायँगे।'

'बड़ी सुन्दर बात है। कृषिके कार्यमें मैं भी जुट जाऊँगा। पर इसका अनुभव मुझे नहीं है। मेरे पास एक सहस्त्र रुपये हैं। इतनेसे खेती आरम्भ हो सकती है क्या ?'—वैश्यने पूछा।

'एक हजारकी पूँजी कम नहीं है। इतने रुपयोंसे खेतीका काम आप बड़ी सुन्दरतासे आरम्भ कर सकते हैं। मेरा पूरा सहयोग रहेगा ही।'—किसानने सहानुभूतिपूर्ण शब्दोंमें अपने वैश्य मित्रसे कहा।

'मुझे तो इसका कोई ज्ञान नहीं है। आप जैसा उचित समझें, करें।' अपनी समस्त पूँजी किसानके हाथमें समर्पित करते हुए वैश्यने जवाब दिया।

× × ×

'देखिये, ये तो सब गेहूँ मिट्टीमें मिल गये। गेहूँका एक-एक दाना फूटकर नष्ट हो गया।'—अत्यन्त निराश होकर वैश्यने कहा। उसने अपने पंजाबी किसान मित्रके किसी काममें बाधा नहीं दी थी। किसानने मित्रकी पूँजीसे बीज आदिका प्रबन्ध करवाकर हल चलवा दिया था। बीज बो दिये गये थे, पर अनुभवहीन वैश्य यह सब देखकर चिन्तित हो रहा था। दो-तीन दिन भी नहीं बीतने पाये कि वह खेतमें जाकर खोदकर गेहूँके दाने देखने लगा। उसे बहुत-से बीज अंकुरित दीखे, इसपर उसने समझा कि मेरे सारे रुपये मिट्टीमें मिल गये। अत्यन्त दु:खी होकर उसने अपने मित्रसे उपर्युक्त बात कही।

'आपके खेतमें अंकुर निकलने शुरू हो गये हैं। आप कोई चिन्ता न करें। बीजके लक्षण अच्छे हैं। आपको प नहीं है।'—किसान मित्रने वैश्यको आश्वासन दिया।

'मुझे तो धन और श्रमका व्यय करनेपर भी कोई लाभ होता नहीं दीखता। मैं तो बहुत चिन्तित हो गया हूँ।'—वैश्यने मनकी व्यथा-कथा स्पष्टत: व्यक्त कर दी।

'प्रारम्भमें ऐसा ही होता है। आप निश्चिन्त रहें। आपकी खेती बड़ी सुन्दर हो रही है।'—किसान मित्रने बड़े प्रेमसे उत्तर दिया।

वैश्य चुप था। इसके अतिरिक्त उसका वश ही क्या था ?

× × ×

'मेरे खेतमें तो सर्वत्र घास-ही-घास दीख रही है। मुझे तो बड़ी हानि हुई। मेरा सारा रुपया व्यर्थ गया।'—वैश्यने थोड़े ही दिनोंमें फिर किसानसे कहा। एक-एक बित्तेके गेहूँके पौधोंको उसने घास समझ लिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घबराया हुआ किसान स्वयं खेतपर गया, पर वहाँ खेती देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई।

'अरे! आपका खेत तो आस-पासके सभी खेतोंसे बढ़कर है'—किसानने हतोत्साह मित्रका भ्रम-निवारण किया—'आप समझ लें कि अब गेहूँका विशाल ढेर आपके पास एकत्र होनेवाला ही है। पर इस बातका ध्यान अवश्य रखें कि ये पौधे सूखने न पायें। इन सुकुमार पौधोंका जीवन पानी है। इसकी व्यवस्था आप शीघ्र कर लें। इनकी सिंचाईके लिये आप शीघ्र ही एक कुआँ खोदवा लें। साथ ही खेतके चारों ओर काँटोंकी बाड़ लगाकर रूँध दें, नहीं तो दूसरेके जानवर आकर इसे चर जायँगे। खेतकी रखवाली आपको सावधानीसे करनी होगी।'

'आपकी प्रत्येक आज्ञाका मैं शब्दशः पालन करूँगा।'—वैश्यने कहा। और वैसा ही किया। कुआँ खोदकर खूब सिंचाई की। भगवत्कृपासे बीच-बीचमें बादल-दलने भी जल-वर्षण किया। पौधे बढ़ने लगे।

× × ×

'पौधेके बीच-बीचमें जो घासें उग आयी हैं, उन एक-एक घासका निरान कर डालिये। ये गेहूँकी वृद्धिके बाधक हैं।'—एक दिन खेतपर आकर किसानने वैश्यको प्रेमभरे शब्दोंमें परामर्श दिया।

'एक घास भी खेतमें नहीं रह पायेगी'—वैश्यने तुरन्त उत्साहपूर्ण शब्दोंमें उत्तर दिया।

× × ×

'गेहूँके दाने तो हो गये, पर ये तो सब-के-सब कच्चे ही हुए हैं।'—माथेका पसीना पोंछते हुए वैश्यने किसान बन्धुसे कहा। वह खेतसे दौड़ता आया था और जोरोंसे हाँफ रहा था। उसने अपने किसान मित्रके परामर्शानुसार अपने खेतमें घासका कोई चिह्न भी अवशिष्ट नहीं रहने दिया था। उसका परिश्रम अतुलनीय था। गेहूँमें बालियाँ भी लगी थीं, पर इतने दिनों बाद उसने देखा तो सब-की-सब बालियाँ कच्ची ही थीं। खेतीके ज्ञानसे शून्य होनेके कारण वह गरीब घबरा गया था। उसने समझा—रुपयेके साथ-साथ मेरा एड़ी-चोटीका पसीना भी व्यर्थ सिद्ध हो रहा है। उसने दो-तीन बालियाँ भी किसानके सामने रख दीं, जिन्हें वह साथ ही लेता आया था।

'आपके गेहूँके दाने तो बड़े पुष्ट हैं। ये अब जल्दी ही पक जायँगे। अब इसमें विलम्ब नहीं होगा; घबरायें नहीं। किसी प्रकारका विचार भी न करें। आपके घरमें गेहूँ और भूसेका पहाड़ लग जायगा।'—प्रसन्नताभरे शब्दोंमें किसानने वैश्यसे कहा। 'पर ऐसे समय पक्षी आ-आकर काकली—मीठी-मीठी बोली सुनाते हैं और सब दाने खा जाया करते हैं, अतः खेतीकी खूब रक्षा करनी होगी। पक्षियोंसे रक्षा किये बिना पक्षी सारे खेतका नाश कर डालेंगे।'

× × ×

'मैं आपका कृतज्ञ हूँ। मेरे आनन्दकी सीमा नहीं है। मेरे पास गेहूँका विशाल ढेर लग गया है'—वैश्यने आनन्दभरे शब्दोंमें किसान मित्रका आभार प्रदर्शन किया।

'यह सब भगवान्‌की कृपा और आपके श्रमका फल है। आप पक्षियोंके कलरवपर ध्यान न देकर उन्हें उड़ानेमें ही लगे रहते थे। आपने बड़ी तत्परतासे कृषिकी रक्षा की थी।'—किसानने वैश्यबन्धुको ही यश दिया।

वैश्य नतमस्तक हो गया। उसकी आकृतिपर आनन्द हँस रहा था।

× × ×

यह कहानी एक दृष्टान्तरूपसे कही गयी है। इसे परमार्थ-विषयमें इस प्रकार घटाना चाहिये कि सच्चे सुखकी प्राप्तिके लिये साधन करनेवालेको यहाँ अकाल-पीड़ित वैश्य समझना चाहिये। सांसारिक कष्टोंकी ज्वालासे उत्पन्न सच्चे सुखकी साधककी अभिलाषाको अकालपीड़ित वैश्यकी भूखकी ज्वालाके कारण अन्नकी आवश्यकता समझनी चाहिये। महात्माको पंजाबमें रहनेवाला वैश्यका किसान-मित्र समझना चाहिये। वैश्यका जो राजपूतानासे अपने मित्रके पास पंजाब जाना है, यही साधकका अपने घरसे महात्माके आश्रममें महात्माके पास जाना है। मित्रके पास जाकर वैश्यका जो अपने कष्टकी बात कहना है, यही जिज्ञासु साधकका महात्माको अपना दुःख निवेदन करना है। वैश्य भाईका जो अपनी सम्पूर्ण पूँजी मित्रको सौंप देना है, यही साधकका अपने मानव-जीवनका अवशेष समय महात्माके चरणोंमें समर्पित करना है। मित्रके कहे अनुसार जो धन खर्च करना है, यही महात्माके आज्ञानुसार समयका सदुपयोग करना है। किसान मित्रका जो जमीन और बीजका प्रबन्ध करवा देना है, इसको महात्माका समयको सदुपयोगमें लानेकी शिक्षा देना समझना चाहिये। खेतीके लिये जो अपने सुखका त्याग करना है, इसको परम आनन्दकी प्राप्तिके लिये वर्तमान सांसारिक सुखका त्याग करना समझना चाहिये। बीजका जो खेतमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बो देना है, इसको महात्माके द्वारा प्राप्त साधनके बीजमन्त्रका हृदयमें धारण करना समझना चाहिये। खेती करनेसे खेतमें बीजोंका अंकुर फूटनेपर बेसमझीके कारण दु:ख और निराशाका अनुभव होनेको साधनकालमें होनेवाली निराशा और तज्जनित क्लेश समझना चाहिये। वैश्यका भ्रमसे गेहूँके छोटे पौधोंको जो घास समझना है, यही साधनकालमें साधनकी उन्नति होनेपर भी साधनमें परिश्रम अधिक होनेके कारण उसे भ्रमसे साधन न समझकर व्यर्थ समझना है। मन और इन्द्रियोंके संयमको बाड़ समझना चाहिये। अध्यात्मविषयको सांसारिक स्वार्थी मनुष्योंके सम्पर्कमें खर्च नहीं करना ही पशुओंसे खेतको बचाना है। भगवान्‌के नामका जप, गुण-प्रभावसहित उनके रूपकी स्मृति और स्वाध्यायको खेतको कुआँ खोदकर सींचते रहना समझना चाहिये। अपने-आप जप-ध्यानका अभ्यास चलनेको ईश्वर-कृपासे समयपर स्वत: वर्षा हो जाना समझना चाहिये। दुर्गुणों और दुराचारोंको अपने हृदयसे हटाते रहना यहाँ गेहूँके अतिरिक्त अन्य घास-फूसका निरान करना है। परमात्माके ध्यानकी जमावटको यहाँ गेहूँका फलना तथा स्वार्थी मनुष्योंके द्वारा की जानेवाली साधककी स्तुति-कीर्तिको यहाँ गेहूँको खानेके लिये आनेवाले पक्षियोंकी काकली समझना चाहिये। साधनको परिपक्व करनेके लिये स्तुति-कीर्तिकी तथा स्तुति-कीर्ति करनेवालोंकी अवहेलना करनेको यहाँ खेतीकी रक्षाके लिये पक्षियोंको हटा देना समझना चाहिये एवं सम्पूर्ण दु:खोंका अभाव होकर परमानन्दस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति हो जानेको गेहूँके पक जानेपर उसका ढेर लग जाना समझना चाहिये।

भक्तकी प्रतीक्षा और ईश्वरके दर्शन

(श्रीभूपेन्द्रकुमारजी दवे)

भक्त प्रार्थना और प्रतीक्षा करता है। ये दोनों बातें अध्यात्म-क्षेत्रमें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। प्रार्थना मनुष्यके भीतर विनम्रता एवं सरलताका संचार करती है और प्रतीक्षामें धैर्य एवं विश्वास छिपा होता है। ये दोनों ध्यान, समर्पण तथा प्रेमके साथ मिलकर भक्तिरूपी पंचामृतका निर्माण करती हैं। भक्त कहता है—

✿ हे ईश्वर! मैं तेरी प्रतीक्षा करते न तो थकता हूँ और न ही झुँझलाता हूँ। मैं अपनी आँखोंको मुँदने भी नहीं देता। हृदयकी पंखुड़ियोंको मुरझाने नहीं देता। प्रतीक्षाकी प्यासमें सूखे ओंठोंको खामोश नहीं होने देता, लगातार तेरी प्रार्थना करता हुआ तुझे पुकारता रहता हूँ।

✿ हे ईश्वर! मैं तेरे आनेकी हर आहट पानेके लिये सदा सजग रहता हूँ। मुझे अपनी कराहती साँसोंकी आवाजतक नहीं सुनायी पड़ती। मुझे अपनी पलकोंके रंगमंचपर नृत्य करते थिरकते आँसुओंकी पदध्वनितक सुनायी नहीं पड़ती। तेरे आनेकी कल्पना करते-करते मेरे विचाररूपी पक्षियोंकी मधुर आवाज भी मुझे सुनायी नहीं पड़ती। मैं सिर्फ तुम्हारे आनेपर स्वागत करनेको आतुर तो बना रहता हूँ, पर स्वागतकी तैयारी करनेमें मैं अपने-आपको अयोग्य पा रहा हूँ। मैं अकेला हूँ। मेरे साथ कोई नहीं है। साथ अगर कोई है तो प्रतीक्षामें रत मेरी व्याकुल आँखें, मेरी अकुलाती-सकुचाती व्यथित दृष्टि, अपने टूटे पंखोंको समेटती पीड़ित आशा, साँसोंकी कतरनोंको बटोरती बूढ़ी अभिलाषा, समयके दौड़ते-भागते कदमों-तले कुचली-आहत होती दर्शनकी प्यासी इच्छा।

✿ हे ईश्वर! मैं चारों ओरसे आती पवित्र खुशबूसे पूछता फिरता हूँ कि बता, क्या यह सुगन्ध मेरे प्रतीक्षित प्रभुकी तो नहीं है? गन्ध मुसकराती है, कुछ बोलती नहीं। वह बोलती भी है तो उसके शब्द ज्ञानियोंकी तरह गूढ़ अर्थ लिये होते हैं, जिन्हें मैं समझ नहीं पाता। फिर भी मैं सोचता हूँ कि चारों ओरसे पुण्य विचार मुझतक आते रहें और मेरे अन्त:में उठते विचारोंको सुवासित करते रहें। हो सकता है कि मैं जिसकी प्रतीक्षामें हूँ, वह निराकार इन्हीं विचारोंके गर्भगृहमें बैठा प्रकट हो रहा हो। ऋषि-मुनियोंके ग्रन्थोंसे भी उठती महक, मेरे प्रतीक्षारत पलोंको हल्का कर जाती है। मैं उनकी वाणीमें तुम्हें खोजता रहता हूँ। उनकी वाणीका पार्श्व संगीत तेरी ही वीणासे मिलता होगा, वरना उनमें माधुर्य और कहाँसे आ सकता है? सच, जब भी तेरी वीणाकी झंकार गूँजने लगती है तो आभास होता है कि तेरे श्रृंगारकी मणिमालिकाएँ अनायास बज उठी हैं और तू आ रहा है। मैं अधीर हो उठता हूँ। यह अधीरता ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो मेरी प्रतीक्षाका शृंगार करती है। मुझे यह प्रतीक्षा प्रिय लगने लगती है। ऐसी प्रतीक्षा अनन्त रूप ले ले तो भी मुझे स्वीकार्य है।

✿ मैं तुम्हारी प्रतीक्षामें चारों ओर नजर जमाये रखता हूँ। पता नहीं तू किस दिशासे आनेकी सोच रहा है। तेरी भव्यताके अनुरूप राजपथ सजे-से दिखते हैं। तेरे स्वागतमें तल्लीन पथके दोनों ओर सुशोभित बगिया महक उठी है। रंग-बिरंगे फूलोंने अपनी कोमल पंखुड़ियोंको फैलाकर राजपथकी कठोरताको अपने आगोशमें छिपा लिया है। जो कुछ बुद्धि मुझे तुमसे प्राप्त हुई थी, उसीसे मैं तेरी एक धूमिल छबि बना सका हूँ, जिसे मैं सदा अपने प्रतीक्षारत आँसुओंसे धोता रहता हूँ, लेकिन वह स्पष्ट प्रकट होती ही नहीं। फिर भी इस छबिको अपने अन्त:में स्थापित कर सका हूँ ताकि तेरे आनेपर मैं तुझे पहचान सकूँ।

फिर मैं सोचता हूँ कि तुझे पहचाननेके लिये उपयुक्त छबि यदि मुझे नहीं मिल पायी तो क्या होगा? यह सोचते-सोचते अचानक अन्त: जाग्रत् हो जाता है और मुझसे कहता है कि ईश्वरकी पहचान है ही क्या? वह तो एक पलकी अनुभूति है, जो अन्त:को आनन्दित कर जाती है। मेरी यह प्रतीक्षा उसी एक क्षणको पानेकी है—उस क्षणको आत्मसात् करनेकी, जब तू मेरे सामने होगा—अपने अनगिनत किसी भी एक रूपमें, तो मैं उसी रूपमें तेरा दर्शन पाऊँगा, जिससे मेरी अन्तरात्मा आनन्दित हो उठेगी। मुझे तेरा हर रूप स्वीकार्य है; क्योंकि तू अपने हर रूपसे आनन्द-सागरमें ज्वार भर लाता है। तब मैं अपनी आस्थाकी पतवार थामे श्रद्धाकी नावपर बैठा बस, तुझे निहारता रहूँगा, भले ही आनन्दकी लहरें मेरी श्रद्धासे भरी नावको तेरे अनन्त सागरमें डुबो दें।

इस तरह मैं एक शक्तिहीन, भक्तिहीन, बुद्धिहीन, दृष्टिहीन भक्तका रूप धरकर तेरी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। अगर तू अनन्त है तो मेरी यह प्रतीक्षा भी अनन्त हुआ चाहती है। इसे अनन्त बनाना तेरी ही इच्छापर निर्भर है।

✿ मैं प्रतीक्षा करता-करता प्रतिक्षण क्षीण-जर्जर होता जा रहा हूँ। कभी मैं थकी-अलसायी आँखोंसे तो कभी अधजगा-सा तेरी खोजमें इस पथपर चला हूँ। कभी-कभी विचार आता है कि मैं किसकी प्रतीक्षामें हूँ? वह जो कभी नहीं आनेवाला या फिर वह जो अनादिकालसे मुझसे मिलनेके लिये भटक रहा है या फिर मुझसे न मिलनेका बहाना ढूँढ़ रहा है। सच, जिसकी सूर्य एवं चन्द्र-जैसी आँखें हैं, क्या वह रात-दिन एककर मुझे नहीं ढूँढ़ सकता? जो जलकी तरह हर किसी घाटी, कन्दराओंमें जा सकता है, जो प्रकाशकी तरह हर अन्धकूप एवं बावलीमें प्रवेश कर सकता है, क्या वह मुझे छू नहीं सकता? या फिर जो तेज पवनके समान घने वनके सूक्ष्म रास्तोंको पारकर कहीं भी किसी भी जगह पहुँच सकता है, क्या वह मुझे पा नहीं सकता? और तो और, मुझे स्वयं कई बार यह अहसास हुआ है कि वह मेरे बिलकुल निकट आ गया है, इतना निकट कि उसकी साँसें मेरे हृदयमें प्रवेशकर मेरे रुधिरका संचालन करने लगी हैं। उसकी पलकोंके रोम मेरी झपकती आँखोंको गुदगुदाकर सजग करने लगे हैं। उसकी सघन केशराशि हवाके मन्द झोंकोंमें लहराती हुई मेरे मुखमण्डलको झरनोंकी असंख्य जलधाराओंकी तरह छूकर लहरोंका रूप ले रही हैं।

✿ मैं तो बार-बार अपने हृदयपटके बाहर उसे देखने आ जाता हूँ। कभी ऐसा लगता है कि ईश्वर वहाँ चहलकदमी कर रहा है—न जाने किस उधेड़बुनमें मेरे सामने आकर ठिठक जाता है। मैं निरन्तर उसकी पदध्वनि सुन रहा होता हूँ। दिन बीत जाता है। अँधेरी रात आ जाती है। मैं दीप जलाकर उसे अन्दर आनेको आमन्त्रित करता हूँ। उसे किस नामसे पुकारूँ, यह सोचता रह जाता हूँ। कैसे उसके स्वागतका अभिनय करूँ? किसी भी क्षण उसके अन्दर आ जानेकी कल्पनासे मेरा अंग-अंग रोमांचित हो जाता है। आनन्दकी कल्पनामात्रसे मेरी आँखें नम हो जाती हैं।

हे ईश्वर! मेरे नयन तेरी रूपसुधाका पान करने और कर्ण तेरी पदध्वनिका दिव्य स्वर सुननेको आह्लादित हुआ चाहते हैं। फिर भी मेरी प्रतीक्षा खत्म होनेका नाम ही नहीं ले रही। वह तो अमरताके अथाह सागरमें लीन होती जा रही है। तू इतने पास आकर भी दूर क्यों है? हे प्रभु! एक और कदम आगे रखकर मेरी प्रतीक्षाके अन्तिम क्षणको सुशोभित करनेकी कृपा करो। यदि वहाँ खड़े रहकर तुझे मुझमें कुछ पाप, छल-छद्म दिखता है तो उन्हें अपने तेजसे भस्म कर दे, परंतु तू अब लौटनेकी न सोच।

✿ हे नाथ! तेरी लीलाका देखना भी एक अद्भुत अनुभव है। उसे देख-देखकर आनन्दित होनेका सौभाग्य मुझे मिल रहा है। सच, तेरी लीलाका कोई अन्त नहीं है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें नवीनताकी भी कोई सीमा नहीं है। हे प्रभु! मैं तो तुम्हारी लीलाका प्रिय दर्शक बनना चाहता हूँ। हे ईश्वर! तू अपना कदम बढ़ा और मेरी प्रतीक्षाको सम्मानित कर। सच तो यह है कि जैसे-जैसे क्षण बीत रहे हैं—मेरी एक-एक साँस उखड़ी जाती है—मेरी प्रतीक्षा उद्वेलित होती जाती है और मैं होश खोता जाता हूँ। लेकिन यह भी सच है कि इस प्रतीक्षासे मैं मृत्युकी प्रतीक्षासे मुक्त हुआ जाता हूँ। मुझे लगातार महसूस हो रहा है कि तू आ रहा है। हर साँसके लेते एक युग बीता जा रहा है और तू आ रहा है। पल-पल युग-दर-युग गुजरता जा रहा है और तू आ रहा है। मेरा मन गा उठता है कि मेरा प्रभु आ रहा है। ज्ञानेन्द्रियाँ चपल हो उठी हैं कि तू आ रहा है। जीवनमें वसन्तका आगमन हो रहा है, मन पुलकित हो रहा है, फूलोंने रंगीन परिधान पहन रखे हैं, पवन महकके साथ क्रीड़ा कर रहा है, इसलिये कि तू आ रहा है। आनन्द चहुँ ओर स्पन्दित हो रहा है; क्योंकि तू आ रहा है। सारी सृष्टिके सृजनको निहारने मेरी आत्मा उल्लसित हो बाहर आ गयी है, मेरे हृदयमें आशाके दीपकोंकी रोशनी फैल रही है, इस आशामें कि तू आ रहा है।

✿ इतना सब कुछ हो जानेपर भी स्तब्ध हुई प्रतीक्षा ही हृदयमें रह जाती है। मैं देखता हूँ कि आकाशतक स्तब्ध है, चाँद-सितारे स्तब्ध हैं। सृष्टिकी गहन स्तब्धताको देख मेरी आँखोंमें आँसू लरजने लगते हैं और दृष्टि स्तब्ध हो जाती है। मेरी कुण्ठित बुद्धि सोचने लगती है कि शायद अति निकट आनेका संकोच तुझे मुझसे दूर बनाये हुए है। सच, यह दूरी ऐसी प्रतीत हो रही है कि मेरी पुकारके फैले पंख भी तेरे चरणोंको स्पर्श करनेके प्रयासमें कहीं टूट ही ना पड़ें। सारी साधना, सारी आराधना अचम्भित हो अस्त-व्यस्त-सी हो गयी है। बस, पिघलती प्रतीक्षाका सागर सहमा हुआ किनारोंको दूर... और दूर हटते देखता रह जाता है।

किंतु चित्तकी चंचलता तो देखो! वह अब भी कितना आतुर है। तेरे पास बैठनेका स्वप्न देख रहा है। आँसू तेरे चरणोंका स्पर्श पाने बह निकले हैं। नयन निर्निमेष-से खुले-के-खुले ही रह गये हैं।

हे प्रभु! इस एक क्षणमें क्या हो गया? यह क्षण अनायास ही खण्डित क्यों हो गया? मेरी प्रतीक्षा मिथ्यामें परिणत कैसे हो गयी? निस्सार क्यों हो गयी? मेरी प्रार्थना कण्ठसे उठती ओठोंतक आते-आते कुण्ठित क्यों हो गयी? अन्त:की चेतना एकाएक शिथिल किस कारण हो गयी?

सोचता हूँ कि जब तू इतने पास आ ही गया था, मैं ही आगे क्यूँ न बढ़ा? तेरे चरणोंमें मुझे झुकना ही था, फिर मैं क्यों सहम गया? किनारा देख किश्ती नहीं जाती और यदि थमनेकी चेष्टा भी करे तो लहरें आगे कर देती हैं। क्या मेरे मनमें उठती लहरें इतनी सक्षम नहीं थीं? मैं किसे दोष दूँ? दोष जब अपना हो तो नजरें खुद-ब-खुद झुक जाती हैं। आगे क्या घटित होता है, देख नहीं पातीं। तू चला गया—कब, क्यूँ, कैसे—मैं क्या जानूँ? भविष्यमें प्रतीक्षाकी लहरें उठेंगी—शायद और भी ऊँची उठेंगी, पर क्या ऐसी सुघड़ी फिरसे आ पायेगी?

✿ ईश्वरके दर्शन पानेका विचार आते ही उनकी इतनी सुन्दर छबि मनमें उभरने लगती है कि उनके ईश्वरके दर्शन मिलनेका-सा वास्तविक आनन्द मिलने लगता है। ईश्वरके दर्शनसे तात्पर्य है सृष्टिकी प्रथम किरणका आभास होना, प्रकृतिके प्रथम रूपकी अनुभूति होना और आत्माकी जागरूकताके प्रथम रोमांचका अनुभव होना तथा इन सबको चिरस्थायी बनाये रखना। ईश्वरके दर्शन है चेतनाका आना। सचेतनावस्थामें जीवनके हर क्षण जीना। सचेतनाको विचारों एवं कर्मोंसे आनन्दित रखना। ईश्वरके दर्शनका अर्थ है ईश्वरके दर्शनको व्यापकता प्रदान करना। हर समय, हर कहीं, हर एक तथा स्वयंमें भी ईश्वरके दर्शन करना। साथ ही संसारके कर्मक्षेत्रमें स्वयंको इस तरह स्थापित करना कि सभी प्राणिजन हममें ही ईश्वरका दर्शन कर सकें। ईश्वरके दर्शनका मूलमन्त्र है—स्वयंमें ईश्वरको प्रतिबिम्बित करते हुए प्रज्वलित दीपककी तरह ईश्वरीय आभाको चारों ओर फैलाना।

ईश्वर तो मिले हुए हैं सिर्फ सचेतनाकी जरूरत है, जो हर वक्त उनके पास होनेकी याद कराती रहती है। ईश्वरके स्मरणसे हृदय सरल हो जाता है और सरल हृदय ही ईश्वरका स्मरण करता है। हृदयकी सरलता ईश्वरको हमसे दूर नहीं होने देती। स्मरण उसीका किया जाता है जो अपना होता है, हमारे हृदयमें होता है और जिसके स्मरणसे हमें शान्ति मिलती है—सकून मिलता है—आनन्द मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनाशके पथपर

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गताङ्क ६ पृ०-सं० ७२९ से आगे]

सिनेमाने तो बड़ा ही अनर्थ किया है। समाजमें दुराचार फैलानेका काम सिनेमाओंके द्वारा बड़े जोरसे हो रहा है। जबतक बोलनेवाले चित्रपट नहीं थे, तबतक कुछ खैर थी। परंतु जबसे सवाक् चित्रपटोंका प्रचार हुआ, तबसे तो दिनोंदिन खराबी बढ़ती ही जा रही है। यह सत्य है कि चित्रपट एक कला है और कला का विस्तार देशकी उन्नतिका सूचक है; परंतु विचार यह करना है कि जिस कलाके विस्तारसे देशके हृदयमें क्षय-रोगका उदय होता हो, जो कला देशके युवक-युवतियोंको शारीरिक और मानसिक संक्रामक व्याधियोंसे ग्रस्तकर परिणाममें कराल कालका ग्रास बनानेमें और उनके पवित्र आदर्श चरित्रका नाश करनेमें सहायता करती हो, वह कला तो वस्तुतः कला नहीं, काल ही है। फिर यह भी प्रश्न है कि कलाकी दृष्टिसे कहाँ कितना प्रचार हो रहा है? सिनेमा-कम्पनियोंके मालिकोंमें कितने ऐसे हैं, जो कलाके लिये इस व्यवसायको करते हैं? मेरी समझमें शायद ही कुछके हृदयोंमें कलाकी उन्नतिका ध्यान होगा। अधिकांशका ध्यान तो धनकी ओर है। धन आता है उन्हीं चित्रपटोंसे, जिनको ज्यादा लोग देखना चाहते हैं और ज्यादा लोग उन्हीं चित्रपटोंको देखना चाहते हैं, जिनमें सुन्दरी युवती स्त्रियोंके अर्धनग्न अंगोंके प्रदर्शनयुक्त पार्ट और श्रृंगारके गायन होते हैं। इसीलिये फिल्म-कम्पनियाँ बड़े-बड़े वेतनोंपर नयी-नयी सुन्दरी युवतियोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर लाती हैं। इनमेंसे अधिकांश तो लज्जाशीलताको तिलांजलि दे चुकी होती हैं। धार्मिक भावोंवाली युवती कुलकन्याएँ तो लाज-शर्मको तिलांजलि देकर पर-पुरुषोंके साथ मिलकर उनसे अंगोंका स्पर्शतक होने देकर खुले अंगोंसे नाट्य दिखलानेको क्यों आने लगीं? (पर दुःख है कि कुछ समयसे भले घरोंकी लड़कियोंमें भी फिल्म-कम्पनियोंमें नाचनेकी प्रवृत्ति बढ़ रही है, यह और भी पतनका चिह्न है।) सनातन-धर्मियोंको तो रोना चाहिये कि उनके आलस्य, अविवेक एवं धर्महीनताके कारण व्यर्थ ही कुमारी या मिस कहलानेवाली उच्छृंखल तरुणियोंके द्वारा प्रातःस्मरणीया जगज्जननी सीता, जो परपुरुषका अंग-स्पर्श होनेके डरसे श्रीहनुमान्‌जीके साथ लंकासे भी लौटनेको तैयार नहीं हुई थीं, उनके और भगवती योगमाया राधा, सती सावित्री, पार्वती, दमयन्ती और द्रौपदी आदिके निर्लज्ज पार्ट होते हैं! निर्लज्ज इसीलिये कि उन्हें तो फिल्म-कम्पनियोंके मालिकोंकी नमकहलाली करनेके लिये अभिनयमें अपने अंग दिखलाकर और हाव-भाव बताकर दर्शकोंके चित्तको खींचना है और इसमें उन्हें कोई लज्जा है नहीं। बहुत बुरी बात तो यह है कि इससे दर्शकोंका चित्त केवल चित्रपट देखनेके लिये ही नहीं खिंचता, बुरी वासना भी उनमें उत्पन्न हो जाती है, जिसका परिणाम पतनके सिवा और कुछ नहीं है। इसी प्रकार दर्शिकाओंके मनमें भी बुरी भावनाएँ आती हैं। लज्जा छूटती है और अमर्यादा तथा उच्छृंखलताकी भावनाएँ बढ़ती हैं। इसीका परिणाम व्यभिचार है। भले घरोंकी लड़कियाँ भी आज धनके लोभसे या मानसिक विकारोंकी प्रेरणासे कुल-मर्यादाको मिटाकर कलाके नामपर और क्रान्तिका बहाना बताकर फिल्म-कम्पनियोंमें भर्ती होनेके लिये ललचा रही हैं। भगवान् ही जानें, इसका कितना बुरा फल होगा। (इसके सिवाय चित्रपटोंकी अधिकतासे गरीब देशकी जो आर्थिक हानि हो रही है, वह भी बड़ा ही भीषण है।)

इसीके साथ पाश्चात्य जगत्‌की नकल करते हुए आजकल हमलोग भी शारीरिक सौन्दर्यको आवश्यकतासे अधिक महत्त्व देने लगे हैं। यूरोपमें रूपकी हाट लगती है। वहाँ सुन्दरी स्त्रियोंके सौन्दर्यकी प्रतियोगिता होती है। उसमें जो सबसे अधिक सुन्दरी साबित होती है, उसको इनाम मिलता है और उसके सौन्दर्यकी ख्याति समाचारपत्रोंद्वारा देश-देशान्तरोंमें फैल जाती है। फल यह होता है कि उसका रूप बहुत-से लोगोंका मन बिगाड़नेमें कारण बनता है। कुछ लोगोंका कहना है कि इस रूपप्रतियोगिताके प्रचारका उद्देश्य स्त्रियोंके स्वास्थ्यको सुधारना है। प्रारम्भमें चाहे यह उद्देश्य रहा हो; परंतु आजकल जो कुछ हो रहा है, वह तो बड़ा ही बीभत्स है। उससे तो समाजका मानसिक स्वास्थ्य नष्ट हो रहा है। इनाम और नामके लोभसे युवतियाँ अपने शील-संकोचको छोड़कर कामुक पुरुषोंके सामने अपने रूप-यौवनको बड़े ही निर्लज्जभावसे कसौटीपर रखती हैं। वे ऐसा श्रृंगार और वेश-भूषा बनाती हैं कि जिससे उनके अंगोंका सौन्दर्य खुला दीख पड़े। स्त्रियोंके लिये श्रृंगार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्जित नहीं है, परंतु वह है एक निर्दिष्ट सीमाके अन्दर। स्त्री पतिकी प्रसन्नताके लिये ही, उसके प्रीति-उत्पादनके लिये ही शृंगार करती है और इस शृंगारमें भी सब अवस्थाओंमें अंग खुले नहीं रखे जाते। जो शृंगार राह चलते लोगोंको सौन्दर्य दिखानेके लिये होता है और जिसमें शरीरका अधिकांश अनावृत (खुला) रखना आवश्यक होता है, उसको पतनके सिवा और क्या कहा जाय? ऐसा तो रूपको बेचकर जीविका चलानेवाली वेश्याएँ भी नहीं करतीं! इस रूप-प्रतियोगितासे स्त्रियोंकी मर्यादा मिट्टीमें मिल रही है, वे अपने एक विशिष्ट स्थानसे नीचे—बहुत नीचे गिर रही हैं। यह पवित्र शीलवती नारीजातिका घोर पतन है। खेद है कि यह विष अब भारतवर्षमें फैल रहा है। यहाँ भी रूप-प्रतियोगिता आरम्भ हो गयी है। इस अवस्थामें भी व्यभिचार नहीं बढ़ेगा तो कब बढ़ेगा?

इसके सिवाय स्वतन्त्रता और समान अधिकार तथा सुधारके नामपर आज जो अनर्गल अनाचार हो रहा है, उससे तो सुधारकी जगह संहार ही हो रहा है। आजकल जड़को काट डालना ही सुधार समझा जाता है। इस सुधारोन्मत्तताने भी दुराचारके पथपर समाजके युवा-युवतियोंको अग्रसर करनेमें बड़ी भारी सहायता पहुँचायी है।

सुधारमें भी संयमकी आवश्यकता है। असंयमपूर्ण सुधारसे जितना नाश होता है, उतना सुधार न होनेसे नहीं होता। आज असंयमपूर्ण सुधारकी भयावनी धारा सब ओर बह रही है। इसमें किसी भी पुरानी मर्यादा, सद्भावना और सात्त्विकताको स्थान नहीं है। बस, विध्वंस—केवल विध्वंस! इस विध्वंसकी चिनगारीका यह दुष्ट फल है कि हमारी सती, सदाचारिणी, शीलसंकोचवती, पुण्यचरित्रा और धर्मभीरु देवपूजिता कुलकन्याएँ मोहवश आँखें मूँदकर नारकीय अग्निकुण्डमें कूदनेको तैयार हो रही हैं और हम उन्मत्त होकर इसे मान रहे हैं—उन्नति!!!

यद्यपि कालकी प्रतिकूलतासे कठिनता बहुत है; परंतु सावधानीके साथ उत्साहपूर्वक अनवरत चेष्टा की जाय तो बहुत अंशमें यह बढ़ता हुआ पाप कम हो सकता है।

मेरे विचारसे इस पापसे बचनेके ये उपाय हैं—

१. यथासाध्य शिक्षाक्रममें धार्मिक और सदाचार-सम्बन्धी पुस्तकें रखवाना।

२. प्राचीन कथाओं, उपदेशों और युक्तियोंद्वारा भारतीय सभ्यताके महत्त्वका प्रचार करना।

३. स्कूल-कालेजोंमें लड़के-लड़कियोंको एक साथ नहीं पढ़ाना।

४. कन्याओंको अंग्रेजीकी उच्च शिक्षा दिलाने मोह छोड़ देना।

५. ईश्वर और धर्ममें श्रद्धा बढ़े—ऐसे साहित्य विचारोंका प्रचार करना।

६. यथासाध्य सिनेमा आदि न देखना और उन बुराइयोंसे घरको तथा समाजको बचाये रखनेकी चेष्टा कर

७. अपने जान-पहचानमें कोई लड़की चित्रपटमें ना करना चाहे तो उसे चित्रपटकी बुराइयाँ समझाकर रोकना

८. माता-पिता या अभिभावकोंको यह ध्यान रख जिसमें युवती होनेके पहले ही उसका विवाह कर दिया जा

९. यथासाध्य लड़कोंको भी बहुत बड़ी उम्रतक कुँ न रखा जाय। मैंने विश्वस्त सूत्रसे सुना था कि भारतवर्षके प्रसिद्ध बड़े नगरकी सरकारी युनिवर्सिटीके छात्रोंमें प्रतिशत अविवाहित लड़के बुरी बीमारियोंसे ग्रसित हैं। यह सत्य है तो बड़े ही दुःखकी बात है। अरण्यवा विषयत्यागी विरक्त पुरुषोंके हृदयमें भी जब दुःसंग विकार उत्पन्न हो जाता है, तब आजकलके विलासिता अमर्यादित, धर्मभयशून्य वातावरणमें, फैशन और सजाव सने हुए, शृंगारकी कविताएँ और नाटक-उपन्यास पढ़नेवा कृत्रिम उपायोंसे संततिनिरोधकी सुविधा रहते साथ- रहनेवाले युवक-युवतियोंसे सर्वथा पवित्र बने रहनेकी आ रखना, उनकी शक्तिसे अधिक आशा करना है—दुराशा है। अतएव योग्य वयमें उनका विवाह कर देना उत्तम है।

१०. पढ़नेवाली लड़कियोंमें भी फैशन न आये

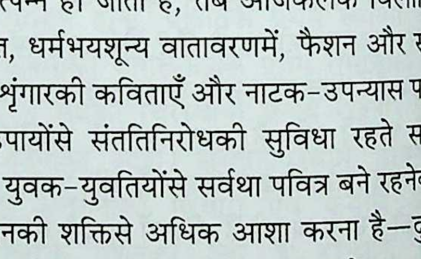

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे घरका काम-काज खुद कर सकें, ऐसी आदत माता-पिताको खुद आदर्श बनकर उनमें डालनी चाहिये। उन्हें घरका काम सिखाना और उनसे कराना चाहिये। फैशन, विलासिता, आलस्य, आरामतलबीके विषैले भावोंसे उन्हें बराबर बचाना चाहिये। याद रखना चाहिये कि गृहस्थी-संचालनमें निपुण, शील और चरित्रवती कर्तव्यपरायणा स्त्री ही वास्तवमें शिक्षिता है, कई भाषाओंको जाननेवाली नहीं।

११. रूप-प्रतियोगिताके विचारोंका घोर विरोध करना चाहिये। कम-से-कम भारतीय संस्कृतिकी दृष्टिसे तो यह बहुत ही बुरी बात है। बाजारमें बैठकर रूप बेचनेवाली वेश्याओंसे भी यह व्यवहार नीचा है; क्योंकि यह भले घरोंकी कुलललनाओंद्वारा किया जाता है। हमारी आदरणीया माता और बहनोंको इसकी बुराइयाँ समझकर इससे दूर रहना चाहिये, इतना ही नहीं, ऐसे आयोजन इस देशमें न होने पायें, ऐसी भी चेष्टा करनी चाहिये।

१२. जो वास्तवमें सुधार करना चाहते हैं, वे महानुभाव संयम और धीमी चालसे चलनेकी कृपा करें। डालियोंके सुधारके लिये पेड़की जड़ न उखाड़ें। ऐसा उपदेश न करें, जिसमें भोगोंकी प्रवृत्ति जोर पकड़े। इन्द्रिय-भोगोंके लिये संतति-निरोधक कृत्रिम उपायोंको काममें लानेकी कभी सलाह न दें। ये उपाय अप्राकृतिक हैं और दोषयुक्त हैं तथा व्यभिचारकी वृद्धिमें बड़े ही सहायक हैं। जनसंख्याकी वृद्धि, बीमारी, दरिद्रता आदि कारणोंसे संतति-निरोधकी आवश्यकता होती है, परंतु उसका भी असली इलाज संयम ही है।

इसी प्रकार सभी विधवा बहनोंको भी भोगोंके अभावमें दुःखोंके चित्र दिखलाकर उनके मनको न बिगाड़ें, उन्हें संयमके मार्गसे च्युत न करें। विधवामात्र ही संयमसे नहीं रह सकतीं, ऐसा मानना उचित नहीं है। वातावरणके दोषसे ही विकार उत्पन्न होता है। आज भी सैकड़ों पवित्र विधवाएँ हैं, उनके पवित्र शीलव्रतपालनके आत्मविश्वास और उनकी प्रबल इच्छा-शक्तिको कमजोर न करें।

ऐसे साहित्य और चित्रोंका प्रचार न करें, जिनसे स्त्री-पुरुषोंके विषय-भोगकी प्रवृत्तिको उत्तेजना मिलती हो। (खेद है कि आजकल बहुत-से साहित्यिक और चित्रपट-सम्बन्धी पत्रोंमें युवती स्त्रियोंके छायाचित्र बहुत अधिक मात्रामें छपते हैं, जिनका परिणाम अच्छा नहीं हो रहा है। सम्मान्य सम्पादक महोदयोंकी सेवामें मेरी नम्र प्रार्थना है कि वे एक बार इस विषयपर गम्भीरतापूर्वक विचार करें।) फैशनके दोष और सादगीके गुण उनके सामने रखें और पाश्चात्य संस्कृतिके पीछे आँखें बन्द करके बह जानेकी सलाह कृपया कभी न दें।

[यह मेरी हाथ जोड़कर विनम्र प्रार्थना है, आज्ञा नहीं। मुझे इसीमें सच्चा सुधार दीख पड़ता है। ऐसा मेरे दृष्टिकोणके कारण ही हो सकता है। मैं किसीकी नीयत और ईमानदारीपर किसी प्रकारका सन्देह या दोषारोपण नहीं करता, नम्रतापूर्वक सबके सामने अपने ये विचार विचारार्थ रखता हूँ। इनमें जो अच्छे मालूम हों, उनपर विचार करें, शेष तो मेरे विचार मेरे पास ही रहेंगे। कहीं कटूक्ति आ गयी हो तो क्षमा करें।]

१३. जो सज्जन इन विचारोंको मानते हों, उनको चाहिये कि समाचारपत्रों तथा सामाजिक और साहित्यिक मासिक पत्रोंद्वारा इन भावोंका प्रचार करनेकी चेष्टा करें। धर्महीन शिक्षा, यूरोपकी सामाजिक संस्कृति, लड़के-लड़कियोंकी सहशिक्षा, लड़कियोंको अंग्रेजीकी उच्च शिक्षा, युवतीविवाह, फैशन और विलासिता, वर्तमान चित्रपट, सौन्दर्यप्रतियोगिता, संताननिरोधके कृत्रिम साधन और सुधारके नामपर होनेवाले संहारके दोष नम्रता और प्रेमके साथ युक्तिपूर्ण शब्दोंमें सबके सामने बार-बार रखें और इनके विपरीत गुणोंके युक्तिपूर्ण लाभ बतलायें।

ऐसा होगा तो आपलोग दुराचारके पथपर जाते हुए हमारे समाजके जीवनस्वरूप हमारे हृदयके टुकड़े और हमारी आँखोंके तारे कोमलहृदय लड़के-लड़कियोंको विनाशके भड़कीले पथसे हटाकर सदाचारके सुहावने पथपर ला सकेंगे। इसीमें देश और संस्कृतिका कल्याण है।

[इसमें मैंने जो कुछ लिखा है, किसीका दिल दुखानेके लिये नहीं है। वस्तुस्थिति जैसी कुछ मेरे ध्यानमें आयी, उसीका दिग्दर्शन कराया गया है। इसमें मेरी भूल भी हो सकती है। भूलोंके लिये मैं पहले ही क्षमा चाहता हूँ। वास्तवमें मैं ऐसा अनुभवी और दूरदर्शी मनुष्य नहीं हूँ, जो समाज-सुधारके लिये यथार्थ उपाय बता सकूँ। सम्भव है, मेरा यह निरीक्षण और परीक्षण ही सदोष हो, परंतु मुझे अपने विचारोंमें इस समय कोई सन्देह नहीं है।] [समाप्त]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपमान—एक ईश्वरीय अनुग्रह

व्यावहारिक तथा पारमार्थिक दोनों मार्गोंमें प्रगति करनेकी इच्छावाले व्यक्तिको जीवनमें शान्ति, धैर्य, सहिष्णुता और तितिक्षा आदि गुण अपनाने पड़ते हैं। अनुकूल परिस्थितिमें सबको अपनेमें इन गुणोंके होनेका भ्रम होता है, परंतु कसौटी (प्रतिकूलता)-के समय महारथी कर्णकी शस्त्रविद्याके समान ये सद्गुण लुप्त हो जाते हैं। अपमान भी इसी प्रकारकी एक कसौटी है।

शास्त्रका वचन है—

प्रतिष्ठा शूकरीविष्ठा गौरवं रौरवं समम्।
अभिमानं सुरापानं तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

'प्रतिष्ठाको शूकरीकी विष्ठाके समान, गौरवको रौरव नरकके समान और अभिमानको सुरापानके समान गिना जाता है, अतः साधकको इन तीनोंका त्याग करना चाहिये।'

तथा—

सम्मानं कलयातिघोरगरलं नीचापमानं सुधाम्।

'सम्मानको अत्यन्त घोर विष और नीच मनुष्यके द्वारा किये गये अपमानको अमृतके समान समझना चाहिये। देहाभिमान गन्दगी और कूड़ेका ढेर है।'

मान-हानिसे, तिरस्कारसे, निन्दासे, अपमानसे जो दुःख होता है, वह (दुःख) देहाभिमानीको ही होता है।

हमारे जीवनके अधिकांश दुःख देहाभिमानके ऊपर ही आधारित हैं। यह देह-भाव दूर होनेपर ही दुःखोंका नाश सम्भव है।

यह देह-भाव कैसे दूर होगा?

सुख-दुःख दोनोंको समान समझे तथा मान-अपमानको और निन्दा-प्रशंसाको सम अनुभव करे। सुख-दुःख, मान-अपमान आदिमें समताकी भावना जाग्रत् करे तो धीरे-धीरे देहभाव दूर हो जायगा। श्रीअष्टावक्रजीके कथनानुसार—

'न प्रीयते वन्द्यमानो निन्द्यमानो न कुप्यति।'

'सच्चा सन्त वन्दना करनेसे प्रसन्न नहीं होता और निन्दासे कुपित नहीं होता।'

सन्त-वचन है—'शब्द सहन करना आत्मनिष्ठा है। देहभाव रहनेपर कोई शब्द बुरा लग सकता है, परंतु मैं देह नहीं हूँ, मैं अक्षर हूँ, ब्रह्म हूँ—ऐसा माने तो शब्द बुरा न लगे। अखण्ड ज्ञानमें स्थिति हो जाय तो शब्द आकाशका अंश जान पड़े।'

तथा—

'शब्द आकाशका धर्म है। निन्दा शब्द है, अतः आकाशका धर्म होनेके कारण आकाशमें लुप्त हो जाता है। शब्द आत्माको स्पर्श नहीं कर सकता।' अतएव निन्दा और अपमानसे क्षुब्ध और व्याकुल होना साधनाकी अपरिपक्वता बतलाता है। आत्मनिष्ठाके अभ्यासीको इस अवस्थासे मुक्त होना चाहिये।

भगवान् बुद्धका कहना है कि जहाँ अनादर और अपमान होता है, वहाँ रहना चाहिये तथा जहाँ मान-सम्मान हो, वहाँसे हट जाना चाहिये। स्मृतिकार श्रीमनुजी कहते हैं—

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा॥
(२।१६२)

'ब्राह्मणोंको (साधकोंको) विषके समान सम्मानसे सदा उद्विग्न होना चाहिये और अमृतके समान अपमानकी आकांक्षा करनी चाहिये।'

एक अन्य स्थलपर भी लिखा गया है—

अमृतस्येव तृप्येत अपमानस्य योगवित्।
विषवच्च जुगुप्सीत सम्मानस्य सदा द्विजः॥

'ब्राह्मण (साधक)-को अमृतके समान अपमानसे तृप्त होना चाहिये और विषवत् सम्मानसे जुगुप्सा प्रकट करनी चाहिये।'

महात्मा कबीरको निन्दित करनेके लिये कुटिल लोगोंने समकालीन एक हीन-चरित्रा नारीको रुपये देकर खड़ा किया था। उस स्त्रीने भरी सभामें कबीरजीपर एक घृणित लांछन लगाया। महात्मा कबीरने अपमान-लांछन और तिरस्कारको सहज ही स्वीकार कर लिया। अपनी अपकीर्तिमें भी उनको परमात्माका अनुग्रह दीख पड़ा। अन्तमें उस स्त्रीको बहुत ही पश्चात्ताप हुआ और सत्य सबके सामने प्रकट हो गया।

निन्दा, अपकीर्ति और अपमानसे क्षुब्ध न होकर सन्त-महात्मा उन्हें पुरस्कार और ईश्वरका प्रसाद मानते हैं।

'अपमानात्तपोवृद्धिः सम्मानाच्च तपःक्षयः।'

'अपमान तपोवृद्धि और सम्मान तपःक्षयका कारण होता है।'

निन्दा तथा अपमान करनेवाले तो हमारा कल्याण ही करते हैं—

आक्रोशसमो लोके सुहृदन्यो न विद्यते।
यस्तु दुष्कृतमादाय सुकृतं स्वं प्रयच्छति॥

'निन्दकके समान संसारमें अन्य कोई सुहृद् नहीं है, जो अपने पुण्यको देकर पाप ले लेता है।'

साधक इस बातपर बारम्बार ध्यान दें और अपमानमें ईश्वरके अनुग्रहका अनुभव करके आत्मनिष्ठ होनेका अभ्यास करें, यही अभ्यर्थना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधन ...

[नाम-जपकी आवश्यकता]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

आप अनुग्रह करके मेरी एक बातको मान लें। वह ऐसी बात है, जो आपकी जानी हुई है, कोई नयी बात नहीं है। कोई भी भाई क्या ऐसा जानता है कि मैं पहले नहीं था, पीछे नहीं रहूँगा और अभी नहीं हूँ? अपने विषयमें यह प्रश्न शरीरको लेकर नहीं है; क्योंकि शरीर तो पैदा होनेसे पहले नहीं था और मरनेके बाद नहीं रहेगा, परंतु मैं पहले नहीं था और आगे नहीं रहूँगा तथा मैं कभी नहीं था, ऐसा किसी भाई-बहनको अपने अभावका अनुभव भी होता है क्या? अपने अभावका अनुभव किसीको कभी नहीं होता। हाँ, मैं क्या था, मैं क्या हूँ और मैं क्या रहूँगा?—ऐसा ज्ञान चाहे भले ही न हो, परंतु मैं नहीं हूँ—ऐसा भाव कभी किसीके नहीं होता और यह सन्देह भी नहीं होता कि 'मैं कभी नहीं हूँ, प्रत्युत मैं तो हूँ ही—यह भाव सदैव बना ही रहता है।'

आप जो कहते हैं कि 'मैं हूँ'—यह जो अपनी सत्ता है, अपना होनापन है, यह ऐसा होनापन है, जिसका कभी अभाव नहीं होता, जिसमें कभी कमी नहीं आती। तो फिर उसमें अभाव कैसे होगा? उसमें अभाव होता ही नहीं, किंचिन्मात्र भी अभाव नहीं होता। इसीलिये कहते हैं कि उसमें कमी नहीं होती। जब उसमें कमी नहीं होती तो उसके लिये क्या चाहिये? कुछ नहीं। चाहना तो कमीमें ही होती है। जब कमी नहीं है तो चाहिये ही क्या? अर्थात् कुछ नहीं चाहिये। वह स्वयं है, ज्यों-का-त्यों है। उसका और क्या है? कुछ नहीं, अपना कहलानेवाला शरीर भी उसका अपना नहीं है, क्योंकि शरीर नाशवान् है, यह उसका कैसे हो सकता है? जो नित्य-निरन्तर है, वह ज्यों-का-त्यों है, उसका कभी अभाव होता नहीं, उसमें कभी कमी आती नहीं तो उसके लिये करना क्या शेष रहा? पाना क्या शेष रहा? जानना क्या शेष रहा? यह बात ठीक है, परंतु हमारे लिये तो पाना भी बाकी है, करना भी बाकी है, जानना भी बाकी है, इसमें यह बात ध्यान देनेकी है कि आप वास्तवमें जो हैं, उसमें स्थित न होकर जो प्रतिक्षण नष्ट हो रहा है—ऐसे शरीरमें स्थित हो जाते हैं। उसमें स्थित होनेसे ही जानना बाकी है, करना बाकी है और पाना बाकी है।

इस बातको भी आप जानते हैं कि शरीर प्रतिक्षण बदलता है, कभी भी एकरूप नहीं रहता। अगर यह एकरूपसे रहता तो बचपनवाला शरीर अभी भी रहना चाहिये था, पर बचपनका शरीर अभी नहीं है, यह सबका अनुभव है। बचपन बदला है, वह अमुक दिन, अमुक महीने और अमुक वर्षमें नहीं बदला है, प्रत्युत वह प्रत्येक वर्ष, प्रत्येक महीने, प्रत्येक दिनमें बदला है, इतना ही नहीं, वह प्रत्येक घण्टे, प्रत्येक मिनट और प्रत्येक सेकेण्डमें बदला है। तो केवल बदलनेके पुंजका नाम शरीर है। बदलनेका पुंज यानी केवल परिवर्तन-ही-परिवर्तनका नाम शरीर हुआ। इसमें कोई सन्देहकी बात है क्या?

स्थूल बुद्धिसे पदार्थ दीखते हैं, परंतु वास्तवमें पदार्थ हैं कहाँ? वस्तु है कहाँ? केवल परिवर्तनरूप क्रिया-ही-क्रिया है, वस्तु है ही नहीं। जैसे पंखा चलता है तो गोल चक्कर दीखता है, परंतु गोल चक्कर है नहीं, ऐसे ही तेजीसे परिवर्तन होनेके कारण ये पदार्थ हैं—रूपसे दीखते हैं, यह शरीर है—ऐसा दीखता है। इसमें 'है' कहनेमें देरी लगती है, पर इनके बदलनेमें देरी नहीं लगती। यह हरदम बदलता है। जब प्रतिक्षण बदलता है तो पहलेवाला रूप नहीं रहता और आप वे ही रहते हो। आप कभी बदलते नहीं, इसीको 'है' कहते हैं, पर आप जब इस परिवर्तनशील शरीरके साथ अपनेको मिला लेते हैं, तब कामना, इच्छा, तृष्णा आदि पैदा होती हैं। इसीमें सब अनर्थ होते हैं।

मैं नित्य-निरन्तर हूँ, अगर मेरा रहना नित्य-निरन्तर नहीं होता तो पहले किये हुए कर्मोंका फल अब क्यों भोगना पड़ता? और अब जो कर्म करेंगे, उनका फल आगे किसको भोगना पड़ेगा? हम पहले थे, तब न कर्म किये, जिनका अब भोग हो रहा है और अगाड़ी रहेंगे तभी तो अभी किये कर्मोंका फल भोगना पड़ेगा। जो हमने पहले कर्म किये थे, वे भी परिवर्तनशीलके साथ मिलकर ही किये, उनका फल भोगना होता है और अब भी इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ मिलकर ... अथवा दूसरे शरीरोंमें भोगने। [illegible] इस शरीरसे न मिले तो न पहलेका कर्म स्पर्श करेगा, न अभीका करेगा और न भविष्यमें जन्म लेकर कर्मोंका फल भोगना होगा; क्योंकि वह है, ज्यों-का-त्यों है। उसका अनुभव करनेवाले महापुरुषोंने कहा है—

है सो सुन्दर है सदा नहीं सो सुन्दर नाहिं।
नहीं सो परगट देखिये है सो दीखे नाहिं॥

'है' दीखे कैसे? क्योंकि वह सबका द्रष्टा है। जैसे आँखसे सबको देखते हैं, पर आँखसे आँख नहीं दीखती है, परंतु जिससे देखते हैं, वह आँख है। इसी प्रकार हम अपने होनेपनको देख नहीं सकते। जिससे देखते हैं, वह 'है' है अर्थात् जिस 'है'पनसे यह सब दीख रहा है, वह 'है'पन ज्यों-का-त्यों है। इस बातको आप मान लें। आप कहते हैं कि हमें उसका अनुभव हो रहा है। उस अनुभवके लिये आप जिज्ञासा करें, व्याकुल हो जायँ। 'राम-राम' करते रहें, परंतु 'है' वहाँ भी है, जहाँसे आप 'राम-राम' करते हैं। अर्थात् वह सब जगह है।

आप कृपा करके यह एक बात मान लो कि वह 'है' सब समय, सब जगह और सबमें है। यह मत मानो कि वह दूर है, आयेगा, मिलेगा अथवा हम उसके पास जायँगे, तब कहीं मिलन होगा। यदि ऐसी मान्यता बना रखी है तो आप भूले हुए हैं। इसमें आप तो समझते हैं कि हम भगवान्‌के पास जा रहे हैं, पर वास्तवमें आप भगवान्‌से अपनेको दूर कर रहे हैं। भगवान्‌से अपने सम्बन्धके अभावको दृढ़ कर रहे हैं। 'अभी नहीं मिलेंगे', 'अभी नहीं मिलेंगे'—ऐसी धारणा रखते हुए 'राम-राम-राम' ऐसा जप कर रहे हैं। इस वास्ते कृपा करके इस धारणाको छोड़ दो। हमको अनुभव नहीं हो रहा है—यह बात मानो तो कोई हरज नहीं, परंतु भगवान् तो हैं। 'मैं हूँ'—इसमें भी वे हैं; मन, बुद्धि, वाणीमें भी वे हैं। जहाँ 'राम-राम' कह रहे हैं, वहाँ भी हैं। हम सुन रहे हैं, वहाँ भी वे हैं—ऐसा मान लो। भले ही वे आपकी समझमें आज नहीं आते, दीखते नहीं, पर वे हैं, इसमें सन्देह मत करो। सन्तोंने, महात्माओंने कहा है कि 'वे हैं'।

बस 'है'—ऐसा मानते हुए लगनपूर्वक 'राम-राम' तो बहुत जल्दी अनुभव हो जायगा, पर जबतक ऐसा अनुभव न हो, तबतक जिज्ञासा जोरदार रखो, 'राम-राम' जपना छोड़ो मत; क्योंकि संसारमें इसके सिवाय और कोई सहारा नहीं है। मरनेपर भी कहते हैं—'राम-नाम सत्य है'। शरीर-संसार असत् है, इस वास्ते 'राम-राम' कहते रहो। 'र'में, 'आ'में, 'म'में, जीभमें, मनमें, फुरणामें, चिन्तनमें, बुद्धिमें, 'मैं'पनमें और सब जगह वह परमात्मा परिपूर्ण है। जो सबमें रमण करता है और सब उसीमें ही रहते हैं, उसका नाम 'राम' है।

यह 'राम'-नामका जप महान् साधन है और 'राम'-नाम लेना सुगम भी बहुत है। लकवाकी बीमारीवाले एक भाई थे, वे दूसरा कुछ नहीं बोल सकते थे, पर 'राम-राम' कर सकते थे। उनसे भी पहले एक भाई कलकत्तामें मिले थे, वे भी कुछ नहीं बोल सकते थे, केवल 'रा म' कह सकते थे। तात्पर्य है कि लोकमें, परलोकमें, सब जगह शान्ति देनेवाला, सुलभ तथा सबको सुख देनेवाला है यह 'राम'-नाम!

सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥

आप हमारी यह एक बात मान लो, वह चाहे श्रद्धासे मान लो, विश्वाससे मान लो, युक्तिसे मान लो, अनुभवसे मान लो, चाहे सोच-समझकर मान लो। यह दृढ़तासे मान लो कि वह परमात्मा सब जगह है, सबमें है, सब वस्तुओंमें है, सबका अपना है, सबका सुहृद् है—वही हमारा है, पर साधक मानता है कि भजन करनेसे बादमें भगवान् मिलेंगे, उससे बड़ी भूल इसमें यही होती है कि वह भविष्यकी आशा रखता है और भविष्यकी आशा यह मान लो कि परमात्मा तो मिला हुआ ही है। हमें दीखता नहीं, पर वह है अवश्य, हमें अनुभव नहीं हुआ, पर वह है। भगवान्‌का अभाव स्वीकार मत करो। अपनेको अनुभव नहीं हो रहा है, अनुभव कैसे हो, इसके लिये रात-दिन 'राम! राम! राम! राम! राम! राम!' इस प्रकार रट लगाओ। फिर देखो तमाशा! कितनी जल्दी तत्त्वकी अनुभूति होती है।

जो जीव चाहे मुक्ति को तो सुमिरीजै राम।
दरिया गेले चालताँ जैसे आवे गाम॥

नारायण! नारायण! नारायण!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'राम नाम अवलंबन एकू'

(गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी)

ऐ मानव! यदि तू भवसागरसे पार होना चाहता है, यदि तू चौरासी लाख योनियोंके चक्करसे बचना चाहता है, यदि तू सच्ची सुख-शान्ति प्राप्त करना चाहता है, यदि तू यमदूतोंकी मारसे बचना चाहता है और यदि तू श्रीराम प्रभुका साक्षात्कार करना चाहता है तो तू बस एक काम कर कि अपने मुखसे हर समय, अहर्निश श्रीराम-राम कहा कर, श्रीराम-राम रटा कर, श्रीरामनामका स्मरण किया कर और श्रीरामनामामृतका पान किया कर।

आजके इस घोर कलिकालके समयमें जबकि चारों ओर घोर पापोंका बोलबाला हो रहा है, झूठ-छल-कपटका साम्राज्य हो रहा है और देशका शासक वर्गतक भ्रष्टाचारमें संलिप्त है, ऐसे महान् घोर भयंकर समयमें योग, यज्ञ, तप, ज्ञान-दान आदि साधन बनने तो बड़े ही कठिन और असम्भव हैं, फिर भला हमारा कल्याण हो तो कैसे हो, यह एक बड़ी विकट समस्या हमारे सामने उपस्थित है। पूज्यपाद गोस्वामी तुलसीदासजीने इस विकट समस्याका डंकेकी चोटपर समाधान करते हुए घोषणाकर कहा है—

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥
कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥

बस, इस युगमें एकमात्र श्रीरामनामका आश्रय ही हमारा उद्धार करनेवाला है, हमें परमानन्द देनेवाला है, हमें भवसागरसे पार करनेवाला है। इसलिये तुम श्रीरामनाम लो, औरोंको भी श्रीरामनाम जपनेका आदेश, उपदेश और प्रेरणा दो। स्वयं भी खूब मस्त होकर श्रीरामनामामृतका पान करो और औरोंको भी अपने साथ लेकर उन्हें भी श्रीरामनामामृतका पान कराओ। श्रीरामनामके बलपर स्वयं भी भवसागरसे पार हो जाओ और अन्य प्राणियोंको भी श्रीरामनामका चस्का लगाकर उन्हें भी भवसागरसे पार ले जाओ। श्रीरामनामका बड़े जोर-शोरसे कीर्तन करो, जिसे सुनकर अन्य जीव-जन्तु, कीट, पतंग, जड़-चेतन भी तर जायँ और भवसागरसे पार हो जायँ। शास्त्रोंमें डंकेकी चोटपर कहा है—

भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम्।
तर्जनं यमदूतानां रामरामेति गर्जनम्॥

राम-रामका घोष करना सम्पूर्ण संसार-बीजोंको भून डालनेवाला है और सम्पत्ति प्राप्त करानेवाला है तथा यमदूतोंको भयभीत करनेवाला है। श्रीरामनामके बलपर ही श्रीकबीरदासजीने, श्रीरैदासजीने, श्रीधन्नाजाटने, श्रीकर्माबाईने तथा अन्य लोगोंने बड़ी उच्चकोटिकी गति प्राप्त की थी, श्रीरामनामके बलपर ही वे बड़े महान् सिद्ध सन्त बन गये थे, वे स्वयं तो श्रीरामनामके बलपर तर ही गये थे और अन्य लाखों जीवोंको भी श्रीरामनामामृतका पान कराकर उन्हें भी भवसागरसे पार लगा गये थे और मुक्तिका द्वार खोल गये थे। यह श्रीरामनामका ही तो एकमात्र बल था और श्रीरामनामका ही तो एकमात्र अद्भुत चमत्कार था कि राक्षसराज घोर नास्तिक हिरण्यकशिपुने अपने पुत्र भक्तराज श्रीप्रह्लादजी महाराजको श्रीरामनाम लेनेसे रोका, पर वे जब श्रीरामनाम लेनेसे तनिक भी बाज नहीं आये तो उसने फिर श्रीप्रह्लादजी महाराजको पहाड़ोंपरसे गिरवाया, साँपोंसे डँसवाया, जहर पिलवाया, हाथियोंसे रौंदवाया और धधकती अग्निकी प्रचण्ड ज्वालाओंके बीच बिठवाया, पर उस श्रीरामभक्त बालकका इतनेपर भी तनिक भी बाल बाँकातक नहीं हुआ और श्रीरामनामके प्रतापसे अग्नि भी शीतल हो गयी। इस श्रीरामनामकी भक्तिकी शक्तिके बलपर ही भक्तराज श्रीप्रह्लादजी महाराजने सबके सामने खम्भेमेंसे साक्षात् अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक परात्पर परब्रह्मको भगवान् श्रीनृसिंहजी महाराजके रूपमें प्रकटकर सनातनधर्मद्रोही घोर नास्तिक राक्षसराज हिरण्यकशिपुका भगवान् नृसिंहके द्वारा पेट फड़वाकर सनातनधर्मकी पताका बड़े शानसे फहराकर दिखायी थी। काश! यदि श्रीरामभक्त प्रह्लादजी महाराजको श्रीरामनामका सहारा न होता तो समस्त विश्व आज घोर नास्तिक बन गया होता। श्रीप्रह्लादजीने श्रीरामनामके द्वारा अपना तो कल्याण किया ही, समस्त हिन्दू जातिको भी घोर नास्तिक होनेसे बचा लिया था। श्रीरामनाम, श्रीकृष्णनामके बलपर ही तो पूज्या भक्तिमती श्रीमीराबाईने महान् भयंकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषैले नागको भगवान् श्रीशालग्राम और जहरको अमृत बनाकर दिखाया था। याद रखो कि श्रीरामनाममें बड़ी भारी अद्भुत—विलक्षण मिठास है। श्रीरामनाम मधुरातिमधुर है। श्रीरामनामकी मिठासके सामने संसारकी सारी मिठास फीकी है, तुच्छ है, हेय है और त्याज्य है। श्रीरामनामकी मधुरिमाका भला कौन वर्णन कर सकता है? जिसे भी इस श्रीरामनामकी मिठासका तनिक भी चस्का लग गया, उसे फिर कभी जीवनभर छूटता नहीं।

राम कहने का मजा जिसकी जुबाँ पर आ गया।
वह मुक्त जीवन हो गया, चारों पदारथ पा गया॥

श्रीरामनाममें जीवमात्रका अधिकार है। स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, ब्राह्मण, शूद्र, राजा, रंक, गृहस्थी, संन्यासी, विद्वान् आदि सभी श्रीरामनामामृत पान करनेके अधिकारी हैं। इसमें विधि-निषेधका कोई प्रश्न नहीं है। हर समय और हर जगह, हर अवस्थामें श्रीरामनाम जप सकते हैं, कोई पाप नहीं है, वरन् महान् पुण्य-ही-पुण्य है। इसलिये सोते-जागते, खाते-पीते, चलते-फिरते, उठते-बैठते, नहाते-धोते हर समय श्रीरामनामका जप करो, स्मरण करो, श्रीरामनामका संकीर्तन करो। आपसमें एक-दूसरेसे मिलते समय नमस्ते, गुडमार्निंग आदि निरर्थक न बोलकर 'राम-रामजी', 'राम-राम' या 'जय रामजीकी' कहकर सबका अभिवादन करो और उसका तथा अपना जीवन सार्थक करो।

तुलसी जिनके मुखन ते धोखेहु निकसत राम।
तिनके पग की पगतरी मेरे तन को चाम॥

अपने प्राणप्रिय सत्य सनातनधर्मकी शरणमें रहो, अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मका पालन करो और अण्डा, मांस, प्याज, शराब, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट आदिका खाना-पीना एकदमसे बन्द करो। श्रीरामनामका आश्रय लेकर श्रीरामनामामृतका पानकर अपना, अपने कुलका, अपनी हिन्दू जातिका और अपने देशका कल्याण करो—

राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे।
राम के भजन बिनु, मुक्ति नहिं पाव रे॥

[प्रे०—श्रीधर्मेन्द्रजी गोयल]

मीरा

(श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)

मीरा हो गई प्रेम बावरी
मीराऽऽऽ हो गई प्रेम बावरी।
लाज तजी घर-द्वार तजा सब
महल तजे और राज तजा सब।
प्रेम-पन्थ पे कदम बढ़ाया
फिर जग में कुछ भी न भाया।
इकतारा ले छोड़ उदासी
रोकर गाती हँसकर नाची।
प्रियतम अपने कृष्ण बनाये
बन गई उनकी प्रेम पियासी।
गिरधारी वो बाँके बिहारी
मीरा बन गई उनकी दासी।
मोर मुकुटधारी गिरधारी
मीरा के संग वो बनवारी।
आठ याम संग का सुख लेती
दुनिया कहती प्रेम बावरी।

मन मन्दिर में बस एक मूरत
श्याम सलोनी बाँकी सूरत।
निसिदिन व्याकुल होकर गाती
रह-रहकर भावुक हो जाती।
मोहित हो-होकर गिर जाती
प्रेमाकुल होकर सुख पाती।
महाभाव की दशा निराली
रास अनन्तर गोपी वाली।
उमड़ प्राण प्रेम से जाता
नश्वर तन कैसे सह पाता।
मरूभूमि से चली बावरी
वृन्दावन आ छबी निहारी।
नटवर नागर मिले द्वारिका
मिलकर हो गई मीरा न्यारी।
मिल गई इक दिन तन बनवारी
समा गई जिन पर थी बारी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद्भुत सेवक श्रीहनुमान्

(डॉ० श्रीअभिमन्युसिंहजी)

रामभक्त हनुमान् एक महान् सेवकके रूपमें देवत्वको प्राप्त कर चुके हैं। इससे पता चलता है कि उत्कृष्ट सेवा-भावना मनुष्यको देवता बनानेमें सहायक होती है। यहाँ रामायणके सन्दर्भोंको ध्यानमें रखते हुए श्रीहनुमान्‌जीके इसी अद्भुत व्यक्तित्त्वपर संक्षिप्त विचार प्रस्तुत है। रामायणकथामें श्रीहनुमान्‌जीका प्रवेश किष्किन्धाकाण्डमें सुग्रीवके मन्त्रीके रूपमें होता है, पर यहाँ वे एक विचारशील विद्वान्‌के रूपमें प्रकट होते हैं, जिसमें नय और विनय दोनोंका समावेश है।

विनयशील विद्वान्—सुग्रीवके दूतके रूपमें जब वे श्रीराम और लक्ष्मणसे मिलते हैं तो अपने बुद्धि, विवेक और व्यवहारसे उन्हें अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। वे व्याकरण आदिकी दृष्टिसे शुद्ध भाषाका प्रयोग करते हुए अपने मुख, नेत्र, ललाट और भौहोंके संचालनसे भी सज्जनोंकी भाँति व्यवहार करते हुए दिखायी पड़ते हैं। श्रीरामने स्वयं उनके विनयी और विद्वान् होनेको इस प्रकार प्रमाणित किया—

अविस्तरमसंदिग्धमविलम्बितमव्यथम् ।
उरःस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम्॥
संस्कारक्रमसम्पन्नामद्भुतामविलम्बिताम् ।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम्॥
अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया।
कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि॥

(वा०रा० ४।३।३१—३३)

भगवान् श्रीराम लक्ष्मणजीसे कहते हैं—सुमित्रानन्दन! इनकी वाणीमें न तो अधिक विस्तार है और न सन्देह करनेवाला शब्द-चयन। भाषाका उच्चारण स्पष्ट मध्यम स्वरमें हो रहा है। इनकी संस्कारसम्पन्न कल्याणकारिणी वाणी हृदयको आकर्षित करती है। यह विचित्र आकर्षित करनेवाली वाणी वधके लिये तलवार उठाये हुए शत्रुमें भी सद्भाव पैदा कर सकती है।

जब श्रीराम और श्रीलक्ष्मण हनुमान्‌के साथ सुग्रीवके स्थानपर पहुँचे तो हनुमान्‌जीने इन दोनोंका सीधा एवं संक्षिप्त परिचय इस प्रकार प्रस्तुत किया—

अयं रामो महाप्राज्ञ सम्प्राप्तो दृढविक्रमः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामोऽयं सत्यविक्रमः॥
इक्ष्वाकूणां कुले जातो रामो दशरथात्मजः।
धर्मे निगदितश्चैव पितुर्निर्देशकारकः॥

(वा०रा० ४।५।२-३)

हनुमान्‌जी बोले—हे महाप्राज्ञ! ये महान् पराक्रमी श्रीराम हैं, जो अपने भाई लक्ष्मणके साथ आये हुए हैं, ये इक्ष्वाकुवंशके राजा दशरथके पुत्र हैं, पिताके आदेशसे धर्मपालनमें लगे हुए हैं।

यहाँ हनुमान्‌जीका असंदिग्ध भाषण करनेवाला व्यक्तित्व प्रतीत होता है, परंतु जब तारा बालिके वधके शोकमें विह्वल हो रही है, वहाँ उनका तत्त्वविचारकरूप सामने आता है। वे ताराको समझाते हैं कि हे देवि! संसारके सभी जीवोंको अपने आचरणमें जुड़े गुण और दोषका उचित परिणाम प्राप्त होता है और परलोकमें जाकर जीव अपने शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगता है—

गुणदोषकृतं जन्तुः स्वकर्म फलहेतुकम्।
अव्यग्रस्तदवाप्नोति सर्वं प्रेत्य शुभाशुभम्॥

(वा०रा० ४।२१।२)

सुग्रीवके राजा बननेके पश्चात् जब वानरोंकी सेना देवी सीताकी खोजके लिये तैयार हो रही थी, उस समय श्रीरामने उनके अद्भुत सेवक होनेकी पहचान करते हुए

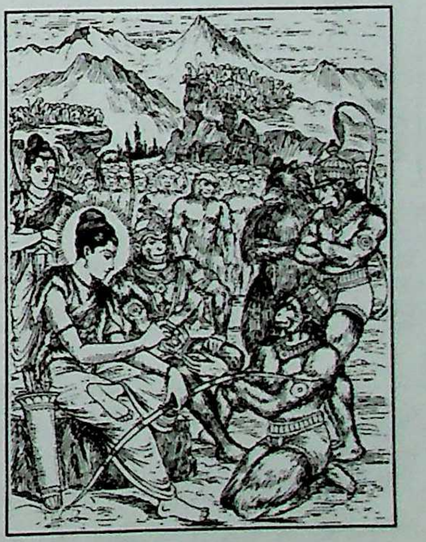

उन्हें अपने नामवाली अँगूठी भी दी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम्।
अङ्गुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परंतपः॥
अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा।
मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नानुपश्यति ॥

(वा०रा० ४।४४।१२-१३)

अँगूठी देनेसे स्पष्ट होता है कि हनुमान्के प्रति श्रीरामका विश्वास बढ़ चुका था। उन्हें ऐसा आभास हुआ कि सीताके पास यह वानरोत्तम ही पहुँचेगा और सीता उसको देखकर भयभीत भी हो सकती है। अतः इस उत्तम सेवकके हाथमें कोई ऐसी पहचान रहनी चाहिये, जिससे कि यह पता चले कि हनुमान् श्रीरामके पाससे आये हैं और उनके विश्वासपात्र भी हैं।

आगे चलकर वानर-सेना जब समुद्रके तटपर पहुँच गयी और वानरोंमें समुद्र पार करनेकी क्षमतापर ऊहापोह मचा हुआ था तो सेनानायक जामवन्तने हनुमान्की

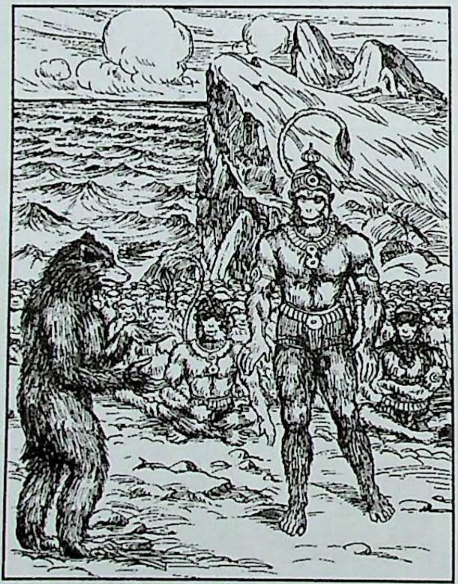

योग्यताको समझते हुए कहा—हे वानरश्रेष्ठ! तुम बल, बुद्धि, तेज और सत्त्वमें सब प्राणियोंमें बढ़कर हो, फिर समुद्र पार करनेके लिये स्वयंको तैयार क्यों नहीं कर रहे हो—

बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुङ्गव।
विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न सज्जसे॥

(वा०रा० ४।६६।७)

इसके पश्चात् सुन्दरकाण्डमें हनुमान्के समुद्र पार करनेसे लंकामें जाकर देवी सीताकी खोज तथा अपने बलके द्वारा लंकापति रावण तथा उसके नगरवासियोंको आक्रान्त करने तथा दूतके उत्कृष्ट धर्मका निर्वाहन करते हुए लौटकर श्रीरामको सीताके वृतान्तके साथ ही रावणकी सेनाके बल-पराक्रमका भी परिचय प्राप्त होता है। यह सब करते हुए तथा लंकामें भटकते हुए श्रीहनुमान्को जो कष्ट उठाना पड़ा, वह तो स्वाभाविक था ही, पर उससे भी अधिक श्रम लंका नगरीमें भटकते हुए देवी सीताकी पहचान करनेमें था। रावणके अन्तःपुरमें खोजते हुए उन्होंने मन्दोदरीको ही सीता समझ लिया,[1] पर अपनी प्रसन्नतापर प्रश्नचिह्न लगाते हुए विचार करने लगे कि यह सुन्दर साज-सज्जासे सुभूषित और प्रसन्न दिखनेवाली स्त्री सीता कैसे हो सकती है? यह सोती हुई रामकी विरहणी सीता नहीं है; क्योंकि विरहकी दशामें सीताको नींद कहाँसे आयेगी और वे उत्तम भोगों और साज-सज्जामें रुचि तो ले ही नहीं सकतीं और उन उत्तम चरित्रवाली स्त्रीके लिये मद्यपान करना सम्भव ही नहीं है।[2]

इस संकल्प-विकल्पसे उन्हें देवी सीताको पहचाननेकी सात्त्विक बुद्धि प्राप्त हो गयी और नगरमें भटकते हुए वे अशोक वनमें जाकर उनकी पहचान कर पाये। गुणशीलसे सम्पन्न तथा विनीत भावसे श्रीरामकी स्मृतिमें अपना समय बिता रही देवी सीताकी सात्त्विकता ही मानो रूप धारणकर बैठी हो, इस प्रकारकी देवी सीताको देखकर हनुमान्के नेत्र हर्ष एवं शोक दोनों भावोंसे तृप्त हो गये और वे बोल पड़े—

सन्तुष्टा फलमूलेन भर्तृशुश्रूषणापरा।
या परां भजते प्रीतिं वनेऽपि भवने यथा॥

१. गौरीं कनकवर्णाभामिष्टामन्तःपुरेश्वरीम्। कपिर्मन्दोदरीं तत्र शयानां चारुरूपिणीम्॥
स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्भूषितां मारुतात्मजः। तर्कयामास सीतेति रूपयौवनसम्पदा।
हर्षेण महता युक्तो ननन्द हरियूथपः॥ (वा०रा० ५।१०।५२-५३)

२. अवधूय च तां बुद्धिं बभूवावस्थितस्तदा। जगाम चापरां चिन्तां सीतां प्रति महाकपिः॥
न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी। न भोक्तुं नाप्यलंकर्तुं न पानमुपसेवितुम्॥ (वा०रा० ५।११।१-२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Kalyan July 2013_Section_2_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेयं कनकवर्णाङ्गी नित्यं सुस्मितभाषिणी।
सहते यातनामेतामनर्थानामभागिनी॥
इमां तु शीलसम्पन्नां द्रष्टुमिच्छति राघवः।
रावणेन प्रमथितां प्रपामिव पिपासितः॥

(वा०रा० ५। १६। २०—२२)

यहाँ आकर [ये देवी सीता] फल-मूलोंसे ही सन्तुष्ट रहती हुई पतिदेवकी सेवामें लगी रहीं और वनमें भी उसी प्रकार परम प्रसन्न रहती थीं, जैसे राजमहलोंमें रहा करती थीं। वे ही ये सुवर्णके समान सुन्दर अंगवाली और सदा मुसकराकर बात करनेवाली सुन्दरी सीता, जो अनर्थ भोगनेके योग्य नहीं थीं, इस यातनाको सहन करती हैं। यद्यपि रावणने इन्हें बहुत कष्ट दिये हैं तो भी ये अपने शील, सदाचार एवं सतीत्वसे सम्पन्न हैं। (उसके वशीभूत नहीं हो सकी हैं।) अतएव जैसे प्यासा मनुष्य पौंसलेपर जाना चाहता है, उसी प्रकार श्रीरघुनाथजी इन्हें देखना चाहते हैं।

इस प्रकारकी देवी सीताके दर्शन करते हुए हनुमान्‌जीके मनमें आया कि इन देवीको पुनः प्राप्तकर श्रीरामको आनन्द होगा और वे अपना राज्य न मिलनेके दुःखको भुला देंगे—

अस्या नूनं पुनर्लाभाद् राघवः प्रीतिमेष्यति।
राजा राज्यपरिभ्रष्टः पुनः प्राप्येव मेदिनीम्॥

(वा०रा० ५। १६। २३)

देवी सीताकी खोजके बाद हनुमान्‌ने अपने स्वामी श्रीरामके बल-पौरुषके प्रकाशनके लिये अनेक राक्षसोंका संहार किया, जिनमें रावणका पुत्र अक्षकुमार भी सम्मिलित था। रावणके देवेन्द्रपुर-जयी पुत्र मेघनादके साथ युद्ध करते समय ब्रह्मास्त्रकी मर्यादाकी रक्षा करते हुए हनुमान् राक्षसोंके बन्धनमें आ गये। तदनन्तर रावणके सम्मुख उपस्थित होनेपर उनकी पूँछमें आग लगानेका उन्हें दण्ड दिया गया और उसी अवस्थामें नगरमें घुमाया गया। राक्षसोंकी मूर्खताका लाभ उठाकर श्रीहनुमान् लंका-दहन करके सम्पूर्ण वृतान्त सुनानेके लिये श्रीरामके पास पहुँचे। उस समय प्रसन्नमन श्रीरामने हनुमान्‌जीकी बुद्धि और शक्ति दोनोंकी प्रशंसा करते हुए कहा—

कृतं हनुमता कार्यं सुमहद् भुवि दुर्लभम्।
मनसापि यदन्येन न शक्यं धरणीतले॥
नहि तं परिपश्यामि यस्तरेत महोदधिम्।
अन्यत्र गरुडाद् वायोरन्यत्र च हनूमतः॥
देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
अप्रधृष्यां पुरीं लङ्कां रावणेन सुरक्षिताम्॥
प्रविष्टः सत्त्वमाश्रित्य जीवन् को नाम निष्क्रमेत्।
को विशेत् सुदुराधर्षां राक्षसैश्च सुरक्षिताम्॥
यो वीर्यबलसम्पन्नो न समः स्याद्धनूमतः।

(वा०रा० ६। १। २—६)

श्रीरामने प्रसन्नतापूर्वक कहा कि हनुमान्‌ने पृथ्वीके लोगोंके लिये असम्भव कार्य कर दिया, गरुड और वायुको छोड़कर हनुमान्‌के अलावा कोई अन्य समुद्र पार ही नहीं कर सकता। इसके बाद देवों-दानवों, यक्षों, गन्धर्वों, सर्पों और राक्षसोंके द्वारा सुरक्षित की गयी रावणकी लंकापुरीमें प्रवेश करके कौन व्यक्ति वापस आ सकता है? हनुमान्‌के अतिरिक्त कौन ऐसा वीरता और बलसे परिपूर्ण है, जो भयानक स्वरूपवाली लंकामें प्रवेश करनेका साहस जुटा सके!

इस प्रकार सीताविषयक खोज और लंकापुरीपर विजयके प्रमुख सूत्रधार श्रीहनुमान्‌जी ही थे। श्रीहनुमान्‌जी श्रीरामके राजा बननेके बाद उन्हींकी सेवामें रहे और उन्होंने अनन्य भावसे रामराज्यकी सफलतामें अपना योगदान किया। श्रीराम जब अपना पृथ्वीवास पूराकर वैकुण्ठधामके लिये दल-बलके साथ चलनेको तत्पर हुए, तब उन्होंने हनुमान्‌जीको पृथ्वीपर ही रहनेका आदेश दिया और कहा कि जबतक पृथ्वीपर मेरी कथा रहेगी, तबतक तुम उस कथाका आनन्द लेते हुए इस पृथ्वीपर ही रहो। अपने स्वामी श्रीरामके इस कथनपर श्रद्धा रखते हुए हनुमान्‌जी श्रीरामकी कथाके साथ सदैवके लिये पृथ्वीपर ही रह गये—

मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर॥
तावद् रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन्।
एवमुक्तस्तु हनुमान् राघवेण महात्मना॥
वाक्यं विज्ञापयामास परं हर्षमवाप च।
यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी॥
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्।

(वा०रा० ७। १०८। ३३—३६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रवाद

[अनश्वर परमेश्वरका अनश्वर-संविधान]

(श्रद्धेय पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

शास्त्र कहनेसे वेद-पुराणादि ग्रन्थका बोध होता है। यहाँ प्रश्न उठता है कि वेद कहनेसे विशेषणके रूपमें अपौरुषेय शब्द सभी लौकिक एवं वैदिक भाषामें आया है फिर यहाँपर वेदादिके लिये प्रसिद्ध अपौरुषेय विशेषण न देकर 'अनश्वर-संविधान' अप्रसिद्ध विशेषण क्यों दिया गया?

यहाँ प्रसिद्ध 'अपौरुषेय' विशेषण इसलिये नहीं दिया गया; क्योंकि पौरुषेयका अर्थ होता है **'पुरुषरचितम्'** अर्थात् पुरुषद्वारा रचित तथा अपौरुषेयका शाब्दिक अर्थ होता है, जो पुरुषद्वारा रचित न हो। अतः अपौरुषेय शब्द सुनते ही प्रत्येक बुद्धिको यह सन्देह उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि विश्वके किसी पुस्तकालयमें दो पन्नेका भी कोई ग्रन्थ ऐसा नहीं, जो कि पुरुषद्वारा रचित न हो, तो फिर हजारों शाखाओंवाला वेद अपौरुषेय कैसे हो सकता है?

महाभाष्यके प्रारम्भमें लिखा गया है कि चार वेद हैं और उनकी अनेकों शाखाएँ हैं। जिनमें सामवेदकी ही हजार शाखाएँ हैं—**'सहस्रवर्त्मा सामवेदः'**। जब एक ही वेदकी हजार शाखाएँ हैं तो हजार शाखाके लिये हजारों पन्ने चाहिये। इसीलिये अपौरुषेय शब्द न देकर शास्त्रके लिये अनश्वर-संविधानका विशेषण दिया गया है।*

प्रत्येक ईश्वरवादी अपने ईश्वरको अनश्वर (अमर) मानता है अर्थात् वह सर्वदा बना रहता है। इसी प्रकार प्रत्येक ईश्वरवादी पुरुष अपने ईश्वरको ज्ञानरूप मानता है, ईश्वर एक ही है (अनेक नहीं)। बृहदारण्यकोपनिषद् (२।४।१०)-में कहा गया है—

स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि निश्वसितानि ॥

अर्थात् जिस प्रकार जिसका ईंधन गीला है, ऐसे आधान किये हुए अग्निसे पृथक् हुआ धुआँ निकलता है, हे मैत्रेयि! इसी प्रकार ये जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस (अथर्ववेद), इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, मन्त्रविवरण और अर्थवाद हैं, वे इस महद्भूतके ही निःश्वास हैं।

प्रत्येक ईश्वरवादी अपने ईश्वरको अनश्वर चेतन मानता है। प्रत्येक चेतन श्वास-पर-श्वास लेता है, वह श्वास वेद है। यह समझते ही उनकी जिज्ञासा शान्त हो जाती है। इसलिये नया विशेषण दिया गया है।

भगवान्ने श्रीमुखसे कहा है—**'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।'**

इसी तथ्यको मनुजीने दोहराया है कि वेदसे विहित काम करो—

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
तद्धि कुर्वन्यथाशक्तिं प्राप्नोति परमां गतिम्॥

(मनुस्मृति ४।१४)

ब्राह्मण वेदमें कथित अपने कर्मको निरालस होकर करें; क्योंकि शक्तिसे उसे करता हुआ वह परमगतिको पाता है।

मनुजीने मनुस्मृतिमें भी कहा है—**'वेदार्थविरोधिकर्मत्यागः'** अर्थात् वेदके विरुद्ध कर्मका त्याग करना चाहिये।

हमारा भारत देश अनेक सदियोंतक पराधीन रहा। स्वतन्त्राहेतु अनेक प्रयासोंके बाद भी सफल नहीं हुआ था। इस बार हमारे देशने अपनी स्वतन्त्रताके लिये अनश्वर-संविधानका सहारा लिया और आज हम स्वतन्त्र हैं। भागवतसे पता चलता है कि प्रह्लादने सविनय सत्याग्रहसे अनीश्वरवादको हटाकर ईश्वरवादकी प्रतिष्ठा कर दी थी। भारतने भी स्वतन्त्रताके लिये प्रह्लादकी तरह सत्यको जितानेके लिये सविनय सत्याग्रह किया और फलस्वरूप १९४७ ई०में भारत स्वतन्त्र हो गया।

जिस समय प्रह्लाद पाँच वर्षके थे तथा गुरुकुलमें रहकर अध्ययन कर रहे थे। उन्हें जब पता चला कि उनके पिता हिरण्यकशिपु सत्यके विपरीत चल रहे हैं तथा

* 'कल्याण' (गीताप्रेसद्वारा) प्रकाशित 'वेदकथाङ्क' वर्ष ७३-के संख्या ४ से ८ तकके साधारण अंकोंमें 'अपौरुषेयताका मर्म' नामक लेखको पढ़कर इस शंकाका समाधान बुद्धिको मिल जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वरवादियोंकी नृशंस हत्या कर रहे हैं, तब उनका कोमल हृदय काँप उठा। इस बातपर उनको दोहरी चिन्ता हो आयी। एक तो यह कि निरपराध लोग मारे जा रहे हैं तथा दूसरी यह कि इस हत्याके परिणामस्वरूप उनके पूज्य पिताको विवश होकर मरनेके बाद यम-यातनाएँ सहनी पड़ेंगी। प्रजा और पिताजीकी सभी यातनाओंको हटाना बालक प्रह्लादने अपना कर्तव्य समझा। यह तभी सम्भव था, जब उनके पिता समझ जायँ कि ईश्वर सत्य है और सत्यका मानना अपराध नहीं है, किंतु प्रह्लादका पिता इतना अहंकारी था कि अपने मतके विरुद्ध कुछ भी सुनना अपना अपमान समझता था। सुनकर ही कोई उसका मनन कर सकता है, जो सुनेगा ही नहीं, वह मनन किसका करेगा।

बालक प्रह्लाद जानते थे कि उसके पिताका घोर अहंकार उसे इनकी (विरुद्ध मतवालोंकी) बातें सुनने न देगा, समझने न देगा। सुनते ही वह सुनानेवालोंकी बोटी-बोटी कटवा डालेगा। यह जानकर भी प्रह्लादने अपने पिता और प्रजाओंके कल्याणके लिये अपने प्राणोंकी बाजी लगा दी। इन्होंने तय कर लिया कि गुरुकुलसे जब भी पिताजीके दर्शनके लिये पहुँचूँगा, अपने पिताजीको सत्य समझाऊँगा और उसको माननेके लिये आग्रह करूँगा। कर्तव्य करना ही तो व्यक्तिके हाथमें है। फलकी चिन्ता तो उसे करनी ही नहीं है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

(गीता)

पितासे सत्यके लिये आग्रह—पहली बार प्रह्लाद पिताके पास पहुँचे। इन्होंने चरणोंमें सिर झुकाकर पिताजीको प्रणाम किया। पिताने पुत्रको प्यारसे गोदमें बिठाकर कहा—बेटा! अध्ययनका जो सारभूत अंश है, उसे सुनाओ। इस अवसरका प्रह्लादने पूरा-पूरा लाभ उठाया। कहा—पिताजी, मेरे मनमें जो सारभूत अंश स्थित है, उसे सुनाता हूँ। वह सारभूत अंश है—ईश्वर। वह ईश्वर जो सम्पूर्ण जगत्का निर्माण आदि करता है। जो मेरा कारण है और आपका भी कारण है। वह सत्य है। सुनते ही हिरण्यकशिपु आगबबूला हो उठा। सुनकर गुना नहीं। यदि गुनता, **मदन्यो जगदीश्वरः क्व?** अपने इस कथनका उत्तर उसे मिल चुका होता। यदि विचारता तो उसे समझमें आ जाता कि ईश्वर वह होता है, जिसने अनन्त ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि की है और जिनकी स्थिति वह आज भी करता आ रहा है। मैंने तो इन ब्रह्माण्डोंको बनाया नहीं है और न वह गणित बनाया है, जिसके आधारपर प्रत्येक सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि अपनी-अपनी कक्षामें घूम रहे हैं और इस तरह स्थित हैं। यह बात प्रह्लाद तो ठीक ही कह रहा है। मुझमें यह सामर्थ्य आज भी नहीं है। अतः इनका निर्माता और हिसाबिया कोई है जरूर, जिसे ईश्वर कहा जा सकता है। फिर मैं ईश्वर कैसे हो सकता हूँ।

किंतु घोर अहंकारने हिरण्यकशिपुको गुनने नहीं दिया। इस प्रेमभरे विनयावनत वचनसे उसके देहमें आग लग गयी। बेटेको उठाकर पटक दिया और बोटी-बोटी

काटनेकी आज्ञा दे दी। नन्हे-मुन्नेपर तलवारपर तलवार चलने लगी। आततायी पिताके प्रति भी प्रह्लादके हृदयमें वही प्रेम बना रहा। हिरण्यकशिपुका क्रोध बढ़ता रहा। उसने प्रह्लादको नागोंसे डँसवाया, फिर आगमें झोंकवा दिया। सत्य प्रह्लादको बचाता जा रहा था। इनपर कोई आँच नहीं आयी। प्रह्लाद प्रत्येक घटनाकी व्याख्याकर पिताको सत्य माननेके लिये आग्रह करते ही रहे—पिताजी, कोई निर्बल पुरुष आज्ञा देकर किसीको कटवा सकता है, किंतु आप मुझे कटवा नहीं पा रहे हैं; क्योंकि ईश्वर मुझे बचाता जा रहा है। इन घटनाओंसे आपको समझ लेना चाहिये कि ईश्वर है, जो तलवारोंको कुण्ठित कर रहा है। ईश्वर सत्य है, पिताजी, अब आप मान ही लीजिये। आप पिताजी, उसको अब आप मान ही लीजिये। आप तलवारसे कटवा रहे हैं और इस तलवारके प्रहारसे कोई बचा रहा है तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचानेवाला आपसे अधिक समर्थ नहीं है क्या? वही तो ईश्वर है। पूज्य पिताजी, इस घटनासे यही प्रमाणित होता है। उस सत्यको आप मान लें।

पर अहंकार न तो कुछ सुनने देता है, न देखने देता है। हिरण्यकशिपुने दिग्गजोंसे पुत्रको रौंदवाया, दाँतोंसे छातीमें चोटें पहुँचवायीं, बड़े-बड़े नागोंसे डँसवाया। जब हिरण्यकशिपु प्रह्लादको मारनेमें सफल नहीं हुआ तब

आगमें झोंकवा दिया। वहाँ भी प्रह्लादका बाल बाँका नहीं हुआ। दोनों गुरुओंने बीच बचाव किया।

दोनों गुरुओंने हिरण्यकशिपुसे प्रार्थना की कि हम लोग प्रह्लादको समझायेंगे और नहीं मानेगा तो भयंकर कृत्या प्रकटकर इसे नष्ट कर देंगे।

गुरुओंसे सविनय सत्याग्रह—गुरुओंने प्रह्लादको समझाया, आयुष्मन्! तुम ब्रह्माके उत्तम कुलमें उत्पन्न हो और यह भी जानते हो पिता समस्त गुरुओंमें परम गुरु होते हैं। तुम्हें ईश्वरसे क्या लेना-देना है? पिताका आदर करो।

प्रह्लादने विनयावनत होकर कहा—गुरुगणजी, आपके दोनों कथन सत्य हैं। सचमुच मेरा कुल महान् है और पिता गुरुओंके भी गुरु होते हैं। मैंने भी विचार कर लिया है कि मैं पिताजीका कोई अपराध नहीं करूँगा, किंतु आपका यह कहना न्याय नहीं है कि ईश्वरसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है।

इतना कहकर गुरुओंका गौरव रखनेके लिये वे मौन हो गये—

इत्युक्त्वा सोऽभवन्मौनी तेषां गौरवयन्त्रितः।

किंतु चुप हो जानेसे सत्यके लिये आग्रह कैसे किया जा सकता है और बिना आग्रह किये अपने पिता, गुरु आदि इष्टजनोंको सत्यके मार्गपर कैसे लाया जा सकता है? भगवान्‌की आज्ञा है—'**इष्टं धर्मेण योजयेत्**' इसलिये विनम्रता-प्रदर्शनके साथ बालक प्रह्लाद मुसकराये, फिर हाथ जोड़कर बोले—'गुरुजन! ईश्वरसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं। मरीचि, दक्ष आदिकी सत्य घटनाएँ इसमें प्रमाण हैं। इसलिये ईश्वरकी आराधना करनी ही चाहिये।' इसके बाद प्रह्लाद फिर बहुत ही विनम्र हो गये और बोले—'आप मेरे गुरु हैं, उचित-अनुचित सभी कुछ कह सकते हैं, किंतु जगत्‌के उत्पादक, पालक और संहारक जो ईश्वर हैं, उनको भुला देना अच्छा नहीं है। गुरुजी, मैंने बालभावसे जो कुछ अनुचित कहा हो तो आप क्षमा करें—'**भवद्भिरेतत् क्षन्तव्यं बाल्यादुक्तं तु यन्मया।**'

किंतु इस सविनय सत्याग्रहका गुरुजनोंपर अनुकूल प्रभाव न पड़ा। वे इसे दुराग्रह समझने लगे। वे रुष्ट हो गये और हिण्यकशिपुके पथपर उतर आये। एक भयंकर कृत्या उत्पन्न कर दी। क्रोधसे लाल होकर उस कृत्याने बालक प्रह्लादकी छातीपर त्रिशूलसे प्रहार किया, किंतु सत्यने इस बार भी प्रह्लादका बाल भी बाँका न होने दिया। उलटकर उस कृत्याने गुरुओंका ही संहार कर डाला। इसके बाद अपनी आगमें वह खुद जल मरी।

पूज्य गुरुजनोंको कृत्याद्वारा जलाये जाते देखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कृष्ण-कृष्ण' पुकारते हुए प्रह्लाद उनके पास पहुँचे और भगवान्‌से प्रार्थनाकर उन्हें जिला दिया। गुरुजन हिरण्यकशिपुकी तरह बिलकुल जड़ नहीं बन गये थे। वे प्रह्लादसे प्रभावित हो गये और कृतज्ञताभरे शब्दोंमें उनकी प्रशंसा की और आशीर्वादोंसे ढक दिया।

सत्याग्रहका कारण—केवल प्रेम—बालक प्रह्लादने जो सत्याग्रह चलाया, उसका एकमात्र कारण दूसरोंके प्रति प्रेम है। इसमें प्रह्लादका अपना कोई स्वार्थ न था, उलटे इनके स्वार्थकी सर्वांशमें हानि हो रही थी। इनके गुरुजनोंने इनके स्वार्थोंकी याद दिलाते हुए कहा कि तुम्हारे पिता तीनों लोकोंके आश्रय हैं। तुम भी तीनों लोकोंके स्वामी बनोगे—**'आश्रयः पिता ते सर्वलोकानां त्वं तथैव भविष्यसि।'** यह तभी सम्भव है जब तुम अपने पिताके अनुकूल आचरण करोगे। जानते हो इस विरुद्ध आचरणका फल? एक तो तीनों लोकोंका साम्राज्य तुमसे छिन जायगा, दूसरे तुम कुत्तोंकी तरह दुत्कारे जाओगे तथा अन्तमें मारे भी जाओगे।

किंतु वीर बालकने विश्वके हितके लिये अपने स्वार्थका बलिदान कर दिया तथा अपमान और मौतका वरण किया। दूसरोंको उत्पीड़न और हिंसासे बचानेके लिये उन उत्पीड़नों और हिंसाको अपने ऊपर ले लिया।

सत्याग्रह सफल—प्रह्लादका सत्याग्रह गुरुजनोंपर तो सफल हुआ ही पिताके जड़ हृदयमें भी इसने एक बार तो सरसताका संचार कर ही दिया। अन्तिम यातनाके बाद भी जब प्रह्लाद बच गये, तब भी नम्रताके साथ आकर उन्होंने पिताके चरणोंकी वन्दना की। इस बार प्रह्लादको देखते ही पत्थरमें भी सरसताका संचार हो आया। पिताके हृदयमें उथल-पुथल होने लगी। आँखें आँसुओंसे भर गयीं। पुत्रको कसकर हृदयसे लगाया और बोल पड़ा—'बेटा, जीते तो हो।' अपने किये हुए कर्मोंके लिये वह पत्थर भी पश्चात्ताप करने लगा—

प्रीतिमांश्चाभवत्तस्मिन्ननुतापी महासुरः।
तं पिता मूर्धन्युपाघ्राय परिष्वज्य च पीडितम्।
जीवसीत्याह वत्सेति बाष्पार्द्रनयनो द्विज॥

इस तरह उन दिनोंकी विश्वव्यापी उत्पीडनाओं और हिंसाओंसे त्राण दिलाया था सत्याग्रहने।

इसी तरह अनेक सदियोंसे स्वतन्त्रता-प्राप्तिमें असफल परतन्त्र भारत अनश्वर-संविधानके इस सत्याग्रहको अपनाकर १९४७ ई० में स्वतन्त्र हो गया एवं अपना शासन-विधान बनाकर अन्य देशोंकी तरह शासन करने लगा, किंतु भारतका शासनविधान बनानेवालोंने अनश्वर-संविधानकी उपेक्षा कर दी। अन्य देशोंके शासनविधानको अपना लिया। जैसे—विश्वके सभी शासनविधानमें यह विधान बनाया गया है कि कोई भी युवक-युवती आपसमें अनुराग करते हों तो सिविल मैरिजके विधानके अनुसार विवाह कर सकते हैं, किंतु हमारे परमेश्वरके अनश्वर-संविधानमें सिविल मैरिजका कोई विधान नहीं है। बल्कि इसके विपरीत यह विधान है कि ब्राह्मणकी कन्या केवल ब्राह्मण युवकसे ही विवाह कर सकती है और अन्य जातिके पुरुषसे नहीं।

जो मनुष्य शास्त्रविधानसे टकरानेवाले मानवके बनाये विधानको मानकर चलते हैं, उनकी बड़ी दुर्गति होती है। [क्रमशः]

'हरि का किस विधि भजन करूँ'

(श्रीकमलसिंहजी सोलंकी 'कमल')

हरि का किस विधि भजन करूँ।
दूभर है सत्संग जगत में किस विधि जतन करूँ॥
कोई कहे एकांतवास कर, कोई कहे सत्संग
कोई तीरथ कथा भागवत, कोई सदगुरु संग
सदगुरु यदि मिल जाय भाग्य से किस विधि नमन करूँ॥
अंतस में है राग द्वेष, छल कपट मोह और माया
विकल बहुत मन की व्याधि से पायी जर्जर काया
मन उचाट खाता है 'कमल' जब हरि का जपन करूँ॥
हरि का किस विधि भजन करूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी—

नवधा भक्ति

पाद-सेवन

(श्री 'चक्र')

कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा॥
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥

गुणका परिचय तो साथ रहनेसे, अवसर मिलनेसे होता है। मानसनेत्रोंको प्रसन्न होनेमें समय लगता है। ये चर्मचक्षु तो चर्म ही देखते हैं। बाह्य ही पहले आकर्षित करता है। ब्रह्माने उसे बड़ी जल्दीमें बनाया होगा। सम्भवतः किसी दूसरे काममें लगे होंगे और उसे झटपट बिना देखे गढ़ दिया होगा। आँखें छोटी-छोटी भीतर घुसी, नाक कुछ चपटी, लम्बा मुख और बड़ा-सा सिर। हाथ-पैर प्रभृति कोई भी आकर्षक नहीं कहा जा सकता। इस ढाँचेपर कोई अच्छा रंग पोत देते तो भी कुशल थी। रंग पोतना ही भूल गये। फलतः वह सब रंगोंके अभावकी द्योतक कृष्णांगी थी।

एक सौभाग्य मिला था उसे। बड़े घरकी लड़की थी। उमाकान्तजीकी अपार सम्पत्तिकी स्वामिनी एकमात्र उनकी कन्या गौरी ही थी। लड़कीका नामकरण शायद माता-पिताने उसके स्वरूपकी भावना दबा देनेके लिये किया था। सम्पत्तिके कारण वह नवीनचन्द्र बी०ए०की परिणीता हो गयी। न तो उसका फोटो मँगाया गया और न उसे कोई देखने ही गया। पिताकी ओरसे प्रस्ताव हुआ और पतिकुलने स्वीकार कर लिया। गाजे-बाजे, धूम-धाम और वेद-ध्वनिके बीच उसकी गाँठ जुड़ गयी।

ससुराल आते ही उसे निराशा और दुःख होना था। हुआ कुछ नहीं उसे। जो भी मुख देखने आयीं, उन्होंने मुख बना लिया। किसी-किसीने कुछ कह भी दिया। सासके उपहार छोटे हो गये। इन सबकी वह पुरानी अभ्यस्त है। बचपनमें मुहल्लेके छोटे बच्चे उसे 'काली कुत्ती राम राम!' किया करते थे। तब वह खीझती थी। अबतक सहेलियाँ उसे गौरी कहते ही मुसकरा पड़ती हैं। वह अब अभ्यस्त हो गयी है। यह सब अब उसे बुरा नहीं लगता। यहाँका व्यवहार भी उसके हृदयको छू नहीं सका।

उसकी माता एक प्रवीण माता हैं। उन्होंने लड़कीको समझाकर इस अपमानका रहस्य बता दिया है। वह जानती है कि चार दिनमें ये सब जो आज मुँह बना रही हैं, उसका मुँह देखा करेंगी। उसके गाँवमें यही हुआ है और कोई कारण नहीं कि यहाँ भी न हो। उसे घरके काममें हाथ लगानेका अवसरभर मिलना चाहिये। जब वह सुई और रेशम लेकर बैठेगी, ये सब उसके हाथ जोड़ेंगी 'यह फूल काढ़ना हमें भी सिखा दो!' बीमारीमें उन्हें सेवाके लिये भी तो एक दक्ष व्यक्ति चाहिये। उसकी माताने अपनी लाड़लीके काले शरीरके अन्दर वह उज्ज्वलता भर दी है कि परिचय होनेके पश्चात् कोई उसका असम्मान नहीं कर सकता। उसके आगे सिर झुकाना ही पड़ता है।

'यह तो होना ही था!' उसने अपनेको स्वतः आश्वस्त कर लिया। 'जब परिचयमें आ जायँगे, तब सब ठीक हो जायगा!' वह पहलेसे इसके लिये प्रस्तुत थी। कोई दुःख नहीं हुआ उसे। चुपचाप लेट गयी और पता नहीं कब-कैसे रात्रि बीत गयी। जब उसने नेत्र खोले, पूर्वमें सूर्यभगवान् आनेकी सूचना दे रहे थे। बन्द किवाड़ोंमेंसे भी प्रकाश भीतर आ रहा था और लैम्प फीका जान पड़ने लगा था। वह हड़बड़ाकर उठ बैठी।

पता नहीं, कितनी आशा, कितनी उमंगें लिये नवीन उसके कमरेमें कल आया था। आवरण ही आकर्षक होता है। उसका लाया शृंगारदान अब भी मेजपर पड़ा है। उसमें क्या-क्या है? वह अबतक देख नहीं सकी है। उसने तो पहले ही अपना मार्ग निश्चित कर लिया था। उपहारकी उसे आवश्यकता नहीं थी। अपने आराध्य-चरणोंको उसने अवगुण्ठनके अन्दरसे देखा, खूब भली प्रकार देखा और फिर उनपर मस्तक रख दिया। तबतक भी वह सिर झुकाये उन चरणोंको ही देख रही थी, जब उन्होंने दोनों हाथोंसे उठाकर उसे पलंगपर अपने पास बैठा लिया और धीरेसे उसका अवगुण्ठन उठा दिया। तब भी वह चरणोंको ही देख रही थी। जब वे चौंककर पीछे सरक गये, जैसे कोई अचानक सर्प देखकर चौंके। और तब भी वह चरणोंको ही देख रही थी, जब वे उठे और पीठ फेरकर द्वार खोलकर बाहर चले गये।

उसने उठकर द्वार बन्द कर लिया आधे घण्टे बाद। तबतक वह ध्यानस्थ रही। उसने आगे-पीछेसे चरणोंको भली प्रकार देख लिया था; क्योंकि अपने खटपट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेवाले बूट वे सम्भवत: छोड़ आये थे। केवल एक चप्पल था पैरोंमें। अच्छी प्रकार उसने हृदयमें उन चरणोंको स्थापित कर लिया। प्रात: उसपर जो व्यंग्य-वर्षा हुई, उसने उसे कोई पीड़ा नहीं दी। नित्यकर्मसे निवृत्त होते ही उसने अपना कमरा बन्द कर लिया भीतरसे। वह तब खुला, जब पेंसिलने कागजपर चरण अच्छी प्रकार अंकित कर लिये।

× × × ×

(२)

'बहू, तुम्हारे पिताका यह तीसरा बुलावा है। क्या लिख दिया जाय उन्हें?' सासने अब उसकी महत्ता स्वीकार कर ली है। वे उसे भेजना चाहतीं नहीं, पर अपने नवीनके व्यवहारसे वे दु:खी हैं। वह जाना चाहे तो जी बहला आये। यहाँ उसका मन कैसे लगेगा।

'मैं पिताजीको आनेके लिये पत्र लिख देती हूँ।' उसने उत्तर दिया।

घरके कामोंसे सबको छुट्टी हो गयी है। वह अकेली ही नौकरोंको सँभाल लेती है। नौकर भी उससे प्रसन्न हैं। किसीको गणेश और किसीको हनुमान्‌जीकी तस्वीरें दे दी हैं उसने। सासको तो उसके हाथों स्नान कराये जानेपर ही सुख मिलता है। उनके पूजनकी सामग्री भी वही सजाती है। उसने बड़ा सुन्दर चित्र शंकरजीका बना दिया है उनके लिये। घरके सभी चद्दरों, तकियों और मेजपोशोंपर उसके हाथकी छाप है। इतनेपर भी रात्रिमें वह तबतक सासके पैर दाबनेका अवकाश पा जाती है, जबतक उन्हें निद्रा न आ जाय।

उसकी सहेलियाँ यहाँ भी उसे घेरे रहती हैं। किसीको चित्र सीखना है और किसीको बेल-बूटे काढ़ने। कोई चोटी गूँथनेका वह अद्भुत ढंग जानना चाहती है और कोई इसराज बजाना। निराश वह किसीको करती नहीं। बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ अब उसकी प्रशंसा करते नहीं थकतीं। उनका सिर दुखे तो 'बाम' लेकर वही तो पहुँचती है। लल्लूको खाँसी आनेपर गोलियाँ उसीसे लेनी पड़ती हैं। 'वह लक्ष्मी है—लक्ष्मी!'

सबकी खटपट और आदर-स्वागत करके भी वह घरके कामको समय पा जाती है और अपने निश्चित समयपर स्नानके पश्चात् कमरा बन्द करके उन पेंसिलसे बने चरणोंपर फूल चढ़ाकर कुछ करती रहती है आँखें बन्द करके मन-ही-मन। उसने पहले उनके चरणोंपर ही एक कोनेमें खड़े होकर दो फूल चढ़ा दिये थे। 'वे' घरमें भोजन करने आये थे। एक दिन कुछ न बोले। दूसरे दिन बिगड़ पड़े 'मुझे यह सब ढोंग पसन्द नहीं!' तबसे वह इन चित्रोंपर ही फूल चढ़ाती है।

सब प्रसन्न हुए, सन्तुष्ट हुए, पर देवता? वह जानती है कि देवताको सन्तुष्ट करनेके लिये साधना चाहिये। अभी उसने इतनी साधना की नहीं है। समय आयेगा तब उसकी साधना पूर्ण हो जायगी और तब देवता भी....।

नवीन उसके प्रति रूखा है, वह उससे अलग-अलग रहना चाहता है। साथ ही डरता भी है कि कहीं वह पिताके घर रहने लगी तो सम्पत्ति हाथसे चली जायगी। फिर भी हृदय उस कुरूपको फिर देखना नहीं चाहता। इसीसे वह आजकल पढ़ाईमें जुट गया है। एम०ए० करेगा। दिनभर युनिवर्सिटीमें और रात्रिको पढ़ाईके कमरेमें। ग्यारह बजेतक पुस्तकोंमें जुटा रहता है और वहीं सो रहता है। वैसे उसके कमरेके चित्र, तकियेके पुष्प, चद्दरके ऊपर बने पक्षी और मेजपोशपरका कमल किसीके करोंको चूम लेनेको उत्सुक करते हैं। नेत्रोंने जो देखा है—मन भड़क उठता है।

जानता है कि माँ उसे बहुत मानती हैं। यह भी जानता है कि वह जो नवीनसे छिपी रहती है, घरमें बूटकी ध्वनि पहुँचते ही कहीं दुबक जाती है, वह इधरके कष्टके ध्यानसे। 'कहीं उन्हें बुरा न लगे' यह सोचकर ही। दूसरी बार फिर उसे देखनेका अवसर नहीं आया। वह अवसर नहीं आने देना चाहता तो कैसे आता? फिर भी उसे पिताके यहाँ भेजना पसन्द नहीं। इसीसे इस प्रकारका प्रश्न आनेपर वह माँपर छोड़ देता है।

उसके पिता आये। यहाँ न तो उन्हें भोजन करना था और न जल पीना। दामादके व्यवहारका पता नहीं कैसे उन्हें पता लग गया था। यह उन्होंने बातों-बातोंमें संकेतसे कह दिया। लड़कीसे मिलकर अकेले ही लौट गये थे। आये तो लिवाकर संग जानेके लिये। बड़ी देरतक पिता-पुत्री पता नहीं क्या-क्या बातें करते रहे। रूमालसे आँखें पोंछते वे वहाँसे निकले और सीधे मोटरमें चले गये।

'जहाँ उनके चरण पड़ते हैं, वह मेरा तीर्थ है। उसे छोड़कर मैं कहाँ जा सकती हूँ!' सासके पूछनेपर उसने छोटा-सा उत्तर दिया—'पिताजी प्रसन्न ही होकर लौटे हैं!' सासने उसे हृदयसे लगा लिया। उसे अपने नवीनपर क्रोध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ रहा था। 'इस लक्ष्मीको वह कब पहचानेगा?' उनके नेत्र भी सूखे नहीं थे।

'रोओ मत माँ!' उसने अंचलसे अश्रु पोंछ दिये सासके। 'मैं दुःखी तो हूँ नहीं। दिनमें कम-से-कम दो बार तो अवश्य ही उनके चरणोंके दर्शन हो जाते हैं, मुझे और क्या चाहिये? मैं तो उन्हें प्रणाम करके ही कृतार्थ हो जाती हूँ।' सचमुच उसके स्वरोंमें हर्ष ही था। उनमें कम्प या करुणाका नाम नहीं था। वृद्धा अपलक नयनोंसे उसके उस कुरूप मुखको देख रही थी। 'कितना सौन्दर्य है इसमें! नवीन क्यों नहीं इसे देख पाता।' वह मन-ही-मन सोच रही थी।

× × × ×

(३)

'कल वे आ रहे हैं?' उसने अपने-आप ही कहा और कमरा बन्द कर लिया। जबसे नवीन विलायत गया है, उसपर विशेष कृपा हुई है। दूसरे महीनेसे सप्ताहमें एक पत्र अवश्य आता है माँके पास। माँका तो नामभर होता है। पत्र तो उसीके लिये लिखा जाता है। इधर तो रोज पत्र आ जाता है एक महीनेसे।

'कल शाम चार बजे तुम्हारे द्वारपर यह जन उपस्थित मिलेगा!' कितने विचित्र हैं। किस जहाजसे कहाँ उतरेंगे, सो कुछ नहीं। हवाई जहाजसे आते हों तो भी हवाई स्टेशन पहुँचनेका समय देना था। कोई कहीं लेने नहीं जा सकेगा! नवीनने अचानक घर पहुँचकर सबको—विशेषतः उसे चौंका देनेके विचारसे किसीको सूचना नहीं दी थी कि वह हवाई जहाजसे आ रहा है।

जबसे उसके 'वे' विलायत गये हैं, कमरेके बन्द रहनेका समय बढ़ता ही गया है। पहले चित्रित चरण केवल पुष्प और प्रणाम पाते थे, धीरे-धीरे धूप, दीप और नैवेद्य भी उन्हें प्राप्त हो गये। अब तो वे एक सुन्दर सिंहासनपर रेशमके बेल-बूटेदार आसनपर आसीन हैं। पूजाके सभी उपकरण उन्हें प्राप्त हो चुके हैं।

सखी-सहेलियोंकी संख्या घटने लगी। उन्हें अब कई बार चक्कर लगानेपर कहीं एकाध बातें सीखनेको मिल पाती हैं। धीरे-धीरे जब उसे समयाभाव हो गया तो सहेलियोंने आना भी बन्द कर दिया। आस-पासकी वृद्धाएँ उसे अभिमानिनी कहने लगीं। अब लल्लूके बीमार होनेके समाचारपर भी वह द्वार नहीं खोलती। केवल सासको उसकी चिन्ता है। वे घरके कामको न देखने या अपनी सेवा न करनेकी उलाहना नहीं देतीं। उन्हें यही शिकायत है कि 'बहू क्यों तेल नहीं लगाती, गहने नहीं पहनती, और सब न सही भरपेट खाती क्यों नहीं? वह घुली क्यों जा रही है?' दिनभर पूजा और रात्रिभर पूजा उसे पसन्द नहीं।

सबेरे स्नान तो कर लेती है और कमरा बन्द हो जाता है। पहले नौकरोंके पुकारनेपर, किसी कामके होनेपर उठ आती थी। फिर केवल दोनों समय भोजनके लिये आने लगी और फिर शामका भोजन बन्द हो गया। भोजनके लिये भी नौकरानी न पुकारे तो कमरा न खुले। इधर एक महीनेसे तो सास जब स्वयं जाकर कई बार पुकारती है, तो द्वार खुलता है। वह भी इसलिये कि एक दिन द्वार नहीं खुला तो वे वृद्धा भी भूखी ही रह गयीं। अतः अब 'बेटी! मैं भी अब पड़ रहती हूँ!' कहनेपर द्वार खुल जाता है। दो-चार ग्रास खा ही लेती है और फिर कमरा बन्द।

'पृथ्वी खोदकर एक सुन्दर-श्याम जटिल तरुणने कुशासन बिछा लिया है। उसपर न तो मृगचर्म है और न वल्कल। घुटनोंके बल बैठा है वह हाथ जोड़े। कमरमें वल्कल है और कन्धेपर केवल यज्ञोपवीत। अत्यन्त दुर्बल है वह। नेत्रोंसे दो धाराएँ बह रही हैं। हाथ जोड़े वह कुछ जप रहा है। ओष्ठ हिल रहे हैं। सम्मुख एक मणिमण्डित स्वर्णसिंहासन है। रत्नजटित छत्रके नीचे और बहुमूल्य आस्तरणके ऊपर उस सिंहासनपर चन्दनकी दो पादुका हैं। पुष्पोंसे आच्छादित होनेके कारण कह नहीं सकते कि उनपर अँगुलियोंके चिह्न घिसकर बने हैं या नहीं। दोनों ओर धूपदानी सुगन्धित बादल निकाल रही हैं और रत्न-पुटिकाओंमें दीपक जल रहे हैं।' पता नहीं आज क्यों वह यह सब देख रही थी।

'तपस्वीने सिर झुकाया। यह क्या? पादुकाओंपर दो अरुण श्यामल चरण आ विराजे। ठीक उसी तपस्वीकी प्रतिमूर्ति मुसकराती खड़ी थी। वह सौन्दर्यघन मूर्ति प्रसन्न और कुछ पुष्ट थी।' उसने ऊपरतक देखकर चरणोंपर दृष्टि डाली। 'लाल-लाल फूल-से कोमल और नखोंके अपार प्रकाशमें अबीर बरसाते तलवे!' उसने भी मस्तक झुकाना चाहा।

'हैं, ये तो उसके परिचित वे आराध्य चरण हैं!' वह चौंकी। चरण बढ़ रहे थे और उनमें अपार विराट् मूर्त होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा रहा था। पृथ्वी-पहाड़, नदी-समुद्र, मानव-पशु, नभ-नक्षत्र, असुर-देवता, पता नहीं—क्या-क्या उनमें वह देख रही थी। कुछ ठिकाना था उस अद्भुत अनन्त दृश्यका?

घबराकर नेत्र खोल दिये। 'वही परिचित आराध्य चरण तो वे हैं!' सामनेसे तनिक हटकर चार-पाँच पद दूर खड़े नवीनचन्द्रके चरणोंको उसने देख लिया था। 'बड़े छली हो तुम!' वह उधर झपटी। आज उसकी साधना पूर्ण हो गयी सम्भवतः। देवताके प्रत्यक्ष चरण, नहीं तो, कैसे पा सकती?

× × × ×

(४)

उसने पत्नीकी कलाको इतना नहीं समझा था। आदर तो करता था, मुग्ध था; पर इतना महत्त्व नहीं देता था। जहाजमें ही उसको पता लगा। वह आयरिश युवक, जिससे तीन दिनमें ही उसने मित्रता कर ली थी, इसके केबिनमें आकर चौंक गया। तकिये और चद्दरकी कारीगरी उसने इतनी सुन्दर नहीं देखी थी। फिर तो उसका केबिन प्रदर्शनी बन गया और वह जहाजमें एक प्रधान पुरुष हो गया। दुःख था—वह 'उसके' चित्रोंका एक अलबम नहीं साथ लाया।'

पता नहीं—कैसे यूरोपमें उससे पहले ही उसके तकिये और चद्दरका परिचय पहुँच गया। जहाजपर कइयोंने उनके फोटो लिये थे। संकोचके कारण वह उनपर अंकित 'गौरी' का परिचय नहीं देना चाहता था। बन्दरगाहोंपर संवाददाताओंने उससे अनेक प्रश्न किये और विवशतः उसे ट्रंकसे सब चद्दरों और लाये हुए तीनों चित्रोंका कई बार फोटो देना पड़ा। एक फ्रेंचने लौटनेतक उसका पीछा किया और अन्तमें एक चद्दर और तकियेकी एक खोली उसके हाथ उसे पाँच सौ पाउंडमें बेचनी ही पड़ी। यूरोपियन अपनी धुनमें पैसेका मूल्य ही नहीं समझते!

इन कलापूर्ण चित्रोंने उसे बहुत प्रसिद्ध कर दिया। वह केवल छात्र नहीं रह गया। उसे सब प्रकारकी सुविधाएँ सरल हो गयीं। पार्टियोंकी भरमार हो गयी उसके लिये। इस सम्मानकी वृद्धिके साथ-साथ पत्नीका सम्मान हृदयमें बढ़ा और अपनी कठोरतापर वह कई बार बच्चोंकी तरह रोया है अपने कमरेमें रात्रिको तकियेमें मुख छिपाकर। इस स्मृतिने उसे बहकने नहीं दिया। यों भी वह कठोर संयमी था; पर लालायित सौन्दर्य किसे लुब्ध नहीं करता। उसके लिये भीड़ थी। ऐसे प्रत्येक अवसरपर उसे छोटे-छोटे दो भरे नेत्र अपनी ओर देखते जान पड़ते। एक चिपटी नाकका करुणमुख साकार हो जाता और तब उसे रोनेकी इच्छा होती। किसी प्रकार पिण्ड छुड़ाकर भागता।

जहाजपरसे उसने कोई पत्र घर लिखा ही नहीं। लन्दन आकर भी कुछ दिन मौन रहा। 'क्या लिखे?' समझमें नहीं आता था। घरपर उसने इतनी कठोरता दिखायी थी कि अब पत्र लिखनेका साहस नहीं होता था। केवल माँको लिखे और उसे कुछ न लिखे, यह तो और भी कठोरता होगी। अन्तमें उसने पत्र 'माँ' को लिखा। अपनी की गयी बर्बरताकी क्षमा माँगी। 'बहुत रूखा और कठोर व्यवहार करनेका उसे बहुत दुःख है।' माँने समझ लिया था कि यह सब किसके लिये है; क्योंकि उत्तरमें उसीका पत्र आ गया था।

'उस दिनको क्या वह भूल सकेगा? पैदल जा रहा था। सड़क पार करनी थी। बड़ी तेजीसे निकला। इस उपगनरमें भी मोटरोंसे बचकर निकल जाना सरल नहीं है। किसी फलका छिलका था—पैर पड़ गया। फिसला और ....। कचूमर निकल गया होता। केवल एक इंच दूर अगला पहिया खड़ा था। मोटरोंकी पंक्ति रुक गयी थी। उसने उठकर ईश्वरको धन्यवाद देनेके बदले कुछ और ही सोचा और सिर झुका लिया। दो बूँदें सड़कके चिकने सीमेण्टपर गिर पड़ीं। एक काला हाथ, स्वर्णकंकणसे हीन, पर दो चूड़ियोंसे चमकता बढ़ा था और मोटर रुक गयी थी। उसने वह हाथ कभी देखा है, जो अभी अदृश्य हो गया।

× × × ×

'मैं उसे पुकारते-पुकारते थक गयी हूँ!' उसने मातासे सुना 'कल प्रातःसे भीतर बन्द है और कोई उपाय दीखता नहीं! तुम्हारे आनेकी सूचना उसे मिल गयी थी और सबेरेसे मैंने और नौकरोंने उसे बहुत पुकारा है!' बुढ़िया रो रही थी।

'दरवाजा तोड़ना होगा!' उसके मस्तकपर माताके हाथका तिलक लगा था। गलेमें फूलोंकी माला पड़ी थी। अभी सूट उतारे भी नहीं थे उसने। उसने ठीक द्वारपर आकर टैक्सी रोकी और दौड़कर माताके चरणोंसे लिपट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। माँने गले लगाया और झटपट बहूको समाचार भेजा। इतनेपर भी द्वार नहीं खुला तो वह पुत्रके साथ स्वयं आयी है। 'हाय, बहूको क्या हो गया?' इस प्रसन्नतामें भी दैवने उसे दुःख दिया।

नवीन चकराया। 'क्या हो गया है उसे?' उसे जो कुछ माँने बताया, उसे वह ठीक समझ नहीं सका। बढ़ई बुलाया गया और किंवाड़ उसने जरा-सा चौखटे छीलकर, कब्जे निकालकर हटा दिये। सबने देखा—कमरेमें गौरी शान्त बैठी है। एक स्निग्ध प्रकाश है और सामने सिंहासनपर एक चित्र, जिसमें केवल दो चरण बने हैं, फूलोंसे पूजित। माँके पुकारनेका कोई प्रभाव नहीं हुआ। नवीन आगे बढ़ आया।

चौंककर वह दो कदम पीछे हट गया सम्मुख आते ही। एक दिन और वह हटा था इसी प्रकार कुरूप मुखको देखकर। 'यह सौन्दर्य-राशि! यह दिव्य ज्योति!' वह साहस नहीं कर सकता था उसे छूनेका। देवीके इस अपार तेजमें जो सौन्दर्य था, उसीने उसे पीछे ठेल दिया था। इसके लिये वह प्रस्तुत नहीं था। वह आया था उस कुरूपको अपनाने—आज कहाँ गया वह?

भाग जाना चाहता था वहाँसे। ऐसा कर नहीं सका। दो काली भुजाओंने झपटकर पैर कस लिये और चरणोंपर केशराशि बिखर उठी। गरम-गरम बिन्दु गिर रहे थे उनपर। वह भूल गया कि माता और सेवक भी पीछे खड़े हैं, और ...

श्रीरामके स्वभावके कुछ सूत्र

(श्रीहरनारायणजी खत्री)

प्रश्न है—ईश्वरके स्वभावको हम क्यों जानें और कैसे जानें? उसके स्वभावको जानकर हम अपना कल्याण कैसे कर सकते हैं? इसका उत्तर है—ईश्वरके स्वभावको जाननेसे हम उनसे सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं, अपनापन स्थापित कर सकते हैं, हमारी उनमें अनन्य भक्ति हो सकती है। भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीतामें अनन्य भक्तिके प्रभावके बारेमें स्पष्ट घोषणा करते हैं—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥
(गीता ११।५४)

हे परंतप अर्जुन! अनन्य भक्तिके द्वारा मैं प्रत्यक्ष रूपसे देखने, तत्त्वसे जानने और प्रवेश करने अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।

एक अन्य प्रश्न है—ईश्वरके स्वभावको हम कैसे जान सकते हैं? इस प्रश्नका उत्तर हमारे अवतारवादी विश्वासमें निहित है। जब वह अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड-अधिनायक, सर्वघटअन्तर्यामी, सर्वातिसूक्ष्म, परसे भी परतर, निर्गुण-निराकार ब्रह्म इस धराधामपर सगुण-साकाररूपसे अवतार लेकर विविध प्रकारकी अद्भुत रसमयी लीलाएँ करके अपने भक्तोंको आह्लादित करता है; तभी हमें उसके स्वभावके सूत्र प्राप्त होते हैं, जिन्हें जीवनमें उतारकर हम अपना जीवन सफल बना सकते हैं।

हमारे सभी आर्ष ग्रन्थोंसे अवतारवादके विश्वासकी पुष्टि होती है। श्रीमद्भगवद्गीताके ये श्लोक प्रमाणरूपमें प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥
(गीता ४।७-८)

संतशिरोमणि श्रीतुलसीदासजीने अपने विश्वप्रसिद्ध महाकाव्य 'श्रीरामचरितमानस'में श्रीरामके अवतार लेनेके प्रयोजनोंको भी कुछ ऐसे ही रूपमें व्यक्त किया है—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥
(रा०च०मा० १।१२१।६—८)

उपर्युक्त पंक्तियोंका भाव यही है कि प्रभु अत्यन्त करुणामय हैं। जब-जब धरतीपर आसुरी प्रवृत्तिके लोग विप्र, गौ और देवताओंको त्रास पहुँचाते हैं; तो वे विविध-रूपसे अवतार लेकर धर्मकी पुनः स्थापना करते हैं, दुष्टोंका दमन करते हैं और अनेक भावपूर्ण लीलाओंद्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने भक्तोंका रंजन करते हैं, उन्हें सुख पहुँचाते हैं और अपने उज्ज्वल-निर्मल यशका विस्तार करते हैं।

युगकवि श्रीतुलसीदासजीने अपनी कृति श्रीरामचरितमानस और अन्य ग्रन्थोंमें श्रीरामके स्वभावकी अनेक दिव्य विशेषताओंको बड़े भावपूर्ण ढंगसे उजागर किया है। संक्षेपमें कुछ विशेषताओंपर हम यहाँ चर्चा कर रहे हैं—

१. भक्तके अंहकारको दूर करना

श्रीरामचरितमानसका 'काकभुशुण्डि-गरुड-संवाद' इस सन्दर्भमें विशेष उल्लेखनीय है। काकभुशुण्डिजी श्रीरामसे मिलनेके अपने अनुभवकी चर्चा करते हुए गरुडजीको सावधान करते हुए कहते हैं कि श्रीरामका यह सहज स्वभाव है कि उन्हें अपने भक्तका अभिमान बिलकुल नहीं सुहाता; क्योंकि यह दुर्गुण साधकके पतन और जन्म-मृत्युरूपी आवागमन-चक्रका मूल कारण है। संतप्रवर तुलसीदासजीने काकभुशुण्डिजीके उपदेशके माध्यमसे साधकोंको कुछ इस प्रकार उद्बोधन दिया है—

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ॥
संसृत मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥
ताते करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अति भूरी॥

(रा०च०मा० ७।७४।५—७)

आगे वे श्रीरामके स्वभावका रूपक देते हुए लिखते हैं कि जिस प्रकार एक 'माँ' अपने शिशुके चीखते-चिल्लाते रहनेपर भी उसके व्रण (फोड़े)-में चीरा लगवा देती है, ठीक उसी प्रकार श्रीराम भी अपने अभिमानी भक्तके इस दुर्गुणको किसी घटनाको निमित्त बनाकर इस दोषका परिमार्जनकर उसे पुनः सहज और सरल बना देते हैं। कुछ ऐसे ही भाव इन चौपाइयोंमें उकेरे गये हैं—

जिमि सिसु तन ब्रन होइ गोसाईं। मातु चिराव कठिन की नाईं॥
तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहि कस न भजहु भ्रम त्यागि॥

(रा०च०मा० ७।७४।८, ७।७४ (ख))

श्रीरामचरितमानसका 'नारद-मोह-प्रसंग' भक्तके अभिमानको दूर करनेका एक अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है। श्रीनारदजीको अपने तपके बलपर कामदेव-विजयका झूठा अभिमान हो जाता है तो श्रीभगवान् 'विश्वमोहिनी-स्वयंवर' के माध्यमसे उनके अभिमानको चूर-चूर कर देते हैं। अन्तमें नारदजी अपने झूठे गर्वपर पछताते हैं और इस पूरे नाटकीय घटनाक्रमके लिये प्रभुका आभार प्रकट करते हैं।

गीता (१६।४)-में भगवान् श्रीकृष्ण अभिमानको आसुरीवृत्तिमें शामिल करते हुए सावधान करते हैं—

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्॥

२. शरणागतको अपना बना लेना

यह ईश्वरके स्वभाव की ही उदारता है कि वे शरणागतकी न केवल रक्षा करते हैं, बल्कि उसके समस्त पापोंको नष्टकर साधु-समान बना देते हैं। भगवान् श्रीराम विभीषणके समक्ष अपने श्रीमुखसे अपने स्वभावका परिचय कुछ इस प्रकार देते हैं—

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥

(रा०च०मा० ५।४८।१—३)

श्रीमद्भगवद्गीताके उपसंहारमें भगवान् श्रीकृष्ण भी अर्जुनको ऐसा ही अमर आश्वासन देते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८।६६)

अर्थात् यदि कोई सभी धर्मों अर्थात् कर्तव्यकर्मोंका आश्रय छोड़कर मेरी शरणमें आ जाता है तो मैं उसे सभी पापोंसे मुक्त कर देता हूँ।

३. अपने भक्तके दोषोंपर दृष्टि नहीं डालना

आज श्रीराम वनवासके ठीक १४ वर्ष पूर्ण हो रहे हैं। श्रीभरतजी अत्यन्त व्याकुल हैं। न तो प्रभु स्वयं आये हैं न उनका कोई सन्देश। उन्हें रह-रहकर प्रभुके स्वभावका स्मरण हो रहा है। वे कह उठते हैं—

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥

(रा०च०मा० ७।१।६)

अर्थात् मेरे प्रभु अपने भक्तोंके अवगुणोंको भुला देते हैं; क्योंकि वे दीनबन्धु और अत्यन्त कोमल स्वभावके हैं।

संतप्रवर श्रीतुलसीदासजी श्रीरामके स्वभावपर अन्यत्र लिखते हैं—

जेहिं अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी॥

(रा०च०मा० १।२९।६-७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी भावकी पुष्टि 'विनय-पत्रिका'के पदमें भी कितने भावपूर्ण ढंगसे की गयी है—

सुनि सीतापति सील-सुभाउ।
अपनाये सुग्रीव बिभीषन, तिन न तज्यो छल-छाउ।
भरत सभा सनमानि, सराहत, होत न हृदय अघाउ॥
निज करुना करतूति भगतपर चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत, सुनत कहत फिरि गाउ॥

(पद १००)

भावार्थ यह है कि सुग्रीव और विभीषणने अपना कपट-भाव नहीं छोड़ा, परंतु प्रभुने उन्हें अपना ही लिया (त्याग नहीं किया)। भरतजीका तो सदा भरी सभामें सम्मान करते रहते हैं, उनकी प्रशंसा करते-करते तो आपके हृदयमें तृप्ति ही नहीं होती। भक्तोंपर आपने जो-जो दया और उपकार किये हैं, उनकी तो चर्चा चलते ही आप लज्जासे मानो गड़ जाते हैं; पर जो एक बार भी आपको प्रणाम करता है और शरणमें आ जाता है, प्रभु उसके यशका वर्णन करते हैं, सुनते हैं और कह-कहकर दूसरोंसे गान करवाते हैं।

४. अपना ऐश्वर्य और प्रभुता भुलाकर निज भक्तोंके वशमें

विनय-पत्रिकाके एक लालित्यपूर्ण पदमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी श्रीरामके स्वभावका कुछ ऐसा ही भाव-पूर्ण चित्र खींच रहे हैं—

ऐसी हरि करत दासपर प्रीति।
निज प्रभुता बिसारि जनके बस, होत सदा यह रीति॥
जिन बाँधे सुर-असुर, नाग-नर, प्रबल करमकी डोरी।
सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यो सकत न छोरी॥

अर्थात् श्रीहरि अपने दासपर इतनी प्रीति करते हैं कि अपनी प्रभुता भूलकर उस भक्तके अधीन हो जाते हैं। जिस परमात्माने कर्मोंकी मजबूत डोरीसे देवता, दैत्य, नाग और मनुष्योंको बाँध रखा है, उसी परब्रह्मको यशोदाजीने प्रेमवश ऊखलसे ऐसा बाँध दिया कि जिसे वह खोल न सके।

श्रीरामकी बाल-लीलाकी मनोहारी झाँकीका भी कुछ ऐसा ही भाव-चित्र श्रीतुलसीदासजीने खींचा है—

भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥
कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई॥
निगम नेति सिव अंत न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा॥

(रा०च०मा० १।२०३।६-८)

भाव यह है कि जिस परमात्माका वेद 'नेति-नेति' कहकर यशोगान करते हैं; शिवजी भी जिसका अन्त नहीं पाते; भोजनके समय उसी परब्रह्म-परमात्माको कौसल्याजी हठपूर्वक पकड़नेके लिये दौड़ती हैं।

५. सम्बन्ध-स्थापनमात्रसे कल्याण

भगवान् शिव देवी पार्वतीको रामकथा सुनाते हुए कहते हैं कि हे उमा! जीव ईश्वरसे कोई भी सम्बन्ध क्यों न जोड़े; वे उसके कल्याणका सारा दायित्व अपने ऊपर ले लेते हैं। यह सम्बन्ध पिता-पुत्रका हो, स्वामी-सेवकका हो, गुरु-शिष्यका हो, सखा भावका हो अथवा शत्रुताका भी क्यों न हो; दृढ़ सम्बन्ध स्थापितकर नित्य स्मरण-मात्रसे वे उसका उद्धार कर देते हैं। निम्न चौपाइयाँ श्रीरामके स्वभावके इसी पक्षका समर्थन करती हैं—

उमा राम मृदुचित करुनाकर। बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर॥
देहिं परम गति सो जियँ जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी॥
अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमंद ते परम अभागी॥

(रा०च०मा० ६।४५।४-६)

अर्थात् हे उमा! यद्यपि राक्षसोंने श्रीरामको अकारण अपना शत्रु माना और युद्ध किया, फिर भी वे इतने कृपालु हैं कि उन्हें योगियोंको भी दुर्लभ अपना परमधाम प्रदान किया। प्रभुके ऐसे उदार स्वभावको जानकर भी जो उनका अनन्य भावसे भजन नहीं करते; ऐसे मनुष्य मतिमन्द और अभागे हैं।

भाव यह है कि मनुष्यका जैसे-जैसे ईश्वरके करुणामय स्वभाव और उसकी अहैतुकी कृपापर विश्वास दृढ़ होता जाता है, वैसे-वैसे उसका संसारके प्राणी-पदार्थोंसे लगाव कम होने लगता है। ईश्वर उसे अपना लगने लगता है। कालान्तरमें यही आत्मीयता प्रगाढ़ अनुरागका रूप ले लेती है। उसे अपने प्रियतमका विछोह सहन नहीं होता। उसका मन नित्य-निरन्तर अपने आराध्यमें ही डूबा रहता है। इसी दशाकी ओर संकेत करते हुए भगवान् शिव भगवती पार्वतीसे कहते हैं—

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥

(रा०च०मा० ५।३४।३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। महँगा खाना जरूरी नहीं कि अच्छा भी हो। अधिकांश लोग सोचते हैं, जो खा लिया, वह ठीक है, परंतु उनका ध्यान सही भोजनपर नहीं होता। आज अधिकतर खाद्य पदार्थ प्रोसेस्ड, सिन्थेसाइज्ड, आर्टीफिसियली फ्लेवर्ड तथा केमिकल प्रिजर्वेटिव्ससे भरे रहते हैं। सभी जानते हैं कि प्रोसेसिंगमें मूल विटामिन समाप्त हो जाते हैं।

पुराने लोग सेव (एपल)-को पूरा खाया करते थे, जिसमें उसके बीज भी शामिल होते थे। बीजोंमें विटामिन बी-१७ होता है। एप्रिकॉट तथा पीच (खुबानी और आड़ू)-में भी यही तत्त्व होता है—इसीलिये उन्हें स्वास्थ्यवर्धक मानकर खाया जाता है, परंतु पिछले पचास वर्षोंमें भोजन-पद्धतिमें ऐसा परिवर्तन हुआ कि विटामिन बी-१७ की मात्रा कम होती गयी और इन्हीं वर्षोंमें कैंसरका रोग इतना बढ़ा कि पश्चिमी देशोंके प्रति चार व्यक्तियोंमें एक व्यक्ति कैंसरसे पीड़ित है, जबकि बर्फीली पहाड़ियोंका एक छोटा-सा राष्ट्र हुजा अभी भी कैंसरमुक्त हैं; क्योंकि वहाँ आधुनिक सभ्यतावाला खाना नहीं खाया जाता है, वहाँ एप्रिकॉट प्रमुख खाद्योंमेंसे एक है। जहाँपर बीजके साथ शाकाहारी भोजन, फल, सब्जियोंका चलन ज्यादा है, वहाँ कैंसर कम पाया जाता है। जब नीदरलैण्डको द्वितीय महायुद्धके बाद खानेकी आदतोंको जबरन बदलना पड़ा और लोगोंको प्राकृतिक भोजन लेना पड़ा, तब कैंसरकी दर एकदम कम हो गयी थी, पर अब फिरसे बढ़ती जा रही है; क्योंकि फिरसे वहाँ आधुनिक भोजन और मांसकी मात्रा बढ़ रही है।

वैज्ञानिक अनुसन्धानसे यह साबित हो चुका है कि जिन देशोंमें भोजन-पद्धति बिगड़ी हुई नहीं है, वहाँ कैंसर नहींके बराबर है।

दुनियामें कर्सिनोजेनेसिस (जिसके कारण कैंसर पैदा होना माना जाता है)-के बारेमें काफी अनिश्चितता है। बताया जाता है कि अधिक धूम्रपानसे, धूपमें अधिक रहनेसे, भोजनमें रसायनोंके उपयोगसे और कुछ वायरसोंके कारण कैंसर होता है। परंतु मुख्य कारण है एन्जाइम तथा बी-१७ विटामिनकी कमी। कोई भी कारण जिससे शरीरको लम्बा स्ट्रेस या चोट पहुँचे, उसके सुधारकी प्रक्रियाको शरीर खुद ही प्रारम्भ कर सकता है। यदि यह प्रक्रिया चलती रहे और उसको आवश्यक रासायनिक तत्त्व न मिले एवं बैलेंस नहीं किया जा सके तो परिणाम कैंसर ही होगा। यह एक चेन रिएक्शनकी तरह है, जिसे हम रोक सकते हैं, यदि हमारे रहने और खानेका तरीका प्राकृतिक और नैसर्गिक हो।

काकेशस पहाड़ियोंमें रहनेवाले अभाकाशिया, उत्तरी अमेरिकन, इण्डियन, साउथ अमेरिका और अफ्रीकाके ट्रॉपिकल रीजनमें रहनेवालोंमें कैंसर नहीं पाया जाता। इसका एकमात्र कारण जो समझमें आया है, वह है उनके भोजनमें निट्रिलोसाइडकी मात्राका अधिक होना। 'कसावा' नामक कैसल पौधा, जो दक्षिण अमेरिका और अफ्रीकामें ज्यादा पाया जाता है, इसमें निट्रिलोसाइड प्रचुर मात्रामें होता है।

प्रकृतिने कैंसरसे बचनेकी व्यवस्था कर रखी है। शरीरमें एक अनोखा रासायनिक मिश्रण है, जो कैंसरकी कोशिकाओंको नष्ट करता है, जबकि अन्य कोशिकाओंको बचाता है। यह प्राकृतिक भोजनमें ही पाया जाता है। कई बार बी-१७ लेनेसे दर्द कम होता है, विशेषकर टटमिलन केसेजमें।*

सच पूछा जाय तो हमलोग प्राकृतिक भोजन बी-१७ आसानीसे ले सकते हैं और कैंसरको रोक सकते हैं। पाश्चात्य देशोंका खाना और उनकी पद्धति हमारे लिये कदापि अनुकूल नहीं है। तब भी हमलोग बिना सोचे-समझे उनकी नकल करनेपर उतावले रहते हैं जबकि अमेरिकाकी स्थिति यह है कि वहाँ हर सात सेकेण्डमें एक अमेरिकन कैंसरका शिकार घोषित किया जाता है और प्रति एक मिनटमें एक अमेरिकन कैंसरसे मरता है। यह सब भोजनकी ही करामात है। हमको इसपर विशेष गहन तरीकेसे सोचना और अमल करना चाहिये।

हम भारतवासी अपनी प्राचीन भोजन-शैलीको अपनाकर इस महारोगसे बच सकते हैं। प्रकृतिने हमें हर प्रकारके फल, वनस्पति और अन्नका उपहार दिया है, आवश्यकता है उसी प्रकृतिमाताकी गोदमें जानेकी।

[प्रेषक—श्रीमधुसूदनजी मोर]

* 'वर्ल्ड विदाउट कैंसर'—जी० एडवर्ड ग्रीफीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

जनसंख्याकी वृद्धि, अन्नकी कमी और भ्रष्टाचारमें रुकावट कैसे हो?

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला था। आपके प्रश्नोंके उत्तर संक्षेपमें क्रमशः नीचे लिखे जाते हैं—

(१) आप लिखते हैं कि भारतवर्षमें जनसंख्या दिनोंदिन बढ़ रही है। आजसे कुछ वर्ष पहले जितनी संख्या थी, उससे आज दुगुनी है। इसी क्रमसे जनसंख्या बढ़ती गयी तो इतना अन्न कहाँसे आयेगा तथा लोगोंके रहनेके लिये जमीन भी कहाँसे आयेगी?

इसका यथार्थ उत्तर तो यह है कि इसकी चिन्ता विश्वनियन्ता भगवान् करेंगे। वे कब कहाँ जनसंख्या घटानी-बढ़ानी है, इसकी भी व्यवस्था आप ही कर देते हैं और सबके रहने तथा पेट-भरनेका साधन भी जुटा देते हैं। परंतु बाहरी तौरपर हमारे करनेके भी कुछ उपाय हैं, उन्हें हमें तथा हमारी सरकारको करना चाहिये। वे उपाय ये हैं—

(क) जीवनमें संयम हो, एक सन्तानके पश्चात् दूसरी सन्तान कम-से-कम छः वर्षके पहले उत्पन्न न हो, पचास वर्षके बाद सन्तान उत्पन्न न की जाय, इसके लिये सन्तति-निरोधके कृत्रिम साधनोंका प्रयोग न करके संयम तथा ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन किया जाय तो जनसंख्याकी वृद्धिमें बहुत कुछ रुकावट आ सकती है।

(ख) भारतमें अब भी करोड़ों एकड़ भूमि बिना जोते पड़ी रहती है। उस भूमिको ठीक करके अन्न उपजानेयोग्य बनाया जाय और उसमें खेती की जाय। यह काम सरकार ही करा सकती है।

(ग) जब देशमें धर्मकी भावना थी, शास्त्रमें विश्वास था, तब लोग व्रत-उपवास करते थे। इससे अन्नकी बहुत बचत हो जाती थी। 'कल्याण' के पुराने अंकोंमें महात्मा नारायण स्वामीजीकी सूचना छपी थी कि महीनेमें चार उपवास (दो एकादशी, अमावस्या और पूर्णिमा) अवश्य किये जायँ। इससे पुण्यलाभ तो निश्चित है ही, स्वास्थ्यमें भी बड़ा लाभ होता है। पर ज्यों-ज्यों धर्म-भावना घटी, त्यों-ही-त्यों व्रत-उपवास भी घट गये। यदि अब भी धर्मके आधारपर इसका प्रचार हो जाय और आधुनिक मनुष्योंमें आधे मनुष्य भी चारों दिन उपवास करने लगें तो सहज ही अन्नकी बचत हो सकती है। पर आज तो धर्मके नामसे ही घृणा पैदा करायी जाती है और उसे साम्प्रदायिक बताया जाता है, तब कैसे कार्य हो?

(२) आप लिखते हैं कि इतने नये-नये कानून बनाये जाने और इतना उपाय करनेपर भी घूसखोरी और चोरबाजारी बन्द नहीं हो रही है, इसके बन्द होनेका सरल उपाय क्या है?

सो इनके बन्द होनेका सरल उपाय है—'धर्ममें विश्वास, भगवान्में विश्वास।' जबतक मनुष्य पापको पाप मानकर एकान्तमें भी उसके करनेमें नहीं हिचकेगा, तबतक कानूनसे पाप नहीं रोका जा सकता। दुष्कर्मसे घृणा होनी चाहिये, तभी मनुष्य उससे बचता है। उसमें गौरव-बुद्धि हो जाय तब तो कोई उपाय ही नहीं है। ऐसी स्थितिमें कानून मानने और मनवानेवाले स्वयं ही कानून तोड़नेका रास्ता निकाल लेते हैं और किताबोंमें कानूनके रहते भी कहीं-कहीं, जहाँ परस्पर मेल न हो सकता हो—कानूनी कार्यवाही होते रहनेपर भी पाप बन्द नहीं होता। इसके लिये आवश्यक है कि धर्म और भगवान्में विश्वास हो, दुष्कर्मसे घृणा और भय हो।' आज ये दोनों ही बातें बुरी तरह घट रही हैं। तब क्या उपाय है। इसका तो यही उपाय होगा कि पाप करते-करते मनुष्य जब गिर जायगा और पापके अनिवार्य परिणाम भीषण सन्तापको प्राप्त होगा, तब उसे चेत होगा—तभी भगवत्कृपासे मानव-जातिका यह महान् संकट दूर होगा।

वस्तुतः सारी विपत्तियोंके नाशका एकमात्र उपाय है—'सच्चे मनसे भगवदाश्रय।' भगवान् कहते हैं—

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।

शेष प्रभुकृपा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

शाश्वत शान्तिके केन्द्र भगवान् हैं

प्रिय बहन! सादर हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपके प्रश्नोंके उत्तर क्रमशः यों हैं—(१) आप एक भावनामय जगत्‌में विचरण कर रही हैं। इस आयुमें ऐसा होना अस्वाभाविक भी नहीं है। अभी आपके सामने जीवनका एक विशाल क्षेत्र पड़ा है, जहाँ मनोहर उद्यान भी है और कण्टकाकीर्ण वन भी। कोमल समतल भूमिपर भी चलना है और दुर्गम गिरिगह्वरको भी पार करना है। आप दोनों परिस्थितियोंमें समान-रूपसे प्रसन्न रह सकें—इसके लिये अभीसे तैयारी कर लेनी है। शाश्वत और सनातन आश्रयकी खोज आपकी आध्यात्मिक उन्नतिके लिये शुभ चिह्न हैं। आप अभी कुमारी हैं। इसके बाद आपके सामने एक नयी दुनिया होगी, जिसके प्रति प्रत्येक युवक-युवतीका आकर्षण होता है। जीवनके कितने ही सपने और अधूरी आशाएँ लेकर नारी उस नूतन संसारमें प्रवेश करती है और अपने प्रेम, त्याग, बलिदान और तपस्यासे वहाँ स्वर्गको उतार देती है। आप उस जीवनसे कुछ भयभीत भी जान पड़ती हैं, उसके प्रति आपके मनमें कुछ अच्छे भाव नहीं हैं, कदाचित् अशान्तिका यह भी कारण हो। शाश्वत शान्तिके केन्द्र हैं—भगवान्, जो सदा सबके हृदयमन्दिरमें विराजमान हैं। शान्ति उनके चरण चूमती है, उसी शाश्वती शान्तिके स्पर्शसे मनमें शान्ति आती है। जगत्‌में कोई स्थान, कोई परिस्थिति या कोई साधन शान्तिका निकेतन नहीं है। आपको इस जीवनमें किसने भेजा है? भगवान्‌ने। आपके अन्तरमें इतनी भावनाओंकी सृष्टि कौन कर रहे हैं? भगवान्। मनुष्य भगवान्‌के हाथोंका खिलौना है। वे ही जब, जहाँ, जिस जीवनमें रखेंगे, रहना होगा। आपको सीता, सावित्री, दमयन्ती आदिके जीवनसे शिक्षा और प्रेरणा लेनी चाहिये। नारी स्नेह, वात्सल्य, उदारता, सेवा और त्यागकी प्रतिमूर्ति होती है, आपको भी ऐसा ही बनना चाहिये। इसीमें आपकी शोभा है। निःस्वार्थ त्याग, स्नेह और सेवामें जो सुख और शान्ति है, उसकी सुमधुर अनुभूति तभी आप कर सकेंगी। भगवान्‌का स्मरण करके सर्वत्र उन्हींको देखना और वे जिस परिस्थितिमें डाल दें, उसीमें सन्तुष्ट रहना—यही शान्तिका पथ है।

(२) दर्शन और ज्योतिष आपके प्रिय विषय हैं, इन्हें आपसे कौन छीनेगा? आप भगवान्‌से प्रार्थना करें। उनकी कृपासे आप ऐसे घरमें जा सकती हैं, जहाँ आपकी इस सुरुचिको आदर और प्रोत्साहन प्राप्त हो सके। आजीवन ब्रह्मचर्य आजकल किसी भी नर-नारीके लिये सहज सम्भव नहीं है; परंतु गृहस्थ रहकर भी अधिक-से-अधिक संयम और यथासाध्य ब्रह्मचर्यका पालन किया जा सकता है। आपको यह नहीं भूलना चाहिये कि आप सब कुछ होनेके साथ ही नारी भी हैं। आपका हृदय मातृत्वका हृदय है। अतः आपको एक आदर्श नारी, भारतीय नारी बननेके बाद ही और कुछ बनना चाहिये। विद्या 'स्वान्तःसुख' के लिये है। भारतीय नारीकी प्रधान साधना सतीत्व और सेवा ही है। यही उसका स्वधर्म है और इसीसे वह योगिजनदुर्लभ परम पद एवं परा शान्तिको प्राप्त कर सकती है। नारी नरकी जननी है, नरका महान् आश्रय है। नारीका स्थान बहुत ऊँचा है। उसका उत्तरदायित्व बहुत बड़ा है।

(३) अधिक चिन्तनसे भ्रूमध्यमें सिहरनकी प्रतीति होती है। चिन्ता और चिन्तन दोनों कम करके प्रसन्न रहनेकी चेष्टा करें।

(४) नारीके लिये सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय ही सत्संग है। जिन विचारोंमें तल्लीन होकर आप अपनेको पागलकी-सी स्थितिमें अनुभव करती हैं, वे हैं ही वैसे। भविष्यमें प्रतिकूलताकी आशंका या भावना करके बराबर चिन्ताशील बनना जीवनके विकास और उल्लासको अवरुद्ध और मूर्च्छित करना है। मनुष्यको अपने भीतर आशा और उत्साह भरना चाहिये, व्यर्थकी चिन्ता नहीं। आप भगवान्‌पर और भगवत्कृपापर भरोसा रखें। वे सभीके सहज सुहृद् हैं। आपके भी आत्मा हैं। उन मंगलमय प्रभुकी दयासे आपका भविष्य मंगलमय होगा तथा वे आपके जीवनको सर्वोच्च लक्ष्यपर भी पहुँचायेंगे—ऐसी दृढ़ आस्था और निश्चित आशा रखते हुए आपको सतत प्रसन्न रहना चाहिये। शेष भगवत्कृपा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७०, शक १९३५, सन् २०१३, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, श्रावण कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ९। २८ बजेतक	मंगल	उ०षा० दिनमें ७। १८ बजेतक	२३ जुलाई	सायन सिंहराशिका सूर्य दिनमें ९। १८ बजे।
द्वितीया ,, ७। २२ बजेतक	बुध	श्रवण प्रातः ५। ५३ बजेतक धनिष्ठा रात्रिशेष ४। ४१ बजेतक	२४ ,,	कुम्भराशि सायं ५। १७ बजे, **पंचकारम्भ** सायं ५। १७ बजे, **अशून्यशयनव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ७। ५६ बजे।
तृतीया सायं ५। ३५ बजेतक	गुरु	शतभिषा रात्रिमें ३। ५० बजेतक	२५ ,,	भद्रा प्रातः ६। २८ बजेसे सायं ५। ३५ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८। ३९ बजे।
चतुर्थी दिनमें ४। ६ बजेतक	शुक्र	पू० भा० ,, ३। १९ बजेतक	२६ ,,	मीनराशि रात्रिमें ९। २७ बजे।
पंचमी ,, ३। २ बजेतक	शनि	उ० भा० ,, ३। १५ बजेतक	२७ ,,	मूल रात्रिमें ३। १५ बजेसे, **नागपंचमी** (बंगाल)।
षष्ठी ,, २। २८ बजेतक	रवि	रेवती ,, ३। ३८ बजेतक	२८ ,,	भद्रा दिनमें २। २८ बजेसे रात्रिमें २। २६ बजेतक, **मेषराशि** रात्रिमें ३। ३८ बजे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें ३। ३८ बजे।
सप्तमी ,, २। २४ बजेतक	सोम	अश्विनी रात्रिशेष ४। ३४ बजेतक	२९ ,,	**श्रावण सोमवारव्रत**, मूल रात्रिशेष ४। ३४ बजेतक, **कालाष्टमी**।
अष्टमी ,, २। ५१ बजेतक	मंगल	भरणी अहोरात्र	३० ,,	× × ×
नवमी ,, ३। ४६ बजेतक	बुध	भरणी प्रातः ५। ५९ बजेतक	३१ ,,	भद्रा रात्रिशेष ४। २८ बजेसे, **वृषराशि** दिनमें १२। २७ बजे।
दशमी सायं ५। १० बजेतक	गुरु	कृत्तिका दिनमें ७। ५१ बजेतक	१ अगस्त	भद्रा सायं ५। १० बजेतक।
एकादशी रात्रिमें ६। ५४ बजेतक	शुक्र	रोहिणी ,, १०। ५ बजेतक	२ ,,	मिथुनराशि रात्रिमें ११। २० बजे, **कामदा एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, ८। ५१ बजेतक	शनि	मृगशिरा ,, १२। ३५ बजेतक	३ ,,	**आश्लेषा नक्षत्रका सूर्य** दिनमें ३। ३ बजे।
त्रयोदशी ,, १०। ५४ बजेतक	रवि	आर्द्रा ,, ३। १३ बजेतक	४ ,,	भद्रा रात्रिमें १०। ५४ बजेसे, **प्रदोषव्रत, मासशिवरात्रिव्रत**।
चतुर्दशी ,, १२। ४९ बजेतक	सोम	पुनर्वसु सायं ५। ४६ बजेतक	५ ,,	भद्रा दिनमें ११। ५१ बजेतक, **कर्कराशि** दिनमें ११। ७ बजे, **श्रावण सोमवारव्रत**।
अमावस्या ,, २। ३० बजेतक	मंगल	पुष्य रात्रिमें ८। ७ बजेतक	६ ,,	**भौमवती अमावस्या**, मूल रात्रिमें ८। ७ बजेसे।

सं० २०७०, शक १९३५, सन् २०१३, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, श्रावण शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ३। ४८ बजेतक	बुध	आश्लेषा रात्रिमें १०। ९ बजेतक	७ अगस्त	सिंहराशि रात्रिमें १०। ९ बजे।
द्वितीया रात्रिशेष ४। ३८ बजेतक	गुरु	मघा ,, ११। ४३ बजेतक	८ ,,	**चन्द्रदर्शन, धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री-जयन्ती**, मूल रात्रिमें ११। ४३ बजेतक।
तृतीया ,, ४। ५९ बजेतक	शुक्र	पू०फा० ,, १२। ५० बजेतक	९ ,,	**स्वर्णगौरीव्रत**
चतुर्थी ,, ४। ४७ बजेतक	शनि	उ०फा० ,, १। २५ बजेतक	१० ,,	भद्रा सायं ४। ५३ बजेसे रात्रिशेष ४। ४७ बजेतक, **कन्याराशि** प्रातः ६। ५९ बजे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत**।
पंचमी ,, ४। ६ बजेतक	रवि	हस्त ,, १। १७ बजेतक	११ ,,	**नागपंचमीव्रत, तक्षकपूजा, राष्ट्रीय श्रावणमासारम्भ**।
षष्ठी रात्रिमें २। ५९ बजेतक	सोम	चित्रा ,, १। ११ बजेतक	१२ ,,	तुलाराशि दिनमें १। १५ बजे, **श्रावण सोमवारव्रत**।
सप्तमी ,, १। २७ बजेतक	मंगल	स्वाती ,, १२। २६ बजेतक	१३ ,,	भद्रा रात्रिमें १। २७ बजेसे, **गोस्वामी श्रीतुलसीदास-जयन्ती**।
अष्टमी ,, ११। ३६ बजेतक	बुध	विशाखा ,, ११। २२ बजेतक	१४ ,,	भद्रा दिनमें १२। ३२ बजेतक, **वृश्चिकराशि** सायं ५। ३८ बजे, **बुधाष्टमी**।
नवमी ,, ९। २८ बजेतक	गुरु	अनुराधा ,, १०। ० बजेतक	१५ ,,	**स्वतन्त्रतादिवस**, मूल रात्रिमें १०। ० बजेसे।
दशमी ,, ७। ९ बजेतक	शुक्र	ज्येष्ठा ,, ८। ३२ बजेतक	१६ ,,	धनुराशि रात्रिमें ८। ३२ बजे।
एकादशी सायं ४। ४३ बजेतक	शनि	मूल रात्रिमें ६। ५१ बजेतक	१७ ,,	भद्रा प्रातः ५। ५६ बजेसे दिनमें ४। ४३ बजेतक, **पुत्रदा एकादशीव्रत** (सबका), मूल रात्रिमें ६। ५१ बजेतक, **मघा नक्षत्र एवं सिंहराशि का सूर्य** दिनमें १। ५१ बजे।
द्वादशी दिनमें २। १४ बजेतक	रवि	पू०षा० सायं ५। ९ बजेतक	१८ ,,	मकरराशि रात्रिमें १०। ४४ बजे, **प्रदोषव्रत, दामोदरद्वादशी, सौरभाद्रपदमासारम्भ**।
त्रयोदशी ,, ११। ४९ बजेतक	सोम	उ०षा० दिनमें ३। ३२ बजेतक	१९ ,,	**श्रावण सोमवारव्रत**।
चतुर्दशी ,, ९। ३१ बजेतक	मंगल	श्रवण ,, २। ४ बजेतक	२० ,,	भद्रा दिनमें ९। ३१ बजेसे रात्रिमें ८। २८ बजेतक, **कुम्भराशि** रात्रिमें १। २५ बजे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें १। २५ बजे, **व्रतकी पूर्णिमा**।
पूर्णिमा ,, ७। २५ बजेतक	बुध	धनिष्ठा ,, १२। ४८ बजेतक	२१ ,,	**पूर्णिमा, श्रावणीकर्म, रक्षाबन्धन**।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपानुभूति

रामरक्षा-स्तोत्रका प्रत्यक्ष चमत्कार

बात बहुत पुरानी नहीं है, मैं अपनी दूकानके बाहर खड़ा-खड़ा समाचारपत्र पढ़ रहा था। एक व्यापारीने आकर दस हजारके नोट (सौ-सौवाले सौ नोट) जमा करनेको दिये। मंगलवारका दिन था। दूकान बन्द थी। मैंने वह गड्डी रुईकी बंडीकी भीतरी जेबमें रख ली। मुझे इस बातका ध्यान न रहा कि यह जेब पिछले वर्ष यात्रा करते समय रेलमें कट गयी थी, मैं इस जेबमें कभी कुछ नहीं रखता था। उस समय मति भ्रष्ट हो गयी। जेब कटी है, इसका ध्यान न रहा। प्रभु यह नाटक कर रहे थे। अखबार पढ़ते-पढ़ते नाश्ता किया, चाय भी पी ली। दूकानके सामने राजाका हाता है। वहींपर बड़ा लड़का माल उतरवा रहा था। वहाँ जाकर उसको दूकानकी चाभी दे दी। व्यापारीके दस हजार रुपये देनेकी बात भी बता दी। लड़केके पूछनेपर मैंने जवाब दिया—रुपये बंडीकी भीतरी जेबमें रख लिये हैं। हातेसे वापस घरके दरवाजेपर खड़ा होकर मझली बहूको पुकारकर महावीरजीका भोग मँगाया। प्रति मंगलवार, शनिवार रामबाग-स्थित मन्दिरमें मारुतिनन्दनका भोग लगाता हूँ; प्राय: घरमें ही बना मिष्टान्न ले जानेका नियम है। भगवान्‌का नाम लेकर मन्दिर जानेके मार्गपर चला। लगभग ५०-६० कदम गया था, जहाँ नया सूरज मार्केट बना है, मेरी जेबसे नोटोंकी गड्डी जमीनपर गिर गयी। पर मुझे कोई आभास न हुआ। मेरे पीछे २५-३० वर्षका युवा पुरुष (मानवदेहमें श्रीभगवान्‌जी) आ रहे थे, जिन्होंने गड्डी उठाकर मुझे पुकारकर देते हुए विनम्र शब्दोंमें कहा—'आपकी गड्डी गिर गयी है। कृपया इसे सम्हाल लीजिये।'

इतना सुनना था कि मैंने अपनी जेब टटोली, चेहरा फक हो गया। लपककर गड्डी अपने हाथमें ली। मनुष्यरूपमें उन भगवान्‌को नमनकर धन्यवाद दिया। शरीर रोमांचित हो गया। नेत्र सजल हो गये। वाणी नहीं निकल सकी। गला भर आया। मैं तो उन सज्जनको देखता ही रहा। न आगे बढ़ा, न पीछे हटा, पाँव स्थिर हो गये। मेरा कितना उपकार हुआ, अवर्णनीय है। फिर भी उन्होंने अपने सामने रुईकी बंडीके नीचे जो सूती बंडी थी उसकी भीतरी जेबमें रुपया रखनेको कहा तथा यह भी कहा—'बाबूजी! रुपये सम्हालकर रखा करें, समय बड़ा नाजुक है।' कुछ लोग जानते-पहचानते थे कि मैं मुट्ठीगंजका ही रहनेवाला हूँ। सभीने मेरे भाग्यकी सराहना की। भगवान्‌की लीलाका यशोगान हुआ। उस व्यक्तिकी बड़ी प्रशंसा हुई।

मैं नित्यप्रति 'रामरक्षास्तोत्र' का पाठ करता हूँ। उसमें प्रार्थनाका एक अंश इस प्रकार है*—

तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ।
पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ॥
फलमूलाशिनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ।
पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥
शरण्यौ सर्वसत्त्वानां श्रेष्ठौ सर्वधनुष्मताम्।
रक्षःकुलनिहन्तारौ त्रायेतां नो रघूत्तमौ॥
आत्तसज्जधनुषाविषुस्पृशावक्षयाशुगनिषङ्गसङ्गिनौ।
रक्षणाय मम रामलक्ष्मणावग्रतः पथि सदैव गच्छताम्॥

मुझे ऐसा लगा कि 'मेरे आगे-पीछे दोनों तरफ चलकर प्रभु मेरी रक्षा कर रहे हैं।' मुझे अकस्मात् इसका प्रमाण मिला और भगवत्कृपाकी प्रतीति हुई। प्रभुका धन्यवाद करना उनकी महत्ता एवं श्रेष्ठताका अपमान करना होगा। जिस प्राणीने मेरा उपकार किया, वह अवश्य धन्यवादका पात्र है। इस युगमें जब मनुष्य दानव, राक्षस, हत्यारे और आसुर वृत्तिके शिकार होकर न जाने क्या-क्या हो गये हैं। वे एक-एक पैसेके लिये आपसमें लड़ते हैं, मरने-मारनेकी नौबत आ जाती है, अनायास ही दस हजार रुपये पड़े हुए मिलेको छोड़ देना सतयुगके प्राणीका ही काम है। ऐसे मानवके रूपमें भगवान्‌की जय!

इस युगमें अभी भी ईमानदार, सच्चे प्राणी पृथ्वीपर हैं, जिसका यह एक ज्वलन्त उदाहरण है। ऐसे सज्जनोंसे ही पृथिवी टिकी है। हमें इससे शिक्षा लेनी चाहिये।

—**चिरंजीलाल सिगतिया**

* जो तरुण अवस्थावाले, रूपवान्, सुकुमार, महाबली, कमलके समान विशाल नेत्रवाले, चीरवस्त्र और कृष्णमृगचर्मधारी, फल-मूल आहार करनेवाले, संयमी, तपस्वी, ब्रह्मचारी, सम्पूर्ण जीवोंको शरण देनेवाले, समस्त धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ और राक्षसकुलका नाश करनेवाले हैं; वे रघुश्रेष्ठ दशरथकुमार राम और लक्ष्मण दोनों भाई हमारी रक्षा करें। जिन्होंने सन्धान किया हुआ धनुष ले रखा है, जो बाणका स्पर्श कर रहे हैं तथा अक्षय बाणोंसे युक्त तूणीर लिये हुए हैं, वे राम और लक्ष्मण मेरी रक्षा करनेके लिये मार्गमें सदा ही मेरे आगे चलें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

एक विदेशी महिलाकी ईमानदारी

हमलोग दिनांक ९-५-८७ को ऋषिकेशसे चारधाम-तीर्थयात्राकी गढ़वाल-विकास-निगमकी बसमें सवार होकर यात्रा करनेके लिये प्रस्थित हुए। भगवान् बदरीविशालकी जयकारके साथ यात्रा आरम्भ हुई। मार्गमें हमें कई तरहके दृश्य देखनेको मिले। कई जगह पहाड़से टूटे हुए पत्थर रास्तेमें पड़े हुए मिले। बदरीविशाल और केदारनाथकी कृपासे हमें कहीं कष्ट नहीं हुआ। हमारी बसमें बच्चोंसहित चौबीस यात्री थे। यात्री सभी अच्छे थे। सबसे अच्छा परिचय हो गया था। उधरके दृश्य तो बहुत ही सुन्दर लगते हैं। जयकारकी धुनके साथ बस चलती थी। सबको बहुत आनन्द आता था। हमलोग एक परिवारके सदस्य हो गये थे।

हमलोगोंने पहले यमुनोत्रीके दर्शन किये, फिर गंगोत्री पहुँचे। वहाँ हम गढ़वाल-विकास-निगमके टूरिस्ट बँगलेमें ही ठहरे थे। वहाँ ठंडी अधिक थी। बरफ बहुत गिरी हुई थी। गंगाजीके दर्शन करनेके पश्चात् हमलोग शामको सात बजे जब आग ताप रहे थे, वहीं एक विदेशी महिला मिली। वह कुछ चिन्तित थी। उसे हिन्दी बोलना नहीं आता था। सभी उससे अंग्रेजीमें बातें कर रहे थे। वह हमारे गाइडसे पूछ रही थी कि ऋषिकेश कौन-सी बस कब जायगी और रुपये कितने लगेंगे? तब गाइड बोला—'रातको तो कोई बस नहीं है। कल ही देखना पड़ेगा।' तब वह अपना दुखड़ा बताने लगी—'मैं यात्रापर निकली हूँ। केदारनाथमें मुझे आठ-दस दिन रहना है। केदारनाथसे मैं पूना जाऊँगी, वहाँ अभी एक-दो साल रहूँगी। यहाँपर मेरा पर्स किसीने काट लिया, उसमें मेरे रुपये और आवश्यक कागज, टिकट आदि थे। अब मैं किसी तरह ऋषिकेश पहुँचना चाहती हूँ। वहाँसे फिर आगे जाऊँगी।' हमारे गाइडने उसपर दया की और कहा कि 'मैं आपको रुद्रप्रयागतक ले चलता हूँ, वहाँसे आप बसद्वारा ऋषिकेश चली जाना।' वह प्रसन्न हो गयी। कारण कि उसके पास कोई साधन नहीं था। मेरे पति भी बहुत ही करुणापूर्वक दयाभरी दृष्टिसे उसे देख रहे थे। रातको सभी सो गये। प्रातःकाल हमारे साथ वह भी रुद्रप्रयागके लिये रवाना हो गयी। मेरे पतिको उसपर दया आयी। वे मुझसे पूछने लगे कि 'उसे दो हजार रुपये चाहिये, मैं दे दूँ क्या?' मैं क्यों मना करती। उसे दो हजार रुपये देनेका निर्णय हो गया। हमें विश्वास नहीं था कि वह वापस दे देगी। मेरे पतिने उससे पूछा कि कितने रुपये चाहिये तो वह बोली—'मुझे पन्द्रह सौ रुपये चाहिये। यदि आपकी कृपा होगी तो केदारनाथ भला ही करेगा। मैं पूना जाकर आपको पन्द्रह सौ रुपये भेज दूँगी।' मेरे पतिने उसे पन्द्रह सौ रुपये दे दिये। उसने हमारा पता लिख लिया। वह बहुत प्रसन्न हो गयी। हमारे बसके यात्री कहने लगे कि 'भूल जाना पन्द्रह सौ रुपयेको। इसे तो गंगोत्री और केदारनाथको दान दिया हुआ ही समझो।' मैंने कहा—'ठीक है, चलो दान ही समझ लेंगे।' भगवान्की कृपा और उसकी ईमानदारी देखें कि उसने ८ जूनको पूना पहुँचकर पहले पन्द्रह सौ रुपयेका मनीआर्डर भेजा। साथमें एक पत्र भी था, उसमें अनेक प्रकारके आश्चर्य, प्रेम, आशीष एवं प्यार भरा था। अत्यधिक प्रशंसा की उसने। आज भी हमें वह बहुत याद आती है कि एक विदेशी महिला कितनी ईमानदार हो सकती है।—**सौ० रतन देवी टिबड़ेवाला**

(२)

संतवचनकी महत्ता

घटना सन् १९८५ ई० की है। मैं उन दिनों रक्षामन्त्रालयाधीन उद्यम भारत डायनामिक्स लि० (Bharat Dynamics Ltd.) में अवर प्रबन्धकके रूपमें कार्यरत था। राजभाषा हिन्दी कार्यके साथ-साथ मुझपर सामान्य प्रशासन विभागके भी कुछ कार्योंका भार था। उन दिनों हवाई जहाजके टिकट बनवानेके लिये इण्डियन एयरलाइन्सके टिकट-केन्द्रमें जाकर लाइनमें खड़ा रहकर टिकट बनवाना पड़ता था, हमारी कम्पनीसे अक्सर अनेक अधिकारियोंको दिल्ली, मुम्बई आदि स्थानोंपर जाना-आना सामान्य बात थी। एक दिन सम्बद्ध स्टाफ न होनेके कारण मुझे ५-६ टिकट बनवानेके लिये टिकट-केन्द्र जाना पड़ा। आरक्षणके लाइनमें खड़े होकर मैंने सारे टिकट बनवाये, पैसे भरनेके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये रोकड़ियेकी खिड़कीपर भी भारी भीड़ थी, मैंने इक्यावन हजार रुपये कैशियरको दिये। मुझे केवल पाँच सौ रुपये वापस मिलने थे। कैशियरने टिकटोंका हिसाब किया। हर व्यक्तिके पास उन दिनों कम्प्यूटर्स लगे नहीं थे, उसने मुझे पाँच हजार पाँच सौ रुपये लौटा दिये, मैंने उन्हें बतानेकी कोशिश की कि पैसोंका हिसाब गलत हुआ है, जाँच लें। लेकिन भारी भीड़के कारण उसने मुझे डाँटनेकी मुद्रामें वहाँसे हटनेके लिये कहा। उन दिनों उसकी तनख्वाह सम्भवत: तीन हजार रुपये प्रतिमाससे अधिक नहीं रही होगी। मुझे तुलसीदासजीका दोहा याद आया—

अनुचित उचित बिचार तजि जे पालहिं पितु बैन....

फिर तुरंत पिताजीकी बात याद आयी। जब उन्हें ऐसे ही किसी स्थानपर किसीने आधा आना [नये तीन पैसे] ज्यादा दिये थे तो वे धूपमें चलते-चलते घरसे पुन: पुराने बाजारकी उस दुकानमें जाकर आधा आना लौटाकर आये थे, तब मैंने उनसे कहा था कि वह दुकानदारकी गलती थी, आपने इतनी दूरतक चलनेका कष्ट व्यर्थमें ही किया, तब उन्होंने एक श्लोक कहा, उस समय तो अर्थ नहीं समझा, पर आगे चलकर वह श्लोक सदैव मेरा मार्गदर्शक रहा—

कृतान्तस्य दूती जरा कर्णमूले
समागच्छ वक्तीति लोका शृणुध्वम्।
परस्त्रीपरद्रव्यवाञ्छा त्यजध्वं
भजध्वं रमानाथपादारविन्दम्॥

'यमराजकी दूती—वृद्धावस्था सफेद केशके रूपमें कानके समीप आकर समझा रही है कि परस्त्री और परद्रव्यकी अभिलाषा तजकर भगवान्‌की भक्तिमें लीन हो जा।'

मैं कैशियरकी खिड़कीसे हटकर स्टेशन मैनेजर श्रीमान् कुलकर्णीके पास गया। वे पिछली अनेक मुलाकातोंके कारण मेरे अच्छे मित्र बन चुके थे, मैंने उन्हें कैशियरद्वारा साढ़े पाँच सहस्र रुपये अधिक दिये जानेकी बात बतायी, साथ ही यह भी बतलाया कि कैशियर बहुत व्यस्त होनेके कारण मेरी बात सुननेको तैयार नहीं। कुलकर्णीजीने कैशियरको तुरंत चपरासीके द्वारा बुलवाया। कैशियर झल्लाये हुए आये, मुझे स्टेशन मैनेजरके सामने बैठा देखकर समझे कि मैं उनकी शिकायत करनेके लिये वहाँ आया हूँ। वे कुछ बोलते इससे पहले स्टेशन मैनेजरने उन्हें बैठनेके लिये कहा, फिर कहा, 'आपने इन्हें जो टिकट दिये तथा पैसेका जो हिसाब किया, वह कागज ले आइये।' वे गुस्सेसे बाहर गये और कागज लेकर लौटे। 'मिस्टर जॉर्ज! जरा हिसाब कीजिये और देखिये, सब ठीक है?' श्रीकुलकर्णीने कहा। उन्होंने बिना हिसाब किये ही कहा, 'Yes, everything is right' (हाँ, सब ठीक है)। तब कुलकर्णीजीने उन्हें पाँच हजार पाँच सौका बण्डल दिखाते हुए पूछा, 'तो फिर देवसाहब ये पैसे लौटा रहे हैं कि उन्हें आपने ये पैसे ज्यादा दिये हैं...।' अब जॉर्ज साहबको पसीना आ गया और हिसाबका कागज देखनेके बाद बार-बार माफी माँगने लगे, 'मैं तो लुट जाता साहब, मेरी दो महीनेकी सैलरी डूब जाती और यह कागज तो मैंने कचरेकी टोकरीमें डाल दिया था। मुझे माफ करो साहब! आपने मुझपर बड़ी मेहरबानी की।' मैंने उन्हें और कुलकर्णीजीको पिताजीद्वारा कही गयी बातें बतायीं, फिर उनसे विदा लेकर अपनी कम्पनी चला आया। मैंने तो यह बात किसीको नहीं बतायी, लेकिन कुलकर्णी साहबने जब ये बात मेरे उच्चाधिकारीको बतायी तो हमारे विभागमें यह बात फैल गयी। कुछ लोगोंने मुझे मूर्ख कहा, लेकिन अधिकतर लोगोंने मुझे सराहा। मैं तो दोनों ही बातोंपर केवल मुसकराता रहा। घरमें मेरी पत्नी यह सब सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई, यही संस्कार मैंने अपने पुत्रोंको और जामाताजीको दिये। इस घटनाको काफी दिन बीत गये, पर जब भी यह घटना मेरी स्मृतिमें आती है, तो मन परमात्माद्वारा कराये गये उस नेक कार्यसे गद्गद हो उठता है, साथ ही सन्त-वचनकी जीवनमें महत्ताका बोध होता है।—**नरहरदेव**

(३)

सच्ची श्रद्धा

यह बात सन् १९९९ ई० के जून माहके तीसरे सप्ताहकी है, जब मैं हल्द्वानी (नैनीताल)-के अन्तर्गत भाखड़ा रेंज लामाचौड़में वन-क्षेत्राधिकारीके पदपर कार्यरत था। क्षेत्रके अन्तर्गत पीवल पड़ाव प्लॉट-संख्या ८५, जिसका क्षेत्र लगभग १०० एकड़ रहा होगा, में बीज-बोआईसे वृक्षारोपण करना था। बीज-बोआईसे पूर्व इस प्लॉटकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जुताई तथा समतलीकरणका कार्य कर लिया गया था। बीज बोआईहेतु मैं रेंजके कर्मचारियोंके लिये भोजनकी व्यवस्था कराकर मौकेपर गया। विभिन्न प्रजातियाँ जैसे खैर, शीशम आदिके बीजकी बोआई करनी थी। प्रात:से मौकेपर लगभग ३०-४० श्रमिक कामपर लगे हुए थे। ट्रैक्टरमें रेंजर लगाकर रिज (मेड़) बनायी जा रही थी। श्रमिकोंद्वारा रेंजमें बीज-बोया जा रहा था। जब लगभग दो-तिहाई क्षेत्रमें बीज-बोआईका कार्य पूरा होने जा रहा था, एकाएक उत्तर दिशासे बादल आने लगे। थोड़ी देरमें बादलोंकी गर्जनाके साथ कुछ दूरीपर तेज बारिश होने लगी। मैं बड़ा चिन्तित हो गया कि अब क्या होगा! सारा किया गया कार्य बेकार हो जायगा। बीज-बोआईके बाद बारिश हो जानेपर सारे बीज सड़ जाते हैं। मैंने बड़े आर्त हृदय एवं सच्ची श्रद्धासे आसमानकी तरफ दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की और कहा—हे ईश्वर! आज मेरी लाज रख लो, मेरे इस प्लॉटमें बारिश न हो। कुछ देरतक चारों तरफ काफी जोरसे बारिश हुई। हम सब लोग देखते रहे। इस प्लॉटके चारों तरफ बारिश हुई, परंतु यह प्लॉट ऐसे छूट गया, जैसे भगवान् कृष्णने गिरि गोवर्धन उठाकर गोकुलको बचा लिया था।

आज भी जब मैं इस बातको सोचता हूँ तो प्रभुकी कृपासे मेरा हृदय गद्गद हो जाता है। सच है, आर्त-हृदयकी प्रार्थना भगवान् अवश्य सुनते हैं।

—लीलाधर बेलवाल

(४)

कैबिनमैनकी ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा

घटना १ अप्रैल सन् २०१२ ई०की है, जब मैं अपने गुरु सन्तशिरोमणि स्वामी फलाहारीजी महाराज (कटिया मुनिजी)-के ब्रह्मलीन होनेके बाद उनके भण्डारेमें सम्मिलित होकर अयोध्यासे वापस घर आ रहा था। थैलेमें पूजन-सामग्री, पूजाकी पुस्तकें, घड़ी, कपड़ा, टार्च, पैनकार्डके साथ अयोध्याके हनुमानगढ़ी एवं रामललाका प्रसाद भी था। मैं जम्मूतवी-सियालदह एक्सप्रेससे आ रहा था कि वाराणसी कैण्ट स्टेशनके बहुत पहले ही मेरा थैला गाड़ीसे नीचे गिर पड़ा। अर्धरात्रिका समय था। मैंने अपने अन्य साथियोंको पुकारा, परंतु भीड़-भाड़में कोई सुन न सका। फोनसे सम्पर्क भी करना चाहा, परंतु वह भी नहीं हो पाया। गाड़ीमें काफी भीड़ थी। थैला गिर जानेसे मैं बेचैन-सा हो गया। गाड़ी वाराणसी-कैण्ट स्टेशनपर खड़ी हुई तो मैंने गाड़ीसे उतरकर अपने मित्रोंसे मिलनेकी कोशिश की, परंतु अत्यधिक भीड़की वजहसे किसीसे मुलाकात न हो सकी। मेरे बगलमें खड़े एक सज्जनने कहा कि आपका थैला (झोला) मिल जायगा। थोड़ी दूरीपर ही गिरा है। उनकी बातोंसे मनमें कुछ आशा जगी और मैं रेलवे-लाइन पकड़कर पश्चिम दिशामें रामललाका नाम जपते हुए पैदल ही चल दिया। लगभग एक बजे रात्रिका समय रहा होगा, चारों ओर नीरव अन्धकार छाया था। पता नहीं, मैं किस शक्तिसे आँधी-तूफानकी तरह आगे बढ़ता गया। रास्तेमें अनेक कठिनाइयाँ आयीं, परंतु मेरे मनमें ऐसा लग रहा था कि कोई कह रहा है कि तुम्हारा थैला सुरक्षित रखा है, तुम बढ़ते जाओ। इसी बलपर मैं बढ़ते हुए १० नम्बर रेलवे गुमटीपर पहुँचा। केबिनमैनने मुझे वहाँ देखकर प्रणाम किया और आश्चर्यसे पूछा—'आप रात्रिमें रेलवे-लाइनपर क्यों टहल रहे हैं?' मैंने आपबीती घटना बतलायी। उसने कहा—'आप आरामसे बैठ जाइये, मैं थैला देता हूँ।' मैं अवाक् रह गया। इतनेमें उसने मेरा थैला मेरे पास लाकर रख दिया और बोला—'आप अपना सामान जाँच लीजिये।' मैंने सभी सामान यथावत् ही पाया और खुशीसे उस व्यक्तिको पुरस्कारस्वरूप कुछ देनेकी इच्छा व्यक्त की, परंतु उसने लेनेसे इनकार कर दिया और कहने लगा कि 'यह तो मेरा कर्तव्य है कि मैं आपकी वस्तु आपको दूँ। आप मुझे केवल आशीर्वाद दीजिये।' मैं उस केबिनमैनकी ईमानदारी एवं कर्तव्यनिष्ठाको देखकर गद्गद हो गया। मैंने उससे पूछा कि वाराणसी कैण्टसे यहाँतक मैंने कितनी दूरी पैदल तय की होगी? उसने उत्तर दिया—'बाबा! लगभग तेरह किलोमीटर!'

जब भी मुझे इस घटनाकी स्मृति होती है तो भगवान् रामलला श्रीरामजन्मभूमि अयोध्याकी कृपा और केबिनमैनकी ईमानदारी एवं कर्तव्यनिष्ठाकी अनुभूतिसे मन गद्गद हो उठता है।—**कृष्ण पाण्डेय**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

(१)

एक ऐतिहासिक प्रेरक प्रसंग

'सम्राट्! आज मेरी इच्छा पूरी करो।'—चाणक्यने कहा।

चन्द्रगुप्तने चकित होकर पूछा—'गुरुजी! साम्राज्यमें आपकी आज्ञाके अधीन हम सब हैं। कहिये, क्या आज्ञा है?'

'नहीं-नहीं, आज तुम्हें मेरी इच्छा पूरी करनी होगी। आश्वासन दो। मैंने तुम्हारी सभी इच्छाएँ पूरी कीं—सम्राट् बनाया, विश्वविजयी सेल्यूकसपर विजय प्राप्त करायी, उसकी बेटी हेलेन तुम्हारी साम्राज्ञी हुई, अमात्य राक्षसका महामन्त्रीके रूपमें सफल चयन किया। तुम्हारी सारी आकांक्षाएँ पूरी हुईं। तब क्या तुम मेरी एक आकांक्षा पूरी नहीं करोगे? वादा करो। आज्ञा नहीं कर रहा हूँ, आश्वासन माँग रहा हूँ, जब तुम उसे पूरा करोगे तभी कहूँगा।'—चाणक्यने स्पष्ट किया।

चन्द्रगुप्त चाणक्यके इस वार्तालापसे चकित थे। उन्होंने कह दिया—'ठीक है, जैसी गुरुजीकी इच्छा।'

'आज तुम इस देशके शिखरपर हो, पर मेरे जीवनकी सार्थकता तुम्हारे महलमें नहीं, मेरी कुटियामें है। कदाचित् तुम्हें स्मरण होगा, जब मैं तुम्हारे यहाँ आया था, तब अपना कम्बल, लोटा और डंडा यहाँ जमा करा दिया था। उसे वापस करवा दो और आज मुझे विदा करो।'—चाणक्यने कहा।

सम्राट्के पास कोई उत्तर न था। विभूति लपेटे चाणक्य जैसे आये थे, वैसे ही वापस लौट गये।

इस घटनाके कुछ समय पश्चात् यूनानके सम्राट् सेल्यूकसके दरबारमें किसी वृद्धने पूछा—'सम्राट्! सिकन्दर तो कहीं परास्त न हुए (भारतकी शक्ति देख पंजाबसे वापस हुए), किंतु आप कैसे हार गये?'

सेल्यूकसका गर्वके साथ उत्तर था—'हमारे जामाता चन्द्रगुप्तके शौर्यके कारण ऐसा हुआ।'

वृद्ध ठहाका मारकर हँस पड़ा और बोला—'नहीं, ऐसी बात नहीं। इस हारका कारण वहाँका महामन्त्री चाणक्य था, जिसने सारे भारतवर्षको संगठितकर मोर्चेपर लगा दिया था।'

सेल्यूकसको आश्चर्य हुआ कि उसने इस नामको क्यों नहीं सुना! उसे कौतूहल हुआ ऐसे व्यक्तित्वके प्रति। उसने कहा—'लगता है कि मुझे भारतवर्षकी यात्रा इसी हेतु करनी होगी। दूसरा निमित्त होगा जामाता और लड़कीसे भेंट।'

सेल्यूकसकी भारतयात्रा प्रारम्भ हुई। खैबर घाटीसे प्रवेश हुआ। कई रात यत्र-तत्र टिकता हुआ यात्री-दल पाटलिपुत्र पहुँचा। सम्राट् चन्द्रगुप्तने श्वशुरका भव्य स्वागत किया। सेल्यूकसकी जामाता और पुत्रीसे सुखद भेंट हुई।

सेल्यूकसने पूछा—'तुम्हारा महामन्त्री चाणक्य कौन है? मैं भी उससे मिलना चाहता हूँ।'

चन्द्रगुप्तने कहा—'यह कैसे सम्भव है? अब तो गुरुजी अपनी कुटियापर चले गये हैं। उनकी अनुमतिके बिना कोई भी उनसे मिल नहीं सकता। अनुमति अस्वीकार होनेपर फिर माँगी भी नहीं जा सकती। इसकी छूट केवल मेरे लिये है। उनसे आप निश्चित रूपसे मिल पायें, इसके लिये मुझे साथ चलना पड़ेगा।'

जामाता भारत-सम्राट् चन्द्रगुप्त और विश्वविजेता श्वशुर सेल्यूकस दोनों रथपर सवार होकर चले। कुटियासे लगभग आधी फर्लांगपर रथ रोक दिया गया; क्योंकि रथकी गड़गड़ाहट कुटियातक न पहुँचे। सम्राट्के आनेकी सूचना गुरुजीको भेज दी गयी। सौ गजकी दूरीपर जूता उतार दिया गया। यह कैसा सम्राट् और कैसा महामन्त्री! सेल्यूकस विचारमें पड़ गया, किंतु सेल्यूकस वैसा करनेको बाध्य था। सौ कदम कुटिया रह गयी, सम्राट्का साष्टांग नमस्कार प्रारम्भ हुआ। जिस परेडको सेल्यूकसने कभी नहीं किया था, आज उसे वह भी करना अनिवार्य हो गया।

× × ×

कुटियामें चाणक्यने अभिनन्दन किया और सम्राट् सेल्यूकस कैसे पधारे, इसपर आश्चर्य व्यक्त किया। बैठते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही सेल्यूकसने अपनी यात्राका मुख्य उद्देश्य प्रकट किया। सुनकर चाणक्य मुसकराते हुए बोले—'सम्राट्! आपने अपनी इच्छा व्यक्तकर मुझे निश्चिन्त कर दिया। यदि मैं भूलता नहीं तो आप इस दिन खैबर-दर्रे (घाटी)-में पहुँचे और उसके बाद इन-इन स्थानोंपर आप ठहरे, आपके रात्रि-वार्तालापमें कहीं भी यात्राके उद्देश्यका आभास नहीं मिला। वैसे कहाँ क्या वार्तालाप हुआ, मुझे ज्ञात है।'

सेल्यूकस आश्चर्यचकित रह गया। देशके प्रहरीकी दृष्टि चूँकि सजग और सचल थी। सम्बन्धी विदेशी है, इसलिये आवश्यक है कि उसके प्रवेश करते ही उसकी गतिविधियोंकी पूरी जानकारी रखी जाय। अब क्या देखना शेष था? उसने जामातासे कहा—'मैंने गुरुजीकी साधना समझ ली। यह देश कैसे सुरक्षित नहीं रहेगा, जबकि ये वानप्रस्थी कुटियामें बैठे निरन्तर देशकी सुरक्षापर आँखें लगाये हुए हैं।'

सेल्यूकसने चन्द्रगुप्तसे कहा—'मुझे विश्वास है कि जबतक ऐसे महापुरुष उपस्थित हैं, तबतक तुम और तुम्हारा देश सुरक्षित रहेगा। इनका देशप्रेम अप्रतिम है। इनसे अधिक तुम्हारा रक्षक दूसरा कौन हो सकता है?'—**श्रीचन्द्रबदनजी मिश्र**

(२)

समता

'अरे नामू! तेरी धोतीमें खून कैसे लग रहा है?'—माँने पूछा।

'यह तो माँ! मैंने कुल्हाड़ीसे पैरको छीलकर देखा था।'—नामूने उत्तर दिया। माँने धोती उठाकर देखा तो पैरमें एक जगहकी चमड़ी मांससहित छील दी गयी है। नामदेव तो ऐसे चल रहा था, मानो कुछ हुआ ही नहीं। नामदेवकी माँने फिर पूछा—'नामू! तू बड़ा मूर्ख है। कोई अपने पैरपर भी कुल्हाड़ी चलाया करता है? पैर टूट जाय तो लँगड़ा होना पड़े। घाव पक जाय या सड़ जाय तो पैर कटवानेकी दशा आ जाय।'

'तब पेड़को भी कुल्हाड़ीसे चोट लगनी चाहिये। उस दिन तेरे कहनेसे मैं पलासके पेड़पर कुल्हाड़ी चलाकर उसकी छाल उतार लाया था। मेरे मनमें आया कि अपने पैरकी छाल भी उतारकर देखूँ कि मुझे कैसा लगता है। पलासके पेड़को कुछ हुआ होगा, यही जाननेके लिये मैंने ऐसा किया है माँ!'—नामदेव बोल गये।

नामदेवकी माँको याद आया कि मैंने नामदेवको उस दिन काढ़ेके लिये पलासकी छाल लानेके लिये भेजा था। नामदेवकी माँ रो पड़ी। उसने कहा—'बेटा नामू! तेरे अन्त:करणमें साधुता भरी पड़ी है। जान पड़ता है कि तू आगे चलकर एक महान् साधु होगा। पेड़ों और दूसरे जीव-जन्तुओंमें भी मनुष्यके जैसा ही जीव है। अपनेको चोट लगनेपर जैसा दुःख होता है, वैसा ही उन्हें भी होता है।' यह समता साधुताकी ही द्योतक है।

उपनिषद् एवं पुराण तथा अन्य आर्षग्रन्थोंका प्रकाशन

उपनिषद् एवं पुराण तथा अन्य आर्षग्रन्थ, जो अबतक गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित नहीं हो सके, इन ग्रन्थोंको अनुवादसहित यथाशीघ्र प्रकाशित करानेकी योजना है। इस कार्यहेतु संस्कृतके मूल ग्रन्थोंका अनुवाद करनेके लिये कुशल एवं अनुभवी अनुवादककी आवश्यकता है। जो व्यक्ति प्रांजल हिन्दीमें शुद्ध अनुवाद कर सकते हों, वे कृपया निम्नलिखित पतेपर सम्पर्क करनेका कष्ट करें—

गीताप्रेस, 'कल्याण' सम्पादकीय विभाग

सी. के. १७/१, सुड़िया, वाराणसी-२२१००१

दूरभाष-(०५४२) २३३३४७२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण-ग्राहकोंसे आवश्यक निवेदन

'कल्याण' के जुलाई माहका अङ्क आपके हाथमें है। फरवरीसे प्रतिमाहके अङ्क नियमित अन्तरालसे भेजे जा रहे हैं। प्रत्येक माहके अङ्क उसके पूर्व माहके चौथे सप्ताहमें प्रेषित किये जा रहे हैं। इस प्रकार अङ्क प्रथम सप्ताहतक प्राप्त हो जाना चाहिये। फिर भी अङ्क प्राप्त नहीं होनेकी कुछ शिकायतें आती रहती हैं। इसके कई कारण होते हैं। जैसे—पता त्रुटिपूर्ण होना, पता परिवर्तनकी सूचना समयपर नहीं भेजना एवं डाककर्मी (पोस्टमैन)-की लापरवाही। इस सम्बन्धमें सुझाव है कि अङ्कपर चिपकाये गये पतेको चेक करते रहें। पतेमें पिनकोड/फोन नम्बर अवश्य देवें। पता-परिवर्तनकी सूचना भी समयपर भेजें तथा डाकविभागके प्रति सजगता रखें। समयपर 'कल्याण' नहीं प्राप्त होनेपर पोस्टमैनसे पूछताछ करनी चाहिये। आपकी थोड़ी-सी सतर्कतासे समयपर 'कल्याण' प्राप्त होगा ही, कल्याण-कार्यालयके प्रति शिकायत नहीं रहेगी।

'कल्याण' के वर्तमान वर्षका विशेषाङ्क—**'श्रीभक्तमाल-अङ्क'** प्रत्येक मासिक अङ्कके साथ उपलब्ध है। किसीको ग्राहक बनाना चाहें या उपहारमें भिजवाना चाहें तो रकम भेजनेके साथ पूर्ण पता एवं आर्डर प्रेषित करें। वी०पी०पी० से भी नया ग्राहक बननेकी सुविधा उपलब्ध है। व्यवस्थापक—**कल्याण-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर**

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार— **गीता-संग्रह (कोड 1958)**—श्रीमद्भगवद्गीता गीताप्रेसके द्वारा विभिन्न भाष्यों, टीकाओंके साथ विभिन्न आकार-प्रकारमें प्रारम्भसे ही सतत प्रकाशित हो रही है, किन्तु अन्यान्य महत्त्वपूर्ण गीताएँ आज भी जनसामान्यके लिये दुर्लभ हैं। अन्यान्य गीताओंको भी पाठकोंको सहजतासे एक साथ सुलभ करानेकी दृष्टिसे प्रस्तुत पुस्तकमें गणेशगीता, हंसगीता, नारदगीता, रामगीता, उत्तरगीता, अष्टावक्रगीता, अवधूतगीता, हरीतगीता, यमगीता, भगवतीगीता आदि कुल पचीस गीताओंका सानुवाद संकलन प्रकाशित किया जा रहा है। मू० रु० ८०

योगवासिष्ठ (कोड 1960) गुजराती—प्रस्तुत पुस्तक गुरु वसिष्ठ एवं श्रीरामके संवादके रूपमें तत्त्वज्ञान एवं योगके बहुमूल्य उपदेशोंका अनुपम संग्रह है। इसमें जगत्‌की नश्वरता एवं परमात्माकी सत्ताका विभिन्न दृष्टान्तोंके माध्यमसे सुन्दर प्रतिपादन है। तत्त्वज्ञानके निरूपणके साथ-साथ आदर्श व्यवहारपर भी इसमें सूक्ष्म विवेचन है। मूल्य रु० १५०

अधूरे सेट अब सीमित संख्यामें ही उपलब्ध

			मू०रु०
1188	मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका	प्रस्तावना खण्ड	१००
1192	मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका—खण्ड-१	(बालकाण्डके प्रारम्भसे दोहा) ४३ (क) तक	९०
1193	मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका—खण्ड-२	(,, दोहा ४३ (ख) से दोहा १८८/६ तक	१००
1194	मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका—खण्ड-३	(,, दोहा १८८/७) से बालकाण्ड समाप्तितक	१५०
1197	मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका—खण्ड-६	(लंकाकाण्डसे उत्तरकाण्ड परिशिष्टसहित)	१२०

(कोड 1191) श्रीशुकसुधासागर (खण्ड-२) मू० रु० १५०, **(कोड 1338) श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण**-केवल हिन्दी (खण्ड-२) मू०रु० १२०, **(कोड 1536) श्रीमद्भागवतमहापुराण**, सटीक—**विशिष्ट सं०** (खण्ड-२) मू० रु० २३०, **(कोड 1475) श्रीसकल-संत-वाणी** (खण्ड-२) मराठी, मू० रु० १८०

नोट—उपर्युक्त पुस्तकोंके कारण यदि आपका सेट अधूरा हो तो मँगवाकर अपना सेट पूरा कर सकते हैं।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

प्र० ति० २०-६-२०१३

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2011-201

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT	LICENCE No. WPP/GR-03/2011-201

श्रावणमासमें पाठ-पारायण एवं स्वाध्यायहेतु गीताप्रेसके प्रमुख प्रकाशन

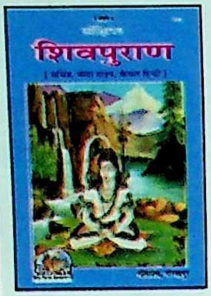

संक्षिप्त शिवपुराण (कोड 789) मोटा टाइप, सचित्र, सजिल्द, ग्रन्थाकार— शिव-महिमा, लीला-कथाओंके अतिरिक्त इसमें पूजा-पद्धति, अनेक ज्ञानप्रद आख्यान और शिक्षाप्रद कथाओंका सुन्दर संयोजन है। मूल्य रु० १७५, **(कोड 1468)** विशिष्ट संस्करण मूल्य रु० २२५, गुजराती **(कोड 1286)** मूल्य रु० १७०, **नवीन प्रकाशन**—कन्नड़ **(कोड 1926)** मूल्य रु० १४०, तेलुगु **(कोड 975)** मूल्य रु० १५०, बँगला **(कोड 1937)** मूल्य रु० १२५ प्रत्येकका डाकखर्च रु० ४० अतिरिक्त।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम् (कोड 29) मूल, मोटा टाइप, ग्रन्थाकार— इसके प्रत्येक श्लोकमें भक्ति, प्रेमकी अनुपम सुगन्धि है। मूल श्लोकोंका पाठ करनेकी दृष्टिसे यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य रु० १४०, डाकखर्च रु० ३५ अतिरिक्त। **(कोड 124)** मूल, मझला, मूल्य रु० ८०, विशिष्ट सं० **(कोड 1855)** मूल्य रु० १००, डाकखर्च रु० ३० अतिरिक्त। **(कोड 26, 27)** हिन्दी-व्याख्यासहित दो खण्डोंमें सेट, मूल्य रु० ४००, डाकखर्च रु० ६० अतिरिक्त। **(कोड 1951, 1952)** हिन्दी-व्याख्यासहित पत्राकारकी तरह बेड़िआ, मोटा टाइप, दो खण्डोंमें सेट मूल्य रु० ७०० डाकखर्च रु० १०० अतिरिक्त।

कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०
586	शिवोपासनाङ्क	१००
1627	रुद्राष्टाध्यायी—सानुवाद	२५
1417	श्रीशिवस्तोत्ररत्नाकर	२५
1343	हर-हर महादेव-चित्रकथा	२०
1156	एकादश रुद्र (शिव) ,,	५०
204	ॐ नमः शिवाय ,, (कन्नड़ एवं बँगलामें भी)	२०
563	शिवमहिम्नःस्तोत्रम् (तेलुगु, मराठी भी)	४
228	शिवचालीसा (पॉकेट)	२
1185	,, लघु, बँगला भी	१
1599	शिवसहस्रनामस्तोत्रम्-नामावलिसहितम्	६
1800	पंचदेव-अथर्वशीर्ष-संग्रह	६

कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०
230	अमोघशिवकवच	३
	नित्यकर्म, भजन एवं आरतीकी पुस्तकें	
592	नित्यकर्म-पूजा-प्रकाश (गुजराती, तेलुगु भी)	५०
52	स्तोत्ररत्नावली (बँगला, तेलुगु भी)	३०
1367	श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा	१०
1355	सचित्र-स्तुति-संग्रह	६
1591	आरती-संग्रह, मोटा टाइप	१५
54	भजन-संग्रह	४०
1849	भजन-सुधा	१४
1862	गोपालसहस्रनामस्तोत्रम्	१२
144	भजनामृत	१०
142	चेतावनी-पद-संग्रह	२५

कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०
140	श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली	२[illegible]
1551	संत जगन्नाथदासकृत श्रीमद्भागवत (ओड़िआ)	२२[illegible]
1732	शिवलीलामृत (मराठी)	४[illegible]
	श्रीमद्भागवत—सम्पूर्ण हिन्दीमें	
25	श्रीशुक-सुधा-सागर-बृहदाकार	४५[illegible]
1930	श्रीमद्भागवत-सुधा-सागर अंग्रेजी, मराठी, गुजराती	२५[illegible]
1945	,, विशिष्ट संस्करण	३०[illegible]
30	श्रीप्रेम-सुधा-सागर (दशम स्कन्ध)	१[illegible]
571	श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन	१४[illegible]

श्रावणमास भगवान् आशुतोष शिव एवं भगवान् विष्णुकी उपासनाका विशिष्ट समय है। इस कालमें किये गये पूजा-पाठ, पुराण-श्रवण, दानपुण्य आदि अक्षय हो जाते हैं। **श्रावणमास** २३ जुलाईसे प्रारम्भ हो रहा है।

प्रत्येक पुस्तकके डाकखर्चमें पैकिंगखर्च तथा रजिस्ट्रीके रु० १७ शामिल हैं। एकसे अधिक पुस्तक एक पैकेटमें जानेपर रजिस्ट्रीखर्च मात्र रु० १७ ही लगता है। व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

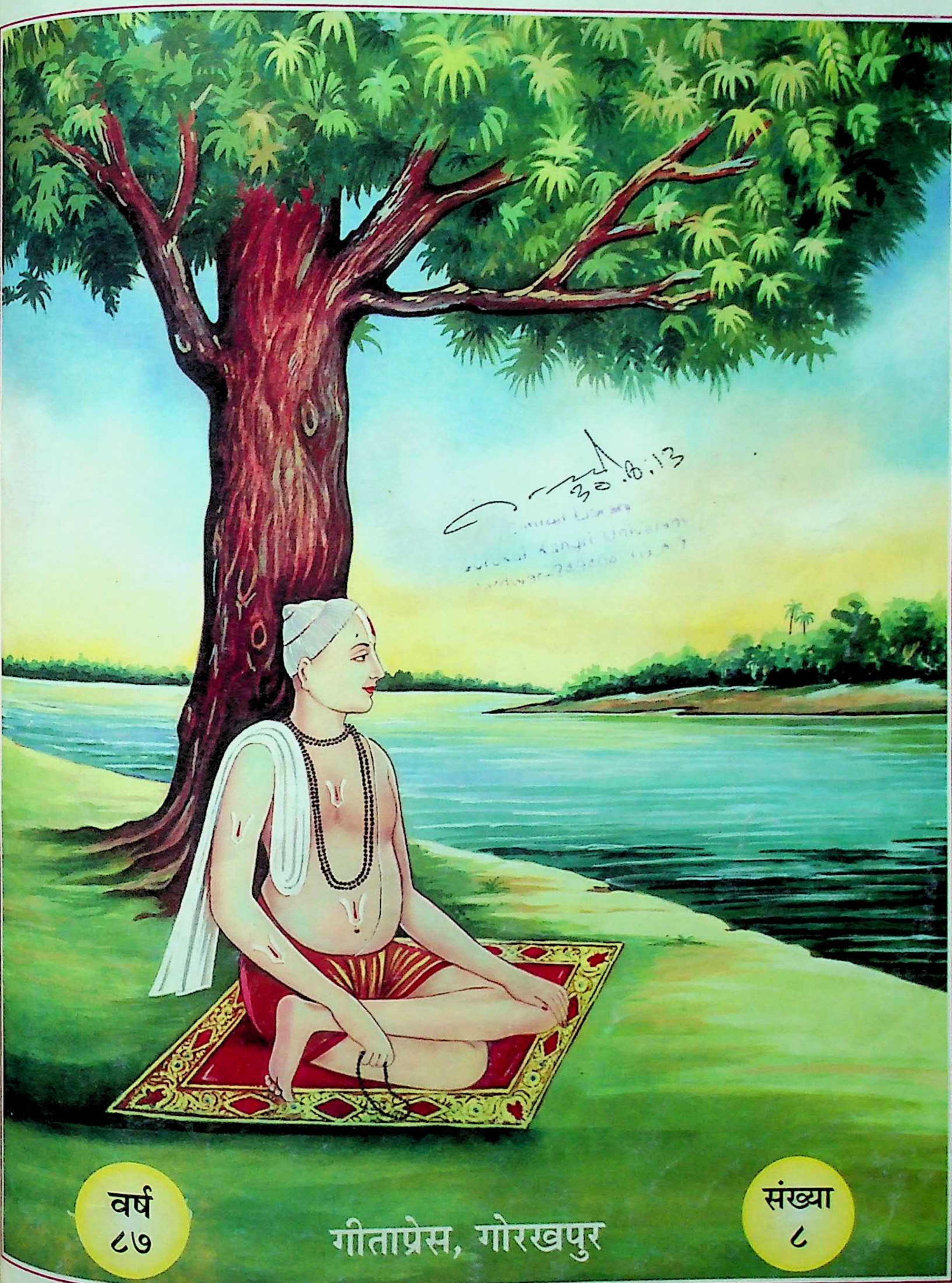

गोस्वामी श्रीतुलसीदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

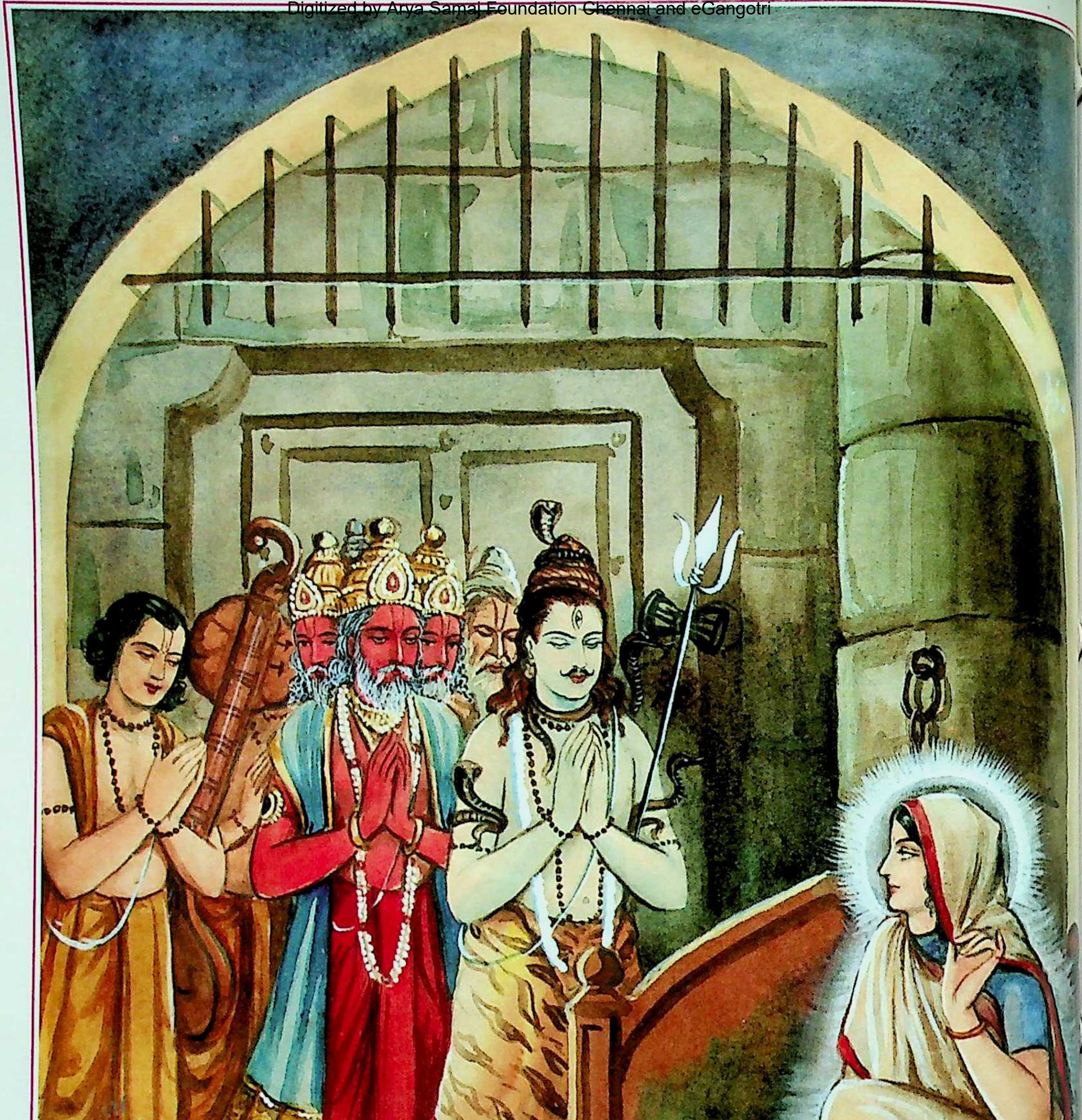

गर्भस्तुति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

वाग् गद्‌गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्‌गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

वर्ष ८७ | गोरखपुर, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०७०, श्रीकृष्ण-सं० ५२३९, अगस्त २०१३ ई० | संख्या ८

पूर्ण संख्या १०४१

पुस्तकालय 132280 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

गर्भस्तुति

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥
त्वमेक एवास्य सतः प्रसूतिस्त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च।
त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये॥

[**देवतालोग प्रार्थना करते हुए कहते हैं—**] प्रभो! आप सत्यसंकल्प हैं। सत्य ही आपकी प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन है। सृष्टिके पूर्व, प्रलयके पश्चात् और संसारकी स्थितिके समय—इन असत्य अवस्थाओंमें भी आप सत्य हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच दृश्यमान सत्योंके आप ही कारण हैं। और उनमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान भी हैं। आप इस दृश्यमान जगत्‌के परमार्थस्वरूप हैं। आप ही मधुर वाणी और समदर्शनके प्रवर्तक हैं। भगवन्! आप तो बस, सत्यस्वरूप ही हैं। हम सब आपकी शरणमें आये हैं। ××××इस संसाररूप वृक्षकी उत्पत्तिके आधार एकमात्र आप ही हैं। आपमें ही इसका प्रलय होता है और आपके ही अनुग्रहसे इसकी रक्षा भी होती है। जिनका चित्त आपकी मायासे आवृत हो रहा है,इस सत्यको समझनेकी शक्ति खो बैठा है—वे ही उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाले ब्रह्मादि देवताओंको अनेक देखते हैं। तत्त्वज्ञानी पुरुष तो सबके रूपमें केवल आपका ही दर्शन करते हैं। [**श्रीमद्भागवत**]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०७०, श्रीकृष्ण-सं० ५२३९, अगस्त २०१३ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- गर्भस्तुति	३
२- कल्याण	५
३- भगवत्कृपा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	६
४- लीलावतार-चिन्तन (दण्डी स्वामी श्रीमहेश्वरानन्द सरस्वतीजी)	८
५- कुछ व्यावहारिक शिष्टाचार (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१०
६- निर्झरनाद (श्रीबाबूलालजी सोलंकी 'फणीन्द्र') [प्रे०—श्रीचन्द्रकिशोरजी सोलंकी]	१२
७- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१४
८- 'रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैः' (श्रीअर्जुनलालजी बंसल)	१६
९- योगवासिष्ठका मुमुक्षुव्यवहार-प्रकरण (श्रीरघुनाथप्रसादजी सराफ)	१८
१०- सीखने और समझनेकी बातें (श्रीपथिकजी महाराज) [प्रेषक—श्रीमहेशचन्द्रजी]	२०
११- भक्तोंकी अनन्य गति हैं भगवान् (आचार्य डॉ० श्रीपवनकुमारजी शास्त्री, साहित्याचार्य)	२२
१२- त्याग और सन्तोष (श्रोत्रिय ब्रह्मलीन वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज) [प्रे०—श्रीज्ञानचन्द्रजी गर्ग]	२५
१३- रसिकशिरोमणि श्रीअग्रदेवाचार्यजी महाराज [भक्तगाथा] (श्रीसियाशरणजी शास्त्री)	२७
१४- नाम-मोह—एक महारोग (श्रीअगरचन्दजी नाहटा)	२९
१५- मृत्यु भी एक शिक्षक है (डॉ० श्रीविजयकुमारजी अरोड़ा, एम०ए०, पी-एच०डी०)	३०
१६- शास्त्रवाद (श्रद्धेय पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)	३३
१७- 'तेरो नाम सुमंगलदायक' [कविता] (श्रीजगदीशनारायणजी मिश्र)	३८
१८- कविवर तुलसीदास एवं सन्त एकनाथका काव्य-सौष्ठव (डॉ० श्रीशरद्चन्द्रजी पेंढारकर)	३९
१९- गौकी उपयोगिताके विविध आयाम (डॉ० श्रीकरुणाशंकरजी दुबे)	४१
२०- विनम्रता [प्रेरक-प्रसंग] (श्रीमती उषाजी अग्रवाल)	४२
२१- व्रतोत्सव-पर्व [भाद्रपदमासके व्रत-पर्व]	४३
२२- साधनोपयोगी पत्र	४४
२३- कृपानुभूति	४५
२४- पढ़ो, समझो और करो	४६
२५- मनन करने योग्य	४९
२६- उत्तराखण्डकी त्रासदी (राधेश्याम खेमका)	५०

चित्र-सूची

१- गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- गर्भस्तुति	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- विश्वामित्रका श्रीरामको समझाना	(इकरंगा)	१८
४- विश्वामित्र-वसिष्ठ-श्रीराम-संवाद	(,,)	१८
५- द्रौपदीकी लज्जा-रक्षा	(,,)	२३
६- श्रीअग्रदासजी	(,,)	२७

सन् २०१४ के लिये शुल्क
एकवर्षीय
अजिल्द २०० रु०
सजिल्द २२० रु०
पंचवर्षीय
अजिल्द १००० रु०
सजिल्द ११०० रु०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 45 (Rs. 2200), पंचवर्षीय US$ 225 (Rs. 11000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

चालू वर्षका शुल्क
एकवर्षीय
अजिल्द १८० रु०
सजिल्द २०० रु०
पंचवर्षीय
अजिल्द १००० रु०
सजिल्द ११०० रु०

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **www.gitapress.org** | e-mail : **Kalyan@gitapress.org** | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—श्रीभगवान्‌के चरणोंकी शरण लेना ही जीवनकी एकमात्र सफलता है; क्योंकि भगवान् ही समस्त प्राणियोंके स्वामी, सुहृद्, प्रियतम और आत्मा हैं। जो लोग इन्द्रियभोगोंमें फँस जाते हैं, उन्हें भगवान्‌के परम कल्याणस्वरूप चरणकमलोंकी प्राप्ति नहीं होती।

इसलिये यह मानव-शरीर—जो भगवत्प्राप्तिके लिये पर्याप्त है—जबतक रोग-शोकादिसे ग्रस्त होकर मृत्युके मुखमें नहीं चला जाता, तभीतक बुद्धिमान् पुरुषको अपने कल्याणके लिये प्रयत्न कर लेना चाहिये।

प्रभुका पथ बतलानेवाले और उसपर ले चलनेवाले गुरुकी भक्तिपूर्वक सेवा, अपनेको जो कुछ मिले—सब भगवान्‌के समर्पण कर देना, प्रेमी-भक्त साधुओंका सत्संग, भगवान्‌की आराधना, भगवत्कथामें श्रद्धा, भगवान्‌के गुण और लीलाओंका कीर्तन, भगवान्‌के चरण-कमलोंका ध्यान, भगवान्‌के श्रीविग्रहादिका दर्शन-पूजन आदि साधनोंसे भगवान्‌में सहज प्रेम हो जाता है।

याद रखो—भगवान् परमेश्वर श्रीहरि समस्त प्राणियोंमें विराजमान हैं, यह समझकर यथाशक्ति सभी प्राणियोंकी इच्छा पूरी करे और हृदयसे उन सबका सम्मान करे।

जो लोग काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—इन छः भीतरी शत्रुओंपर विजय प्राप्त करके उपर्युक्त प्रकारसे भगवान्‌की भक्ति करते हैं, उन्हें भगवान् वासुदेवके श्रीचरणोंमें अनन्य प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है।

प्रेम-भक्तिकी प्राप्ति होनेपर जब भगवान्‌के लीला-शरीरोंमें किये हुए अद्भुत पराक्रम, उनके अनुपम गुण और चरित्रोंको सुनकर अत्यन्त हर्षसे मनुष्यका रोम-रोम खिल उठता है, प्रेमाश्रुओंके कारण कण्ठ गद्गद हो जाता है और वह संकोच छोड़कर उच्च स्वरसे गाने और नाचने लगता है, जब वह ग्रहाविष्ट उन्मत्तकी भाँति कभी हँसता है, कभी करुण-क्रन्दन करता है, कभी भगवान्‌के दिव्य गुणोंका स्मरण करके उनका ध्यान करता है तो कभी भगवद्भावसे उनकी वन्दना करने लगता है, जब वह भगवान्‌में तन्मय होकर निःसंकोच श्वास-श्वासमें 'हे हरे, हे जगत्पते, हे नारायण!' इस प्रकार पुकारने लगता है, तब इस प्रेमाभक्तिके प्रभावसे उसके सारे बन्धन कट जाते हैं और भगवद्भावकी भावना करते-करते उसका हृदय भगवन्मय हो जाता है। उस समय उसके जन्म-मरणके बीजोंका भण्डार बिलकुल जल जाता है और वह पुरुष श्रीभगवान्‌को प्राप्त कर लेता है।

याद रखो—धन, स्त्री, पशु, पुत्र, महल, जमीन, हाथी, खजाना और भाँति-भाँतिके ऐश्वर्य और तो क्या, संसारका समस्त धन तथा भोगपदार्थ—सभी क्षणभंगुर हैं। वे इस मरणशील मनुष्यको क्या सुख दे सकते हैं?

भगवान् मुकुन्दको प्रसन्न करनेके लिये ब्राह्मण, देवता या ऋषि होना, सदाचार और बहुत-सा ज्ञान होना तथा दान, तप, यज्ञ, शौच और बड़े-बड़े व्रतोंका अनुष्ठान करना ही सब कुछ नहीं है। भगवान् श्रीहरि तो केवल निष्काम प्रेम-भक्तिसे भी प्रसन्न होते हैं, और सब तो विस्तारमात्र है।

इसलिये सब प्राणियोंको अपने ही समान समझकर सर्वत्र विराजमान, सबके आत्मा, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर श्रीहरिकी भक्ति करनी चाहिये।

यह भक्ति ऐसी है कि इसके प्रभावसे दैत्य, यक्ष, राक्षस, स्त्री, शूद्र, गोपालक, पशु-पक्षी और बहुत-से पापी जीव भी भगवद्भावको प्राप्त हो जाते हैं।

इस जगत्‌में जीवका सबसे बड़ा स्वार्थ—परम स्वार्थ एकमात्र यही है कि वह सदा-सर्वदा-सर्वत्र—सबमें भगवान्‌का दर्शन करता हुआ भगवान् गोविन्दकी अनन्य भक्ति करे। **'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवत्कृपा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान्‌की असीम दयाकी थाह कौन पा सकता है?

अपरिमेय परमात्माकी दया तो अपार है, उसके साथ अनन्त समुद्रोंकी भी तुलना नहीं की जा सकती।

परमात्माकी दया सम्पूर्ण जीवोंपर इतनी अपार है कि जो मनुष्य इसके तत्त्वको समझ जाता है, वह भी निर्भय हो जाता है, शोक-मोहसे तर जाता है, अपार शान्तिको प्राप्त हो जाता है और स्वयं दयामय ही बन जाता है।

मनुष्य अपनी समझके अनुसार अपने ऊपर जितनी अधिक-से-अधिक भगवान्‌की दया समझता है, वह भी नितान्त अल्प ही होती है।

मनुष्य ईश्वरकी दयाकी यथार्थ कल्पना ही नहीं कर सकता।

भगवान्‌की अनन्त दया सबके ऊपर समभावसे गंगाके प्रवाहकी भाँति नित्य-निरन्तर चारों ओर से प्रवाहित हो रही है।

भगवान्‌की दयासे जो मनुष्य जितना लाभ उठाना चाहता है, उतना ही उठा सकता है।

भगवान्‌की दयाकी थाह उसी प्रकार किसीको नहीं मिलती, जैसे विमानपर बैठकर आकाशमें उड़नेवाले मनुष्यको आकाशकी थाह नहीं मिलती।

जैसे अथाह गंगाके प्रवाहमेंसे मनुष्यकी प्यास बुझानेके लिये एक लोटा गंगाजल ही पर्याप्त है, वैसे ही उन अपार, अपरिमित दयासागरकी दयाके एक कणसे ही मनुष्यकी अनन्त जन्मोंकी शोकाग्नि सदाके लिये शान्त हो जाती है।

सबको चाहिये कि उन परमेश्वरकी शरण होकर उनकी दयाकी खोज करें। भगवान्‌की दया सदा-सर्वदा और सर्वत्र व्याप्त है।

सुख या दुःख, जय या पराजय जो कुछ भी प्राप्त होता है, वह ईश्वरकी दयासे पूर्ण है।

ईश्वरके समस्त विधानोंमें उनकी दया-ही-दया भरी है।

जैसे-जैसे जीव भगवान्‌की दयाके प्रभावको समझता जायगा, वैसे-वैसे ही नित्य-निरन्तर उत्तरोत्तर अधिकाधिक विलक्षण आनन्द, शान्ति और समताकी वृद्धि होती जायगी।

जो पुरुष भगवान्‌की दयाके यथार्थ प्रभावको जान लेता है, उसके उद्धारकी तो बात ही क्या है, वह दूसरोंके लिये भी मुक्तिका दाता बन जाता है।

भगवत्कृपा मूकको वाचाल बना देती है और पंगुको पर्वत लाँघनेकी शक्ति देती है।

जीव सब प्रकारसे असमर्थ है, पर परमेश्वरकी दया और आज्ञासे वह भी जो चाहे सो कर सकता है।

भगवान्‌की दयासे मच्छर ब्रह्मा बन सकता है।

दयाके तत्त्वको न समझनेके कारण ही सब जीव दुःखी हो रहे हैं।

भगवत्प्रार्थनासे, भजन-ध्यानसे, उनकी दयाके महत्त्वको यत्किंचित् जाननेवाले पुरुषोंका संग करनेसे सत्-शास्त्रोंके पठन-श्रवण-मननसे और परमेश्वरके किये हुए समस्त विधानोंमें दयाकी खोज करनेसे मनुष्य दयाके तत्त्वको जान सकता है।

भगवान्‌की दया इतनी अपार है कि सारे संसारकी दयाको एकत्र किया जाय तो वह भी उन दयासागरकी दयाके एक कणके बराबर नहीं हो सकती।

भगवान्‌की दयाके प्रभावको समझनेपर मनुष्यके सब प्रकारके दुःखोंका सर्वथा नाश हो जाता है।

जो मनुष्य भगवान्‌की दयाके प्रभावको जान जाता है, वह पद-पदपर उन दयालुका स्मरण करके नित्य-निरन्तर आनन्दमें डूबा रहता है।

परमेश्वरकी दया सब जीवोंपर समानभावसे सदा-सर्वदा अपार है।

जीव कितना भी परमेश्वरके विपरीत आचरण करे, परंतु परमेश्वर उसे सदा ही दयाकी दृष्टिसे देखते हैं। बालक बहुत कुपात्र और नीच वृत्तिवाला है, नित्य अपनी माताको सताता है, गाली देता है, तब भी माता बालकके मंगलकी ही कामना करती है, कभी उसका पतन या नाश नहीं चाहती।

परम पिता परमेश्वर कोई कितना ही विरुद्ध आचरण क्यों न करे, वे कभी न तो उसका त्याग ही करते हैं और न अनिष्ट ही चाहते हैं।

विपरीत आचरण करनेवालेको भगवान् जो दण्ड देते हैं, वह भी उनकी परम दया है।

कोई जीव कैसा भी पापी क्यों न हो, अनेक तिर्यक्-योनियोंके भोग भोगनेपर उसे भी अन्तमें परमात्मा मनुष्यका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर देते ही हैं। यदि उसके पापोंकी ओर ध्यान दिया जाय तो उसे मनुष्यका शरीर मिलनेकी बहुत ही कम गुंजाइश रह जाती है, परंतु यह उन परमात्माकी हेतुरहित परम दयाका ही कार्य है, जो पुन: उसे मनुष्य-शरीर देकर सुधारका मौका देते हैं।

भगवान्‌के द्वारा विधान की हुई विपत्तिमें भी बड़ी भारी सम्पत्ति छिपी रहती है।

जो मनुष्य भक्त प्रह्लादकी तरह प्राप्त हुई विपत्तियोंमें परमात्माकी दया देखता है, उसके लिये वे सारी विपत्तियाँ तत्काल ही सम्पत्तिके रूपमें परिणत हो जाती हैं।

साधनकालमें भगवान् अपने भक्तोंपर विपत्तियाँ डालते हुए-से दीखते हैं और किसी-किसीकी मान-बड़ाई, प्रतिष्ठा और सम्पत्ति भी हर लेते हैं, सो किसलिये? उन्हें अज्ञानरूपी निद्रासे जगानेके लिये, साधनकी रुकावटोंको हटानेके लिये, पापोंसे पवित्र करनेके लिये, कायरताका नाश करके उन्हें वीर और धीर बनानेके लिये, सच्ची भक्तिको बढ़ानेके लिये और उनकी ऐसी विमल कीर्ति फैलानेके लिये, जिसे गा-गाकर लोग पवित्र हो जायँ।

विपत्तिकालमें भगवान् जितने याद आते हैं, उतने सम्पत्तिकालमें नहीं आते।

परमात्माकी दयाकी निरन्तर अनवरत वर्षा हो रही है।

कभी-कभी परमात्माकी विशेष दयासे पूर्वपुण्यपुंजके कारण, उनके प्रेम, प्रभाव, गुण और रहस्यकी अमृतरूप कथा बिना चाहे और बिना चेष्टा किये स्वत: ही आ प्राप्त होती है, उसके तत्त्वको न समझनेके कारण वहाँसे उपेक्षा करके चला जाना उसका अमृतरूपी वर्षासे भागकर घरमें घुस जाना है और कथामें उपस्थित रहकर आलस्य और नींद लेना अपने ऊपर छाता लगा लेना है।

सम्पूर्ण जीवोंके मस्तकपर भगवान्‌का निरन्तर हाथ है, परंतु अभागे जीव उस हाथको हटाकर परे कर देते हैं।

जब यह जीव कोई बुरा काम करनेके लिये तैयार होता है, तब प्राय: उसीके हृदयसे यह आवाज आती है कि 'यह बुरा काम है।' परंतु काम या लोभके वश होकर वह ईश्वरकी आज्ञाकी अवहेलना करके बुरे काममें प्रवृत्त हो ही जाता है—यही उन कृपासिन्धुकी कृपाकी अवहेलना करना है अर्थात् अपने मस्तकपर जो उनका हाथ है, उसे परे हटाना है।

समय-समयपर परमेश्वर उत्तम काम करनेके लिये भी हृदयमें प्रेरणा करते हैं, परंतु यह जीव उसकी अवहेलना करके संसारके विषयभोग और प्रमादमें लग जाता है, यह भी उन दयामयका हमारे सिरपर जो हाथ है, उसे परे करना है।

ईश्वरकी प्राप्तिके साधनमें बाधकरूप संसारके धन-जन-मान-ऐश्वर्य आदिके नाश होनेपर पुन: उन क्षणभंगुर, नाशवान्, दु:खमय पदार्थोंकी प्राप्तिकी इच्छा करना भी उन दयामयके हाथको अपने मस्तकसे परे हटाना है।

हमलोगोंको चाहिये कि भगवान्‌की दयाको पहचानें और सर्वथा उसकी संरक्षतामें रहकर नित्य निर्भय और परम सुखी हो जायँ।

जिस प्रकार दीपकके पास पतंगोंको देखकर दयालु पुरुष उन्हें बचानेकी अनेक चेष्टा करते हैं, पर इस रहस्यको वे पतंगे नहीं समझ पाते और बरबस जल मरते हैं, उसी प्रकार ईश्वरके बार-बार बचानेपर भी ये अभागे जीव संसारके इस अनित्य तुच्छ विषयजन्य सुखकी लोभनीय चमकमें चौंधियाकर उन अतुलनीय आनन्ददाताकी दया को भूल जाते हैं एवं इसीमें फँसकर मर जाते हैं।

जिसके मनमें काम-क्रोधादि विकार भरे हुए हैं, वह भी ईश्वरकी दयाका समानभावसे अवश्य पात्र है, पर अज्ञानवश वह भगवद्दयाका लाभ नहीं उठा सकता।

उसीको ईश्वरका कृपापात्र समझना चाहिये, जिसके मनोविकार दूर हो गये हों।

जो मनुष्य भगवान्‌की नित्य समान दयाका प्रभाव जान लेता है, वह भगवत्-भजनके सिवा अन्य कुछ भी नहीं कर सकता।

जिसे मनुष्य-शरीर मिलता है, उसपर ईश्वरकी महान् दया समझनी चाहिये।

ईश्वरकी दयाका तो पार ही नहीं है।

सच्चा भक्त प्रभुके प्रत्येक विधानमें दयाका दर्शन करता रहता है।

परम प्रेमी और सच्चे सुहृद् तो केवल प्रभु ही हैं। उनकी दयामें न्याय और न्यायमें दया ओत-प्रोत है।

सब कुछ प्रभुका पुरस्कार ही है। मृत्यु भी उनकी दयाका ही चिह्न है।

भक्त तो मृत्युको भी प्रभुका प्रसाद मानकर प्रेमसे गले लगाता है। वह उसे ईश्वरका भेजा हुआ पुरस्कार समझकर उसीमें आनन्द और कल्याण मानता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभु तो बहुरूपियेके रूपमें सर्वत्र सर्वदा हमारे आस-पास, भीतर-बाहर गुप्तरूपसे विचरते हैं। जो प्रभुके तत्त्वको जान जाता है, वह सर्वत्र प्रभुकी दया-ही-दयाका दर्शन करता है।

सारे संसारके जीवोंमें जो दया और प्रेम दीखते हैं, वह सब मिलकर प्रेममय दयासागरकी दया और प्रेमकी एक बूँदके समान भी नहीं है।

मनुष्यको उचित है कि वह पद-पदपर ईश्वरकी दयाका दर्शन करते हुए दुःखोंको ईश्वरका प्रदान किया पुरस्कार समझकर आनन्दके साथ उन्हें स्वीकार करे।

अवश्य ही ईश्वरकी सब लोगोंपर अपार दया है, परंतु इस बातको लोग मानते नहीं, इसी कारण दया उनके लिये फलती नहीं।

ईश्वरकी दयाका रहस्य समझमें आ जानेपर उसी क्षण मनुष्य अपने-आपको सम्पूर्ण रूपसे उन यन्त्री भगवान्‌के प्रति समर्पण कर देता है; अर्थात् सब प्रकारसे वह श्रीभगवान्‌की शरण होकर अपनेको सदाके लिये उन्हें सौंप देता है।

भगवान्‌की पूर्ण दया सभीपर समान भावसे है, इसमें कुछ भी संशय नहीं; किंतु जैसे कोई दरिद्र मनुष्य अपने घरमें गड़े हुए धनको न जाननेके कारण तथा अपने पासमें पड़े हुए पारसको न जाननेके कारण लाभ नहीं उठा सकता, वैसे ही मूर्खलोग भगवान्‌को एवं भगवान्‌की दयाके रहस्यको न जाननेसे ही लाभ नहीं उठा सकते।

प्रभावसहित भगवान्‌को और भगवान्‌की दयाके रहस्यको जाननेके लिये उपाय है भगवान्‌की अनन्यशरण।

मैं कैसा नीच हूँ, कैसा निकृष्ट और महापामर हूँ, परंतु उस परम प्रभुकी मुझपर कितनी अपार दया है कि वे मुझे साथ लेकर लीला कर रहे हैं। प्रभुने सब पाप-तापोंसे बचाकर मुझे ऐसा बना लिया है।

भगवान् दयाके असीम, अनन्त, अथाह सागर हैं, वे जो कुछ भी करते हैं, उसमें जीवोंके प्रति दया भरी रहती है।

जैसे आगमें पड़ते हुए पतंगोंके सामनेसे दीपक हटा लेना या उसको बुझा देना अथवा उसके पास आते हुए पतंगोंके मार्गमें रुकावट डालना उनपर दया करना है, इसी प्रकार ईश्वर दण्डविधानके रूपमें जीवोंको विषयभोगसे वंचित करके उनपर महान् दया करते हैं।

लीलावतार-चिन्तन

(दण्डी स्वामी श्रीमहेश्वरानन्द सरस्वतीजी)

गीतामें भगवान्‌के अवतारके तीन कारण—साधुपुरुषोंकी रक्षा, दुष्टों—अत्याचारियोंका संहार तथा धर्मस्थापन बताये गये हैं। जिसकी ज्ञान, बल तथा क्रियास्वरूपा त्रिशक्ति—जो प्रभुकी इच्छामात्रसे सृष्टि, पालन तथा संहार कर सकती है, क्या उसकी समर्थ इच्छाशक्तिसे दुष्टसंहारपूर्वक धर्मस्थापन नहीं हो सकता? वास्तवमें भगवान्‌को अपना सर्वस्व परम धन जानने तथा माननेवाले परमप्रेमी भक्तोंका प्रेमाकर्षण ही पूर्ण आनन्दमय परमात्माके अवतारका प्रमुख कारण है।

भगवान् नित्य रसमय-परम-आनन्दस्वरूप होते हुए भी भक्तोंके मनोगत भावोंके अनुरूप अर्थात् जो जिस स्वरूपमें दर्शन चाहता है, उसकी इच्छापूर्ति-निमित्त वैसा सगुण-साकार विग्रह धारण करके धराधाममें अवतरित होते हैं। संसारमें किसीसे प्रेम होनेपर यदि नाम ठीक न लगे तो बदल सकते हैं, परंतु रूप नहीं बदल सकते, परंतु भगवान्‌के असंख्य नाम तथा रूप होनेके कारण जिस भी नाम तथा रूपसे प्रेम हो, उसमें प्रेमकी प्रगल्भता बढ़ाकर उसके भक्तमनोहारी दिव्य लीलाचरित्रोंमें मनको निमग्न कर सकते हैं। श्रीरामचरितमानसमें भी भक्तोंके प्रेमको ही अवतारका कारण कहा गया है—

ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप॥

नाम-रूप-रहित, व्यापक, सर्वाश्रय, निर्विकारी, स्फुरणाशून्य, इच्छारहित, चैतन्य आनन्दघन भगवान् लीला-रसानुभूतिद्वारा भक्तोंके हृदयमें आनन्दकी अभिवृद्धिके लिये धराधाममें अवतरित होते हैं। वह एक भगवत्तत्त्व ही अनेक प्रकारके नाम-रूपोंद्वारा उपास्य बनता है—

वदन्ति तत् तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

(श्रीमद्भा० १।२।११)

जिस तत्त्वको जाननेवाले उसे ज्ञानस्वरूप, अद्वय कहते हैं, उसे ज्ञानी इन्द्रिय, मन तथा वाणीसे परे जानकर ब्रह्म कहकर वर्णन करते हैं, योगी अपनेमें एवं सबमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विराजमान अनुभव करके परमात्मा कहते हैं तथा वही भक्तोंके प्रेमरज्जुसे बँधकर षडैश्वर्यसम्पन्न ईश्वर जब अपने भक्तोंके लिये सहज सुलभ हो जाता है, तब भगवान् कहलाता है।

मायामोहित अज्ञानी उसे जन्म-मरणधर्मा समझते हैं। जनसामान्यके जन्म लेने तथा भगवान्‌के अवतारमें यह अन्तर है कि जीव मायाके अधीन होकर कर्मवश जन्म लेते हैं, जबकि भगवान् जीवका कल्याण करनेके लिये करुणावश अपनी योगमायाको अधीन करके प्रकट होते हैं। एक उदाहरणके द्वारा इसे समझा जा सकता है, जेलमें जेलर, सिपाही, भण्डारी तथा कैदी इत्यादि होते हैं। कैदियोंको कर्मफल भोगनेके लिये बन्धनमें पड़कर रहना पड़ता है, जबकि जेलर, सिपाही इत्यादि इच्छानुसार भीतर या बाहर आ-जा सकते हैं, उसी प्रकार ईश्वर अपने प्रेमी, परिकरों तथा जीवन्मुक्त महापुरुषोंसहित धराधाममें आते-जाते रहते हैं या कभी-कभी दिव्य महापुरुषोंको जगत्कल्याणार्थ भेजते रहते हैं।

भगवान्‌का लीलावतार-विग्रह पंचतत्त्वोंसे उत्पन्न रक्त-मांसादि अपवित्र वस्तुओंसे बना नहीं होता। ब्रह्मामोहके प्रसंगमें ब्रह्माजीने **'स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि'** (श्रीमद्भा० १०।१४।२) अर्थात् प्रभो! आपका शरीर भावनामय है, पंचमहाभूतोंसे बना नहीं है—कहकर प्रभुकी स्तुति की है। पंचमहाभूतात्मक शरीर सभीको एक-जैसा ही दिखायी देता है, परंतु भगवान् एक स्थानपर भी अलग-अलग स्वरूपोंमें दर्शन दे सकते हैं। श्रीमद्भागवत (१०।४३।१७)-में कंसकी सभामें श्रीकृष्ण-बलरामजीका दर्शन सबको उनके हृदयोंके भावानुरूप ही हुआ था, ऐसा वर्णन है—

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः॥

कंसकी सभाके पहलवानोंको वज्रसदृश सुगठित देहवाले, मनुष्योंको मानवश्रेष्ठ (राजा), स्त्रियोंको मूर्तिमान् कामदेव, गोप-ग्वालोंको स्नेही-स्वजन, दुष्टोंको शासन करनेवाले यमराज, माता-पिताको शिशु, भोजराज कंसको साक्षात् मृत्यु, अज्ञानियोंको विराट् ब्रह्म, योगियोंको परमतत्त्व तथा वृष्णिवंशी यदुवंशियोंको उनके उद्धारक परमदेवके रूपमें श्रीकृष्ण तथा बलरामजीका दर्शन हुआ।

भगवदवतारमें भगवान् ऐश्वर्य, माधुर्य, सौशील्य, सर्वशक्तिमत्ता, धर्म, ज्ञान-वैराग्य, यश तथा कोटिकन्दर्प-दर्प-दमनीय लावण्य इत्यादिकी पूर्णता होते हुए भी वे विशेष प्रयोजन बिना गुणोंको प्रकट न करते हुए सामान्य मानवकी भाँति ही रहते हैं, परंतु जैसे सूर्य छोटा तथा स्थानविशेषमें स्थित दीखता हुआ भी सम्पूर्ण जगत्‌का अन्धकार मिटा देता है, उसी प्रकार अवतारकालमें प्रभु एकदेशीय प्रतीत होते हुए भी अपनी दिव्य अलौकिक शक्तियोंद्वारा विश्वकल्याण तथा सबके हृदयोंमें दिव्यताका संचार कर देते हैं।

माचिसकी तीलीसे अग्नि प्रकट किये बिना अग्नि-सम्बन्धी कार्य नहीं हो सकते, वैसे ही निर्गुण-निराकार ब्रह्मके सगुण-साकार हुए बिना रसिक भक्तोंके हृदयमें आनन्दरस संचारित करनेवाली मधुरतम लीलाएँ तथा सृष्ट्यादि कर्म भी नहीं हो सकते। निर्विकार, निराकार, निरंजन तथा कूटस्थ ब्रह्म भी भक्तोंके प्रेममें बँधकर खिंचा चला आता है—

अहो चित्रमहो चित्रं वन्दे तत्प्रेमबन्धनम्।
यद् बद्धं मुक्तिदं मुक्तं ब्रह्मक्रीडामृगीकृतम्॥

इस महान् आश्चर्यमय प्रेमबन्धनकी मैं वन्दना करता हूँ, जिसमें बँधकर नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त तथा सबका मुक्तिदाता प्रेमी भक्तोंके हाथका खिलौना बन जाता है। विदुरानीके प्रेमरसाभिसिक्त छिलके खाता है, कभी मइया यशोदाद्वारा ऊखलमें बाँधा जाता है, कभी कौरवसभामें द्रौपदीकी लाज बचानेहेतु वस्त्रावतार धारण करता है, कभी शबरीके जूठे बेर खाता है, कभी करमाबाईकी खिचड़ी खाता है। तभी तो जगत्स्रष्टा ब्रह्माजी भी अपने प्रेमरज्जुसे भगवान्‌को बाँधनेवाले भक्तोंकी चरणधूलिकी श्रीकृष्णसे याचना करते हैं। उस मनभावनकी स्तुतिमें एक पद निवेदित है—

निरीह-निर्विकार जो व्यापि रह्यो कण-कण में,
भक्त हित लागि सगुण रूप धारि आवत है।
वेद अरु पुरान जाकी महिमा को न पावें अन्त,
सोइ अनन्त लीला-रसमाधुरी दिखावत है॥
योगी अरु ध्यानी जाकी झलकहू को ललचाँय,
भगतन सब काज करि नाचिकै रिझावत है।
'महेश्वरानन्द' निरंजन-निराकार ज्योति भावे ध्यावे,
वारें कोटि काम जा छवि सो मनभावत है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ व्यावहारिक शिष्टाचार

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

एक व्यक्ति दूसरेके साथ जो सभ्यतापूर्ण व्यवहार करता है, उसे शिष्टाचार कहते हैं। यह व्यवहार ऐसा होना चाहिये कि अपने रहन-सहन तथा वचनोंसे दूसरोंको कष्ट या असुविधा न हो। शिष्टाचार दिखावटी नहीं होना चाहिये, वह सच्चा होना चाहिये। शिष्टाचार सदाचारका एक अंग है। प्रत्येक देश एवं समाजके शिष्टाचारके नियम कुछ पृथक्-पृथक् होते हैं। बचपनमें ही इन नियमोंको जान लेना चाहिये और इनके पालनका स्वभाव बना लेना चाहिये।

शिष्टाचारके दो मुख्य भाग हैं—एक अपने शरीर, वस्त्र, चलने-फिरने, खाने-पीने, उठने-बैठने आदिसे सम्बन्धित और दूसरा, दूसरे व्यक्तियोंसे व्यवहार, बातचीत आदिसे सम्बन्धित। जैसे ही बच्चा कुछ समझनेयोग्य होता है, उसे इन नियमोंके पालनका अभ्यस्त बनाना चाहिये।

बड़ोंका अभिवादन

१-बड़ोंको कभी 'तुम' मत कहो, उन्हें 'आप' कहो और अपने लिये 'हम' का प्रयोग मत करो, 'मैं' कहो।

२-जो गुरुजन घरमें हैं, उन्हें सबेरे उठते ही प्रणाम करो। अपनेसे बड़े लोग जब पहले मिलें, जब उनसे भेंट हो, प्रणाम करना चाहिये।

३-जहाँ दीपक जलानेपर या मन्दिरमें आरती होनेपर सायंकाल प्रणाम करनेकी प्रथा हो, वहाँ उस समय भी प्रणाम करना चाहिये।

४-जब किसी नवीन व्यक्तिसे परिचय कराया जाय, तब उन्हें प्रणाम करना चाहिये। पान-इलायची या पुरस्कार जब कोई दे, तब उस समय भी उसे प्रणाम करना चाहिये।

५-गुरुजनोंको पत्र-व्यवहारमें भी प्रणाम लिखना चाहिये।

६-प्रणाम करते समय हाथमें कोई वस्तु हो तो उसे बगलमें दबाकर या एक ओर रखकर प्रणाम करना चाहिये।

७-चिल्लाकर या पीछेसे प्रणाम नहीं करना चाहिये। सामने जाकर शान्तिसे प्रणाम करना चाहिये।

८-प्रणामकी उत्तम रीति दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाना है। जिस समाजमें प्रणामके समय जो कहनेकी प्रथा हो, उसी शब्दका व्यवहार करना चाहिये। महात्माओं तथा साधु-सन्तोंके चरण छूनेकी प्राचीन प्रथा है।

९-जब कोई भोजन कर रहा हो, स्नान कर रहा हो, बाल बनवा रहा हो, शौच जाकर हाथ न धोये हो तो उस समय उसे प्रणाम नहीं करना चाहिये। उसके इन कार्योंसे निवृत्त होनेपर प्रणाम करना चाहिये।

बड़ोंका अनुगमन

१-अपनेसे बड़ा कोई पुकारे तो 'क्या', 'ऐं', 'हाँ' नहीं कहना चाहिये। 'जी हाँ', 'जी' अथवा 'आज्ञा' कहकर बोलो।

२-लोगोंको बुलाने, पत्र लिखाने या उनकी चर्चा करनेमें उनके नामके आगे 'श्री' और 'जी' अवश्य लगाओ। इसके अतिरिक्त 'पण्डित' 'सेठ' 'बाबू', 'लाला' आदि-आदि उपाधि हो तो उसे भी लगाओ।

३-अपनेसे बड़ोंकी ओर पीठ करके मत बैठो। उनके सामने पैर फैलाकर भी मत बैठो। उनकी ओर पैर करके मत सोओ।

४-मार्गमें जब गुरुजनोंके साथ चलना हो तो उनके आगे या बराबर मत चलो, उनके पीछे चलो। उनके पास कुछ सामान हो तो आग्रह करके उसे स्वयं ले लो। कहीं दरवाजेमेंसे जाना हो तो पहले बड़ोंको जाने दो। द्वार बन्द हो तो आगे बढ़कर खोल दो और आवश्यकता हो तो भीतर प्रकाश कर दो। यदि द्वारपर पर्दा हो तो उसे तबतक उठाये रहो, जबतक वे अन्दर न चले जायँ।

५-सवारीपर बैठते समय बड़ोंको पहले बैठने देना चाहिये। कहीं भी बैठे हो तो बड़ोंके आनेपर खड़े हो जाओ और उनके बैठ जानेपर बैठो। उनसे ऊँचे आसनपर तो बैठो ही मत। बराबर भी मत बैठो। नीचे बैठनेकी जगह हो तो नीचे बैठो। स्वयं सवारीपर हो या ऊँचे चबूतरे आदि स्थानपर और बड़ोंसे बात करनी हो तो नीचे उतरकर बात करो। वे खड़े हों तो उनसे बैठे-बैठे बात मत करो, खड़े होकर बात करो। चारपाई आदिपर बड़ोंको तथा अतिथियोंको सिरहानेकी ओर बैठाना चाहिये। मोटर-घोड़ागाड़ी आदि सवारियोंमें बराबर बैठना ही हो तो बड़ोंकी बायीं ओर बैठना चाहिये।

६-जब कोई आदरणीय व्यक्ति अपने यहाँ आयें, तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ दूर आगे बढ़कर उनका स्वागत करना चाहिये और जब वे जाने लगें, तब सवारीतक या द्वारतक उन्हें पहुँचाना चाहिये। छाया या पानीतक पहुँचानेकी पुरानी परम्परा है।

७-गुरु, स्वामी आदिके आसनपर उनकी अनुपस्थितिमें भी नहीं बैठना चाहिये।

८-यदि मार्गमें चलते समय छाता एक ही हो तो उसे अपने हाथमें ले लो और इस प्रकार उन्हें लगाये रहो कि उसकी ताड़ियाँ (तिल्लियाँ) उन्हें न लगें।

९-कोई सम्मानित व्यक्ति अपने यहाँ आयें तो 'आइये' नहीं कहना चाहिये। उनसे 'पधारिये' कहना चाहिये।

छोटोंके प्रति

१-बच्चोंको, नौकरोंको अथवा किसीको भी 'तू' मत कहो। 'तुम' या 'आप' कहकर बोलो।

२-जब कोई तुम्हें प्रणाम करे, तब उसके प्रणामका उत्तर प्रणाम करके, आशीर्वाद देकर या जैसे उचित हो, अवश्य दो।

३-बच्चोंको चूमो मत। यह स्वास्थ्यके लिये भी हानिकारक है। स्नेह प्रकट करनेकी भारतकी पुरानी रीति है मस्तक सूँघ लेना। यही उत्तम रीति है।

४-नौकरोंको भी भोजन तथा विश्रामके लिये उचित समय दो। बीमारी आदिमें उनकी सुविधाका ध्यान रखो। नौकर भोजन, स्नान आदिमें लगा हो तो पुकारो मत। किसीको भी कभी नीच मत समझो।

५-तुम्हारे जानेसे, तुमसे जो छोटे हैं, उन्हें असुविधा न हो—यह ध्यान रखना चाहिये। छोटोंके आग्रह करनेपर भी उनसे अपनी सेवाका काम कम-से-कम लेना चाहिये।

स्त्रियोंके प्रति

१-अपनेसे बड़ी स्त्रियोंको माता, बराबरवालीको बहन तथा छोटीको कन्या समझो।

२-बिना जान-पहचानकी स्त्रीसे कभी बात करनी ही पड़े तो दृष्टि नीचे करके बात करनी चाहिये। स्त्रियोंको घूरना, उनसे हँसी करना, उनके प्रति इशारे करना या उनको छूना असभ्यता है, अशिष्टता है और पाप भी है।

३-घरके जिस भागमें स्त्रियाँ रहती हों, वहाँ बिना सूचना दिये नहीं जाना चाहिये। जिस मार्गसे स्त्रियाँ ही जाती हों, उधरसे नहीं जाना चाहिये। जहाँ स्त्रियाँ स्नान करती हों, वहाँ नहीं जाना चाहिये। जिस कमरेमें कोई स्त्री अपरिचित हो, अकेली हो, परदा करनेवाली हो, सोयी हो, कपड़े पहन रही हो, भोजन कर रही हो, उसमें भी नहीं जाना चाहिये।

४-गाड़ी, नाव आदिमें स्त्रियोंको बैठाकर तब बैठना चाहिये। कहीं सवारीमें या अन्यत्र स्थानकी कमी हो और कोई स्त्री आ जाय तो उठकर उसके बैठनेके लिये स्थान खाली कर देना चाहिये।

५-नंगी स्त्रियोंको या उनके चित्रको देखना बहुत बुरा है। न तो स्त्रियोंके सामने अपर्याप्त वस्त्रोंमें स्नान करना चाहिये और न उनसे स्त्री-पुरुषके गुप्त रोगोंकी चर्चा करनी चाहिये।

यही बातें स्त्रियोंके लिये भी हैं। विशेषत: उन्हें खिड़कियों या दरवाजोंमें खड़े होकर झाँकते नहीं रहना चाहिये और न गहने पहनकर या इस प्रकार सज-धजकर निकलना चाहिये कि लोगोंका ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो। (नारीका परम भूषण शील है।)

सर्वसाधारणके प्रति

१-यदि किसीके अंग ठीक नहीं—कोई काना, कुबड़ा, लँगड़ा या कुरूप है अथवा किसीमें तुतलाने आदिका कोई स्वभाव है तो उसे चिढ़ाओ मत, उसकी नकल मत करो। कोई स्वयं गिर पड़े या उसकी कोई वस्तु गिर जाय, किसीसे कोई भूल हो जाय, तो हँसकर उसे दु:खी मत करो। यदि कोई दूसरे प्रान्तका तुम्हारी रहन-सहनमें, बोलनेके ढंगमें भूल करता है तो उसकी हँसी मत उड़ाओ।

२-कोई रास्ता पूछे तो उसे समझाकर बताओ और सम्भव हो तो कुछ दूरतक जाकर मार्ग दिखा आओ। कोई चिट्ठी या तार पढ़वाये तो रुककर पढ़ दो। किसीका भार उससे न उठता हो तो उसके बिना कहे ही उठवा दो। कोई गिर पड़े तो उसे सहायता देकर उठा दो। जिसे जैसी भी सहायता कर सकते हो, उसे अवश्य करो। किसीकी उपेक्षा मत करो।

३-अन्धोंको अन्धा कहनेके बदले 'सूरदास' कहना चाहिये। किसीमें कोई अंग-दोष हो तो उसे चिढ़ाना नहीं चाहिये। उसे इस प्रकार बुलाना या पुकारना चाहिये कि उसको बुरा न लगे।

४-किसी भी देश या जातिके झंडे, राष्ट्रियगान, धर्मग्रन्थ अथवा सम्मान्य महापुरुषोंका अपमान कभी मत करो। उनके प्रति आदर प्रकट करो। किसी धर्म या सम्प्रदायपर आक्षेप मत करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५-सोये हुए व्यक्तिको जगाना हो तो बहुत धीरेसे जगाना चाहिये।

६-किसीसे झगड़ा मत करो। कोई बहसमें अपने मतपर हठ करे और उसकी बातें तुम्हें ठीक न लगें, तब भी उसका खण्डन करनेका हठ मत करो।

७-मित्रों, पड़ोसियों, परिचितोंको 'भाई', 'चाचा' आदि उचित सम्बोधनोंसे पुकारो।

८-दो व्यक्ति झगड़ रहे हों तो उनके झगड़ेको बढ़ानेका प्रयत्न मत करो। दो व्यक्ति परस्पर बातें कर रहे हों तो वहाँ मत जाओ और न छिपकर उनकी बातें सुननेका प्रयत्न करो। दो आदमी बैठे या खड़े बातें करते हों तो उनके बीचमेंसे मत जाओ।

९-'आपने हमें पहचाना?' ऐसे प्रश्न करके दूसरोंकी परीक्षा मत करो। आवश्यकता न हो तो किसीका नाम-गाँव-परिचय मत पूछो और कोई कहीं जा रहा हो तो 'कहाँ जाते हो?' यह भी मत पूछो।

१०-किसीका पत्र मत पढ़ो और न किसीकी कोई गुप्त बात जाननेका प्रयत्न करो।

११-किसीकी निन्दा या चुगली मत करो। दूसरोंका कोई दोष तुम्हें ज्ञात भी हो जाय तो उसे किसीसे कहो मत। किसीने तुमसे दूसरेकी निन्दा की हो तो निन्दकका नाम मत बतलाओ।

१२-बिना आवश्यकताके किसीकी जाति, आमदनी, वेतन मत पूछो।

१३-कोई अपना परिचित बीमार हो जाय तो उसके पास कई बार जाना चाहिये। वहाँ उतनी ही देर ठहरना चाहिये, जिसमें उसे या उसके आस-पासके लोगोंको कष्ट न हो। उसके रोगकी गम्भीरताकी चर्चा वहाँ नहीं करनी चाहिये और न बिना पूछे औषध बताने लगना चाहिये।

१४-अपने यहाँ कोई मृत्यु या दुर्घटना हो जाय तो बहुत चिल्लाकर शोक नहीं प्रकट करना चाहिये। किसी परिचित या पड़ोसीके यहाँ मृत्यु या दुर्घटना हो जाय तो वहाँ अवश्य जाकर आश्वासन देना चाहिये।

१५-किसीके घर जाओ तो उसकी वस्तुओंको मत छुओ। वहाँ प्रतीक्षा करनी पड़े तो धैर्य रखो। कोई तुम्हारे यहाँ आये और उसे प्रतीक्षा करनी पड़े तो समय काटनेके लिये कुछ पुस्तक, समाचार-पत्र आदि दे दो।

१६-बातचीतमें कम बोलो। किसीसे अपनी ही बात मत कहते रहो। दूसरोंकी बात धैर्यपूर्वक सुनो। कोई तुम्हारे पास आकर कुछ अधिक देर भी बैठे तो ऐसा भाव मत प्रकट करो कि तुम ऊब गये हो।

१७-किसीसे मिलो तो उसका कम-से-कम समय लो। केवल आवश्यक बातें ही करो। वहाँसे आना हो तो उसको नम्रतापूर्वक सूचित कर दो। वह अनुरोध करे तो यदि बहुत असुविधा न हो तो कुछ देर वहाँ रुको।

[क्रमशः]

निर्झरनाद

(श्रीबाबूलालजी सोलंकी 'फणीन्द्र')

मेरे प्यारे कृष्ण! मेरे दुलारे घनश्याम! यह तो अत्यन्त उपहासास्पद बात होगी, यदि मैं कहूँ कि मैंने भावजगत्‌में आपका दर्शन करके आपसे प्रत्यक्ष बातें की हैं तथापि मैं आपसे कुछ निवेदन करनेकी धृष्टता कर रहा हूँ। प्रेमार्णव! मेरे उपास्य! इसके निमित्त और उपादान कारण तो तुम ही हो। जीवनाधार! इसे कविता कहनेका साहस तो दुस्साहसमात्र है। हृदयसमुद्रमें तरंग उठी, मैंने उसे लिखा, किंतु उस तरंगको उत्पन्न करनेवाले तो ब्रजराज! तुम ही हो। इसमें दोष तो पद-पदपर हैं। क्यों न हों, दोषागार तो मैं हूँ ही। मेरा शब्दकोष भी तो इने-गिने शब्दोंको लेकर ही है। सो मैं नये-नये शब्द कहाँसे लाता। सन्तोष इतना ही है कि इसमें तेरा गुणगान है, तेरा पावन नाम है। स्वीकार करना-न करना तेरी मर्जीपर निर्भर है; क्योंकि मैं अपनी मर्जीको तेरी मर्जीमें मिला चुका हूँ। सो अरज इतनी ही है कि इसे अपनी मानकर, मुझे अपना समझकर स्वीकार करो।

स्वीकार कर लेनेपर सुरक्षित रखना या नष्ट करना सीमित रखना या असीमित करना करुणामय! यह तेरा अपना ही काम है। वस्तुतः काव्य-कलाका—कविताका ज्ञान तो मुझे रंचमात्र भी नहीं है। फिर इसमें रस-अलंकार मैं कहाँसे लाता? जो हो, यह तुकबन्दी की है तुम्हें रिझानेके लिये, तुम्हें सुनानेके लिये। पसन्द आये तो तेरी, न आये तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरी। विश्वेश्वर! यह तेरी चीज तुझे अर्पण है।

प्रियतम! हृदय-निर्झरकी धारासे जो नाद निकला, उसीका नाम तेरे बलपर, तेरे इंगितपर निर्झरनाद रख लिया। इसका प्रेरक भी तो तू ही है। प्रेमसागर! ये प्रेम-तरंग पद-प्रान्तमें अर्पण है।

जगदाधार! मैं एक क्षुद्र, तुच्छ, लघुतम प्राणी हूँ। प्राणी क्यों? एक तुच्छ कीट हूँ, जो तेरी कृपा प्राप्त करनेके लिये चरणोंमें निरन्तर छटपटा रहा है—इस आशापर, इस विश्वासपर कि एक दिन आप अवश्य उठाकर अपनी अभय गोदमें स्थान देंगे। दीनबन्धु! यह तुच्छ भेंट चरणोंमें समर्पित है। आशा है इसे स्वीकार करोगे। मेरे हृदयके निगूढ़तम स्पन्दनसे परिचित हे चिरकुमार! मैंने इन शब्दोंमें अन्तरतमकी व्यथाएँ-पीड़ाएँ ही तो अंकित की हैं। इन शब्दोंमें मैंने हृदयका रुदन ही प्रकट करनेका प्रयास किया है। वह भी तुझसे पूछकर तेरी अनुमति पाकर।

दोहरा-दोहराकर बिलख-बिलखकर मैंने तुमसे मनकी बात कही है। तुमने सुना भी या नहीं सुना—यह कहनेका साहस मैं नहीं कर सकता। यदि तुम न सुनते—साहस न बँधाते रहते तो मैं आगे-आगे इसे कैसे लिख पाता? भवाम्बुधिके थपेड़ोंमें उग्र उत्तुंग लहरोंमें एक विराट् विशाल प्रकाश-स्तम्भके रूपमें मेरे इन दृगोंके अन्तःचक्षुओंके सन्मुख प्राणाधार! तुम ही तो रहते आये हो। लहरोंके आघातोंसे त्रस्त, श्रान्त, आर्त होकर जब-जब मैंने तुम्हें पुकारा, तुमने हाथ बढ़ा-बढ़ाकर तब-ही-तब मुझे सहारा दिया, विश्वास दिया, करुणाभरी दृष्टिसे मेरी ओर देखा मन्द मुसकरा दिये और कहते रहे—भयभीत क्यों होते हो? मैं हूँ यहाँ तेरा रक्षक, भर्ता, चालक और गति। पथ बीहड़ है, कंटकाकीर्ण है, सुनसान है, पर मैं हूँ सदा-सर्वदा तेरे साथ। अँधेरे-उजालेमें, दुःखमें, सुखमें। डर मत, आगे बढ़ता चल। सुन्दर उपवन है, हरी-भरी वनश्री है और है आनन्दका—शान्तिका अक्षय आगार। मुझे अनवरत अपने पास पाकर मेरा सहारा लेकर भी क्यों कम्पित है? भयभीत क्यों है? अरे! मेरे ताल देनेपर, संकेत करनेपर ही तो तू विश्व-प्रांगणमें नृत्य कर रहा है। अतः मुझपर आस्था रख, विश्वास रख, तू नहीं डूबेगा—नहीं ही डूबेगा। मैं हूँ क्षण-क्षण तेरे साथ।

सो तेरी उस अपार करुणाको, कृपाको मैं क्योंकर भूल सकता हूँ। मेरे इष्टदेवता! तुम्हारे बलपर ही तो मेरी श्वासें चल रही हैं। तुम्हीं मेरे सब कुछ हो। माता, पिता, बन्धु, स्वजन, सुहृद् सब ही मेरे घनश्याम! तुम ही हो।

हृदयकी पावन भावनाओंके वश होकर मैंने तुम्हें कभी माँ, पिता, सुहृद् आदि नामोंसे पुकारा और समझकर मनन करनेपर पाया कि तुम सतत जागरूक हो, पुकारोंका उत्तर देते हो और विद्यमान हो, नाममय हो, नामरहित हो, नाममें ही नामसे बाहर हो। इतने महान् होकर भी मेरे हो—यह क्या कम है? विश्वनियन्ता होकर भी भृत्यवत्सल हो। भृत्यसर्वस्व हो।

मातृरूप! निराशाओंसे, अभावोंसे, कमियोंसे, कमजोरियोंसे ही मेरा यह जीवन बना है, किंतु इन निराशाओं, अभावोंमें जो आशा, जो विश्वास, जो सहृदयता तुम्हारी इस पावन त्रिभंगमयी मूर्तिमें मुझे उपलब्ध हुई, वह बिरले भाग्यशालियोंको ही प्राप्त होती है, कठोर क्षणोंमें तुमने मुझे सहारा, सम्बल नहीं दिया होता तो मैं गहन अन्धकारके गर्तमें गिरकर फिर निकल ही नहीं पाता। फिर भी मैं कृतघ्न नहीं हूँ—यह कहनेमें भी हर्ज नहीं; क्योंकि यदि कृतघ्न होता तो दृढ़ विश्वास करके तुम्हें सर्वस्व समर्पण करके निर्भय हो गया होता। फिर भी यह भावना अभीतक अक्षुण्ण है कि चाहे जैसा हूँ, पर हूँ तेरा ही।

मेरे अभिन्न सुहृद्! दिखा दे न अपनी मनमोहिनी झाँकी। अपनी मधुर वेणुके वे मधुर-मन्द स्वर सुना दे न, जिन्हें सुनकर फिर संसारका कोई भी स्वर सुनना बाकी नहीं रहता। बस एक बार वह स्वरलहरी मेरे कानोंके परदेको छू ले बस। क्यों देर करता है प्रियतम! अधिकारी-अनधिकारीका प्रश्न मत उठा। तू तो यही मानकर कि एक मूर्ख शिशुका हठ पूरा करना है—इसी बातको ध्यानमें रखकर इस आर्त बालककी आवाज सुन। मेरी ओर देखेगा तो यह असम्भव ही मालूम होगा, पर तू तो अपनी और अपनी असीम करुणाके औदार्यकी ओर ही देख। तभी मेरी यह जीवनकी महान् आकांक्षा पूर्ण होगी। क्या सुना? कितनी बार कहूँ? कैसे कहूँ? यही मेरी समझमें नहीं आता। फिर भी वही कहूँगा। पुनः-पुनः कहूँगा। जीवनके अन्तिम श्वासतक कहूँगा और यह भी निश्चित है कि तुझे सुनना होगा, सुनना ही होगा और सुनेगा भी। दयामय! दयामयी चितवनसे मेरी ओर देख और मेरी विनय स्वीकार कर। स्वीकार करेगा न? कब? आज, कल, इस जीवनमें या अभी। [प्रे०—श्रीचन्द्रकिशोरजी सोलंकी]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

[शरीरसे अलगावका अनुभव]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

भगवान्‌ने मनुष्योंको कल्याणकी सामग्री बहुत दी है और उम्र भी बहुत ज्यादा दी है। मिनटोंमें—थोड़े समयमें कल्याण हो जाय, उसके लिये वर्षोंकी बहुत उम्र दी है। विचार-शक्ति भी बहुत दी है। सब सामग्री इतनी दी है कि मनुष्य कई बार अपना कल्याण कर ले, जबकि एक बार कल्याण होनेके बाद दूसरी बार कल्याण करनेकी आवश्यकता ही नहीं रहती। बहुत विचित्र-विचित्र सामग्री भगवान्‌ने मनुष्यको दी है। जैसे, एक यह सीधी बात है कि बचपनसे आजतक आपको यह पक्का ज्ञान है कि देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति सब बदली है और मैं वही हूँ। मैं तो वही हूँ, पर शरीर वैसा नहीं है, साथी वैसे नहीं हैं। जो बदले हैं, उनको छोड़ दें और जो नहीं बदला है, उसको पकड़ ले तो अभी बेड़ा पार है, अभी-अभी, इसी क्षण। जो बदलता है, वह मेरा स्वरूप नहीं है और जो नहीं बदलता है, वह मेरा स्वरूप है बस, इतना ही काम है।

अनेक परिस्थितियोंके बीच आप एक हैं। अनेक घटनाओंके बीच आप एक हैं। अनेक देशोंमें घूम-फिरकर भी आप एक रहते हैं। बहुत समय बीतनेपर भी आप वही रहते हैं। सब कुछ बदलनेपर भी आप वही हैं। उस बदलनेवालेसे अपनेको आप अलग करके देखें तो अभी मौज हो जाय। अपनेको अलग करके देखना तत्त्वज्ञान हो गया और बदलनेवालेको साथ मिला करके देखना अज्ञान हो गया।

साधन करनेवाले भाई-बहनोंके मनमें एक बात आती है कि मेरा मन निर्विकार हो जाय। दुःख-सुखकी घटनाका मेरे मनपर असर न पड़े। **अनुकूलता और प्रतिकूलताका असर न पड़े। यदि ऐसी मनकी अवस्था हो जाय तो तत्त्वज्ञान हो गया और यदि मनपर असर पड़ता है तो तत्त्वज्ञान नहीं हुआ।** इस वास्ते इस बातको आप ठीक तरहसे समझें कि असर किसपर पड़ता है? मनपर पड़ता है, बुद्धिपर पड़ता है, शरीरपर पड़ता है या इन्द्रियोंपर पड़ता है। जैसे—रुपये आये, नफा हुआ तो आपके मनमें प्रसन्नता हुई। रुपये चले गये, घाटा लग गया तो आपका मन दुःखी हो गया। मनमें नफा-नुकसान होनेसे दो तरहका असर हुआ, पर आप तो वही रहे। नफा हुआ तो आप दूसरे थे क्या? नुकसान हुआ, तब आप दूसरे हो गये क्या? अगर आप एक नहीं रहते तो नफा-नुकसान दोनोंका ज्ञान किसको होता? आप तो सम ही रहते हैं, एक ही रहते हैं। आपपर असर पड़ता ही नहीं है। असर पड़ता है, मन-बुद्धिपर।

शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि—ये सब बदलनेवाले हैं। इनपर यदि कोई असर पड़ गया तो क्या हो गया। ये बदल गयीं तो क्या हो गया। आप उसके असरसे अपनेको सुखी-दुःखी मानते हो, यही गलती होती है। इतनी बातपर दृढ़ रहो कि मैं वही हूँ। सुखके समयमें जो था, वही दुःखके समयमें भी हूँ। अपने आपमें स्थित रहना ही 'स्वस्थ' होना है, अर्थात् 'स्व' में स्थित होना है। सुखी-दुःखी होना प्रकृतिमें स्थित होना है। प्रकृतिमें स्थित होनेसे सुख-दुःखके भोगनेमें हेतु होना पड़ता है। क्यों? इसलिये कि आप प्रकृतिमें स्थित हो जाते हैं अर्थात् शरीर, इन्द्रियों, मन-बुद्धिपर जो असर होता है, उसे आप अपनेपर असर होना मान लेते हैं। आप जानकर प्रकृतिमें स्थित होते हैं। आप उसमें स्थित हैं नहीं। आप न सुखमें हैं, न दुःखमें; न लाभमें हैं, न हानिमें। न किसीके जन्ममें हैं, न किसीके मरणमें। आप सदैव इन सबसे अलग हैं। आप जान-बूझकर अपनेको उसमें खींच लेते हैं और सुखी-दुःखी हो जाते हैं और कहते हैं कि 'साहब! बोध नहीं हुआ।' बोध करना चाहते हो तो—जो आप वही रहते हैं, बस, इस बातमें स्थित रहो। इसको कहते हैं—**'समदुःखसुखः स्वस्थः।'** 'स्व' में स्थित हो गये, बस! 'स्व' सदा ही निर्विकार है। 'स्व' में कभी विकार होता ही नहीं। विकार अन्तःकरणमें होता है, उसके साथ मिलकर आप अपनेको विकारी मान लेते हो और सुखी-दुःखी होते हो।

कभी-कभी मुझे बहुत बड़ा भारी आश्चर्य लगता है कि कहाँ गाड़ी अटकी हुई है? पापकर्म करनेकी बात मैं कहता ही नहीं। जो लोग सत्संग करते हैं, वे पाप करते हैं, ऐसा मनमें आता ही नहीं। आप सत्संगमें आये हो सत्संग सुननेके लिये, भजन-ध्यान करनेके लिये, कल्याण करनेके लिये फिर भी आप पाप ही करो तो यहाँ क्यों आये हो? पाप कभी भूलकर भी नहीं करना चाहिये। जिसको अन्याय समझते हो, उसको स्वप्नमें भी मत करो। अपनी तरफसे पापका विचार ही छोड़ दो। आपके मनमें गन्दी फुरना आ गयी, अच्छी फुरना आ गयी, बुरी आ गयी, शोक आ गया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्ता आ गयी, हर्ष हो गया, कहीं राग हो गया तथा कहीं द्वेष हो गया—ये ही तो होते हैं! ये होनेपर भी आप अपनेमें स्थित रहो, उनसे मिलो मत। उनके साथ मिलते हो, यह प्रकृतिस्थ होना है। प्रकृतिके साथ मिले रहनेसे पाप भी लगेगा, जन्म-मरण भी होगा, दुःख भी होगा, सब कुछ होगा—'**कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु**' (गीता १३। २१)।

चीजें बनती हैं, बिगड़ती हैं, पदार्थ आते हैं, जाते हैं। उनको देखकर भी आप अपनेमें ही स्थित रहो; क्योंकि आप उनको देखनेवाले हो। देखनेवाला दीखनेवाली वस्तुओंसे अलग होता है—यह नियम है। सुखदायी परिस्थितिको भी आप देखते हो और दुःखदायी परिस्थितिको भी आप देखते हो। संयोगको भी आप देखते हो। वियोगको भी आप देखते हो। देखनेवाले आपमें क्या अन्तर पड़ा? देखनेवाले आप तो वही रहे।

मान लो, हम गंगाजीके किनारे खड़े हैं। बहुत-से सिलपट (काठके टुकड़े) बहते हुए आ जायँ, उनको देखकर हम खिल-खिलाकर हँस पड़ें और मनमें सोचें कि बहुत आनन्द हो गया, इतने सिलपट बहते हुए आ गये; आज तो बड़ा आनन्द हो गया। दूसरे दिन वहीं खड़े रहे और सिलपट एक भी न आये, उधरसे बह जाय, अब हम जोर-जोरसे रोने लगें। कोई पूछे कि 'भाई, क्यों रोते हो?' तो हम कहें कि 'भाई, आज एक भी सिलपट हमारे पाससे बहकर नहीं गया। सब-के-सब उधरसे बहकर चले गये।' अब जरा विचार करो कि अपनेमें क्या फर्क पड़ा? सिलपट इधर आकर बह जाय तो क्या? तुम तो उन्हें छूते नहीं। तुम्हारे पास वे रहते नहीं। वे तो बहते हैं और तुम खड़े हो। पासमें आकर सिलपट बह गया तो तुम खुश हो गये। दूरसे बहकर चला गया तो रोने लग गये—यह मूर्खता ही तो हुई!

ऐसे ही बेटेका जन्म हुआ तो आप प्रसन्न हो गये, बेटा मर गया तो रोने लग गये। किसी दूसरेके भी लड़का हुआ और मर गया, पर आप न तो उसके जन्म लेनेपर प्रसन्न हुए, न मरनेपर रोये। धन उसके हो गया और चला गया, आप नहीं रोये। आपके होकर चला गया तो रोते हो। 'क्यों रोते हो भाई? आपके पास पहले था नहीं, बीचमें हो गया, फिर चला गया। आप तो जैसे पहले थे, वैसे हो गये, तब रोना किसलिये?'

आपको कुछ भी स्पर्श करता नहीं। आप अपनेमें स्थित रहो, रोओ क्यों? आप बहनेवाली घटनाओं, परिस्थितियों, पदार्थों, व्यक्तियोंसे चिपकोगे तो रोओगे मुफ्तमें। संसारका दुःख मुफ्तमें आपने पकड़ रखा है, उड़ता तीर अपनेपर ले रहे हो। भगवान्‌ने दुःख पैदा किया ही नहीं, दुःख है ही नहीं। आप स्वयं दुःख पैदा कर लेते हो, बहनेवाली चीजोंसे सम्बन्ध जोड़कर दुःखको मोल लेते हो। पता नहीं, आपको क्या शौक लगा है? आप बदलनेवालेके साथ मिलो मत। भले ही बदलनेवालेके साथ एकता दीखती रहे, पर उसके साथ आप मिले नहीं। मैं उससे अलग हूँ—ऐसा देखो। जहाँ अलगावका ज्ञान साफ हुआ कि विकार मिट जायँगे। मिले रहोगे तो विकार रहेंगे।

प्रश्न—स्वामीजी! हम मिले हुए तो हैं, इससे अलग कैसे होवें?

उत्तर—आप मिले हुए हो ही नहीं। यदि आप मिले हुए होते तो आप भी बचपन, जवानी, बुढ़ापाके साथ बदलते। आप तो कहते हो कि 'मैं वही हूँ', पर बचपन चला गया, जवानी चली गयी, बुढ़ापा आ गया, आप तो वही रहे। आप अलग हो, तब तो आप वही रहे? आप तीनोंको जानते हो। जाननेवाला जाननेमें आनेवाली अवस्थाओंसे अलग होता है तो आप अलग हुए कि एक हुए? मिले हुए आप हो नहीं, जानते हो कि मिले हुए नहीं हैं। फिर भी अपनेको मिले हुए मानते हो। बस, आजसे इसको मत मानो।

प्रश्न—कैसे नहीं मानें? हमें तो मिला हुआ दीखता है?

उत्तर—आप दीखनेवालेको आदर मत दो, अपने अनुभवको आदर दो। गीताजीके वचनोंका आदर करो कि हम अलग हैं। चाहे घुला-मिला दीखे, साक्षात् मिला हुआ दीखे, परंतु मैं इनसे अलग हूँ—इतना मान लो। प्रत्यक्ष अनुभव है कि बचपनसे आजतक शरीर बदला है, पर मैं वही हूँ। इस अनुभवके आधारपर यह मान लो कि शरीर अलग है, मैं अलग हूँ। यदि फिर भी ठीक अनुभव न हो तो व्याकुल होकर भगवान्‌से कहो—'महाराज! मुझे ऐसा अनुभव नहीं हो रहा है।' इतनी बात पक्की जान लो कि 'हूँ' तो अलग ही। यदि अलग न हो तो मरनेपर शरीर यहाँ नहीं रहता, साथमें जाता अथवा शरीरके साथ मैं यहाँ रहता। न आप शरीरके साथ रहते हो और न आपके साथ शरीर जाता है। तो एक कैसे है? दो हुए कि नहीं? जैसे मैं मकानमें रहता हूँ तो मैं और मकान एक कैसे हो गये? मैं मकानसे अलग चला जाता हूँ तो मकान और मैं दो हुए न? ऐसे ही शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि मकान हैं। आप इसमें रहनेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो, रहते हो और निकल भी जाते हो। आप इसके साथ एक नहीं हो। एकता आपकी मानी हुई है। यह आप सबका अनुभव है।

जैसे, आप स्वस्थ होनेके लिये कड़वी-से-कड़वी दवा चिरायता, कुटकी आदि आँख भींचकर पी लेते हो, ऐसे ही वास्तविक स्वस्थ होनेके लिये 'मैं अलग हूँ'—इस दवाईको पी लो। फिर भी अलग न दीखे तो व्याकुल हो जाओ। जोरदार व्याकुलता होगी तो चट अलगावका अनुभव हो जायगा। भोगोंमें रस लेते रहे, सुख भोगते रहे तो कितना भी पढ़ जाय, पण्डित बन जाय, चारों वेद पढ़ जाय, पर कभी शरीरसे अलगावका अनुभव नहीं होगा। व्याकुल हो जाओ कि ऐसा अनुभव जल्दी-से-जल्दी कैसे हो? तो आपको घुला-मिला दीखना बन्द हो जायगा; क्योंकि घुले-मिलेकी मान्यता भूल है। वह भूल अब नहीं करेंगे—ऐसा दृढ़ विचार करनेसे फिर इस भूलके मिटनेमें देरी नहीं लगेगी। नारायण! नारायण!! नारायण!!!

'रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैः'

[वेणुवादनका माधुर्य]

(श्रीअर्जुनलालजी बंसल)

वर्षा-ऋतुकी विदाईके साथ शरद्-ऋतुका आगमन हुआ। वर्षाके जल-कणोंसे स्नानकर वनश्री शोभायमान हो उठी। उनके मध्य स्थित सरोवर स्वच्छ जलसे परिपूर्ण हो गये। उन सरोवरोंमें खिले कमल-पुष्पोंपर मँडराते भ्रमरोंके समूह चित्तको आकर्षित करने लगे। उन जलाशयोंमें शोभित कमल-पुष्पोंकी सुगन्ध अपने आँचलमें समेटे शीतल मन्द बयार सुवासित होकर बहने लगी। ऐसे सुखद वातावरणमें गोविन्दने अपनी गौओं, गोवत्सों और ग्वाल-बालोंके संग एक दिव्य वनमें प्रवेश किया। वनके सौन्दर्यसे अभिभूत होकर भगवान् श्रीकृष्णकी वंशी मुखरित हो उठी।

श्रीकृष्णभक्त सूरदासजीने इस लीलाका वर्णन करते हुए लिखा है—

मुरली धुनि स्त्रवन सुनत, भवन रहि न परै।
ऐसी को चतुर नारि, धीरज मन धरै॥
सुर नर मुनि सुनत सुधि न सिव समाधि टरै।
अपनी गति तजत पवन सरिता नहिं ढरै॥
मोहन मुख मुरली मन मोहिनि बस करै।
सूरदास सुनत स्त्रवन सुधा सिंधु भरै॥

श्रीकृष्णका यह वेणुवादन उनके प्रेमियोंके मनमें अतिशय प्रेम जगानेवाला था। वंशीकी इस मधुर ध्वनिसे विमोहित होकर व्रजकी गोपियाँ उसी दिशामें वनकी ओर दौड़ पड़ीं। मुरलीके उन मादक स्वरोंके बन्धनमें बँधकर देवता, मनुष्य और तपस्वी सन्त भी अपनी ज्ञान-भक्तिको भूल जाते हैं। भगवान् शंकरकी समाधि भी भंग हो जाती है। इसके मादक प्रभावसे पवन और सरिताएँ गतिहीन हो जाती हैं। ऐसेमें व्रजांगनाएँ मुरलीधुनिके वशीभूत होकर श्रीकृष्णके निकट पहुँचकर देखती हैं कि—

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥

(श्रीमद्भा० १०।२१।५)

—श्रीकृष्ण अपने बाल सखाओंके साथ श्रीवृन्दावनमें प्रवेश कर रहे हैं। उनके शीशपर मोरमुकुट, कानोंमें कनेरके सुवासित पुष्प, शरीरपर पीले रंगका पीताम्बर, गलेमें सुन्दर वैजयन्तीमाला शोभायमान है। मोहन वंशीके छिद्रोंको अपने अधरामृतसे सिंचितकर जीवन्त कर रहे हैं। उनके साथ रमण कर रहे बालगोपाल उनका यशोगान कर रहे हैं। भगवान्के श्रीचरणोंका स्पर्श पाकर यह श्रीवृन्दावनधाम और भी अधिक पावन बन गया। जब मुरलीके स्वर मुखरित हो उठते हैं, उस समय गोपियाँ तन्मय हो श्रीकृष्ण-चिन्तनमें लीन हो जाती हैं। इस समय मुरलीकी चर्चा करते हुए एक गोपी कहने लगी, री सखियो!—

जब हरि मुरली अधर धरत।
थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहै, जमुना जल न बहत॥
खग मोहैं, मृग जूथ भुलाहीं, निरखि मदन छबि छरत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पसु मोहैं, सुरभी बिथकित, तृन दंतनि टेकि रहत।
सुक सनकादि सकल मुनि मोहैं, ध्यान न तनक गहत।
सूरदास भाग हैं तिन के, जे या सुखहिं लहत॥

(सूरसागर)

जब मोहन मुरलीको अपने अधरोंका स्पर्श कराते हैं, उस समय समस्त प्रकृतिमें हलचल मच जाती है, वायुका वेग शान्त हो जाता है, यमुनाका जल स्थिर हो जाता है, गौएँ तृन त्याग देती हैं। मुरलीके मधुर स्वरोंसे विमोहित होकर शुक-सनकादिक ऋषि-मुनि भी तप छोड़कर उसके रसपानमें लीन हो जाते हैं। वेणु-लीलाका श्रीमद्भागवतमें वर्णन करते हुए श्रीव्यासदेवजीने लिखा है—

गोविन्दवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं
प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम्॥
धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता
या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम्।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः॥
कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं
श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम्।

(श्रीमद्भा० १०।२१।१०—१२)

जब गोविन्द मुरलीवादन करते हैं, उस समय मयूर उसकी तालपर नृत्य करने लगते हैं, पर्वतश्रेणियोंके उच्च शिखरपर विचरण करनेवाले समस्त पशु-पक्षी शान्त हो जाते हैं। श्रीकृष्णका अनुपम रूप-सौन्दर्य निहारकर मृग-परिवार उनके समीप आकर अपने सुन्दरतम नयन उनके चरणोंमें समर्पित कर देते हैं। इतना ही नहीं, स्वर्गकी देव-वधुएँ भी वंशी-ध्वनि सुनते ही गगन-मण्डलमें अपने विमानोंपर विराजमान अवस्थामें अपना संयम खो बैठती हैं, ऐसे समय उनके हृदयमें श्रीकृष्ण-मिलनकी चाह बन जाती है। एक गोपी कहने लगी—

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत-
पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः।
शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थु-
र्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः॥
प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्
कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम्।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान्
शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः॥
नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीत-
मावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः।
आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारे-
र्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः॥

(श्रीमद्भा० १०।२१।१३—१५)

री सखियो! उन देवांगनाओंकी भावनाओंका वर्णन क्या करें, जरा इन गौओंकी ओर निहारो, जैसे ही श्रीश्यामसुन्दरकी वंशी मुखरित होती है, वैसे ही ये गौएँ उसके मधुर स्वरोंको सुनकर अपने कानोंके माध्यमसे उस रसामृतका पानकर अतिशय आनन्दका अनुभव करती हैं। इन गोवत्सोंकी निराली दशा भी देखो, मुरलीके स्वर सुनते ही ये माताके थनोंसे दुग्धपान करना ही भूल जाते हैं।

अरे इधर देखो, श्रीवृन्दावनके ये पक्षी पलकें झुकाये बिना मुरलीके प्रभावसे वृक्षोंकी डालपर ऐसे ध्यानमग्न बैठे हैं, मानो तपस्यामें लीन हों। अरी सखी! सत्य भी यही है, पक्षीरूपमें ये महान् ऋषि-मुनि ही तो विराजमान हैं, ये महान् आत्माएँ सुगन्धित पुष्पोंसे लदी हरी-भरी कोमल डालपर बैठ श्रीकृष्णकी रूपमाधुरीके दर्शन और उनकी वंशीकी मधुर तान सुनकर अपने जीवनको सार्थक कर रही हैं। अब इधर यमुनाकी शीतल जलधारामें पड़े भँवरको देखो, ऐसा लगता है जैसे ये एक ही स्थानपर स्थिर होकर मुरली-नादका भरपूर सुख भोगना चाहते हों। अब यमुनाकी शीतल जलधाराकी ओर देखो, लगता है वंशीकी मादक ध्वनिके प्रभावसे श्रीकृष्ण-मिलनके लिये यह अपने तट-बन्धन तोड़नेको व्याकुल हो रही हो। इस समय कालिन्दी अपनी उत्ताल तरंगोंके माध्यमसे श्रीकृष्णके प्रति अपने भक्ति-भाव और प्रेमकी अभिव्यक्ति कर रही है। री सखियो! जब कान्हा ग्वाल-बालोंके संग गोचारण करते हुए एक वनसे दूसरे वनमें जाते हैं, उस समय उनकी मुरलीसे जो मधुर रसधारा प्रवाहित होती है, उसके प्रभावसे सारी सृष्टि मानो थम-सी जाती है। इस वंशीके गुणोंकी चर्चा जितनी करें, उतना ही विस्तार हो जाता है। वेणुगीतका यही तो प्रभाव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगवासिष्ठका मुमुक्षुव्यवहार-प्रकरण

[प्रारब्ध बनाम पुरुषार्थ]

(श्रीरघुनाथप्रसादजी सराफ)

[योगवासिष्ठ महारामायण महर्षि वसिष्ठ एवं भगवान् श्रीरामके संवादके रूपमें उपनिबद्ध अध्यात्मज्ञानके निरूपणका अति प्रौढ़ ग्रन्थ है। छः प्रकरणोंमें विभक्त इस ग्रन्थका द्वितीय प्रकरण 'मुमुक्षुव्यवहार' के नामसे प्रसिद्ध है। यहाँपर संक्षेपमें इस प्रकरणकी सारभूत बातोंको दिया जा रहा है—सम्पादक]

महामुनि विश्वामित्रजीने श्रीरामसे प्रेमपूर्वक कहा—तुम अपनी ही सूक्ष्म बुद्धिसे सब कुछ जान चुके हो।

कुछ और जानना शेष ही नहीं है; क्योंकि तुम्हें जाननेयोग्यका ज्ञान हो चुका है। मैं तुम्हें व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजीके जीवनका प्रेरणास्पद वृत्तान्त सुनाता हूँ।

महात्मा शुकदेवने स्वविवेकसे साधनाकी उच्च स्थिति अर्थात् परमार्थ-सत्य पा लिया था। तो भी 'यही परमात्मा है' ऐसा विश्वास नहीं हुआ। परम वस्तुके स्वत: प्राप्त हो जानेपर भी उनके मनको शान्ति नहीं मिली। तब एक दिन मेरुगिरिके एकान्त उद्यानमें उन्होंने व्यासजीसे पूछा—

—संसाररूपी आडम्बर कैसे उत्पन्न हुआ?

—इसका नाश कैसे होता है?

—यह कितना बड़ा है?

—यह किसका है, कबतक रहेगा?

व्यासजीने बतानेयोग्य सब बातें यथावत् बता दीं। शुकदेवजीने सोचा कि यह तो मैं पहलेसे जानता हूँ। व्यासजी उनका अभिप्राय समझ गये। वे बोले—बेटा! राजा जनक जाननेयोग्य तत्त्वको यथार्थ रूपसे जानते हैं, उनसे तुम्हें सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जायगा।

शुकदेवजी विदेहपुरी पहुँच गये। राजा जनकने सात दिनोंतक द्वारपर, सात दिनोंतक आँगनमें और सात दिन अन्त:पुरमें प्रतीक्षा करवायी। अन्त:पुरमें उन्मत्त युवतियोंकी भाँति-भाँतिकी सेवाएँ उपलब्ध करायी गयीं। जब उनमें विकार पैदा नहीं हुआ, तब राजा उनसे प्रसन्नतापूर्वक मिले और कहा—ब्रह्मन्! आपने सारे मनोरथोंको पा लिया है, अब आपको किस वस्तुकी इच्छा है?

शुकदेवजीने संसाररूपी आडम्बरोंके बारेमें प्रश्न दोहरा दिये। राजाने भी वही बातें बतायीं जो पहले व्यासजी बता चुके थे, यथा—यह विनाशशील संसार अपने संकल्पोंसे उत्पन्न होता है। संकल्पका आत्यन्तिक विनाश होनेसे नष्ट हो जाता है। हे मुने! कुछ और पाना या जानना शेष रह गया है—इस भ्रमको आप त्याग दीजिये। तब शुकदेवजी निर्विकल्प समाधिमें दस हजार वर्षोंतक स्थित रह गये और तदनन्तर परमात्मामें लीन हो गये।

श्रीवसिष्ठजीकी ओर उन्मुख होकर विश्वामित्रजीने

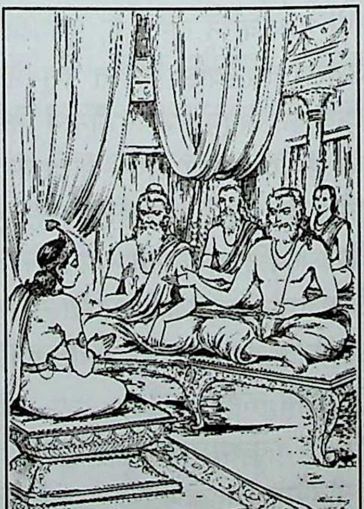

कहा—श्रीरामने ज्ञातव्यको पूर्णतः जान लिया है। जिस तत्त्वको वे बुद्धिके द्वारा जानते हैं, उसके विषयमें जब सद्गुरुके मुखसे यह सुन लेंगे कि यही परमार्थ तत्त्व है, तब इनके चित्तको विश्राम प्राप्त होगा। आप समस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रघुवंशियोंके सदासे नियन्ता, शिक्षक और कुलगुरु हैं। अतः आप शीघ्र श्रीरामको ज्ञेय वस्तुका युक्तियुक्त उपदेश दीजिये। वे निर्मल-मन-बुद्धियुक्त हैं, सो उन्हें अनायास ही सर्वबोध प्राप्त हो जायगा।

वसिष्ठजी बोले—हे राजकुमार श्रीराम! संसार भ्रमरूप है। अविद्यारूपिणी नदी है, जिसका कहीं अन्त नहीं है। सृष्टिरूपी चंचल तरंगोंसे यह तरंगवती जान पड़ती है। परमात्मारूपी महासागरमें पुरानी और नयी सृष्टिरूप असंख्य तरंगें बारम्बार उठती और विलीन होती रहती हैं। देह और विदेहसे कोई फर्क नहीं पड़ता; क्योंकि एक अन्तरात्मा नित्य है। निर्देह और सदेह दोनों ही प्रकारके मुक्त-महात्मा बोधस्वरूप हैं। पवन सस्पन्द हो अथवा निष्पन्द, दोनों ही दशाओंमें वह है वायु ही।

हाँ, सदा अच्छी तरह पुरुषार्थ करनेसे सबको सब कुछ मिल जाता है। शास्त्रानुसार आचरणके प्रभावसे भूमण्डलका साम्राज्य भी सुलभ हो जाता है। हमें शास्त्रीय प्रयत्नसे तथा साधु पुरुषोंके संगसे ऐसा उद्योग करना चाहिये कि इस जन्मका पौरुष पूर्वजन्मके पौरुष (प्रारब्ध)-को शीघ्र जीत ले। पूर्व जन्मोंका पुरुषार्थ ही दैव है। मैं दैवके अधीन हूँ, कर्म करनेमें स्वतन्त्र नहीं—इस विचारको त्याग दें। अर्थ और काममें तो दैव प्रबल है, किंतु धर्माचरण और मुक्तिके विषयमें इस जन्मका पुरुषार्थ ही बलवान् है।

हमारा चित्त शिशुके समान चंचल होता है। उसे अशुभ (पाप)-से हटा दिया जाय तो वह शुभ मार्गमें जाता है। अतएव तुम परम कल्याणकी प्राप्तिके लिये उत्तम पुरुषार्थका आश्रय लो। पाँचों इन्द्रियोंको जीतकर यहाँ शुभ वासनासे युक्त हो जाओ। अन्तमें तो शुभ वासनाका भी परित्याग करके परब्रह्म परमात्मामें भलीभाँति स्थित हो जाओ। उनसे सम्बन्धित सत्ताको नियति कहते हैं। नियति ही नियन्ताकी नियन्त्रण शक्ति है तथा वही पदार्थोंमें नियन्त्रित होनेकी योग्यता भी है।

ब्रह्माजी एवं वसिष्ठ, नारद, सनकादिके प्राकट्यका कारण

जो नित्य, चेतन, अविनाशी, परब्रह्म परमात्मा है, उसीसे विष्णुका प्राकट्य हुआ। उन विष्णुके हृदयकमलसे ब्रह्मा प्रकट हुए। उन्होंने विभिन्न प्रकारकी सृष्टि-रचना की। अल्पायु जीवोंके कष्टापहरणहेतु तप, धर्म, दान, सत्य और तीर्थ-सेवन आदि साधनोंका निर्माण किया। इनसे दुःख समूल नहीं मिटते। परम सुख तो निर्वाणरूप 'मोक्ष' ही है। उस मोक्षकी प्राप्ति ज्ञानसे होती है। यों विचारकर श्रीब्रह्माने मुझे (वसिष्ठजीको) उत्पन्न किया और अपने कमलासनके ऊपरी पत्तेपर ज्ञानहीन बनाकर बिठा लिया। इस प्रकार ज्ञानका पिपासु बनाकर ज्ञानोपदेश किया। फिर मुझे भूलोकमें जम्बूद्वीपके मध्य स्थित भारतवर्षमें कर्मकाण्ड एवं ज्ञानका उपदेश करनेके हेतुसे भेज दिया। सनकादि तथा नारदादि अन्यान्य महर्षियोंको भी भारतवर्षमें अज्ञानरूपी रोगसे उद्धारके निमित्त भेजा।

'बिनु सतसंग बिबेक न होई।' सदा सज्जनोंके सम्पर्कमें रहनेसे विवेक उत्पन्न होता है। इस विवेकरूपी 'ज्ञानवृक्ष' के फल हैं—भोग तथा मोक्ष। शम, विचार, सन्तोष और साधुसंगमका आश्रय लेनेसे मोक्षरूपी राजमहलके द्वार खुलते हैं।* 'मैं कौन हूँ, यह संसार किसका है?' इन प्रश्नोंपर निरन्तर विचार संसाररूपी महारोगकी महौषधि है। इससे गयी हुई वस्तुकी उपेक्षा और प्राप्त पदार्थोंका सदुपयोग तथा प्रतिकूलतामें न क्षुब्ध एवं न अनुकूलतामें प्रसन्न—ऐसी स्थिति बनती है। विचाररूपी सुन्दर नेत्र अन्धकारमें नष्ट नहीं होता है। सन्तोषयुक्त पुरुष व्यथाओंसे छूटकर परम विश्रामको प्राप्त होता है। संत-समागम विशेषरूपसे बुद्धिवर्धक, अज्ञाननाशक और मानसिक व्यथाओंका उच्चाटन करनेवाला होता है।

उपसंहार—हे रघुनन्दन! जबतक ज्ञान और सदाचार (उद्योग, सत्कर्म) समानरूपसे अभ्यासमें नहीं आते तबतक दोनोंमेंसे एककी भी सिद्धि नहीं होती। सत्पुरुषोंके सदाचरणसे ज्ञानकी और ज्ञानसे सत्पुरुषोंवाले आचरणकी वृद्धि होती है। इस जगत्‌में जो-जो पुरुष जिस-जिस गुणसे विशेषरूपसे सम्पन्न है, वह उसी गुणके द्वारा विशिष्ट समझा जाता है। अतः शीघ्र ही उस पुरुषसे वह गुण प्राप्त करके अपनी गुण-सम्पदामें वृद्धि करनी चाहिये। इस संसारमें जब पुरुषकी शीघ्र मोक्षप्राप्तिके उपायके चिन्तनमें तथा उद्योगमें प्रवृत्ति होती है, तब वह मोक्षप्राप्तिका पात्र अर्थात् 'मुमुक्षु' कहा जाता है। ऐसे पुरुषार्थीके मार्गमें प्रारब्ध कभी रुकावट नहीं बनता।

* मोक्षद्वारे द्वारपालाश्चत्वारः परिकीर्तिताः। शमो विचारः सन्तोषश्चतुर्थः साधुसङ्गमः॥ (मुमुक्षु० ११।५९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीखने और समझनेकी बातें

(श्रीपथिकजी महाराज)

सत्संग बिना अज्ञान नष्ट नहीं होता। जो विशेष पुण्यवान् होते हैं, जो बुद्धिमान्-विचारवान् होते हैं, वे सन्त-महात्माकी खोज करके उनका उपदेश सुनते हैं। इसके विपरीत जो बुद्धिहीन हैं या जो तनके या धनके अथवा अधिकार आदिके अभिमानी हैं, वे सन्तसंगकी अभिलाषा नहीं रखते।

सन्त-महात्माकी संगतिमें भी लोग अपनी-अपनी भावनाके अनुसार ही लाभ उठा पाते हैं—

जिसकी जैसी भावना सो तैसा गुण लीन।
कदली सीप भुजंग मुख एक बूँद गुण तीन॥

स्वाति नक्षत्रमें जलबिन्दु एक ही है, किंतु केलेमें वह कपूर बनता है, सीपमें मोती बनता है, साँपके मुखमें वही बूँद विष बनता है।

अपने हितके लिये यह समझनेकी बात है कि प्रायः अमर्यादित भोगसे त्यागी साधु भी रागी बन जाते हैं। तपस्वी साधक भी भोगी बन जाते हैं। आत्मज्ञानी भी देहाभिमानी हो जाते हैं और परमार्थी भी पतित होकर लोभी और स्वार्थी हो जाते हैं। परम प्रभुकी कृपासे जब दुःखका आघात लगता है, तब हम अपनी पूर्व पवित्र स्थितिमें लौट पाते हैं।

प्रिय-संयोगके भोगसे मोह बढ़ता है, अधिक धन-लाभके साथ यदि दान न हुआ तो लोभ बढ़ता है, अधिक सम्मान पानेसे अभिमान बढ़ता है।

जितना अधिक कोई प्रिय-संयोगका, धन-लाभका, सम्मानका तथा दूसरोंसे मिली हुई वस्तुओंका भोग करता है, उतना ही संचित पुण्य घटता जाता है। सुखोपभोग करते हुए जहाँ कहीं किसीको कोई दुःख पहुँचता है, वहीं पाप बढ़ जाता है।

जो दूसरोंको लाभ पहुँचाता है, बड़ोंको मान देता है, छोटोंको प्यार देता है, दुःखीको न्यायपूर्वक सुख देता है, उसके पुण्य बढ़ जाते हैं। कर्तव्य-पालन करते हुए तथा सेवा करते हुए जो प्रतिकूलताओं—कष्टोंको सहन करता है, उसके पाप कट जाते हैं।

जीवनको पुण्यमय बनानेके लिये सन्तकी सम्मति है—

प्रिय भाषण पुनि नम्रता आदर प्रीति विचार।
लज्जा क्षमा अयाचना ये भूषण उर धार॥

एक बात यह भी समझमें आती है कि हममेंसे बहुत व्यक्ति ऐसे भी हैं, जो सद्गुणोंकी, कर्तव्यपरायणताकी तथा धर्माचरणकी प्रशंसा तो करते हैं और दूसरोंको समझाते भी हैं, परंतु उनका स्वयं पालन न करके आलसी और प्रमादी बने रहते हैं। प्रायः हम अपने अहंकारवश, लोभवश, सुखकी आसक्तिवश इतने असावधान रहते हैं कि समयपर जो कुछ करना चाहिये, वह नहीं कर पाते।

हम लोग जिस अवसरपर, जहाँ क्रोध करते हैं, वहींपर क्षमा करते हुए हमें शान्त रहना चाहिये। जहाँ लोभवश कलह करते हैं, वहाँ सन्तोष धारणकर मौन रहना चाहिये। जहाँ ईर्ष्या और द्वेष करते हैं, वहाँ अपना प्रिय मानकर स्नेह करना चाहिये। जहाँ अभिमानवश दूसरोंका अपमान करते हैं, वहींपर विनम्र रहकर दूसरोंको मान देना चाहिये। जहाँ आलस्य करते हैं, वहींपर कर्तव्यपालनके लिये एवं सेवाके लिये दृढ़ संकल्प करना चाहिये। जहाँ व्यर्थ वार्ता करते हैं अथवा जोशमें आकर न कहनेयोग्य बात कह जाते हैं, वहींपर मौन रहना चाहिये। जहाँ व्यर्थ चिन्तन करते हैं, वहींपर भगवत्स्मरण करना चाहिये।

जिसे कुछ दान देना आवश्यक है, उसे उसी समय दे देना चाहिये। जहाँ मिली हुई वस्तुओंको अपनी मानकर हम लोभी, मोही, अभिमानी बनते हैं, वहींपर उस वस्तुको परमेश्वरकी मानकर निर्मोही, निर्लोभी, निरभिमानी होकर सबकी सेवा करनी चाहिये।

ऐसा होना तभी सम्भव है, जब धर्मसे प्रीति हो, सत्संगति अत्यन्त प्रिय हो अथवा भगवान्‌की कृपाका सर्वत्र दर्शन हो। हमारे परम हितैषी सद्गुरु सावधान करते हुए कहते हैं कि अरे बुद्धिमान् मनुष्यो! जहाँ तुम अनेकोंकी बातें सुनते हो और मानते हो, वहीं पर वेदशास्त्रके ज्ञाता, परिणामदर्शी, विरक्त, शान्त, सन्त-महात्माकी भी बातें सुनो, उन्हें आचरणमें लाओ तभी भयसे, चिन्ताओंसे, दुःखोंसे, बन्धनोंसे छूट सकोगे। तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोभी न बने रहकर दानी बनो और सुपात्रको योग्यतानुसार, आवश्यकतानुसार दान दो, मान दो तथा प्यार दो, अधिकार दो।

जो कुछ दूसरोंको दोगे, वही तुम्हें वापस मिलेगा। जो कुछ पहले कभी दिया है, वही मिल रहा है। जो नहीं दिया है, वही नहीं मिल रहा है। दूसरोंको देनेके पहले ही यह देख लो कि क्या दे रहे हो? कैसा दे रहे हो? किस भावनासे दे रहे हो?

काम बिगाड़े भक्ति को ज्ञान बिगाड़े क्रोध।
लोभ विराग बिगाड़ दे मोह बिगाड़े बोध॥

कामोपभोग, लोभ और क्रोधको भगवान्ने नरकका द्वार बताया है।

जब मनुष्य मर्यादापूर्वक कामका भोग करता है, जब न्यायपूर्वक धन प्राप्त करता है, झूठ, छल, कपट, चोरी, हिंसाका त्याग करता है, तब वह धर्मात्मा माना जाता है अर्थात् धर्मनिष्ठ मनुष्य ही कामसुख और धनप्राप्तिमें मर्यादाका ध्यान रखता है और पापसे बच जाता है। धर्मात्मा वही है, जिसमें विरक्ति बढ़ती जाय। सुखासक्ति, अभिमान और लोभके रहते क्रोधको जीतना सम्भव नहीं है। धर्मात्मा ही क्रोध और लोभके वश नहीं होता।

मूर्ख ही कामी, क्रोधी, लोभी तथा अभिमानी होता है, यहींतक सत्य नहीं है—प्रत्युत बड़े-बड़े धनवान् और विद्वान् भी कामी, क्रोधी, लोभी, अभिमानी होते हैं; क्योंकि वे धर्मविमुख हैं।

जिन्हें अपने मनकी ही पूर्तिमें सुख मिलता है, जो अपना ही लाभ चाहते हैं, जिन्हें अपने ही नाम और मानकी भूख प्रबल रहती है, वे तभीतक अपनी पूर्ति देखेंगे, जबतक पुण्य सहायक हैं। पुण्योंके क्षीण होते ही उन्हें अनुकूलताके स्थानमें प्रतिकूलता होने लगेगी। प्रतिकूलता होते ही क्रोध प्रबल होगा। क्रोधके कारण बुद्धि भ्रष्ट हो जायगी और बुद्धि भ्रष्ट होनेपर पग-पगपर पाप होने लगेगा।

कोटि कर्म बनते रहें एक क्रोध की धार।
किया कराया सब गया जब आता अहंकार॥
अहंकार की अग्नि में दहत सकल संसार।
बिरले बचते साधु हैं लेकर सत्य अधार॥

एक बात यह भी समझनेकी है—कदाचित् हमलोगोंसे अनेकों पाप, अपराध हो चुके हों तो हमारे गुरुजनोंका कहना है कि परमेश्वरके पवित्र नामोंका जप करो, नामका आश्रय लेकर पुनः पाप न करो, तब तो तुम नामके प्रतापसे अगणित पापोंके फलस्वरूप प्राप्त दुःखसे मुक्त हो जाओगे।

परमेश्वरकी शरण लेनेवाला पापके फलभोगसे मुक्त हो जाता है। कदाचित् किसी कर्मके फलसे कभी हानि, वियोग, रोग होता भी है तो शरणागत भक्तमें ऐसी शक्ति आ जाती है या ऐसा दिव्य ज्ञान उसे हो जाता है, जिसके प्रभावसे दुःख होता ही नहीं।

इतनी बात और समझने की है कि भगवान्की शरणागति अथवा भगवन्नामका अवलम्ब ऊपर-ऊपर कथनमात्रसे नहीं होता, वह अन्तःप्रीतिके योगसे और सरल विश्वाससे होता है।

यह बात ध्यान देकर समझ लेने की है कि प्रथम सन्तके संगसे जड़ वस्तुका, नित्य चेतन तत्त्वका, देह और आत्माका, प्रकृति और परमेश्वरका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् नित्यप्राप्त परमेश्वरपर विश्वास होगा। जबतक ज्ञान न होगा, तबतक विश्वास नहीं होगा।

जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
(रा०च०मा० ७।८९।७)

इसीलिये सर्वप्रथम ज्ञानी, विरक्तों, विद्वानोंसे अपना प्रश्न हल कराना होगा।

नारायण सत्संग कर सीख भजन की रीति।
काम क्रोध मद लोभ में गई आयु सब बीत॥
नारायण सुख भोग में मस्त सकल संसार।
कौन मस्त हरि लगन में देखहुँ आँख पसार॥
दुर्लभ झाँकी प्रेम की जिन झाँकी ते धन्य।
उपजत बिनसत जगत में जड़ पशु सम सब अन्य॥

श्रीमद्भागवतमें भगवान्ने उन लोगोंको साधारण पुण्यवान् बताया है, जो तीर्थोंमें जाते हैं और मन्दिरोंमें देवी-देवताओंके दर्शन करते हैं। विशेष पुण्यवान् उनको कहा है जो कि विरक्त सन्त-महात्माओंके दर्शन करते हुए सत्कथा एवं धर्मचर्चा सुनते हैं और आत्मा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्माका ज्ञान प्राप्त करते हैं।

हम सबको अपने-अपने जीवनमें जितना भी ज्ञान हुआ है, वह किसी-न-किसीके संगसे तथा सद्ग्रन्थोंके अध्ययनसे हुआ है।

मनुष्यकी तमोगुणी, रजोगुणी एवं सतोगुणी प्रकृतिके अनुसार ही उनपर सन्तकी संगतिका प्रभाव पड़ता है।

हंसा बगुला एक सा मान सरोवर माहिं।
बगुला ढूंढ़ै माछरी हंसा मोती खाहिं॥

जो बगुलावृत्तिके श्रोता होते हैं, वे सत्संगमें भी इन्द्रियोंके विषयमें ही सुख मानते हैं, सन्तसंगतिमें भी ऐसे लोगोंके चंचल नेत्र रूप ही निहारते रहते हैं। मनको भगवत्कथासुधामें, सत्संगमें नहीं लगा पाते, किंतु पुण्यवान्, बुद्धिमान् श्रोता हंसकी भाँति कथामें स्वरूप-मोती ही चुनते रहते हैं।

हर एक मनुष्य किसी-न-किसीका संग अवश्य करता है और हर एकपर संगका प्रभाव अवश्य ही पड़ता है।

जहाँ संगके प्रभावसे मनुष्य आलसी, विलासी, भोगी, लोभी, मोही, अभिमानी, निन्दक, द्वेषी बन जाता है, वहीं यदि सज्जन, विद्वान्, धर्मनिष्ठ, साधु, विरक्त महात्माका संग सुलभ हो जाय तो मनुष्य परिश्रमी, संयमी, सदाचारी, उदार, दानी, विनम्र, विवेकी, सेवाभावी, प्रेमी और तत्त्वनिष्ठ हो सकता है। संगसे ही मनुष्यके भाव तथा विचार एवं संस्कार और कर्म बदलते हैं। इसीलिये सज्जन परोपकारीका संग करो।

यों रहीम सुख होत है उपकारी के संग।
बाटन बारे को लगे ज्यों मेंहदी को रंग॥

[प्रेषक—श्रीमहेशचन्द्रजी]

भक्तोंकी अनन्य गति हैं भगवान्

(आचार्य डॉ० श्रीपवनकुमारजी शास्त्री, साहित्याचार्य, विद्यावारिधि, एम०ए०, पी-एच०डी०)

अखिल बह्माण्डनायक भगवान् श्रीहरिके कृपापात्र भक्तोंके परम पावन जीवन-चरितोंका यदि हम गहराईसे अनुशीलन करें तो हमें उनमें एक बात समान रूपसे देखनेको मिलेगी कि उन सभी भक्तोंने अनन्य भावसे भगवान्की शरण ली थी, उनकी आराधना की थी और उनपर निर्भर रहे थे। उन्होंने एकमात्र भगवान्को ही अपना सर्वस्व माना था। इसका परिणाम यह हुआ कि भगवान्ने न केवल उन भक्तोंकी पदे-पदे रक्षा की, अपितु वे सदा उनके योगक्षेमका वहन भी करते रहे।[१]

भगवान्के उन भक्तोंने रामायण और गीता[२]में कहे गये भगवद्वाक्योंको न केवल मनसा-वाचा-कर्मणा अंगीकृत किया था, अपितु वे उन वचनोंको अपने हृदयमें आत्मार्पित करके यावज्जीवन उनपर आचरण भी करते रहे थे। उनके मनमें अपने प्रभुके प्रति यह भाव अत्यन्त सुदृढ़ रहता था कि मेरे इष्टदेव ही मेरे एकमात्र स्वामी एवं संरक्षक हैं तथा मैं उनका दास हूँ। अतः उन्होंने अपने निजी शुभाशुभ (सुख-दुःख)-की चिन्ता भगवान्पर ही छोड़ रखी थी और वे शास्त्रोक्त सदाचारोंपर चलते हुए यावज्जीवन स्वधर्मका पालन करते रहे।

भगवान्के उन भक्तोंकी अनन्य गति थे—उनके आराध्य। उन भक्तोंने अपनेको अपने आराध्यसे पृथक् नहीं माना। वे भलीभाँति यह जानते थे कि मेरे प्रभु अंशी हैं और मैं उनका अंश हूँ। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् मेरे प्रभुका ही स्वरूप है। ऐसा जानकर वे भक्तजन सर्वत्र, सभी जीवोंमें अपने आराध्यके दर्शन करते थे तथा उनमें समदृष्टि रखते थे।

भगवान्के वे भक्त अपने आराध्यको अनन्य भावसे चाहते थे और अपने पास आनेवालोंको भी यही समझाते थे। सर्वत्र सभी पदार्थोंमें भगवद्-बुद्धि रखनेवाले भक्त प्रह्लादने असुर बालकोंसे यही कहा कि इस संसारमें

१-श्रीमद्भागवतमें वर्णित ग्वाल-बालोंके मनोभाव ।

२-(क) सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥ (वा०रा० ६। १८। ३३)

(ख) समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ॥ (रा०च०मा० ४। ३। ८)

(ग) अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ (गीता ९। २२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यका परम स्वार्थ केवल इतना ही है कि वह भगवान् गोविन्दकी अनन्य भक्ति प्राप्त करे। उन्होंने असुर बालकोंको समझाया कि भक्तिका स्वरूप यही है कि सर्वदा-सर्वत्र सभी वस्तुओंमें भगवान्का दर्शन करना—

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः।
एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत् सर्वत्र तदीक्षणम्॥

(श्रीमद्भा० ७।७।५५)

राजा उत्तानपादके पुत्र राजकुमार ध्रुवको अपनी तपश्चर्याके अन्तिम चरणमें अपने चित्तको सब ओरसे खींचकर भगवच्चिन्तनमें लगा देनेके पश्चात् भगवान्के दिव्य दर्शन हुए थे—

सर्वतो मन आकृष्य हृदि भूतेन्द्रियाशयम्।
ध्यायन्भगवतो रूपं नाद्राक्षीत्किञ्चनापरम्॥

(श्रीमद्भा० ४।८।७७)

भक्तिमती द्रौपदीने दुर्योधनकी सभामें जब भीष्मपितामह आदिकी ओरसे निराश होकर अनन्य भावसे सर्वान्तर्यामी

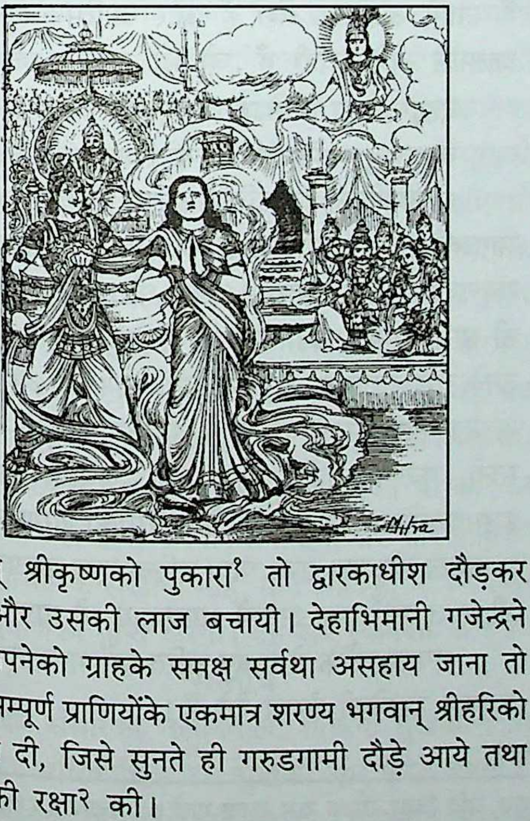

भगवान् श्रीकृष्णको पुकारा[1] तो द्वारकाधीश दौड़कर आये और उसकी लाज बचायी। देहाभिमानी गजेन्द्रने जब अपनेको ग्राहके समक्ष सर्वथा असहाय जाना तो उसने सम्पूर्ण प्राणियोंके एकमात्र शरण्य भगवान् श्रीहरिको आवाज दी, जिसे सुनते ही गरुडगामी दौड़े आये तथा गजेन्द्रकी रक्षा[2] की।

ईश्वरकी व्यवस्थाओंमें तनिक भी हस्तक्षेप न चाहनेवाले और अपनी गरीबीमें भी सदा सन्तुष्ट रहनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके बालसखा भक्त सुदामा अपनी पत्नीद्वारा अनेकशः कहे जानेपर द्वारकामें केवल इसलिये चले गये कि चलो इसी बहाने उत्तमश्लोक भगवान्के दर्शन हो जायँगे—

अयं हि परमो लाभ उत्तमश्लोकदर्शनम्।

(श्रीमद्भा० १०।८०।१२)

द्वारकाधीशसे धनादि वैभव मिलनेपर भी सुदामा श्रीकृष्ण-प्रीतिमें ही डूबे रहना चाहते थे और उनके श्रीचरणोंमें सतत अनुरागकी कामना करते थे—

तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्री दास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात्।
महानुभावेन गुणालयेन विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसङ्गः॥

(श्रीमद्भा० १०।८१।३६)

जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यने बतलाया कि अपने स्वरूपको जान लेना ही भक्ति है—

'स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते॥'

श्रीरामानुजाचार्यका श्रीसम्प्रदाय विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तको बतलाता है। यहाँ चेतन-अचेतनविशिष्ट ब्रह्मका अभेद कहा गया है—

'विशिष्टञ्च विशिष्टञ्च विशिष्टे तयोरद्वैतम्।'

श्रीमधुसूदन स्वामी अद्वैत-साहित्यके युगनिर्माता कहे जाते हैं। आप तन्मय होकर गाते थे कि श्रीकृष्णके अतिरिक्त मैं किसी तत्त्वको नहीं जानता—

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

श्रीकील्हदेवजी सभी जीवोंमें प्रभु-दर्शन करते थे—

सर्ब भूत सिर नमित सूर भजनानँद भागी॥

(भक्तमाल ४०।२)

नामदेवजीने अनन्य भावसे प्रभुको दूधका भोग लगाया, प्रभुने उसे तुरन्त पी लिया। भक्त रैदास प्रभुको

१-गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय॥ कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव। (महाभारत, सभा० ६८।४१-४२)

२-सोऽन्तःसरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम्।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रान्नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते॥ (श्रीमद्भा० ८।३।३२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंशी और स्वयंको उनका अंश बतलाते हुए दास्य-भक्तिका अत्यन्त सुन्दर रूपक प्रस्तुत करते हैं—

प्रभुजी, तुम चंदन, हम पानी, जाकी अँग अँग बास समानी।
प्रभुजी, तुम घन बन, हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा।
प्रभुजी, तुम दीपक, हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राती।
प्रभुजी, तुम मोती, हम धागा, जैसे सोनहि मिलत सुहागा।
प्रभुजी, तुम स्वामी, हम दासा, ऐसी भगति करै रैदासा।

भक्तवर सूरदासजीसे जब बादशाह अकबरने अपना यशोगान करनेको कहा तो सूरदासने बादशाह सलामतसे स्पष्ट कहा कि हमारे मनमें अब कोई जगह नहीं बची है। मैंने अपने हृदयमें नन्दनन्दनको बिठा लिया है, उनके रहते किसी औरको कैसे लाया जा सकता है—

नाहिन रह्यौ मन में ठौर,
नंदनंदन अछत कैसे आनिये उर और॥

मीराबाईने तो कलियुगमें गोपियों-जैसा प्रेम प्रकट किया।[१] आपने अत्यन्त निडर होकर भगवान् श्रीकृष्णका यशोगान किया और गिरिधर-गोपालमें अपने अनन्य भावको स्पष्ट घोषित किया—

'मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई।'

महाकवि रसखान तो अपने आराध्य श्रीकृष्ण और उनकी व्रजभूमिसे इतना लगाव रखते हैं कि वे मरणोपरान्त पुनर्जन्म मिलनेपर भी सदा व्रजभूमिमें ही (चाहे किसी भी योनिमें जन्म लेना पड़े) निवास मिलनेकी कामना करते हैं—

मानुष हौं तो वही रसखानि, बसौं ब्रज गोकुल गाँवके ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नंदकी धेनु मँझारन।
पाहन हौं तो वही गिरिकौ, जो धर्‍यौ हरि छत्र पुरंदर-धारन।
जौ खग हौं तो बसेरो करौं मिलि, कालिंदि-कूल-कदंबकी डारन।

सन्त कबीरने जीवको पानीकी एक बूँद और ईश्वरको अनन्त सागर कहा है। सन्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजीने अनन्यताको कामियों और लोभियोंके प्रेमसे उपमित करते हुए भगवान् श्रीरामके चरणोंमें वैसी ही रति चाही है—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

(रा०च०मा० ७। १३० ख)

भगवान्‌के प्रेमी भक्तकी चर्चा करते समय हम श्रीरामभक्त हनुमान्‌जीको भुला नहीं सकते। भगवद्भक्तोंमें अग्रगण्य श्रीहनुमान्‌जी दास्यभक्तिके परम पिपासु हैं। स्वधर्मका आचरण और प्रभुके प्रति आत्मसमर्पण ही उनके जीवनका साध्य है। उनकी भक्ति भुक्ति और मुक्तिसे परे स्वान्तःसुखाय है। वे अपने आराध्य श्रीरामकी भक्ति अनन्य भावसे करते हैं। उनके भीतर एवं बाहर सर्वत्र उनके आराध्य श्रीराम हैं। उनका रोम-रोम श्रीरामके अनुरागके रागसे रंजित है। उनके रोम-रोममें श्रीराम रमण करते हैं। अध्यात्मरामायणके नामसे प्रसिद्ध एक श्लोकमें श्रीहनुमान्‌जीने अपना परिचय देते हुए कहा है कि देह-बुद्धिसे मैं अपने आराध्य श्रीरामका दास हूँ, जीव-बुद्धिसे मैं अपने अंशीका अंश हूँ और आत्मिक दृष्टिसे मैं आत्मासे अभेद वही हूँ, जो मेरे इष्टदेव स्वयं हैं—

देहदृष्ट्या तु दासोऽहं जीवदृष्ट्या त्वदंशकः।
वस्तुतस्तु त्वमेवाहमिति मे निश्चला मतिः॥

श्रीमारुतिकी इस उक्तिमें उनका भक्ति-भाव गागरमें सागरकी तरह समाया हुआ है। अंजनानन्दन श्रीहनुमान्‌जीने रावणको भी यही समझाया था कि श्रीरामजीका बल पाकर ही माया सम्पूर्ण ब्रह्माण्डसमूहकी रचना करती है, तुम उनके चरणकमलोंको अपने हृदयमें धारण करो और लंकाका अचल राज्य करो।[२] दशाननने श्रीहनुमान्‌जीकी बात नहीं मानी, फलतः युद्धमें मारा गया, जबकि विभीषणने हनुमद्वचनोंका अनुसरण करके श्रीरामकी शरण ली[३] और न केवल लंकाका राज्य पाया बल्कि एक कल्पकी आयु भी प्राप्त की[४] तथा अन्तमें भगवद्धाम भी प्राप्त किया।

भगवद्भक्तोंके ये पावन चरित हमें भगवान्‌में अनन्य अनुराग रखनेकी प्रेरणा देते हैं।

१-सदृस गोपिका प्रेम प्रगट कलिजुगहिं दिखायो। निर अंकुस अति निडर रसिक जस रसना गायो॥ (भक्तमाल ११५)

२-सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥
राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥ (रा०च०मा० ५। २१। ४, ५। २३। १)

३-श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर। त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥ (रा०च०मा० ५। ४५)

४-करेहु कल्प भरि राजु तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माहिं। पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं॥ (रा०च०मा० ६। ११६ घ)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्याग और सन्तोष

(श्रोत्रिय ब्रह्मलीन वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज)

त्याग

संसारको चलानेवाली प्रकृतिकी शक्तियाँ अपना सुख-दु:ख दिखाकर मनुष्यको जिधर ले जाना चाहती हैं, उस प्रकृतिके रास्तेको विचारसे त्याग देना अर्थात् उस प्रकृतिके सुखको न लेना, इसीका नाम त्याग है और उन सुखके साधनोंको भी यथाशक्ति त्यागते जाना, जैसे अधिक खाना-पीना, सोना और अधिक प्राणी तथा पदार्थोंका संग करना, यही सब जो आत्मामें जीवन पाने और अन्तमें आत्मामें ही टिकाव पानेके विपरीत जो-जो भी सुख हैं, उन सबको त्याग देना, इसीका नाम त्याग है।

इस त्यागसे विचार और विवेकका बल बढ़ता जाता है और सांसारिक सुख और उनकी सामग्रीकी तुच्छता भी प्रकट होती है, जैसे-जैसे त्याग बढ़ता जायगा, वैसे-वैसे पर्याप्त अवसर आसन-ध्यानके लिये प्राप्त होगा। पुन:ध्यानमें बाह्य स्वत्व या अपनी कही जानेवाली वस्तुओंकी सँभालकी भी चिन्ता ध्यान-सुखको बिगाड़ेगी तो उनके भी त्यागनेका साहस साधक मनुष्यको प्राप्त होगा। उनके बाह्य सुखको दु:खान्त समझनेपर पुन: उनको अपने अधिकार या स्वामित्वमें (मलकीयत) रखनेका कोई भी प्रयोजन न दीखनेपर वह भी किसी दूसरेके लिये ही त्याग दी जायगी। इस प्रकार धन-सम्पत्ति आदिको भी योग्य अधिकारीको अर्पण करनेपर मनुष्यका ध्यान और भी उन्नतिको प्राप्त करेगा। यह सब बाह्य त्याग है। इसी प्रकार जब मन पुन: इन्हींके सम्बन्धसे मनके बन्धनोंको पहचानेगा तो पुन: उनको भी जानकर त्यागनेका बल प्राप्त करेगा। राग, द्वेष, संशयादिसे लेकर उन्हीं सांसारिक सुखोंके मोह, मान आदिको भी त्यागकर पूर्ण निर्वाणको प्राप्त करेगा। यह सब त्यागका फल है।

सन्तोष

जब संसारको चलानेवाली शक्तियाँ सुखका लोभ दिखाकर अधिकाधिक उस सुखकी ओर प्रेरित करती हैं और मनुष्यको नियमोंको लाँघकर भी उस प्रकृति-सुखको लेनेके लिये प्रोत्साहित करती हैं तो यही प्रेरणा लोभ कही जाती है। इन लोभोंसे मनुष्य प्रकृतिके संसारी सुखोंको अधिकाधिक लेता हुआ या अनुभव करता हुआ शीघ्र विनाशकी ओर अग्रसर हो जाता है। इस लोभसे मनको मोड़ना और नियमित रूपसे बाहरी या सांसारिक पदार्थों तथा प्राणियोंका संग उतना ही करना जितना जरूरत हो और शेष सम्पूर्ण लोभको त्यागना, उस थोड़ेमें ही अपने मनको शान्त कर लेनेका नाम सन्तोष है। इसके बिना मनुष्य आसन, ध्यान आदिमें प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। इस लोभको रोकनेका जो खेल है, वह भी तपरूपसे धारण करनेवाला है और जो लोभ तथा सुखोंको त्यागना है, यह त्यागरूप है और इसी प्रकार इन्हीं लोभोंके सुखोंको विचारद्वारा दु:खदायी समझते हुए विवेक जगाकर मनको उनकी तृष्णासे हटा देना चाहिये, इसीका नाम वैराग्य है। यह सब ऊपर कहे गुण प्रकृतिके बन्धनको या संसारको चलानेवाली शक्तियोंके बन्धनको काटनेके लिये हैं। इसलिये मनुष्यको इन्हें यत्नसे धारण करना चाहिये। अपने-आप तो प्रकृति संसारके प्रवाहमें ही जीवको बहाते रखनेके लिये प्रेरित करती है और मनुष्यको भी बहते रहना अच्छा लगता है। यदि मनुष्य थोड़ा बाहरसे मुँह मोड़कर अन्दरकी विद्याओंको प्रकट कर ले तो जीवको सत्य समझनेमें ये विद्याएँ सहायक बनेंगी। तब वह प्रत्यक्ष बाहरी या सांसारिक सुखोंसे मुँह मोड़कर अन्दरके सुखको पहचाननेके लिये या पानेके लिये प्रेरित होगा और बाहरके सुखोंके त्यागका दु:ख सहन कर सकेगा, नहीं तो दु:खको सहन करके कोई काम करना भी अतिकठिन हो जाता है, परंतु यदि जगा हुआ विवेक या प्रकट सत्य सुझाव दे कि थोड़ा दु:ख सहन करनेसे अन्तमें महान् सुख मिलता है तो वह प्राणी दु:खकी मात्राको सहर्ष सहन करके उस परम मोक्षके रास्तेपर अग्रसर हो जायगा। जैसे कि सामान्यतया जगत्‌में सांसारिक सुखोंको पानेके लिये प्राणी विश्वासपूर्वक अपने प्राणकी भी बाजी लगा देता है, इसी प्रकार मनुष्य-जीवनके सत्यको समझे कि बाह्यसुखका क्या रूप है? यह किधर ले जाता है? और अन्त कहाँ होता है? तो इसे यही विवेक सत्यको प्रकट करके उचित रास्तेपर अग्रसर कर देगा। चाहे उसपर चलनेमें दु:ख ही क्यों न हो; क्योंकि उसके मनमें विवेकद्वारा यह प्रकट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि प्रकृतिके बन्धनसे छूटनेपर ही आत्मामें या अपने-आपमें स्थायी शान्ति मिल सकती है। प्रकृतिकी प्रेरणा तो जिधर ले जा रही है, उस दिशामें अनन्त दुःखोंका ही वास है और यदि इन सब गुणोंको अपनाकर मोक्षका रास्ता न लिया और अपनेको इन गुणोंको ही संचित करनेके लिये न लगाया गया तो प्रकृतिका तनाव पहली दिशामें ही धकेलता जायगा। खाली तो आदमी रह नहीं सकता। इसलिये उसे चाहिये कि थोड़ा बुद्धिको जगाकर आसनपर ही विवेकको जगाये और निद्राको थोड़ा जीतकर और संसारके सुखोंसे भी मुँह मोड़कर सत्य पहचाननेके हेतु ध्यान लगाये। उस ध्यानद्वारा जीवनके सत्यको विश्लेषण या छानबीनद्वारा समझकर उससे दुःखोंसे मोक्ष पानेके लिये मनमें भाव उत्पन्न करे, तब थोड़ा इन्द्रियोंका निग्रह और शरीरका संयम, पापोंका त्याग, व्यर्थ संगतका त्याग आदि करके भी अधिक-से-अधिक समय अपना एकान्तमें व्यतीत करनेका अभ्यास बढ़ाता जाय, जिससे अन्तमें प्राणीका प्रकृतिका बन्धन क्षीण हो और संसारसे छुटकारा या मुक्ति मिलकर अपनी आत्मामें या अपने-आपमें प्रतिष्ठा (टिकाव) प्राप्त हो, जिसकी पिछली वृद्ध अवस्थामें अत्यधिक आवश्यकता है और मरनेपर तो केवल यही एक सहारा होगा; क्योंकि वहाँ कोई और संगी-साथी नहीं होगा। यही लगभग बढ़ती हुई वृद्ध अवस्थामें भी होता है; क्योंकि तबतक संसारके प्राणी उस वृद्ध प्राणीसे मुख मोड़ लेते हैं। उसमें कोई आकर्षण तो रहता नहीं, कोई स्वार्थ तो उससे पूरा होता नहीं। वह सबको व्यर्थ भार-सा प्रतीत होता है और उसका उनके साथ होना, उनके सुखमें विघ्नरूप प्रतीत होता है। ऐसी अवस्थामें वह एकान्तमें सबसे न्यारा होकर यदि पूर्व कही रीतिसे अपने-आपमें ही सुख-शान्ति पा जाय तो उसे परमानन्दकी प्राप्ति मरनेके पश्चात् भी हो जायगी। यदि वह इस सनातन धर्मकी शरण न ले सका तो मन खाली तो रहेगा नहीं, खालीका तो समय भी नहीं व्यतीत होता तो ऐसी अवस्थामें वह बेचारा वृद्ध होता हुआ प्राणी जब न चाहते हुए दूसरोंमें आयेगा तो सिवाय अनादर और तिरस्कारके दुःखके और क्या पा सकेगा? इसलिये इसे केवल धर्मकी शरण ही बचा सकती है। इसकी शरणमें लगा हुआ यदि अपने-आपको समझनेमें और गुणोंको उपजानेमें और एकान्तमें पुराने सब सुखोंके बिछुड़नेके दुःखको सहन करता हुआ और उनसे सीखता हुआ दिन, मास और साल व्यतीत करता रहेगा तो वह आध्यात्मिक अर्थात् आत्मामें ही जीवन पायेगा। उसको दूसरोंकी आवश्यकता अति अल्प होगी और वह इसी प्रकारसे भी अपने-आपमें लगा रहनेवाला दूसरोंको खिन्न नहीं करेगा। उनके सुखोंकी अड़चन नहीं बनेगा, कहीं भी रहेगा, बल्कि उनसे आदर पायेगा। उसके गुणोंको पहचानकर दूसरे उसकी सेवाको लालायित होंगे। इसलिये यहाँ जीते-जी सब दुःखोंसे छुटकारा पाकर और अन्तमें अपने अन्दरके भी तृष्णाके दुःखोंको सहन करता हुआ एक दिन व्यर्थकी तृष्णाके नष्ट होनेपर और उसीके कारणसे होनेवाले सब दुःखोंके समाप्त होनेपर दुःखोंसे भी मुक्तिरूप अपनी आत्माका भी आनन्द अपने-आपमें ही पाकर कृतकृत्य हो जायगा। यही संसार-बन्धनसे छुटकारा है। इसीका नाम 'मुक्ति' है। यह मुक्ति सब अनर्थोंसे निवृत्ति और परम आनन्दकी प्राप्तिरूप है। इन सब प्रकारसे दुःखोंसे मुक्त जो ज्ञान-विज्ञानरूप आत्मा है, वह सबमें समान रूपसे विराजमान है—इस बातको समझनेमें कोई कष्ट नहीं होगा। यही अनन्त ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मुक्ति है, जो कि शास्त्रोंमें परम फलरूपसे कही गयी है। संक्षेपमें यह बन्धन और बन्धनोंसे छुड़ानेका मार्ग बताया गया है और उसके लिये गुणोंके संचय करनेके उपाय और उनके लक्षण बता दिये गये हैं।

कही गयी बातोंका तात्पर्य यह है कि सांसारिक सुखोंके लाभको छोड़कर थोड़ी वस्तुकी इच्छा ही रखना जिससे शरीरको धारण किया जा सके, इसीका नाम सन्तोष है। शेष सबका त्याग करना और पुनः त्यागपूर्ण करनेहेतु तप और उसमें मनकी शान्ति रखनेहेतु आसन, ध्यानमें विचार-विवेकको जगाकर सत्यका साक्षात्कार करना, उस सत्य-ज्ञानद्वारा अपनेको प्रेरित करके सब बन्धनोंको एक-एक करके अपनेमें समझकर निद्रा आदिकी भी अधिक दासतासे उचितरूपसे मुक्त होकर जीवन रहते ही मुक्तिका साक्षात्कार करना चाहिये। इसी हेतु यह मोक्ष-धर्म प्रवृत्त होता है। [प्रे०-श्रीज्ञानचन्दजी गर्ग]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तगाथा—

रसिकशिरोमणि श्रीअग्रदेवाचार्यजी महाराज

(श्रीसियाशरणजी शास्त्री)

बन्दौ पदकमल श्रीअग्रस्वामी जू के,
आचारज रसिक सिरोमणि महान् हैं।

(रसिकप्रकाश भक्तमाल)

रामभक्तिमें रसिकभावनाके प्रवर्तक श्रीअग्रदासजीका

अवदान अति ही उत्तम है। सखीभावकी भक्तिमें शृंगार-रसकी उनकी रचनाएँ बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। अग्रअलीजीके पदोंमें माधुर्य रसके समुद्रका अमृत उद्भूत हुआ है। 'श्रीअग्रस्वामीचरित' में आपका स्थितिकाल-विक्रम-संवत् १५७० का बताया है। श्रीरूपकलाजी लिखते हैं—

फाल्गुन शुक्ला दोज सुहाई। नभ मुनिबाण चंद सम गाई॥

इसके अनुसार अयोध्या, जयपुर और रैवासास्थलमें श्रीअग्रजयन्तीपर उत्सव मनाया जाता है। सखीभावकी भक्तिके लिये आपकी भावना कुछ इस प्रकार है—

चहियतु कृपा लली सीता की।
नवधा भक्ति ज्ञान का करना नाहिन संक बेद गीता की।
षट् मत वेद पुरान पुकारत करत बाद नर बपु बीता की॥
झगर करत उरझे सुरझे नहिं मिटत एक द्वैत भीता की।
जाकी ओर तनिक हँसि हेरत करत सहाय रामसिय ताकी।
अग्र अली भजु जनकनंदिनी पाप भंडार ताप रीता की॥

सौरभ स्वामी श्रीअग्रअलीने भगवान् श्रीसीता-रामजीके जन्मोत्सव, विवाह-विहार, फूलडोल, झूला-झूलन और अष्टयामकी दिव्य भावनाओंका अपनी रचनाओंमें वर्णन किया है। साथ ही शृंगारी भक्त होनेके लिये सात्त्विक साधनापर बल दिया है। इसके अधिकारी वे ही हो सकते हैं, जो लौकिक रसोंसे मुक्त होते हुए दिव्य भाव-जगत्में तल्लीन होकर भगवान्के प्रति समर्पित होते हैं—

रस सिंगार अनूप है तुलबे को कोउ नाहिं।
तुलबे को कोउ नाहिं सोई अधिकारी जग में।
कंचन कामिनी देख हलाहल जाने मन में।
जावत जग के भोग रोग सम त्यागे द्वन्दा।
पिय प्यारी रस सिन्धु मगन नित रहत अनंदा॥
नहीं अग्र अस सन्त के सर लायक जग माहिं।
रस सिंगार अनूप है तुलबे को कोउ नाहिं॥

(श्रीअग्रकुण्डलिया)

श्रीअग्रपदावलीके पदोंमें भगवान्के दिव्यस्वरूप और लीलाओंका ललित वर्णन हुआ है, साथ ही काव्य-सौष्ठव एवं आलंकारिक छटाका भी समावेश मिलता है। एक पदके द्वारा इसका दिग्दर्शन करिये—

वन्दे जनक सुता पद सुधा सरोवर।
सुखद अगाध बिसद करुणामय पद रस परस अवनि मंगलवर॥
हनूमान सुग्रीव विभीषण मत्तमराल रहत प्रेमाभर।
शिव विरंची सनकादिक नारद जोगेश्वर विचरत तँह जलचर॥
मज्जन पान ताप त्रय मोचन काल जाल या में नाहिन डर।
सारस सरस सकुनि सब मुनिजन भक्त हृदय फूलत पद्माकर।
नवधा घाट महावर वेला राजनीति रघुबीर कलपतर॥
साचल भूमि सनेह सुरंजित सखी समूह सुलभ सौरभ वर।
चक्रवाक सुचि सेस सारदा निसा रहत संजोगी तत्पर।
'अग्र' स्वामिनी अंघ्रिजुगल हृद अखिल भुवन पावन मंडनकर॥

(ध्यानमंजरी)

श्रीअग्रदासजीकी ध्यानमंजरी ८६ रोला छन्दोंमें रचित स्तुतिपरक रचना है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने जैसे मानसके सन्दर्भमें **'रामायणे निगदितं क्वचि-दन्यतोऽपि'** कहकर अन्य रामकथाके आर्षग्रन्थोंको भी आधार बनाया है, वैसे ही श्रीरामस्तवराजस्तोत्रको उपादान कारण बनाकर ध्यानमंजरीकी रचना हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामभक्तोंमें इसका हनुमान-चालीसाकी तरह आदर है। इसमें आरम्भमें अवधपुरीका वर्णन है और इस दिव्यपुरीके मध्यमें कल्पवृक्षके नीचे स्वर्ण सिंहासनमें श्रीराम और सीताकी दिव्य झाँकीका वर्णन किया है—

स्वर्ण वेदिका मध्य तहाँ यक रतन सिंहासन।
सिंहासन के मध्य परम अति पदुम शुभासन॥
अस राजत रघुबीर धीर आसन सुखकारी।
रूप सच्चिदानन्द वाम दिसि जनक दुलारी॥
यही ध्यान उर धरै स्वयं तन सुफल करेवा।
भव चतुरानन आदि चरन बन्दे सब देवा॥
यह दम्पतिवर ध्यान रसिक जन नित प्रति ध्यावैं।
रसिक बिना यह ध्यान और सपनेहुँ नहिं पावैं॥

श्रीअग्रस्वामीजीकी वाणी विपुल है और बहु आयामी है। कहीं वे भक्तोंका भगवान्से गुणगान करवाते हैं तो कहीं रामजन्मोत्सवपर अवधपुरमें बधाई गान करते हैं—

रघुवंशी जजमान तिहारो ढ़ाडी आयो।
अग्रदास रघुबर को जाचिक सिर पोथी धर लायो॥

इस प्रकार अपने आराध्य रामकी वंशावली सुनाते हैं। पावसके पावन पर्वपर अपनी सिया स्वामिनीको झूला झुलाते हैं—

हिंडोरे झूलत सिया महारानी।
स्नुतिकीरती उरमिला मांडवी चतुर सखी समुहानी॥
रच्यो हिंडोरा नाम लिवावती चन्द्रकला गुणखानी॥
सियाजु सकुच रही नहीं बोली अग्रअली मुसकानी।

श्रीसीताराम-विवाहमें युगल-सरकारकी दिव्यता और सौन्दर्यके साथ ही मर्यादाका भी पालन हुआ है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका एकपत्नीव्रत भव्य भावनासे परिपूर्ण है—

एक नारिव्रत न्याय धर्‌यो।
अखिल भुवन अच्युत नहि हरि को निर्णय यह रघुनाथ कर्‌यो॥
बनितारतन सिरोमणि सीता सील सुजस सब ही पचर्‌यो।
ता तन मगन भये तनमयता पैठि राम नाहिन निकर्‌यो॥
कहा भये जो कोटिक पतनी सुख स्वारथ एको न सर्‌यो।
रूप उदार विनय लावणि गुण अग्रस्वामी मनोरथो भर्‌यो॥

श्रीअग्रस्वामीजीके पदोंमें रसिक भावकी भक्ति, ज्ञान, वैराग्य उद्देश्यपूर्ण साधना और सदाचार आदिका समावेश मिलता है। अष्टयामकी पदावलीमें शयनकुंजका पद कमनीय भावोंका सहज सरल अनुभव देता है—

महल में सोर करो जनि कोई।
कछुक रहस बस कछु आलस बस अबही मैथिली सोई॥
पदनूपुर धुनि दाबि चलो सजनी तनक झनक नहीं होई।
पहरे वाली सजग होय रहियो आवागमन न होई।
अग्रअली के जीवन धन दोऊ जगे न पलका सोई॥

श्रीअग्रदेवाचार्यजीकी पदावली और उनकी तप-साधना विस्तृत है। यहाँ साररूपसे उनकी जानकारी देनेका प्रयास किया है। रसिकप्रकाश भक्तमालमें श्रीयुगल-प्रियाजीने आपकी उपासना और पद-प्रकरणको बहुत सुन्दररूपमें एक छन्दमें ही कह दिया है—

रस बोध बिपुल आनन्दघन अग्रस्वामि वाणी बिसद।
अक्षर पद अनुप्रास मधुरता बाल्मीकि सम॥
आसय गूढ़ उपाय प्राप्ति रसिकन की संगम।
रैवासे जानकी वल्लभी रहसि उपासी।
ललित रसाश्रय रंगमहल कल कुंज खवासी॥
आचारज रस राज पथ रसिक वर्ज रसिकन सुखद।
रस बोध बिपुल आनन्दघन अग्रस्वामि वाणी बिसद॥

अब यहाँ उनके दो भजन जो सभी उत्सवोंमें आदरसहित गाये जाते हैं, उन्हें लिखते हुए उपसंहार करते हैं—

(१)

हम चाकर रघुनाथ कुंवर के।
यम के दूत निकट नहीं आवत द्वादश तिलक देखकर यम धरके॥
बाँध्यो साज विचार ज्ञान को और सबन सौ निजकर तर के।
तिहारो भरोसो ओर न दूजो भये गुलाम रावरे धर के॥
हौं अजाच जाचौं नहिं काहू आश्रित होत नहीं सुरनर के॥
शिव विरंचि नारद मुनि ज्ञानी भये सबन रावरे वर के।
अधम उद्धार किये जन अपने सत्य बचन मान सतगुरु के।
अग्रदास पटो लिखि पायो दसखत दसरथ सुत के कर के॥

(२)

यह मोहि दीजे राघव राम।
दासनुदास दास को अनुचर कथा स्त्रवण मुखनाम॥
मोक्ष आदि लै चारिपदारथ मेरो नाहिन काम।
चरण रेणु सन्तन की सिर पर कृपा करो सुख धाम॥
सन्तन सों अनुराग निरन्तर इहि विधि बीते आठों याम।
अग्रदास चाहत हरि चर्चा सुधा सिन्धु बिश्राम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम-मोह—एक महारोग

(श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

यश:कामना आज सबसे बड़ी बीमारी हो गयी है। कोई भी कवि या लेखक अपनी रचनाको, चाहे वह साधारण-सी ही क्यों न हो, प्रकाशित हुआ देख प्रसन्न होता है। प्रकाशित करानेका प्रयत्न करता है—केवल इसीलिये कि उसका नाम पत्र-पत्रिकाओंमें आये। कोई भी व्यक्ति किसी भी संस्थाको एक रुपये भी दान देते समय इच्छा रखता है कि किसी पत्रमें उसका उल्लेख अवश्य होना चाहिये। इससे उसे आनन्द होता है। मन्दिर और धर्मशालाके निर्माणमें सहायता प्रदान करनेपर एक शिलालेख अवश्य दीवालमें लगना चाहिये। यह नाम-प्रकाशनकी ही महिमा है कि जो व्यक्ति साधारण तौरपर दस-बीस रुपये प्रदान करनेमें संकोच करता है, उससे नाम-प्रकाशनका लोभ दिखाकर हजारों रुपये लिये जा सकते हैं। यही हाल पुस्तक-प्रकाशनका है। किसीसे यों जाकर आप केवल पुस्तक खरीदनेको कहें तो टका-सा जवाब मिलेगा कि 'भाई! हम इसका क्या करेंगे? हमें पढ़ना तो आता ही नहीं।' परंतु उनका फोटो दिया जाय और जीवनचरित्र छापा जाय तो वे उस पुस्तकके प्रकाशनका सारा भार स्वीकार कर लेंगे और आगे आपसे उसका हिसाब भी न माँगेंगे। ऐसी हालतमें पुस्तक किसी भी कामकी न हो तो भी आपका काम बन जायगा। लेकिन यह बात यहींतक सीमित नहीं रहती, लेखकको भी अपनी कृतिका मोह रहता है और इस कारण वह भी उचित-अनुचित करनेके लिये तैयार हो जाता है। कई लेखक इसके लिये दूसरोंकी रचनाओंपर भी अपने नामकी छाप लगाते नजर आते हैं। यह इसी नाम-मोहकी महिमा है।'

यही बात पूजा, प्रतिष्ठा, धूमधाम, स्वधर्म-वात्सल्य, उद्यापन, रथयात्रा, सभापतित्व आदिके विषयमें कही जा सकती है। केवल धार्मिक ही नहीं, सामाजिक, राजनीतिक और पारिवारिक कार्यों और प्रसंगोंपर नामके लिये हजारों और लाखों रुपये पानीकी तरह बहानेवाले कई मिल सकते हैं; लेकिन गुप्त सहायताके लिये उनकी इच्छा ही नहीं होती। स्थायी प्रभाव रखनेवाले ठोस कार्योंके लिये भी वे तैयार नहीं होंगे, यदि उन्हें यह ज्ञात हो जाय कि इसमें तत्काल वाहवाही नहीं मिलनेवाली है। इसीलिये सच्चा और स्थायी कार्य नहीं हो पाता। दिखावटी, प्रदर्शनके कार्य ही अधिक होते हैं। यह नाम-मोहरूपी महारोगका ही प्रभाव है।

भारतवर्षके प्राचीन इतिहासका अनुशीलन करनेपर ज्ञात होता है कि हमारे पूर्वज कार्य तो बहुत सुन्दर और उपयोगी करते थे, परंतु उनका उद्देश्य परोपकार और आत्मकल्याण ही होता था, यशोलिप्सा और नामकी प्रसिद्धि नहीं। प्राचीन साहित्यमें अनेकों ग्रन्थ ऐसे उपलब्ध हैं, जिनके रचयिताओंके नामतकका पता नहीं चलता। यदि किन्ही-किन्हींके नाम ज्ञात हुए तो दूसरे साक्ष्योंद्वारा बड़े परिश्रमके बाद ही। इसी प्रकार मन्दिर और धर्मस्थानों आदिमें भी शिलालेख बहुत कम प्राप्त होते हैं, परंतु हमें नाम-मोहने इतना विवेकहीन बना दिया कि उन प्राचीन स्मारकोंकी किंचित् मरम्मत, जीर्णोद्धार अथवा रूपान्तर करवाकर अपना नाम खुदवा देते हैं और पूर्वजोंकी स्मृति एवं महान् कार्य-कलापोंको सदाके लिये विस्मृतिके गर्भमें डाल देते हैं।

वास्तवमें देखा जाय तो गुण और कर्तव्य ही अमरता प्रदान करते हैं, नाम तो आयुके साथ ही मिट जाता है। नाम उन्हींका अमरता और स्थायी महत्त्वको प्राप्त करता है, जो काम कर जाते हैं, कर्तव्यकी वेदीपर अपना जीवन समर्पण कर जाते हैं। कृषकके लिये धान्य बड़ी चीज है, घास तो बिना इच्छाके अपने-आप उग आती है और उसका लाभ उसे मिल जाता है। कार्य किया है तो नाम स्वत: मिल जायगा, परंतु जहाँ केवल नाम ही उद्देश्य है, वहाँ काम लुप्त हो जायगा।

बहुत बार ऐसा होता है कि काम एक करता है और यश दूसरा हथिया लेता है। सम्पत्ति और सत्ताके द्वारा ही यह हथियानेका चक्र चलता है। दान देनेपर किसी धनिकका नाम तो तत्काल प्रसिद्धिमें आ जायगा, परंतु उस दानका उपयोग करके जिसने उसे सार्थक किया, उसकी कोई गिनती ही नहीं होती। काम करनेवाला सेठ नहीं; नौकर या कार्यकर्ता होता है। युद्धमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़ते हैं, अपने प्राणोंकी आहुति देते हैं सैनिक; परंतु नाम सेनापति या राजाका होता है। इस प्रकार एकका लाभ दूसरा हथिया लेता है। कई विद्वानोंकी रचना उनके आश्रयदाता राजादिके नामसे ही प्रसिद्ध होती है, कई लोग दूसरोंकी रचनाओंको स्वरचित घोषित करनेका कुत्सित प्रयत्न भी करते हैं।

आश्रित कवियोंके आश्रयदाताओंके नामपर प्रसिद्ध रचनाएँ अनेक मिलती हैं। इसे साहित्यवेत्ता एवं इतिहासज्ञ अच्छी तरह जानते हैं। आज भी कई समर्थ व्यक्ति रुपये देकर विद्वानोंके नामको मिटानेका घृणित कर्म करते हैं। यह सारी बुराई नाम-मोहरूपी महारोगका परिणाम है।

हमारे मनीषियोंने इस बुराईको हटानेके लिये बहुत सुन्दर उपदेश दिये हैं; परंतु किसे अवकाश है उनकी ओर ध्यान देनेका! हमारी दृष्टि तो अन्तर्मुखी न होकर बहिर्मुखी हो रही है; अन्यथा कविवर बनारसीप्रसादके ये शब्द कितने उद्बोधक हैं! जरा ध्यानसे पढ़िये और अपनी वृत्तिका निरीक्षण कीजिये—

थिर न रहै नार-नर की कथा जथा जल-रेख।
एते पर मिथ्या-मति ममता करै विशेष॥

× × × ×

जहाँ सत्कार्य है, गुण है, वहाँ नाम तो बिना चाहे मिल जाता है। गुलाबका पुष्प नहीं कहता कि मेरे पास आओ, मेरी प्रशंसा करो; पर उसकी सुगन्ध जिसकी नाकमें पहुँचती है, वह स्वतः आकर्षित हो कहने लगता है, 'क्या बढ़िया सुगन्ध है; चलो, उसके पास चलें।' एक व्यक्ति चुपचाप एकान्तमें कोई सत्कार्य करता है, पर उसके सत्कार्यकी सुगन्ध छिप नहीं सकती और दूनी प्रशंसा होती है। नामकी अपेक्षा रखनेवाले दिखावटी लोग अधिक होते हैं। वे उतने महत्त्वका काम नहीं करते। अतः वह नाम भी थोड़े समयमें भुला दिया जाता है। इसलिये नाम-मोह एवं यशोलिप्साके पीछे नहीं पड़ना चाहिये।

मृत्यु भी एक शिक्षक है

(डॉ० श्रीविजयकुमारजी अरोड़ा, एम०ए०, पी-एच०डी०)

मृत्यु जीवन-लीलाका एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है, जो विचारवान् व्यक्तिके लिये परम विवेकदायी है। नचिकेताको मृत्युके देवतासे ही अध्यात्मबोध हुआ था। परीक्षित्‌को मृत्युके शापने ही झकझोरा था। गौतम बुद्धकी आँखें एक शवको श्मशान जाते देखकर ही खुली थीं। मृत्यु निकट आनेपर ही सिकन्दरकी समझमें आया कि निजी और क्षुद्र स्वार्थोंके लिये लोभ, लालच और विस्तारकी महत्त्वाकांक्षा बेईमानी और अमंगलकारी है, तभी तो उसने निर्देश दिया था कि मेरे हाथ ताबूतसे बाहर निकाल देना ताकि दुनिया देख सके कि मैं इस संसारसे कुछ भी लेकर नहीं जा रहा हूँ।

इस दृष्टिसे मृत्यु एक शिक्षक है, जो सीखनेवालेको सही जीवन जीनेकी कला सिखाती है। उसकी पहली शिक्षा है कि 'मृत्यु एक प्राकृतिक घटना है।' '**जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।**' (गीता २। २७) जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु भी निश्चित है। मरनेकी सूचना तो जन्मसे ही हो जाती है। जन्म होते ही यह शरीर मृत्युकी ओर बढ़ने लगता है। आज नहीं तो आनेवाले दिनोंमें प्राणीकी मृत्यु निश्चित ही है।

कैसी विडम्बना है कि आयु दिन-प्रतिदिन घट रही है और हम उसे बढ़ती मानकर प्रतिवर्ष जन्मदिनका उत्सव मनाते हैं। मनुष्य शायद ही कभी गम्भीरतासे सोच पाता है कि वह दिन-प्रतिदिन जी नहीं अपितु मर रहा है। हाँ! यदि वह कभी किसी प्रियजनके पार्थिव शरीरको श्मशानमें भस्म होते देखता है तो उसमें अल्पकालिक वैराग्यभाव जरूर जागता है और उसे लगता है कि एक दिन उसके शरीरकी भी यही गति होनी है।

कुछ देरके लिये ही सही 'श्मशान-वैराग्य' मनुष्यको यह अवश्य सिखाता है कि दुनियाके सारे रिश्ते-नाते अल्पकालिक और अर्थहीन हैं। हम इस संसारमें अकेले आये थे और हमें इस दुनियासे अकेले ही जाना है। धन, सम्पत्ति, पद, प्रतिष्ठा जिसे बढ़ानेके लिये मनुष्य दिन-रात प्रपंच करता है, ये सब यहीं धरे रह जाते हैं। यदि यह वैराग्य-भाव दृढ़ हो सके तो व्यक्ति न तो रिश्तोंके मिथ्या मोहमें जकड़े और न ही पापकी कमाई और अनाचारमें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन ऐसा होता नहीं है। नित्यप्रति लोगोंको खाली हाथ जाते देखकर भी उसे अपनी मृत्युका विश्वास नहीं होता और वह निरन्तर अपने लिये भोग्य-पदार्थों और भोगके अवसरोंको खोजनेमें लगा रहता है।

इन्द्रिय-सुखकी लालसा उसे पुनः मायावी संसारमें खींच लाती है और वह मृत्युसे कुछ सीखनेकी अपेक्षा उसके नामसे ही डरने लगता है। मरनेके बाद सम्पत्ति और परिवारके सदस्योंका क्या होगा? इससे चिन्तित हो वह अपने बुढ़ापे, बीमारी, आश्रितोंकी सुरक्षाके लिये जोड़-तोड़में लग जाता है। भले-बुरे दिन तो हर किसीके जीवनमें आते रहते हैं। लोग यह क्यों नहीं सोचते कि यदि व्यक्ति मरते नहीं तो क्या यह पृथ्वी रहनेके लायक होती? सांसारिक प्रपंचमें रचे-पचे व्यक्तिके लिये चिर-जीवन या चिर-यौवनकी प्राप्ति एक अभिशाप है। मिश्रमें सलोमीकी कथा और महाभारतमें ययातिका उदाहरण आँखें खोलनेवाले हैं। चिर-यौवनका वरदान पाकर वे कुछ ही वर्षोंमें ऊब गये और मृत्युकी चाह करने लगे। अगर स्वाभाविक ढंगसे मृत्यु आना बन्द हो जाय तो लोग ऊबकर आत्महत्या करनेकी अस्वाभाविक कोशिश करेंगे। परमात्माकी सृष्टि परमात्माके इच्छानुसार चलेगी या हमारी?

मृत्यु सचमुच मुक्ति-स्वरूप है—मृत्युका ध्यान निरन्तर रहना चाहिये, विशेष रूपसे वृद्धावस्था में। जो इसे याद रखेगा, उसीका शेष जीवन शुद्ध और समृद्ध बीतेगा। रवीन्द्रनाथ टैगोरके दीर्घ साहित्यिक और काव्यमय जीवनका रहस्य यही था। वे निरन्तर मृत्युको याद रखते थे। उनकी रचनाओंमें बार-बार मृत्युका जिक्र आता है। उन्होंने मृत्युका चिन्तन किया, उसकी चिन्ता नहीं की। चित्तपर काबू रखनेके लिये सिर्फ एक मृत्युबोध ही काफी है।

क्या मृत्युके बाद जीवन है?—इस विषयपर सदासे ही मतभेद रहा है। भौतिक पदार्थ (Matter) और नित्य-चेतना (Eternal Consciousness)-से मिलकर यह शरीर बनता है। जो सोचते हैं कि शरीरके साथ शाश्वत चेतना भी नष्ट हो जाती है, वे विवादी तथा न्याय, नीति, सदाचारके क्षेत्रमें निकम्मे और विकृत होते हैं। ऊष्मीय गतिकीका वैज्ञानिक सिद्धान्त (Laws of Thermodynamics) कहता है कि 'ऊर्जा न तो पैदा होती है और न नष्ट होती है, यह केवल अपना रूप बदलती है।' भौतिक तत्त्वों और चेतनाके परमाणु-मिश्रणसे शरीरका ढाँचा, रूप, रंग, आकृति, प्रकाशादि बनते हैं। यदि किसीमें भौतिक या अचेतन तत्त्व ज्यादा है तो वह पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़ेके रूपमें जन्म ले सकता है। जैसे-जैसे उसमें सचेतन तत्त्व विकसित होते हैं, वैसे-वैसे वह रूपान्तरित हो जाता है। रूपान्तरणकी यह प्रक्रिया हिन्दू-धर्मशास्त्रोंके अनुसार ८४ लाख योनियोंसे गुजरती है। १९८७-८८ ई० में 'येल मेडिकल स्कूल' के स्नातक और 'माउण्ट सिनाई मेडिकल सेन्टर, मियामी' के अध्यक्ष डॉ० ब्रियन वीजने पुनर्जन्मकी वैदिक धारणाको अपने प्रयोगोंसे सिद्ध भी कर दिया और उनका उल्लेख अपनी 'मैनी लाइव्ज मैनी मास्टर्स' नामक पुस्तकमें विस्तारसे किया। इस विषयपर अबतक उनकी आधा दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनकी बिक्री लाखोंकी संख्यामें है। लगभग एक दशकपूर्व संयुक्त राज्य अमेरिकाके एक दूरदर्शन-कार्यक्रममें उन्होंने पूर्वजन्म जाननेके इच्छुक व्यक्तियोंको 'रिग्रेशन' (स्मृतिको धीरे-धीरे बहुत पीछे लौटाकर ले जानेकी विधि)-के द्वारा उनके पूर्वजन्मका परिचय कराकर सारे विश्वको चकित कर दिया।

डॉ० वीजने अपनी उपर्युक्त पुस्तकमें एक विद्यार्थीके स्वप्नका उल्लेख किया है, जिसकी पत्नीको चार माहका गर्भ था। उस कालमें गर्भमें भ्रूणके लिंगका पता नहीं लगाया जा सकता। जन्म लेनेवाली उसकी बेटी उसके स्वप्नमें आयी, उसने अपने पिछले जीवनके विषयमें बताया और यह भी कहा कि वह क्यों उसकी बेटीके ही रूपमें जन्म लेना चाहती है। इस विचित्र स्वप्नके विषयमें जैसे ही उसने अपनी पत्नीको जगाकर बताया तो वह बोली कि उसने भी अभी-अभी वैसा ही स्वप्न देखा है। वही नाम, वही पिछले जीवनका वर्णन और जन्म लेनेका वही उद्देश्य। बेटीके जन्मके बाद उसकी बतायी गयी पिछली जानकारी खोज करनेपर सही पायी गयी।

वस्तुतः हम कभी नहीं मरते। हमारी चेतना (Spirit)-का स्तर बदल जाता है, जिसे भगवद्गीता चोला बदलना कहती है (२। २२)। भ्रूण और शिशु-अवस्थामें यह चेतना बादके जीवनकी अपेक्षा अधिक सक्रिय रहती है, तभी तो अभिमन्युने चक्रव्यूह-भेदनकी विधि गर्भावस्थामें ही ग्रहण कर ली थी और नींद आ जानेके कारण बाहर निकलना नहीं सीख पाया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगोंको शंका होती है कि यदि पुनर्जन्म होता है और आत्मा बहती वायुद्वारा गन्ध साथ ले जानेकी भाँति संस्कारोंके प्रभावको साथ लेकर जाती है तो पिछले जन्मकी स्मृति कहाँ लुप्त हो जाती है? गीता कहती है—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

(२।१३)

जैसे जीवात्माकी इस देहमें बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीरकी भी प्राप्ति होती है; उस विषयमें धीर पुरुष मोहित नहीं होता।

शरीरके रूप और अवस्थामें परिवर्तन होता है, शरीरी (चेतना)-में नहीं। हम स्वयं किशोरावस्था आनेपर शैशवावस्था की, युवावस्था आनेपर किशोरावस्थाकी और वृद्धावस्था आनेपर युवावस्थाकी अधिकांश बातें भूल जाते हैं। स्मृतिकी भाँति भूलना (विस्मृति) भी हमारे मस्तिष्ककी एक स्वाभाविक क्रिया है। यदि हमको ईश्वरने भूलनेवाला मस्तिष्क न दिया होता तो जरा सोचिये, इस जगत्का क्या होता? इस जन्मके ही हमारे आपसी झगड़े नहीं सुलझते। एक रिक्शेवालेको अचानक परदेशमें एक शानदार कोठीको देखकर याद आ जाती कि अरे, वही तो पिछले जन्ममें इस कोठीका मालिक था। फिर तो वह तरह-तरहके प्रमाण देकर अगली पीढ़ी या उसमें रहनेवालोंका जीवन दूभर कर देता।

मनुष्यको मरना भी सीखना चाहिये। कबीरने ठीक ही कहा है कि जब मृत्यु अवश्यम्भावी है तो मनुष्यको मरना भी सीखना चाहिये। इस रहस्यको जाननेके बाद कि मैं इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि अथवा इनका संघात शरीर नहीं हूँ। इनसे पृथक् एक चेतन आत्मा हूँ। मुझे ईश्वरसे साक्षात्कारका अभ्यास अथवा मुक्ति आदि किसी उदात्त लक्ष्यकी ओर बढ़ना चाहिये।

यतो यतो धावति दैवचोदितं मनोविकारात्मकमाप पञ्चसु।
गुणेषु मायारचितेषु देह्यसौ प्रपद्यमानः सह तेन जायते॥

(श्रीमद्भा० १०।१।४२)

तात्पर्य है कि जीवका मन अनेक विकारोंका पुंज है। देहान्तके समय वह अनेक जन्मोंके संचित और प्रारब्ध कर्मोंकी वासनाओंके अधीन होकर मायाके द्वारा रचे हुए अनेक पांचभौतिक शरीरोंमेंसे जिस किसी शरीरके चिन्तनमें तल्लीन हो जाता है और मान बैठता है कि यह मैं हूँ, उसे वही शरीर ग्रहण करके जन्म लेना पड़ता है।

तस्मान्न कस्यचिद् द्रोहमाचरेत् स तथा विधः।
आत्मनः क्षेममन्विच्छन् द्रोग्धुर्वै परतो भयम्॥

(श्रीमद्भा० १०।१।४४)

अतः जो अपना भला चाहता है, उसे किसीके साथ द्वेष, अन्याय या विश्वासघात नहीं करना चाहिये। चूँकि जीव कर्मके अधीन हो चुका है, इसलिये जो किसीसे विश्वासघात करेगा, वह इस जीवनमें शत्रुसे और मृत्युके बादके जीवनमें भयसे आक्रान्त होकर ही अपना जीवन बितायेगा।

प्रश्न उठता है कि हम जीवनभर सांसारिक जोड़-तोड़में लगे रहे, इसलिये अब अन्त समयमें परलोक सुधारनेका क्या कोई उपाय है?

श्रीमद्भगवद्गीता कहती है—

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

(८।१२-१३)

यदि भक्तिभावसे युक्त व्यक्ति अन्तिम समयमें योगशक्तिद्वारा सभी इन्द्रियोंके द्वारोंको रोककर तथा मनको हृद्देशमें स्थिर करके और प्राणोंको भृकुटीके मध्यमें भलीभाँति स्थापित करके एक अक्षररूप ब्रह्म 'ओऽम्' का उच्चारण करता हुआ शरीर त्यागता है तो वह अवश्य परमगतिको प्राप्त होता है। ब्रह्ममें समाहित होकर उसकी आत्मा जन्म-मरणके चक्रसे सदाके लिये मुक्त हो जाती है।

ऐसी भगवद्वाणी होनेपर भी जीवका यह परमकर्तव्य है कि वह निरन्तर भगवन्नामका आश्रय लेता रहे। जीवनभरका यही संस्कार उसे अन्त समयमें भगवान्की स्मृति करा देगा और यह अन्तिम स्मृति ही उसके पारलौकिक परम कल्याणका हेतु बनेगी। अतः **'मामनुस्मर युद्ध्य च'** के सिद्धान्तको ही अपने जीवन और मृत्युका परमाधार मानना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रवाद

[अनश्वर परमेश्वरका अनश्वर-संविधान]

(श्रद्धेय पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

[गताङ्क ७ पृ०-सं० ७९३ से आगे]

शास्त्रविधानको न माननेवालेकी कैसी दुर्गति होती है, इस सम्बन्धमें यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है। यह स्वयं आँखों-देखी घटना श्रीएल०पी०फैरेल महोदयने लिखी है। ये भारतीय पश्चिमी कमानके प्रधान सेनापति रह चुके हैं। इस घटनाकी आगे भी जाँच स्वयं फैरेल महोदयने की है। यह घटना साप्ताहिक हिन्दुस्तानके सन् १९५६ ई०के एक अंकमें 'एक अंग्रेजद्वारा कुछ भारतीय घटनाओंका रोचक वृत्तान्त' शीर्षकसे लिखी गयी है। यह पुनर्जन्म-सम्बन्धी घटना यहाँ उद्धृत की जाती है—

सरदार भाईके पुनर्जन्मकी घटना

हिमालयकी यात्रा

१९४२ ई०की गर्मियोंमें जब कांग्रेस आजादीकी लड़ाई लड़ रही थी, मुझे उत्तरप्रदेशके एक राजासाहबने कुमायूँकी पहाड़ियोंमें घूमनेका आमन्त्रण दिया। यहाँ मैं पूरा शाकाहारी बन गया था। मैं हर एक साधु या फकीरसे मिलनेकी कोशिश करता था। मेरी निश्चय धारणा थी कि हिन्दुस्तानमें ऐसे व्यक्ति मौजूद हैं, जो मौतके रहस्यको सुलझा चुके हैं।

जूनके अन्तमें राजासाहब, महारानी साहिबा तथा नौकरोंके लावलश्कर और भारी सामानके साथ हम मोटरोंद्वारा पहाड़पर पहुँचे। यहाँ हमलोगोंने पहाड़ एवं चारों ओरके प्राकृतिक सौन्दर्यका भरपूर आनन्द लिया। इस तरह पन्द्रह दिन बीत गये। एक दिन नैनीतालसे सैनिटोरियमके रास्ते जाते हुए एक बहुत सुन्दर स्थान मिला। इसके चारों ओर चीड़, झाड़ तथा दूसरी वनस्पतियोंके सुन्दर पेड़ थे। बीचमें सर्वत्र फूल बिखरे हुए थे। रानी साहिबाको यह स्थान बहुत पसन्द आया। उन्होंने राजासाहबको इसी स्थानपर डेरा डलवानेको कहा। राजासाहब भी बहुत खुश थे। कुछ ही घण्टोंमें वहाँ डेरा लग गया। रात होनेपर हमलोगोंने बड़ी हँसी-खुशीसे खाना खाया और अर्धरात्रि व्यतीत होनेपर मैं बिस्तरपर लेट गया। कुछ ही देरमें गाढ़ी नींदमें सो गया।

महात्माका आदेश

अचानक अपने बिस्तरपर किसीकी उपस्थितिका मैंने अनुभव किया। उसने मेरा नाम भी लिया। मेरे माथेपर पसीना आ गया और मैं उठकर बिस्तरपर बैठ गया। अँधेरेमें प्रकाशकी दूधिया चमक छा गयी। चमक तो आ गयी, पर वहाँ कोई था नहीं। कुछ ही देरमें मैं फिर सो गया, पर थोड़ी ही देर बाद मुझे फिर वही अनुभूति हुई—'मिस्टर फैरेल! तुम्हारा तम्बू उसी जगह लगाया गया है, जिसकी मुझे जरूरत है। तुम अपने तम्बूके सामने उत्तर-पश्चिम चोटीपर आओ, मुझे तुमसे बात करनी है। मैं तुमसे मिलूँगा, अवश्य आओ।'

ये शब्द बिलकुल स्पष्ट थे। इन शब्दोंके बाद वह छायामूर्ति गायब हुई। मैं बिस्तरसे उठा। अपनी कलाईकी घड़ीपर चमकनेवाले अक्षरोंको देखा। उस समय रातके पौने चार बजे थे। सुबह होनेमें अभी देर थी। मैं फिर सोनेकी कोशिश करने लगा, किंतु कोई फायदा नहीं हुआ। मैं यह भी सोचने लगा कि यह कोई सपना मालूम पड़ रहा है, परंतु किसी आन्तरिक शक्तिने मुझे बाध्य किया कि मैं उसपर विश्वास करूँ। सुबह पाँच बजे कपड़े पहनकर मैं निर्दिष्ट रास्तेपर चल पड़ा। वह चोटी थी तो सामने ही, परंतु बहुत ऊँची थी, जिसपर पहुँचना सरल नहीं था। मैं ऐसी सीधी ऊँचाईकी चोटीपर, जिसका रास्ता बहुत सँकरा, खतरनाक तथा टूटा-फूटा था, चढ़नेके लिये तैयार न था, परंतु अनुभव करने लगा कि कोई शक्ति मुझे ले जा रही है।

साढ़े तीन घण्टोंकी कड़ी मेहनतके बाद मैं उस चोटीपर पहुँच गया। तबतक मैं थककर चूर हो गया था। चोटीपर पहुँचकर मैं सुस्ताने लगा। दो ही मिनट बीते होंगे कि अचानक एक आवाजने मेरा नाम पुकारते हुए कहा—'फैरेल! अपने जूते उतार दो और चोटीसे नीचे उतरो।' मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भय और उत्सुकताके बीच बँध गया, पर विवश था।

हड्डियोंके ढाँचे-जैसा दिखायी देनेवाला लम्बी सफेद दाढ़ी तथा जटाओंवाला एक विचित्र आदमी मेरे सामने खड़ा था। मैं उसके प्रभावसे सम्मोहित-सा हुआ भयग्रस्त हो गया। साधुने कहा—तुम्हारे राजाने उस स्थानपर तम्बू गड़वाये हैं, जहाँ एक लड़का आयेगा। उस लड़केको उसके पूर्वजन्मकी भुलायी गयी पूर्वस्थितिको बतलानेके लिये यहाँ बुलाया गया है—यह कहते हुए उसने अपने अस्थिपंजर-जैसे हाथको मेरे सिरपर फिराया, जिससे मुझे नयी शक्तिकी अनुभूति हुई। मेरे ऊपर इसका अधिक असर हुआ। मैं साधुके पवित्र पैरोंपर झुक गया और उनसे आग्रह करने लगा कि वे तम्बूमें चलें, जहाँ उनके इच्छानुसार सारी व्यवस्था कर दी जायगी।

बड़ी सरलतासे हम तम्बुओंमें लौट आये। राजासाहब मेरी गैरहाजिरीसे बड़े बेचैन थे। उन महात्माको बैठाकर मैं राजासाहबके पास गया और उन्हें सारी बात सुनायी। राजासाहब एवं रानी साहिबा दोनों ही महात्माके पास आये। दोनोंने उन्हें प्रणाम किया और बड़ी इज्जतसे उन्हें अपने डेरेपर ले गये। यहाँ रानी साहिबाने स्वयं फलोंसे उनका सत्कार किया। राजासाहबने अंगरक्षकोंको आदेश दिया कि उस लड़केका ख्याल रखें, जो पैदल उस स्थानपर महात्माजीसे मिलने आनेवाला है।

नवयुवकका आगमन

लगभग दो बजे दोपहरके समय १८ वर्षका एक सुन्दर लड़का उस स्थानपर पहुँचा। वह राजाके तम्बुओंको आश्चर्यसे निहार रहा था और इधर-उधर भटक रहा था। मैंने उसके पास जाकर उसे बतलाया कि उसे राजासाहब बुला रहे हैं। उस विस्मय-विमुग्ध लड़केने उत्तर दिया, 'शायद आपको धोखा हुआ है। मैं एक साधुकी खोजमें हूँ, किसी राजाकी नहीं।'

अन्तमें मेरे जोर देनेपर वह लड़का डरी हुई हालतमें मेरे साथ राजासाहबके पास आया। हम सभीने उसकी भोली-भाली आँखों तथा थके हुए प्यारे मुखड़ेको देखा और उसे बैठनेके लिये कहा। लड़का बैठ गया। परंतु तुरंत उसने पूछा, 'आपने मुझे क्यों बुलाया है?' राजासाहबने कहा—तुझे मैंने नहीं बल्कि उन चमत्कारी महात्माने बुलाया है, जो परदेके पीछे बैठे हैं। लड़का तुरंत खड़ा हो गया, और वह तम्बूके पासके कमरेमें चला गया, जहाँ वे महात्मा ध्यानमें मग्न थे। वह महात्माके चरणोंमें झुक गया और सिसकियाँ भरकर कहने लगा, 'महाराज! मैं आ गया हूँ, आज इक्कीसवाँ दिन है।'

'हाँ' महात्माने कहा—'मैं जानता हूँ और तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा हूँ। तुम विश्राम करो और उस दर्शनके लिये तैयार हो जाओ। पर याद रखना कि प्रकृतिके गुप्त रहस्योंको जाननेसे तुम जीवनभर अधिक बेचैन रहोगे। यदि तुम चाहो तो अभी भी वापस जा सकते हो। अन्यथा राततक प्रतीक्षा करो और मैं वचनके अनुसार कार्य करूँगा। लड़केने उत्तर दिया—'अवश्य महाराज, हर हालतमें मैं पूर्वजन्मकी बात जानना चाहूँगा।'

दूसरोंकी बात तो मैं नहीं कह सकता, परंतु मैं तो बड़ी बेचैनीसे रातकी प्रतीक्षा कर रहा था। मेरे लिये समय बिताना कठिन हो गया। अन्तमें रात हुई। सर्वत्र अँधेरा एवं निस्तब्धता छा गयी। उन महात्मा, उस लड़के, राजासाहब एवं रानी तथा मुझे छोड़कर दूसरे सभी उस तम्बूसे चले गये। वह लड़का तथा महात्माजी आमने-सामने बैठे थे। बीचमें महात्माजीके आदेशसे चन्दनकी समिधा तथा अन्य सामग्री प्रज्वलित हो रही थी। पूर्ण निस्तब्धता व्याप्त थी। उस समय हृदयकी धड़कन भी सुनायी पड़ती थी। अग्निके सुगन्धित धुएँसे वातावरण मोहक मालूम पड़ता था। उस समय हम सबको आदेश दिया गया था कि सभी अपनी आँखें बन्द कर लें और कुछ समयके लिये सर्वव्यापी परमात्मासे विनम्र प्रार्थना करें। महात्माजीने एक विचित्र भाषामें तीव्र प्रभावपूर्ण वाणीमें मन्त्र बोलना शुरू कर दिया। बीच-बीचमें वे सामग्रीसे आहुतियाँ भी देते गये। इस तरहसे मन्त्रोंका पाठ दो घण्टेतक चलता रहा। अब महात्मा ध्यानावस्थित मुद्रामें आ गये। उनकी सब हलचल बन्द हो गयी। वे एक बुत-से दिखायी देने लगे।

बारह वर्षतक कोई चर्चा नहीं

उस लड़के और रानी साहिबाके चेहरे भयसे पीले पड़ने लगे। राजासाहब और मैं भी अपने भयको दबाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्सुक तथा उत्कण्ठित थे। हममेंसे कोई भी बात करने या इशारातक करनेकी हिम्मत नहीं कर रहा था। अचानक ही उन महात्माने अपनी लाल हुई, भीषण, कभी न भुलायी जा सकनेवाली आँखोंको खोलकर उस लड़केको हुक्म दिया— हृदयमें भगवान् तथा अपनी इच्छापर विश्वास रखकर तुम मेरी आँखोंकी ओर देखो। महात्माने हमसे कहा—'भगवान्‌की कृपासे तुम सब भी सब कुछ देखोगे, परंतु इस घटनाकी चर्चा कोई भी पूरे बारह वर्षोंतक न करे। अब देखो।'

एक अपूर्व ज्योति

शुरूमें बड़ी कठिनाईसे वह लड़का महात्माजीकी पैनी दृष्टिका सामना कर सका। वह लड़खड़ा रहा था, परंतु वह सम्मोहनमन्त्रसे खिंचा हुआ था। अपना मुँह फेर भी नहीं सकता था। लड़केकी ही क्या बात, हमलोग भी पूरा होशो-हवास कायम रखनेके बावजूद चक्कर तथा नींदका अनुभव कर रहे थे। कुछ समय बाद महात्माजी की आँखोंसे लड़केकी आँखोंकी ओर एक विचित्र प्रकारकी चकाचौंध करनेवाली चमक जाती दिखायी दी। मिनट घण्टोंकी तरह लम्बे हो गये। इसके बाद हमलोगोंकी ओर भी वही रहस्यपूर्ण रोशनी तीव्र तीरोंकी तरह चमकके साथ केन्द्रित हो गयी। मैं अनुभव करने लगा कि मानो मेरी भी इन्द्रियाँ बेकार हो गयीं और कोई शक्ति मुझे एवं मेरी समस्त इन्द्रियोंको प्रभावित करती जा रही है। मेरे लिये यह एक भीषण क्षण था। अर्धचेतनावस्थामें मैं भयका अनुभव करने लगा। ऐसा लगता था कि कोई अज्ञात शक्ति मेरी आँखों, मन, हृदय और मेरे शरीरकी प्रत्येक नस-नाड़ीपर भारी आघातके साथ व्याप्त होती जा रही है। मैं अनुभव करने लगा कि मेरा अस्तित्व ही शून्य हो गया है। मुझे चारों ओर केवल कुछ आवाज-सी प्रतीत होने लगी। एक प्रकारकी सुनहरी, भली असर करनेवाली अव्यक्त ज्योति दिखायी देने लगी। मैं लड़के, राजासाहब एवं रानी साहिबाको उनके शरीरसे पृथक् देखने लगा। हमारे शरीर बुतोंकी तरह सीधे तथा गतिशून्य हो गये। उन महात्माकी मूर्तिसे एक चमकता हुआ ज्योतिपुंज आलोकित होने लगा।

पूर्वजन्मका चलचित्र

उस समय वायु-सी तेज गतिसे या उससे भी तेज गतिसे हमने अनुभव किया कि वह लड़का आगे-आगे उछलता और बादमें हम सब। उस धुँधले और गर्दभरे वातावरणमें एक विचित्र आवाज सुनायी पड़ी—सरदार! सरदार! लड़केने ऐसे देखा जैसे किसी ज्ञात व्यक्तिने उसका नाम लेकर पुकारा हो। उसने अपना मुँह खोला, परंतु उसका छायास्वरूपस्थित शरीर स्थिर ही खड़ा रहा, उससे कोई आवाज नहीं निकली। हम सबको ऐसा प्रतीत हुआ कि परदेपर कोई चलचित्र देख रहे हों। एक बच्चा आवाजपर घुटनोंके बल चलता हुआ आया। वहीं एक अधेड़ व्यक्ति पगड़ी लगाये तथा लम्बा कोट पहने वहाँ आया और उसने बच्चेको गोदमें उठा लिया। दृश्य बदल गया। एक औरत उस बच्चेको प्यार कर रही थी। बच्चा दूसरे साथियोंके साथ खेल रहा था, उस लड़केके लिये ये सभी परिचित चेहरे थे। उसने उन्हें पुकारनेकी कोशिश की, किंतु सब व्यर्थ रहा। अगले दृश्यमें वह विद्यालयमें एक विद्यार्थीके रूपमें आया, जिसे उसके अध्यापक पढ़ा रहे थे। बादमें एक डिग्री कॉलेजका दृश्य आया, जहाँ वह अपनी श्रेणीमें पढ़ता था। दृश्य बदला, यह लड़का जिसे सरदार कहा जाता था। अपनी माता और दूसरे व्यक्तियोंके साथ रोता दिखायी पड़ा। उसके सामने उसके पिताका मृत शरीर फर्शपर पड़ा था।

सरदार और सुनीलकी कहानी

दृश्य बदला। सरदार भाई अपने पिताकी कपड़ोंकी दूकानका मालिक बना। वह कपड़ेकी दूकान अहमदाबादमें दिल्ली दरवाजेके पास थी। इस दूकानमें कई मुनीम काम करते थे। उसका छोटा-सा सुन्दर मकान भी दिखायी पड़ा, जहाँ वह भोजन कर रहा था। उसकी माँ पंखा झल रही थी। एक दिन किसी व्यापारिक मामलेपर वह दो घोड़ोंकी एक बग्घीमें अपने पिताके एक मित्र, कपड़ेकी बड़ी मिलके मालिक श्रीतारामोहन कौलसे मिलने गया। परिचय प्राप्त करते ही उसका बड़ा सत्कार किया गया। उसके सामने कश्मीरी मिल मालिककी लम्बी-पतली सुन्दर लड़की अपनी माँके साथ आयी। जब उस कमलनयनीने अपनी आँखें उस लड़केकी ओर घुमायीं तो लड़का एक क्षण चौंक गया। फिर उसने अपनेपर काबू पा लिया। उस बूढ़ी औरतने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारभरे लहजेमें कहा—सरदार भाई! आज तुम अच्छे-खासे जवान हो गये हो। जब तुम नन्हे बालक थे तब मैंने तुम्हें देखा था। तब तुम बहुत शरारती थे। तुम्हें देखकर मुझे बहुत खुशी हुई। समय-समयपर यहाँ आया करो। इसी प्रकार सारा दिन बीत गया। वह उस लड़कीमें जिसका नाम सुनील कौल था, दिलचस्पी लेने लगा और वह लड़की उसमें। रात होनेपर वह वापस आया। सुनीलने दरवाजेपर आकर उसे विदाई दी। घर आकर उसने उस लड़कीके प्रति अपनी गुप्त स्निग्ध भावनाओंके अतिरिक्त दूसरी सब बातें माँसे बतायीं। इसके बाद वह सप्ताहमें एक दिन वहाँ आने लगा और उसकी भावनाएँ प्रेममें बदल गयीं।

एक दिन शामके समय सरदार भाई की दूकानपर एक बन्द गाड़ी आयी, गाड़ीवालेने उसे सन्देश दिया। सरदारने गाड़ीके अन्दर झाँका, सुनील अन्दर थी। उसने इसे साथ चलनेको कहा। यह दूकान छोड़कर गाड़ीमें बैठ गया। गाड़ी चल पड़ी। इस प्रकार वे पहली बार एक साथ बैठे।

उनकी अनन्त प्यारभरी बातोंका सिलसिला चलने लगा। वहाँ बड़ी हिचकिचाहट एवं अनिच्छासे सरदार भाईने अपना प्रेम प्रकट किया। इसपर बहुत शर्मीली चितवनसे नीचे देखते हुए सुनीलने अपना सिर उसके कन्धेपर रख दिया। जिसका अर्थ था, उसका प्यार स्वीकार कर लिया गया। सारा संसार उन्हें अपनी आँखोंके सामने नाचता दिखायी देने लगा। समय बीतने लगा।

किसी तरह सरदारकी माँको दोनोंके प्रेमकी बात मालूम पड़ गयी। उसने बड़े प्यारसे अपने इकलौते प्यारे पुत्रको बतलाया कि उसका सुनीलके साथ विवाह होना असम्भव है। सुनील एक कश्मीरी लड़की और कौल जातिकी है जबकि स्वयं वह एक पारसी है। इस बाधाको हटाना बड़ा कठिन है। लड़कीके पिता इस प्रस्तावको भी स्वीकार नहीं करेंगे।

सरदार भाईने जब अपने एक पुराने मुनीमके मार्फत यह प्रस्ताव सुनीलके माता-पिताके पास पहुँचाया तो माँकी धारणा सच सिद्ध हुई। सुनीलके पिता तारामोहन कौल परमेश्वरके अनश्वर शासनविधानके एक जानकार थे। उन्होंने इस प्रस्तावको ठुकरा दिया। इस प्रकारकी चर्चा भविष्यमें भी करनेसे इनकार कर दिया। सब प्रयत्न विफल गये और उन दोनोंकी सभी आशाएँ एवं योजनाएँ अकारथ गयीं। इतनेपर भी वे दोनों उस बूढ़े गाड़ीवानकी मददसे गाड़ीमें मिलते रहे, परंतु इस प्रकारकी मुलाकातें सिसकियोंसे शुरू होतीं और आँसुओंमें समाप्त होतीं। सुनीलके माता-पिता अपनी लड़कीके विवाहके लिये कोशिश करने लगे। सुनील और सरदार दोनोंकी आँखोंके सामने अँधेरा दीखने लगा। एक रात सुनील अकेले ही अपने बिस्तरपर आँसू बहा रही थी कि उसकी माँने उसकी सिसकियाँ सुन लीं। इकलौती बेटीके आँसुओंसे उसका दिल पिघल गया। अन्तमें माताकी जानकारीमें सरदार भाई और सुनीलने कोयम्बटूरमें सिविल मैरिज कर ली।

दो वर्षोंतक कोयम्बटूरमें रहनेके बाद दोनों अहमदाबाद लौटे। तबतक मामला ठंडा पड़ चुका था। दोनों शान्तिसे रहने लगे। इन दोनोंको एक लड़का हुआ, जिसका नाम मोना भाई कौल था। सरदार भाईकी कोशिशसे सुनीलने कैम्ब्रिज परीक्षा उत्तीर्ण कर ली और वह कॉलेजकी तैयारी करने लगी।

सरदार भाईका शरीरान्त

एक दिन सरदार भाई अपने व्यापारके सिलसिलेमें एक छोटे कस्बेमें गया। वहाँ काम खत्मकर लौटते समय उसने एक दूकानमें लटकता हुआ फ्रेंच कपड़ा अपनी पत्नीके लिये पसन्द किया। वह इस कपड़ेके लिये यह सोचता जा रहा था कि इस सुन्दर कपड़ेको पहनकर उसकी पत्नी कितनी सुन्दर लगेगी। तभी एक चौराहेपर सामानसे लदा भारी ट्रक उसकी गाड़ीसे टकराया, उसकी आँखोंके सामने बिजली-सी कौंध गयी। उसने भारी हृदयसे पुकारा—'सुनील'! दुर्घटना भीषण हुई थी, उसे नाजुक हालतमें पासके एक अस्पतालमें ले जाया गया। उसकी जेबसे मिली एक डायरीसे उसके पतेपर आदमी भेजा गया। वह बेहोशीमें 'सुनील-सुनील' चिल्लाता रहा। उसकी हालत बिगड़ती गयी। डॉक्टर भी निराश हो गया। उसने कहा कि यदि सुनील होती तो शायद बच जाता। क्रूर समय किसीकी प्रतीक्षा नहीं करता। अन्दरकी आत्मा छटपटायी, बुझते दियेकी तरह उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करुण हृदयद्रावक आवाजमें कहा—'सुनील! तुम कहाँ हो? आ जाओ।'

इस आवाजके साथ उसकी आवाज मध्यम पड़ गयी और उसका शरीर गतिहीन हो गया। यह उसका अपूर्ण प्यार था। यह उसकी असामयिक मृत्यु थी। उस मृत शरीरके साथ वह फ्रेंच कपड़ा भी पड़ा हुआ था। एक घण्टे बाद एक मोटरगाड़ी आनेकी आवाज आयी और सुनील वहाँ आ पहुँची। कमरेमें घुसते ही वह चीख उठी और उस मृत शरीरपर निश्चेष्ट होकर गिर पड़ी।

उस तम्बूमें दिल हिलानेवाली करुण आवाजसे 'सुनील' शब्द गूँज उठा। उस लड़केकी आवाजसे हम एक संसारसे दूसरे संसारमें आ गये। रानी साहिबा एवं लड़केकी आँखोंसे आँसुओंकी धाराएँ बहने लगीं। लड़का महात्माके चरणोंपर लोट गया और आँसू बहा-बहाकर कहने लगा—'महाराज, मुझे अपने पहले जन्मकी सब बातें याद आ गयीं, परंतु उस समय सुनीलको क्या हुआ था? यदि वह जीवित है तो मैं उसे कैसे देख सकता हूँ? मैं उसे कैसे ढूँढूँ?'

उस बालकको ढाढस देते हुए महात्माने कहा—तुम्हारी मृत्युके चार साल बादतक सुनील दुर्घटनासे बहुत मानसिक असन्तुलनके साथ जीती रही। उसकी मृत्युसे चारमाह पहले तुम्हारा लड़का मोना भाई उसे छोड़ गया था। अब सुनीलने एक लड़कीके रूपमें पुनर्जन्म पाया है। उसका पाँचवाँ साल चल रहा है। सात साल बाद, जब तुम्हारा किसी दूसरी लड़कीसे विवाह हो जायगा, तुम उसे पहचान लोगे, परंतु तुम्हें और यहाँ मौजूद प्रत्येक व्यक्तिको याद रखना होगा कि इन घटनाओंको पूरे बारह वर्षतक किसीको न बताया जाय।

उस भग्नहृदय बालकने कहा—मैं अपनी सुनीलको उसके नये स्वरूपमें कब और कैसे पहचान सकूँगा?

सुनील नये रूपमें

'मेरी ओर फिर देखो।' महात्माने कहा और उस अँधेरेमें लहँगा और दुपट्टा ओढ़े सुन्दर आकृतिवाली एक लड़की दिखायी दी। इसके साथ कृष्णके वेषमें एक सुन्दर लड़का था। सरदार भाईको देखकर सुनीलके ओठोंपर भी मुसकराहट छा गयी।

वह बालक फिर चिल्लाया, 'कृपाकर मुझे सुनीलका पता बताइये। मैं जिन्दा नहीं रह सकता। उसके बिना।'

महात्माने जवाब दिया—'यह काफी है। तुम उसे इसी वेषमें देखोगे और सरलतासे पहचान जाओगे, परंतु सात साल बाद, उसके पहले नहीं। जो कुछ देखा है, वह योगी लोग भी नहीं देख सकते। यह भगवान्‌की कृपा है।'

इन शब्दोंके साथ आवाज मध्यम पड़ गयी। सारी ज्योति बन्द हो गयी। सर्वत्र अँधेरा छा गया। महात्मा अन्तर्धान हो चुके थे और हम सब अचम्भेमें पड़े हुए थे। रानी साहिबा एक उदार महिला थीं। उन्होंने उस बालकको अपने पुत्रके समान छातीसे लगाकर उसे स्थायी रूपसे अपने पास रहनेके लिये कहा। उन्होंने कहा कि देशकी सबसे सुन्दर लड़कीसे उसकी शादी करा देंगी। उसे कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये। परंतु लड़का रोता रहा। उसने कहा—'मैं केवल सुनीलको ही चाहता हूँ।' अन्तमें रोती हुई रानीने उस लड़केको अपनी गाड़ीसे उसके नैनीतालस्थित ठिकानेपर भिजवा दिया।

इस घटनासे मुझे भारतीय दर्शन, योग तथा पुनर्जन्मकी सच्चाईका विश्वास हो गया। मुझे मालूम पड़ गया कि शरीर और आत्मा दो अलग चीजें हैं। वह जन्म-मरणके चक्करसे मुक्ति पानेके लिये—शुद्ध होनेके लिये चोलेपर चोला बदलती जाती है।

निष्कर्ष

ऊपरकी उद्धृत सत्य घटनासे पता चलता है कि सुनील एक कश्मीरी ब्राह्मणकन्या थी और सरदार भाई पारसी सज्जन थे। भगवान्‌ने ब्राह्मणकन्याके लिये जो व्यवस्था दी है, वह यह है कि एक ब्राह्मणकन्या एक ब्राह्मण पुरुषसे ही विवाह करे, न कि क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि पुरुषसे। यदि वह अन्यसे विवाह करेगी तो वह वैध विवाह नहीं है। उससे उत्पन्न सन्तान प्रतिलोम-संकर हुई। यह तो हुई सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की बनायी व्यवस्था, किंतु अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान् मनुष्यने भगवान्‌की इस व्यवस्थाके विरुद्ध सिविल मैरेजका विधान बनाया है। इस विधानसे कोई युवक और कोई युवती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह तो कर सकते हैं, किंतु पातिव्रत-धर्मका जो अत्यधिक महत्त्व है, वह सम्भव ही न हो पायेगा। पुरुषको जो शक्तियाँ योगके दुरूह पथसे प्राप्त हो सकती हैं, वे सब नारीको केवल अपने पतिमें दृढ़ प्रेमसे ही मिल जाती हैं—'**योगेन शक्तिः प्रभवेन्नराणां पातिव्रतेनापि कुलांगनानाम्।**' पतिसे प्रेम करना स्वाभाविक है। अतः पातिव्रतधर्म नारीके लिये अत्यन्त सहज साधन है; स्वार्थमें परमार्थ है। सुनील भी सरदार भाईपर स्वाभाविक रूपसे अनुराग रखती थी। शाण्डिली और सावित्रीने जितना प्रेम अपने पतिको प्रदान किया था, सुनीलका उतना ही अनुराग सरदार भाईके प्रति था। 'सिसकियोंसे शुरू होनेवाली और आँसुओंमें समाप्त होनेवाली' उसकी विरह-भावना जीवनमें कभी शिथिल न हो पायी। सरदार भाईकी मृत्युके बाद मानसिक असन्तुलनने कभी उसका साथ न छोड़ा। सरदार भाईकी चिन्तामें वह घुल-घुलकर मर भी गयी। इस तरह सुनीलका सरदार भाईमें कम अनुराग न था। इसका परिणाम होना चाहिये था कि अगले जन्ममें भी सुनीलको सरदार भाई ही मिलते; क्योंकि अगले जन्ममें पतिव्रता नारीको उसका पति ही पतिरूपमें मिलता है, किंतु ऐसा हुआ ही नहीं। सुनील सरदार भाईको न पा सकी। दोनोंका विवाह अगले जन्ममें दूसरोंसे हुआ; क्योंकि भगवान्‌के विधानके अनुरूप पहली बार दोनोंका विवाह ही नहीं था। जब सरदार भाईको वास्तविक पति ही नहीं माना जा सका, तब सुनीलका पातिव्रत धर्मका रूप कैसे ले पाता? अनजानमें सुनीलसे प्रेमके नामपर 'मोह' का वरण हो गया था।

प्रेमविवाहको शास्त्र भी स्वीकार करता है, किंतु वह वैध हो। प्रेमके नामपर मोहसांकर्यको स्रष्टा नहीं चाहता।

भगवान्‌ने स्वर्गलोकके निवासियोंके लिये व्यवस्था दी है कि पृथ्वीपर यदि पतिव्रता नारी मर जाय तो देवता उस पतिव्रता नारी (और पतिके मरनेपर उसे भी दोनोंको) देवलोकमें पहुँचायें और उन्हें स्वर्गका सुख प्रदान करें। पातिव्रतधर्म एक महान् धर्म है। अतः उससे उत्पन्न पुण्यराशि भी इतनी बड़ी होती है कि प्रलयकालतक इन दोनोंको स्वर्गके सुखका भोग कराया जाय और प्रलय हो जानेके बाद सृष्टि होनेपर पतिव्रताके पतिको सार्वभौम राजा बनायें और उसकी पत्नीको उसकी साम्राज्ञी बनायें। पुनः मृत्युके बाद वे दोनों स्वर्गके राजा-रानी होते हैं। इस प्रकार सौ जन्मोंके बाद अन्तमें दोनों मुक्त हो जाते हैं, जो मानवधर्मका मुख्य लक्ष्य है—

स्वर्गं भुनक्ति तावच्च यावदाभूतसम्प्लवम्।
स्वर्गाद् भ्रष्टो भवेद्वास्याः सार्वभौमो नृपः पतिः॥
अस्यैव महिषी भूत्वा सुखं विन्देदनन्तरम्।
पुनः पुनः स्वर्गराज्यं तस्य तस्या न संशयः॥
एवं जन्मशतं प्राप्य अन्ते मोक्षो भवेद् ध्रुवम्॥

(पद्मपुराण सृ० खं० ५२।५३-५५)

[क्रमशः]

'तेरो नाम सुमंगलदायक'

(श्रीजगदीशनारायणजी मिश्र)

तेरो नाम सुमंगलदायक।
जन्मन के अघ-ओघ नसावत, शुभ-सौभाग्य प्रदायक॥
पतितन को उदार सहयोगी, अधमन को उद्धारक।
निर्बल को निर्भयतादायक, दीनन परम सहायक॥
तोसे बड़ी नाम की महिमा, कामधेनु-सी समरथ।
मन-वांछित फल तत्क्षण देवै, यश, समृद्धि, सुखदायक॥
तेरे नाम की नौका पै चढ़, तरे करोड़न पापी।
अन्त समय दुर्लभ गति पाई, बने सर्व विधि लायक॥
तेरे नाम पै प्रबल भरोसो, नाम ही मेरो सहारो।
चरण-शरण प्रभु! मोहि लीजिये, मेरे भाग्य बिधायक॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविवर तुलसीदास एवं सन्त एकनाथका काव्य-सौष्ठव

(डॉ० श्रीशरद्चन्द्रजी पेंढारकर)

हिन्दी-काव्याकाशके सूर्य भक्तप्रवर तुलसीदास तथा मराठी-रामकाव्यके प्रणेता सन्त एकनाथके जीवनकी प्रमुख घटनाओंकी ओर विहंगम दृष्टि डालें तो अनेक घटनाओंमें विलक्षण साम्य दिखायी देता है। दोनों सन्त कवि समकालीन थे और दोनों कवियोंके इष्टदेव दशरथनन्दन श्रीराम हैं और इसी कारण उन्होंने अपनी-अपनी प्रतिभा तथा अभिरुचिके अनुसार पावन रामगाथाको काव्यबद्ध करके रामभक्तिका प्रसार किया।

माना जाता है कि भगवान् विष्णुने तुलसीदासजीको रघुनन्दन रामके रूपमें दर्शन दिये, जबकि एकनाथजीको नन्दनन्दन श्रीकृष्णके रूपमें दिये। तुलसीदासजी अपने परम आराध्य रघुवीरके लिये चन्दन घिसते हैं—

चित्रकूट के घाट पर भइ संतन की भीर।
तुलसिदास चंदन घिसें तिलक देत रघुबीर॥

दूसरी ओर चन्दन घिसनेका काम स्वयं श्रीकृष्ण (माधव) करते हैं—

श्रीएकनाथ सदनी माधवजी सर्व काम हे करितो।
स्व करे चन्दन घाशी गंगेचे पाणी कावडी भरितो॥

बताया जाता है कि श्रीकृष्णने 'श्रीखण्ड्या' के नामसे कुछ समयतक एकनाथजीके घरमें वास किया था, जो कांवड़से गंगाजल लानेके साथ-साथ उनके कुछ कामोंमें भी हाथ बँटाते थे।

उभय कवि समकालीन तो थे ही। श्रीएकनाथजीने शक १४९६ में रुक्मिणी-स्वयंवरकी रचना की। उस समय तुलसीदासजी श्रीरामचरितमानसका प्रणयन कर रहे थे। विद्वज्जनोंका मानना है कि दोनों महाकवियोंका गंगा-तटपर सम्मिलन निश्चय ही हुआ होगा और तुलसीदासजीसे प्रेरित होकर एकनाथजीने बादमें रामकथाको अपने काव्यका प्रतिपाद्य विषय बनाया होगा।

यह भी एक तथ्य है कि उस युगमें देववाणी संस्कृतकी जो धारा प्रवाहित हो रही थी, उसमें न बहकर कविद्वयने जनभाषा—क्रमशः हिन्दी तथा मराठीको अपने-अपने काव्यका माध्यम बनाया। श्रीरामचरितमानस और भावार्थरामायण क्रमशः हिन्दी और मराठीके रामविषयक आद्यग्रन्थ सिद्ध हुए। इसके बाद तो इन भाषाओंमें रामकाव्य लिखनेकी परम्परा चल पड़ी। दोनों ही कवियोंने अपनी काव्यकृतियोंके लिये प्रमुखरूपसे वाल्मीकिरामायण, हनुमन्नाटक, अध्यात्मरामायण आदिको आधार बनाया।

स्वभाषा-अभिमान तथा अन्य भाषाओंके प्रति आदर

उभय कवियोंने यद्यपि क्षेत्रीय जनभाषाओंमें काव्य-रचना की तथापि संस्कृतके प्रति उन्होंने किंचिन्मात्र भी दुराग्रह न रखा। उन्होंने संस्कृतके काव्यग्रन्थों, पुराणों, नाटकों आदिका अनुशीलनकर एवं उनके उत्तम भावों तथा अंशोंको ज्यों-का-त्यों ग्रहणकर काव्य-रचना की और इसमें जरा भी संकोच महसूस न किया। महाकविद्वयने अपनी-अपनी महान् कृतियोंको स्वभाषामें लिखनेका संकल्प लिया। परिणामतः ये ग्रन्थ जनसाधारणके लिये सुलभ हो गये और घर-घरमें उनका पारायण किया जाने लगा।

यह भी एक तथ्य है कि इन कवियोंद्वारा देववाणीमें काव्य न लिखनेकी बात जब उन क्षेत्रोंके संस्कृतके अभिमानी पण्डितोंको मालूम हुई तो उन्होंने उनका उपहास किया और उनपर आक्षेप तथा प्रहार करना शुरू किया, लेकिन ये अपने निश्चयपर डटे रहे और अन्ततः परिणाम यह हुआ कि ग्रन्थोंको पढ़नेके बाद दम्भी पण्डितोंका मिथ्याभिमान जाता रहा। कहा जाता है कि एक पण्डितने संस्कृतमें काव्य न लिखनेके लिये जब गोस्वामीजीको टोका तो उन्होंने इस प्रकार दो टूक उत्तर दिया—

मनि भाजन मधु पारई पूरन अमी निहारि।
का छाँड़िअ का संग्रहिअ कहहु बिबेक बिचारि॥

(दोहावली दो० ३५१)

यह भी कहा जाता है कि जब काशीके पण्डितोंने तुलसीदासजीको घेरकर उनकी हँसी उड़ायी तो उन्होंने केवल इतना ही कहा—'***भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसें नहिं खोरी॥***' यह भी कहा जाता है कि घनश्याम शुक्ल नामक एक पण्डितने काव्य-रचनाके लिये किस भाषाका प्रयोग किया जाय, इस सम्बन्धमें उनसे परामर्श लेना चाहा तो उन्होंने कहा—

का भाषा का संसकृत प्रेम चाहिऐ साँच।
काम जु आवै कामरी का लै करिअ कुमाच॥

(दोहावली दो० ५७२)

वेदान्तके पण्डित आचार्य श्रीमधुसूदन सरस्वतीने गोस्वामीजीका पक्ष लेकर उनकी निर्भीकताकी दाद दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उनकी निम्न शब्दोंमें प्रशंसा की—

आनन्दकानने ह्यस्मिञ्जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कवितामञ्जरी भाति रामभ्रमरभूषिता॥

तुलसीदासजीके मनमें संस्कृतके प्रति अत्यन्त आदर था और वे संस्कृतके अच्छे ज्ञाता थे। यह बात उनके द्वारा संस्कृतग्रन्थोंके उत्तम श्लोकों, उपमाओं आदिका हिन्दीमें रूपान्तरकर उन्हें अपने ग्रन्थमें यथोचित स्थान देनेसे स्पष्ट हो जाती है। ***'जब जब होइ धरम कै हानी'***—बालकाण्डकी यह चौपाई वस्तुतः गीता (४।७) **'यदा यदा हि धर्मस्य'** का हिन्दी-अनुवाद ही है। मानसके प्रत्येक काण्डके प्रारम्भमें मंगलाचरण तथा देवताओंकी स्तुतियोंके लिये संस्कृतका प्रयोग उनके द्वारा देववाणीके प्रति सम्मान ही व्यक्त करता है।

उस युगमें संस्कृतके अलावा फारसीका प्रचलन भी बड़े पैमानेपर था। फारसी तो उस समय राजकीय कामकाजकी भाषा ही थी। इस कारण फारसी-उर्दूके प्रचलित शब्दोंका प्रयोग करनेमें उन्होंने कोई संकोच नहीं किया। यही कारण है कि 'गरीब निवाजू', 'साहिब', 'गुनाह', 'लायक', 'फौज', 'हवाले'-जैसे उर्दू-फारसीके शब्दोंका प्रयोग उनके ग्रन्थोंमें दिखायी देता है। तथापि इससे उन्होंने स्वभाषाको किंचित् भी दूषित नहीं होने दिया।

एकनाथजीका स्वभाषा तथा अन्य भाषाओं-सम्बन्धी दृष्टिकोण

एकनाथजी प्रतिष्ठान नगर (पैठन)-के निवासी थे। यह नगर उस कालमें 'संस्कृतका माहेरघर' (संस्कारधानी) कहलाता था। संस्कृत-शिक्षाका एक प्रमुख केन्द्र होनेके कारण इसका उल्लेख 'दक्षिणकी काशी' के रूपमें किया जाता था। उस युगमें तथाकथित पण्डित मराठीको अशिक्षित तथा गँवारू लोगोंकी भाषा कहकर उसमें लिखना लेखकोंका अधःपतन मानते थे। एकनाथजीने जब संस्कृतेतर मराठी भाषामें काव्य लिखना शुरू किया तो संस्कृतके कट्टर पण्डितोंद्वारा उनका विरोध और उपहास किया गया। उनपर जब आक्षेप और प्रहार किये जाने लगे तो प्रत्युत्तरमें उन्होंने मराठीमें लिखा 'भागवत' ग्रन्थ पढ़कर सुनाना शुरू किया। कहा जाता है कि इस ग्रन्थसे पण्डित इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने जुलूस निकालकर ग्रन्थके उत्कृष्ट होनके बाबत अपनी मुहर लगा दी।

श्रीएकनाथजी संस्कृतके पण्डित थे। संस्कृतके प्रति उनका दुराग्रह नहीं था। इस कारण 'भावार्थरामायण' के मंगलाचरणमें संस्कृतके श्लोक दिखायी देते हैं। प्रत्येक अध्यायका समापन उन्होंने संस्कृतमें ही किया है तथापि 'मायबोली' (मातृभाषा) मराठीके प्रति उनका कहीं अधिक प्रेम था। उनकी यह धारणा बन गयी थी कि मराठीकी उन्नति संस्कृतको महत्त्व न देनेसे ही हो सकती है। इसलिये उन्होंने धार्मिक-आध्यात्मिक ग्रन्थोंके लिये रूढ़ संस्कृतकी उपेक्षाकर स्वभाषाका चयन किया। मराठीके प्रति बड़ा अभिमान होनेके कारण ही उन्होंने कहा—

'माझी मराठी भाषा चौखड़ी। परब्रह्मी फळली गाड़ी॥'

(एकनाथी भागवत २९।१०३४)

अर्थात् मराठी भाषा किसी भी उत्तम भावको व्यक्त करनेमें सक्षम है और परब्रह्मरूपी फलसे वह रसयुक्त है। मराठी भाषाके प्रति उनका रुझान 'भागवत' के अनेक स्थलोंपर उजागर हो जाता है।

सन्त एकनाथका भक्तिमार्ग जन-सामान्यके लिये था और जन-सामान्यको संस्कृतका बिलकुल ज्ञान न था। इसलिये संस्कृतके ज्ञाता होते हुए भी उन्हें जनमानसके लिये भक्तिका प्रचार सरल-सुबोध मराठीमें करना इष्ट प्रतीत हुआ। अध्यात्मका पाठ प्रेमपूर्वक पढ़ाकर उसके प्रति रुचि उत्पन्न करना वे 'कवित्व-धर्म' मानते थे—

मुख्यत्वे ग्रंथीचें राखावे प्रेम। प्रतिपदीं प्रतिपादावे परब्रह्म॥
हाचि कवित्वाचा कवित्वधर्म। श्रोते सप्रेम होती सुखी॥

(भा०रा०, बाल० १४।८४)

वे तो यह मानकर चलते हैं कि सारी भाषाएँ भगवान्‌द्वारा निर्मित हैं, इसलिये देवताका स्तवन जिस किसी भी भाषामें किया जाय, वह उसे प्राप्त हो जायगा (एकनाथी अभंगगाथा २७)।

तुलसीदासजीके समान श्रीनाथजीने भी संस्कृत-ग्रन्थोंके सारभूत अंशोंको ग्रहणकर उन्हें अपनी काव्य-रचनामें यथोचित स्थान दिया। उस समय महाराष्ट्रमें प्रचलित फारसी शब्दोंका प्रयोग करना उन्हें उचित प्रतीत हुआ। उनके ग्रन्थोंमें उर्दू-फारसीके कुंवारी, मुण्डन, टका आदि शब्द प्रयुक्त हुए दिखायी देते हैं। श्रीएकनाथजीद्वारा लिखित 'हिन्दू-तुर्क-संवाद' और 'अर्जदस्त' में फारसी शब्द बहुतायत-से दिखायी देते हैं। स्पष्ट है कि मराठी तथा संस्कृतके अलावा फारसीका भी उन्हें अच्छा-खासा ज्ञान रहा होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौकी उपयोगिताके विविध आयाम

(डॉ० श्रीकरुणाशंकरजी दुबे)

भारतीय संस्कृतिमें पूज्यता एवं श्रेष्ठताकी दृष्टिसे गाय सर्वोत्कृष्ट प्राणी है। यही कारण है कि भगवान्‌की दिनचर्यामें गाय विशेषरूपसे समाहित रही। भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं '*भोर भये गइअन के पाछे*' कहकर गायके साथ अपने अमिट सम्बन्धको स्थापित किया है। ऐतरेय ब्राह्मणके अनुसार गायके दूधको जलके स्वादसे अधिक सुस्वादु इन्द्रके प्रयाससे ही बनाया गया। गायोंके दूधसे ही इन्द्रदेवका बल पुष्ट हुआ था। ऋग्वेदमें इन्द्रको '**गवां गोपतिः**' की संज्ञा दी गयी है। ये गौएँ स्वयमेव इन्द्रदेवके यहाँ रहती थीं। देवाधिपति इन्द्र अपने याचकों, स्तोताओंको गाय प्रदान करते थे ताकि याचक और स्तोता पुष्ट रहें। '**गोदा**' उपाधि 'इन्द्र' के लिये कही गयी है। जातक-कथाओंमें भी इन्द्रदेवका गायके प्रति प्रेम दर्शित है। असुरोंने जब गायपर आक्रमण किया तो देवोंने देवेन्द्रको पुकारा और उस समय इन्द्रदेवद्वारा गायकी रक्षा की गयी। प्राचीनकालमें वैवाहिक संस्कारके मूलमें गायकी प्रधानता थी। उस समय विवाहमें वर वधूको गाय प्रदान करता था।

रघुवंश महाकाव्यमें कुलगुरु ब्रह्मर्षि वसिष्ठकी आज्ञासे राजा दिलीपद्वारा नन्दिनी गायकी जैसी सेवा की गयी, वह किसीसे छिपा नहीं है। राजा दिलीपने तो गायकी रक्षाके लिये अपने-आपको समर्पित करनेका भी निर्णय किया और वे सिंहवेशधारी इन्द्रके सम्मुख आ खड़े हुए। प्राचीन कालसे ही गोसेवा, गोदान, गोपालन आदि भारतीय संस्कृतिके प्रमुख अंग रहे हैं; क्योंकि गौएँ सब प्रकारका लौकिक एवं पारलौकिक सुख प्रदान करनेवाली हैं—'**गावः सर्वसुखप्रदाः**'। जिस मनुष्यके घरमें गाय दुःखी रहती है, वह मनुष्य नरकलोकको प्राप्त होता है—'**यद् गृहे दुःखिता गावः स याति नरकं नरः।**'

प्राचीन भारतीय गुरुकुल शिक्षा-व्यवस्थामें गुरुकी सेवाके साथ-साथ गायकी सेवा भी आवश्यक थी। मुगल सम्राट् बाबरने तो राज्यको स्थायी रखनेका मुख्य साधन गोवंशकी रक्षा जानते हुए अपने पुत्र हुमायूँको गोरक्षाकी विशेष आज्ञा भी दी थी। गोसेवाके माहात्म्यकी चर्चा करते हुए कहा गया है—

तीर्थस्नानेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने।
सर्वव्रतोपवासेसु सर्वेष्वेव तपः सु च॥
यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने।
तत्पुण्यं प्राप्यते सद्यः केवलं धेनुसेवया॥

अर्थात् जो पुण्य तीर्थोंके स्नानमें है, जो पुण्य ब्राह्मणोंको भोजन करानेमें है, जो पुण्य व्रतोपवास तथा तपस्याद्वारा प्राप्त होता है, जो पुण्य श्रेष्ठ दान देनेमें है और जो पुण्य देवताओंकी अर्चनामें है, वह पुण्य तो केवल गायकी सेवासे ही तुरन्त प्राप्त हो जाता है।

गायके माहात्म्यकी चर्चा करते हुए कहा गया है—

पृष्ठे ब्रह्मा गले विष्णुर्मुखे रुद्रः प्रतिष्ठितः।
मध्ये देवगणाः सर्वे रोमकूपे महर्षयः॥
नागाः पुच्छे खुराग्रेषु ये चाष्टौ कुलपर्वताः।
मूत्रे गङ्गादयो नद्यो नेत्रयोः शशिभास्करौ॥
स्थिता यस्यास्तनौ वेदाः सा धेनुर्वरदास्तु मे।

अर्थात् जिस गायकी पीठमें ब्रह्मा, गलेमें विष्णु, मुखमें रुद्र, मध्यमें समस्त देवगण, रोमकूपोंमें महर्षिगण, पूँछमें नाग, खुराग्रोंमें आठों कुलपर्वत, मूत्रमें गंगा आदि नदियाँ, दोनों नेत्रोंमें सूर्य और चन्द्रमा तथा स्तनोंमें वेद निवास करते हैं, वह गाय मुझे वर देनेवाली हो।

जीवनीशक्ति गोदुग्धकी महिमामें बताया गया है कि यदि पृथ्वीतलपर गायका दूध न होता तो ईश्वरकी सन्तानोंका पालन-पोषण एवं वृद्धि नहीं हो पाती। दैवयोगसे किसीका जीवन रह भी जाता तो वह रूखा, वीर्यहीन, शक्तिहीन, अतिकृश और कुरूप होता—

नोचेद् गवां यदि पयः पृथिवीतलेऽस्मिन्
संवर्धनं न हि भवेद् विधिसन्ततीनाम्।
यो जायते विधिवशेन तु सोऽपि रूक्षो
निर्वीर्यशक्तिरहितोऽतिकृशः कुरूपः॥

महाभारतके अनुशासनपर्वमें महर्षि च्यवनने राजा नहुषसे कहा—हे राजन्! मैं इस संसारमें गौओंके समान कोई दूसरा धन नहीं देखता हूँ। पौराणिक मत है कि जगत्‌में सर्वप्रथम वेद, अग्नि, गाय तथा ब्राह्मणकी रचना हुई। वेदोक्ति है कि गाय सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका स्वरूप है—

एतद् वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम्।

वास्तुशास्त्रीय दृष्टिसे भवन-निर्माणसे पूर्व सवत्साधेनु अर्थात् बछड़ेके साथ गायको लाकर उस भूमिपर बाँधना भूमि-दोषोंका अपमार्जन करनेवाला तथा पुण्यकारी होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। गाय जब बच्चेको दुलराती है तो उसके मुखसे निकला फेन उस भूमिको पवित्र बनाता है।

महाभारतके अनुसार जहाँ गाय निर्भयतापूर्वक बैठकर साँस लेती है, वहाँके सारे पापोंको हर लेती है। सन्तान-लाभके लिये गो-सेवासे उत्तम कोई उपाय नहीं है। गायके रँभानेकी आवाज कानमें पड़ना मंगलकारी होता है। पुराणोंमें तो गोरजको पापविनाशक बताया गया है। गायकी महिमा व्यक्त करते हुए महाकवि घाघ कहते हैं—

न गऊ अस धन, न गोहूँ अस अन्न।

अर्थात् गायके समान धन नहीं है और गेहूँके समान अनाज नहीं है। वे आगे कहते हैं—

जा किसान के नाहीं गाय, वा किसान घर दरिद्र समान।

अर्थात् जिस किसानके पास गाय नहीं है, वह वास्तवमें दरिद्र है।

कविवर घाघकी दृष्टिमें गाय कितनी श्रेष्ठ एवं प्रिय थी, वह तो इस पंक्तिसे स्पष्ट है—

गाय दुहै बिन छाने लावै। गरमा गरम तुरंत चढ़ावै॥
बाढ़ै बल और बुद्धी भाई। घाघ कहै यह सच्ची गाई॥

यह सत्य है कि गायका धारोष्ण दूध पीनेसे बल और बुद्धि वृद्धिको प्राप्त होते हैं। गायका दूध छोटे बच्चोंके विकासमें सहायक होता है। गायके दूधमें कैल्शियम, फास्फोरस, सोडियम, पोटैशियम, मैगनीशियम, आयोडीन, क्लोरीन, लोहा, ताँबा, मैंगनीज, सल्फर, विटामिन ए, विटामिन डी और बी-कॉम्प्लेक्स सहजतासे प्राप्त होते हैं। गोमूत्रका सेवन रोग-प्रतिरोधकका कार्य करता है। गोमूत्र फ्लू, गठिया, कुष्ठके लिये भी उपचारक है। दूधसे दही, मट्ठा बनाकर दस्तजनित बीमारियोंसे बचा जा सकता है।

बायोगैस बनानेके लिये गायके गोबरका उपयोगकर प्राकृतिक सम्पदाको सुरक्षित रखा जा सकता है, गोबरसे बने उपले जलनेपर वातावरणके अनुपयुक्त कीटाणुओंका नाश करते हैं, वातावरणको शुद्ध रखते हैं। गोबर विषरोधी होता है। एटॉमिक रिएक्टरोंमें विकिरणसे बचावके लिये आज भी गायका गोबर ही कारगर है। गाय प्रकृतिकी सहचरी है। अनिष्टकी आशंकाको सबसे पहले आँकनेकी क्षमता गायमें ही होती है। प्राकृतिक आपदाके आगमनसे पूर्व गायोंके व्यवहारमें परिवर्तन हो जाता है, परंतु हम उसे आज समझ नहीं पाते हैं और उसकी उपेक्षा कर देते हैं। वस्तुतः जीवनमें सुख, शान्ति, समृद्धि लानेवालीका नाम ही गाय है।

विनम्रता

प्रेरक-प्रसंग—

एक समयकी बात है, सरिताओंके स्वामी समुद्रने सम्पूर्ण नदियोंसे अपने मनका एक सन्देह पूछा। समुद्रने कहा, 'मैं देखता हूँ कि जब नदियोंमें बाढ़ आती है, तो वे सब लबालब भर जाती हैं और अपने तेज प्रवाहके कारण सब वृक्षोंको जड़ों और शाखाओंसहित अपने प्रवाहमें बहा ले आती हैं, परंतु मैंने कभी भी उनमें बेंतका पेड़ नहीं देखा। बेंतका शरीर तो बहुत पतला होता है और उसमें कुछ दम भी नहीं होता। वह उनके ठीक किनारेपर उगता भी है, फिर भी वे उसे नहीं ला सकीं। क्या कारण है ? क्या वे अवहेलनावश उसे नहीं लायीं या उसने तुमपर कोई उपकार किया है ? इस विषयमें मैं तुम सबके विचार सुनना चाहता हूँ कि क्या कारण है कि बेंतका वृक्ष अपने तटोंको छोड़कर नहीं आता ?' इस प्रकार समुद्रद्वारा प्रश्न पूछे जानेपर नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजीने सब सरिताओंके स्वामी समुद्रसे यह उत्तम, अर्थपूर्ण, युक्तियुक्त तथा मनको ग्रहण करनेवाली बात कही। गंगाजी बोलीं, 'जो वृक्ष अपने स्थानपर अकड़कर खड़े रहते हैं, हमारे प्रवाहके सामने मस्तक नहीं झुकाते हैं। इस प्रतिकूल व्यवहारके कारण वे नष्ट हो जाते हैं और उन्हें अपना स्थान छोड़ना पड़ता है, परंतु बेंत ऐसा नहीं है। वह हमारे वेगको देखकर झुक जाता है। अतः हमारा वेग शान्त होनेपर वह पुनः अपने स्थानपर स्थित हो जाता है। बेंत समयको पहचानता है, उसके अनुसार कार्य करना जानता है, सदा हमारे वशमें रहता है। बेंतमें कभी अकड़ नहीं आती, इसीलिये उसे स्थान छोड़कर यहाँ नहीं आना पड़ता। जो पेड़-पौधे हवा और पानीके वेगसे झुक जाते हैं तथा वेग शान्त होनेपर सिर उठाते हैं, उनका कभी पराभव नहीं होता। इसी प्रकार मनुष्यको भी विनम्र होना चाहिये।'—**श्रीमती उषाजी अग्रवाल**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७०, शक १९३५, सन् २०१३, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रात: ५।३७ बजेतक द्वितीया रात्रिशेष ४।८ बजेतक	गुरु	शतभिषा दिनमें ११।५३ बजेतक	२२ अगस्त	मीनराशि रात्रिशेष ५। २५ बजे, अशून्यशयनव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ७। १२ बजे।
तृतीया रात्रिमें ३।५ बजेतक	शुक्र	पू०भा० ,, ११।१६ बजेतक	२३ ,,	भद्रा दिनमें ३। ३७ बजेसे रात्रिमें ३।५ बजेतक, विशालाक्षीयात्रा, सायन कन्याराशिका सूर्य रात्रिमें ७। ४ बजे।
चतुर्थी ,, २। २९ बजेतक	शनि	उ०भा ,, ११।४ बजेतक	२४ ,,	संकष्टी (बहुला) श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ८। ३३ बजे, मूल दिनमें ११।४ बजेसे।
पंचमी ,, २।२४ बजेतक	रवि	रेवती ,, ११।२२ बजेतक	२५ ,,	मेषराशि दिनमें ११। २२ बजे, रक्षापञ्चमी (उड़ीसा), पंचक समाप्त दिनमें ११। २२ बजे, रक्षापंचमी (उड़ीसा)।
षष्ठी ,, २।५१ बजेतक	सोम	अश्विनी ,, १२। ९ बजेतक	२६ ,,	भद्रा रात्रिमें २। ५१ बजेसे, हलषष्ठी (ललहीछठ), श्रीचन्द्रषष्ठी चन्द्रोदय रात्रिमें ९। ५५ बजे, मूल दिनमें १२। ९ बजेतक।
सप्तमी ,, ३। ४५बजेतक	मंगल	भरणी ,, १। २७ बजेतक	२७ ,,	भद्रा दिनमें ३। १८ बजेतक, वृषराशि रात्रिमें ७। ५३ बजे।
अष्टमी रात्रिशेष ५। ९ बजेतक	बुध	कृत्तिका ,, ३। १२ बजेतक	२८ ,,	श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत (स्मार्त्त), गोकुलाष्टमी, दूर्वाष्टमी।
नवमी अहोरात्र	गुरु	रोहिणी सायं ५। २२ बजेतक	२९ ,,	कृष्णजन्माष्टमी-व्रत (वैष्णव)।
नवमी प्रात: ६।५३ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा रात्रिमें ७। ४८ बजेतक	३० ,,	भद्रा रात्रिमें ७। ५२ बजेसे, मिथुनराशि प्रात: ६। ३५ बजे।
दशमी दिनमें ८।५३ बजेतक	शनि	आर्द्रा ,,१०। २४ बजेतक	३१ ,,	भद्रा दिनमें ८।५३ बजेतक, पू०फा०का सूर्य दिनमें १०। ३३ बजे।
एकादशी ,, १०।५७ बजेतक	रवि	पुनर्वसु ,, १।० बजेतक	१ सितम्बर	कर्कराशि सायं ६। २१ बजे, जया एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी ,, १२।५५ बजेतक	सोम	पुष्य ,, ३। २५ बजेतक	२ ,,	अघोरद्वादशी, सोमप्रदोषव्रत, मूल रात्रिमें ३। २५ बजेसे।
त्रयोदशी ,, २। ३६ बजेतक	मंगल	आश्लेषा रात्रिशेष ५।३१ बजेतक	३ ,,	भद्रा दिनमें २। ३६ बजेसे रात्रिमें ३। १७ बजेतक, सिंहराशि रात्रिशेष ५। ३१ बजे, मासशिवरात्रिव्रत, अघोरचर्तुदशी।
चतुर्दशी ,, ३।५८ बजेतक	बुध	मघा अहोरात्र	४ ,,	× × × ×
अमावस्या दिनमें ४।५१ बजेतक	गुरु	मघा दिनमें ७। १३ बजेतक	५ ,,	अमावस्या, कुशोत्पाटिनी अमावस्या, मूल दिनमें ७। १३ बजेतक।

सं० २०७०, शक १९३५, सन् २०१३, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-शरद्-ऋतु, भाद्रपद शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ५। १४ बजेतक	शुक्र	पू० फा० दिनमें ८। २६ बजेतक	६ सितम्बर	चन्द्रदर्शन, कन्याराशि दिनमें २। २६ बजे।
द्वितीया ,, ५।६ बजेतक	शनि	उ०फा० ,, ९। ९ बजेतक	७ ,,	× × × ×
तृतीया ,, ४। २९ बजेतक	रवि	हस्त ,, ९। २२ बजेतक	८ ,,	भद्रा रात्रिमें ३। ५६ बजेसे, तुलाराशि रात्रिमें ९। १४ बजे, वाराहावतार, हरितालिका (तीज) व्रत।
चतुर्थी दिनमें ३। २३ बजेतक	सोम	चित्रा ,, ९। ६ बजेतक	९ ,,	भद्रा दिनमें ३। २३ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रदर्शन निषिद्ध।
पंचमी ,, १। ५५ बजेतक	मंगल	स्वाती ,, ८। २६ बजेतक	१० ,,	वृश्चिकराशि रात्रिमें १। ४१ बजे, ऋषिपंचमीव्रत।
षष्ठी ,, १२। ६ बजेतक	बुध	विशाखा ,, ७। २७ बजेतक	११ ,,	लोलार्कषष्ठीव्रत, सूर्यषष्ठीव्रत।
सप्तमी ,, १०। १ बजेतक	गुरु	अनुराधा प्रात: ६। ९ बजेतक ज्येष्ठा रात्रिशेष ४। ३९ बजेतक	१२ ,,	राधाष्टमी (मध्याह्नव्यापिनी), भद्रा दिन १०।१ से रात्रि ८।५२ बजेतक, धनुराशि रात्रि ४। ३२ बजे, महालक्ष्मीव्रतारम्भ, मूल प्रात: ६। ९ बजेसे।
अष्टमी ,, ७। ४३ बजेतक नवमी रात्रिशेष ५। १८ बजेतक	शुक्र	मूल रात्रिमें ३। ० बजेतक	१३ ,,	राधाष्टमी (उदयातिथिके अनुसार), श्रीचन्द्रजयन्ती, उ०फा०का सूर्य रात्रिशेष ४। ४२ बजे, मूल रात्रिमें ३। ० बजेतक।
दशमी रात्रिमें २। ५२ बजेतक	शनि	पू०षा० ,, १। १९ बजेतक	१४ ,,	दशावतारव्रत।
एकादशी ,, १२। २८ बजेतक	रवि	उ०षा० ,, ११। ४२ बजेतक	१५ ,,	भद्रा दिनमें १। ४० बजेसे रात्रिमें १२। २८ बजेतक, मकरराशि प्रात: ६। ४८ बजे, पद्मा एकादशीव्रत (सबका), महारविवारव्रत।
द्वादशी ,, १०। १२ बजेतक	सोम	श्रवण ,, १०। ११ बजेतक	१६ ,,	श्रवणद्वादशी, वामनद्वादशी।
त्रयोदशी ,, ८। ६ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा रात्रिमें ८।५१ बजेतक	१७ ,,	कुम्भराशि दिनमें ९। ३१ बजे, विश्वकर्मा जयन्ती, कन्याराशिका सूर्य दिनमें २। ४९ बजे, शरद् ऋतु प्रारम्भ, पञ्चकारम्भ दिनमें ९। ३१ बजे, भौमप्रदोषव्रत।
चतुर्दशी सायं ६। १८ बजेतक	बुध	शतभिषा ,, ७। ४९ बजेतक	१८ ,,	भद्रा सायं ६। १८ बजेसे रात्रिशेष ५। ३४ बजेतक, अनन्तचतुर्दशीव्रत।
पूर्णिमा ,, ४। ५१ बजेतक	गुरु	पू०भा० ,, ७। ७ बजेतक	१९ ,,	मीनराशि दिनमें १। १८ बजे, पूर्णिमा, उमा-महेश्वरव्रत, महालयारम्भ, लोकपालपूजा, इन्द्रगोविन्दपूजा (उड़ीसा)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

दु:खियोंकी सेवामें भगवत्सेवा

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार ज्ञात हुए। जगत्में इस समय अभाव बहुत बढ़ रहा है। जितना ही अभाव बढ़ेगा, उतना ही दु:ख भी बढ़ेगा। अभावमें प्रतिकूलताका बोध होता है और प्रतिकूलता ही दु:ख है। किसीके दु:खमें सहानुभूतिके साथ सहायता करना मनुष्यका परम कर्तव्य है। किसका दु:ख किस प्रकारका है, इसका अनुभव उसीको है, जो उस दु:खसे ग्रस्त है। उपदेश देना बहुत सहज है, पर अपने ऊपर दु:ख पड़नेपर कैसी दशा होती है और उस अवस्थामें उपदेशके अनुसार कितना कार्य होता है, इसका पता दु:ख पड़नेपर ही लगता है। यह सत्य है कि दु:ख-सुख हमारे अपने ही पूर्वकृत कर्मोंके फल हैं; परंतु दु:खमें पड़े हुए मनुष्यको उसके दुष्कर्मका फल बतलाकर उसकी उपेक्षा करना कदापि उचित नहीं, ऐसा करना स्वयं वस्तुत: एक बड़ा दुष्कर्म है। दु:खी व्यक्तिको देखकर तो हमें अपने शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार उसकी सेवा-सहायता ही करनी चाहिये।

मान लीजिये—एक गरीब-परिवार है, एक पुरुष है, स्त्री तथा बच्चे हैं। पासमें पैसे नहीं हैं, पुरुष बीमार पड़ा है, स्त्री भी रुग्णा है, उनके लिये दवा और सेवाकी आवश्यकता है, बच्चे भूखके मारे बिलबिला रहे हैं। बच्चोंकी दुर्दशा और अपनी असहाय दशाको देखकर दोनों स्त्री-पुरुषोंके हृदय फटे जा रहे हैं। ऐसी अवस्थामें यदि कोई जाकर उन्हें कर्मका कोरा उपदेश करने लगे तो उससे न तो उनका दु:ख घटता है और न उपदेश देनेवालेका कर्तव्य ही पूरा होता है। ऐसी अवस्थामें तो यथा-साध्य अन्न, औषध और सेवाकी सुव्यवस्था होनी चाहिये। इसी प्रकार दु:खोंकी अन्यान्य अवस्थाओंमें भी जब मनुष्य असहाय और आधारहीन हो जाता है, तब उसे क्रियात्मक सहानुभूति करनेवालोंकी आवश्यकता होती है। इस आवश्यकताकी पूर्ति जो पुरुष अपना तन-मन-धन लगाकर स्वान्त:सुखाय करते हैं और सेवा या सहायताका तनिक भी अभिमान न करके सेवाके सुअवसर-प्राप्तिके लिये भगवान्के कृतज्ञ होते हैं, वे सचमुच बड़े ही भाग्यवान् हैं।

आपने धन लगानेके सम्बन्धमें पूछा, सो मेरी रायमें आपको निम्नलिखित कार्योंमें धनका सद्व्यय करना चाहिये—

१-सदाचारिणी अनाथ विधवाओंकी सहायता।

२-असहाय और निरुपाय परिस्थितिमें पड़े हुए भद्र परिवारोंकी सहायता।

३- ऋणके भारसे दबे हुए ईमानदार व्यक्तियोंकी सहायता।

४-अकालग्रस्त और धनहीन रोगियोंकी सहायता।

उपर्युक्त लोगोंकी सेवा-सहायतामें धन व्यय करना धनका सच्चा सदुपयोग है, परंतु न तो सहायताकी दूकान खोलकर उसका विज्ञापन करना चाहिये, न किसी सहायता पानेवालेको अपनेसे किसी प्रकार नीचा मानना चाहिये तथा न उसपर अहसान ही करना चाहिये। सेवा सर्वोत्तम वह है, जिसका पता उसे भी न लगे, जिसकी सेवा की गयी हो। यदि ऐसा न भी हो सके तो सेवा करनेवाले और करानेवाले-इन दोके सिवा अन्य किसीको तो पता ही लगना नहीं चाहिये। सेवामें ऐसा बर्ताव-व्यवहार कभी नहीं करना चाहिये जिससे सेवा करानेवालेको संकोचमें पड़ना पड़े, उसे अपनी असहायावस्थामें सेवा स्वीकार करनेकी लाचारीपर दु:ख हो और वह उसे आत्माका पतन समझे। सेवा करके जो किसीके आत्माको गिराता या नीचा दिखाता है, वह तो सेवाका दुरुपयोग ही करता है।

आजकल गो-जातिपर बड़ा संकट है। अतएव भूखी गायोंके लिये चारेकी व्यवस्था करनेमें धन व्यय करना भी बहुत उत्तम है। सच्ची सहानुभूति, कर्तव्यनिष्ठा और उल्लासके साथ सेवा करनी चाहिये और इस सेवाको भगवान्के अर्पणकर भगवत्प्रीत्यर्थ ही करना चाहिये। वास्तवमें सब कुछ भगवान्का ही है और सेव्यके रूपमें भगवान् ही सेवा स्वीकार करते हैं। भगवान्की वस्तुसे भगवान्की सेवा करनेमें हम जो निमित्त बनते हैं, यह हमारा सौभाग्य है और इस संयोगकी प्राप्ति करा देनेके लिये हमें भगवान्का कृतज्ञ होना चाहिये। शेष भगवत्कृपा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपानुभूति

(१)

श्रीनाथजीकी कृपा

घटना फरवरी सन् १९८६ ई०की है। मेरे परिवारमें १९८५ का वर्ष बड़ा हृदयविदारक रहा। फरवरीमें मेरे भतीजे, सितम्बरमें माँ और नवम्बरमें माँकी ठीक दूसरे माहकी पुण्यतिथिपर ब्राह्मणीको भोजन कराकर पिताजी लेटे ही थे कि वे भी श्रीजीकी शरण हो गये।

भतीजा २२ वर्षका उद्योगी और हँसमुख युवक था। माँ तथा पिताजी ७५ वर्षके लगभग थे। तीनों स्वस्थ थे। इनकी मृत्युने हम सभीको झकझोर दिया था।

इसके बाद फरवरी १९८६ में माँ तथा पिताजीकी छमाहीपर सब परिवारवाले और सगे-सम्बन्धी इकट्ठे हुए। हम कुछ लोग सबेरे ही गाँवकी पिपलाज नदीपर नहाने गये। इस छोटी-सी पवित्र नदीपर एक छोटा बाँध बना है, जिसमें पानी जमा रहता है। आगे बहनेके लिये कुछ-कुछ निकास इसकी तीन मोखियोंसे होता रहता है। इसी बाँधके नीचे हम चार-पाँच लोग एक मोखीकी धारा और उसके घुमावमें आ गये, जिससे हम नीचे बैठते ही जा रहे थे। पानीकी सतहपर न तो ठहर पा रहे थे, न ही जगह बदल रही थी। अत: उसीमें डूबते-उतराते थे।

मौसम साफ था, सूरजकी रोशनी फैली थी। पानीमें हम देख रहे थे कि एक-दूसरेको पकड़े हुए हम सर्किलमें घूम रहे हैं। न तो हम ऊपर ठहर पाते थे, न ही छूटते थे। इस बुरी स्थितिमें हम डूब ही रहे थे। अपने माँ-पिताजीको यादकर मैं सोच रहा था कि अगर दुर्घटना हो गयी तो कितनी बुरी होगी। हरिस्मरण हुआ, दुहाई दी और सहायता माँगी।

तत्काल ऐसेमें हमें भाई श्रीचतुर्वेदीजी दिखायी दिये, जो हमारे सामने नहाकर चले गये थे, पर कोई कपड़ा भूल जानेसे नदीपर वापस आये थे। उन्हें देखकर मैं चिल्लाया, 'भाई श्रीनाथजी!' और वे पूरे कपड़े पहने ही पानीमें कूद पड़े। उनके साथ और भी बचानेवालोंने हमें छुड़ाया, निकाला और किनारेपर बैठा दिया।

पक्का विश्वास हो गया कि भगवान् श्रीनाथजीने ही इन श्रीनाथजीको वापस भेजा है हमें बचानेके लिये। वैसे वे तो नित्य नहानेवाले हैं, आज ही कुछ क्यों भूल गये, सो लेने आये? उनका वापस आकर बचाना ही हमारे पुनर्जीवनका आधार बन गया।

आज भी मैं उस घटनाको याद करके सिहर उठता हूँ कि मैं, मेरे बहनोई, भाँजी जवाँई, एक छोटे भाईके साले कुल परिवारके चार लोग उस बाँधके जलमें डूब रहे थे। ऐसेमें यदि दुर्घटना होती तो कितनी भयानक होती, परंतु भगवान् श्रीनाथजीने कृपाकर हमें बचा लिया। सच है, उन प्रभुका नाम किसी भी प्रकार मुखसे निकले, मंगलमय ही होता है।—**राधेश्याम मन्त्री**

(२)

सुन्दरकाण्डपाठका प्रभाव

मैं कल्याणका १९७४ ई० से नियमित पाठक हूँ, इसके पठनसे कितना लाभ हुआ, शब्दोंमें व्यक्त नहीं कर सकता। मैं भारतीय स्टेट बैंकका सेवानिवृत्त अधिकारी हूँ। मेरे तीन बच्चे हैं, जो अच्छी नौकरी कर रहे हैं। हम दोनों पति-पत्नी घरपर रहकर सत्संग करते हैं।

मैंने कल्याणमें पढ़ा था कि सुन्दरकाण्डका पाठ करनेसे सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं—इस भावनाके साथ मैंने सुन्दरकाण्ड पाठ करने एवं करानेका निश्चय किया। अपने मुहल्लेके पाँच व्यक्तियोंसे परामर्श करके हर मंगलवार रात्रि ८ बजेसे सुन्दरकाण्डका पाठ शुरू किया, धीरे-धीरे अन्य धर्मप्रेमी भी जुड़ते गये और एक समिति बनाकर पाठ आरम्भ होने लगा। इस पारायणके प्रभावसे मेरे तीनों बच्चोंकी एक-एक करके बिना किसी परेशानीके सामान्य रूपसे नौकरी लग गयी एवं एक भी पैसा खर्च नहीं हुआ तथा पदोन्नति प्राप्तकर वे सभी अधिकारी बन गये। हमारे एक पड़ोसी भी इस कार्यमें सक्रिय सहयोग देते थे। उनके चार पुत्र थे। एक-एक करके उनके भी चारों बच्चोंकी नौकरी लग गयी और वे सब भी पदोन्नतिकर उच्च पदोंपर पदस्थ हो गये। इतना ही नहीं, उस सुन्दरकाण्डपाठमें जिस-जिसने सक्रिय भूमिका निभायी, सभीको लाभ हुआ—यह प्रत्यक्ष बात है, जो आज भी हम देख रहे हैं। आज भी यहाँ नियमित पाठ चल रहा है, अब तो इतनी लगन है कि शहरमें सुन्दरकाण्ड-पाठकी चार-पाँच समितियाँ बन गयी हैं एवं नियमित पाठ चल रहा है। हम सबका मानना है कि सुन्दरकाण्डके पाठमें श्रीहनुमानजी महाराज स्वयं विराजते हैं तथा बिना माँगे ही मनचाहा फल प्रदान करते हैं।

यहाँपर नवयुवक ज्यादा-से-ज्यादा संख्यामें जुड़ रहे हैं। इतना ही नहीं, दूसरे धर्मोंके भी व्यक्ति आकर पाठकर आनन्दित होकर लाभ प्राप्त कर रहे हैं।—**रामजीलाल पाण्डेय**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गोसेवासे हृदयकी शल्य-चिकित्सा टली

घटना लगभग दस साल पहलेकी है। मेरे गाँव ओडीटके पास निम्बी जोधा नामक कस्बा (जिला-नागौर) लाडनूँ तहसीलमें है। वहाँपर हमारे एक परिचित ग्रामसेवकके पदपर कार्यरत हैं। लगभग दस साल पूर्व उन्हें भयंकर हृदयाघात हुआ। परिवारवाले उन्हें शीघ्रतासे सरकारी चिकित्सालय जयपुर ले गये। वहाँ डॉक्टर उन्हें भर्ती करके हृदयकी शल्य-चिकित्साके लिये ऑपरेशन थियेटरमें ले जाकर शल्य-चिकित्साकी तैयारी करने लगे। उसी समय उनकी अन्तरात्माने सलाह दी कि ऑपरेशन नहीं कराना है। साथ ही उन्हें यह भी आभास हुआ कि सच्ची गोसेवासे बड़े-बड़े असाध्य रोगोंसे निदान पाया जा सकता है। अत: उन्होंने अस्पतालसे छुट्टी लेकर घर जाकर गोसेवा करनेका निश्चय किया। फिर क्या था, उन्होंने तुरंत ही ऑपरेशनके लिये मना कर दिया और अस्पतालसे छुट्टी लेकर वे अपने गाँव आ गये और अपने खेतमें विद्युत्चालित नलकूपसे गायोंके लिये घास-चारेकी व्यवस्था प्रारम्भ कर दी। आज उनके फार्महाउसमें करीब ४० गायें ऐसी हैं, जो बिना मालिकके सड़कोंपर निराश्रित टहलती थीं। उन्हीं गोमाताओंकी कृपासे वे आज बिलकुल स्वस्थ हैं और गायोंकी नि:शुल्क सेवा-शुश्रूषा कर रहे हैं। यह गोसेवाका प्रत्यक्ष सच्चा उदाहरण है। मैं इसे गोसेवाका ही चमत्कार मानता हूँ।—**पाबूसिंह राठौर**

(२)

बालककी परदु:खकातरता

घटना २२ फरवरी, सन् २०१३ ई० सायंकाल कुम्भमेला, प्रयागराजकी है। मैं अपनी पत्नीके साथ कुम्भ-स्नानहेतु प्रयागराज गाड़ीसे गया था। चूँकि मेला-परिक्षेत्रमें वाहन-प्रवेश प्रतिबन्धित था, अत: गाड़ी बाहर ही रोकनी पड़ी। मेरी पत्नीमें चलनेकी शक्ति नहीं थी, अत: मैंने रिक्शा किया, परंतु पुलिसने उसे भी आगे जानेसे रोक दिया। हम पैदल ही रवाना हो गये, पर आगे हनुमान्-मन्दिरके पास जाकर हम हताश हो गये और वापस लौटनेका विचार करने लगे। प्रभुकृपासे उसी समय एक विद्यार्थी बालक, जिसकी उम्र करीब १५ वर्ष रही होगी, साइकिलसे घर जा रहा था, हमारी दयनीय स्थिति देखकर वहीं रुक गया। मैंने उसे अपनी सारी परेशानी बतायी। वह हमारी बातें बड़े ध्यानसे सुनता रहा। फिर क्षणभरके लिये रुका और फिर जाने क्या सोचकर बोला—आप चिन्ता न करें, आपके गंगास्नानका संकल्प भगवान् पूरा कराना चाहते हैं, फिर उस बालकने पत्नीको अपनी साइकिलपर बैठनेको कहा, पहले तो हम ठिठके, किंतु प्रभु-इच्छा समझकर मेरी पत्नी साइकिलपर बैठ गयी, वह साइकिल लेकर धीरे-धीरे चलने लगा। मैं भी उसके पीछे-पीछे पैदल चल पड़ा। उस बालकने हमें संगमतक पहुँचा दिया। हमलोग उसके सेवाभावको देखकर भावविभोर हो उठे। मैंने उसको पैसे देनेकी बहुत कोशिश की, लेकिन उसने पैसे लेनेसे बिलकुल मना कर दिया। हम उस बालकका नाम भी नहीं पूछ सके, उस बालककी सहायतासे ही हमारा कुम्भस्नान हो सका। उस अज्ञात बालकको एवं उसके माता-पिताको बहुत-बहुत धन्यवाद देते हुए हम प्रभुसे बारम्बार विनती करते हैं कि यह बालक जीवनमें बहुत उन्नति करे।—**ब्रह्मप्रकाश पाटीदार**

(३)

सार्थक जीवन

मेरे पड़ोसमें घिन्नी नामक एक गरीब महिला रहती थी। परिश्रम, ईमानदारी और किसीके काममें हाथ बँटाना उसकी स्वाभाविक विशेषता थी। अमीर-गरीब—सबका वह छोटा-मोटा सारा कार्य करती, बदलेमें जो कुछ मिल जाता, उसीसे अपना जीवन-निर्वाह करती। वैसे तो कोई उसकी इज्जत नहीं करता था, किंतु जहाँ-कहीं शादी, उत्सव या छोटा-बड़ा कार्य होता, घिन्नीके बिना पूरा नहीं होता था। जब भी कोई काम या उत्सव होता, वह पहुँच जाती और काममें हाथ बँटाती। झाड़ू, पोंछा, बर्तन सभी कुछ करनेको तैयार रहती। बच्चोंको खिलाना हो या सब्जी काटना या फिर रसोईमें हाथ बँटाना—कुछ भी उसके लिये असम्भव न था।

जातिसे वह अग्रवाल थी, इसलिये कोई उसे रोकता-टोकता भी नहीं था। अपने छोटे-से मकानमें अकेली रहती थी, घरमें क्या करती-धरती थी, किसीको कोई पता न था, कोई पता करना चाहता भी न था। वह किसी भी शादी या उत्सवमें दूसरे दिन जाकर जो भी बचा-खुचा होता, बड़ी खुशामद करके सब ले आती थी, सभी लोग 'बासी कौन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खायेगा ? माँग रही है तो दे दो'—ऐसा सोचकर उसे देनेमें भी नहीं हिचकते थे। कोई-कोई तो उसे फटकार भी देता था—'इतने सबका क्या करेगी ?' किंतु वह कोई जवाब नहीं देती और चुप हो जाती तथा बचा-खुचा ले जानेमें तत्पर रहती।

एक दिनकी बात है, वह मेरे पड़ोसीके यहाँ आयी और कहने लगी कि बहू! एक गिलास पानी दे दो। मालकिनने उसे पानी तो दिया, लेकिन झुँझलाकर। थोड़ी देर बाद वह फिर बोली 'बहू! मेरा जी घबरा रहा है, इसमें थोड़ा गंगाजल डाल दो।' मालकिनने कहा—'रोज गंगाजल डालकर ही पीती होगी ? नहीं है गंगाजल, ऐसे ही पी ले।' मेरे पड़ोसी उस समय घरपर ही थे, बोले—'क्या हो गया, दो बूँद गंगाजल डाल दे।' मालकिनको मजबूरन उसके गिलासमें थोड़ा गंगाजल डालना पड़ा। घिन्नीने उसे पिया और वहीं लुढ़क गयी। बाहर हंगामा सुनकर सभी पहुँचे तो देखा उसके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे।

सभीने मिल-जुलकर उसका दाह-संस्कार किया, बात खत्म हो गयी। दूसरे दिन उठावनी रखी गयी। अग्रवाल होनेके नाते मैं भी उसमें पहुँचा, किंतु वहाँका नजारा देखकर मैं दंग रह गया। अनाथ-आश्रमसे कुछ बच्चे रोते हुए वहाँ आये और कहने लगे—हमारी तो माँ थी, आये दिन हमारे लिये खाना लेकर आती थी। तब हम सब लोगोंकी समझमें आया कि यह घिन्नी क्यों शादीके दूसरे दिन जो भी बासी खाना बचता, उसे ले जाती थी। वह सारा-का-सारा अनाथ-आश्रममें बड़े प्रेमसे बच्चोंको खिलाती थी, आज उसके कर्मोंने हमें छोटा बना दिया और आज पता चला कि उसका नाम घिन्नी नहीं, घनश्यामप्रिया था। हमलोगोंने उसे घिन्नी बना दिया। आज हम उसे अपनेसे भी बड़ा समझ रहे थे। धन्य हैं ऐसे लोग, जो समाजमें प्रसिद्धि पानेके लिये नहीं, बल्कि अपना जीवन सार्थक करनेको जीते हैं।—पद्मचन्द्र अग्रवाल

(४)

एक अनुकरणीय प्रसंग

बात २५ मार्च २०१२ ई० की है। मैं प्रयाग स्टेशनपर हरिद्वार-यात्राके लिये आरक्षण कराने गया था। आरक्षणके बाद मैंने वहीं स्थित भारतीय स्टेट बैंकके ए०टी०एम० से रुपये निकाले। तत्पश्चात् मैं अपने मित्रकी धर्मपत्नीके स्वर्गवासपर संवेदना प्रकट करनेके लिये समीपस्थ उनके घरपर गया। मेरा ज्येष्ठ पुत्र भी मेरे साथ था। इन सभी कार्योंसे निवृत्त होकर मैं उसके साथ घर आया। तब मुझे ध्यान आया कि मेरा पर्स एवं फोल्डर मेरे पास नहीं है और मुझे याद भी नहीं था कि मैंने पर्स कहाँ छोड़ दिया। उसमें मेरे आरक्षित टिकट, लगभग २००० रुपये, मेरा पहचान-पत्र, बैंककी पासबुक तथा गयामें पितरोंके श्राद्धके विषयमें किसी विद्वान्द्वारा बतायी गयी प्रक्रिया एवं जानकारी विषयक एक कागज था। घर आनेके बाद मैंने तत्काल प्रयाग स्टेशनकी ओर पुनः रुख किया। मैं अपने विपत्तिग्रस्त मित्र, जो उस समय अपनी पत्नीकी अन्त्येष्टिकी तैयारी कर रहे थे-से सकुचाते हुए फोन करके पूछा। उनके बेटेने पर्सके वहाँ न होनेकी बात बतायी। मैंने ए०टी०एम० के पास जाकर वहाँ भी देखा और पड़ोसमें हलवाईकी दूकानपर भी पूछा कि क्या कोई व्यक्ति मेरा पर्स तो उन्हें नहीं दे गया है ? पर्स न मिलनेपर मैंने अविलम्ब अपने आरक्षित टिकटको बन्द करा दिया, जिससे कोई व्यक्ति उनका दुरुपयोग न करे या उनको निरस्त कराकर पैसे वापस न ले सके। इस घटनाका सकारात्मक पक्ष ए०टी०एम० से मेरे हटनेके बाद प्रारम्भ हुआ। ए०टी०एम० से मेरे हटनेके बाद वहाँ दो छात्र आये, उन्हें कुछ खरीदारी करनेके लिये ए०टी०एम० से पैसे निकालने थे, वहींपर मेरा गिरा हुआ पर्स उन्हें मिला। मुझे याद था कि पर्समें मेरे टिकट, मेरा पहचान-पत्र एवं कुछ रुपये थे। मुझे इन्हीं वस्तुओंके खोनेकी चिन्ता थी। पर्समें पड़ी अन्य वस्तुओंकी याद भी नहीं थी। पर्स मिलनेके बाद इन छात्रोंने मेरे पहचान-पत्रके चित्रसे आसपासके यात्रियोंका मिलान किया। मेरी भी खोज की और थक-हारकर इन्होंने स्टेशनसे इस पर्सकी प्राप्तिकी उद्घोषणा करायी। उद्घोषिकाको यह बताया कि यदि कोई पर्सके विषयमें पूछने आये तो उसे उनका फोन नम्बर दे दें। ऐसी व्यवस्थाकर वे फिर अपने विद्यालय चले गये।

दूसरे दिन ये छात्र मेरा आवास खोजते हुए मेरे घरपर आये। मेरा आवासीय पता मेरे पासबुकमें लिखा था। जिस मोहल्लेमें मैं रहता हूँ, नया मोहल्ला होनेके कारण यह बहुत प्रसिद्ध नहीं है। फिर भी ये छात्र तेलियरगंजके डाकघरसे पतेके आधारपर भटकते-भटकते हमारे घरपर दोपहरमें आये। नया मोहल्ला तथा नया निवासी होनेके कारण मुझे प्रायः कम लोग ही जानते थे। छात्रोंने गैस सिलेण्डर-वितरकसे मेरा नाम पूछा और संयोगसे उसने मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घरकी ओर संकेत किया। उन्होंने मेरे द्वारपर दस्तक दी और मेरा नाम जाननेके पश्चात् पूछा कि क्या आपका कोई पर्स या प्रलेख खोया है? मैंने तुरन्त हाँ की। मैंने उनको बुलाकर पूरे घटनाक्रमकी जानकारी ली और उनका परिचय जाना। ये दोनों राजकीय पॉलिटेक्निक, हँडिया के छात्र हैं। मैं इन छात्रोंके शील, स्वभाव, कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी एवं दायित्वबोधकी भावनासे अतिशय प्रभावित हुआ। आज भी ऐसे संस्कारवान् छात्र हैं, यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई। मैं उनके परिवारको साधुवाद देना चाहता हूँ, जिन्होंने इनमें इतने उत्कृष्ट संस्कारोंका सृजन किया है। साथ ही मैं इनके गुरुजनों और विद्यालयोंकी प्रशंसा करूँगा, जहाँ ऐसे छात्र पल्लवित और पोषित हो रहे हैं।

मैंने इनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की, उनका यथेष्ट सत्कार किया और इनके उज्ज्वल भविष्यके प्रति अपनी अनन्त शुभकामनाएँ व्यक्त कीं। ये छात्र बहुत संकोच कर रहे थे, परंतु मैंने यह कहा कि अच्छे कार्योंकी सराहना करनी ही चाहिये, जिससे अच्छाईका विस्तार और प्रसार होता चले।—आर०के० द्विवेदी

(५)

वह देवदूत बनकर आया था

बात नब्बेके दशककी है, मैं अपनी पत्नी एवं पाँच बच्चोंके साथ ब्रह्मनपुरी-स्थित मकानकी पहली मंजिलके एक हिस्सेमें रहता था। हमारे वे दिन बहुत कठिनाईभरे थे। दिन-रात पत्नी तथा बच्चे रद्दी कागजके थैले बनाते थे। जिन्हें गड्डियाँ बनाकर मैं शहरकी परचूनकी दूकानोंपर साइकिलसे बेचने जाया करता था। उन्हीं थैलोंके बिकनेसे प्राप्त पैसोंद्वारा घरका गुजारा होता था।

एक दिन तेज बरसात हो रही थी, अचानक मेरी ७-८ सालकी छोटी लड़कीके हाथ-पैर ऐंठने लगे और वह अँगुलियाँ तथा मुट्ठी भींचने लगी। पत्नीने देखा तो चीखी—'अरे! देखो तो, गुड़ियाको क्या हो रहा है?' मैंने देखा तो घबराहट हुई, फिर सँभला और गुड़ियाको गोदमें उठाकर नीचे उतरकर सदर दरवाजेके बाहर खड़ा हो गया और चिल्लाने लगा—'कोई मुझे जिला अस्पताल पहुँचा दो, देखो, मेरी बेटीको क्या हो गया है? कोई रिक्शा बुला दो।' नीचेसे कोई निकलकर नहीं आया। मोहल्लेवाला भी कोई बाहर नहीं आया। शायद बरसातके पानीकी आवाजमें मेरी चीखें किसीको सुनायी नहीं दी होंगी। तभी अचानक पड़ोसके मोहल्ला कायस्थानमें रहनेवाला विजय खलीफा नामक एक व्यक्ति अपनी विक्कीपर भीगता हुआ मेरे पास आया और बोला—क्या बात है बौहरेजी? मैं रोते हुए बोला—'देखो तो भाई! मेरी लड़कीको यह क्या हो गया है?' गुड़ियाके हाथ-पैर मुड़ रहे थे। उसने कहा—'मैं आपकी क्या मदद करूँ?' मैंने कहा—'भैया! अस्पतालके इमरजेन्सीमें तुरंत ले चलो, मैं पीछे गुड़ियाको गोदमें लेकर बैठ जाता हूँ।' उसने तुरंत मुझे अपनी विक्कीपर पीछे बैठाया और बरसातमें भीगते हुए १०-१२ मिनटमें जिला अस्पतालके इमरजेन्सी वार्डमें पहुँचा दिया। रास्तेमें मैं रोती हुई गुड़ियाको हिम्मत बँधाता रहा, 'बेटी! घबराओ मत' और उसकी अँगुलियोंको अपने हाथोंसे खोलनेकी सतत कोशिश करता रहा।

अस्पतालके इमरजेन्सी वार्डमें पहुँचनेपर वहाँ उपस्थित डॉक्टर तथा फार्मासिस्टने लड़कीको स्ट्रेचरपर लिटाकर तुरंत इंजेक्शन एवं ऑक्सीजन सिलेण्डर लगाये। एक इंजेक्शन मेडिकलकी दूकानसे लानेके लिये कहकर उसका नाम लिखकर मुझे स्लिप दी। मेरी जेब खाली थी। विजयने कहा—लाओ स्लिप मुझे दो, मेरे पास बीस रुपये हैं। वह दौड़ा गया और इंजेक्शन ले आया। मैं उसके प्रति कृतज्ञतासे भर गया था। बार-बार धन्यवाद करता रहा। दो घण्टे बाद मैं लड़कीके पूर्णतया सामान्य होनेपर डॉक्टरके कहनेपर उसे घर ले आया। कई दिन दवाएँ चलती रहीं। फार्मासिस्ट मुझे जानते थे, बोले, समयसे ले आये बिटियाको हरकुटजी, देर हो जाती तो कुछ भी हो सकता था।

इस वाकयेके बाद मैं विजयके प्रति बहुत आदरभाव रखने लगा। वह उस दिन हमारे लिये देवदूत बनकर आया था। हालाँकि विजयकी छबि क्षेत्रमें एक शराबी और नकारा व्यक्तिकी थी। लेकिन मेरे लिये तो वह भगवान् बनकर आया था। इस घटनासे मुझे पता चला कि बाहरसे गड़बड़ दीखनेवाला व्यक्ति भी अन्त:करणसे अत्यन्त निर्मल और कोमल हृदयका हो सकता है। उस दिन तो उसने इन्सानियतका धर्म निभाकर मेरी बेटीकी प्राण-रक्षा की थी, अन्यथा पता नहीं क्या होता! मेरी पुत्री आज सुखद विवाहित जीवन जी रही है, उसके दो प्यारे-से बच्चे हैं।—महेन्द्रसिंह हरकुट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

[दुःखालयमशाश्वतम्]

संसार ही दुःखालय है। दुःख ही यहाँ निवास करते हैं। किसी भी अवस्थामें यहाँ सुख मिलेगा—एक भ्रम ही है यह। इतना बड़ा भ्रम कि संसारके सभी लोग इसमें भ्रान्त हो रहे हैं। सुकुमार शिशु—आनन्दकी मूर्ति। कवियोंकी कल्पना बालकके आनन्दकी बात करते थकती नहीं। वृद्ध पुरुष अपने बाल्यकालकी चर्चा करते हुए गद्‌गद हो उठते हैं। 'फिर लौट आता बचपन!' कितनी लालसा भरी है इसमें। कोई बालक भी मिला है आपको, जो बालक ही बना रहना चाहता हो? प्रत्येक बालक 'बड़ा होने' को समुत्सुक रहता है; क्योंकि वह बालक है—अपनी उत्सुकता छिपाये रहनेकी दम्भपूर्ण कला उसे आती नहीं। यदि शिशुतामें सुख है तो बालक क्यों अपनी शिशुतामें सन्तुष्ट नहीं रहता?

बालकका अज्ञान—किंतु बालकमें अज्ञान और असमर्थता न हो तो वह बालक रहेगा? वह चाहता है ज्ञान, वह चाहता है सामर्थ्य। आपकी भी स्पृहा अज्ञान और अशक्तिके लिये नहीं है, यह आप जानते हैं।

अबोध बालक और उसकी अशक्ति—उसे प्यास लगी है—रोता है। भूख लगे—रोता है। शरीरको मच्छर काटे—रोता है। शरीरमें कोई अन्त:पीडा हो—रोता है। रोना—रुदन ही उसका सहारा है। रुदन ही उसका जीवन है। रुदन सुखका लक्षण तो नहीं है न?

सुकुमार कच्ची त्वचा—मच्छर तो दूर, मक्खियाँ भी काटती हैं और उन्हें उड़ाया नहीं जा सकता। माता पता नहीं क्या-क्या अटर-सटर खा लेती है—उसका परिणाम शिशु भोगता है। उसके शरीरमें पीड़ा होती है, किंतु बता नहीं सकता। कितनी विवशता है। कौन ऐसी विवशता चाहेगा?

क्या हुआ जो शिशु कुछ बड़ा हो गया। उसका ज्ञान कितना? उसकी सभी आवश्यकताएँ दूसरे पूरी करें तो पूरी हों। उसका मन ललचाता है, वह मचलता है और अनेक बार इच्छापूर्तिके स्थानपर घुड़की या चपत पाता है।

अज्ञान और पराधीनताका नाम सुख तो नहीं है!

× × ×

बालक युवक हुआ। उत्साह, साहस और शक्तिका स्रोत फूट पड़ा उसमें। युवक क्या सुखी है? युवावस्था क्या सुखकी अवस्था है? कामनाओंका दावानल हृदयमें प्रज्वलित हो गया। वासनाएँ प्रदीप्त हो उठीं और जहाँ काम है, क्रोध होगा ही।

वासना, असन्तोष, अहंकार, क्रोध—इन सबको युवावस्था साथ लिये आती है। चिन्ता, श्रम, अशान्ति, निराशा, द्वेष—इनसे युवक कहाँ छूट पाता है? वासना—वासना तो सन्तुष्ट होना जानती नहीं और असन्तोष ही दुःखका मूल है, यह कुछ स्पष्ट करनेकी बात नहीं है।

× × ×

युवक वृद्ध हो गया। अनुभव परिपक्व हो गये। ठोकरें खाकर उसके आचरण व्यवस्थित हो गये। सोच-समझकर कुछ करनेकी बात समझमें आ गयी। अनुभवसम्पन्न, समादरणीय वृद्ध—तब क्या वार्धक्यमें सुख है?

कोई मूर्ख भी बुढ़ापेमें सुखकी बात नहीं करेगा। अनुभव क्या काम आये? समझ आयी, पर उसका आना रहा किस कामका? करनेकी शक्ति तो रह नहीं गयी। शरीर असमर्थ हो गया। रोगोंने घर कर लिया देहमें। आँख, कान, नाक, दाँत, हाथ, पैर आदि इन्द्रियाँ जवाब देने लगीं।

अशक्ति, पीड़ा और चिन्ताको छोड़कर बुढ़ापेमें है क्या? शरीरको रोगोंने पीड़ित कर रखा है और मन अपनी असमर्थतासे पीड़ित है। लोग तिरस्कार करते हैं। चारों ओर दुःख-ही-दुःख तो है।

× × ×

शरीरका अन्तिम परिणाम है मृत्यु—वह मृत्यु, जिसका नाम ही दारुण है। मृत्युकी कल्पना ही कम्पित कर देती है। जिस शरीरपर इतना ममत्व—उसे छीनकर मृत्यु चितापर जलनेके लिये छोड़ देती है।

जन्म और मृत्यु—जीवनका प्रारम्भ घोर दुःखसे हुआ और उसका पर्यवसान दुःखमें हुआ। रोता आया, रोता गया। जिसका आदि-अन्त दुःख है, उसके मध्यमें सुख कहाँसे आयेगा? उसके मध्यमें भी दुःख-ही-दुःख है।

'दुःखमेव सर्वं विवेकिनाम्।'

तो फिर सुख है कहाँ? क्या दुःखसागरमें निमग्न रहनेके लिये ही जीवन मिला है? नहीं, ऐसी बात नहीं है, इस दुःखालय अशाश्वत संसारमें भी आनन्दमय जीवन जिया जा सकता है, वह कैसे? इसके लिये अहंताको भूलकर सच्चे मनसे अपनेको प्रभुको समर्पित करना होगा—ऐसा होनेपर दुःखकी होनेवाली अनुभूति सुख—आनन्दमें बदल जायगी, करके तो देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तराखण्डकी त्रासदी

पिछले दिनों १७-१८ जूनको उत्तराखण्डकी पवित्र भूमिपर अचानक एक अभूतपूर्व संकट सामने आया। एकाएक बादल फटे और उत्तराखण्डके पूरे परिसरमें एक साथ बमकी तरह मूसलाधार वर्षा हो गयी, जिसके परिणामस्वरूप बदरीनारायणका मुख्य पुल टूट गया तथा हेमकुण्ड आदि अन्य स्थानोंमें भी कई हजार यात्री फँस गये। केदारनाथमें तो अत्यन्त भयानक स्थिति बन गयी। कुछ ही क्षणोंमें चट्टान एवं पहाड़ी मलबेके साथ मूसलाधार वर्षाके प्रवाहमें पहाड़का सैलाब नीचे केदारनाथ-परिसरमें आ गया, जिसके परिणामस्वरूप पूरा परिसर तहस-नहस हो गया तथा कई हजार दर्शनार्थी एवं तीर्थयात्री, जो वहाँ उपस्थित थे, वे कालके गालमें समा गये। यह एक प्रलयंकारी दृश्य था, जो पहले कभी नहीं हुआ। इस प्रकारकी घटनाकी कल्पना भी कभी नहीं की जा सकती थी। केवल केदारनाथका मूल ज्योतिर्लिंग पूर्ण रूपसे सुरक्षित रहा तथा गर्भमन्दिरका कुछ अंश सुरक्षित था।

इस घटनाको प्राकृतिक आपदाकी संज्ञा दी जाती है। अब प्रश्न उठता है कि यह प्राकृतिक आपदा आयी क्यों? और इसका भयानक परिणाम कितने ही लोगोंको सामूहिक रूपसे भोगना पड़ा। इन सबका कारण क्या है, इसपर विचार करनेकी आवश्यकता है।

अपने यहाँ कर्मका एक सिद्धान्त है—'**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्**' अपने द्वारा किये हुए शुभ-अशुभ कर्मोंका फल व्यक्तिको अवश्य भोगना पड़ता है। इसका तात्पर्य यह है कि सुख-दुःखकी परिस्थितियाँ अपने स्वयंके कर्मोंके आधारपर ही आती हैं। दूसरा कोई किसीको सुखी-दुखी नहीं करता—'**सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा**' यदि कोई यह सोचता है कि मैं दूसरेके कारण सुखी-दुखी हुआ तो यह उसकी अज्ञानता है। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी यही लिखा है—

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

यह बात व्यष्टिके रूपमें अर्थात् व्यक्तिगतरूपमें तो समझमें आती है कि अपने कर्मोंका भोग सबको भोगना पड़ता है, परंतु समष्टिके रूपमें अर्थात् सामूहिक रूपमें अनेक लोगोंको एक साथ कभी-कभी प्राकृतिक प्रकोप आदिका सामना करते हुए दण्ड भोगना पड़ता है। यह क्यों होता है? इसका कारण यही है कि जनसाधारण एवं देशकी जनताके प्रतिनिधि संसद आदि संस्थानोंमें शास्त्रीय सिद्धान्तोंके विरुद्ध मनमाना निर्णय करते हुए कानून बनाते हैं और जनतापर उसे थोपते हैं तथा उसके अनुसार जनता-जनार्दनको चलना पड़ता है। इसी प्रकार जनताद्वारा चुनी हुई सरकार अपने क्षुद्र स्वार्थकी पूर्तिके लिये आध्यात्मिक मान्यताओंके विपरीत जैसे गंगामें बाँध आदि बाँधकर गंगाके अविरल जलको रोकते हुए निर्मल जलको प्रदूषित करना तथा भारतकी इस पवित्र भूमिपर गोमाताकी हत्याका जघन्य पाप जारी रखना, इन सबसे स्वाभाविक रूपमें प्राकृतिक आपदा आदिको निमन्त्रण मिलता है और सामूहिक रूपमें भी जनसाधारण इससे प्रभावित होकर दुःखी होता है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने स्पष्टरूपसे कहा है कि '**यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥**' जो व्यक्ति शास्त्रविधिको छोड़कर स्वेच्छाचारपूर्वक मनमानी कार्य करते हैं, उन्हें सिद्धि भी नहीं मिलती तथा सुख और परम गतिकी भी प्राप्ति नहीं होती।

आज तो वातावरण ऐसा बनता जा रहा है, जैसे कुएँमें भाँग पड़ गयी हो। समाजमें अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार और व्यभिचार बढ़ता जा रहा है। युवक-युवतियोंकी शिक्षा-दीक्षा भी भारतीय संस्कृतिके अनुरूप न होकर पाश्चात्य देशोंसे प्रभावित है। इस प्रकार इस विपरीत वातावरणके लिये हम सब लोग ही जिम्मेदार हैं, इसका परिणाम भी हम सबको व्यक्तिगतरूपमें अथवा सामूहिक रूपमें भोगना ही पड़ेगा।

ऋषि-महर्षियों एवं अपने शास्त्रके अनुसार भगवद्विधान सदा-सर्वदा सबके लिये मंगलकारी होता है। प्रभु किसीका अहित नहीं करते, परंतु उनकी माया बड़ी विचित्र है। वे स्वयं कहते हैं—'**मम माया दुरत्यया।**' मेरी मायाका पार पाना सम्भव नहीं है। परमात्मप्रभु कब किसरूपमें किसका कल्याण करते हैं तथा उसके कल्याणके लिये किस रूपमें उसे दण्ड देते हैं, इसे कोई समझ नहीं सकता।

उत्तराखण्डकी देवभूमिमें इस प्राकृतिक आपदामें भी किसी भी रूपमें जो लोग दिवंगत हो गये, अपने शास्त्रानुसार उनकी मुक्तिमें और कैलासवासकी प्राप्तिमें कोई शंका नहीं की जा सकती, परंतु समाज-परिवार और देशके लिये यह अत्यन्त भयावह और कष्टप्रद बात है, जिसे सहन करनेके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय भी नहीं है। इस आकस्मिक त्रासदीके अवसरपर निःस्वार्थ भावसे पीड़ितोंकी सेवा करके अपनेको कृतार्थ बनाना चाहिये।

संसारकी नश्वरता और क्षणभंगुरतासे परिचित होते हुए भी हम अनभिज्ञ-जैसे बने रहते हैं, यदि हम दुःखकी विपरीत परिस्थितिसे बचना चाहते हैं तो हम सबको भगवान्की आज्ञाके विपरीत कोई कार्य न करते हुए अपने कर्तव्यपालनमें निरन्तर सावधान रहना चाहिये—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

—राधेश्याम खेमका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्णजन्माष्टमीके प्रमुख प्रकाशन

(श्रीकृष्णजन्माष्टमी २८ अगस्त बुधवारको है)

श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन (कोड 571) ग्रन्थाकार—इस पुस्तकमें भगवान् श्रीकृष्णके जन्मसे लेकर, बाल तथा पौगण्ड अवस्थाकी विभिन्न लीलाओंका बड़ा ही साहित्यिक, सरस एवं भावपूर्ण चित्रण किया गया है। राजसंस्करणमें अच्छे तथा मोटे कागजपर प्रकाशित यह पुस्तक साहित्यिक मनोभूमिको संस्कारित करनेवाली तथा श्रीकृष्ण-भक्तोंके लिये अनुपम रसायन है। मूल्य ₹ १४०, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग ₹ ३५ अतिरिक्त।

पदरत्नाकर (कोड 50) पुस्तकाकार—इन पदोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंके चित्रणके साथ ज्ञान, वैराग्य, चेतावनी आदि अनेक विषयोंपर सरल काव्यात्मक प्रकाश डाला गया है। मूल्य ₹ ७०, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग ₹ ३० अतिरिक्त।

श्रीराधा-माधव-चिन्तन (कोड 049) पुस्तकाकार—इसमें श्रीराधाकृष्णका अलौकिक प्रेम ही श्रीराधामाधव-चिन्तनके रूपमें प्रस्फुटित है। भक्ति और शास्त्रीय चिन्तनके अद्भुत समन्वयके साथ यह ग्रन्थ-रत्न सात प्रकरणोंमें विभक्त है। मूल्य ₹ ६०, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग ₹ ३० अतिरिक्त।

कन्हैया (कोड 869), गोपाल (कोड 870), मोहन (कोड 871), श्रीकृष्ण (कोड 872) श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके आधारपर लिखी गयी चित्रकथाके इन पुस्तकोंमें भगवान् श्रीकृष्णके जन्मसे लेकर भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम गमनतककी चुनी हुई लीलाओंसे सजाया गया है। प्रत्येकका मूल्य ₹ १५

अभी उपलब्ध—**सम्पूर्ण श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण—केवल हिन्दी (कोड 1793, 1842)** को एक साथ पैक करके सेट बनाया गया है। सम्पूर्ण सेटका मूल्य ₹ २००।

संक्षिप्त देवीभागवत महापुराण (मोटा टाइप) (कोड 1133) मूल्य ₹ २०० भी उपलब्ध।

श्रीतुलसी-जयन्तीके अवसरपर उपलब्ध—तुलसी-साहित्य

कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
105	विनय-पत्रिका	३५	108	कवितावली	१७	112	हनुमानबाहुक	४
106	गीतावली	३५	110	श्रीकृष्ण-गीतावली	७	113	पार्वती-मंगल	५
107	दोहावली	१७	111	जानकी-मंगल	६	114	वैराग्य-संदीपनी एवं बरवै...	४

एक साथ सम्पूर्ण सेट मँगवानेके लिये रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंगखर्चसहित ₹ १६५ भेजें। (श्रीतुलसी-जयन्ती १३ अगस्त सोमवारको है।)

पुस्तकोंके लागतमें भारी वृद्धि

कागज, स्याही, छपाई एवं जिल्द बनानेके प्रयोगमें होनेवाली अन्य वस्तुओंके मूल्यमें भारी वृद्धि हो गयी है और आगे भी इसमें वृद्धि सम्भावित है। गीताप्रेस विगत ८९ वर्षोंसे अपने सत्साहित्य लागतसे भी कम मूल्यमें उपलब्ध कराता आ रहा है। उपर्युक्त परिस्थितिमें भी हमारा प्रयास है कि मूल्यमें वृद्धि कमसे कम करें और उसे अगले संस्करणोंसे ही करें। अभीतककी छपी पुस्तकें पिछले मूल्यपर ही उपलब्ध रहेंगी। पाठक वर्तमान छपे मूल्यपर चिप्पी आदि लगाकर बढ़ा मूल्य माँगनेवाले पुस्तक-विक्रेताओंको अधिक मूल्य न देवें और ऐसे पुस्तक-विक्रेताओंकी सूचना भी हमें देनेकी कृपा करें।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र० ति० २०-७-२०१३

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2011-2013

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2011-2013

गीताप्रेस गोरखपुरसे प्रकाशित-कर्मकाण्डकी प्रमुख पुस्तकें

[१९ सितम्बरसे पितृपक्ष (महालया) आरम्भ हो रहा है]

अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश (कोड 1593) ग्रन्थाकार—इस ग्रन्थमें मूल ग्रन्थों तथा निबन्ध-ग्रन्थोंको आधार बनाकर श्राद्ध-सम्बन्धी सभी कृत्योंका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। मूल्य ₹ १००

जीवच्छ्राद्धपद्धति (कोड 1895)—प्रस्तुत पुस्तकमें जीवित श्राद्धकी शास्त्रीय व्यवस्था दी गयी है, जिसके माध्यमसे व्यक्ति अपने जीवित रहते ही मरणोत्तर क्रियाका सही सम्पादन करके कर्म-बन्धनसे मुक्त हो सके। मूल्य ₹ ५०

गया-श्राद्ध-पद्धति (कोड 1809)—शास्त्रोंमें पितरोंके निमित्त गया-यात्रा और गया-श्राद्धकी विशेष महिमा बतायी गयी है। आश्विन मासमें गया यात्राकी परम्परा है। प्रस्तुत पुस्तकमें गया-माहात्म्य, यात्राकी प्रक्रियां, श्राद्धका महत्त्व तथा श्राद्धकी प्रक्रियाको सांगोपांग ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। मूल्य ₹ ३०

गरुडपुराण-सारोद्धार (कोड 1416)—श्राद्ध और प्रेतकार्यके अवसरोंपर विशेषरूपसे इसके श्रवणका विधान है। यह कर्मकाण्डी ब्राह्मणों एवं सर्व सामान्यके लिये भी अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹ ३०

नित्यकर्म-पूजा-प्रकाश, सजिल्द (कोड 592)—इस पुस्तकमें प्रात:कालीन भगवत्स्मरणसे लेकर स्नान, ध्यान, संध्या, जप, तर्पण, बलिवैश्वदेव, देव-पूजन, देव-स्तुति, विशिष्ट पूजन-पद्धति, पञ्चदेव-पूजन, पार्थिव-पूजन, शालग्राम-महालक्ष्मी-पूजनकी विधि है। मूल्य ₹ ५० गुजराती, तेलुगु भी।

त्रिपिण्डी श्राद्ध (कोड 1928)—अपने कुल या अपनेसे सम्बद्ध अन्य कुलमें उत्पन्न किसी जीवके प्रेतयोनि प्राप्त होनेपर उसके द्वारा संतानप्राप्तिमें बाधा या अन्यान्य अनिष्टोंकी निवृत्तिके लिये किया जानेवाला श्राद्ध त्रिपिण्डी श्राद्ध है। इस पुस्तकमें त्रिपिण्डी श्राद्धका सविधि वर्णन किया गया है। मूल्य ₹ १५

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

शिव-स्मरण (कोड 1954)—आशुतोष भगवान् शिवकी अद्‌भुत लीलाएँ उनके भक्तवत्सलताकी प्रतीक हैं, उसी प्रकार उनके अनेक नाम भी अन्यतम तथा सृष्टिके गूढ़ रहस्योंके परिचायक हैं, उनमें आध्यात्मिक जीवन शैलीके विचित्र रहस्य हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें कथानक तथा प्रतीकात्मक शैलीमें भगवान् शंकरके शिव, पुरारि, दक्षिणामूर्ति, पंचवक्त्र, आशुतोष, अर्धनारीश्वर, नीललोहित, नटराज आदि दस नामोंपर गोलोकवासी श्रीसुदर्शनसिंहजी चक्रके द्वारा प्रस्तुत ललित भाषामें सरस निबन्ध दिये गये हैं। मू० ₹ ८

गोसेवाका चमत्कार (कोड 969) तेलुगु—इस पुस्तकमें आधुनिक सभ्यतासे प्रभावित भारतीय जन-मानसको गो-भक्ति और गो-महिमाका ज्ञान करानेके उद्देश्यसे कल्याणमें पूर्व प्रकाशित गो-सेवाके दिव्य चमत्कारोंका सचित्र संकलन प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹ २० (हिन्दी, तमिलमें भी)।

१९वाँ दिल्ली पुस्तक-मेला सन् २०१३—इस वर्ष भी प्रगति मैदान, नई दिल्लीमें (**दिनाङ्क २३ अगस्तसे ३१ अगस्त २०१३ तक**) आयोजित दिल्ली पुस्तक-मेलामें गीताप्रेसद्वारा एक भव्य पुस्तक-स्टाल लगाकर विभिन्न भारतीय भाषाओंमें प्रकाशित अपने प्रकाशनोंके प्रदर्शन एवं बिक्रीकी व्यवस्था करनेका प्रयास है।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

मूल्य ₹ ८

भगवती दुर्गाजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

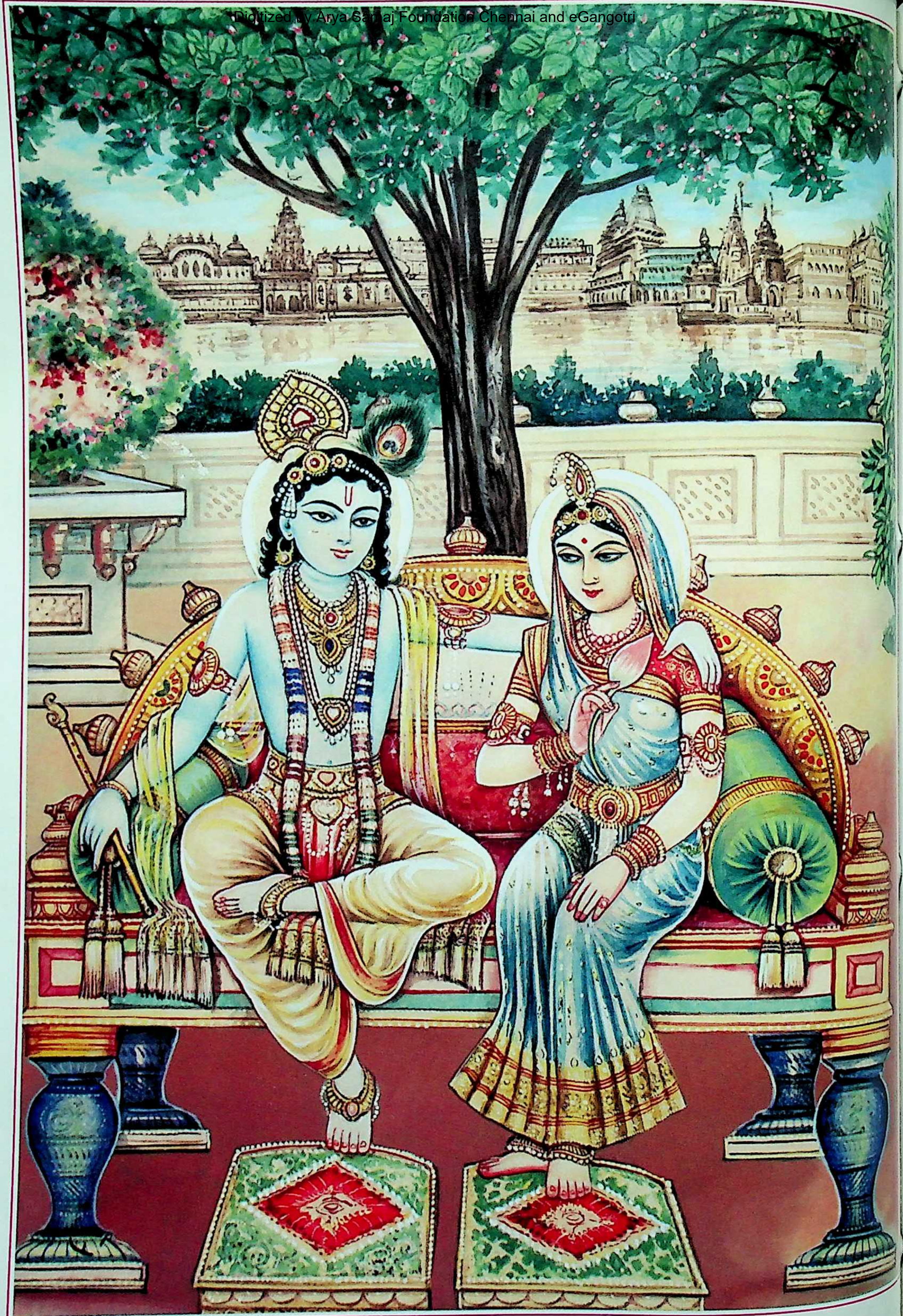

श्रीराधा-माधव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

Central Library Gurukul Kangri University Haridwar-249404 (U.A.)

वाग् गद्‌गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्‌गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

वर्ष ८७ गोरखपुर, सौर कार्तिक, वि० सं० २०७०, श्रीकृष्ण-सं० ५२३९, अक्टूबर २०१३ ई० संख्या १०
पूर्ण संख्या १०४३

'सोहत जुगल राधे-स्याम'

सोहत जुगल राधे-स्याम।
नील नीरद स्याम, गोरी राधिका अभिराम॥
पीत बसन सुनील तन पर लसत सोभा-धाम।
नील सारी अति सुसोभित गौर देह ललाम॥
उभय अनुपम रूप-निधि, श्रृंगार के श्रृंगार।
सील-गुन-माधुर्य-मंडित अतुल, सुषमागार॥
दिब्य देह, सुमन अलौकिक सुचि सदा अबिकार।
सर्ब, सर्बातीत, निरगुन, सकल गुन आधार॥
प्रकृति-गत, नित प्रकृतिपर, रस दिब्य पारावार।
एक नित जो, बने नित दो करत नित्य बिहार॥
करत अति पावन परस्पर प्रेममय ब्यौहार।
स्व-सुख-बांछा-रहित पूरन त्यागमय आचार॥

[पद-रत्नाकर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर कार्तिक, वि० सं० २०७०, श्रीकृष्ण-सं० ५२३९, अक्टूबर २०१३ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- 'सोहत जुगल राधे-स्याम'	३
२- कल्याण	५
३- बाह्य एवं आन्तरिक त्यागका तात्पर्य (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	६
४- और क्या चाहते हैं भगवान्से ? (डॉ० श्रीपुष्करलालजी केडिया)	७
५- श्रीराधाजी कौन थीं ? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	९
६- रामायण कभी छूटी है हमें ? (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	१२
७- 'सिसक पड़े रघुबीर' [कविता] (श्रीभारतभूषणजी तायल)	१४
८- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१५
९- 'गर्भपात सब पापां रो बाप' [कविता] (श्रीबजरंगलालजी सोनी)	१८
१०- सूरदासका श्रीरामभक्तिकाव्य (डॉ० श्रीगोपीनाथजी तिवारी, एम०ए०, पी-एच०डी०)	१९
११- श्रीहनुमान्जी—एक श्रेष्ठ कथावाचक (श्रीअमृतलालजी गुप्ता)	२३
१२- विजय [पौराणिक लघु-कथा] (श्रीजहूरबख्शजी)	२५
१३- संसार-बन्धन (सुश्री शकुन्तला गुप्ता, बी०ए०, हिन्दी-प्रभाकर)	२७
१४- शास्त्रवाद (श्रद्धेय पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)	२९
१५- नवधा भक्ति—वन्दन [कहानी] (श्री 'चक्र')	३४
१६- क्या प्रदर्शन ही जीवन है ? (श्रीसुन्दरलालजी बोहरा)	३८
१७- सन्त-उद्बोधन (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	४०
१८- भूकम्पका कारण कत्लखाने (श्रीके० पिल्लय)	४१
१९- साधनोपयोगी पत्र	४२
२०- व्रतोत्सव-पर्व [कार्तिकमासके व्रत-पर्व]	४४
२१- व्रतोत्सव-पर्व [मार्गशीर्षमासके व्रत-पर्व]	४५
२२- कृपानुभूति	४६
२३- पढ़ो, समझो और करो	४७
२४- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- भगवती दुर्गाजी	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- श्रीराधा-माधव	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- भगवती श्रीराधाजी	(इकरंगा)	९
४- श्रीराधा-कृष्णका विवाह कराते ब्रह्माजी	(इकरंगा)	१०
५- बालरूपमें नारद	(इकरंगा)	१७
६- धरतीमाताका गोरूप धारणकर अवतारहेतु प्रार्थना करना	(,,)	४१

सन् २०१४ के लिये शुल्क
एकवर्षीय
अजिल्द ₹ २००
सजिल्द ₹ २२०
पंचवर्षीय
अजिल्द ₹ १०००
सजिल्द ₹ ११००

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

चालू वर्षका शुल्क
एकवर्षीय
अजिल्द ₹ १८०
सजिल्द ₹ २००
पंचवर्षीय
अजिल्द ₹ १०००
सजिल्द ₹ ११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क } वार्षिक US$ 45 (₹ 2200) पंचवर्षीय US$ 225 (₹ 11000) { Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721
सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

निश्चय करो—मुझपर भगवान्‌की अनन्त कृपा है। भगवत्कृपाकी अनवरत वर्षा हो रही है। मेरा तन-मन, मेरा रोम-रोम भगवत्कृपासे भीगकर तर हो गया है। मैं भगवत्कृपाके सुधा-सागरमें निमग्न हो रहा हूँ। मेरे ऊपर-नीचे, दाहिने-बायें, बाहर-भीतर—सर्वत्र भगवत्कृपा भरी है। मैं सब ओरसे भगवत्कृपासे सराबोर हो रहा हूँ।

निश्चय करो—भगवत्कृपाकी बाढ़से मेरा सारा मैल धुल गया है, पाप-तापका सारा कूड़ा-कचरा बह गया है। काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सर, दम्भ-अभिमान, ईर्ष्या-वैर सब नष्ट हो गये हैं। भगवत्कृपाके रहते मल-विक्षेप मेरे अन्दर नहीं रह सकते।

निश्चय करो—भगवत्कृपाके प्रभावसे मेरे अन्दर समता, शान्ति, अनासक्ति, ज्ञान और प्रेम बढ़े जा रहे हैं।

निश्चय करो—अब मेरे मनमें कोई भी बुराई धँस नहीं सकती, मेरी वाणीमें कभी मिथ्या और कटुताका विष आ नहीं सकता, मेरी कोई भी इन्द्रिय कभी भगवद्विमुख होकर चल नहीं सकती।

निश्चय करो—अब मेरा मन भगवान्‌के स्मरण-चिन्तनको, भगवान्‌के मधुर मनोहर स्वरूपके ध्यानको कभी क्षणभरके लिये भी छोड़ नहीं सकता, मेरी वाणी भगवान्‌के नाम-गुण-गानसे कभी विलग नहीं हो सकती और मेरा शरीर उनकी सेवासे कभी चूक नहीं सकता।

× × ×

निश्चय करो—मैं भगवान्‌का हो गया हूँ और भगवान् मेरे हो गये हैं। हमारा यह सम्बन्ध अच्छेद्य और अटूट है। अब कभी भी मैं भगवान्‌से विमुख और भगवान् मुझसे अलग नहीं हो सकते।

निश्चय करो—अब यह शरीर, मन, इन्द्रियाँ सब कुछ भगवान्‌के हो गये हैं। अब इनके द्वारा जो कुछ भी होगा, सब भगवान्‌की प्रेरणासे, उन्हींकी शक्तिसे, उन्हींके मंगलमय संकल्पसे होगा। अतएव वह स्वाभाविक ही परम मंगलमय होगा। अब इस शरीरसे मंगल-कार्य ही होंगे, मनसे मंगल-चिन्तन ही होगा और इन्द्रियोंसे मंगलका ही ग्रहण होगा।

निश्चय करो—मंगल एकमात्र मंगलमय भगवान् और मंगलमय भगवान्‌की मंगलमयी लीला ही हैं। मंगलमय भगवान्‌को भुलाकर जो कुछ भी है, वह तो सर्वथा अमंगलस्वरूप ही है। अतः अब अमंगल मेरे समीप कभी आ ही नहीं सकता।

निश्चय करो—अब वैराग्य, शान्ति, समता, प्रेम और आनन्द मुझसे कभी विलग नहीं हो सकते; क्योंकि अब भगवान् कभी मुझसे विलग नहीं होंगे और ये सब सद्भाव और सद्‌गुण भगवान्‌के साथ वैसे ही नित्य रहते हैं, जैसे सूर्यके साथ प्रकाश रहता है।

निश्चय करो—मेरा चित्तभवन भगवान्‌से भर गया है, अब उसमें अन्य किसी भी वस्तुके लिये जगह ही नहीं रही।

× × ×

निश्चय करो—'मैं' और 'मेरा' सब कुछ अब प्रभुका हो गया है। अब 'मैं' और 'मेरे' पर मेरा जरा भी अधिकार नहीं रह गया है। इनको अब एकमात्र प्रभु ही अपने इच्छानुसार बरतते हैं। **'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाह्य एवं आन्तरिक त्यागका तात्पर्य

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

[गताङ्क ९ पृ०-सं० ८ से आगे]

अब आपलोगोंको मनुष्यमात्रके लिये त्याग करनेकी बातें बतलायी जाती हैं। वह त्याग सबका उद्धार करनेवाला है। तीर्थपर आकर क्या त्याग करना चाहिये—अब यह बतलाया जा रहा है। बतलायी हुई बातोंको सुनकर जिन बातोंका त्याग करना आप उचित समझें, उनका त्याग करना चाहिये।

(१) दिनमें सोनेका त्याग करना चाहिये। रातमें भी छः घंटोंसे ज्यादा नहीं सोना चाहिये। आपत्तिकालमें यानी बीमारीमें अथवा कभी रेलयात्राके कारण या अन्य किसी कारण अगर रात्रिको नींद निकालनेका काम पड़ा हो तो दिनमें शयन किया जा सकता है। हमने इसके सम्बन्धमें स्कन्दपुराणमें भी पढ़ा था। उसमें यही बात लिखी थी कि दिनमें सोना पाप है और उस पापका फल होता है नरककी प्राप्ति। इसलिये हमलोगोंको दिनमें सोकर पाप नहीं करना चाहिये। रात्रिमें भी छः घंटोंसे ज्यादा नहीं सोना चाहिये। रात्रिमें यदि आप कार्यवश दो ही घंटे सो पाये हों, यानी कोई पहरेका काम पड़ गया अथवा बीमारीके कारण रात्रिमें नींद नहीं आयी तो उसके बदलेमें आप दिनमें भी सो सकते हैं, लेकिन स्वाभाविक तौरपर आराम करनेके लिये दिनमें सोनेकी जरूरत नहीं है। तात्पर्य यह है कि अधिक निद्राका त्याग करना चाहिये।

(२) प्रमादका भी त्याग करना चाहिये। यह प्रमाद साक्षात् मृत्युका ही स्वरूप है। महाभारतके उद्योगपर्वमें सनत्सुजातने महाराज धृतराष्ट्रको बतलाया है कि यह प्रमाद ही मृत्यु है। यहाँ प्रश्न होता है कि प्रमाद किसे कहते हैं?

न करनेयोग्य कर्मोंको करना यानी निषिद्ध कर्मोंको करना और करनेयोग्य कर्तव्य कर्मोंको नहीं करना—इसका नाम प्रमाद है।

करनेयोग्य कर्मोंको नहीं करना क्या है? अपने माता-पिता एवं गुरुजनोंकी सेवा करना, यज्ञोपवीत हो तो सन्ध्या एवं गायत्री-जप करना आदि जो कार्य शास्त्रोंमें करनेके लिये बतलाये गये हैं, उनका पालन नहीं करना भी अपराध है और शास्त्रके विपरीत कर्मोंको करना भी अपराध है। शास्त्रके विपरीत कर्मोंको पाप बतलाया गया है, अतः उनका त्याग करना चाहिये। यह बात जब समझमें आ जाय कि यह पाप है, दुर्गुण-दुराचार है तो उसका उसी समय त्याग कर देना चाहिये। क्यों व्यर्थमें उसको करनेका परिश्रम करना चाहिये? जिस प्रकार साधु-संन्यासियोंके लिये आरम्भमात्रका त्याग बतलाया गया है, उस प्रकार गृहस्थके लिये न तो आरम्भमात्रका त्याग बतलाया गया है और न कर्तव्य-कर्मोंका ही त्याग बतलाया गया है। उन कर्मोंको करनेमें जो हिंसा होती है, उसका त्याग करनेकी बात अवश्य कही गयी है।

(३) अपनेमें जो दुर्बुद्धि (दुर्भाव) है, उसका त्याग करना चाहिये। जब यह बात समझमें आ जाय कि यह दुर्बुद्धि (दुर्भाव) है तो उसका तत्काल त्याग कर देना चाहिये। जो बुरे आचरण और क्रियाएँ होती हैं, उनको दुराचार कहा जाता है और भीतर हृदयमें जो बुरा ध्येय, बुरा भाव, बुरी नीयत, बुरा लक्ष्य आदि होते हैं, उनको दुर्गुण कहा जाता है। इन दोनोंका ही त्याग करना चाहिये।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि आपने तो प्रकरणके आरम्भमें ऐसा कहा था कि उनके त्याग करनेमें कोई कठिनाई नहीं होती, लेकिन हमलोगोंको तो इनके त्याग करनेमें कठिनाई मालूम पड़ती है, उसका क्या कारण है?

इसका उत्तर यह है कि जो बातें भीतर हृदयमें प्रवेश कर चुकी हैं, उनके त्याग करनेमें तो थोड़ा परिश्रम लग सकता है, लेकिन जो बातें अभी बाहरकी ही हैं, उनके त्यागमें कौन-सा परिश्रम लगता है? यहाँ मैं अब बाहरके पाप-कर्मोंको त्याग करनेकी बात कहता हूँ। पाप-कर्मोंको करनेमें तो आपलोगोंका कुछ-न-कुछ परिश्रम ही होगा, उस परिश्रमके त्याग करनेकी ही बात लोगोंसे कही जाती है।

यदि आपलोग कहें कि हमको तो पाप-कर्मोंको करनेमें सुख मिलता है, मजा आता है तो वह हमको भी जरा समझा दें कि उसमें क्या मजा मिलता है। आप शायद कहें कि आदमी चोरी करता है तब उसको रुपया मिलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, घरमें धन आता है। पर चोरी करनेपर रुपया मिलता है या नहीं, यह बात तो चोरी करनेके बाद ही जानी जा सकती है, लेकिन पहले आप हमको यह बात बतलाइये कि क्या पहले जो चोरी करनेकी क्रिया होती है—दीवालमें सेंध लगाकर घरमें घुसना या मकानपर चढ़ना या अन्य किसी प्रकारसे छिपकर चोरी करनेका प्रयत्न करना—क्या इसमें भी कभी सुख मिलता है ? इस क्रियासे सुखकी कल्पना तो इसलिये होती है कि उसके बाद रुपया मिलनेकी सम्भावना है। चोरीका काम करके भी अगर रुपया नहीं मिलता है तो उसका केवल परिश्रम ही हुआ, चोरी करते समय यदि उस घरका कोई आदमी जाग जाय तो जान लेकर भागना पड़ेगा, भागनेपर भी यदि कहीं पकड़में आ गया तो कैद हो जाती है। पकड़े जानेपर यदि कैद (सजा) यहाँ नहीं भी मिलती है तब भी भगवान्के घर तो सजा मिलेगी ही। यहाँकी सरकारको तो लोग धोखा भी दे सकते हैं, लेकिन भगवान्को धोखा नहीं दे सकते। जो यह बात कही जाती है कि चोरी करनेसे रुपया मिलता है, वह तो मूर्खता है। रुपया तो जो आपकी तकदीरमें, आपके भाग्यमें है, वह आपको मिलता है। उसको तो भगवान् पहुँचा जाते हैं। आपकी तकदीर (भाग्य)-में जो धन लिखा है, वह तो आपको हर प्रकारसे मिल ही जाता है। लेकिन इसके लिये पाप करना तो करनेवालेकी मूर्खता है और कमजोरी यानी ईश्वरमें विश्वासका अभाव है। कोई भाई पूछ सकते हैं कि क्या बिना परिश्रम एक भी रुपया मिल सकता है ? इसके उत्तरमें मैं कहता हूँ कि खूब मिल सकता है। जिस प्रकार एक धनी भाई किसी एक पन्द्रह वर्षके लड़केको गोद लेता है तो इस पन्द्रह सालके लड़केको धनी बननेमें क्या परिश्रम हुआ ? वह तो गरीब घरका होनेपर भी लाखोंका मालिक बन जाता है, अतः यह सब तो तकदीरकी बात है। इसी प्रकार एक भाई रुपयोंकी प्राप्तिके लिये विशेष प्रयत्न करता है, लेकिन रुपयोंकी प्राप्ति नहीं होती, वह इसमें सफल नहीं होता। यह तो प्रत्यक्ष बात है कि रुपया तकदीरमें होनेसे ही मिलता है। तकदीरमें नहीं है तो चोरी करनेपर भी रुपया नहीं मिलता। फिर चोरी क्यों करनी चाहिये! [क्रमशः]

और क्या चाहते हैं भगवान्से ?

(डॉ० श्रीपुष्करलालजी केडिया)

हमारी सनातन मान्यता है कि चौरासी लाख योनियोंमें भटकनेके बाद मानव-योनि प्राप्त होती है। इसी मानव-शरीरसे हम जीवनके चारों पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्राप्त करते हैं। मनुष्य अपनी बुद्धिके कारण ही पशु-पक्षियों आदि योनियोंसे पृथक् है। अन्य योनियाँ तो प्रकृतिपर ही पूर्णरूपसे निर्भर रहती हैं। जिस वातावरणमें जैसी प्रकृति होती है, उसीके अनुसार उन्हें चलना या रहना होता है। वे सब अपना जीवन मात्र तीन आवश्यकताओं यथा—आहार, निद्रा एवं मैथुनकी पूर्तिमें लगाती हैं, लेकिन मानव-जीवनका मात्र इतना ही उद्देश्य नहीं है। बुद्धितत्त्व उसे अन्य योनियोंसे पृथक् कर देता है। अपनी चिन्तन-शक्तिके कारण वह प्रकृतिको अपने अनुकूल बना लेता है। यह अनमोल शक्ति मानवमात्रके लिये ईश्वरीय वरदान है। आज विश्वमें जो भी सृजनात्मक दृश्य हैं, वे सब मनुष्यकी इसी चिन्तन-शक्तिके परिणाम हैं।

दीर्घ आयु—ईश्वरने पशु-पक्षियोंसे अधिक लम्बी आयु हमें दी है। अधिकांश पशु-पक्षी तो मात्र ५ से २०-२५ वर्षोंकी ही आयु पाते हैं। कई कीड़े-मकोड़े केवल कुछ दिनों या कुछ घंटोंकी ही आयु पाते हैं और अपनी उस आयुका उपयोग किसी सृजनमें नहीं, बल्कि क्षुधापूर्ति, निद्रा आदिमें ही बिता देते हैं। कारण कि उनमें बुद्धितत्त्व एकदम शून्य होता है और विचार-शक्ति तो आ ही नहीं सकती। हम जरा इस ईश्वरीय वरदानकी महत्तापर चिन्तन करें कि उसने हमें इस वरदानसे भूषित किया है। हमें १०० वर्ष की दीर्घ आयु दी है। एक दिनमें २४ घंटे होते हैं और एक वर्षमें लगभग ८७६० घंटे होते हैं। इस प्रकार १०० वर्षकी आयुमें हमें ८ लाख ७६ हजार घंटेका जीवन मिला है। इतना अनमोल शरीर और इतना लम्बा जीवन यह भी बुद्धितत्त्वके साथ, वस्तुतः अत्यन्त अमूल्य वरदान है। हमें एक-एक पलका मूल्य समझना चाहिये। यह शरीर एक छिद्रयुक्त घड़ा है, जो प्रतिपल रिक्त हो रहा है। ऐसा समझकर हमें बहुत सावधान रहनेकी जरूरत है। हमें एक-एक पलका मूल्य समझना चाहिये।

अद्भुत यन्त्रशाला—यह शरीर एक अद्भुत यन्त्रशाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। ईश्वरने मानव-मस्तिष्क के रूपमें एक अलौकिक कम्प्यूटर दिया है। उसमें अलौकिक कल्पना एवं सृजनशक्ति दी है। कान एक चमत्कारपूर्ण श्रवणयन्त्र है और हमारी आँखें करोड़ों दृश्ययन्त्रोंसे भी बढ़कर हैं। हमारी शरीर-रचना ऐसी है कि यदि हम इसको एक यन्त्रशालाके रूपमें बनाना चाहें तो कई किलोमीटरकी यन्त्रशाला भी छोटी पड़ेगी। सिर एवं कोमल मर्म-अंगोंकी रक्षाके लिये केश एवं रोमराशि दी है। इस महान् यन्त्रको चलानेके लिये कोई भी यान्त्रिक व्यवस्था नहीं है। सब कुछ स्वचालित है। इसकी रचना हमें चकित कर देती है। यह सब प्रभुका वरदान है।

अपूर्व गुप्त शक्तियाँ—इसके साथ ही उसने हमें अनेक गुप्त शक्तियाँ दी हैं। हमारी स्मरणशक्ति, योगशक्ति, आत्मशक्ति, इच्छाशक्ति, आचरणशक्ति, कल्पनाशक्ति, संकल्पशक्ति, धारणाशक्ति, शब्दशक्ति आदि तो उसी परमपिताकी देन हैं। यही नहीं, उसने हमें कर्म करनेके लिये दो हाथ दिये हैं। इन हाथोंके बलपर ही हम निर्माण-कार्य करनेमें सक्षम होते हैं। संसारमें जितना सब सृजन-कार्य दिखलायी पड़ता है, वह सब इसी कर्मशाला—हाथोंका चमत्कार है।

विराट् स्वरूप—हम श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णके विराट् शरीरका आख्यान पढ़ते हैं। मनुष्यके अन्दर जो गुप्त शक्तियाँ हैं, उन्हींको पहचानकर मनुष्य वामनसे विराट् बन जाता है। भगवान् वामनने तीन पगोंमें समस्त लोकोंको नाप लिया था। यह एक प्रतीक है। हम भी अपने चरणोंमें उसी शक्तिका आह्वान कर सकते हैं। अपने दो हाथोंको सहस्र हाथोंमें बदल सकते हैं। बस, केवल उन शक्तियोंका स्मरण करना है। इस स्थलपर हनुमान्‌जीका प्रसंग याद आता है। सीताजीकी खोजके लिये सभी वानर वीर एकत्रित थे। समस्या थी कि सागरको पार कौन करे? सभीने अपने-अपने बलका बखान किया, पर सभीमें कुछ-न-कुछ संशय था और जहाँ संशय होता है, वहाँ सफलता नहीं मिलती है। जामवन्तने हनुमान्‌जीकी गुप्त शक्तियोंका स्मरण दिलाया। बस, हनुमान्‌जीने पर्वताकार रूप धारण कर लिया। अब उनमें संशय नहीं था। अतः ये सफल हुए।

हमारे दो पैर इस शरीररूपी रथके दो गतिशील चक्र हैं। हम इन्हींके बलपर अपने अभीष्ट लक्ष्यतक पहुँचते हैं। हम अपनी संकल्पशक्तिसे इन्हें वामनभगवान्‌के विराट् पदोंका स्वरूप प्रदान कर सकते हैं। तीन ही चरणमें समस्त लोकोंको नाप सकते हैं। हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीने इनकी विराट् शक्तियोंको पहचाना था। इसीलिये वे जिस पथपर बढ़े, कोटि-कोटि पग उसी ओर बढ़ चले।

यह शरीर एक कल्पवृक्ष—कल्पवृक्ष इच्छित फल देता है। हम ईश्वरप्रदत्त इसी शरीरमें छिपी गुप्त शक्तियोंसे मनचाही सिद्धियाँ प्राप्त कर सकते हैं। इसी शरीरमें दुर्गा एवं शिव का तृतीय नेत्र भी है। हम उस तीसरे नयन को जाग्रत् कर क्या नहीं कर सकते हैं? आठों सिद्धियाँ और नवों निधियाँ हमें इसी शरीरसे प्राप्त हो सकती हैं।

कितने मूल्यवान् हैं हमारे अंग—हमारे शरीरका प्रत्येक अंग इतना मूल्यवान् है कि हम अपार सम्पदा देकर भी उनका मूल्यांकन नहीं कर सकते हैं। कोई हमें चाहे जितना धन दे, हम अपना कोई अंग यथा—आँख, कान, हाथ, पैर आदि नहीं दे सकते हैं। अब आप ही अनुमान लगाइये कि ईश्वरने कितने अमूल्य उपहारोंसे हमें विभूषित किया है।

ईश्वरने जब इतने अवदान हमें दिये हों तो हम क्यों न उनका सदुपयोग करें। अन्तिम समयमें जब हमारी पेशी उसके सामने होगी तो वह हमसे प्रश्न करेगा कि मैंने तुम्हें दो हाथ दिये, इनसे तुमने कितना लोकोपकारी सृजन किया? कितने बेसहारोंको ऊपर उठाया? उनके आँसू पोंछे और मैंने जो तुम्हें धन-सम्पदा दी, उसका कितना उपयोग समाजके हितमें किया? इसी प्रकार जब वह पैरोंके विषयमें पूछेगा कि दीन-दुखियोंकी आह सुनकर क्या तुम उनके पास गये? हम क्या उत्तर देंगे?

ईश्वर हमें किसी उद्देश्यके लिये ही मानव-शरीर देता है और अपने अनमोल दानोंसे हमें समृद्ध बनाता है, हमारा भी यह परम कर्तव्य है कि ईश्वरकी इच्छाकी अवहेलना न हो और न उसके दानोंका दुरुपयोग। हमें जो उसने दिया है, वह सब अनमोल है। इतने वरदान पाकर भी हम ईश्वरसे और क्या चाहते हैं? हम निष्ठासे इस मानव-शरीरको सार्थक उद्देश्योंकी पूर्तिमें लगायें, यही ईश्वरके इन वरदानोंके प्रति हमारा प्रतिमूल्य है, यही मानव-जीवनकी सार्थकता है और यही ईश्वरके प्रति धन्यवाद है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीराधाजी कौन थीं ?

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

मेरे विश्वासके अनुसार श्रीराधा-कृष्णतत्त्व सर्वथा अप्राकृत है, इनका विग्रह अप्राकृत है, इनकी समस्त लीलाएँ अप्राकृत हैं—जो अप्राकृत क्षेत्रमें, अप्राकृत मन-बुद्धि-शरीरसे अप्राकृत पात्रोंमें हुई थीं।* अप्राकृत लीलाको देखने, सुनने, कहने और समझनेके लिये अप्राकृत नेत्र, कर्ण, वाणी और मन-बुद्धि चाहिये। अतएव मुझ-सा प्राकृत प्राणी, प्राकृत मन-बुद्धिसे कैसे इस तत्त्वको जान सकता है और कैसे प्राकृत वाणीमें उसका वर्णन कर सकता है। अतएव इस सम्बन्धमें मैं जो कुछ भी लिख रहा हूँ, उससे किसीको यह न समझना चाहिये कि मैं जो कहता हूँ यही तत्त्व है, इससे परे और कुछ नहीं है; न यह मानना चाहिये कि मैं किसी मतविशेषपर आक्षेप करता हूँ या किसी तार्किकका मुँह बन्द करनेके लिये ऐसा लिखता हूँ अथवा आग्रहपूर्वक अपना विश्वास दूसरोंपर लादना चाहता हूँ। मेरा यह कहना कदापि नहीं है कि मेरी लिखी बातोंको पाठक मान ही लें। यह तो सिर्फ अपने विश्वासकी बात—शास्त्र और सन्तोंद्वारा सुनी हुई—अपने कल्याणके लिये लिखी जा रही है। मेरी प्रार्थना है कि पाठकगण तर्क-बुद्धिका आश्रय करके मुझसे इसके सम्बन्धमें कोई प्रश्नोत्तरकी आशा कृपया न रखें। विवादमें तो मैं अपनी हार पहले ही स्वीकार कर लेता हूँ; क्योंकि मैं इस विषयपर तर्क करना ही नहीं चाहता। अवश्य ही मेरे विश्वासका बदलना तो अन्तर्यामी प्रभुकी इच्छापर ही अवलम्बित है।

परिपूर्णतम, परमात्मा, परात्पर, सच्चिदानन्दघन, निखिल ऐश्वर्य-माधुर्य और सौन्दर्यके सागर, दिव्य सच्चिदानन्दविग्रह आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण और भगवान् श्रीराममें मैं कोई भी भेद नहीं मानता और इसी प्रकार भगवती श्रीराधाजी, श्रीरुक्मिणीजी और श्रीसीताजी आदिमें भी मेरी दृष्टिसे कोई भेद नहीं है। भगवान्‌के विभिन्न सच्चिदानन्दमय दिव्य लीला-विग्रहोंमें विभिन्न नाम-रूपोंसे उनकी ह्लादिनी शक्ति साथ रहती ही हैं। नाम-रूपोंमें पार्थक्य दिखनेपर भी वस्तुतः वे सब एक ही हैं। स्वयं श्रीभगवान्‌ने ही श्रीराधाजीसे कहा है—

यथा त्वं राधिका देवी गोलोके गोकुले तथा।
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्भवती च सरस्वती॥
भवती मर्त्यलक्ष्मीश्च क्षीरोदशायिनः प्रिया।
धर्मपुत्रवधूस्त्वं च शान्तिर्लक्ष्मीस्वरूपिणी॥
कपिलस्य प्रिया कान्ता भारते भारती सती।
द्वारवत्यां महालक्ष्मीर्भवती रुक्मिणी सती॥
त्वं सीता मिथिलायां च त्वच्छाया द्रौपदी सती।

× × × ×

रावणेन हृता त्वं च त्वं च रामस्य कामिनी॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, कृष्णजन्मखण्ड १२६।९६—९८, १००)

'हे राधे! जिस प्रकार तुम गोलोक और गोकुलमें श्रीराधिकारूपसे रहती हो, उसी प्रकार वैकुण्ठमें महालक्ष्मी और सरस्वतीके रूपमें विराजमान हो। तुम ही क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णुकी प्रिया मर्त्यलक्ष्मी हो। तुम ही धर्मपुत्रकी कान्ता लक्ष्मीस्वरूपिणी शान्ति हो। तुम ही भारतमें कपिलकी प्रिय कान्ता सती भारती हो। तुम ही द्वारकामें महालक्ष्मी रुक्मिणी हो। तुम्हारी ही छाया सती द्रौपदी है। तुम ही मिथिलामें सीता हो। तुम्हींको रामकी प्रिया सीताके रूपमें रावणने हरण किया था।'

* श्रीभगवान्‌के देहादि यदि उस मायाके कार्य पंचमहाभूतोंसे निर्मित—प्राकृत होते, जो माया आवरणरूपा है, तो मायातीत, गुणातीत, आत्माराम मुनिगण भगवान्‌के सौन्दर्य, उनकी अंग-गन्ध, उनकी चरणधूलिके लिये लालायित न होते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌के दिव्य लीलाविग्रहोंका प्राकट्य ही वास्तवमें आनन्दमयी ह्लादिनी शक्तिके निमित्तसे है। श्रीभगवान् अपने निजानन्दको परिस्फुट करनेके लिये अथवा उसका नवीन रूपमें आस्वादन करनेके लिये ही स्वयं अपने आनन्दको प्रेमविग्रहोंके रूपमें प्रकट करते हैं और स्वयं ही उनसे आनन्दका आस्वादन करते हैं। भगवान्‌के उस आनन्दकी प्रतिमूर्ति ही प्रेमविग्रहरूपा श्रीराधारानीजी हैं और यह प्रेमविग्रह सम्पूर्ण प्रेमोंका एकीभूत समूह है। अतएव श्रीराधिकाजी प्रेममय हैं और भगवान् श्रीकृष्ण आनन्दमय हैं। जहाँ आनन्द है, वहीं प्रेम है और जहाँ प्रेम है, वहीं आनन्द है। आनन्दरससारका घनीभूत विग्रह श्रीकृष्ण हैं और प्रेमरससारकी घनीभूत मूर्ति श्रीराधारानी हैं। अतएव श्रीराधा और श्रीकृष्णका बिछोह कभी सम्भव ही नहीं। न श्रीराधाके बिना श्रीकृष्ण कभी रह सकते हैं और न श्रीकृष्णके बिना श्रीराधाजी। श्रीकृष्णके दिव्य आनन्दविग्रहकी स्थिति ही दिव्य प्रेमविग्रहरूपा श्रीराधाजीके निमित्तसे है। श्रीराधारानी ही श्रीकृष्णकी जीवनस्वरूपा हैं और इसी प्रकार श्रीकृष्ण ही श्रीराधाके जीवन हैं। दिव्य प्रेमरससारविग्रह होनेसे ही श्रीराधारानी महाभावरूपा हैं और वह नित्य-निरन्तर आनन्दरससार रसराज, अनन्त ऐश्वर्य—अनन्त-सौन्दर्य-माधुर्य-लावण्य-निधि, सच्चिदानन्द-सान्द्रांग, अविचिन्त्य-शक्ति, आत्माराम-गणाकर्षी प्रियतम श्रीकृष्णको आनन्द प्रदान करती रहती हैं। इस ह्लादिनी शक्तिकी लाखों अनुगामिनी शक्तियाँ मूर्तिमती होकर प्रतिक्षण सखी, मंजरी, सहचरी और दूती आदि रूपोंमें श्रीराधाकृष्णकी सेवा किया करती हैं; श्रीराधाकृष्णको सुख पहुँचाना और उन्हें प्रसन्न करना ही इनका एकमात्र कार्य होता है। इन्हींका नाम श्रीगोपीजन है।

नित्य आनन्दमय, नित्य तृप्त, नित्य एकरस, कोटि-कोटि-ब्रह्माण्ड-विग्रह, पूर्णब्रह्म परमात्मामें सुखेच्छा कैसे हो सकती है? यह प्रश्न युक्तिसंगत प्रतीत होनेपर भी इसीको सिद्धान्त नहीं माना जा सकता। भाव और प्रेम परमात्मासे पृथक् वस्तु नहीं है। प्रेमाश्रयका भाव प्रेमविषयमें और प्रेमविषयका भाव प्रेमाश्रयमें अनुभूत हुआ करता है। श्रीगोपीजन प्रेमका आश्रय हैं और श्रीकृष्ण प्रेम-विषय हैं। श्रीगोपियोंका अप्राकृत दिव्य भाव ही परब्रह्ममें दिव्य सुखेच्छा उत्पन्न कर देता है। प्रेमका महान् उच्च भाव ही उन पूर्णकाममें कामना, नित्यतृप्तमें अतृप्ति, क्रियाहीनमें क्रिया और आनन्दमयमें आनन्दकी वासना जाग्रत् कर देता है। अवश्य ही यह सुखेच्छा, कामना, अतृप्ति, क्रिया या वासना जड़ इन्द्रियजन्य नहीं है, इस मर्त्य जगत्‌की मायामयी वस्तु नहीं है; क्योंकि वह दिव्य आनन्द और दिव्य प्रेम अभिन्न है। श्रीकृष्ण और श्रीराधारानी सदा अभिन्न हैं। श्रीभगवान् कहते हैं—

यथा त्वं च तथाहं च भेदो हि नावयोर्ध्रुवम्।
यथा क्षीरे च धावल्यं यथाग्नौ दाहिका सति॥
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाहं त्वयि सन्ततम्।

(ब्रह्मवैवर्तपु० कृष्णजन्मखण्ड १४।५८-५९)

'जो तुम हो, वही मैं हूँ; हम दोनोंमें किंचित् भी भेद नहीं है। जैसे दूधमें सफेदी, अग्निमें दाहिका शक्ति और पृथ्वीमें गन्ध रहती है, उसी प्रकार मैं सदा तुममें रहता हूँ।'

अब रही श्रीराधिकाजीके विवाहकी बात, सो इस रूपमें इनका लौकिक विवाह कैसा? वृन्दावन-लीला ही लौकिक लीला नहीं है? लौकिक लीलाकी दृष्टिसे तो ग्यारह वर्षकी ही अवस्थामें श्रीकृष्ण व्रजका परित्याग करके मथुरा पधार गये थे। इतनी छोटी अवस्थामें स्त्रियोंके साथ प्रणयकी बात ही कल्पनामें नहीं आती और अलौकिक जगत्‌में तो दोनों सर्वदा एक ही हैं। फिर भी भगवान्‌ने ब्रह्माजीको श्रीराधाके दिव्य चिन्मय प्रेम-रस-सार-विग्रहका दर्शन करानेका वरदान दिया था, उसकी पूर्तिके लिये एकान्त अरण्यमें ब्रह्माजीको श्रीराधिकाजीके दर्शन कराये और वहीं

ब्रह्माजीके द्वारा रसराज और महाभावकी विवाहलीला भी सम्पन्न हुई। ये विवाहिता श्रीराधाजी नित्य ही भगवान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्णके संग रहती हैं। अवश्य ही छिपी रहती हैं। श्रीकृष्णकृपा होनेपर ही किन्हीं प्रेमी महानुभावको इस 'युगल जोड़ी' के दुर्लभ दर्शन होते हैं। श्रीमद्भागवतमें श्रीराधाका नाम प्रकटरूपमें नहीं आया है, यह सत्य है; परंतु वह उसमें उसी प्रकार छिपा हुआ है, जैसे शरीरमें आत्मा। प्रेमरससार-चिन्तामणि श्रीराधाजीका अस्तित्व ही आनन्द-रससार श्रीकृष्णकी दिव्य प्रेमलीलाको प्रकट करता है। जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ श्रीराधा नहीं हैं—यह कहना ही नहीं बनता। तार्किकोंको नहीं, भक्तों और शास्त्रके सामने सिर झुकानेवालोंको तो भगवान्‌के ये वाक्य सदा स्मरण रखने चाहिये—

आवयोर्भेदबुद्धिं च यः करोति नराधमः।
तस्य वासः कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
पूर्वान् सप्त परान् सप्त पुरुषान् पातयत्यधः।
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम्॥
अज्ञानादावयोर्निन्दां ये कुर्वन्ति नराधमाः।
पच्यन्ते नरके घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, कृष्णजन्मखण्ड० १५। ६७—७०)

'जो नराधम हम दोनोंमें (श्रीकृष्ण और श्रीराधामें) भेदबुद्धि करता है, वह जबतक चन्द्र-सूर्य रहते हैं, तबतकके लिये कालसूत्र नामक नरकमें रहता है। उसके पहलेके सात और पीछेके सात पुरुष अधोगामी होते हैं और उसका कोटिजन्मार्जित पुण्य निश्चय ही नष्ट हो जाता है। जो नराधम अज्ञानवश हमलोगोंकी निन्दा करते हैं, वे पापात्मा भी चन्द्र-सूर्यकी स्थितिकालतक घोर नरक भोगते हैं।'

अब रही गोपियोंके प्रेमके शुद्ध होनेकी बात। इसपर रासपंचाध्यायीका यह श्लोकार्ध स्मरण रखना चाहिये—

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः॥

'छोटे बालक जैसे अपने प्रतिबिम्बके साथ खेला करते हैं, वैसे ही रमेश भगवान्‌ने भी व्रजसुन्दरियोंके साथ क्रीड़ा की।' लीला-रसमय आनन्दकन्द भगवान् स्वभावसे ही प्रेमवश हैं। अतएव उन्होंने प्रेमभावसे ही अपनी आनन्दस्वरूपा शक्तिद्वारा अपने ही प्रतिबिम्बरूप प्रेमस्वरूपा महाभागा गोपियोंके साथ क्रीड़ा की। उनका तो यह आत्मरमण था और गोपियोंका इसमें श्रीकृष्णसुख ही एकमात्र उद्देश्य था। अतएव प्रेममयी गोपी और आनन्दमय श्रीकृष्णकी यह लीला सर्वथा कामगन्धशून्य थी। गोपियोंका प्रेम अत्युच्च—पराकाष्ठाका भाव था। इसीसे उसे रूढ़ महाभाव कहते हैं। इसमें निजेन्द्रिय-तृप्तिकी इच्छाके संस्कारकी भी कल्पना नहीं थी। यह इस जगत्‌की काम-क्रीड़ा नहीं थी। यह तो दिव्य आनन्दमय, पवित्र प्रेममय जगत्‌की अति दुर्लभ रहस्यमय लीला थी, जिसका रसास्वादन करनेके लिये बड़े-बड़े देवता और सिद्ध महात्मागण भी लालायित थे। कहा जाता है कि इसीलिये उन्होंने व्रजमें आकर पशु-पक्षियों तथा वृक्ष-लता-पत्तेके रूपमें जन्म लिया था। श्रीगोपियोंके इस कामशून्य प्रेमभावको, श्रीकृष्णकान्ताशिरोमणि श्रीराधारानीके महाभावको और निजानन्दमें नित्यतृप्त परमात्मामें सुखेच्छा क्यों उत्पन्न होती है और कैसे उन्हें प्रेमरूपा शक्तियोंके साथ लीला करनेमें सुख मिलता है, इस बातको समझने-समझानेका अधिकार श्रीकृष्णगतप्राण, भजनपरायण, प्रेमी रसिक भक्तोंको ही श्रीकृष्णकृपासे प्राप्त होता है। मुझ-जैसा विषयी मनुष्य इसपर क्या कहे-सुने? मेरी तो हाथ जोड़कर सबसे यही प्रार्थना है कि अपने मनकी मलिनताका आरोप भगवान्‌के पवित्र चरित्रोंपर कोई कदापि न करें और शंका छोड़कर जिसको भगवान्‌का जो नाम-रूप प्रिय लगता हो, जिसकी जिसमें रुचि हो, भगवान्‌के दूसरे नाम-रूपको उससे नीचा न समझकर, अपितु अपने ही इष्टदेवका एक भिन्नस्वरूप समझकर, अनन्यभावसे अपने उस इष्टकी सेवामें लगे रहें।

वन्दे राधापदाम्भोजं ब्रह्मादिसुरवन्दितम्। यत्कीर्तिकीर्तनेनैव पुनाति भुवनत्रयम्॥

[**श्रीउद्धवजी कहते हैं—**] मैं श्रीराधाजीके उन चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ, जो ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा वन्दित हैं तथा जिनकी कीर्तिके कीर्तनसे ही तीनों भुवन पवित्र हो जाते हैं। [**ब्रह्मवैवर्तपुराण**]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामायण कभी छूती है हमें ?

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

हम रामायणका पाठ करते हैं।

प्रतिदिन करते हैं।

जोर-जोरसे करते हैं।

कभी-कभी नवरात्रपर, दशहरापर, रामनवमीपर हम लाउडस्पीकर लगाकर उसका अखण्ड पाठ करते हैं और सारा मुहल्ला गुलजार करते हैं।

× × ×

यह सब तो ठीक। बहुत ठीक।

रामायणका अधिकाधिक प्रचार-प्रसार अच्छा है। कारण, वह धर्म-ग्रन्थ है, नीति-ग्रन्थ है। उसके पाठसे, उसके वाचनसे उत्तम संस्कार पड़ सकते हैं और निश्चय ही पड़ सकते हैं। उससे अनन्त लाभ हैं। स्वयं तुलसी बाबा कहते हैं—

जे एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥
होइहहिं राम चरन अनुरागी। कलि मल रहित सुमंगल भागी॥

(रा०च०मा० १। १५। १०-११)

अर्थात् जो स्त्री या पुरुष श्रीराम-कथाको प्रेमपूर्वक और सावधानीके साथ कहेगा, सुनेगा, समझेगा, वह श्रीरामके चरणोंका प्रेमी बन जायगा, उसके विकार नष्ट हो जायँगे और वह निःश्रेयसका पात्र बन जायगा।

× × ×

कितने तथ्यकी बात है!

पर है जरा गम्भीरतासे समझनेकी।

गोस्वामीजी कहते हैं, जो व्यक्ति श्रीराम-कथाको—

(१) सनेह समेता—प्रेमपूर्वक

(२) सचेता—सावधानीके साथ

(३) कहिहहिं—कहेंगे, पाठ करेंगे

(४) सुनिहहिं—सुनेंगे

(५) समुझि—समझेंगे

वे **होइहहिं**—होंगे, बनेंगे—

(१) राम चरन अनुरागी

(२) कलि मल रहित

(३) सुमंगल भागी!

× × ×

मोटे तौरपर इसमें तीन शर्तें हैं—

(१) श्रीराम-कथाका पाठ प्रेमपूर्वक हो,

(२) श्रीराम-कथाका पाठ सावधानीके साथ हो और

(३) श्रीराम-कथाका पाठ और श्रवण ही नहीं, उसका चिन्तन और मनन भी हो।

तब तीन फल मिलेंगे—

(१) श्रीरामके चरणोंमें प्रेम,

(२) षड्विकारोंसे, कलिमलसे मुक्ति और

(३) कल्याणमय जीवन।

× × ×

श्रीराम-कथाको ***'सनेह समेता'*** पढ़नेका अर्थ क्या है? इसका मतलब है—उसमें प्रेम हो, रुचि हो, श्रद्धा हो। श्रद्धाके बिना श्रीराम-कथा पढ़ी तो क्या, न पढ़ी तो क्या? उसका मतलब ही नहीं आयेगा समझमें। गीता कहती है—

'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्।' (४। ३९)

ज्ञानके लिये श्रद्धाकी अपेक्षा है।

× × ×

और ***'सचेता'***?

श्रीराम-कथा सावधानीके साथ पढ़नी चाहिये। उसे ध्यान लगाकर पढ़ना चाहिये।

पेट मसरूफ है किलर्की में,
दिल है ईरान और टर्की में।

ऐसे कैसे काम चलेगा?

कोई भी सत्कार्य तभी सफल होता है, जब उसमें चित्त एकाग्र होता है। पूजा हो, पाठ हो, जप हो, तप हो, उसमें 'डूबना' पड़ता है। योगशास्त्रमें ईश्वर-प्रणिधानपर जोर दिया गया है। वहाँ कहा गया है—

तज्जपस्तदर्थभावनम्। (समाधिपाद २८)

'जपो तो उसके अर्थकी भावनाके साथ जपो। प्रणवका पुनः-पुनः चिन्तन करते हुए जपो।'

मुखसे मेलट्रेनकी गतिसे चौपाइयाँ और दोहे निकल रहे हैं और हमारे मनीराम कहीं ***'गृह कारज नाना जंजाला'***

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में फँसे हैं, कार्यालयको देर हो रही है, हमारी दृष्टि घड़ीकी सूईपर लगी है तो उस पाठका कोई अर्थ है ?

× × ×

पाठ हम कर रहे हैं, पर हम उसका चिन्तन और मनन नहीं कर रहे हैं, उसे समझ नहीं रहे हैं और चाहते हैं विशेष लाभ!

× × ×

हम अब अपनेको इस कसौटीपर कसें—

हम वर्षोंसे रामायणका पाठ करते आ रहे हैं। कभी मासपारायण, कभी नवाह्नपारायण, कभी अखण्ड पाठ। कभी दस दोहे, कभी बीस।

पर कभी रामायणने हमें छुआ?

कभी श्रीराम-कथाने हमारा स्पर्श किया?

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

(रा०च०मा० ७।११२ ख)

हमारे हृदयसे काम-क्रोध आदि विकार दूर हुए? सब जगह हमें *'सीय राममय'* दीखने लगा?

वैर-विरोध, घृणा-तिरस्कार, राग-द्वेषसे हम मुक्त हुए?

हमारा जीवन मंगलमय बना? कल्याणमय बना?

× × ×

इस प्रश्नपर प्रश्न हो सकता है कि आप भी खूब हैं! तुलसी बाबाने तो हमें 'ब्लैंक चेक' दे रखा है—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

(रा०च०मा० १।२८।१)

भावसे जपो, कुभावसे जपो, अनखाकर जपो, अलसाकर जपो—श्रीराम-स्मरणसे सर्वतोमुखी मंगल होगा ही!

जब ऐसा है तो हम कैसे भी श्रीराम-कथा कहें, सुनें, उससे हमारा कल्याण होना ही चाहिये।

× × ×

शंका तो ठीक है।

पर मुझे लगता है कि इस चौपाईका उद्देश्य यह है कि लोग किसी-न-किसी बहाने श्रीरामकी ओर बढ़ें तो!

कोई दुःखी है, आर्त है, कष्टमें पड़ा है, जीवनभर श्रीरामसे दूर रहा, पर दुःखके क्षणमें उसके मुखसे निकल पड़ता है—'हे राम! बचाओ'।

कोई जिज्ञासु है। सोचता है कि लोग बड़ी महिमा गाते हैं श्रीराम-नामकी, श्रीराम-कथाकी, जरा परीक्षा तो करें—देखें तो तमाशा? कुछ तथ्य है इसमें?

कोई अर्थार्थी है। कुछ चाहता है—रुपया, पैसा, धन-दौलत, पद-प्रतिष्ठा, नाम-धाम। वह सोचता है कि ***'नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ'*** कहा है गोस्वामीजीने। देखूँ तो—***'पुरवहु नाथ मनोरथ मोरे।'***

कोई ज्ञानी है। उसका तो कहना ही क्या? ***'ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा।'*** वह कुभावसे, अनखसे, आलससे श्रीरामको जपेगा, इसका प्रश्न ही नहीं उठता।

हाँ तो किसी बहाने सही—मनुष्य इस मार्गपर आये तो! फिर कभी-न-कभी भूलकर, भटककर, ठोकर खाकर वह ठीक मार्गपर आ ही जायगा। किसी-न-किसी दिन कोई चौपाई या अर्धाली उसे छू देगी। बस, बिजलीका बटन दबा, प्रकाश हुआ।

पन्द्रह वर्ष पहलेकी एक घटना है—

लुक्का—लुकमान शर्मा चम्बलका एक बदनाम डाकू, मानसिंह-रूपा गैंगका सरगना।

विनोबाके सन्देशवाहक उसके पास पहुँचे। कहा—'छोड़ो इस गलत रास्तेको।'

मान गया वह। अपनी स्टेनगनके साथ, दूरबीनवाली बन्दूकके साथ, अपने पूरे गैंगके साथ—दलके साथ उसने विनोबाके आगे समर्पण कर दिया।

एक दिन पूछा हमलोगोंने—'क्यों समर्पण किया तुमने? विनोबाने तो स्पष्ट कह दिया था कि मैं किसीको बचाऊँगा नहीं। सबको अपने कृत्योंका सही बयान करना है और उसके लिये जो सजा मिले, वह भोगनी है। फाँसी मिले तो फाँसी भी! तब तुमने क्यों जानबूझकर समर्पणका रास्ता चुना?'

वह बोला—'मैंने रामायणमें पढ़ा था—***'साधु ते होइ न कारज हानी।'*** इसीसे मैंने समर्पण कर दिया।'

लुक्का रामायणका प्रेमी है। डाके भी डालता था, खून भी करता था; पर रामायण बिना नागा पढ़ता था। उसका नाम ही पड़ गया था 'पुजारी'।

रामायणकी, सुन्दरकाण्डकी एक अर्धालीने उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन पलट दिया! पिछली बार तो उसके समझानेसे पचासों डाकुओंने दस्यु-जीवनसे किनाराकशी कर ली!

× × ×

हाँ तो *'भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ'* रटते-रटते कभी कोई अर्धाली, दोहा, चौपाई हमें छू सकती है, हमें झकझोर सकती है। जिस क्षण यह हुआ, उसी क्षण हमारी 'तोता-रटंत' सार्थक हो जायगी।

किसी दिन हमारा अन्तर हमें धिक्कार सकता है—'तू इतने दिनोंसे रामायणका पाठ करता आ रहा है, पर आजतक गोल-मटोल पत्थर ही बना है! तू दूसरोंको सुनानेको, दूसरोंको दिखानेको पाठ करता है। तेरे-जैसोंको ही तो लोग कहते हैं—*'मुखमें राम, बगलमें ....!'* तू दम्भी है, पाखण्डी है। भीतर कुछ है, बाहर कुछ। जरा तो अपने भीतर झाँककर देख।' और जहाँ भीतर झाँकनेकी प्रक्रिया चालू हुई, आत्म-विश्लेषणकी ओर झुकाव आरम्भ हुआ कि काम बना। आखिर दम्भका लबादा मनुष्य कबतक ओढ़े रह सकता है? जिस दिन यह लबादा उतरा, जिस क्षण यह अनुभूति हुई कि मैं अपनेको ही धोखा दे रहा हूँ; बस, उसी क्षण कल्याणका मार्ग प्रशस्त हो जायगा।

× × ×

एक महिलाने गांधीजीको लिखा—'प्रार्थना करते समय मुझे लगता था कि मैं अपने-आपको धोखा दे रही हूँ—मन प्रार्थनामें नहीं है, फिर भी मैं प्रार्थनामें बैठी हूँ; इसलिये मैंने प्रार्थना करना छोड़ दिया।'

गांधीजीने जवाब दिया—'धोखा देना छोड़ती, प्रार्थना क्यों छोड़ दी?'

× × ×

विचारक कहते हैं—'बीस चोटोंसे पत्थर टूटा तो यह मत समझ बैठो कि पिछली उन्नीस चोटें बेकार गयीं। उन उन्नीसकी यह करामात है कि बीसवीं चोट लगते ही पत्थर टूट गया।'

भाव-कुभावसे ही मानसपर चोटें लगती रहें तो एक दिन पाषाणसे भी निर्झरिणी फूट सकती है।

आपने धोखेसे या जान-बूझकर कभी बिजलीका जीवित तार छू लिया है? स्पर्श होनेकी देर है कि सारा शरीर झनझना उठता है। ऊपरसे नीचेतक बिजलीकी लहर दौड़ जाती है।

रामायणकी एक-एक चौपाई विद्युल्लता है। स्पर्श होते ही सारे जीवनमें झनझनाहट आ जानी चाहिये। उस तारके छूते ही काम-क्रोध आदि विकार भस्म हो जाने चाहिये।

विकार गये, चित्त निर्मल हुआ, फिर जीवनमें श्रीरामकी प्रतिष्ठा होते क्या देर लगती है? कहा ही है तुलसी बाबाने—

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा॥

(रा०च०मा० ५।४७।१-२)

× × ×

रामायणपाठका, श्रीराम-कथाका एक ही अर्थ है—*रामचरन अनुराग*।

रामायण पढ़कर भी हम *'किंकर कंचन कोह काम के'* बने रहें तो हमारा पढ़ना, न पढ़ना बराबर है।

आइये, हम भी और आप भी *'सनेह समेता'* और *'सचेता'* रामायण पढ़ें, सुनें, समझें। बस, फिर बेड़ा पार!

'सिसक पड़े रघुबीर'

(श्रीभारतभूषणजी तायल)

अर्ध निशि सिसक पड़े रघुबीर।
सीय जगी, अकुलाइ कहत, अब उठो न लक्ष्मण बीर।
सीता लखन कहें रघुनंदन, क्यों मन कीन्ह अधीर॥
याद 'भरत' की बिसरत नाहीं, सुठि सुंदर बरबीर।
पुरजन परिजन याद करें जब, रोके रुकै न नीर॥
अँखियाँ 'भरत' दरस की प्यासी, तृणवत भयो शरीर।
पुलकि शरीर लखन समझावें, जनकसुता रघुबीर॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(संसारके वियोगमें सुख-शान्ति)

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

हम यह जानते हैं कि संसारसे हमारा नित्य-सम्बन्ध नहीं रहता। इस वास्तविकताका हम सबको अनुभव है; परंतु हम इस जानकारीपर कायम नहीं रहते। हम संसारसे अपना सम्बन्ध मानते हैं—यही हमारी भूल होती है। यदि हम इस जानकारीपर कायम रह जायँ अर्थात् हम संसारसे सम्बन्ध न जोड़ें तो आज, अभी बेड़ा पार है।

हम संसारके संयोग बिना रह सकते हैं, पर वियोग बिना नहीं रह सकते, जी नहीं सकते अर्थात् संसारकी वस्तुओं, व्यक्तियों और पदार्थोंसे सम्बन्ध रखकर हमें उतना सुख नहीं मिलता, जितना सुख उनके वियोगसे मिलता है। इसपर पूछा जा सकता है कि यह बात कैसे है? जैसे, हमें गाढ़ नींद आती है। उस गाढ़ नींदमें किसी व्यक्ति या वस्तुसे किंचिन्मात्र भी सम्बन्ध नहीं रहता, सम्पूर्ण वस्तुओं तथा व्यक्तियोंको हम भूल जाते हैं। इनके भूलनेमें जितनी सुख-शान्ति है, इन वस्तुओंको याद रखनेमें उतनी सुख-शान्ति नहीं है।

नींद लेनेकी हमारी प्रवृत्ति जन्मसे ही है। हम जब नींद लेते हैं, तब संसारको भूलते ही हैं। संसारसे विमुख हुए बिना हम आठ पहर भी सुखपूर्वक जी नहीं सकते। यदि कई दिनतक नींद न आये तो मनुष्य पागल हो जाय। जितनी खुराक हमें नींदसे मिलती है, उतनी खुराक पदार्थों-व्यक्तियोंके सम्बन्धसे नहीं मिलती, प्रत्युत व्यक्तियों और पदार्थोंका सम्बन्ध रखनेसे तो थकावट होती है। वह थकावट नींदसे दूर होती है। नींदसे शरीरमें, इन्द्रियोंमें, अन्त:करणमें नयी शक्ति, ताजगी तथा स्फूर्ति आती है और पदार्थों एवं व्यक्तियोंके साथ सम्बन्ध माननेसे ताजगी-शक्तिका ह्रास होता है।

नींद तो हम बचपनसे ही लेते आये हैं, पर पदार्थोंसे हमारा सम्बन्ध निरन्तर नहीं रहा है। बचपनमें खिलौने जितने अच्छे लगते थे, उतने और पदार्थ तथा व्यक्ति अच्छे नहीं लगते। घर उतना अच्छा नहीं लगता था, जितना खेल अच्छा लगता था। इसके बाद अब जवानीमें रुपये-पैसे अच्छे लगने लग गये तो खिलौने अच्छे नहीं लगते, पर नींद अब भी वैसी-की-वैसी अच्छी लगती है। खिलौने प्यारे लगते थे, तब भी नींद अच्छी लगती थी और नींदसे सुख मिलता था। अब रुपये अच्छे लगने लगे तो भी नींद अच्छी लगती है, परंतु रुपयोंको भुला करके जो नींद आती है, वह नींद और भी अच्छी लगती है।

अब विवाह हुआ तो स्त्री, पुत्र और परिवार बड़ा अच्छा लगने लगा। उस परिवारके लिये रुपये भी खर्च कर देते हैं, परंतु गहरी नींदके लिये स्त्रीको, पुत्रको, मित्रोंको, कुटुम्बियोंको भी छोड़ देते हैं। जिनके मोहमें फँसकर मनुष्य झूठ, कपट, बेईमानी, चोरी, ठगी, धोखेबाजी आदि करते हैं, गाढ़ नींदके लिये उन सबका त्याग कर देते हैं। जब वृद्धावस्था आती है, तब मनुष्योंका परिवारमें स्वत: बहुत मोह बढ़ जाता है, परंतु गाढ़ नींदके लिये तो इन्हें भी छोड़कर जब धन, मकान, स्त्री, पुत्र, परिवार आदिको छोड़कर साधु हो जाते हैं, विरक्त-त्यागी बन जाते हैं, तब भी नींद लेते हैं। जब नींद आती है, तब साधुपनसे भी वियोग होता है, तब भी नींदमें वैराग्य-त्यागसे भी वियोग होता है, तात्पर्य यह है कि मनुष्योंको प्रत्येक परिस्थितिमें नींद प्रिय लगती है। जब नींद नहीं आती, तब नींद आ जाय तो अच्छा है—यही भाव रहता है। नींद आनेके लिये मनुष्य पूरी तैयारी करते हैं। अच्छा बिछौना बिछाते हैं, आरामके लिये खूब बढ़िया तकिया लगाते हैं, तरह-तरहके गद्दे लगाते हैं, बढ़िया पंखे भी रखते हैं। हल्ला-गुल्ला न हो, ऐसी व्यवस्था करते हैं, जिससे कि आरामसे नींद आ जाय।

मनुष्य तरह-तरहके भोग भोगते हैं, कितने ही मनोहर दृश्य देखते हैं, सिनेमा आदि भी देखते हैं, पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब नींद आने लगती है, तब वे नहीं सुहाते। तब वे यही कहते हैं कि अब तो हमें नींद लेने दो। अब हम नींद लेंगे। इससे सिद्ध हुआ कि नींद सभी वस्तुओं, दृश्यों, व्यक्तियोंसे बढ़कर प्यारी है। नींदके लिये सब कुछ त्यागा जा सकता है, पर नींदका त्याग नहीं किया जा सकता; परंतु यदि कहीं भगवत्प्रेम हो जाय, भजनमें रस आने लग जाय तो उस समय फिर नींद भी अच्छी नहीं लगती। एक सन्तका पद है—*'बैरिन हो गई निन्दरिया'*— यह नींद हमारी बैरिन हो गयी। उस समय तो वे यही चाहते हैं कि नींद न आये तो अच्छा है। इससे सिद्ध होता है कि जिसके लिये प्यारी-से-प्यारी नींदका भी त्याग किया जा सकता है, वह परमात्मा ही हमें सबसे अधिक प्रिय लगने चाहिये; क्योंकि उस परमात्माके साथ हमारा सच्चा, नित्य और वास्तविक सम्बन्ध है, किंतु संसारसे हमारा बनावटी सम्बन्ध है, जो कि हमारा माना हुआ है, अतः इससे वियोग होगा ही। इससे वियोग हुए बिना शान्ति और सुख मिल नहीं सकते।

हमारा यह अनुभव है कि संसारके वियोगसे सुख होता है। सांसारिक संयोगके बिना हम रह सकते हैं; परंतु वियोगके बिना नहीं रह सकते। संसारके वियोगका अनुभव तो जीवमात्रको है। जीवमात्र नींद लेता है, पशु-पक्षी सभी नींद लेते हैं। तात्पर्य यह है कि संसारसे वियोग हर एक प्राणी चाहता है। संसारके संयोगमें तो कमीसे भी काम चल सकता है, जैसे—किसीको घीसे चुपड़ी हुई रोटी मिलती है और किसीको रूखी मिलती है, किसीको बढ़िया मकान मिलता है और किसीको झोपड़ीतक नहीं मिलती। दो मनुष्योंकी सुख-सामग्री भी एक समान नहीं होती, परंतु नींदमें सब समान हैं, अर्थात् संसारके वियोगमें सब बराबर हैं। वस्तुओंके बिना हम जितने सुखी होते हैं, उतने सुखी वस्तुओंके संगसे नहीं होते। वियोगका यह सुख सबको समानरूपसे प्राप्त है। यह वियोग स्वाभाविक है; क्योंकि नींदकी ओर सबकी प्रवृत्ति स्वतः होती है—यह सबके अनुभवकी बात है। इससे सिद्ध होता है कि पदार्थोंसे संयोग हम जोड़ते हैं और इनसे वियोग स्वतः सिद्ध है।

नींदमें सबसे सम्बन्ध-विच्छेद होता है, परंतु संसारके साथ प्राणियोंका जो माना हुआ सम्बन्ध है, उसे पकड़े हुए ही प्राणी नींद लेते हैं। इसी कारण वे जागकर फिर उसी संसारके सम्बन्धमें लग जाते हैं। अवस्था बदलती है, परिस्थिति बदलती है, घटनाएँ बदलती हैं, व्यक्ति बदल जाते हैं, देश, काल सब बदल जाते हैं—ये तो सब बदलते रहते हैं, पर संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद करनेवाला अर्थात् इनसे अलग अपना होनापन—स्वयंकी सत्ता कभी नहीं बदलती। वह एक ही रहती है; क्योंकि वह हमारा निजी स्वरूप है। संसारके साथ सम्बन्ध अवास्तविक अर्थात् माना हुआ है, जबकि संसारके साथ सम्बन्ध-विच्छेद वास्तविक है अर्थात् माना हुआ नहीं है।

संसार-शरीरसे हमारा सम्बन्ध-विच्छेद प्रतिक्षण हो ही रहा है, जैसे—बालकपनसे सम्बन्ध-विच्छेद हुआ, जवानीसे हुआ, नीरोगतासे हुआ, रोगीपनसे हुआ, धनवत्तासे हुआ, निर्धनतासे हुआ और कई व्यक्तियोंसे संयोग होकर वियोग हुआ। इस प्रकार संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद अवश्यम्भावी है; क्योंकि संयोग केवल माना हुआ है। हमसे बड़ी भारी भूल यह होती है कि माने हुए संयोगको तो सच्चा मान लेते हैं और वियोग जो स्वतः हो रहा है, उधर ध्यान ही नहीं देते। वियोगमें जितना सुख है, जितनी शान्ति है, उतनी संयोगमें है ही नहीं। यदि पदार्थोंके संयोगमें सुख-शान्ति-रस आता तो नींद छूट जाती, जैसे कि भजनमें जब रस आने लगता है तो नींद, भूख और प्यास सब छूट जाती है, इनकी परवाह नहीं होती।

दरियावजी महाराजकी वाणीमें आता है कि भगवान्के प्रेममें नींद, भूख और प्यास आदि शरीरके निर्वाहकी जो मुख्य चीजें हैं, इन्हें भी हम भूल जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि असली सम्बन्धकी जागृति होनेपर उसे छोड़कर नकली सम्बन्धको कौन रखेगा? नकली सम्बन्धको कौन रखना चाहेगा? संसारका सम्बन्ध, शरीरका सम्बन्ध हमारा स्वयंका नहीं है, वह माना हुआ है। इसको हम आज छोड़ दें तो आज ही निहाल हो जायँ। सम्बन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़नेका अभिप्राय यह नहीं है कि हमें कहीं जंगलमें जाना है या साधु बनना है। हमें कहीं जाना नहीं है। बस, हमारे भीतर यह भाव आ जाय कि यह संसार हमारा नहीं है, हमारे तो केवल भगवान् हैं। वस्तुओंसे जो सम्बन्ध है, वह तो केवल उनका सदुपयोग करनेके लिये है। व्यक्तियोंसे जो सम्बन्ध है, वह उनकी सेवा करनेके लिये है, परंतु व्यक्ति और वस्तुएँ हमारे लिये नहीं हैं। न तो हमारे लिये कोई व्यक्ति है और न हमारे लिये कोई वस्तु है। हमारे कहलानेवाले जो भाई, भौजाई, स्त्री, पुत्र, माता, पिता आदि हैं, इन सबकी वस्तुओंद्वारा सेवा करनी है; क्योंकि शरीर इनका ही है, इनसे ही मिला है, इनसे ही पुष्ट हुआ है। इसलिये शरीरको इनकी सेवामें लगा दो।

हमें इनसे कुछ लेना नहीं है, हमारा कुछ नहीं है। बस, इनकी वस्तुएँ इनकी सेवामें लग जायँ। हमें तो केवल इनका सदुपयोग करनेका अधिकार मिला है, इसलिये अपने अधिकारका सदुपयोग करना है—इसीका नाम है—कर्मयोग। भगवान्ने कर्मयोगका विवेचन करते हुए गीताजीमें कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

(२।४७)

कर्तव्य-कर्ममें तेरा अधिकार है, फलमें कभी नहीं और यह भी कहा कि अकर्ममें भी तेरी आसक्ति न हो अर्थात् कर्म न करनेमें भी तेरी आसक्ति नहीं होनी चाहिये। अतः इनकी और संसारकी सेवा कर दो। सेवाके साथ अपना सम्बन्ध मत जोड़ो। अपनेको कुछ चाहिये ही नहीं। इस कारण फलका हेतु भी नहीं बनना है।

खूब तत्परतासे, सुचारुरूपसे, पूरी योग्यता लगाकर कर्म करना है। क्यों करना है? क्योंकि मनुष्य-शरीर मिला ही है, सेवा करनेके लिये; भोगके लिये नहीं। भोग तो अन्य योनियोंमें भी मिलते हैं। सेवा करके भगवत्प्राप्ति करनेमें ही मनुष्य-जन्मकी सार्थकता है। 'मानव' नाम मनुष्यकी आकृतिका नहीं है, किंतु इसमें जो विवेक-शक्ति है, वही 'मानव' है। यह विवेक हमें संसारके साथ अपने माने हुए सम्बन्धका विच्छेद करनेके लिये मिला है, संसारमें लिप्त रहने, चिपकनेके लिये नहीं। सेवा सम्बन्ध-विच्छेद करानेमें सहायक है। इसलिये कर्मयोगकी प्रणालीसे ही सभी कर्म करने चाहिये।

संसारके साथ हमारा सम्बन्ध केवल सेवा करनेके लिये ही है, संसारसे हमें और क्या मतलब? माता-पिताकी सेवा करनी है, स्त्री-पुत्रका पालन-पोषण करना है, सबकी सेवा करनी है। इनसे सम्बन्ध मानकर सुख लेनेसे हमें उतनी वास्तविक शान्ति नहीं मिलती, जितनी इनकी सेवा करके सम्बन्ध-विच्छेद करनेसे मिलती है। इनकी सेवा करके इनसे अलग होनेमें जितना सुख मिलता है, उतना सुख कभी भी इनके संयोगमें नहीं मिलता। संसारके साथ किसी सम्बन्धमें ऐसी प्रियता नहीं है, जिसके लिये मनुष्य नींद, भूख और प्यास छोड़ दे, पर प्रभुके साथ सम्बन्ध जुड़नेपर नींद अच्छी नहीं लगती, खाना-पीना अच्छा नहीं लगता।

नारदजीकी माँ मर गयीं। वे जंगलमें चले गये, पर भगवत्प्रेमकी लगनमें उन्हें यह ध्यान ही नहीं आया कि मैं जंगलमें क्या खाऊँगा? क्या पीऊँगा? कहाँ रहूँगा? उनकी तो केवल एक ही लगन थी—भगवान्की ओर चलनेकी। वे वहाँ एक वृक्षके नीचे बैठे, उनका मन भगवान्में लग गया। समाधि लग गयी। कुछ देर बाद

समाधि खुल गयी तो व्याकुल हो गये। वे बहुत अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याकुल हुए तो आकाशवाणी हुई कि '**दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम्**' यानी कुयोगियोंको मैं दर्शन नहीं देता। इस शरीरके बाद जब तुम्हारा ब्रह्माजीसे पुत्ररूपमें जन्म होगा, उस समय मेरी प्राप्ति होगी। आकाशवाणीसे उनको निराशा नहीं हुई, प्रत्युत चटपटी बढ़ी। अब नारदजी चाहते हैं कि मैं कब मरूँ, कब शरीर छूटे! दुनिया तो शरीर चाहती है कि हम जीते रहें और वे चाहते हैं कि यह शरीर कब छूटे।

संसारमें अपने शरीरके जीनेकी जितनी इच्छा होती है, उतनी कुटुम्बके जीनेकी इच्छा नहीं होती। गाय नवजात बछड़ेपर बहुत स्नेह रखती है। बछड़ेको छोड़कर जंगलमें चरने भी नहीं जाती, परंतु जब हम उसे मारने-कूटने लगते हैं, तब वह जंगलमें चली जाती है। जंगलमें जाकर घास चरती है, पर घास चरते-चरते जब बछड़ा याद आ जाता है तो '**हुम्**'— ऐसे हुंकार करती है और मुँहसे घास गिर जाती है। बछड़ेके साथ घाससे ज्यादा प्रेम है। प्रेम घासके साथ भी है ही; क्योंकि घास भी खा रही है। सायंकालमें जब वह वापस लौटती है, तब सब गायोंसे अगाड़ी भागती है। पहले भागकर हुंकार करती हुई बछड़ेके पास जाती है, बछड़ेको प्यार करती है, उसे दूध पिलाती है। उसका बछड़ेपर प्रेम है और घासपर भी है, पर अपने शरीरपर सबसे अधिक प्रेम है; क्योंकि उसपर लाठी पड़ती है तो वह बछड़ेको छोड़ देती है, घासको छोड़ देती है अर्थात् उसके शरीरपर जब नौबत आती है तो वह बछड़े और घासकी भी परवाह नहीं करती। तात्पर्य यह है कि शरीरमें उसका एक नम्बरका प्रेम है, बछड़ेमें दो नम्बरका प्रेम है तथा घासमें तीन नम्बरका प्रेम है। पशुका शरीरमें जिस तरह मोह होता है, उसी तरह मनुष्यका भी शरीरमें अत्यधिक मोह होता है; परंतु मनुष्यमें विवेक है, इस वास्ते वह शरीरसे मोह हटाकर भगवान्में प्रेम कर सकता है; क्योंकि वह जानता है कि यह शरीर तो हरदम रहेगा नहीं, शरीर हरदम बदलनेवाला है, बदल रहा है और परमात्मा हरदम रहते हैं। 'हम उसीके अंश हैं', 'हम उसीके हैं'—हमें जब यह पहचान हो जाती है तब शरीरकी आसक्ति और मोह छोड़कर हम परमात्मामें ही लग जाते हैं। जैसे, नारदजी पूर्वजन्ममें भगवान्में लगे थे। परमात्माके साथ हमारा सम्बन्ध वास्तविक है और संसारके साथ हमारा सम्बन्ध अपना माना हुआ (नकली) है। इस वास्तविकताको हम जानते हैं। यदि इसपर दृढ़ रहें तो हमारा बहुत ही शीघ्र कल्याण हो जाय।

नारायण! नारायण! नारायण!

'गर्भपात सब पापां रो बाप'

(श्रीबजरंगलालजी सोनी)

गर्भपात महापाप है, सब पापां रो बाप,
बालक री हत्या करी, मुख देखण रो पाप,
मुख देखण रो पाप जिणा घर जल मत पीज्यो।
ब्यांह सगाई होय नूंतो कदेई न दीज्यो,
बचो घोर महापाप सूं भाई-बहनां आप,
गर्भपात महापाप है, सब पापां रो बाप॥
दूजा पाप छोटा बड़ा गर्भपाप अति घोर,
गर्भ गेर राजी हुवै नहीं नरक में ठौड़,
नहीं नरक में ठौड़ हुया नर-नारि निपूता।
पकड़-पकड़ जम दूत मारसी सिर पर जूता,
राखस सूं नीचा हुया माणस रैया न ढ़ोर,
दूजा पाप छोटा बड़ा गर्भपाप अति घोर॥
गर्भ गिरावै जाणकर वा मायड़ मत जाण,
कलजुग मे परगट भई बक्कासुर की भाण,
बक्कासुर की भाण पूतना ब्रज में आयी।
थन के जहर लगाय कृष्ण को मारण धाई,
चूसण लाग्या कान्हजी खेंच लिया सब प्राण,
गर्भ गिरावै जाण कर वा मायड़ मत जाण॥
डॉक्टरजी डाकी बण्या डॉक्टरणीजी डाकण,
बाप कालो नाग बण्यो माय काली सांपण।
गर्भ गिरायो हत्या कर दी अे पापी अर पापण,
देख्यां ही इण जलादां नै हिरदो लाग्यो कांपण॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूरदासका श्रीरामभक्तिकाव्य*

(डॉ० श्रीगोपीनाथजी तिवारी, एम०ए०, पी-एच०डी०)

हिन्दी-साहित्यके इतिहासमें विक्रमीय सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही हैं। साहित्याकाशके सूर्य, चन्द्र और आकाशगंगाके नामसे विख्यात हिन्दीके तीन सर्वश्रेष्ठ महाकवि सूर, तुलसी और केशव इसी अवधिमें उत्पन्न हुए। श्रीकृष्ण और श्रीरामको अपनाकर उन्होंने अपने यशस्वी काव्यका सृजन किया। इतना अवश्य है कि जहाँ सूरने श्रीकृष्णको प्रधानता दी, वहाँ तुलसीने श्रीरामको। महाकवि केशवने भी अपने प्रबन्धकाव्य 'रामचन्द्रिका' में श्रीरामको ही महत्त्व दिया। जहाँ तुलसी और केशवने अपने प्रबन्धकाव्योंमें श्रीरामको प्रतिष्ठित किया, वहाँ सूरने प्रबन्धात्मक—मुक्तक सूरसागरमें श्रीकृष्णकी कीर्ति-पताका फहरायी। जहाँ तुलसीने श्रीकृष्णगीतावली लिखकर श्रीकृष्णके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की, वहाँ सूरने सूरसागरके नवें स्कन्धके १५८ पदोंमें (४५९ से ६१६ तक) श्रीरामकथा लिखकर उनके प्रति अपनी भक्तिभावना, श्रद्धा और निष्ठा व्यक्त की, जो उनके काव्यमें स्थान-स्थानपर प्रतिबिम्बित होती है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) सिया-राम-लछिमन मुख निरखत,
सूरदासके नैन सिराए॥ (६१२)

(२) सिया-सहित सुख बसौ इहाँ तुम,
सूरदास नित उठि बलि जाई॥ (६१३)

(३) 'सूर' सहित आमोद चरन-जल लै कर सीस धरे॥
(६१५)

(४) 'सूरदास' निस्तरिहैं यह जस,
करि-करि दीन-दुखित जन गावन॥ (५७५)

सूरसागरमें प्रबन्धात्मकताकी धारा प्राय: क्षीण-सी है। सूर किसी वस्तु, घटना, पात्र या वर्णनको पकड़कर अपने भाव-विचार व्यक्त करते जाते हैं अथवा वस्तुका अनेक रूपोंमें वर्णन करते हैं। सूरके काव्यमें प्रबन्धात्मकता यदि कहीं प्रस्फुटित है तो इस श्रीराम-कथा-अंकनमें ही। संक्षिप्तरूपमें सूरने श्रीराम-कथाकी शृंखलाको बिखरने नहीं दिया है। हनुमान्‌जीको वे तत्काल ही लंका पहुँचा देते हैं, मध्यके विस्तारको छोड़ देते हैं। श्रीराम-रावण-युद्धका भी वे बहुत विस्तार नहीं करते। सूरने भावपरक स्थलोंपर विशेष ध्यान रखा है और साथ ही वे उन खण्डोंको भी जोड़ते जाते हैं, जो भावमय नहीं हैं। श्रीसूरदासका कथन है—

हनुमान अंगद के आगैं लंक-कथा सब भाषी।
अंगद कही, भली तुम कीनी, हम सबकी पति राखी॥
हरषवंत ह्वै चले तहाँ तें, मग मैं बिलम न लाई।
पहुँचे आइ निकट रघुबर के, सुग्रिव आयौ धाई॥
सबनि प्रनाम कियौ रघुपति कौं, अंगद बचन सुनायौ।
'सूरदास' प्रभु-पद-प्रताप करि, हनू सीय-सुधि ल्यायौ॥
(५४६)

लक्ष्मण-शक्तिका वर्णन तो सूरने विस्तारसे किया है, किंतु मेघनाद और कुम्भकर्णका मरण छोड़ दिया है।

सूरदासका कथन है कि मैं श्रीरामकथा श्रीमद्भागवतके आधारपर कह रहा हूँ—

नृप सौं ज्यौं सुकदेव सुनायौ। 'सूरदास' त्यौं ही कहि गायौ॥
(४५९)

उनकी प्रतिज्ञा है कि जैसा भागवतमें वर्णन है, वे वैसा ही गा रहे हैं, किंतु बात सर्वथा वैसी नहीं। भागवतके नवम स्कन्धके अध्याय दस-ग्यारहमें श्रीरामचरितका वर्णन है, पर वह अल्प ही है। अत: सूरने 'वाल्मीकिरामायण', 'अध्यात्मरामायण', 'हनुमन्नाटक' और 'प्रसन्नराघव' से भी सहायता लेकर अपनी कथाको सँवारा है। साथ ही कई मौलिक उद्भावनाएँ भी व्यक्त की हैं। भागवतमें अहल्या-उद्धारकी कथा वर्णित नहीं है, किंतु सूरने इस प्रसंगका भी अंकन किया है (पद ४६६)। वाल्मीकिरामायणमें अहल्या स्त्रीरूपमें तप करती है। अध्यात्मरामायणमें वह शिलापर स्थित है। सूरने अहल्याको शिलारूपमें चित्रित किया है। तुलसीने भी अहल्याको पाषाणरूप दिया है। रघुवंशमें अहल्याको पाषाणरूपमें निरूपितकर श्रीरामके पगद्वारा उसका उद्धार वर्णित किया गया है। तुलसीके समान सूरने ग्रामवधूटी-वर्णन तथा केवटकी भक्तिका प्रदर्शन बड़े भावसे अंकित किया है। सूरने वनवासी श्रीरामका सीता-लक्ष्मणसहित चित्रणकर पुर-वधुओंद्वारा सीतासे प्रश्न कराया है। तुलसीके मानस, कवितावली तथा गीतावलीमें ग्राम-वधूटियाँ सीताके पास जाकर प्रश्न करती हैं, तेरे साथमें

* श्रीरामभक्ति एवं रामचरितसे सम्बन्धित सूरदासजीके पदोंका संग्रह 'सूररामचरितावली' के नामसे गीताप्रेसद्वारा पुस्तकरूपमें प्रकाशित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन हैं ? सूरने यह कार्य नगर-वधुओंसे कराया है। एक पुर-वधू पूछती है—

सखी री! कौन तिहारे जात।
राजिवनैन धनुष कर लीन्हे, बदन मनोहर गात॥
लज्जित होहिं पुरबधू पूछैं, अंग-अंग मुसकात।
अति मृदु चरन पंथ-बन-बिहरत, सुनियत अद्भुत बात॥
सुंदर तन, सुकुमार दोउ जन, सूर-किरिन कुम्हिलात।
देखि मनोहर तीनौं मूरति, त्रिबिध-ताप तन जात॥

(४८७)

सूरकी तो यह भावना है कि तीनों मूर्तियोंको देखकर उन पुर-वधुओंके तीनों ताप नष्ट हो जाते हैं। सूर कोमलता और सुकुमारताकी बड़ी सुन्दर कल्पना करते हुए उन पुर-वधुओंसे कहलाते हैं—इन दोनोंका सुन्दर शरीर है, दोनों बड़े सुकुमार हैं, सूर्यकी किरणके स्पर्शसे ये कुम्हला-से गये हैं, तब भी वनमार्गपर घूम रहे हैं—यह बड़ी अद्भुत बात है। इसपर अगले पदमें सीताजी वनवासकी कथा सुनाती हैं। वे कहती हैं—

सासु की सौति सुहागिनि सो सखि, अतिहिं पीय की प्यारी।
अपने सुत कौं राज दिवायौ, हम कों देस निकारी॥

(४८८)

बड़ा स्वाभाविक है और हृदयस्पर्शी उत्तर है। ***'सासु की सौति'***कैसा मार्मिक प्रयोग है। ***'सुहागिन'***तो वास्तवमें वही है, जो पियको बहुत प्रिय हो। पुर-वधुएँ मुसकराकर पूछती हैं—'इनमेंसे कौन तुम्हारे पति हैं और कौन देवर?' सीताजी कहती हैं—

कटि-तट पट पीतांबर काछे, धारे धनु-तूनीर।
गौर-बरन मेरे देवर सखि, पिय मम स्याम-सरीर॥

(४८८)

सूरदासने सीताको वनवासके समय अग्निमें स्थापित कराया है और छाया सीताको रावणके द्वारा अपहृत कराया है। सूरने यह भावना अध्यात्मरामायणसे ग्रहण की है। तुलसीकी ही भाँति सूरने भी केवट-प्रसंग लिखा है। तुलसीमें श्रीराम-केवट-संवाद है, सूरने लक्ष्मण-केवट-कथोपकथन कराया है। सूरके लक्ष्मण अग्रिम उतराई देते हैं और कहते हैं कि हमलोगोंको पार उतार दो। तुमने अपनी नाव न जाने कहाँ छिपा दी है। उसे ले आओ और हमें पार उतार दो। केवट लक्ष्मणसे कहता है—

अबहिं सिला तें भई देव-गति, जब पग-रेनु छिवाई।
हौं कुटुंब काहें प्रतिपारौं, वैसी मति ह्वै जाई॥
जाकी चरन रेनु की महि मैं, सुनियत अधिक बड़ाई॥

(४८४)

वह काँपता हुआ भगवान् श्रीरामके पास आता है और हाथ जोड़कर कहता है—

चरन परसि पाषान उड़त है, कत बेरी उड़ि जात।
जो यह बधू होइ काहू की, दारु-स्वरूप धरें।
छूटै देह, जाइ सरिता तजि, पग सौं परस करें॥
मेरी सकल जीविका यामैं, रघुपति मुक्त न कीजै।
'सूरजदास' चढ़ौं प्रभु पाछैं, रेनु पखारन दीजै॥

(४८५)

अगले पदमें वह यह भी कह देता है कि तुम सेमर और ढाकको काटकर बेड़ा बना लो और उसीके सहारे पार चले जाओ। फिर वह प्रार्थना करता है कि आप यदि मेरी ही नावसे पार जाना चाहते हैं तो बस, इतनी आज्ञा दीजिये कि मैं आपके पैरोंकी रज धो डालूँ और तब आपको पार पहुँचा दूँ।

तुलसीकी तरह सूरने भी लक्ष्मणको मेघनादकी शक्तिसे मूर्च्छित कराया है। सूरके हनुमान् जब संजीवनी पर्वत लेकर अयोध्याके ऊपरसे उड़ रहे थे, तब भरतने बाण मारकर उन्हें गिरा दिया। सूरका यह वर्णन अत्यन्त मनोहर, सरस, मौलिक और उद्भावनापूर्ण है। सूरके भरत सोचते हैं कि कोई अयोध्यामें पर्वत गिराकर उपद्रव करना चाहता है, अतः बाणका प्रहार किया—

मन मैं जानि उपद्रव भारी, बान अकास चलायौ॥

(५९४)

सूरने अपनी दिव्य प्रतिभासे अत्यन्त सुन्दर कल्पना प्रणीत की है तथा प्रसंगको उदात्तता प्रदान की है। हनुमान् भरतके पूछनेपर सीता-हरणका विवरण देकर मेघनादद्वारा छोड़ी गयी शक्तिसे लक्ष्मणके मरणासन्न (मूर्च्छित) होनेका विवरण देते हैं। यह सुनकर कौसल्या सिर पकड़कर बैठ गयीं और सुमित्रा 'हाय! पुत्रकी कोई रक्षा करे' कहकर रो उठीं; किंतु तुरंत ही सँभलकर बोलीं—

धन्य सुपुत्र पिता-पन राख्यौ, धनि सुबधू कुल-लाज।
सेवक धन्य अंत अवसर जो आवै प्रभु के काज॥
पुनि धरि धीर कह्यो, धनि लछिमन, राम-काज जो आवै।
'सूर' जियै तौ जग जस पावै, मरि सुरलोक सिधावै॥

(५९५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूरकी कौसल्या इस अवसरपर हनुमान्‌जीसे जो बात कहती हैं, वह सूरकी काव्य-प्रतिभासे उत्पन्न उद्भावना-शक्तिका परिचय कराती है—

सुनौ कपि, कौसिल्या की बात।
इहिं पुर जनि आवहिं मम बत्सल, बिनु लछिमनु लघु भ्रात॥

× × ×

लछिमन सहित कुसल बैदेही, आनि राज पुर कीजै।
नातरु 'सूर' सुमित्रा-सुत पर, वारि अपुनपौ दीजै॥

(५९७)

यह कथन कौसल्याके ही योग्य था, जो श्रीरामकी माँ थीं। उधर झट सुमित्राने कहा—नहीं, हनुमान्! तुम मेरा सन्देश कहना—

सेवक जूझि परै रन भीतर, ठाकुर तउ घर आवै॥
जब तैं तुम गवने कानन कौं, भरत भोग सब छाँड़े।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, दुख-समूह उर गाड़े॥

(५९८)

सम्पूर्ण श्रीरामकाव्यमें सूरकी प्रज्ञा-दृष्टिने दोनों माताओंके उदात्त चरित्रोंको सुन्दर रंगोंसे सजा दिया है।

श्रृंगारको रसराजत्व प्रदान करनेवाले सूरने श्रीरामकाव्यमें करुण और वीररसका जैसा भावमय विशद चित्रण किया है, उसे देखकर कहना पड़ता है कि सूरकी प्रतिभा अत्यन्त अद्भुत थी। श्रीराम-वनगमनके अवसरपर दशरथकी करुण स्थितिका चित्रण बहुत ही हृदयद्रावक है, जो करुणाको भी करुणा प्रदान करता है—भरतको राज्य और तुम्हें चौदह वर्षका वनवास। श्रीराम पिताकी आज्ञा शिरोधार्यकर चल दिये। सूर दशरथको विलाप करते हुए चित्रित करते हैं। दशरथजी कहते हैं—

रघुनाथ पियारे, आजु रहौ (हो)।
चारि जाम बिस्राम हमारैं, छिन-छिन मीठे बचन कहौ (हो)॥
बृथा होहु बर बचन हमारौ, कैकई जीव कलेस सहौ (हो)।
आतुर ह्वै अब छाँड़ि अवधपुर, प्रान-जिवन! कित चलन कहौ (हो)॥
बिछुरत प्रान पयान करैंगे, रहौ आजु, पुनि पंथ गहौ (हो)।
अब सूरज दिन दरसन दुरलभ, कलित कमल-कर कंठ गहौ (हो)॥

(४७७)

दशरथको विश्वास है कि मैं चार प्रहरसे अधिक जीवित न रह सकूँगा। दशरथके प्राण तो जायँगे ही। सूर दशरथका बड़ा करुण चित्र खींचते हैं। श्रीराम जा रहे हैं। दशरथ ऊँची अट्टालिकापर चढ़कर पुत्रकी ओर देखते हैं और रोते हैं। उन्हें अधिक दूर जाते देख पिता दशरथ अचेत हो जाते हैं। सूरने दशरथका बड़ा मार्मिक चित्र उरेहा है—

ऊँचें चढ़ि दसरथ लोचन भरि सुत-मुख देखे लेत।
रामचंद्र-से पुत्र बिना मैं भूँजब क्यौं यह खेत॥
देखत गमन नैन भरि आए, गात गह्यौ ज्यौं केत।
तात-तात कहि बैन उचारत, ह्वै गए भूप अचेत॥

(४८३)

वन-प्रसंगमें करुणाकी सशक्त सरिता प्रवाहित है। सीता और श्रीरामका कथोपकथन, जानकी और श्रीराम-संवाद, कौसल्या-विलाप—पूरा प्रसंग अश्रुपूर्ण है। भरत-कौसल्या-संवाद तथा भरतका श्रीरामकी ओर प्रस्थान, भरत-राम-मिलन—सभीके पीछे सूरकी करुणापूर्ण लेखनी प्रवाहित है। सीता-हरण-प्रसंगके पद भी इसी करुणभावसे भरे हैं। इस प्रसंगमें सूरकी दृष्टि श्रीराम-विलापको ही देखती है और तीन पदों (५०६, ५०७, ५०८)-में श्रीरामका दुःख उफन रहा है। त्रिजटा-सीता और सीता-हनुमान्‌के संवाद-पदोंमें भी सीताकी करुण-स्थिति और शोक-सिंचित भावोंका सुन्दर प्रकाशन हुआ है। लक्ष्मण-शक्ति-प्रसंगमें भी श्रीरामका विलाप (५८९, ५९०) वानरों और पाठकोंको समानरूपसे रुलानेवाला है।

सूरने वीर-रसका चित्रण प्रधानतया हनुमान्‌जीके माध्यमसे किया है, जिसपर हनुमन्नाटकका प्रभाव है। सूरने अपने श्रीरामकाव्यमें श्रीरामके पश्चात् हनुमान्‌जीको प्रमुखता प्रदान की है। हनुमान्‌जी महाबली हैं। उनके उत्साहके सम्मुख कोई भी कार्य कठिन और दुष्कर नहीं। हनुमान्‌जी स्थान-स्थानपर अपने बल और साहसका दृढ़ता तथा अतिशयतासे प्रदर्शन करते पाये जाते हैं। श्रीराम और लक्ष्मण, सुग्रीव, उनके सेनानायकों तथा समस्त वानर-भालू-सेनाके साथ समुद्रतटपर खड़े विचार कर रहे हैं—कैसे समुद्र तरा जाय? हनुमान्‌जी श्रीरामसे कहते हैं—

राघौ जू! कितिक बात, तजि चिंत।
केतिक रावन-कुंभकरन-दल, सुनियै देव अनंत॥
कहौ तौ लंक लकुट ज्यौं फेरौं, फेरि कहूँ लै डारौं।
कहौ तौ परबत चाँपि चरन तर, नीर-खार मैं गारौं॥
कहौ तौ असुर लँगूर लपेटौं, कहौ तौ नखनि बिदारौं।
कहौ तौ सैल उपारि पेड़ि तैं, दै सुमेरु सौं मारौं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेतिक सैल-सुमेरु धरनि मैं, भुज भरि आनि मिलाऊँ।
सप्त समुद्र देउँ छाती तर, एतिक देह बढ़ाऊँ॥
चली जाउ सैना सब मोपर, धरौ चरन रघुबीर।
मोहि असीस जगत-जननी की, नवत न बज्र-सरीर॥
जितिक बोल बोल्यौ तुम आगैं, राम! प्रताप तुम्हारे।
'सूरदास' प्रभु की सौं साँचे, जन करि पैज पुकारे॥
(५५१)

हनुमान्-प्रसंगमें दो स्थानोंपर सूरने अपनी कमनीय कल्पनाका अत्यन्त मन-मोहक प्रदर्शन किया है। सूरने गोपियोंके आँसुओंकी यमुना प्रवाहित की है, जिसमें उनकी शय्याएँ नौकाएँ बन जाती हैं और उन नावोंपर चढ़कर गोपियाँ प्यारे श्रीकृष्णके पास मथुरा पहुँचनेकी इच्छा व्यक्त करती हैं। यहाँ सीताजीके आँसुओंके सागर बननेकी कल्पना सूरको सूझी है। हनुमान्जी कहते हैं—'हे श्रीराम! एक सागर सामने है, जिसके पार जानेके लिये हम प्रस्तुत हैं। एक सागर और प्रवाहित हो रहा है, जो इससे भी विशाल और बृहत् है। शीघ्रतासे इस सागरको पारकर उस महासागरके निर्माणको रोकिये। वह सागर सीताके नेत्रोंसे प्रवाहित हो रहा है। कहीं दोनों मिल न जायँ।'

रघुपति, बेगि जतन अब कीजै।
बाँधै सिंधु सकल सैना मिलि, आपुन आयसु दीजै॥
तब लौं तुरत एक तौ बाँधौ, द्रुम-पाखाननि छाइ।
द्वितिय सिंधु सिय-नैन-नीर ह्वै, जब लौं मिलै न आइ॥
(५५४)

मेघनादद्वारा प्रक्षिप्त शक्तिसे लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये। श्रीराम शोकसे विह्वल हो जाते हैं और इस दुःखके समय हनुमान्जीकी ओर देखते हैं। यहाँ सूर एक सुन्दर और विलक्षण चित्रण करते हैं—श्रीराम कहते हैं कि 'यदि भरतको मेरे इस दुःखका समाचार ज्ञात हो गया तो वह सेना लेकर मेरी सहायताको आ जायगा और सारे संसारको धनुषके बलपर जीत लेगा, इन राक्षसोंकी तो उसके सामने शक्ति ही क्या है? तो भरतके पास किसे भेजूँ? हनुमान्में ही यह सामर्थ्य है?' वे हनुमान्जीसे कहते हैं—

अहो पुनीत मीत केसरि-सुत! तुम हित बंधु हमारे।
जिह्वा रोम-रोम-प्रति नाहीं, पौरुष गनौं तुम्हारे॥
(५९१)

हनुमान्जी अपने बलका वर्णन करते हुए दृढ़तापूर्वक कहते हैं—

रघुपति! मन संदेह न कीजै।
मो देखत लछिमन क्यौं मरिहैं, मोकौं आज्ञा दीजै॥
कहौ तौ सूरज उगन देउँ नहिं, दिसि-दिसि बाढ़ै ताम।
कहौ तौ गन समेत ग्रसि खाऊँ, जमपुर जाइ न, राम॥
कहौ तौ कालहि खंड-खंड करि, टूक-टूक करि काटौं।
कहौ तौ मृत्युहि मारि डारि कै, खोदि पतालहि पाटौं॥
कहौ तौ चंद्रहि लै अकास तैं, लछिमन मुखहिं निचोरौं।
कहौ तौ पैठि सुधा कै सागर, जल समस्त मैं घोरौं॥
(५९२)

सूरने श्रीरामको ब्रह्म माना है तथा श्रीरामनामके जपपर अपना पूर्ण विश्वास प्रकट किया है। श्रीराम-कथाके पात्रोंमें श्रीरामकी भक्ति भरी गयी है और सूर स्वयं भी श्रीरामभक्तिको प्रकट कर देते हैं। विभीषण, भरत, शबरी, हनुमान् आदि तो श्रीरामके भक्त चित्रित हैं ही, रावण भी श्रीरामका भक्त है। रावणके पास एक राक्षसी आकर समाचार देती है कि सीता किसी प्रकारसे भी अपना सत् छोड़नेको प्रस्तुत नहीं है, वह सती है, अतः सीताकी चाह छोड़ दो। रावण कहता है—

मोसे मुग्ध महापापी कौं, कौन क्रोध करि तारै॥
ये जननी वे प्रभु रघुनंदन, हौं सेवक प्रतिहार।
सीता-राम 'सूर' संगम बिनु, कौन उतारे पार॥
(५२२)

सूरदास भी अपनी विनम्र प्रार्थना भगवान् श्रीरामके पास पहुँचानेको आतुर हैं, किंतु स्वयं जाकर कहनेका अवसर उन्हें नहीं प्राप्त होता, अतः वे श्रीरामकथारूपमें अपना भक्ति-पत्र श्रीरामके पास प्रेषित करते हैं। सूरका कथन है—

बिनती किहिं बिधि प्रभुहिं सुनाऊँ?
महाराज रघुबीर धीर कौं, समय न कबहूँ पाऊँ॥
× × ×
एक उपाउ करौ कमलापति, कहौ तौ कहि समुझाऊँ।
पतित-उधारन नाम सूर प्रभु यह रुक्का पहुँचाऊँ॥
(६१६)

सूरका श्रीरामकाव्य मार्मिक भावों, सुन्दर कल्पनाओं, रस और भक्तिपूर्ण शब्द-चित्रोंसे सुसज्जित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहनुमान्‌जी—एक श्रेष्ठ कथावाचक

(श्रीअमृतलालजी गुप्ता)

श्रीहनुमान्‌जी अतुलित बलशाली हैं, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य हैं, उनके पास गदा है, मुद्‌गर है और उनकी मुष्टिका तथा पूँछमें बड़ी शक्ति है, पर उनके जीवनमें इन सबका उतना प्रयोग नहीं है, जितना कथाका है। हनुमान्‌जी रामकथाके अद्वितीय वक्ता हैं। वे जब किसीसे मिलते हैं तो उनका प्रयास यही रहता है कि प्रभुकी कथा ही कही-सुनी जाय। सन्तोंके संगका यही लक्षण भी है और लाभ भी है। सन्त अपनी कथा कहने-सुननेके स्थानपर भगवान्‌की कथाका ही निरन्तर श्रवण और गायन करते हैं।

हनुमान्‌जी लंकामें विभीषणजीसे मिले तो विभीषणजी गद्‌गद हो गये और कहने लगे—'आप भगवान् रामके दास हैं या कहीं स्वयं श्रीराम ही तो नहीं हैं? अत: आप कृपाकर मुझे अपने विषयमें बतायें, अपना परिचय दें!' उस समय हनुमान्‌जीने किसका परिचय दिया? विभीषणजीने तो अपनी कथा सुनानेके लिये कहा था, पर—***'तब हनुमंत कही सब राम कथा'*** हनुमान्‌जीने पूरी रामकथा सुना दी। यही सन्तोंका कार्य है। रामकथाके नामपर अपनी कथा सुनानेवाला असली कथावाचक नहीं है, अपनी कथाके स्थानपर जो निरन्तर हृदयसे भगवान् रामकी कथा कहता है, वही सन्त कथावाचक है, श्रेष्ठ कथावाचक है। रामकथाके माध्यमसे अपने अहंकी व्याख्या करना रामकथा नहीं है। विभीषणजी पूछ रहे हैं—'महाराज! अपनी कथा सुनाइये!' पर हनुमान्‌जी कहते हैं—विभीषणजी! कथा तो एकमात्र भगवान्‌की ही होती है, जीवके पास तो बस व्यथा ही होती है।' हनुमान्‌जीने प्रभुकी कथा सुनायी और उसका बड़ा सुखद परिणाम निकला। गोस्वामीजी कहते हैं—

तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम॥

(रा०च०मा० ५।६)

श्रोता और वक्ता दोनों ही आनन्दमें डूब गये और—

एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा॥

(रा०च०मा० ५।८।२)

दोनोंको ही विश्रामकी प्राप्ति हो गयी।

हनुमान्‌जीने कथा सुनायी तो विभीषणजी सोचने लगे—बड़े अनोखे सन्त मिल गये हैं, अब इनका नाम भी तो जानना चाहिये। इसलिये उन्होंने पूछ लिया—'कृपा करके आप कम-से-कम अपना नाम तो बता दीजिये।'

'हाँ! हाँ! मैं अपना नाम बताता हूँ, पर साथ ही मैं अपने नाम लेनेका फल भी बता देता हूँ—

प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥

(रा०च०मा० ५।७।८)

प्रात:काल यदि कोई मेरा नाम ले ले तो उसे दिनभर भोजन ही नहीं मिल पाता।' क्या सचमुच हनुमान्‌जीका नाम लेनेसे दिनभर भोजन नहीं मिलता है? ऐसी बात नहीं है। उस दिन सम्भवत: और अच्छा भोजन मिल सकता है। वस्तुत: वे नहीं चाहते कि कोई उनके नामका स्मरण करे। वे तो चाहते हैं कि सब सदैव प्रभुके नाम-स्मरणमें ही निमग्न रहें। इसलिये तो वे प्रभुकी कथा कहते हैं और—

'तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।'

अपना नाम भी बताते हैं तो श्रोताको सावधान कर देते हैं कि 'मेरा नहीं, लेनेयोग्य तो एकमात्र प्रभुका ही नाम है।' यह है हनुमान्‌जीका सन्तत्व। सन्त वही है, जो हमारे जीवनमें भगवान्‌के प्रति अनुराग पैदा करे और भगवान्‌के गुणोंकी महिमाको हमारे जीवनमें प्रतिष्ठित करे। हनुमान्‌जी सर्वत्र यही कार्य सम्पन्न करते हैं। हनुमान्‌जी लंकामें विभीषणजीको ही नहीं, जगज्जननी श्रीसीताजीको भी रामकथा सुनाते हैं।

सीताजी अत्यन्त निराशाकी स्थितिमें राक्षसियोंसे घिरी बैठी हुई हैं। वे दु:ख और व्याकुलताकी सीमातक पहुँच चुकी हैं। ऐसी स्थितिमें हनुमान्‌जी उन्हें धीरज प्रदान करते हैं और इसके लिये वे रामकथाका ही आश्रय लेते हैं, किंतु उस समय वे कहाँपर बैठकर कथा सुना रहे थे? गोस्वामीजी बताते हैं—

'तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई।'

(रा०च०मा० ५।९।१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हनुमान्‌जी वृक्षके पत्तोंकी आड़में छिपकर पूरी कथा सुनाते हैं। यही सन्त कथावाचककी व्याख्या है। जो अपने-आपको छिपाये और रामको प्रकट करे, वही सन्त है और यदि रामको छिपाकर अपने-आपको दिखानेकी चेष्टा करे तो वह असन्त है। 'दिखाने'का यह अर्थ नहीं है कि वक्ता बिलकुल दिखायी ही न दे, सामने ही न आये। इसका अर्थ यही है कि उसके दर्शनसे, उसकी वाणी सुनकर श्रोताको निरन्तर भगवान्‌का ही स्मरण होता रहे।

सीताजी तो इतना निराश थीं कि वे त्रिजटासे अनुरोध करते हुए यही कहती हैं कि—

आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥

(रा०च०मा० ५।१२।३)

आप अग्नि प्रज्वलित कर दें, जिससे मैं शरीरका परित्याग कर सकूँ। ऐसी स्थितियाँ भी जीवनमें आती हैं। आत्महत्याकी जो घटनाएँ होती हैं, उनके पीछे व्यक्तिकी निराशा ही होती है, पर उस निराशामें भी रामकथा आशाका सन्देश देती है। सन्त रामकथाके माध्यमसे व्यक्तिके जीवनमें जो निराशाका भाव होता है, उसे दूर कर देते हैं। हनुमान्‌जी यही कार्य करते हैं। वे—

'रामचंद्र गुन बरनैं लागा।'

(रा०च०मा० ५।१३।५)

सीताजीको रामकथा सुनाते हैं और ऐसी सुन्दर कथा सुनाते हैं कि—

'सुनतहिं सीता कर दुख भागा।'

(रा०च०मा० ५।१३।५)

लंकासे वापस लौटकर हनुमान्‌जी सीताजीके दुःखकी कथा भगवान् रामको सुनाने लगे और ऐसी कथा सुनायी कि भगवान् रामकी आँखोंमें आँसू आ गये। हनुमान्‌जी ऐसी कथा सुनाते हैं, जो जीवमें आनन्द भर दे और भगवान्‌को रुला दे। भगवान् रामने पूछा—'हनुमान्! सीताजी इतनी विपत्तिमें हैं? तुम मुझे जरा और विस्तारसे बताओ!'

हनुमान्‌जी ऐसे श्रेष्ठ कथावाचक हैं, जो चुन-चुनकर शब्दोंका प्रयोग करते हैं। उन्होंने कहा—

सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहें भल दीनदयाला।

(रा०च०मा० ५।३१।९)

'हे दीनदयाल! सीताजीकी विपत्तिका वर्णन न करना ही अच्छा है।'

गोस्वामीजी कहते हैं—

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना॥

(रा०च०मा० ५।३२।१)

भगवान् राम व्याकुल हो गये, रोने लगे।

भगवान् आनन्दमय हैं और हमारे अन्तःकरणमें दुःख-ही-दुःख भरा हुआ है। सन्तकी कथाका उद्देश्य यही होता है कि ये स्थितियाँ परस्पर बदल जायँ। भगवान्‌में करुणा उत्पन्न हो जाय, वे व्याकुल हो जायँ और जीव सुखी हो जाय, आनन्दित हो जाय।

भगवान् रामपर इस कथाका ऐसा अद्भुत प्रभाव पड़ा कि तुरंत उन्होंने सुग्रीवजीकी ओर देखा और बोले—

अब बिलंबु केहि कारन कीजे। तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजे॥

(रा०च०मा० ५।३४।७)

सन्तके माध्यमसे जो रामकथा कही जाती है, वह जीवोंको निर्भय बनाती है, पर भगवान्‌से भय करना सिखाती है। रामकथा हमें भगवान्‌से मिलाती है, हमारे दुःख और विषाद दूर करती है तथा भगवान्‌की महिमाको हमारे जीवनमें प्रतिष्ठित करती है। यह है कथाका सच्चा स्वरूप, जिसका गायन सन्तगण विविध रूपोंमें करते हैं।

सन्त रामकथाके माध्यमसे भगवान्‌की महिमा, उनके चरित्र और गुणोंकी अनगिनत रूपोंमें जब व्याख्या करते हैं तो व्यक्ति यह अनुभव करने लगता है कि वह अपनी सभी समस्याओंका हल भगवान्‌से जुड़कर सरलतासे पा सकता है।

भगवान्‌में अनन्त गुण हैं, उनकी कथा अनन्त है, व्यक्ति जितना विस्तार देकर उनका वर्णन करना चाहे, कर सकता है, पर फिर भी भगवान्‌की कथा कभी समाप्त होनेवाली नहीं है। इसलिये—

'बहुत कहौं का कथा बढ़ाई।'

विस्तारमें न जाकर संक्षेपमें यही कह सकते हैं कि भगवान्‌की कथाको यदि हम सही अर्थोंमें कहें और सुनें तो हमारे जीवनका मोह और अभिमान अवश्य ही विनष्ट हो जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजय

[पौराणिक लघु-कथा]

(श्रीजहूरबख्शजी)

द्वादशीका दिन था, सम्राट् अम्बरीष एकादशीके उपवासकी पारण-क्रिया समाप्त करनेके लिये उद्यत हो रहे थे। वे विष्णुभगवान्‌के परम भक्त—निष्कामभावसे जीवन-पथपर चलनेवाले, निर्भीक स्वभावसे धर्माचरण करनेवाले एक आदर्श शासक थे। समदर्शी तो ऐसे थे कि सारी सृष्टिको प्रभुमय समझते थे, न किसीके प्रति राग रखते थे, न द्वेष; न जीवनके प्रति अनुरक्त रहते थे, न मृत्युके प्रति विरक्त। बड़े-से-बड़े लोभके सामने सदा हिमाचलकी तरह अटल रहते। प्रत्येक एकादशीको उपवास रखना और द्वादशीमें उसका पारण करना उनका नियम था।

हाँ, तो सम्राट् अम्बरीष एकादशीके उपवासकी पारण-क्रिया समाप्त करनेके लिये उद्यत हो ही रहे थे कि सहसा महर्षि दुर्वासा आ पहुँचे। एक तो वे तेजस्वी ब्राह्मण थे, दूसरे महान् तपस्वी। अम्बरीष आनन्दसे प्रफुल्लित हो उठे। उन्होंने श्रद्धा-समन्वित हृदयसे महर्षिका वन्दन तथा स्वागत-सत्कार किया, निर्मल जलसे उनके चरण धोये और फिर उनको एक सुन्दर आसनपर बिठाया।

कुशल-प्रश्नादिके बाद अम्बरीषने उभय करबद्ध होकर कहा—'भगवन्! यदि आज्ञा हो तो एकादशीव्रतका पारण कर लूँ।'

महर्षिने रूक्ष-स्वरमें उत्तर दिया—'एकादशी-व्रतका पारण करनेवाले अकेले तुम्हीं नहीं हो, मैं भी हूँ। नदी जाकर स्नानादिसे निवृत्त हो आऊँ, तबतक ठहरो।' कहकर महर्षि चले गये। अम्बरीष उनके लौटनेकी प्रतीक्षा करने लगे; परंतु वे न लौटे—न लौटे। जब द्वादशी व्यतीत होनेमें अत्यल्प समय शेष रह गया, तब अम्बरीषने घबराकर उपस्थित ब्राह्मणोंसे कहा—'इतना समय व्यतीत हो गया, परंतु महर्षि नहीं लौटे। इधर द्वादशी समाप्त हुई जा रही है। बताइये, ऐसी अवस्थामें मेरा क्या कर्तव्य है?'

'आप पारण-क्रिया सम्पन्न कर लीजिये।' ब्राह्मण एकस्वरमें बोले।

'और यदि महर्षि आ पहुँचें और रुष्ट होने लगें, तो?' अम्बरीषने प्रश्न किया।

'यह तो एक धार्मिक कृत्य है, यदि आप सम्पन्न कर लेंगे तो भला महर्षि रुष्ट क्यों होंगे?' ब्राह्मणोंने उत्तर दिया।

ब्राह्मणोंके कथनका औचित्य धर्मप्राण अम्बरीषके हृदयमें प्रविष्ट हो गया। अभी उन्होंने पारण-विधि सम्पन्नकर भगवान्‌का चरणोदक ग्रहण किया ही था कि महर्षि दुर्वासा आ पहुँचे और मेघ-गम्भीर स्वरमें बोले—'यह दुस्साहस! तूने मेरे आदेशकी अवहेलना की और पारणविधि पूर्ण कर ली। क्यों?'

महामुनि दुर्वासा जैसे परम तपस्वी थे, वैसे ही उग्र क्रोधी भी। उनका क्रोध जगद्विख्यात था, वह सहसा भयंकर अभिशापके रूपमें बरस पड़ता था। वे क्रोधावेशमें न उचितका ध्यान रखते थे, न अनुचितका; न राजाको समझते थे, न रंकको और न पुरुषको देखते थे, न स्त्रीको—सभीको एक लाठीसे हाँक देते थे।

एक बार भोली-भाली शकुन्तला अपने प्रियतम दुष्यन्तकी स्मृतिमें ध्यानमग्न थी। उसे पता भी न चला कि महामुनि दुर्वासा कब आ पहुँचे; परंतु दुर्वासाको वस्तुस्थिति समझनेकी आवश्यकता ही क्या थी? उन्होंने क्रोधावेशमें शकुन्तलाको अभिशाप दे डाला—'तू जिसके स्मरणमें आत्मविस्मृत हो रही है, वही तुझे भूल जायगा।' इस अभिशापके फलस्वरूप दुष्यन्त सचमुच शकुन्तलाको भूल गये और उस बेचारीको अपार कष्ट सहना पड़ा। यह दूसरी बात है कि यथासमय दुष्यन्तको अपनी भूलपर घोर पश्चात्ताप हुआ और इस पश्चात्तापकी अग्निमें उनका प्रेम शुद्ध कुन्दनके समान चमक उठा, परंतु इससे क्या, उन दोनोंको कष्ट तो उठाने ही पड़े।

उपस्थितजन महर्षि दुर्वासाके इस अमोघ प्रभावसे भलीभाँति परिचित थे, इसलिये वे उनकी टेढ़ी भ्रुकुटी देखते ही भयके मारे थर-थर काँपने लगे; परंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अम्बरीषने शान्त-स्थिर स्वरमें उत्तर दिया—'दया करें, भगवन्! द्वादशी व्यतीत हुई जा रही थी।' परंतु अम्बरीषकी नम्रता व्यर्थ थी। दुर्वासा भला, उससे कब प्रभावित होनेवाले थे। वे पूर्वापेक्षा और भी कठोर-क्रुद्ध स्वरमें बोले—'अधम! पाखण्डी!! मिथ्यावादी!!!'

अम्बरीष जैसे दुर्वासाके इस भयानक क्रोधसे परे थे। वे पूर्ववत् शान्त और स्थिर थे। कदाचित् समझते थे कि महर्षि अपनी क्रोधी प्रवृत्तिके अधीन हैं और अभिशापका पथ अपनाये बिना पश्चात्पद न होंगे। फिर भी उन्होंने अपने कर्तव्यका पालन किया और महर्षिको शान्त करनेकी भरपूर चेष्टा की; परंतु परिणाम क्या निकला? अम्बरीष ज्यों-ज्यों नम्र पड़ते गये, दुर्वासा त्यों-त्यों उग्र होते गये और अन्तमें दसों दिशाओंको कम्पायमान करते हुए बोल उठे—'अच्छा जा, अभी भस्मसात् हो जा।' महर्षिका कथन समाप्त होते ही उनकी जटासे महाभयंकर अग्निज्वाला-सदृश एक तेजोमयी कृत्या उद्भूत हुई और अम्बरीषकी ओर बढ़ चली।

अम्बरीष मृत्युका सामना करनेके लिये उद्यत हो ही रहे थे कि कृत्या उनके निकट आ पहुँची। महर्षिको प्रतीत हुआ, जैसे अम्बरीषकी समस्त श्रद्धा, समस्त भक्ति और समस्त साधना चक्रके समान अम्बरीषके चारों ओर घूम रही है और अम्बरीष उसके अन्तर्गत पूर्णतया सुरक्षित हैं। इसके साथ-साथ जब उन्होंने देखा कि उन्हींका अहंकार—उन्हींका क्रोध जो भयंकर कृत्याके रूपमें प्रकट हुआ था, उसे उस चक्रने भस्म कर दिया और अब उनका सर्वनाश करनेके लिये झपटा चला आ रहा है, वे आश्चर्य एवं भयसे अभिभूत हो उठे और अपने प्राण बचानेके लिये वहाँसे भाग निकले। वे अपने पैरोंको अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे गति दे रहे थे, द्रुतवेगसे भागे जा रहे थे—चक्रकी अपेक्षा भी कहीं द्रुतवेगसे!

भागते-भागते दुर्वासा ब्रह्मलोकमें पहुँचे, उनके कातर क्रन्दनसे सम्पूर्ण ब्रह्मलोक गूँज उठा—'**त्राहि मां ब्रह्मन्! त्राहि माम्!** आज मेरे अहंकारने—मेरे क्रोधने भयंकर कृत्याका रूप धारण किया था, उसे भस्मकर यह चक्र मुझे भस्म करनेके लिये विद्युद्वेगसे झपटा चला आ रहा है। मुझे बचाइये—इस विपत्तिसे मेरा उद्धार कीजिये।'

ब्रह्माने निराश स्वरमें उत्तर दिया—'मुनिवर! मेरा धर्म तो केवल प्राणीकी रचना करना है। इसके पश्चात् प्राणी स्वयं अपने कर्मकी रचना करता और उसका फल भोगता है।'

परंतु इस तत्त्व-ज्ञानपर विचार करनेके लिये दुर्वासाके पास समय ही कहाँ था। उन्होंने अधीर होकर कहा—'वह देखिये, भगवन्! चक्र चला आ रहा है। यदि आप मेरी रक्षा नहीं कर सकते तो रक्षाका कोई साधन तो निकाल सकते हैं।'

ब्रह्मा बोले—'भगवान् शंकरके पास जाइये। कदाचित् वे आपकी रक्षाका कोई साधन निकाल सकें।'

दुर्वासा दौड़े-दौड़े शंकरके पास पहुँचे। भगवान् शंकरने भी उन्हें कोरा उत्तर दे दिया—'किसीके कर्मफलका परिवर्तन करूँ—यह मेरा कर्तव्य नहीं। मेरा कर्तव्य तो पुरानी सृष्टिमें क्रान्तिको जन्म देना और युग-परिवर्तन करना है। आप श्रीविष्णुके पास जाइये। वे ही पालक हैं—रक्षक हैं, यदि वे चाहें तो आपको बचा सकते हैं।'

अब दुर्वासा भगवान् विष्णुकी सेवामें उपस्थित हुए और लगे गिड़गिड़ाने—'**त्राहि मां प्रभो! त्राहि माम्!** वह देखिये, सुदर्शन चक्र मेरा सर्वनाश करने चला आ रहा है। बचाइये, बचाइये।'

विष्णुभगवान् हँसकर बोले—'परंतु मुनिवर! सुदर्शन चक्र तो इस समय भक्तवर अम्बरीषके अधीन है और उन्हींकी रक्षामें प्रवृत्त है।'

'तो क्या अब मेरी रक्षाका कोई उपाय नहीं है?'

'है क्यों नहीं! आप अम्बरीषके ही पास चले जाइये; वे महात्मा हैं, समदर्शी हैं, प्राणिमात्रका कल्याण चाहनेवाले हैं। उनसे कदापि आपका अनर्थ न होगा।'

'हा हन्त! जिसको तुच्छातितुच्छ समझकर कठोर अभिशाप दिया, उसे ही अब यह गर्वोन्नत मस्तक झुकाना पड़ेगा; परंतु इस अधम प्राणको बचानेके लिये और उपाय ही क्या है?' दुर्वासा हृदयपर पत्थर रखकर अम्बरीषके पास पहुँचे। अम्बरीष अबतक यथास्थान स्थित सोच रहे थे—'यह क्या? मुनिवरने मुझे अभिशाप दिया था—'भस्मसात् हो जा!' परंतु मैं तो भस्म नहीं हुआ, उल्टे मुनिवर ही भाग निकले। भगवान्की माया कितनी गहन है, समझमें नहीं आती!' इतनेमें दुर्वासाने पुकार लगायी—'मुझे बचाओ—मेरी रक्षा करो, भक्तवर!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं आपकी शरणमें हूँ।'

अम्बरीष चौंके, विस्मयकी परिधिसे बाहर निकले और बोले—'मैं और आपको बचाऊँ—आपकी रक्षा करूँ। कहते क्या हैं, भगवन्!'

'देर मत करो, भक्तवर! शीघ्र मुझे अपनी शरणमें स्थान दो। वह देखो, सुदर्शनचक्र मेरे पीछे लगा हुआ है।'

'कहाँ भगवन्! मुझे तो कुछ दिखायी नहीं देता।'

दुर्वासाने नेत्र मलते-मलते अपने चारों ओर दृष्टिपात किया तो उनको वहाँ सुदर्शन-चक्रके दर्शन नहीं हुए। अम्बरीषकी प्रार्थनासे सुदर्शन शान्त हो चुके थे। दुर्वासाके विस्मयकी सीमा न रही—जैसे उनके सामनेसे एक अद्भुत-अनोखा स्वप्न तिरोहित हो गया हो। वे चित्रलिखे-से खड़े रह गये—शान्त, नीरव और विचार-मग्न। फिर सहसा अम्बरीषके चरणोंपर गिर पड़े और बोले—'भक्तवर! आप वास्तवमें महान् हैं! मैं आपका अपराधी हूँ। मेरा अपराध क्षमा कीजिये। आज आपने मेरे सामने ज्ञानकी ज्योति प्रज्वलित कर दी है, मेरा अशेष कल्याण-साधन किया है।'

अम्बरीषने शीघ्रतापूर्वक दुर्वासाको उठाते-उठाते कहा—'यह क्या करते हैं, भगवन्! कहाँ मैं एक सामान्य मानव और कहाँ आप? महात्मन्! विनम्रताके रूपमें यह घोर अनर्थ न कीजिये, नहीं तो मैं पाप-पंकमें फँसकर रह जाऊँगा।'

दुर्वासा उठते-उठते बोले—'नहीं, नहीं, राजर्षे! पाप-पंकमें तो अबतक मैं ही फँसा हुआ था। मेरे हृदयमें निरन्तर अहंकार एवं क्रोधकी नारकीय ज्वालाएँ धधकती रहती थीं; परंतु आज उनसे मेरा उद्धार हो गया—केवल आपकी शान्ति और विनम्रताद्वारा मैं समझ गया हूँ कि तपका महत्त्व अहंकार और क्रोधमें नहीं, जगत्-कल्याणकी भावनामें है। मैं समझ गया हूँ कि अक्रोधका मेघ क्रोधकी अग्निपर शीतल जल-राशि उड़ेल देता है। मैं समझ गया हूँ कि अहिंसाका सुदर्शन-चक्र हिंसाकी अभिशापमयी कृत्याको कुण्ठित एवं व्यर्थ कर देता है। ज्ञानके इस उद्बोधक प्रकाशमें मेरा हृदय परिवर्तित हो गया है और अब उसकी कोमल वृत्तियाँ वेगपूर्वक जाग रही हैं।'

यह विजय थी अहंकारके समक्ष विनयकी, क्रोधके समक्ष अक्रोधकी और हिंसाके समक्ष अहिंसाकी, जो अबतक हमारी सभ्यता और संस्कृतिके पृष्ठोंपर स्वर्णाक्षरोंमें चमचमा रही है और संसारको एक सुन्दर आध्यात्मिक सन्देश दे रही है।

संसार-बन्धन

(सुश्री शकुन्तला गुप्ता, बी०ए०, हिन्दी-प्रभाकर)

को छूट्यो इहिं जाल परि, मन कुरंग अकुलाय।
ज्यों-ज्यों सुरझि भज्यो चहै, त्यों-त्यों उरझत जाय॥

इस संसरणशील संसारका निर्माता सर्वव्यापक अन्तर्यामी परमेश्वर बड़ा ही अद्भुत है। किसी भी प्रकारसे उसके ओर-छोरका पता नहीं लगता। न वह वर्णमय है और न रूपमय तथापि अपनी विचित्र शक्तिके द्वारा सांसारिक लोगोंको सर्वत्र प्रेरित करता रहता है। यद्यपि वह स्वयं निराकार है तथापि उसकी गति जाननेके लिये सहस्रों ऋषि-मुनि महान् योगाभ्याससे प्रयत्न करते हैं। फिर ऐसा उत्कृष्ट ईश्वर ही जब अलभ्य है, उसकी गति बुद्धिसे दूर है तो उसकी कृतिरूप सृष्टिका आदि-अन्त कैसे प्राप्त हो सकता है!

यदि संसारकी रचनाको सूक्ष्मदृष्टिसे देखा जाय तो वास्तवमें यह कुछ भी नहीं है। जिस प्रकार आकाश देखनेमें नीला एवं झुका-सा प्रतीत होता है, पर है वह शून्य ही। मनुष्य बुद्धिके भ्रमसे उसमें नीला वर्ण देखता है तथा उसमें लगे हुए चन्द्रमा-सूर्य तथा तारागणोंको दृष्टिगोचर करता हुआ भी भ्रान्त बना रहता है। इसी प्रकार संसार है। उससे छुटकारा पानेके लिये विद्वानोंने अपने मनको कहीं कुरंग कहकर और कहीं भ्रमर कहकर आश्वासन दिया है। एक सन्त कहते हैं—मनरूपी कुरंग! तू सांसारिक विषय-वासनारूपी अन्धकूपमें अपनी अज्ञानताकी प्रवल प्रचण्ड तीक्ष्णताको रोकनेमें विवश होकर अचानक गिर गया था; परंतु अब-जब तुझे कुछ सुध आयी है तो तेरी आँखोंकी पट्टी कुछ-कुछ दूर होने लगी है। तू पछतावा करने लगा, यह तेरी भूल है; क्योंकि जब तूने पहले दुर्भाग्यवश मूर्खतासे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरनेमें ही आनन्द समझा, हितैषियोंके बरजनेपर भी उलटा उनपर क्रोधित होकर गिर ही गया तो अब तू पश्चात्ताप मत कर, ज्यों-ज्यों सुलझानेका प्रयत्न करेगा, त्यों-त्यों उलझता ही जायगा। तू इस विचित्र मायाको स्वच्छन्द विचरनेका आनन्ददायक स्थान मत समझ, यह तो सृष्टिकर्ता चारों ओर विषय-वासनारूपी जालको फैलाकर पशु-पक्षीरूपी अज्ञानी मनुष्योंको पकड़नेका प्रयत्न करके आप स्वयं छिपकर बैठ गया है। इससे उस ब्रह्मको अदृश्य कहते हैं। जो मूर्खलोग इस जालमें जकड़ जाते हैं, वे आयुपर्यन्त सिर पटकनेपर भी छुटकारा नहीं पा सकते। जिस प्रकार जालमें फँसा हुआ कुरंग एक पाँवको निकालनेका प्रयत्न करता है तो दूसरा फँस जाता है।

इसी प्रकार भ्रमरकी भी स्थिति है। वह पुष्पके सौन्दर्यपर इतना लुब्ध होता है कि अपना सर्वस्व न्योछावरतक कर देनेके लिये तत्पर होकर अपनी अज्ञतावश उसके ऐसे मोहरूपी जालमें फँसता है कि अपनी भी सुध-बुध भूलकर उसके ही प्रेमके रागगानमें मस्त होकर मकरन्दपानके लिये दौड़ पड़ता है। इतनेमें काल-निशा आ जाती है और उस विकसित पुष्पको ज्यों ही बन्द करती है कि प्रेमी भ्रमर भी उसीमें बन्द हो जाता है; परंतु जब वह कुछ दिनोंके पश्चात् देखता है कि उस पुष्पमें न वह सुगन्ध है और न वह सौन्दर्य है, उसकी प्रत्येक पँखुड़ी बिखरी हुई पृथ्वीपर पड़ी है, तब वह अपने भाग्यको धिक्कारता है, संसारकी अस्थिरतापर ध्यान देता है और इसकी असारताके गीत गाता हुआ अपने जीवनकी इतिश्री कर देता है।

इस असारताको देखते हुए भी मनुष्य अपनी अज्ञतावश उसे सारभूत मानकर अपनेको उसमें लिप्त किये रहता है। मनुष्यका मन एक चंचल और लुब्ध पक्षीके समान है, जो जिधर अपना स्वार्थ देखता है, उधर ही चला जाता है। जिस प्रकार मुट्ठीभर चावलोंके कणसे कपोतराज चित्रग्रीव अपने परिवार और बन्धु-बान्धवोंसहित व्याधके जालमें जकड़ा गया था, इसी प्रकार मन भी इस क्षणभंगुर सांसारिक मोह-मायाके फंदेमें पड़कर अपनेको इससे जकड़ा हुआ तथा 'स्वयमेव बन्धनयुक्त' समझता है, परंतु वास्तवमें ईश्वरने न तो किसीको बन्धनमें डाला है और न मुक्ति ही दी है। अपनेको जैसा समझो, वैसा ही होता है, अर्थात् मनुष्य सांसारिक कर्मोंको करता हुआ यदि अपने मनमें दृढ़ विश्वास रखता है कि मैं किसी उलझनमें उलझा हुआ नहीं हूँ तो वह कभी भी सांसारिक विषयोंसे परास्त नहीं हो सकता तथा सदा स्वतन्त्र है। वह जब चाहे सारे बन्धनोंसे मुक्त होकर मोक्षकी पदवी प्राप्त कर सकता है; क्योंकि प्राकृतिक वस्तुओंको दूर करना कठिन है; परंतु जो बुद्धिके भ्रमसे वास्तविक प्रतीति हो रही है, वह शीघ्र ही ज्ञानकी प्रभासे उसी प्रकार दूर हो सकती है, जैसे सूर्यके उद्भासित होनेसे अन्धकार।

यद्यपि यह बात सर्वसम्मत है कि यदि संसार वास्तवमें कोई वस्तु नहीं तो इसके कार्य हमें क्यों दिखायी देते हैं अर्थात् कोई दुःखके भयंकर प्रकोपकी ज्वालाओंसे जर्जरीभूत होकर जल रहा है, कोई आनन्दमग्न होकर सांसारिक कर्तव्योंको करता हुआ ही स्वर्गीय सुखोंका आनन्द अनुभव कर रहा है। साथ ही कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो स्वार्थियोंकी स्वार्थपरतासे तथा विश्वासघातियोंके अत्याचारोंसे अपने हृदयसरोवरके आनन्दजलसे रहित होनेके कारण कीचड़के समान पड़े रहनेपर भी सर्वस्वत्यागी होकर एकान्तवासके भिखारी बन संसारके प्रत्येक कोनेमें चक्कर लगाते फिरते हैं, फिर भी सांसारिक बन्धनमें जकड़े हुए हैं।

स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे कि यह संसार वास्तवमें कुछ भी नहीं, इससे व्यर्थ ही मन-कुरंग उलझा हुआ है। इससे सुलझनेका सुगम मार्ग केवल ईश्वरीय ज्ञान है। इसके बिना निवृत्ति कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव है। जबतक हृदयमन्दिरमें ज्ञानका दीपक नहीं जगमगाता, तबतक पास पड़ी हुई वस्तुको भी अदृश्य जानकर प्राणी उसको ढूँढ़नेका प्रयत्न करता है। अतः मनुष्यका कर्तव्य है कि सांसारिक कर्तव्योंका पालन करता हुआ भी उसमेंसे कुछ-न-कुछ तत्त्व ग्रहण करके निःसार पदार्थको छोड़ दे। जिस प्रकार हंस दूधको निकालकर पानीको छोड़ देता है, उसी प्रकार विद्वान् पुरुषका मुख्य कर्तव्य यह है कि प्रत्येक वस्तुमेंसे वास्तविकताको ग्रहणकर असारको छोड़ दे। सांसारिक जालसे सुलझनेके लिये ईश्वरीय ज्ञानका होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि कुछ दुःख-विपत्तियाँ आ भी पड़ीं तो उन्हें शान्तिसे ईश्वरपर विश्वास रखकर सहन करनेका अभ्यास होना चाहिये। साथ ही ईश्वरमें प्रबल विश्वास तथा मनकी दृढ़ता भी अनिवार्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रवाद

[अनश्वर परमेश्वरका अनश्वर-संविधान]

(श्रद्धेय पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

[गताङ्क ९ पृ०-सं० ३४ से आगे]

ईश्वरद्वारा दी गयी कसौटी

भगवान्से मानवोंका भटकाव सहा नहीं जाता। कोई पिता अपने पुत्रोंके भटकावको सह नहीं पाता। फिर परम पिता तो परम दयालु है, वह हमारे भटकावको कैसे सह सकता है? वह सर्वसमर्थ तो है ही। वह कोई-न-कोई घटना घटाया करता है, जिससे आँखोंमें आये इस धुन्धरोगकी चिकित्सा हो जाती है और हम शास्त्रको शास्त्रके रूपमें देखने लग जाते हैं। ये घटनाएँ इतनी सुबोध होती हैं कि साधारण जनता भी इनके द्वारा सत्यको पहचान जाती है। उदाहरणके रूपमें प्रस्तुत प्रसंग (पुनर्जन्म)-को ही ले लिया जाय।

आज विश्व दो भागोंमें बँटा है। एक भागका मत यह है कि पुनर्जन्म होता है तथा दूसरे भागका मत है कि पुनर्जन्म नहीं होता—इन दोनों भागोंमें किस भागमें सच्चाई है—यह जिज्ञासा है।

ईश्वर सत्यको निखारनेके लिये विश्वमें प्रायः प्रतिदिन कहीं-न-कहीं, कोई-न-कोई ऐसी घटना घटाता रहता है, जिससे 'पुनर्जन्म होता है', इस पक्षकी पुष्टि हो जाती है। पुनर्जन्म-सम्बन्धी घटनाओंकी संख्या कम नहीं है। हजारों-लाखों पुस्तकोंमें इनका उल्लेख हुआ है। यहाँ केवल दो परामनोवैज्ञानिकोंके संकलनका उल्लेख किया जा रहा है। एक वैज्ञानिक हैं—डॉ० इयान स्टीवेन्सन और दूसरे हैं—डॉ० हेमेन्द्रनाथ मुखर्जी। डॉ० इयान स्टीवेन्सन एम०डी० वर्जीनिया यूनिवर्सिटीके परामनोविज्ञान विभागके प्रोफेसर हैं। अकेले इन्होंने सन् १९९७ ई०तक लगभग बीस हजार पुनर्जन्मकी घटनाओंकी जाँच की है। अन्तमें वे इस नतीजेपर पहुँचे कि मृत्युके बाद व्यक्तिका जन्म फिरसे होता है।

डॉ० इयान स्टीवेन्सनने दिल्ली प्रदेश अणुव्रत समितिकी गोष्ठीमें जो विचार व्यक्त किया था, उसे नवभारत टाइम्स (१८।१०।७२)-से उद्धृत किया जाता है—सन् १९६१ ई० से अबतक (१८।१०।७२) कम्प्यूटरकी सहायतासे मैंने जिन बारह सौ मामलोंकी जाँच की है। उनमें इस विचारकी पुष्टि होती है कि मृत्युके बाद मनुष्यका जन्म फिरसे होता है।

पुनर्जन्मके अधिकांश प्रमाण भारत, श्रीलंका, बर्मा, थाईलैण्ड, तुर्की, सीरिया तथा लेबनान-जैसे मुसलिम (पुनर्जन्मके अविश्वासी) देशोंसे मिले। कई मामलोंमें तो बच्चे उस रोगसे पीड़ित पाये गये, जिस रोगसे वे पूर्वजन्ममें पीड़ित थे। यही नहीं, बल्कि पूर्वजन्मके चिह्न, जैसे—मस्सा आदि भी इस जन्ममें ठीक उसी अंगमें देखे गये, जिस अंगमें वे पिछले जन्ममें थे। पूर्वजन्मके कुछ भाव तथा व्यवहार इस जन्ममें मौजूद थे।

इस तरह स्टीवेन्सन महोदयने कुछ ही वर्षोंमें लगभग बीस हजार पुनर्जन्मकी सत्य घटनाओंका आकलन कर लिया है। इन घटनाओंका अध्ययनकर उन्होंने जो निष्कर्ष निकाला है, वह इस तरह है—पुनर्जन्मके सिद्धान्तोंको माने बिना इन घटनाओंको सुलझाना कठिन है।

दूसरे परामनोवैज्ञानिक हैं प्रो० हेमेन्द्रनाथ मुखर्जी। स्टीवेन्सन साहबकी तरह इन्होंने भी दुनियाभरकी पुनर्जन्म-सम्बन्धी सत्य घटनाओंका आकलन किया है। जैसे क्यूबाकी राचाले ग्राण्ड, स्विट्जरलैण्डके गैब्रीयल उराइब, अमेरिकाकी रोजनबर्ग, इटलीके डॉ० गैस्टोन उगूसियोनी, आस्ट्रियाके सैमोना, ब्राजीलके पौलौ लोरेंज, इंग्लैण्डकी मागरिट कैंपथोर्न (पुनर्जन्मका नाम), कनाडाकी एक महिला, आस्ट्रेलियाके श्रीअर्नेस्ट ब्रिग्ग, टर्कीके इस्माइल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिकी विश्वकी पुनर्जन्मकी प्रामाणिक घटनाओंका आकलन किया है। इन घटनाओंका अध्ययनकर ये भी इसी निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि बिना पुनर्जन्म माने सभी घटनाओंका पुनरानुभूति कहकर विवेचन नहीं किया जा सकता है।

भारतीय दर्शन न कहनेका अभिप्राय

मैंने वैदिक दर्शनका नाम लिया है। भारतीय दर्शनका नहीं; क्योंकि भारतीय आस्तिक दर्शनमें कणाद आदि जीव-प्रोक्त दर्शनोंका भी परिगणन होता है। ये वेदान्तकी दृष्टिसे स्थूल दृष्टि रखते हैं। पहले तलसे जो तथ्य दीखते हैं, वे दूसरे तलसे नहीं दीखते।

सर ऑलिवर लॉज प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे। वे विश्वविज्ञान-परिषद्के कई बार सभापति रह चुके थे। इनका एक ही लड़का था, जिसका नाम था रेमण्ड। प्रथम युद्धमें वह मारा गया। वह अपने माता-पिताकी ममता भूल न पाता था। आपबीती सुनानेके लिये अपनी माताको अभिभूत कर देता और उसीकी लेखनीसे अपनी कहानी लिख देता था। उस स्थितिमें उसकी माता लिखनेका अपना विषय भूल जाती और रेमण्ड जो लिखता, वही लिखती। लिपि भी रेमण्डकी ही होती। माता-पिताके पूछनेपर उसने बहुत-सी ऐसी घटनाएँ लिखायीं, जो जाँच करनेपर शत-प्रतिशत सही निकलीं।

सत्यको पाना ही वैज्ञानिकोंका लक्ष्य होता है। सर ऑलिवर लॉजको उसे मान लेना पड़ा। उन्होंने 'रेमण्ड' नामक अपनी पुस्तकमें सारी घटनाएँ लिखी हैं। लिखा है कि मृत और जीवित लोगोंके बीच कोई खास अन्तर नहीं होता। अपने पुत्र रेमण्डके द्वारा मुझे विश्वासयोग्य प्रमाण प्राप्त हुए हैं। रेमण्ड चाहता है कि वास्तविकतासे विश्वको परिचित करा दिया जाय। इसलिये अपना अनुभव विश्वके सामने अवश्य रखूँगा। मैं मरणोपरान्त जीवनमें उतना ही विश्वास करता हूँ, जितना कि मरनेके पूर्वके जीवनमें। मैं विश्वास करने लगा हूँ कि मनुष्यलोकके नीचे और ऊपर ऐसे अनेक लोक हैं, जिनमें उच्च तथा नीच कोटिके जीव निवास करते हैं—There is no real breach of continuity.

एशियाके एक बड़े भागमें पुनर्जन्मके सिद्धान्तसे सभी परिचित हैं तथा इसे स्वीकार करते हैं। इस्ताम्बूलमें सन् ५४३ ई०में आयोजित चर्च-पुरोहितकी एक परिषद्में निन्दित एवं परित्यक्त हो जानेके पहले पश्चिमी देशोंमें इसे सभी मानते थे। अपनी युक्तिसंगतताके कारण अब यह सिद्धान्त पुनः व्यापक रूपसे मान्यताप्राप्त होने लगा है। पूर्वी देशोंमें वैज्ञानिक दृष्टिकोणके तथा पश्चिमी देशोंमें पुनर्जन्मके सिद्धान्तके प्रचारको देखते हुए ऐसा लगता है कि आधुनिक जीवविज्ञानकी गवेषणाओंकी पृष्ठभूमिसे इसका एक स्पष्ट तथा संक्षिप्त विश्लेषण बहुतोंके लिये रुचिकर होगा।

पुनर्जन्मके सिद्धान्तका प्रचार विशेषतः हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म करते हैं। इस सिद्धान्तके अनुसार जबतक मनुष्य जगत्प्रपंचके आकर्षणोंसे मुक्त नहीं हो जाता, तबतक उसे पुनः एक नये मानवशरीरमें जन्म लेना ही पड़ता है। हिन्दुओं तथा बौद्धोंके पुनर्जन्म-सम्बन्धी मतोंमें सूक्ष्म भिन्नताएँ हैं। मैं यहाँ हिन्दुओंके अर्थात् वेदान्तके दृष्टिकोणसे इस विषयकी चर्चा करूँगा। आत्माकी देहान्तर-प्राप्तिमें विश्वास केवल हिन्दुओं तथा बौद्धोंमें ही सीमित नहीं है। यूनानी विचारधारामें पारसीक धर्मशास्त्रोंमें, इसीनीज सम्प्रदायके उपदेशोंमें, फरीसियोंमें, जस्टिन मार्टन तथा ओरीजेन्-जैसे ईसाई चर्चके आदिकालीन आचार्योंमें तथा सूफी सन्तों और कवियोंमें भी इस विश्वासके अस्तित्वके सुस्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। संसारके विभिन्न भागोंकी आदिम जातियाँ एवं जनजातियाँ भी इस सिद्धान्तमें विश्वास करती हैं। जन्म और मृत्युके रहस्य आदिकालसे ही मानवमनको उद्वेलित करते आ रहे हैं। मनुष्य कहाँसे आता है? वह कहाँ जाता है? ये मानवमनके स्वाभाविक प्रश्न हैं।

पुनर्जन्मका सिद्धान्त कर्मवादके सिद्धान्तका परिपूरक है। मनुष्यका पुनर्जन्म उसके अपने कर्मको सम्पूर्ण करनेके लिये ही होता है। वह जैसा बोता है, वैसा काटता है। कर्मके नियम मनुष्यको जन्म और पुनर्जन्मके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्रमें आबद्ध करते हैं। कर्मसे मानव बँधता है तथा कर्मसे ही उसकी मुक्ति हो सकती है। कर्म तभीतक बन्धनका कारण होता है, जबतक मानव जगत्प्रपंचमें आसक्त होता है, किंतु जब वह अनन्तकी प्राप्तिको अपना लक्ष्य बना लेता है, तब कर्म उसकी मुक्तिका कारण बन जाता है।

यह द्विविध सिद्धान्त मानवके अतीत, वर्तमान एवं भविष्यको लेकर निर्मित उसके व्यक्तित्वके एक व्यापक तथा सुसंगत प्रेक्षणपर आधारित है। यह जीवनकी प्रतिष्ठित घटनाओंकी व्याख्या करता है। जीवन नाट्य तथा इसके रहस्योंकी एक बुद्धिसंगत व्याख्या होनेके नाते इस सिद्धान्तके महत्त्वको प्राचीन कालसे लेकर वर्तमानकालतकके विश्वके बड़े-बड़े दार्शनिकोंने समझा और मान लिया है।

वास्तवमें, संसारके धर्मविज्ञानी, दार्शनिक, रहस्यवादी, वैज्ञानिक, कवि तथा मनोवैज्ञानिक सभी पुनर्जन्मके सिद्धान्तका समर्थन करते हैं, जो कर्मवादका ही एक अनुक्रम है।

इंग्लैण्डके मैनचेस्टर शहरके मुख्य ग्रन्थपाल एल० स्टैन्ली जोस्ट 'पुनर्जन्म तथा कर्म—आजके संसारपर प्रयुक्त एक आध्यात्मिक दर्शन' इस विषयपर लिखते हुए कहते हैं—पुनर्जन्मकी सत्यताके मौलिक प्रमाणको केवल बुद्धिके द्वारा ही समझा जा सकता है। यह प्रमाण किसी भी विषयको महत्त्व तथा अर्थ प्रदान करनेकी उस धारण-शक्तिपर निर्भर है, जिसके अभावमें यह विषय इन दोनोंसे वंचित ही रह जाता है। दृश्य-जगत् तथा विचार-जगत् किसी भी सत्यके प्रमाणका यही एकमात्र प्रकार है। इस विश्वब्रह्माण्डमें एक नीतिसंगत व्यवस्था है—इस प्रारम्भिक पूर्वकल्पनाके आधारपर पुनर्जन्मके इस सिद्धान्तको तर्कसम्मतरूपसे प्रमाणित किया जा सकता है और इस पूर्वकल्पनाके बिना इस विश्वका अस्तित्व भी निराधार है। केवल एक घोर अर्थहीनता या एक सुदीर्घ दुःस्वप्न है (द जूलियर प्रेस इन्कार्पोरेटिक न्यूयार्क, १९६१।१६१)।

'मनुष्यके वर्तमान जीवनके सुस्पष्ट ज्ञानसे ही उसके पूर्व तथा परवर्ती जीवनका ज्ञान हो सकता है।'

मानव मूलतः ज्योतिर्मय, अविनाशी आत्मा है और वही मुख्यतः इस मनोदैहिक जीवके जीवित होनेका कारण है। मनुष्यके स्वरूपके बारेमें उपनिषद् कहता है—'वह प्राणोंका प्राण है'—**स उ प्राणस्य प्राणः** (केनोपनिषद्)।

अपनी आत्माके शुद्ध, चेतन स्वभावके कारण हर व्यक्तिको अपने जीवनसे सम्बन्धित अन्य सभी वस्तुओंके अस्तित्वका बोध है। यह आत्मबोध ही जड़ वस्तुओंको चेतन वस्तुओंसे पृथक् करता है। यह स्वप्रकाश है। इसे किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं। इस ज्योतिर्मय, अविकारी, आत्माका उद्भव अपने विपरीत स्वभावके कारण देह, इन्द्रिय या मन या उनकी क्रियाओंसे नहीं हो सकता। यह मौलिक है। मनोदैहिक जीवनमें यह प्रारम्भसे विद्यमान है। किसी व्यक्तिमें परिवर्तनशील बहुविध तत्त्वोंका यही एक नियामक है।

अविकारी होनेके कारण आत्मा जन्म, वृद्धि, जरा और मृत्युसे परे है। शरीरके जन्मके साथ इसका जन्म नहीं होता, न ही शरीरके नष्ट होनेपर इसकी मृत्यु होती है। जैसा कि भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—'आत्माका जन्म नहीं होता, न ही इसकी मृत्यु होती है। यह पहले अस्तित्वरहित होकर बादमें अस्तित्व ग्रहण करती हो, ऐसी बात नहीं है। यह जन्मरहित है, नित्य है, शाश्वत है, चिरन्तन है। शरीरके नाश होनेपर इसका नाश नहीं होता' (श्रीमद्भगवद्गीता)।

शास्त्रवादका वर्णन श्रीमद्भगवद्गीताद्वारा

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

(२।४८)

हे धनंजय! तू आसक्तिको त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धिवाला होकर योगमें स्थित हुआ कर्तव्य-कर्मोंको कर, समत्व ही योग कहलाता है।

इस श्लोकमें भगवान्ने कर्मयोगके आचरणकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रक्रिया बतलायी है। कर्मयोगका साधक जब कर्मोंमें और उनके फलमें आसक्तिका त्याग कर देता है। तब उसमें राग-द्वेषका और उनसे होनेवाले हर्ष-शोकादिका अभाव हो जाता है। ऐसा होनेसे वह सिद्धि और असिद्धिमें सम रह सकता है। इन दोषोंके रहते सिद्धि और असिद्धिमें सम नहीं रहा जा सकता तथा सिद्धि और असिद्धिमें अर्थात् किये जानेवाले कर्मके पूर्ण होने और न होनेमें तथा उसके अनुकूल और प्रतिकूल परिणाममें सम रहनेकी चेष्टा रखनेसे अन्तमें राग-द्वेष आदिका अभाव होता है। इस प्रकार आसक्तिके त्यागका और समताका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है एवं दोनों परस्पर एक-दूसरेके सहायक हैं। इसलिये भगवान्‌ने यहाँ आसक्तिका त्याग करके और सिद्धि-असिद्धिमें सम होकर कर्म करनेके लिये कहा है।

कर्मकी सिद्धि और असिद्धिमें समता रखते-रखते ही मनुष्यकी समभावमें अटल स्थिति होती है और समभावका स्थिर हो जाना ही कर्मयोगकी अवधि है। अतः यहाँ योगमें स्थित होकर कर्म करनेके लिये कहकर भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि केवल सिद्धि और असिद्धिमें ही समत्व रखनेसे काम नहीं चलेगा, प्रत्येक क्रियाके करते समय भी तुमको किसी भी पदार्थमें, कर्ममें या उसके फलमें अथवा किसी भी प्राणीमें विषम भाव न रखकर नित्य समभावमें स्थिर रहना चाहिये।

इससे भगवान्‌ने योग पदका पारिभाषिक अर्थ बतलाया है। अभिप्राय यह है कि यहाँ योग समताका नाम है और किसी भी साधनके द्वारा समत्वको प्राप्त कर लेना ही योगी बनना है। अतएव तुमको कर्मयोगी बननेके लिये समभावमें स्थिर होकर कर्म करना चाहिये।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥

(५।१९)

जिसका मन समभावमें स्थित है, उनके द्वारा इस जीवित-अवस्थामें ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया है; क्योंकि सच्चिदानन्दघन परमात्मा निर्दोष और सम है, इससे वे सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही स्थित हैं।

ब्रह्मको निर्दोष और सम बतलानेका अभिप्राय है कि सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंमें सब प्रकारके दोष भरे हैं और समस्त संसार तीनों गुणोंका कार्य होनेसे दोषमय है। इन गुणोंके सम्बन्धसे ही विषमभाव तथा राग-द्वेष, मोह आदि समस्त अवगुणोंका प्रादुर्भाव होता है। 'ब्रह्म' नामसे कहा जानेवाला सच्चिदानन्दघन परमात्मा इन तीनों गुणोंसे सर्वथा अतीत है। इसलिये वह निर्दोष और सम है। इसी तरह तत्त्वज्ञानी भी तीनों गुणोंसे अतीत हो जाता है। अतः उसके राग, द्वेष, मोह, ममता, अहंकार आदि समस्त अवगुणोंका और विषमभावका सर्वथा नाश होकर उसकी स्थिति समभावमें हो जाती है।

हि और **तस्मात्** इन हेतुवाचक शब्दोंके प्रयोगका यह अभिप्राय है कि समभाव ब्रह्मका ही स्वरूप है, इसलिये जिनका मन समभावमें स्थित है, वे ब्रह्ममें ही स्थित हैं। यद्यपि लोगोंको वे त्रिगुणमय संसार और शरीरमें स्थित दीखते हैं तथापि उनकी स्थिति समभावमें होनेके कारण वास्तवमें उनका इस त्रिगुणमय संसार और शरीरसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, उनकी स्थिति तो ब्रह्म ही है।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(९।२९)

मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय, परंतु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।

मैं सब भूतोंमें सम हूँ तथा मेरा कोई अप्रिय या प्रिय नहीं है—इस कथनसे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त समस्त प्राणियोंमें अन्तर्यामीरूपसे समानभावसे व्याप्त हूँ, अतएव मेरा सबमें समभाव है। किसीमें भी मेरा राग-द्वेष नहीं, इसलिये वास्तवमें मेरा कोई भी अप्रिय या प्रिय नहीं है।

भगवान्‌के साकार या निराकार किसी भी रूपका श्रद्धा और प्रेमपूर्वक निरन्तर चिन्तन करना, उनका नाम, गुण, प्रभाव, महिमा और लीलाचरित्रोंका श्रवण, मनन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कीर्तन करना, उनको नमस्कार करना, पत्र, पुष्प आदि यथेष्ट सामग्रियोंके द्वारा उनकी प्रेमपूर्वक पूजा करना और अपने समस्त कर्म उनको समर्पण करना आदि सभी क्रियाओंका नाम भक्तिपूर्वक भगवान्‌को भजना है।

जो पुरुष जिस प्रकार भगवान्‌को भजते हैं, भगवान् भी उनको वैसे ही भजते हैं। जैसे वे भगवान्‌को नहीं भूलते, वैसे ही भगवान् भी उनको नहीं भूल सकते—यही भाव दिखलानेके लिये भगवान्‌ने उनको अपनेमें बतलाया है। और उन भक्तोंका विशुद्ध अन्तःकरण भगवत्प्रेमसे परिपूर्ण हो जाता है, इससे उनके हृदयमें भगवान् सदा-सर्वदा प्रत्यक्ष दीखने लगते हैं। यही भाव दिखलानेके लिये भगवान्‌ने अपनेको उनमें बतलाया है।

अभिप्राय यह है कि इसी अध्यायके चौथे और पाँचवें श्लोकोंके अनुसार भगवान्‌का निराकार रूप समस्त चराचर प्राणियोंमें व्याप्त और समस्त चराचर प्राणी उनमें सदा स्थित होनेपर भी भगवान्‌का अपने भक्तोंको अपने हृदयमें स्वयं प्रत्यक्ष रूपसे निवास करना भक्तोंकी भक्तिके कारण ही होता है। इसीसे भगवान्‌ने दुर्वासाजीसे कहा है—

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

(श्रीमद्भा० ९।४।६८)

साधु (भक्त) मेरे हृदय हैं और मैं उनका हृदय हूँ। वे मेरे सिवा और किसीको नहीं जानते तथा मैं उनको छोड़कर और किसीको किंचित् भी नहीं जानता।

जैसे समभावसे सब जगह प्रकाश देनेवाला सूर्य दर्पण आदि स्वच्छ पदार्थोंमें प्रतिबिम्बित होता है तथापि उसमें विषमता नहीं है, वैसे ही भगवान् भी भक्तोंको ही मिलते हैं, दूसरोंको नहीं—इसमें उनकी विषमता नहीं है, यह तो भक्तिकी ही महिमा है।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥

(गीता १२।१८)

जो शत्रु-मित्रमें और मान-अपमानमें सम है तथा सर्दी-गर्मी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें सम है और आसक्तिसे रहित है।

अवश्य ही भक्तकी दृष्टिमें उसका कोई शत्रु-मित्र नहीं होता तो भी लोग अपनी-अपनी भावनाके अनुसार मूर्खतावश भक्तके द्वारा अपना अनिष्ट होता हुआ समझकर या उसका स्वभाव अपने अनुकूल न दीखनेके कारण अथवा ईर्ष्यावश उसमें शत्रु-भावका भी आरोप कर लेते हैं। ऐसे ही दूसरे लोग अपनी भावनाके अनुसार उसमें मित्र-भावका आरोप कर लेते हैं, परंतु सम्पूर्ण जगत्‌में सर्वत्र भगवान्‌के दर्शन करनेवाले भक्तका सबमें समभाव ही रहता है। उसकी दृष्टिमें शत्रु-मित्रका किंचित् भी भेद नहीं रहता, वह तो सदा-सर्वदा सबके साथ परम प्रेमका ही व्यवहार करता रहता है। सबको भगवान्‌का स्वरूप समझकर सम बन जाता है। जैसे वृक्ष अपनेको काटनेवाले और जलसे सींचनेवाले—दोनोंकी ही छाया, फल और फूल आदिके द्वारा सेवा करनेमें किसी प्रकारका भेदभाव नहीं करता। भक्तका समत्व वृक्षकी अपेक्षा भी अधिक महत्त्वका होता है। उसकी दृष्टिमें परमेश्वरसे भिन्न कुछ भी न रहनेके कारण उसमें भेदभावकी आशंका ही नहीं रहती। इसलिये उसे शत्रु-मित्रमें सम कहा गया है।

मान-अपमान, सरदी-गरमी, सुख-दुःख आदि अनुकूल और प्रतिकूल द्वन्द्वोंका मन, इन्द्रिय और शरीरके साथ सम्बन्ध होनेसे उनका अनुभव होते हुए भी भगवद्भक्तके अन्तःकरणमें राग-द्वेष या हर्ष-शोक आदि किसी तरहका किंचित् मात्र भी विकार नहीं होता। वह सदा सम रहता है। न अनुकूलको चाहता है और न प्रतिकूलसे द्वेष ही करता है। कभी किसी भी अवस्थामें वह अपनी स्थितिसे जरा भी विचलित नहीं होता। सर्वत्र भगवान्‌के दर्शन होनेके कारण उसके अन्तःकरणसे विषमताका सर्वथा अभाव हो जाता है। इसी अभिप्रायसे उसे इन सबमें सम रहनेवाला कहा गया है। [**क्रमशः**]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी—

नवधा भक्ति—वन्दन

(श्री 'चक्र')

सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी॥
तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥

'दौलतराम कहाँ है बेटा?'

'वह तो साधु हो गया।'

'साधु हो गया? कब?'

'आज छः महीने होनेको आये!'

'बड़ा सन्त-सेवी था। वह तो घरमें ही साधु था।' महात्मा लौट पड़े।

'दौलतराम नहीं तो उनका घर तो है ही। आसन लगायें। जो कुछ बन पड़ेगा, सेवक भी आपका ही है।' दौलतरामका बड़ा भाई अर्जुन हाथ जोड़कर बोला।

'यही तो है—हाँ यही है!' साधुने सोचा 'अब इतना कैसे बदल गया? पहले तो साधु-सन्तोंकी छायासे द्वेष करता था। उस दिन मेरे आनेपर इसने भाईको खूब खरी-खोटी सुनायी थी। अभी सालभरकी ही तो बात है। तो भाईके साधु हो जानेका इतना प्रभाव पड़ा!' आसन एक चौकीपर डाल दिया गया।

एक थालमें जल लाकर अर्जुनने उनके चरण धोये और वह जल सिरपर चढ़ाकर सारे घरमें छिड़क आया। उपले सुलगा दिये गये थे। माँजकर एक घड़ा जल आ गया। एक थालमें आटा, दाल, नमक, हल्दी और कटोरीमें आध पाव घी आ गया। पाँच-सात बड़े-बड़े आलू भी थे। उपलोंपर एक बर्तन चढ़ चुका था।

'स्नान कर चुका हूँ, आटा भिगा दूँ।' अर्जुनने संकोचपूर्वक हाथ जोड़कर पूछा। वह डर रहा था कि उस दिनके महात्माजीकी भाँति कहीं बिना पूछे भिगानेपर अप्रसन्न न हो जायँ।

'भिगा दो भगत!' साधुने संक्षिप्त उत्तर दिया। अर्जुन अपने काममें लग गया। जरा देरमें गोल-गोल बाटियाँ बनाकर उसने रख दीं।

'दौलतराम भी इतनी श्रद्धा नहीं दिखा पाता था।' साधु सोच रहा था। 'तुममें इतना परिवर्तन कैसे हो गया भगत?' अन्ततः उपलोंके पास बैठते-बैठते उन्होंने पूछ ही लिया।

आटेसे भरे हाथों वह बैठा था। हाथ धोनेका प्रयास नहीं किया उसने।

'आप महात्माओंकी कृपा!' दोनों हाथोंको परस्पर मलकर वह आटा छुड़ाने लगा था।

'कुछ तो बात होगी ही!' साधुको छोटे उत्तरसे सन्तोष नहीं हुआ।

'बड़ा पाप किया है, बड़ा नीच हूँ, किसी प्रकार आपकी चरण-रजसे मेरा भी उद्धार हो जाय!' उसके नेत्र भर आये।

'प्रभु सबपर दया करते हैं! घबराओ मत। वे दयामय मंगल करेंगे।' साधुने दालके पात्रमें कलछली हिलाते हुए कहा।

'मेरे ही कारण छोटा भाई घर-द्वार छोड़कर आज दर-दर घूमता है!' हिचकियाँ लेते हुए उसने अपने मैले अँगोछेसे नेत्र पोंछे। 'उस दिन उसका यही अपराध था कि उसने दो भीख माँगनेवाले ब्राह्मणोंको घरपर टिकाकर सीधा दे दिया था। मेरे सिर भूत सवार था। खेतोंको देखकर आया और दो चूल्हे जलते देख लाल हो गया। भाईने हाथ जोड़े, पैर पकड़े; पर मैं नहीं माना। भाईको गालियाँ दीं, धक्का दिया और....।' वह फूट-फूटकर रोने लगा।

'रोओ मत! जो हो गया, उसे भूल जाओ!' साधु अपनी बाटी-दाल भूलकर उसीकी ओर मुख किये बैठे थे।

'कैसे भूल जाऊँ प्रभु?' वह रोता ही जा रहा था। 'कुत्तेके मुखसे भी रोटी नहीं छीनी जाती। मैंने दोनों हंडिया चूल्हेसे पटक दीं, भीगा आटा बैलकी नाँदमें फेंक दिया और उन ब्राह्मणोंके झोली-झंटे राहमें फेंक आया। वे बेचारे डर गये। भागकर बाहर अपनी-अपनी झोली लेकर चम्पत हुए। मेरी गालियाँ उन्हें सुन भी न पड़ी होंगी भयके कारण। हाय!' उसने सिरपर दोनों हाथ पटक दिये जोरसे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हे भगवन्!' साधुके हाथसे कलछली गिर पड़ी। वे भौंचक्के हो गये।

'बचपनसे भाईका स्वभाव मन्दिरमें पूजा-पाठ करने, साधुओंके पास बैठने और उनकी सेवा करनेका था। मैं उसपर बिगड़ता था, गालियाँ देता था और कभी-कभी मार भी देता था। पर कभी उसका हाथ नहीं पकड़ता था। वह घरमें मुझसे कम काम नहीं करता था।' रोते-रोते वह कहता ही जा रहा था। गाँवके या आस-पासके ब्राह्मणोंको महीनेमें एक सीधा तो वह दे ही आता था। घरपर आनेपर बिना पैर धोये, शर्बत पिलाये और सीधा लिये जाने नहीं देता था।' अब उसने नेत्र पोंछना भी बन्द कर दिया था।

'सिर झुकाकर सदा सुन लेता था। मेरा उत्तर कभी उसने दिया नहीं। मेरी स्त्री उसकी ओरसे मुझसे लड़नेको उद्यत हो जाती थी; पर वह उसे भी हाथ जोड़कर मना कर देता था।' एक क्षण कण्ठ भर जानेसे वह रुक गया। 'उस दिन वह भी उन ब्राह्मणोंके पीछे चला गया। कहा उसने एक शब्द भी नहीं!' चुप हो गया वह।

'सोचा था, ब्राह्मणोंसे क्षमा माँगकर आ जायगा! रात्रिमें नहीं आया तो कलेजा धड़का! फिर भी सोचा कि कल आ जायगा—रूठ गया है! सब सम्बन्धियों और उसके परिचितोंके पास तीन महीने भागा-भागा फिरता रहा।' दुःख सीमासे पार हो चला था। 'अयोध्यामें मिला बाल बढ़ाये, तिलक लगाये, भस्म रमाये! पता लगते ही दौड़ा गया था। उसने पहलेकी तरह ही पैर छुए! रोना-धोना व्यर्थ हुआ। अपना-सा मुख लेकर लौट आया!' आँसू भी सूख गये थे। वह सूनी दृष्टिसे ऊपर देख रहा था।

'यह तो पागल हो जायगा!' साधु डरे। उठकर उन्होंने उसका कंधा पकड़कर हिलाया। जैसे सोतेसे जगा वह। उनके चरणोंपर मस्तक रखकर फूट-फूटकर रोने लगा।

× × ×

(२)

'गंगाका किनारा है, कोई-न-कोई साधु-महात्मा आते ही रहते हैं। यह तो क्या, आस-पासके तीन-चार गाँवोंमें अहीरोंकी ही बस्ती है। चार-छः दूसरी जातिके भी लोग रहते हैं। जाति ही अनपढ़ है; पर है श्रद्धालु। लखनदासकी पक्की कुटिया किनारे बरगदके नीचे सबने मिलकर बनवा दी है। कुछ भी हो, जातिके प्रति जातिका सम्मान तो होता ही है।

अब वे दौलतराम तो रहे नहीं, जो साधु होनेपर भी बड़े भाईके पैरोंमें झुक गये थे। अब तो वे बाबा लखनदासजी हो गये हैं और अपनेको किसी महन्तसे छोटा नहीं समझते। यह दूसरी बात है कि उनके मठपर एक ही कुटिया है और तुलसी-फूलको बचानेके लिये बाँस और काँटोंका घेरा उन्हें ही बनाना पड़ा। फूल-पत्ती लगाना तो महन्तके लिये शोभाकी बात है।

उन्होंने पहले ही अक्षरज्ञान प्राप्त कर लिया है। साधु होनेके पश्चात् रामायणकी चौपाइयाँ वे उच्च स्वरसे चिल्ला लेते हैं। चाहे बीचमें सात बार रुकते भले हों। बहुत-से दृष्टान्त भी उन्हें स्मरण हो गये हैं। वे तो उन्हें सच्चा ही बताते हैं। यहाँ तो कोई जानता नहीं कि गुरुस्थानपर भण्डारेके हण्डे उन्हें ही मलने पड़ते थे। क्या हानि थी यह कहनेमें कि वहाँ गुरुदेव सबसे अधिक उन्हींका आदर करते थे।

हृदयकी बात हृदय जाने; पर वे गुरुदेवकी प्रशंसा करते अघाते नहीं। उनकी सिद्धियों, चमत्कारोंके साथ वे बड़े ढंगसे बताते हैं कि कैसे उन्होंने एक लाख चढ़ाने आयी रानीको दुतकारकर निकाल दिया। यह सब कहते हुए वे पुलकित हो उठते हैं। 'सत्य वचन महाराज!' कहनेवालोंकी कमी नहीं है।

अब वे वैष्णव साधु हैं। भला अब वे किसीको प्रणाम कैसे कर सकते हैं? गाँवके मँगरू पण्डित पहले ही उन्हें 'जै सीताराम' करते हैं। बाबाजी उत्तर देकर कह देते हैं 'पण्डितजी! वह आसन लेकर बैठ जायँ।' साधुमण्डली आनेपर तो महन्तजी विशेष सजाकर चन्दन-भस्म धारण करते हैं और मोटी माला पहनते हैं। उस समय भला वे आसनसे उठ सकते हैं? अवश्य ही उस दिन वे रोबमें रहते हैं। 'अर्जुन! अभी सन्तोंके लिये सीधा नहीं आया?' और अर्जुन चुपचाप घर भागता है।

सच्ची बात तो यह है कि वे अर्जुनके श्रद्धावश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ हैं। जब वे रमते हुए यहाँ पधारे तो अर्जुनने पैर पकड़कर प्रार्थना की। वह छोटे भाईको अब साधु तो मान चुका था, पर मोह छूटा नहीं था। कुटिया उसीके उद्योगसे बनी और कृपाकर बाबाजी रह गये। नहीं तो भला अयोध्याका इतना बड़ा मठ और इतना सम्मान छोड़कर वे यहाँ रहते?

अर्जुन कामसे छुट्टी पाते ही बरगदके नीचे आ जाता है। बड़े सबेरे वहाँ झाड़ू लगा जाता है और गंगाजल भर जाता है। पूजाके पात्र मलकर रख जाना कभी नहीं भूलता। दोपहरमें उसी घाटपर स्नान करता है। वहीं बरगदकी जड़में बैठे महावीरजी और शंकरजीपर, पासके पीपलपर और तुलसीजीको अपने एक लोटे जलमें सबपर थोड़ा-थोड़ा चढ़ा आता है। हाथ जोड़कर सबकी परिक्रमा करता और पृथ्वीमें सिर रखकर प्रणाम करता है। मठियापर बाबा कोई काम बतलाते हैं तो घरको भोजन करने आते समय उसे भी करता आता है।

मठियाका ध्यान उसे ही अधिक रहता है। वह न हो तो कोई झाड़ू भी न दे। नित्य शामको पाँच दीपक ले जाता है घरसे और अपने सब देवताओंके यहाँ एक-एक रखकर बड़ा दीपक मठियामें रख देता है। रात्रिमें बाबाजीके यहाँ सत्संग करने और उसी बहाने चिलम पीने कई भक्त और आ जाते हैं। धूनीके पास मण्डली जमती है।

अर्जुनको और भी बहुत-से काम रहते हैं। गाँवमें दो ही घर तो ब्राह्मण हैं, एक उसके गुरुजी और दूसरे मँगरू पण्डित। गुरुजीका चरणामृत लिये बिना तो वह पानी ही नहीं पीता। वे वृद्ध हो गये हैं। कहीं आ-जा नहीं सकते। घरमें कोई करने-धरनेवाला है भी नहीं, विधवा बहनको छोड़कर। अर्जुन उनके यहाँ दो सीधे रोज पहुँचा आता है। मँगरू पण्डितके घर भी सप्ताहमें एक सीधा तो पहुँच ही जाता है। उनके घरके छोटे-छोटे बच्चोंके भी एक बार वह दिनमें चरण छू जरूर आता है।

साधु-सन्त तो मठियापर रहते हैं, पर इधरके भीख माँगनेवाले ब्राह्मण दो-चार नित्य ही अर्जुनके दरवाजे उपले जलाते और टिक्कर सेंकते हैं। उनका प्रबन्ध भी वही करता है। इतनेपर भी मठियाकी सेवामें उससे कभी प्रमाद नहीं होता। खेती-बारीका काम ठहरा, देर-सबेर हो ही जाती है। बाबाजीकी घुड़कियोंको चुपचाप सुन लेनेका उसे अभ्यास हो गया है।

× × ×

(३)

'गुरुदेव! मठियापर आपको बहुत सुविधा रहेगी!' लखनदासने हाथ जोड़कर प्रार्थना की और वह भी बहुत ही डरते-डरते!

'मुझे यहाँ बड़ा आनन्द है!' महन्तजीने बिना उसकी ओर देखे ही कह दिया। वे ठाकुर-पूजाके लिये उठ चुके थे।

'वहाँ सब तैयारी की गयी है!' स्वरोंमें दुःख था—कम्प था।

'अब तो ठाकुरजीका आसन लग चुका!' महन्तजी पूजनके लिये दूसरे आसनपर जा बैठे।

रामनगरकी रामलीला देखने बाबा लखनदासके गुरुदेव श्रीअवधसे पधारे थे इस वर्ष। साथमें चार मूर्तियाँ और भी थीं। एक साधुने बताया कि लीला देखकर महाराज इधर ही आ रहे हैं। बड़ी प्रसन्नता हुई लखनदासको और उनसे भी अधिक गाँववालोंको।

मठिया झण्डियोंसे सजायी गयी। लिप-पुतकर झकाझक हो गयी थी। पासमें भण्डारेके लिये, ठाकुर-पूजाके लिये और सन्तोंके लिये तीन फूसकी कुटियाँ और पड़ गयी थीं। दरी, गलीचा मँगा लिया गया था। दो कंडाल मँगाकर गंगाजल भर दिया गया था। घी, आटा, दही, चीनी, साग सभी आ गये थे। चारों ओर आमकी पत्तियोंसे तोरण बनाये गये थे। गाँववालोंने बड़ा श्रम किया था। बाबा लखनदास दिन-रात एक करके महाराजके स्वागतकी तैयारीमें लगे थे।

भंग-बूटी और ठंडाईका सब सामान धरा रह गया। दहीकी हण्डियाँ ढकी-की-ढकी रहीं। महन्तजीको आगे जाकर लखनदासने दण्डवत् किया और कुटियापर लाना चाहते थे। बीचमें ही वे एक दालानमें मुड़ पड़े और गुरुदेवका रंग-ढंग देखकर शिष्योंने सब झोली-झंटा वहीं रख दिया। उन्होंने एक भी आग्रहकी ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यान नहीं दिया। गाँवका कोई इतने बड़े महात्मासे कुछ कहनेका साहस कर नहीं सकता था। लखनदासको दुःख हुआ, क्षोभ हुआ—क्या उपाय?

'एक बार श्रीचरणोंसे दासकी झोंपड़ी भी पवित्र हो जाय!' सन्ध्या होनेवाली थी और लखनदास जानते थे कि इस समय महाराज टहलने निकलते हैं। 'गंगाका किनारा है। जंगल है। नित्यकृत्यके लिये उधर सुविधा रहेगी।' उन्होंने अवसर ठीक ही ढूँढ़ा था।

'मैं आज घूमने नहीं जाऊँगा!' महन्तजीने रुखाईसे कहा 'जो सन्त जाना चाहें, लिवा ले जाओ! मैं तो इसी कुएँपर स्नान कर लूँगा। भगत! पानी तो खींच देना!' उन्होंने अर्जुनकी ओर संकेत किया।

अर्जुन हाथ जोड़कर खड़ा हुआ और झट बाल्टी-घड़ा लेकर कुएँपर पहुँच गया। आज उसकी प्रसन्नताका क्या पूछना। उसके घर बिना बुलाये भगवान् आ गये हैं। स्वागतमें घरसे, उधार माँगकर, जैसे भी हो; वह जुटा है। शरीरकी सुधि ही नहीं है। इधर-उधर तितली-सा नाचता फिरता है।

'मेरा अपराध!' अब लखनदाससे रहा नहीं गया। गुरुदेवके चरण पकड़कर वे फूट-फूटकर रोने लगे। 'मैंने कौन-सा पाप किया है?'

'झूठसे भी बड़ा कोई पाप होता है?' वे केवल महन्त ही नहीं थे। 'तुम नित्य कितना झूठ बोलते हो? साधुके लिये गर्व कितना बड़ा पाप है? तुम तो ब्राह्मणोंसे और साधुओंसे भी श्रेष्ठ हो? एक महन्तको दूसरेके पैर नहीं छूने पड़ते। भैया! मैं तो तुच्छ जीव हूँ। वेष न लिये होता तो इस भगतकी चरण-धूलिमें लेटता! तुम-जैसे महापुरुषोंके स्थानपर मैं भला जाकर क्या करूँगा! मुझे तो इस श्रद्धालुके झोंपड़ेमें ही रहने दो!' गाँववाले चकित रह गये! लखनदासने सिर झुका लिया।

'मेरे अपराध क्या क्षमा नहीं होंगे?' बड़े कष्टसे शब्द निकले।

'अपराधको अपराध समझ लेनेपर वह फिर अपराध नहीं रह जाता। कोई उसे हृदयसे अपराध समझ तो ले!' वे ऐसे गुरु नहीं थे, जो कान फूँककर अपनेको उत्तरदायित्वसे मुक्त समझ लेते हैं।

'मैं श्रीचरणोंमें ही अब रहूँगा!' लखनदासने चरण और जोरसे पकड़े!

'रहना तो तुम्हें यहीं होगा!' गुरुदेवने आज्ञाके स्वरमें कहा 'सब भगवान्के स्वरूप हैं और तुम उनके सेवक हो। इसे भली प्रकार समझ लो!' वे उठ खड़े हुए मठियापर चलनेके लिये।

'प्रसादकी सामग्री प्रस्तुत रखना! अब स्नान तो गंगाजीपर होगा!' उन्होंने चलते-चलते अर्जुनसे कहा और इस प्रकार मठियापर प्रसाद करनेकी प्रार्थनाका अवसर ही नहीं दिया किसीको।

× × ×

'मैंने सुना है कि वहाँ गंगा-किनारे एक बड़े सिद्ध महात्मा रहते हैं!' मैंने पण्डितजीसे कहा, 'दूर-दूरसे लोग उनके दर्शनार्थ आते हैं। आज दर्शन करने चलें!' दोनों चल पड़े। रात्रि-विश्राम मार्गमें करके दूसरे दिन गंगाजीमें डुबकी लगाकर तब मठियापर हमलोग गये। धोतियाँ एक ओर फैला दीं और दर्शनको चले। दौड़कर महात्माजी पण्डितजीके पैर पकड़कर दोनों हाथोंसे उनपर सिर रख रहे थे।

'भागिये मत! प्रणाम कर लेने दीजिये!' बरगदके नीचेसे किसीने कहा। 'वे दौड़ायेंगे और बिना पैर छुए मानेंगे नहीं। क्यों उन्हें कष्ट देते हैं!' मैं जल्दी-से पीछे दूर हट गया था। विवशतः मुझे मन मारकर यह सब सहना पड़ा।

'प्रणमेद् दण्डवद्भूमौ आश्वचाण्डालगोखरान्'

पण्डितजीने बैठ जानेपर धीरेसे मेरे कानमें श्रीमद्भागवतका एक श्लोकार्ध कहा।

मैंने पण्डितजीकी ओर देख भर लिया। मुझे यह बात जँची नहीं। मैं तो सोच रहा हूँ **'वासुदेवः सर्वम्'** और महात्माजी भला देखकर भी अपने आराध्यको नमस्कार किये बिना छोड़ दें—कैसे सम्भव है!

कौन ठीक है—सर्वान्तर्यामी ही जाने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या प्रदर्शन ही जीवन है ?

(श्रीसुन्दरलालजी बोहरा)

अन्त:करणकी शुद्धिके बिना व्यक्तिके चरित्रमें निखार नहीं आ सकता। कुत्सित अन्त:करणवाले व्यक्तिको हर क्षण दूषित विचार घेरे रहते हैं। तामसिक अन्त:करणवाला व्यक्ति उपलब्ध मधुर रसको भी मदिरामें बदलनेकी चेष्टा करता है। ऐसे व्यक्तिके जीवनमें अशान्ति और उद्दण्डता पूर्णरूपेण व्याप्त रहती हैं। उसकी वाणी और कार्य इतने तामसिक हो जाते हैं कि सत्त्वगुणका उसके समीप फटकना ही दुष्कर हो जाता है। उसकी हर क्रियामें अहंकारकी छाया स्पष्ट प्रतीत होती है। यदि कहीं सत्साहित्य और सत्संगतिसे वह कुछ समयके लिये दूर रह जाता है, तो वह एक पूरा नट बन जाता है। वह अपने भले-बुरे, प्रत्येक कार्यकी प्रसिद्धि चाहता है। ऐसे व्यक्तिका आत्मसुख इसीमें निहित है कि उसकी हर बे-सिर-पैरकी बातको लोग सुनें और उसे वाहवाही दें। इस प्रकार उसका अहं (Ego) असामान्यरूपसे अमर्यादित हो जाता है। अपने अहंके प्रदर्शनके दौरान वह अनेक लोगोंसे ईर्ष्या मोल लेता है; बिना जाने-पहचाने लोगोंकी घृणाका पात्र बनता है; अनेकों व्यक्तियोंसे व्यंग्य-प्रधान झिड़कियाँ सुनता है, फिर भी वह 'स्वाँग' भरना बन्द नहीं करता। विज्ञापनके युगमें रहकर भी यदि उसका सांगोपांग विज्ञापन न हुआ तो उसका जीवित रहना ही निरर्थक है!

राष्ट्रमें आज सर्वत्र ऐसे ही प्रदर्शन और प्रदर्शकोंकी ही भीड़ लगी है। व्यक्ति अपनी आँखोंसे अन्धे बनकर राहजनोंकी आँखोंसे अपने-आपको देखना चाहते हैं। घर बर्बाद हो जाय, कोई परवा नहीं; स्वास्थ्य क्षीण हो जाय, कोई चिन्ता नहीं; कर्जदार बन जायँ, कोई विषाद नहीं—हमारी कलगी सबसे ऊपर रहनी चाहिये। चारण-भाटोंके हवाई घोड़ोंपर सवार होकर असंख्य राजा-महाराजा मिट्टीमें मिल गये; शायरों और चापलूसोंकी वाहवाहियोंपर झूम-झूमकर न जाने कितने नवाब कंगाल बनकर रह गये; अपनेको पुजवाने और प्रतिष्ठित करानेके भ्रममें न जाने कितने साधक भ्रष्ट हो गये; अपने-आपको परदेपर देखकर विभोर होनेवाली न जाने कितनी सम्भ्रान्त युवतियाँ वारांगनाएँ बन गयीं; अपनी विद्वत्ताका सिक्का जमानेके मदमें असंख्य विद्वान् अष्टावक्रद्वारा परास्त कर दिये गये—फिर भी व्यक्तिके अहंका अशिवत्व सहजमें मिटता नहीं। आखिर सिर थामकर मिल्टनको लिखना ही पड़ा—'Fame is the last infirmity of the noble mind'—यशोलिप्सा व्यक्तित्वकी अन्तिम दुर्बलता है। वित्तैषणा और पुत्रैषणासे विरक्त होना सहज है, किंतु लोकैषणाके अष्टबाहु (Octopus) से बचना तो ***'तलवारकी धार पै धावनो है।'***

प्रत्येक व्यक्ति औरोंसे सहानुभूतिकी अपेक्षा करता है। यह व्यक्तिका अर्जित दोष नहीं है। 'हमें भी कोई सुने' चित्तमें इस प्रकारकी चुलबुलाहटका होना प्रकृतिजात है। अध्ययन और अभ्यासके द्वारा हम इस प्रकारके नैसर्गिक संस्कारका उदात्तीकरण कर सकते हैं; किंतु इसका पूर्णरूपेण वाष्पीकरण तो तभी हो सकता है, जब जीवात्माका इस देहसे कोई सम्बन्ध ही नहीं रहे। जहाँ जीवित शरीर है, वहाँ सहानुभूतिका भाव भी है। लेकिन जहाँ यह सहानुभूतिका भाव अपने कल्पित नामको वाहवाहीका चोला पहनानेकी ताकमें भटकता है, वहाँ साधक (व्यक्ति) निश्चितरूपसे भ्रष्ट हो जाता है। व्यक्ति मानापमानके जालमें उलझकर उन्मत्त हो जाता है। उसके अन्त:करणपर अहंकारका एकच्छत्र राज्य हो जाता है। मन, बुद्धि और चित्त तमोगुणी अहंकारके अर्दली बनकर रह जाते हैं।

हमारे हर कार्यमें आज लोकदिखावा है। जुलूस निकालना और भीड़ लगाना—ये दो ही हमारे जीवनके दो महान् कार्य हैं। चाहे किसी मृत व्यक्तिकी रथी निकालनी हो अथवा किसी किशोरका यज्ञोपवीत-संस्कार करना हो—सिक्कोंकी बौछार होनी चाहिये और फोटोग्राफरोंको किरायेपर लाकर फोटो खिंचवाने चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ विवाहको संस्कार माना जाता था और शास्त्रीय कर्मकी प्रधानता थी, वहाँ आज शास्त्रीय कर्म तो गौण हो गया है और बाहरी आडम्बरमें होड़ लग गयी है। हजारों-लाखों रुपये जो गरीबोंकी भूख मिटानेमें लगने चाहिये थे, फोटो, सजावट, रोशनी, रिशेप्शनमें व्यय हो जाते हैं!

जहाँ खादी अथवा रेजीसे काम चल सकता है, वहाँ मखमल और नायलन लानेकी चेष्टा की जाती है। बड़ी-बड़ी होटल-पार्टियोंका आयोजन किया जाता है। कर्कश और तीव्र ध्वनि करनेवाले आधुनिक वाद्ययन्त्रोंको बजा-बजाकर सारी बस्तीकी नींद हराम कर दी जाती है; विद्यार्थियोंको अपने अध्ययनसे विरक्त किया जाता है; वासना-प्रधान गीतोंको गुँजा-गुँजाकर समस्त गाँव अथवा बस्तीके वातावरणको दूषित तथा उत्तेजित किया जाता है। यज्ञोपवीत-जैसे पवित्र संस्कारके अवसरपर भी नाच-गानका कार्यक्रम रहता है। सभी कार्य बाहरी दिखावेके आडम्बरपूर्ण और अत्यन्त खर्चीले हो गये हैं। यही मानो जीवनका उच्च स्तर है! इसीलिये कुत्सित उपायोंद्वारा धनका संग्रह किया जाता है। सही अर्थमें आज राष्ट्रमें व्याप्त रिश्वतखोरी, कालाबाजारी एवं गबनके सारे दुष्कर्मोंके पीछे हमारी प्रदर्शनकी प्रवृत्ति ही प्रधान है।

आज सम्पूर्ण राष्ट्र नट बन गया है।

और तो और, हम आत्म-कल्याणके कार्योंको भी 'अप-टू-डेट' बनाना चाहते हैं। वह कीर्तन ही 'नीरस' है, जिसमें बाहरी बनावट-सजावट न हो। फिल्मी गानोंकी तर्जमें जबतक भजनोंका आलाप न किया जाय तबतक कीर्तन अथवा जागरणका 'जमना' ही कठिन है। लोग कीर्तन-स्थलपर अत्यधिक बन-ठनकर जाते हैं। मुँहमाँगा पारिश्रमिक देकर गवैयोंको बुलाया जाता है। सही शब्दोंमें आज हमारे कीर्तन आदिके पुनीत कार्यक्रम भगवच्चर्चाके साधन न रहकर सुरीले स्वरोंकी प्रतियोगिताके दंगल बनकर रह गये हैं!

यह 'विण्डो ड्रेसिंग' और 'वैनिटि शो' की कुत्सित व्याधि हमारे शिक्षण-संस्थानोंमें तो असाध्य ही होती जा रही है। जो शिक्षण-संस्थान अपने 'वार्षिक दिवस' अथवा 'सांस्कृतिक कार्यक्रम' पर अधिक-से-अधिक पैसा खर्च कर सकता है; अधिक-से-अधिक आधुनिकतम आयोजनका कार्यक्रम बना सकता है; षोडशवर्षीया किशोरियोंको सभा-मंचपर नचाकर दर्शकोंसे तालियाँ पिटवा सकता है, वही संस्थान आजकी परिभाषामें अधिक उन्नत एवं आधुनिक (Advanced) है!

हम जन-सेवा करना चाहते हैं, किंतु संवाददाताओं और फोटोग्राफरोंकी सेनाको साथ लेकर! जलाश्रय बनकर तैयार है; विद्यालयका भवन बन चुका है; चिकित्सालयमें ओषधियाँ और डॉक्टर आ चुके हैं, लेकिन 'उद्घाटन' के अभावमें ये चमगादड़ोंके आवासस्थल ही बने रहेंगे। प्रतिवर्ष इन उद्घाटन-समारोहोंपर लाखों रुपये पानीकी तरह बहाये जाते हैं। सड़कें तोड़ी जाती हैं, तोरण-द्वार बनाये जाते हैं। जिस संस्था अथवा स्थलका उद्घाटन करना होता है, वहाँ एक सप्ताह तो तैयारियाँ करनेमें ही लग जाता है। इसके उपरान्त भी राष्ट्रकी आर्थिक स्थिति स्वस्थ नहीं है।

आज घर-घरमें वक्ता और नेता भरे पड़े हैं। हरेक व्यक्ति बोलनेके लिये उतावला है; सहिष्णु एवं संयमित रहकर विचारवान् बनना किसीको भी पसन्द नहीं है। आज तो जिस किसीको भी अक्षर-ज्ञान हो गया है, वह अपने-आपको कवि कालिदाससे कम नहीं समझता; जिस किसीको भी गीताका एक श्लोक याद हो गया तो वह अपने-आपको जगद्गुरु शंकराचार्य मान बैठा; यदि किसीको रामायणकी एक अर्द्धाली याद हो गयी तो वह स्वयंको गोस्वामी तुलसीदास मान बैठा है। गम्भीरता तो आज अजायबघरकी वस्तु हो गयी है। प्रत्येक व्यक्ति अपना फोटो खिंचवानेको आतुर है। अपनेको 'शिक्षित' कहानेवाला जनसमुदाय अपनी ही छायाके पीछे बावला है। परदे (Veil)-वाले स्वयंको परदे (Screen)-पर देखनेको व्यग्र हैं। समझमें नहीं आता, यह किस प्रकारकी जिज्ञासा है?

राष्ट्रमें जिधर भी देखिये 'अहं' का और नग्नताका प्रदर्शन (Ego and Exhibition) है। हम अपने प्रत्येक अर्जित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणका पैसे और प्रदर्शनमें मूल्यांकन करते जा रहे हैं। कला, साहित्य और समाज-कल्याणकी प्रचलित आधुनिक परिभाषाओंने हमारे अन्त:करणको न केवल कलुषित और विक्षुब्ध ही किया है, अपितु दिनोंदिन हमें उद्दण्ड और आवारा भी बनाया है। यही कारण है कि आज हम आध्यात्मिक धनमें दिवालिये बनते जा रहे हैं, जो हमारी अनादिकालीन सम्पत्ति थी और सारा संसार जिसके लिये भारतको विश्वगुरु मानता था। सही शब्दोंमें—

कारवां ईमान का आज रुखसत हो गया।
इल्म हिन्दुस्तान में सिर्फ मकसद हो गया।

सन्त-उद्बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

साधक महानुभाव! जो मनुष्य भगवान्‌को छोड़कर कुछ भी चाहता है तथा भगवान्‌का भजन करके भगवान्‌से कुछ भी माँगता है, वह भगवान्‌के प्रेमका पात्र नहीं होता, यानी उसको भगवान्‌का प्रेम नहीं मिलता। उसका कल्याण भी नहीं होता।

इसलिये मनुष्यके जीवनमें कुछ भी चाहने तथा माँगनेका स्थान ही नहीं है। भक्तोंको भगवान् आवश्यक वस्तु तो बिना माँगे और बिना चाहे ही देते रहते हैं और अनावश्यक वस्तु भक्तके चाहने और माँगनेपर भी नहीं देते।

अत: भक्तका भगवान्‌के अलावा कुछ भी चाहना उसकी भूलके सिवाय और कुछ नहीं है।

भक्तिमार्गके साधकको तो 'स्व' में ही सन्तुष्ट रहना चाहिये। कारण, 'स्व' में सन्तुष्ट हुए बिना मनुष्य न तो उदार हो सकता है और न प्रेमी हो सकता है।

उदार हुए बिना जगत् प्रसन्न नहीं होता और प्रेमी हुए बिना भगवान् प्रसन्न नहीं होते। उदार और प्रेमीसे जगत् और जगत्पति दोनों प्रसन्न रहते हैं। इसलिये 'स्व' में रहो।

दोष और कामनावाला मनुष्य निर्भय और निश्चिन्त नहीं रह सकता। दोषोंके नाश होनेपर भय मिटता है और कामनाओंके नाश होनेपर ही चिन्ता मिटती है। निर्भय और निश्चिन्त होनेपर ही ज्ञानका प्रादुर्भाव होता है। इस दृष्टिसे 'स्व' में सन्तुष्टि अत्यावश्यक है।

जो मनुष्य पराश्रय और प्रवृत्तिको पसन्द करते हैं, वे 'स्व' में सन्तुष्ट नहीं रह सकते। 'स्व' में सन्तुष्टि एवं विश्राममें ही जीवन है—इस बातको जो स्वीकार करता है, वही 'स्व' में सन्तुष्ट रह सकता है।

हम पराश्रय और प्रवृत्तिको पसन्द कर लेते हैं, तभी हमारे जीवनमें दोष और कामनाओंकी उत्पत्ति होती है।

जिस वस्तुको हम पसन्द नहीं करेंगे, हमारे पास पड़ी होनेपर भी उसमें हमारा मन नहीं लगेगा। उसकी तरफ हमारा खिंचाव नहीं होगा।

जिसको हम पसन्द कर लेंगे तो पास न होनेपर भी उसकी याद आयेगी, उसकी तरफ खिंचाव होगा। उसकी चाह पैदा हो जायगी, वह प्यारी लगने लगेगी।

याद आना, प्यारा लगना, अभिलाषा पैदा होना—यही तो भजन है! विचारकोंने इसे 'साधन' कह दिया और श्रद्धालुओंने 'भजन' कह दिया। यानी विचारकोंने कह दिया—विनाशीको नापसन्द कर दो; श्रद्धालुओंने कहा—अविनाशीको पसन्द करो। ॐ आनन्द!

इंसानको चाहिये कि अपनी अच्छी हालतमें उन लोगोंकी तरफ मददका हाथ बढ़ाता रहे जो दीन-दु:खी हों, सहायताके मोहताज हों, इसलिये कि दीन-दु:खियोंकी मदद-इमदाद करनेसे इंसानकी बला टलती रहती है। जो धन दीन-दु:खियोंकी मददमें काम नहीं आता, वह आखिर जालिमके हाथका शिकार होता है।—शेख सादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूकम्पका कारण कत्लखाने

(श्रीके० पिल्लय)

भारतीय धर्मशास्त्रोंका सिद्धान्त है कि जब-जब गोमाताके प्रति नृशंस व्यवहार होता है, तब-तब धरती-माता उद्वेलित होती हैं। रावणके समयमें यही हुआ था—*'जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं॥'* इस अत्याचारसे पीड़ित होकर धरतीमाता

गोका रूप धारणकर ब्रह्माजीके पास गयीं और उनकी प्रार्थनासे भगवान्ने अवतार लिया। यह मात्र धार्मिक सिद्धान्त नहीं है, अपितु आज इसका सत्यापन वैज्ञानिक स्तरपर भी हो चुका है। इसे 'बिस थ्योरी ऑफ अर्थक्वेक्स' और 'बिस सीस्मोलॉजिकल वेव्ज इण्टर एक्शन मॉडल' के रूपमें जाना जाता है।

बिस सिद्धान्तके अनुसार भूकम्पका कारण कत्लखाने हैं। दिल्ली विश्वविद्यालयमें भौतिकी/खगोल-भौतिकीके रीडर डॉ० मदनमोहन बजाज और उनके साथी डॉ० इब्राहिम एवं डॉ० विजयराजसिंहने सूजडल (रूस)-में प्रस्तुत अपने बहुचर्चित शोधपत्रमें सिद्ध किया है कि दुनियामें जो भूकम्प आ रहे हैं, उनकी सबसे बड़ी वजह कत्लखाने हैं, अतः उनका कथन है कि कत्लखानोंपर ताला डालिये/युद्ध रोकिये—धरती अपने-आप काँपना बन्द कर देगी। इस शोधपत्रने एक नयी विचारधाराकी बुनियाद रख दी है। उनका कहना है कि भारतमें आये पिछले तीनों भूकम्पोंमें आइंस्टाईन पैन वेव्ज (इ० पी० डब्ल्यू०) या नोरीसेप्शन वेव्जका हाथ है। जिस प्रकार युद्धमें इनसानोंको मारा जाता है, उसी प्रकार कत्लखानोंमें पशुओंको मारा जाता है। इन दोनोंमें उन्होंने कोई अन्तर नहीं माना है। उनका कहना है कि 'नम्बर ऑफ एनीमल्स बूचर्ड इज मच ग्रेटर दैन द नम्बर ऑफ ह्यूमन बीइंग किल्ड इन ए वार' एक कत्लखानेसे जो 'ई० पी० डब्ल्यू०' निकलती है, उसकी ऊर्जा १०४० मेगावाटसे अधिक है।

उन्होंने वैज्ञानिक तथ्यों और मैथेमेटिकल मॉडल्स/वेव्ज इण्टर एक्शन ऑफ ई०पी० डब्ल्यू० और फिजिक्स एक्सपेरीमेंट्सके आधारपर यह कहा है कि यदि आप चाहते हैं कि भूकम्प न आये तो कत्लखानोंका निर्माण करना बन्द कर देना चाहिये और किसी भी निमित्त किसी भी प्राणीका वध नहीं करना चाहिये।

सूजडल (रूस)-सम्मेलनमें बिस=बजाज+ इब्राहिम+ सिंहके शोधपत्रमें 'अकाउस्टिक एनीसोट्राफि' और चट्टानोंपर पड़ रहे 'स्ट्रेस' की जो चर्चा की गयी, उससे समस्त विश्वमें जो आवाज गूँजने लगी है, वह है—कत्लखानोंसे भूकम्प आनेकी आशंका बढ़ जाती है। डॉ० इब्राहिमका कहना है कि धरतीमाता अपनी सन्तानोंको मरते देखकर और निरन्तर होते अत्याचारोंको न रोकनेपर क्रन्दन करती हैं, चीखती हैं, दहाड़ती हैं—वही भूकम्प बन जाता है।

आपको यह जानकर खुशी होगी कि भूकम्प और कत्लखानोंपर इन्होंने जो शोध-कार्य सूजडल (रूस)-के अन्तर्राष्ट्रिय-सम्मेलनमें प्रस्तुत किया था, उसे काफी इज्जत मिली है। सितम्बर १९९५ ई० में रूसके पुशीनों नगरमें आयोजित अन्तर्राष्ट्रिय-सम्मेलनके लिये उन्हें आमन्त्रित किया गया था।

भारतके लोगोंके लिये ही नहीं अपितु पूरे विश्वके लिये यह एक अति महत्त्वपूर्ण शोध साबित होगा। पशुधनपर जो आज अत्याचार हो रहा है, उसपर अंकुश नहीं लगाया गया और भारत सरकारद्वारा नये-नये कत्लखानोंको प्रोत्साहन देनेकी नीयत जारी रही तो ये कारक देशको बर्बाद करनेमें जरूर सहायक बनेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

तीन श्रेष्ठ भाव

प्रिय महोदय! हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आपने पूछा कि 'जगत्‌के सब जीवोंमें सच्चा प्रेम कैसे हो, सब एक-दूसरेकी भलाईमें कैसे प्रवृत्त हों और कोई भी किसीकी कभी बुराई न करे, इसका क्या उपाय है?' सो मेरी समझमें निम्नलिखित तीन भावोंके अनुसार व्यवहार करनेपर ऐसा होना सम्भव है—

(१) जगत्‌के सभी जीव श्रीभगवान्‌से उत्पन्न हैं, उनकी सन्तान हैं, और इसलिये सब भाई-भाई हैं।

(२) जगत्‌के सभी जीवोंमें एक ही आत्मा है।

(३) जगत्‌के समस्त जीवोंके रूपमें एकमात्र श्रीभगवान् ही प्रकट हैं।

ये तीनों ही शास्त्र-सम्मत और सत्पुरुषोंके द्वारा अनुभूत सत्-भाव हैं एवं इनमें प्रत्येक उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। अब इन तीनोंपर कुछ अलग-अलग विचार कीजिये—

(१) जगत्‌के सभी जीव भगवान्‌से ही पैदा हुए हैं, भगवान्‌की ही सत्तासे भगवान्‌में ही जी रहे हैं और अन्तमें भगवान्‌में ही सबका प्रवेश होता है—

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।' (तै०उ०)

भगवान् ही सबके माता, पिता, पितामह हैं। अतएव सब भाई-भाई हैं। भाईका भाईमें प्रेम होना ही चाहिये तथा भाई-भाईका भला करता ही है और भाई वस्तुतः भाईका बुरा कर नहीं सकता। इस भावका यथार्थ विकास होनेपर परस्पर प्रेम और हितकी चेष्टा होना अनिवार्य है। सच्चे भ्रातृभावमें त्याग अपने-आप ही खिल उठता है। भाईका सुख-स्वार्थ ही अपना सुख-स्वार्थ बन जाता है और उसीमें परस्पर परितृप्ति होती है। श्रीरामजी भाई भरतको सिंहासनासीन बनाना चाहते हैं और भरतजी भगवान् रामकी सेवा करनेके सिवा और कुछ स्वीकार ही नहीं करते। भरतकी राज्यप्राप्तिके लिये वन जाते समय रामजी अपना अहोभाग्य मानते हैं—

भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥

और भरतजी वनमें जाकर रामजीसे कहते हैं—

सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ॥

विश्वका दुर्भाग्य है कि आज यह पवित्र भाव लुप्त-प्राय हो गया है। आज भाईका स्थान वैरीका-सा हो चला है। भाई ही सबसे बढ़कर भाईकी बुराई करनेपर तुला है। यह भारी प्रमाद है। इस प्रमादसे बचनेके लिये यूरोपके मनीषियोंने 'विश्वभ्रातृत्व' का प्रचार करना चाहा—यद्यपि उसमें एक बड़ा दोष था कि वह केवल मानव-मानवमें ही भ्रातृत्वकी स्थापना करना चाहता था, भूतमात्रमें नहीं; तथापि वह भी चला नहीं। नीच व्यक्तिगत स्वार्थने भ्रातृत्वके पवित्र भावकी जड़ नहीं जमने दी। स्वार्थवश भाई ही भाईका गला काटनेको तैयार हो गया। इससे आज जगत्‌में हाहाकार मचा है। आज ऐसा राम-सा भाई कहाँ है, जो भाईके गुण गाते-गाते अघाता न हो—

भरतु हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्हि उजिआरी॥

(२) भगवान्‌ने कहा है—'सर्वत्र आत्माको समभावसे देखनेवाला युक्तात्मा देखता है कि समस्त प्राणियोंमें आत्मा है और समस्त प्राणी आत्मामें हैं'—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

(गीता ६। २९)

अपने-आपमें सबका स्वाभाविक प्रेम है, सभी स्वाभाविक अपनी भलाई चाहते और करते हैं तथा जान-बूझकर अपना बुरा कोई नहीं करता। वरं सब चौकन्ने रहते हैं कि कहीं हमारा कोई अनिष्ट न हो जाय। अतएव जब यह भाव हो जायगा कि सब मेरे आत्मा ही हैं, सबमें ही मैं हूँ, तब अपने-आप ही उपर्युक्त बातें बन जायँगी। हमारे शरीरके किसी अंगमें कहीं भी काँटा चुभ जाय, कहीं कुछ पीड़ा हो जाय तो उसका अनुभव हमें समानरूपसे होता है। हमारे शरीर और नामको किसी अंशमें कहीं कोई सुख-सम्मान मिलता है तो हम प्रसन्न होते हैं। कभी ऐसा नहीं सोचो कि अमुक अंगमें सुख है तो दूसरेमें भी होना चाहिये। हम चाहते हैं कि हमारे किसी अंगमें कभी कोई दुःख या पीड़ा न हो, सबमें सदा सुख रहे। सर्वत्र आत्मभाव हो जानेपर सबके सुख-दुःखमें ऐसी ही समदृष्टि हो जाती है। प्राणिमात्रका दुःख हमारा दुःख और सुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा सुख हो जाता है। हमारी सीमाबद्ध अहंता विश्वचराचरमें विस्तृत हो जाती है, हमारी क्षुद्र आत्मसत्ता विश्वकी विराट् सत्तामें मिल जाती है और हमारा क्षुद्र स्वार्थ विश्वके विस्तृत स्वार्थमें घुल-मिलकर एक हो जाता है। इसी अवस्थाको प्राप्त पुरुषोंके लिये भगवान्ने कहा है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

(गीता ६।३२)

'जो अपने आत्माके समान ही सबके सुख-दुःखको समानरूपसे देखता है, अर्जुन! वही श्रेष्ठ योगी माना गया है।'

यह भाव प्रथम भावकी अपेक्षा बहुत श्रेष्ठ है। भाई-भाईमें स्वार्थवश वैर-विरोध हो सकता है, परंतु अपने आत्मासे किसीका वैर-विरोध नहीं होता तथापि मनुष्य जैसे क्रोध या मोहके आवेशमें आप ही अपनी हानि कर बैठता है, आत्महत्यातक कर डालता है, वैसे ही मोहवश आत्मभूत जगत्का भी अनिष्ट करनेपर उतारू हो जाता है। आज यही हो रहा है।

(३) एकमात्र हमारे परमाराध्य इष्टदेव भगवान् ही विश्व और विश्वके प्रत्येक प्राणीके रूपमें प्रकट हैं। उनके सिवा और कुछ है ही नहीं। सर्वत्र वे-ही-वे हैं। उन्होंने कहा है—'अर्जुन! मेरे सिवा और कुछ है ही नहीं'—

'मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।'

(गीता ७।७)

अतः 'जो मुझको सर्वत्र देखता है और सबको मुझमें देखता है, उसकी आँखोंसे मैं कभी ओझल नहीं होता एवं वह मेरी आँखोंके सामनेसे कभी नहीं हटता'—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६।३०)

इस परम भावकी प्राप्ति होनेपर उसे सर्वत्र पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, अग्नि, ग्रह, नक्षत्र, वृक्ष, लता, दिशाएँ, नदी, समुद्र—सभीमें अपने भगवान्के दर्शन होते हैं। ***'जित देखौं तित स्याममई है।'*** फिर वह सबका सम्मान, सबका हित, सभीकी पूजा, सभीका सत्कार स्वभावसे ही करता है। उसका मस्तक और हृदय सबके सामने सदा झुका रहता है—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

इनमेंसे किसी भावका यथार्थ प्रकाश मनुष्यके क्षुद्र स्वार्थका नाश कर सकता है। स्वार्थ और अभिमानसे ही वैर-विरोध, अनिष्ट-चिन्तन और असद्-व्यवहार होता है। स्वार्थ और अभिमानका जितने अंशमें त्याग होता है, उतने ही अंशमें इन दोषोंका नाश होता है तथा प्रेम और हित-चिन्तनकी वृद्धि होती है। शेष प्रभुकृपा।

(२)

कीर्तन और कथा से महान् लाभ

प्रिय भैया! पत्र मिले बहुत दिन हो गये। तुम्हारे लिये मेरे दो अनुरोध हैं—

(१) प्रतिदिन किसी समय घरके सब लोग मिलकर कम-से-कम पन्द्रह मिनट श्रीभगवान्के नामका कीर्तन किया करो, और—

(२) प्रतिदिन प्रातःकाल या रात्रिमें, जब भी फुरसतका समय हो, कम-से-कम एक घंटे भगवान्की कथा सुना करो या सुनाया करो। कथाका प्रसंग भगवान्की सरस मधुर लीलाका हो अथवा सरल आत्मोन्नतिकारक सदाचार, विवेक, वैराग्य, भक्ति और भगवत्-स्वरूपके ज्ञानका बोध देनेवाला हो। श्रीमद्भागवत, महाभारतके चुने हुए प्रसंग, श्रीरामचरितमानस, श्रीमद्भगवद्गीता, पुराणोंके चुने हुए कथानक, सन्त और भक्तचरित्र और महापुरुषोंकी जीवनियाँ इसके लिये बहुत उपयोगी हैं। इस नित्यकी भगवच्चर्चामें कोई आडम्बर न हो। ऐसे ग्रन्थ या प्रसंग चुने हुए रहें और घरमें जो कोई भी पढ़कर अच्छी तरह सुना सकता हो, वही सुना दे तथा सब लोग आदर एवं भक्तिभावसे उन्हें नियमित मन लगाकर सुनें।

मेरी समझसे इन दो साधनोंसे तुम्हारे घरका वातावरण पवित्रतम हो सकता है। जो समझानेसे बात नहीं समझमें आती, पर वही बात जब कथा-प्रसंगमें आ जाती है तो उसका सहज ही ग्रहण हो सकता है।

ये दो ऐसे साधन हैं, जिनका घर-घरमें प्रवेश होना चाहिये। घरका वातावरण और घरके लोगोंका स्वभाव शुद्ध तथा भगवदभिमुखी करनेके लिये ये दोनों साधन बड़े ही प्रभावशाली हैं। करके देखो और हो सके तो अपने मित्रोंमें भी इनका प्रचार करो। इनसे घर और देशका सुधार तो होगा ही, मनुष्य-जीवनके चरम उद्देश्य भगवत्प्राप्तिका पथ भी बहुत सहज हो जायगा। शेष प्रभुकृपा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७०, शक १९३५, सन् २०१३, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु, कार्तिक कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ४। ४४ बजेतक	शनि	अश्विनी रात्रिमें ३। १५ बजेतक	१९अक्टूबर	मूल रात्रिमें ३। १५ बजेतक।
द्वितीया रात्रिशेष ५। ११ बजेतक	रवि	भरणी ,, ४। १८ बजेतक	२० ,,	अशून्यशयनव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ६। २५ बजे।
तृतीया ,, ६। ११ बजेतक	सोम	कृत्तिका रात्रिशेष ५। ५० बजेतक	२१ ,,	भद्रा सायं ५। ४२ बजेसे रात्रिशेष ६। ११ बजेतक, वृषराशि दिनमें १०। ४२ बजे।
चतुर्थी अहोरात्र	मंगल	रोहिणी अहोरात्र	२२ ,,	संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थी (करवाचौथ)-व्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ७। ५७ बजे।
चतुर्थी प्रातः ७। ३८ बजेतक	बुध	रोहिणी प्रातः ७। ५० बजेतक	२३ ,,	मिथुनराशि रात्रिमें ८। ५९ बजे, सायन वृश्चिकका सूर्य रात्रिमें १। ४१ बजे।
पंचमी दिनमें ९। २६ बजेतक	गुरु	मृगशिरा दिनमें १०। ८ बजेतक	२४ ,,	स्वातीका सूर्य रात्रिमें ६। १५ बजे।
षष्ठी ,, ११। २९ बजेतक	शुक्र	आर्द्रा ,, १२। ४१ बजेतक	२५ ,,	भद्रा दिनमें ११। २९ बजेसे रात्रिमें १२। ३३ बजेतक।
सप्तमी ,, १। ३८ बजेतक	शनि	पुनर्वसु ,, ३। १९ बजेतक	२६ ,,	कर्कराशि दिन ८। ४० बजे, अहोईव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ११। १६ बजे।
अष्टमी ,, ३। ४० बजेतक	रवि	पुष्य रात्रिमें ५। ५० बजेतक	२७ ,,	मूल रात्रिमें ५। ५० बजेसे।
नवमी सायं ५। २७ बजेतक	सोम	आश्लेषा ,, ८। ६ बजेतक	२८ ,,	भद्रा रात्रिशेष ६। १० बजेसे, सिंहराशि रात्रिमें ८। ६ बजे।
दशमी रात्रिमें ६। ५३ बजेतक	मंगल	मघा ,, १०। ० बजेतक	२९ ,,	भद्रा रात्रिमें ६। ५३ बजेतक, मूल रात्रिमें १०। ० बजेतक।
एकादशी ,, ७। ५० बजेतक	बुध	पू० फा० ,, ११। २७ बजेतक	३० ,,	कन्याराशि रात्रिशेष ५। ४१ बजे, रम्भा एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी ,, ८। १८ बजेतक	गुरु	उ०फा० ,, १२। २५ बजेतक	३१ ,,	गोवत्सद्वादशी।
त्रयोदशी ,, ८। १५ बजेतक	शुक्र	हस्त रात्रिमें १२। ५२ बजेतक	१ नवम्बर	भद्रा रात्रिमें ८। १५ बजेसे, प्रदोषव्रत, धनतेरस, धन्वन्तरि-जयन्ती, मास शिवरात्रिव्रत, नरकचतुर्दशीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ३। ४१ बजे।
चतुर्दशी ,, ७। ४० बजेतक	शनि	चित्रा ,, १२। ५० बजेतक	२ ,,	भद्रा प्रातः ७। ५७ बजेतक, तुलाराशि दिनमें १२। ५१ बजे, श्रीहनुमज्जयन्ती।
अमावस्या ,, ६। ३८ बजेतक	रवि	स्वाती ,, १२। २१ बजेतक	३ ,,	अमावस्या, दीपावली।

सं० २०७०, शक १९३५, सन् २०१३, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु, कार्तिक शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ५। १३ बजेतक	सोम	विशाखा रात्रिमें ११। ३३ बजेतक	४ नवम्बर	चन्द्रदर्शन, वृश्चिकराशि रात्रिमें ५। ४५ बजे, काशीसे अन्यत्र गोवर्धनपूजा, अन्नकूट।
द्वितीया दिनमें ३। २६ बजेतक	मंगल	अनुराधा ,, १०। २२ बजेतक	५ ,,	काशीमें गोवर्धनपूजा, यमद्वितीया, भातृद्वितीया (भैयादूज), मूल रात्रिमें १०। २२ बजेसे।
तृतीया ,, १। २५ बजेतक	बुध	ज्येष्ठा ,, ८। ५८ बजेतक	६ ,,	भद्रा रात्रिमें १२। १७ बजेसे, धनुराशि रात्रिमें ८। ५८ बजे, विशाखाका सूर्य रात्रिमें १। २४ बजे।
चतुर्थी ,, ११। १० बजेतक	गुरु	मूल ,, ७। २२ बजेतक	७ ,,	भद्रा दिनमें ११। १० बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल रात्रिमें ७। २२ बजेतक।
पंचमी ,, ८। २६ बजेतक षष्ठी रात्रिशेष ६। २६ बजेतक	शुक्र	पू० षा० ,, ५। ४३ बजेतक	८ ,,	मकरराशि रात्रिमें ११। १८ बजे, सूर्यषष्ठीव्रत, स्कन्दषष्ठी।
सप्तमी रात्रिमें ४। ६ बजेतक	शनि	उ०षा० सायं ४। ३ बजेतक	९ ,,	भद्रा रात्रिमें ४। ६ बजेसे।
अष्टमी ,, १। ५३ बजेतक	रवि	श्रवण दिनमें २। २७ बजेतक	१० ,,	भद्रा दिनमें २। ५९ बजेतक, गोपाष्टमी, पञ्चकारम्भ रात्रिमें १। ४४ बजे, कुम्भराशि रात्रिमें १। ४४ बजे।
नवमी ,, ११। ५२ बजेतक	सोम	धनिष्ठा ,, १। २ बजेतक	११ ,,	अक्षयनवमी, अयोध्या-मथुरा परिक्रमा।
दशमी ,, १०। ८ बजेतक	मंगल	शतभिषा ,, ११। ५० बजेतक	१२ ,,	मीनराशि रात्रिशेष ५। ११ बजे।
एकादशी ,, ८। ४५ बजेतक	बुध	पू०भा० ,, १०। ५९ बजेतक	१३ ,,	भद्रा दिनमें ९। २७ बजेसे रात्रिमें ८। ४५ बजेतक, प्रबोधिनी एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी ,, ७। ४६ बजेतक	गुरु	उ० भा० ,, १०। २९ बजेतक	१४ ,,	तुलसी-विवाह, चातुर्मास्यव्रत समाप्त, मूल दिनमें १०। २९ बजेसे।
त्रयोदशी ,, ७। १५ बजेतक	शुक्र	रेवती ,, १०। २४ बजेतक	१५ ,,	मेषराशि दिनमें १०। २४ बजे, प्रदोषव्रत, पञ्चक समाप्त दिनमें १०। २४ बजे।
चतुर्दशी ,, ७। १५ बजेतक	शनि	अश्विनी ,, १०। ४८ बजेतक	१६ ,,	भद्रा रात्रिमें ७। १५ बजेसे, श्रीवैकुंठचतुर्दशीव्रत, वृश्चिकका सूर्य रात्रिमें ११। १७ बजे, मूल दिनमें १०। ४८ बजेतक।
पूर्णिमा ,, ७। ४५ बजेतक	रवि	भरणी ,, ११। ४३ बजेतक	१७ ,,	भद्रा प्रातः ७। ३० बजेतक, पूर्णिमा, वृषराशि रात्रिमें ६। ४ बजे, कार्तिकी पूर्णिमा, कार्तिक स्नान समाप्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७०, शक १९३५, सन् २०१३, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ८।४६ बजेतक	सोम	कृत्तिका दिनमें १।८ बजेतक	१८नवम्बर	कार्तिकव्रतकी पारणा।
द्वितीया ,, १०।१४ बजेतक	मंगल	रोहिणी ,, ३।० बजेतक	१९ ,,	मिथुनराशि रात्रिमें ४।६ बजे, अनुराधाका सूर्य रात्रिशेष ६।१९ बजे।
तृतीया ,, १२।५ बजेतक	बुध	मृगशिरा सायं ५।१५ बजेतक	२० ,,	भद्रा दिनमें ११।१० बजेसे रात्रिमें १२।५ बजेतक, सौभाग्यसुन्दरीव्रत।
चतुर्थी ,, २।१० बजेतक	गुरु	आर्द्रा रात्रिमें ७।४४ बजेतक	२१ ,,	संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ८।१७ बजे।
पंचमी ,, ४।२० बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु ,, ९।५८ बजेतक	२२ ,,	कर्कराशि दिनमें ३।२५ बजे, सायन धनुका सूर्य रात्रिमें १०।० बजे।
षष्ठी ,, ६।२४ बजेतक	शनि	पुष्य ,, १२।५५ बजेतक	२३ ,,	भद्रा रात्रिशेष ६।२४ बजेसे, मूल रात्रिमें १२।५५ बजेसे।
सप्तमी अहोरात्र	रवि	आश्लेषा ,, ३।१६ बजेतक	२४ ,,	भद्रा रात्रिमें ७।१८ बजेतक, सिंहराशि रात्रिमें ३।१७ बजे।
सप्तमी दिनमें ८।१३ बजेतक	सोम	मघा रात्रिशेष ५।१६ बजेतक	२५ ,,	भैरवाष्टमी, कालाष्टमी, रुक्मिणी अष्टमी, मूल रात्रिशेष ५।१६ बजेतक।
अष्टमी ,, ९।३८ बजेतक	मंगल	पू० फा० अहोरात्र	२६ ,,	वैक्काष्टमी (केरल)।
नवमी ,, १०।३७ बजेतक	बुध	पू०फा० प्रातः ६।४९ बजेतक	२७ ,,	भद्रा रात्रिमें १०।५१ बजेसे, कन्याराशि दिनमें १।५ बजे।
दशमी ,, ११।४ बजेतक	गुरु	उ० फा० प्रातः ७।५४ बजेतक	२८ ,,	भद्रा दिनमें ११।४ बजेतक।
एकादशी ,, ११।१ बजेतक	शुक्र	हस्त दिनमें ८।३० बजेतक	२९ ,,	तुलाराशि रात्रिमें ८।३२ बजे, उत्पन्ना एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी ,, १०।२७ बजेतक	शनि	चित्रा ,, ८।३५ बजेतक	३० ,,	शनिप्रदोषव्रत।
त्रयोदशी ,, ९।२५ बजेतक	रवि	स्वाती ,, ८।१२ बजेतक	१ दिसम्बर	भद्रा दिनमें ९।२५ बजेसे रात्रिमें ८।४२ बजेतक, वृश्चिकराशि रात्रिमें १२।३८ बजे, मासशिवरात्रिव्रत।
चतुर्दशी प्रातः ७।५९ बजेतक अमावस्या रात्रिशेष ६।१२ बजेतक	सोम	विशाखा प्रातः ७।२७ बजेतक अनुराधा रात्रिशेष ६।२० बजेतक	२ ,,	मूल रात्रिशेष ६।२० बजेसे, सोमवती अमावस्या।

सं० २०७०, शक १९३५, सन् २०१३, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ४।१० बजेतक	मंगल	ज्येष्ठा रात्रिमें ४।५९ बजेतक	३ दिसम्बर	धनुराशि रात्रिमें ४।५९ बजे, ज्येष्ठाका सूर्य दिनमें ९।३० बजे।
द्वितीया ,, १।५७ बजेतक	बुध	मूल ,, ३।२६ बजेतक	४ ,,	चन्द्रदर्शन, मूल रात्रिमें ३।२६ बजेतक।
तृतीया ,, ११।३८ बजेतक	गुरु	पू० षा० ,, १।४८ बजेतक	५ ,,	× × × ×
चतुर्थी ,, ९।१६ बजेतक	शुक्र	उ०षा० ,, १२।६ बजेतक	६ ,,	भद्रा दिनमें १०।२७ बजेसे रात्रिमें ९।१६ बजेतक, मकरराशि दिनमें ७।२२ बजे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
पंचमी ,, ६।५७ बजेतक	शनि	श्रवण ,, १०।२७ बजेतक	७ ,,	श्रीरामविवाहोत्सव।
षष्ठी दिनमें ४।४७ बजेतक	रवि	धनिष्ठा ,, ९।० बजेतक	८ ,,	कुम्भराशि दिनमें ९।४४ बजे, श्रीस्कन्दषष्ठीव्रत, चम्पाषष्ठी (महाराष्ट्र), पंचकारम्भ दिनमें ९।४४।
सप्तमी ,, २।४९ बजेतक	सोम	शतभिषा ,, ७।४४ बजेतक	९ ,,	भद्रा दिनमें २।४८ बजेसे रात्रिमें १।५८ बजेतक।
अष्टमी ,, १।८ बजेतक	मंगल	पू०भा० ,, ६।४८ बजेतक	१० ,,	मीनराशि दिनमें १।२ बजे।
नवमी ,, ११।४७ बजेतक	बुध	उ० भा० ,, ६।११ बजेतक	११ ,,	महानन्दानवमीव्रत, मूल रात्रिमें ६।११ बजेसे।
दशमी ,, १०।५० बजेतक	गुरु	रेवती ,, ५।५९ बजेतक	१२ ,,	भद्रा रात्रिमें १०।३७ बजेसे, मेषराशि रात्रिमें ५।५९ बजे, पंचक समाप्त रात्रिमें ५।५९ बजे।
एकादशी ,, १०।२५ बजेतक	शुक्र	अश्विनी ,, ६।१७ बजेतक	१३ ,,	भद्रा दिनमें १०।२५ बजेतक, मोक्षदा एकादशीव्रत (सबका), गीता-जयन्ती, मूल रात्रिमें ६।१७ बजेतक।
द्वादशी ,, १०।२७ बजेतक	शनि	भरणी ,, ७।४ बजेतक	१४ ,,	वृषराशि रात्रिमें १।२३ बजे, शनिप्रदोषव्रत, मत्स्यद्वादशी।
त्रयोदशी ,, ११।३ बजेतक	रवि	कृत्तिका ,, ८।२२ बजेतक	१५ ,,	कपर्दीश्वरदर्शन।
चतुर्दशी ,, १२।७ बजेतक	सोम	रोहिणी ,, १०।७ बजेतक	१६ ,,	भद्रा दिनमें १२।७ बजेसे रात्रिमें १२।५३ बजेतक, व्रत-पूर्णिमा, श्रीदत्तात्रेय-जयन्ती, मूल तथा धनुका सूर्य दिनमें ११।२० बजे, खरमासारम्भ।
पूर्णिमा ,, १।३९ बजेतक	मंगल	मृगशिरा ,, १२।१८ बजेतक	१७ ,,	मिथुनराशि दिनमें ११।१२ बजे, पूर्णिमा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपानुभूति

(१)

भगवान् शंकरकी कृपा

घटना सन् १९७५ ई०की है। मेरे छोटे भाई दिल्लीमें एक प्राइवेट बिजलीके ठेकेदारके पास बिजलीका काम करते थे। उस समय देवास, म०प्र०में नोट प्रेस बन रहा था। उसमें बिजलीके कई ठेकेदार ठेका लिये थे। दिल्लीके ठेकेदारका भी ठेका उसमें था। मेरे भाई तथा एक चचेरे भाई भी वहाँ गये थे। एक दिन अन्य साथियोंके साथ हमारे भाई भी उज्जैन टहलने गये, कुछ लोगोंके साथ ये भी क्षिप्रा नदीमें स्नान करने लगे। साथियोंने कहा—आओ, तैरकर नदीके उस पार चलें। मेरे भाई भी उनके कहनेमें आ गये और सबके साथ तैरकर उन्होंने भी नदी पार की। नदीके उस पार पहुँचकर रुकनेके बजाय सभी लोग तुरंत तैरकर वापस आने लगे। बीच नदीमें पहुँचकर मेरे भाई थक गये।

थकानके कारण उनका हाथ-पैर चलना बन्द हो गया। ऊपर मेरे चचेरे भाई खड़े थे। उन्हें पुकारकर मेरे भाईने कहा कि अब हम थक चुके हैं और बीच धारामें जा रहे हैं। हमारे घर सन्देश कह देना—इतना कहकर वे अपना हाथ-पैर ढीला करके नीचे जाने लगे और बोले 'जय शंकरजी, हम आपके पास आ रहे हैं।'

अकस्मात् उनके पैरके नीचे एक पत्थर आ गया और वे उसीपर खड़े हो गये। थकान कम होनेपर फिर उन्होंने तैरनेका मन बनाया और अपना पैर यह जाननेके लिये नीचे किया कि इतना ही पानी नदीमें है या कोई चीज पैरके नीचे आ गयी है। पर, उन्हें आभास हुआ कि नीचे कोई चीज नहीं है, जल तो गहरा है, फिर मन खटका कि पत्थर न होनेपर भी पाँव किसके सहारे अटका, खैर उसय समय तो विचार करनेका समय नहीं था, एक झटकेसे वे शीघ्र तैरकर बाहर आ गये। सबके पूछनेपर उन्होंने सारी घटना सुनायी और बताया कि मेरे इष्टदेव भगवान् शंकरने ही कृपा करके पत्थर-जैसी कोई चीज मेरे पैरोंके नीचे कर दी थी। यह सुनकर तो सभी अवाक् रह गये।—**शेषनारायण तिवारी**

(२)

बालाजीकी कृपा

घटना लगभग २६ वर्ष पहलेकी है, एक बार मुझे तिरुपति जानेका अवसर मिला। सर्दीका मौसम था। बड़ी कड़ाकेकी सर्दी पड़ रही थी। हम सात-आठ व्यक्ति साथमें थे। यद्यपि यात्राका प्रारम्भ ही हमलोगोंके लिये अच्छा नहीं था; क्योंकि हमारी मेटाडोरका ड्राइवर नशेमें था। उसे बदलवानेके चक्करमें थोड़ी नोक-झोंक हो चुकी थी, फिर भी भगवान् तिरुपति बालाजीका स्मरण करके हमलोग निकल ही पड़े।

मद्राससे तिरुपतिकी यात्रा अच्छी रही। तिरुपतिसे तिरुमल्ला (ऊपर) हमलोग उच्चस्वरसे भजन करते जा रहे थे। सहसा ठीक बीचोबीच एक मोड़पर हमारी मेटाडोर रुक गयी। देखनेपर पता चला कि डीजल समाप्त हो चुका था। हम लोग घबरा गये। रात अधिक बीत चुकी थी। मध्यमार्गमें होनेके कारण हम लोग न तो ऊपर जा सकते थे, न नीचे ही आ सकते थे। दो-तीन बसें गयीं, सब भरी हुई थीं। कोई रुकनेके लिये तैयार नहीं। हमलोगोंकी घबराहट बढ़ती जा रही थी। सिवाय 'गोविन्द'-नामके किसीके मुँहसे कुछ नहीं निकलता था। अनायास विपत्तिमें फँसे हम लोग सच्चे भावसे श्रीबालाजीका स्मरण करने लगे। इसी समय एक चमत्कार-जैसा हुआ। अचानक एक खाली बस सीधे आकर हमारे पास रुकी। बसमें ड्राइवरके अतिरिक्त दूसरा कोई न था। वह उसमेंसे उतरकर सीधे हमलोगोंके पास आया और कहने लगा—'जल्दीसे अपना सामान बसमें रखो और हमारे साथ चलो।'

उस समय वह हमलोगोंके लिये साक्षात् श्रीबालाजी ही था। उसने हमलोगोंको ऊपर छोड़ा। इतना ही नहीं, वापसीके लिये हमारे ड्राइवरको लेकर नीचे गया, उसे डीजल दिलवाकर वापस ऊपर मेटाडोरतक लेकर आया।

मुझे तो ऐसा अनुभव हो रहा था कि अन्दर दर्शनके लिये जाऊँ या उस ड्राइवरके पैर पकड़ लूँ, जो हमारे लिये साक्षात् तिरुपति बालाजीके अतिरिक्त कोई न था। मैं बार-बार स्मरण करने लगा—'जय वेंकटरमणा-गोविन्दा।' इस घटनासे मेरे मनमें श्रीबालाजीके प्रति बहुत ही श्रद्धा उत्पन्न हो गयी।—**शीला खटाडे**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

मूक प्राणियोंकी सेवासे परमात्माकी कृपा

पोरबन्दर तहसीलके मोढवाड़ा गाँवमें एक व्यक्ति रहता है। वह स्वभावसे परोपकारी जीव है। अपने परोपकारी स्वभावके अनुसार वह अपने घरके समीप वृक्षके ऊपर पक्षियोंके पानी पीनेके लिये मिट्टीका एक चौड़ा बर्तन बाँध देता, जिसमें पक्षी पानी पीते। इस प्रकार करते-करते अचानक एक दिन वह मिट्टीका बर्तन फूट गया; तब वह बेचारा गाँवके कुम्हारके यहाँ गया। अब आजके औद्योगिक युगमें गाँवोंमें ऐसे मिट्टीके कामके छोटे गृह-उद्योग बन्द हो गये हैं। जो बनाते हैं, वे केवल मटका या सुराही आदि ही बनाते हैं। इस कारण उसे वैसा चौड़ा बर्तन नहीं मिला।

बर्तन न मिलनेसे उसकी बुद्धिमें एक नया विचार उत्पन्न हो गया कि गाँवमें तो कुम्हार है भी, फिर भी ऐसे बर्तन नहीं मिलते; परंतु सैकड़ों गाँव ऐसे भी होंगे, जहाँ मिट्टीका काम करनेवाले कुम्हार ही नहीं होंगे। फिर तो ऐसी गर्मीमें मिट्टीके ऐसे बर्तनोंके अभावमें लाखों पक्षी पानी बिना इधर-उधर भटकते होंगे। यदि किन्हींके मनमें पानी पिलानेकी इच्छा भी होगी तो ऐसे चौड़े बर्तन न मिलनेसे वे कोई व्यवस्था नहीं कर पाते होंगे। अत: अब कुछ करना पड़ेगा।

ऐसा विचार करके वह कुम्हारके समीप जाकर बोला कि 'तुम मुझे ऐसे एक हजार चौड़े बर्तन बना दो। आजसे ही बनाना प्रारम्भ कर दो और शीघ्र पकाकर मुझे दे दो। उसका जितना भी मूल्य होगा, मैं तुरंत चुकता कर दूँगा।' तदनन्तर उसने पोरबन्दरसे लोहेकी पत्ती, रिपिट और पतला तार लिया तथा लुहारके पास जाकर ऐसे एक हजार स्टैण्ड बनवाये, जिनपर वे मिट्टीके चौड़े बर्तन रखकर वृक्षोंपर लटकाये जा सकें।

तत्पश्चात् स्टैण्ड और बर्तन लेकर उसने अपने गाँवमें बहुत-से स्थानोंपर अपने खर्चसे ही बाँध दिये और शेष बर्तन तथा स्टैण्ड समीपके गाँव बगबदर ले आया। कारण कि इस गाँवमें बस-स्टैण्ड रहनेसे आसपासके तीस गाँवोंके यात्री आते-जाते रहते थे। इससे वहाँ आकर वह सभीको मिट्टीके बर्तनके सहित वह स्टैण्ड बिना मूल्यके ही दे देता, शर्त केवल इतनी थी कि अपने गाँव ले जाइये और गर्मीके समय पूरे दिन शीतल जल भरकर प्रकृतिके प्यारे पक्षियोंको पिलाइये।

इस प्रकार पचीस-तीस गाँवोंमें इस सज्जनने अपने खर्चसे ऐसे स्टैण्ड बनवाकर वितरित करके शीतल जलकी मूक प्राणियोंके लिये व्यवस्था की और सभी उसकी इस सुविधाको स्वत: स्वीकार करने लगे। इस प्रकार लाखों पक्षी इस क्षेत्रमें आज भी शीतल जल पीते हैं और उस उपकारी आत्माको मूक आशीर्वाद देते हैं। 'अखण्ड आनन्द'

(२)

गोमाताके चित्रका चमत्कार

पारिवारिक संस्कारके अनुसार मुझमें बचपनसे ही गोमाताके प्रति श्रद्धा और आदरका भाव था। काफी सालोंसे 'कल्याण' का पाठक हूँ और कल्याणका 'गोसेवा-अङ्क' पढ़कर तो गोमाताके प्रति यह श्रद्धा-भाव बढ़ता ही गया। ज्यों-ज्यों गोसेवाके प्रति रुचि बढ़ती गयी। गो-साहित्य पढ़ना और बाँटना शुरू कर दिया। इसी क्रममें गीताप्रेसद्वारा मुद्रित गोमाताका चित्र भी फ्रेम करवाकर अपने परिजनों, मित्रों और परिचितोंको बाँटने लगा। अब तो स्थिति यह है कि मोहल्ले-पड़ोसके लोग भी अपनी गोसेवा गोशालातक पहुँचानेके लिये मुझे ही देने लगे हैं और गोचित्र भी माँगकर ले जाने लगे हैं। पड़ोसकी एक माताजीने तो ६-७ लाख रुपये लगाकर दिल्लीकी 'श्रीकृष्ण गोशाला' में एक गोघर (Shade) भी बनवा दिया है। इन सब बातोंसे मुझे हार्दिक प्रसन्नता और सन्तोष प्राप्त होता है।

किंतु गोमाताके चित्रके जो चमत्कार मैंने अनुभव किये, वे इस प्रकार हैं—

(१) मेरे फ्लैटके सामनेवाले परिवारसे हमारे बड़े सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध हैं। उस भरे-पूरे परिवारको भी हमने एक गोचित्र भेंट किया, जो उन्होंने बड़े श्रद्धापूर्वक अपने घरमें यथोचित स्थानपर लगा लिया।

एक दिन सुबह-सबेरे उस परिवारका युवा पुत्र हमारे घर आया और नमस्कार करके कहने लगा—अंकलजी, हम दोनोंने दोनों चीजें छोड़ दी हैं। एक बारगी पूरी बात हमारी समझमें न आनेपर उसने स्पष्ट किया कि उसने मांस और मदिरा तथा उसकी पत्नीने नॉनवेज छोड़ दिया है। यह सुनकर मुझे तथा मेरी पत्नीको बड़ी प्रसन्नता हुई। जब हमने उससे पूछा कि उन्हें ऐसी सत्प्रेरणा कैसे हुई? तो उसने कहा, 'आपके द्वारा दिये गये गोमाताके चित्रके हम दर्शन करते हैं और आपको गोशाला जाते देखते हैं। बस, इन सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातोंसे हमें एक दिन ऐसी प्रेरणा हुई कि हम ये व्यसन छोड़ दें। यह सब बताते हुए उसके चेहरेपर उल्लासका भाव था।'

असलमें हमें तो यह पता भी नहीं था कि वह मांस-मदिराका सेवन करता है और इस विषयमें उससे हमारी कभी चर्चा भी नहीं हुई थी। हम तो इसे गोमाताका चमत्कार ही मानते हैं।

(२) दिल्लीमें एक वृद्धाश्रम है, जिसमें लगभग ६०-७० वृद्धोंके आवास आदिकी बड़ी सुन्दर व्यवस्था है। उक्त वृद्धाश्रमका संचालन एक ट्रस्ट करता है। इस ट्रस्टको किसी लालाजीने अपनी स्वर्गीय पत्नीकी स्मृतिमें बना रखा है। कुछ समय पहले मैंने इस वृद्धाश्रमके भोजन-कक्षमें भी गोमाताका एक चित्र लगा दिया। इस गोचित्रको देखकर वृद्धाश्रमके व्यवस्थापकने बताया कि लालाजीका विचार आश्रमके निकट एक गोशाला बनानेका भी है। अब इस चित्रके लगनेसे उन्हें ऐसा महसूस होता है जैसे साक्षात् गोमाता आश्रममें आ गयी हैं। इसलिये गोशालाका मेरा संकल्प भी प्रभु शीघ्र पूरा करेंगे।

सचमुच दो-तीन सालके भीतर ही लालाजीने लगभग एक करोड़ रुपया खर्च करके वृद्धाश्रमके निकट ही एक सुन्दर गोशालाकी स्थापना कर दी है। निश्चय ही गोमाता हमारे शुभ संकल्प पूर्ण करती हैं।—एन०आर० गुप्ता

(३)

ईमानदार परिचालक

मेरे पूज्य पिताजीका विगत चार सितम्बरको निधन हो गया था। उत्तर क्रिया पूर्ण शास्त्रीय विधिसे सम्पन्न होनेके उपरान्त मेरी माताजीने आत्मिक शान्तिहेतु ११-११-२०१२, रविवारको गोरखपुरसे अयोध्याधामके लिये प्रस्थान किया। मैं और मेरी पत्नी भी उनके साथ गये।

अयोध्या पहुँचकर हमलोगोंने सरयूनदीमें स्नान किया एवं मन्दिरोंके दर्शनकर पुनः अपने पवित्र धाममें बुलानेकी भगवान्से प्रार्थना करते हुए अपने घर गोरखपुरके लिये वापस प्रस्थान किया।

अयोध्याधामसे गोरखपुरकी यात्रा हमलोगोंने कैसरबाग डिपोकी एक सरकारी बससे की। रात्रि लगभग १०:३० बजे हम लोग सकुशल अपने घर पहुँच गये। इस सफल यात्रासे हम सबका मन बहुत प्रसन्न था।

दूसरे दिन प्रातः लगभग ७ बजे फोनकी घण्टी बजी। फोन उठाया तो उधरसे आवाज आयी कि क्या आपने कल अयोध्यासे गोरखपुरकी यात्रा की है एवं रात्रिमें आपलोग गोरखपुर पहुँचे हैं? इस अपरिचित आवाजको सुनकर एवं सारी बातें सत्य जानकर बोलनेवालेके प्रति परिचय जाननेकी जिज्ञासासे मैंने कहा कि ये बातें सहीं हैं, मगर आप कौन बोल रहे हैं और आपका मन्तव्य क्या है? इसपर उन्होंने अपना परिचय बसकण्डक्टरके रूपमें दिया एवं पूछा कि आपका क्या कोई सामान बसमें छूटा है? मेरी माताजीको तबतक यह याद नहीं था कि कुछ बसमें छूटा है। माताजीने जब ध्यान दिया तो उन्हें अपना बैग नहीं मिला, तब माताजीने कहा कि हाँ-हाँ, मेरा बैग छूट गया है, जिसमें मोबाइल आदि काफी सामान है और मन-ही-मन भगवान् श्रीविजयराघवजीका स्मरण करते हुए कहा कि आपकी कृपासे ही यह सब मिल सकता है।

कण्डक्टर यह जानकर कि बैग माताजीका है, बोला—माताजी! आप घबराइये मत, आपके बैगमें रखा आपका चश्मा, दाँत, मोबाइल, फोन डायरी, पर्स जिसमें दस हजार रुपया है, ठाकुरजीका प्रसाद आदि सब सुरक्षित मेरे पास है। मैंने डायरीसे आपका फोन नम्बर देखकर फोन किया है। मैं जब गोरखपुर आऊँगा, तब आपको सब सामान मिल जायगा, मैं १५ तारीखको गोरखपुर आ रहा हूँ। इसके बाद फोन डिस्चार्ज होनेसे उसका सिम ड्राइवरने अपने फोनमें लगा लिया।

नियत तिथि १५ तारीख को न तो फोन ही आया, न कण्डक्टर ही आया। मेरी माताजीके मनमें घबराहट होने लगी कि प्रभु आपकी कैसी लीला है कि जानकारी होनेपर भी शायद कण्डक्टरका मन बदल गया! माताजीकी चिन्ता चश्मे और दाँतकी ज्यादा थी, वे न देख पा रही थीं, न खा पा रही थीं, न ही सदैवकी भाँति जप ही कर पा रही थीं।

इसी ऊहापोहमें माताजीने श्रीविजयराघव-मन्दिरके महन्तजीको फोनकर कहा कि यह प्रभुकी कैसी लीला है कि सामानकी जानकारी होनेपर भी लगता है कण्डक्टरका मन बदल गया। महन्तजीने आश्वासन दिया कि माताजी! श्रीविजयराघवजीके प्रसाद एवं कृपाके कारण उन्होंने आपको सूचित किया है एवं वे ही आपको समान भी दिलायेंगे। महन्तजीकी बातोंका विश्वास करके एवं विजयराघवजीके चमत्कारपूर्ण चरित्रमें आस्थासे मन शान्त हुआ।

उधर कण्डक्टरने फोनपर बताया कि आज आना नहीं हुआ, कल आयेंगे, परंतु वह फिर भी न आया। आठ दिन पश्चात् सहसा पुनः फोन आया कि मैं रात्रिमें लखनऊसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलकर प्रातः गोरखपुर पहुँचूँगा। आप सामान लेने किसीको भेज दीजियेगा। प्रातः मैं अपने छोटे भाईके साथ बसस्टेशनपर पहुँचकर बसकी प्रतीक्षा करने लगा, बस आयी। कण्डक्टर महोदयने अत्यन्त संकोच एवं खेदके साथ थैला देते हुए कहा कि माताजीको अत्यन्त कष्ट हुआ होगा। आप सारे सामानको देख लीजिये। सारा सामान यथावत् प्राप्त करनेके बाद जब मैंने माताजीके आदेशानुसार पुरस्कारस्वरूप कुछ धनराशि देनी चाही तो उन्होंने कहा कि इसकी आवश्यकता नहीं है। माताजीका आशीर्वाद ही चाहिये। काफी कहनेपर उन्होंने मात्र १०० रुपया वह भी माताजीके आशीर्वादस्वरूप लेना स्वीकार किया।

घर पहुँचकर माताजीने सामान देखा तो उनकी आँखोंसे आँसू छलछला आये। वाह प्रभु! आपकी लीला अपरम्पार है। उन्होंने उस ईमानदार बसकण्डक्टर (परिचालक)-के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कहा—आज भी ईमानदारोंकी कमी नहीं है और उन्हींके कारण पृथ्वी टिकी हुई है।—**चन्द्रधर द्विवेदी**

(४)

अनुकरणीय गोभक्ति!

मध्य प्रदेशके राजगढ़ जिलेमें दूधी नदीके तटपर बसे ग्राम रनावाके जगदीश पाठक, जो कि सन् २००८ ई० में शा०उ०मा० विद्यालयसे प्राचार्य-पदसे सेवानिवृत्त हुए हैं, अपने गाँवसे २२ किमी दूर पचोर शहरमें रहते हैं। गोमाताकी सेवा करना उनका सदासे व्यसन रहा है। गायोंको चारा डालना, रोटी खिलाना उनकी दिनचर्या बन गयी है।

एक दिनकी बात है, सुबह लगभग ५ बजे पाठकजीने घरका दरवाजा खोला तो देखते हैं कि द्वारपर एक बूढ़ी गायने एक बछियाको जन्म दिया है। बेहोशीकी हालतमें गायको देखकर उन्होंने तुरन्त पशु-चिकित्सकको बुलाया एवं गायका एक सप्ताहतक इलाज कराया। बूढ़ी होनेके कारण उसके थनोंमें दूध नहीं आया तो दूध खरीदकर बछियाको बच्चोंकी भाँति पन्द्रह दिनोंतक पिलाया एवं यथोचित ध्यान रखते हुए अपने बच्चोंके समान उसका पालन-पोषण किया। इधर गाय भी निरन्तर इलाज एवं सेवा होनेके कारण स्वस्थ हो गयी तथा उसके थनोंमें दूध भी आने लगा। उन्होंने अपने घरमें ही उस गाय और बछियाको स्थान दे दिया। प्रत्येक सप्ताह गाँवसे चारा मँगवाते और उस गाय-बछियाकी सेवा पूरे घरवाले करते, जैसे उस गायसे कोई पुराना रिश्ता हो। समय बीत रहा था। घरवाले उस गाय-बछियाको सुबह घरसे बाहर निकाल देते, शामको गाय-बछिया घर वापस आ जाती। पचोर नगर आगरा-मुम्बई राजमार्गपर बसा हुआ है। यहाँ हजारोंकी संख्यामें गायें रोडपर बैठी रहती हैं। कई गौएँ रातके अँधेरेमें वाहनोंसे घायल भी हो जाती हैं। इस कारण गायोंको वहाँसे वाहनोंमें भरकर राजगढ़ जिलेकी पहाड़ीपर छोड़नेका शासनद्वारा निश्चय हुआ; क्योंकि वहाँ चारा भी है और नदी है, जिसमें वैशाख-ज्येष्ठमें भी पानी रहता है। अतः इससे उत्तम स्थान गायोंके लिये कहाँ हो सकता था। इस कारणसे लगभग दो-तीन हजार गायोंको राजगढ़की पहाड़ीपर छोड़ दिया गया। इनमें पाठकजीकी भी गाय-बछिया थी। शामको गाय-बछिया घर न आयी देखकर पूरे घरमें दुःखकी लहर दौड़ गयी। थोड़ी देर बाद पता लगा कि उस गाय-बछियाको भी गायोंके साथ राजगढ़की पहाड़ीपर छोड़ दिया गया है।

किसी प्रकार रात बीती, सुबह ५ बजे पुत्रके साथ पाठकजी मोटरसाइकिलसे गायको ढूँढ़ने रवाना हुए। दिनभर गायको ढूँढ़ा, जहाँ गायोंका झुण्ड दिखता, वहीं जाते पर गाय-बछिया नहीं मिली। जंगलमें रात हो गयी। गाड़ी भी पंचर हो गयी। रात १२ बजे सड़कपर आकर एक होटलमें रात बितायी। सुबह फिर गायको ढूँढ़ने निकल पड़े। भूखे-प्यासे दिनके एक बजे जंगलमें एक झुण्डको देखने पहाड़ीपर चढ़ रहे थे कि बछियाका नाम लेकर पुत्रने जोर-जोरसे पुकारा—नन्नी-नन्नी गइया। यह सुनकर एक वैरागीके टप्परसे नन्नी बछिया दौड़कर पुत्रके पास आयी; क्योंकि जब वह ड्यूटीसे घर आता तो नन्नी बछियाके लिये बिस्कुट लेकर आता था। पाठकजीने बच्चोंकी भाँति बछियाको पाला, पर उस गायका दूध नहीं पिया। उस वैरागीने उस गायको दुधार देख बाँध लिया था। यह देख पुत्रने कहा, 'गाय यहाँ ठीक रहेगी। यहीं रहने दो।' वैरागीने कहा—मैं गायको भगा दूँगा। बछियाको रखूँगा। वैरागीकी बात सुन पाठकने अपने एक गीतापाठी मित्रको फोन लगाया और उसके सहयोगसे एक गाड़ी करके वापस गाय-बछियाको घर ले आये। उनकी पुत्रीने दो दिनसे खाना नहीं खाया था। गाय-बछियाके आ जानेपर पहले उसे खिलाया फिर स्वयं खाना खाया। नन्ही गैया बच्चोंकी भाँति श्रीपाठकजीके यहाँ आज भी रहती है। रोज नहाती है, नाश्ता, भोजन भी करती है। ऐसी गोभक्तिको मैं प्रणाम करता हूँ। ईश्वर सबको ऐसी मति प्रदान करे।—**रमेशचन्द्र वर्मा**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

सन्तकी करुणा

सिन्ध-देशके खण्डू नगरमें आचार्य स्वामी टेऊँरामजी महाराज विराजमान थे। महाराजजीकी सेवामें हंसराज एवं खिया नामके सेवाधारी सेवारत थे। इन दोनोंने महाराजजीकी जीवनपर्यन्त सेवा की। जब आचार्यजी खण्डू छोड़कर टण्डा आदम बालूके टीलेपर पधारे तब भी ये दोनों सेवामें थे।

टण्डा आदममें बहुत-से सन्त-महात्मा स्वामी टेऊँरामजीके पास आते रहते थे। लंगर और भण्डारा चलता ही रहता था। सेवा करते-करते दुर्भाग्यसे खियाको चोरीकी आदत पड़ गयी। वहाँ आचार्यजीके साथ जो अन्य साधु-सन्त रहते थे, ये उनकी धोतियाँ, चादरें तथा अँगोछे चुरा लेते, फिर वहाँसे थोड़ी दूर हालन गाँवमें, जहाँ उनकी लड़की रहती थी, वहाँ जाकर उसे दे आते। लड़की खियेको बहुत समझाती—बाबा! ये आप क्या करते हैं? मुझे भगवान्ने बहुत कुछ दिया है, परंतु खिया लोभके वश मानते ही नहीं।

इधर सन्त-महात्माओंके रोज-रोज वस्त्र (धोतियाँ-अँगोछे) गायब होते रहे। एक दिन महात्माओंने विचार किया कि आखिर ये कौन ले जाता है, इसे रँगे हाथ देखें तो सही। फिर एक दिन उन्होंने चुपकेसे देखा और देखकर दंग रह गये—ओहो, आचार्यजीके सेवक खियेका यह कार्य है, सभी विस्मित हो गये। तुरन्त वे सभी मिलकर आचार्य स्वामी टेऊँरामजीके पास आये और खियाको भी साथ लाकर निवेदन किया—साईं, हम आज आपके पास एक शिकायत लेकर आये हैं।

आचार्यजीने कहा—बाबा! कहो कौन-सी ऐसी बात है, जो आज आप सब मिलकर यहाँ आये हैं?

सन्तोंने कहा—साईं! आपकी सेवामें खिया है न, ये रोज हमारी धोतियाँ आदि चुराता था, आज यह रँगे हाथ पकड़ा गया है, अब हमारा कहना ये है कि इसे आप यहाँसे निकाल दें; क्योंकि ये चोरियाँ करता है। आज इसने धोतियाँ तथा अँगोछोंकी चोरी की है, कल कुछ और भी चोरी करेगा। अतएव हमारी राय तो यही है कि आप इसे तत्काल सेवासे हटा दें।

सन्तोंको शान्त करते हुए आचार्य स्वामी टेऊँरामजी महाराजने कहा—भाई! आपकी बात सही है, किंतु मेरा विचार है कि खियेको यहाँसे मत निकालो। यह जैसा भी है, हमारा है। डॉक्टरके पास जब मरीज जाता है, तब बीमारीसे छूटनेके लिये जाता है, यदि डॉक्टर मरीजको स्वस्थ नहीं करता है तो उसमें डॉक्टरकी कमजोरी कही जाती है, खिया हमारे पास इतने समयसे रह रहा है, लेकिन हम इसे सुधार नहीं पाये, अतः यह हमारी जिम्मेदारी है। अरे! जिस समय इसने सेवा करके हमें खुश रखा, तब ये हमारा था, लेकिन अब इसमें थोड़ा विकार आ गया है, तो क्या अब इसे यहाँसे निकाल दें? यह हमसे नहीं हो पायेगा। इसकी अच्छाईका फल भी हमने खाया है, अब बुराईका नतीजा भी हमें देखना है।

दूसरी बात—आप सब साधु जायँ तो जायँ, चूँकि आप स्वस्थ हो गये हैं, किंतु खियेको अभी हम नहीं जाने देंगे। आड़में खड़े होकर खियेने महाराजजीकी सब बातें सुन ली थीं। आचार्यजीके ऐसे करुणापूर्ण वचनोंको सुनकर खिया अत्यन्त शर्मसार हुआ, वह आचार्यजीके चरणोंमें गिरकर क्षमा-याचना करने लगा। आचार्यजीने अपनी कृपादृष्टिसे निहारकर उसे ईमानदारीसे पुनः सेवामें लगनेका संकेत किया, आचार्यजीकी कृपासे उसने बादमें ऐसी सेवा की कि जो उसके मनका मालिन्य था, वह सब स्वाहा हो गया। निरन्तर सेवा, सुमिरन तथा सत्संग आदिके करनेसे उसका अन्तःकरण निर्मल हो गया। उसका मन भजनमें रम गया और वह आगे चलकर 'खिया भगत' के नामसे प्रसिद्ध हो गया।

सच्चे सन्तकी कृपा यही काम करती है। वे अपने भक्तोंको बुराइयोंसे छुड़ाकर उन्हें भगवद्भजनमें लगाते हैं। सन्त स्वामी टेऊँरामजी महाराज भी ऐसे ही सन्त थे, जिन्होंने असंख्य जीवोंको कुमार्गसे हटाकर भगवन्मार्गमें लगा दिया, ऐसे महापुरुषोंकी जितनी महिमा कही जाय उतनी थोड़ी है।—**स्वामी श्रीशान्तिप्रकाशजी महाराज**

[प्रेषक—प्रे०प्र० दिलीप]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण' के वार्षिक ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

आगामी वर्ष ८८ का विशेषाङ्क **'ज्योतिषतत्त्वाङ्क'** का प्रेषण जनवरी २०१४ के प्रथम सप्ताहसे प्रारम्भ करनेका प्रयास है। जिन ग्राहकोंका सदस्यता-शुल्क १५ दिसम्बरतक **'कल्याण-कार्यालय', गोरखपुर** या **गीताप्रेसकी निम्न निजी दूकानों**पर जमा हो जायगा, उन्हें विशेषाङ्क रजिस्ट्रीसे प्रेषित किया जायगा। शेष सभी वार्षिक ग्राहकोंको विशेषाङ्क वी०पी०पी० से प्रेषित होगा। वी०पी०पी० से अङ्क प्रेषित करनेपर ग्राहकोंको रजिस्ट्रीसे भेजे गये अङ्ककी अपेक्षा वी०पी०पी० खर्च रु० १० तथा मनीआर्डर कमीशन लगता है। अत: सदस्यता-शुल्क मनीआर्डर/बैंक ड्राफ्ट या जिस बैंकको शाखा गोरखपुरमें हो उसके मल्टीसिटी चेकद्वारा शीघ्र भेज देना चाहिये। रकम भेजते समय अपनी ग्राहक-संख्या एवं पूरा नाम-पता, पिनकोडसहित स्पष्ट लिखना चाहिये। चेकके पीछे भी अपनी ग्राहक-संख्या तथा नाम अवश्य लिखें।

आजकल डाकघर मनीआर्डर कम्प्यूटर द्वारा भेजते हैं जिससे उसपर आपद्वारा लिखा पूरा संदेश यहाँ नहीं मिलता है, इसलिये मनीआर्डर करनेके बाद मनीआर्डरकी रकम, मनीआर्डर नं० एवं ग्राहक-संख्यासहित अपना पूरा पता—**कल्याण-कार्यालय**को अलगसे भेजना चाहिये।

किसी कारणसे यदि आगामी वर्षमें ग्राहक नहीं रहना हो तो पत्रद्वारा अवश्य सूचित कर दें, जिससे वी०पी०पी०से प्रेषण रोका जा सके।

'कल्याण' द्वारा सदस्यता-शुल्क प्राप्त करनेके लिये कोई भी एजेन्ट नियुक्त नहीं किये गये हैं। अत: 'कल्याण' का प्रतिनिधि बतानेवाले किसी अपरिचित व्यक्तिको 'कल्याण' का शुल्क न दें।

सदस्यता-शुल्क—*वार्षिक* भारतमें रु० २०० (सजिल्द रु० २२०), ***पंचवर्षीय*** शुल्क रु० १००० (सजिल्द रु० ११००)

अब आजीवन/पन्द्रहवर्षीय/दसवर्षीय सदस्य नहीं बनाये जाते हैं।

आप पाँच वर्षोंका एक साथ वर्तमानमें निर्धारित सदस्यता-शुल्क भेजकर पाँच वर्षोंतक नियमित कल्याण प्राप्त कर सकते हैं।

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क	वार्षिक US$45 पंचवर्षीय US$225	US Cheque Collection Charges US$6 Extra

'गीताप्रेस' गोरखपुरकी निजी दूकानें

इन्दौर-	जी० ५, श्रीवर्धन, ४ आर. एन. टी. मार्ग
ऋषिकेश-	गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम
कटक-	भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी
कानपुर-	२४/५५, बिरहाना रोड
कोयम्बटूर-	गीताप्रेस मेंशन, ८/१ एम, रेसकोर्स
कोलकाता-	गोबिन्दभवन-कार्यालय; १५१, महात्मा गाँधी रोड
गोरखपुर-	गीताप्रेस—पो० गीताप्रेस
जलगाँव-	७, भीमसिंह मार्केट, रेलवे स्टेशनके पास
दिल्ली-	२६०९, नयी सड़क
नागपुर-	श्रीजी कृपा कॉम्प्लेक्स, ८५१, न्यू इतवारी रोड
पटना-	अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने
बेंगलोर -	१५, फोर्थ 'इ' क्रास, के० एस० गार्डेन, लालबाग रोड
भीलवाड़ा-	जी ७, आकार टावर, सी ब्लाक
मुम्बई-	२८२, सामलदास गाँधी मार्ग (प्रिन्सेस स्ट्रीट) मरीन लाईन्स स्टेशनके पास
राँची-	कार्ट सराय रोड, अपर बाजार, बिड़ला गद्दीके प्रथम तलपर
रायपुर-	मित्तल कॉम्प्लेक्स, गंजपारा, तेलघानी चौक
वाराणसी-	५९/९, नीचीबाग
सूरत-	वैभव एपार्टमेन्ट, नूतन निवासके सामने, भटार रोड
हरिद्वार-	सब्जीमण्डी, मोतीबाजार
हैदराबाद-	४१, ४-४-१, दिलशाद प्लाजा, सुल्तान बाजार

इन स्टेशन-स्टालोंपर कल्याणके ग्राहक बन सकते हैं

दिल्ली	(प्लेटफार्म नं० १२)	राँची	(नं० १)
नयी दिल्ली	(नं० १६)	मुजफ्फरपुर	(नं० १)
हजरत निजामुद्दीन [दिल्ली]	(नं० ४-५)	समस्तीपुर	(नं० २)
कोटा [राजस्थान]	(नं० १)	छपरा	(नं० १)
बीकानेर	(नं० १)	अहमदाबाद	(नं० २-३)
गोरखपुर	(नं० १)	राजकोट	(नं० १)
कानपुर	(नं० १)	भरुच	(नं० ४-५)
लखनऊ	[एन० ई० रेलवे]	वडोदरा	(नं० ४-५)
वाराणसी	(नं० ४-५)	सिकन्दराबाद [आं० प्र०]	(नं० १)
मुगलसराय	(नं० ३-४)	रायपुर [छत्तीसगढ़]	(नं० १)
हरिद्वार	(नं० १)	बेंगलोर	(नं० १)
पटना	(मुख्य प्रवेशद्वार)		

फुटकर पुस्तक-दूकानें

चूरू-	ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, पुरानी सड़क।
ऋषिकेश-	मुनिकी रेती।
तिरुपति-	शॉप नं० ५६, टी० टी० डी० मिनी शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, तिरुमलाई हिल्स।
बेरहामपुर-	म्युनिसिपल मार्केट काम्प्लेक्स, ब्लाक-बी, स्टाल नं० ५७—६०, प्रथम तल।

उपर्युक्त सभी गीताप्रेस गोरखपुरकी निजी दूकानों एवं स्टेशन-स्टालोंपर 'कल्याण'का शुल्क जमा कराके रसीद प्राप्त की जा सकती है। निजी दूकानोंसे विशेषाङ्क/मासिक अङ्क उपलब्ध होनेपर लिया जा सकता है। सामान्यतया मासिक अङ्क गोरखपुरसे भेजनेकी व्यवस्था है।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

प्र० ति० २०-९-२०१३ Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2011-2013

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2011-2013

गीता-दैनन्दिनी—(सन् २०१४) अब उपलब्ध

(**प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य**—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च अतिरिक्त

पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)—गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद, मूल्य ₹ ६५ ₹ २५

,, ,, (बँगला अनुवाद (कोड 1489), ओड़िआ अनुवाद (कोड 1644),
तेलुगु अनुवाद (कोड 1714) मूल्य ₹ ६५ ₹ २५

सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 503)—गीताके मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ मूल्य ₹ ५० ₹ २५

पॉकेट साइज— **प्लास्टिक आवरण (कोड 506)**— गीता-मूल श्लोक, मूल्य ₹ २५ ₹ २०

व्यापारिक संस्थान दीपावली/नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रसारमें सहयोग दे सकते हैं।
[गीताप्रेसकी निजी थोक पुस्तक-दूकानोंसे थोक खरीदनेपर नियमानुसार डिस्काउण्ट भी उपलब्ध है। दूकानोंका पता कवर पेज ३ पर देखें।]

डॉ० रामचरण 'महेन्द्र' की उत्कृष्ट रचनाएँ

कोड	पुस्तकका नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तकका नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तकका नाम	मूल्य ₹
55	महकते जीवन फूल	३०	119	अमृतके घूँट	२२	120	आनन्दमय जीवन	१८
59	जीवनमें नया प्रकाश	२८	60	आशाकी नयी किरणें	२५	132	स्वर्ण-पथ	२०

उपर्युक्त छः पुस्तकें एक साथ मँगवानेपर रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्चसहित ₹ १८० भिजवायें।

अब उपलब्ध—देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम (कोड 617)—इस पुस्तकमें मर्यादा-नाशको नारी-स्वतन्त्रता, नैतिक-पतनको उन्नति तथा 'भ्रूण-हत्या' को पाप न मानने-जैसी भ्रामक मान्यतापर कठोर प्रहार करते हुए गृहस्थ-जीवनका सच्चा आदर्श प्रस्तुत किया गया है। मूल्य ₹ ७

गीताप्रेस, गोरखपुरके खातेमें सीधे रुपया जमा न करें—पुस्तक-विक्रेता एवं 'कल्याण' के कुछ पाठक गीताप्रेस, गोरखपुरके खातेमें रुपये बैंकमें जमा करवा देते हैं, परन्तु बैंकसे मिले जमा स्लिपको हमें नहीं भिजवाते हैं जिसके कारण बैंकमें जमा किया रुपया विवरणके अभावमें यहाँ अमानतमें पड़ी रहती है और कोई कार्यवाही नहीं हो पाती है। अतः बैंकसे मिले स्लिपको फैक्स/कोरियरसे भेजना आवश्यक है।

पुस्तकें आदि मँगवानेके लिये अपने आर्डरके साथ ड्राफ्ट/मल्टीसिटी चेक 'गोबिन्द-भवन-कार्यालय' यूनिट-गीताप्रेस नामसे गोरखपुरका बनवाकर भिजवाना चाहिये। ५०० रुपयेतक मनीआर्डरद्वारा भी भिजवा सकते हैं।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

मूल्य ₹ ८

भगवान् धन्वन्तरि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवती महालक्ष्मी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

वाग् गद्‌गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्‌गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

वर्ष ८७ | गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७०, श्रीकृष्ण-सं० ५२३९, नवम्बर २०१३ ई० | संख्या ११
पूर्ण संख्या १०४४

भगवती महालक्ष्मीकी प्रार्थना

पद्मानने पद्मविपद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि। विश्वप्रिये विष्णुमनोऽनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि संनि धत्स्व॥

× × × ×

सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभे।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्र सीद मह्यम्॥

विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम्। लक्ष्मीं प्रियसखीं भूमिं नमाम्यच्युतवल्लभाम्॥
महालक्ष्म्यै च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि। तन्नो लक्ष्मीः प्र चोदयात्॥

कमल-सदृश मुखवाली! कमल-दलपर अपने चरणकमल रखनेवाली! कमलमें प्रीति रखनेवाली! कमल-दलके समान विशाल नेत्रोंवाली! समग्र संसारके लिये प्रिय! भगवान् विष्णुके मनके अनुकूल आचरण करनेवाली! आप अपने चरणकमलको मेरे हृदयमें स्थापित करें। कमलवासिनी, हाथमें कमल धारण करनेवाली, अत्यन्त धवल वस्त्र; गन्धानुलेप तथा पुष्पहारसे सुशोभित होनेवाली, भगवान् विष्णुकी प्रिया, लावण्यमयी तथा त्रिलोकीको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली हे भगवति! मुझपर प्रसन्न होइये। भगवान् विष्णुकी भार्या, क्षमास्वरूपिणी, माधवी, माधवप्रिया, प्रियसखी, अच्युतवल्लभा, भूदेवी भगवती लक्ष्मीको मैं नमस्कार करता हूँ। हम विष्णुपत्नी महालक्ष्मीको जानते हैं तथा उनका ध्यान करते हैं। वे लक्ष्मीजी [सन्मार्गपर चलनेहेतु] हमें प्रेरणा प्रदान करें। [ऋक् परिशिष्ट]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७०, श्रीकृष्ण-सं० ५२३९, नवम्बर २०१३ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

१- भगवती महालक्ष्मीकी प्रार्थना ३
२- कल्याण ५
३- बाह्य एवं आन्तरिक त्यागका तात्पर्य (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ६
४- 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः' (ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाईजी व्यास) १०
५- अभिमानी अधिक फँसता है (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) १२
६- गृहस्थोंके लिये गुरु श्रीअर्जुनदेवजीके उपदेश (श्रीमाधवदासजी ममतानी) १६
७- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) १७
८- 'ओ आनेवालो इतना समझ लो' [कविता] (सन्त श्रीपथिकजी महाराज) [प्रेषक—श्रीमहेशचन्द्रजी] १९
९- शास्त्रवाद (श्रद्धेय पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र) २०
१०- श्रीराधाजीके उद्‌गार (श्रीराधाबाबा) [प्रेषिका—सुश्री शैवालिनी] २३
११- साधुके लिये एकान्तमें स्त्रीसम्भाषणका निषेध (गोलोकवासी सन्त पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज) २५
१२- श्रीनामदेवजीके जन्मके सम्बन्धमें एक स्पष्टीकरण २७
१३- नवधा भक्ति—दास्य [कहानी] (श्री 'चक्र') २८
१४- गोमाताकी रक्षाके सम्बन्धमें विचार (श्रीमनीषसिंहजी गुर्जर) ३२
१५- श्रीभक्तमालकी भक्तिरसबोधिनी टीका और सन्त नामदेव-चरित्र (मलूकपीठाधीश्वर सन्त श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज) ३३
१६- स्यमन्तकमणिकी कथा (श्रीसुधीरजी निगम) ३५
१७- श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना ३७
१८- श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना ३८
१९- साधनोपयोगी पत्र ४०
२०- व्रतोत्सव-पर्व [पौषमासके व्रत-पर्व] ४२
२१- व्रतोत्सव-पर्व [माघमासके व्रत-पर्व] ४३
२२- कृपानुभूति ४४
२३- पढ़ो, समझो और करो ४५
२४- मनन करने योग्य ४८
२५- सावधान रहनेकी आवश्यकता [राधेश्याम खेमका] ४९

चित्र-सूची

१- भगवान् धन्वन्तरि .... (रंगीन) .... आवरण-पृष्ठ
२- भगवती महालक्ष्मी .... (,,) .... मुख-पृष्ठ
३- गोमाता .... (इकरंगा) ३२
३- श्रीकृष्णका स्यमन्तकमणि और जाम्बवतीके साथ द्वारका आना .... (,,) ३६

सन् २०१४ के लिये शुल्क
एकवर्षीय
अजिल्द ₹२००
सजिल्द ₹२२०
पंचवर्षीय
अजिल्द ₹१०००
सजिल्द ₹११००

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 45 (2200) पंचवर्षीय US$ 225 (11000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

चालू वर्षका शुल्क
एकवर्षीय
अजिल्द ₹१८०
सजिल्द ₹२००
पंचवर्षीय
अजिल्द ₹१०००
सजिल्द ₹११००

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—भगवान्‌के नाममें श्रद्धा न हो, प्रेम न हो तो भी दूसरेके कहनेसे भी नाम लेना आरम्भ कर दे। अच्छा, क्या हानि है, नाम लिया करेंगे—इसी भावसे लें, आदत डाल लें, फिर काम होगा ही; क्योंकि भगवन्नाममें वस्तुशक्ति ही ऐसी है, पाप नाश करनेकी स्वाभाविक शक्ति ऐसी है कि जीभपर नाम आते ही वह पापराशिका नाश कर देती है। भगवन्नाम पापोंका नाश करके ही शान्त नहीं हो जाता। वह पापका नाश करनेके बाद हृदयमें ज्ञानकी ज्योति भी जगा देता है। फिर ज्ञानके बाद भगवान्‌के प्रति प्रेम उत्पन्न करता है। होता यह है कि फिर स्वयं नामी खिंच जाते हैं। भगवान्‌के नाम, रूप, लीला, धाममें भी अन्तर नहीं है। ये सब भगवत्स्वरूप ही हैं। नाम भगवान्‌को हमारी ओर खींचता है और हमें भगवान्‌की ओर ले जाता है। वह दोनों ही काम करता है। किंतु सबसे बड़ी मूर्खता और सबसे बड़ा मोह यह है कि हम विषयोंसे सुखकी आशा करते हैं। इस मूर्खता तथा मोहको मिटानेके लिये भी भगवान्‌का नाम लेना ही वास्तविक उपाय है। यह स्मरण कर लेनेकी बात है कि मनसे, वाणीसे और शरीरसे दिन-रात चौबीसों घण्टे ही निरन्तर भजन होता रहे। निरन्तर दिन-रात भजन हो—इसके लिये कुछ समय प्रतिदिन एकान्तमें बैठकर उसका अभ्यास करे। मान लें, यदि दो घण्टे एकान्तमें बैठकर लगातार भजन करेंगे तो फिर इससे शेष बाईस घण्टेतक—स्वतः भजन करनेकी शक्ति मिलती रहेगी।

भगवद्भजनका सबसे सरल प्रकार है—भगवान्‌का नाम-स्मरण, नाम-जप और नामकीर्तन। यदि स्मरण न हो सके तो जीभसे ही निरन्तर नाम लेनेका अभ्यास करना चाहिये। नामोच्चारणसे असम्भव सम्भव होता है।

याद रखो—प्रत्येक मनुष्यको प्रतिदिन एकान्तमें बैठकर कम-से-कम दो घण्टे नाम-जपका अभ्यास अवश्य करना चाहिये। इस क्रममें यदि मनुष्य चेष्टा रखे तो एक लाख नाम-जप न सही, पचास हजार नाम-जप तो बहुत आसानीसे कर ही सकता है।

नाम लेते-लेते अन्तरके मलका नाश होता है, फिर नामका स्वाद प्रकट होता है। नाममें स्वाद आ जानेपर तो फिर नाम छूटना कठिन हो जाता है।

नामकी पूँजी खरी पूँजी है। यह जिसके पास है, उसे यमराजका भय नहीं है। जहाँ भगवान्‌का नाम होता है, वहाँ यमदूत नहीं आ सकते।

यदि सचमुच भगवान्‌का नाम-जप होने लग जाय तो विपत्ति सम्पत्तिके रूपमें परिणत हो जाय। शास्त्र-वचन है—**'सम्पन्नारायणस्मृतिः'**।

गोस्वामी तुलसीदासजीने तो यहाँतक कह दिया है कि—

तुलसी जाके बदन ते धोखेहु निकसत राम।
ताके पगकी पगतरी मोरे तनुको चाम॥

धन्य है इस नाम-प्रेमको।

सारे साधनोंका प्राण है—भगवान्‌का नाम ***'नाम रामको अंक है, सब साधन है सून।'*** स्वयं खूब भजन करो और दूसरोंसे भी करवाओ।

याद रखो—मनुष्य-जन्ममें ही मनुष्य अपने मनकी गन्दगी सर्वथा मिटा सकता है। अतः हम मनुष्य-जन्मवालोंको चाहिये कि भगवन्नामरूपी अग्निसे मनकी सारी गन्दगीको जला डालें।

नामचिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नात्मा नामनामिनोः॥

'नामचिन्तामणि ही श्रीकृष्ण है, वह चैतन्य रसका शरीर है, पूर्ण पवित्र और नित्यमुक्त है। नाम और नामी दोनों अभिन्न हैं।' **'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाह्य एवं आन्तरिक त्यागका तात्पर्य

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

[गताङ्क १० पृ०-सं० ७ से आगे]

जो धन तकदीर (भाग्य)-में होगा, वह आपके घरपर लाकर मालिक देंगे। छप्पर तोड़कर दे देंगे। यह छप्पर तोड़कर रुपया देनेकी कहावत किस प्रकार चली—यह बात आपलोगोंको बतलायी जाती है। एक सन्तोषी ब्राह्मण थे। वे चार भाई थे। उनमें एक थे सन्तोषी। वे गीताजीका पाठ और भगवान्‌का भजन-ध्यान किया करते थे। उनके दूसरे भाईलोग उनको ताना मारा करते थे कि इस प्रकार गीताका पाठ एवं भजन-ध्यान करनेसे काम नहीं चलेगा, इसलिये कमाना चाहिये। वे कह देते थे कि मेरी तकदीरमें जो कुछ लिखा है, वही तो होगा। तब उन लोगोंने कहा—'तुम्हारी तकदीरका तो मालूम पड़ जायगा। जबतक हमलोग कमाते हैं, तबतक तुमको इस तकदीरकी बात याद आती है। जब हमलोग अलग हो जायँगे, तब मालूम पड़ेगा कि तकदीर क्या होती है।' उन्होंने कहा—'बहुत ठीक है।' उन्होंने गीताजीका यह श्लोक सुनाया—

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥
(१२। १७)

'जो अपने मनके अनुकूल वस्तुके प्राप्त होनेपर हर्ष नहीं करता और मनके विपरीत वस्तुकी प्राप्ति होनेपर जिसकी द्वेष-बुद्धि नहीं होती और अपनी प्रिय वस्तुका नाश हो जानेपर जिसे शोक नहीं होता और किसी पदार्थके अभाव होनेपर उसकी आकांक्षा नहीं होती, इस प्रकार जो भी शुभाशुभ प्राप्त हो जाय, उसमें त्यागभाव रखनेवाला भक्तिमान् पुरुष भगवान्‌को प्यारा है।'

इसपर घरवालोंने उनको अलग कर दिया। उनके हिस्सेमें जो कुछ जमीन-जायदाद आयी, उसको लेकर वे अलग हो गये। उनकी स्त्री बड़ी कर्कशा थी। उसने कहा कि यह काम बहुत अच्छा हुआ। पहले मुझको घरमें सबकी रसोई बनानी पड़ती थी और सबसे सुनना पड़ता था कि तुम्हारा पति तो कुछ कमाता नहीं है, इसलिये उसके बदलेमें तू तो परिश्रम कर। अच्छा हुआ कि अब रसोईवाले कामसे पिण्ड छूट गया। अब तो केवल दो व्यक्तियोंकी ही रसोई बनानी पड़ेगी। जब उसने अपने पतिसे इस प्रकारकी बात कही, तब उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा कि तुम क्या कहती हो? तुमको हर्ष नहीं करना चाहिये। भगवान् गीतामें क्या बतलाते हैं—'**यो न हृष्यति**'—जो मनुष्य मनके अनुकूल वस्तुकी प्राप्तिमें हर्षका अनुभव नहीं करता। इसलिये तुमको इस समय हर्ष नहीं करना चाहिये। इस प्रकार वे अपनी कर्कशा स्त्रीको समझाने लगे। अलग हो जानेके थोड़े दिनोंके बाद ही, जो धन उनके हिस्सेमें आया था, वह सब बिना रोजगारके बैठे-बैठे खानेसे समाप्त हो गया। तब स्त्रीने कहा—'रुपया कमाओ।' उन्होंने जवाब दिया—भगवान् गीतामें क्या बतलाते हैं—'**न काङ्क्षति**'—'किसी वस्तुकी आकांक्षा नहीं करनी चाहिये।' इसलिये जिसको किसी वस्तुकी आकांक्षा होगी, वे कमायेंगे। तब स्त्री बोली—'निर्वाहके लिये अब क्या किया जाय?' उन्होंने जवाब दिया कि भगवान् गीतामें क्या कहते हैं—'**न शोचति**'—'जो किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करता उसको भगवान् प्यार करते हैं।' तब स्त्रीने कहा 'फिर निर्वाह कैसे किया जाय?' पतिने जवाब दिया कि तुम्हारे पास तुम्हारा गहना है न? स्त्री बोली—'क्या अपना गहना मुझको बेचना पड़ेगा?' पतिने कहा—'बेचो या मत बेचो, तुम्हारी जैसी इच्छा!' तब लाचार होकर स्त्रीने अपना गहना बेच दिया। उन रुपयोंसे थोड़े दिनोंतक तो काम चलाया, किंतु थोड़े दिनोंके बाद वे रुपये भी समाप्त हो गये। तब वह बोली—'अब क्या किया जाय?' पतिने कहा—'अपने हिस्सेकी जो जगह है, उसको बेचकर अपने रहनेके लिये कोई दूसरी जगह भाड़ेपर ले ली जाय।' तब अपनी जगह भी बेच दी गयी और एक दूसरी जगह भाड़ेपर लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
KALYAN November 2013_Section_1_2_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहने लगे। जो जगह भाड़ेपर ली गयी थी, वह कच्ची थी। चारों तरफ कच्ची दीवाल बनाकर ऊपरसे फूस डाल करके घर बनाया हुआ था। जमीन बेचकर जो रुपया मिला था, वह भी धीरे-धीरे खाकर खत्म कर दिया गया। गहना, कपड़ा, जगह सब कुछ बेच दिया गया। जब ऐसी परिस्थिति पैदा हो गयी कि कलके खानेके लिये भी घरमें कुछ नहीं रहा, तब स्त्री बोली—'अब क्या किया जायगा?' जवाब मिला कि भगवान् गीतामें कहते हैं—

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥
(१२।१७)

'जो मनके अनुकूल होनेपर हर्षित नहीं होता, प्रतिकूलकी प्राप्ति होनेपर उसमें द्वेष-बुद्धि नहीं करता और अपनी प्रिय वस्तुका नाश होनेपर शोक नहीं करता, किसी वस्तुके अभावपर आकांक्षा नहीं करता, ऐसा शुभाशुभका त्यागी भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है।'

स्त्रीने कहा—'यह तो ठीक है, लेकिन खायेंगे क्या?' पतिने बतलाया कि भगवान्ने कहा है—'**न शोचति**'—जो किसी चीजके लिये शोक नहीं करता, वह मेरा प्रिय है तो फिर हम शोक क्यों करें? तुमको शोक करना हो तो करो।' तब स्त्री बोली—'इस प्रकार तो भूखों मरना पड़ेगा।' पतिने कहा—'भगवान्की जो लीला होती है, उसे देखती रहो।' तब उसने पूछा—'आप इसके लिये किसी प्रकारका इन्तजाम करेंगे या नहीं?' पतिने कहा—'नहीं।' स्त्री मन-ही-मन चिन्तित होकर सोचने लगी कि अब क्या किया जाय? पतिदेवने बतलाया कि '**न शोचति**' हमलोगोंको सोच करना उचित नहीं है। तब पतिने कहा—'आज मैं शौचके पश्चात् नदीतटपर गया था तो मैंने वहाँ करीब आधा फुट नीचे खोदकर पानी निकाला और हाथ धोया। उस समय उसके नीचे खोदनेपर वहाँ एक धनसे भरा चरू (टोकरा) निकला। उस 'चरू' में सोना, हीरे, मोती, अशरफियाँ, मोहरें, जवाहरात आदि भरे पड़े थे। तब मैंने उस 'चरू' को वापस बन्द करके उसको पहलेकी तरह ही वहीं गाड़ दिया। जब मुझको वह चरू मिला, तब मेरी परीक्षा थी कि उस धनको पाकर मैं हर्षित होता हूँ कि नहीं; परंतु '**यो न हृष्यति**' के अनुसार मुझे हर्ष नहीं हुआ।' इसी तरह '**न द्वेष्टि**' के अनुसार मुझे इस प्रकार द्वेषभाव भी नहीं हुआ कि उस धनको बाहर निकालकर फेंक देता। और '**न शोचति**' के अनुसार मुझको इसके लिये सोच भी नहीं हुआ कि मैं इतने धनका त्याग करता हूँ। और, '**न काङ्क्षति**' के अनुसार न अब उस धनके लिये ऐसी आकांक्षा ही है कि कोई उस धनको मुझे लाकर दे दे।' यह सुनकर पत्नी बोली—'मैं जाकर उस धनको ले आऊँ?' तब उसने कहा—भगवान् कहते हैं कि '**न काङ्क्षति**।' उसकी आकांक्षा भी नहीं करनी चाहिये। जब वे इस प्रकार कह चुके तो स्त्री बोली—'आज शामको कैसे निर्वाह होगा? भूखों प्राण चले जायँगे।' तब उन्होंने कहा—'**न शोचति**।' 'इस बातका सोच नहीं करना चाहिये।'

जब वे इस प्रकार उस धनसे भरे चरूके सम्बन्धमें बातचीत कर रहे थे, तब उनके घरमें चार चोर घुसे हुए थे। वे उनकी सब बातें सुन रहे थे। उन लोगोंने सोचा कि यह मूर्ख ब्राह्मण नशे (त्यागके मद)-में धनका चरू छोड़ आया है। चलो, हमलोग उसको ले आयें। ब्राह्मणदेवने अपनी स्त्रीको जिस प्रकार उस नदीतटके निश्चित स्थानको बतलाया था कि उस जगहपर वह धनका चरू है, वे सब बातें चोरोंने सुन ली थीं। वे सब उसी निश्चित स्थानपर गये। दैवयोगसे उस चरूमें एक छेद था, जिससे एक काला नाग भीतर घुस गया था। जब उन लोगोंने उस चरूको उठाया, तब वह काला नाग फुफकार मारकर उठा। उन चोरोंने यह दृश्य देखकर परस्पर बात की कि उस ब्राह्मणने हमलोगोंको मारनेके लिये ही इस प्रकारका षड्यन्त्र रचा है; क्योंकि उसको मालूम हो गया था कि हमारे घरमें चोर हैं। उसने अपना धन बचानेके लिये ही यह षड्यन्त्र रचा है। चलो, अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस साँप और चरूको ले जाकर उसीके घरमें डाल आयें, ताकि उसको मालूम हो जाय कि हमने तो दूसरोंको मारनेका उपाय किया था, लेकिन हमको ही खुद मरना पड़ा। चोर उस चरूमें उस साँपको वापस बन्द करके उसके कड़ेमें एक लकड़ी डालकर उसको वहाँसे उठा लाये और उसे ब्राह्मणके छप्परपर चढ़ाकर उसमें जो छेद था उसको खोल दिया, ताकि वह साँप निकलकर पहले ब्राह्मणको ही काटे। उन्होंने इस प्रकारसे योजना बनायी थी कि उस चरूको छप्पर तोड़कर उलटा लटका दिया जाय। तीन आदमी तो पहले ही भाग जायँ और चौथा आदमी छप्परपर चरूको उलटा लटकाकर भाग आये। ऐसा ही किया गया। वे तीनों तो पहले ही भागे और चौथेने उस चरूको उस छप्परपर लटकाकर धकेल दिया और वहाँसे वह भी भाग गया। चरू भारी होनेके कारण छप्पर तोड़कर नीचे गिर पड़ा। तब वहाँ चरूका ढक्कन पहले खुला, उसके ऊपर वह साँप गिरा और साँपके ऊपर वह रुपया, सोना, अशरफी, जवाहरात आदिका बोझ पड़ा, जिससे साँप तो वहींपर मर गया और उस चरूके गिरनेके साथ खन-खनकी आवाज जब जोरसे हुई तो घरमें जो लोग सोये थे, वे सब जाग उठे। ब्राह्मणीने सोचा, 'क्या मामला है?' वह छप्परकी तरफ गयी, वहाँपर देखा तो एक साँप मरा पड़ा है और उसके ऊपर रुपयोंका ढेर लगा पड़ा है एवं चारों तरफ हीरे, जवाहरात, मोती, अशरफियाँ, रुपये आदि बिखरे पड़े हैं। एक तरफ वह रुपयोंका खाली चरू पड़ा है। ब्राह्मणी इस विपुल धनको देखकर नाचने लगी और सोचने लगी कि भगवान्ने हमको छप्पर फाड़कर धन भेजा है, पतिदेवके भगवान् सच्चे हैं। वह इस प्रकार प्रसन्नतासे नाच उठी। इतनेमें ही वे ब्राह्मणदेव भी वहाँपर आ गये। सब मामला समझनेके बाद उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा—'मूर्खे! क्या नाच रही है। भगवान्ने गीतामें क्या कहा है? श्लोकको स्मरण कर—

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥

(१२।१७)

—'प्रिय वस्तुको पाकर हर्षित नहीं होना चाहिये। तुमको इस धनकी प्राप्तिमें हर्षित नहीं होना चाहिये और इससे द्वेष भी नहीं करना चाहिये कि उसको उठाकर बाहर ही फेंक दो।' अगर इस धनको कोई उठाकर ले भी जाय तो शोक भी नहीं करना चाहिये तथा ऐसी आकांक्षा भी मत करो कि अब यह धन हमारे पासमें बना ही रहे।' स्त्रीने सोचा कि बस, अब काम बन गया। अब इतने धनमेंसे उसने चार अशरफियाँ बीनकर अपना काम चलाया। खूब मजेकी रसोई बनायी गयी। अब तो उनके ठाट हो गये। कोई भी गरीब धनहीन दु:खी आता तो उसको अशरफी ही निकालकर देते। कोई कहता कि मैं ब्राह्मण हूँ, अपनी लड़कीका विवाह करना है, हमको १०० रुपयोंकी आवश्यकता है तो वे कहते कि भाई, हमारे पास रुपये नहीं हैं, अशरफियाँ हैं। ब्राह्मण जब यह कहते कि—'अगर अशरफी है, तब तो दो-चार अशरफीसे ही काम बन जायगा।' तब ये जवाब देते—'दो-चार अशरफियोंसे क्या काम चलेगा, दस अशरफियाँ ले जाइये।' दस अशरफियोंको देकर उनको विदा कर देते। कोई एक माँगे तो दी जातीं दस अशरफियाँ। जब उनका इस प्रकारका हाल देखा, तब गाँवमें हल्ला हो गया कि उनका क्या कहना है! उनके तो बहुत ठाट-बाट हो गये हैं!

इधर ब्राह्मणके उन तीनों भाइयोंकी, जिन्होंने उस ब्राह्मणसे बँटवारा करते समय बहुत-सा धन बचा लिया था, बड़ी दुर्दशा हो गयी। सट्टेबाजीमें उन लोगोंके धन-गहना, जमीन-जायदाद सब खत्म हो चुके थे और बाजारमें अब किसी प्रकारकी उनकी इज्जत भी नहीं रह गयी थी कि उनको एक पाई भी उधार मिल जाती, ताकि किसी प्रकारका छोटा-मोटा रोजगार भी कर पाते। उनकी जब इस प्रकारकी बुरी हालत थी, तब उन लोगोंने सुना कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारा भाई तो आजकल खूब रुपयेवाला धनी आदमी हो गया है और खूब दान-धर्म करता है। तब तीनों भाई अपने उस भाईके घरपर आये। इस छप्परमें आकर देखा तो आधा धन जमीनपर बिखरा पड़ा है और आधा उस चरू—टोकरेमें पड़ा है। उन लोगोंने जब इस प्रकार धनका ढेर देखा, तब वे भी आश्चर्यचकित हो गये। तीनों ब्राह्मण कहने लगे—'बाप-रे-बाप! ऐसा धनका ढेर तो हमने कभी भी नहीं देखा है।' तब उस ब्राह्मणकी स्त्रीसे बड़े भाईने पूछा कि 'बहू! तुम्हारे पास यह इतना धन कहाँसे आया है?' ब्राह्मणीने जवाब दिया—'हमलोगोंको तो यह धन भगवान्‌ने ही दिया है और छप्पर फाड़कर दिया है।' उसकी भाभी-भाई आदिने भी देखा कि यह तो प्रत्यक्ष बात है। वस्तुतः भगवान्‌ने इनको वह सब धन छप्पर फाड़कर दिया है। उसमें भगवान्‌की ही दया है और इसमें प्रमाणकी आवश्यकता नहीं। उन लोगोंको बड़ी भारी लज्जा लगी और वे ब्राह्मणसे बोले—'भैया! तुम्हारे भगवान् तथा गीता सब सच्चे हैं। हमने सुना है कि तुम दान करते हो। हमारी इस प्रकारसे दुर्दशा है, इसलिये हम तुम्हारे पास आये हैं।' स्त्रीने जवाब दिया—'यह धन आपका ही है, आप ले जाइये, हमको तो भगवान् और दे देंगे।' तीनों भाइयोंने सोचा कि अगर हम यह सब धन ले जायँगे तो ठीक नहीं होगा। तीनों भाइयोंने आपसमें विचार किया कि अब फिर चारोंको शामिल हो जाना चाहिये। उन लोगोंने ब्राह्मणसे वापस सम्मिलित हो जानेकी बात कही। ब्राह्मणदेवताने जवाब दिया—**'यो न हृष्यति न द्वेष्टि···· स मे प्रियः'** तब सब भाई पुनः शामिल हो गये और उस धनमेंसे लेकर लोगोंका जो रुपया चुकाना था, वह सब चुका दिया। अब तो उन लोगोंके पास लाखों रुपये हो गये थे। गीताभ्यासी ब्राह्मणके संगसे अब उन लोगोंका काफी सुधार हो गया। वे बोले—'हम भी गीता पढ़ेंगे।' फिर वे भी इस श्लोकका मनन करने लगे। **'यो न हृष्यति·····स मे प्रियः'**। श्लोकको लक्ष्य बनाकर अपने जीवनको बनाने लगे। उन लोगोंने यह भी देखा कि उसकी स्त्रीका भी सुधार हो गया है। जब हमलोगोंने बँटवारा किया था, तब भाई तो कुछ नहीं बोलता था, लेकिन उसकी स्त्रीने बरतनों एवं छोटी-छोटी बातोंको लेकर खूब लड़ाई की थी। उस समय यह कितनी कर्कशा थी। अब तो इसका बहुत सुधार हो गया। इस प्रकार उन दोनोंका व्यवहार देखकर वे लोग बहुत प्रसन्न हुए और उन तीनों भाइयों और उनकी स्त्रियोंने भी अपना सुधार कर लिया। इसलिये कहा जाता है कि भगवान् जब देता है, तब इसी प्रकार छप्पर फाड़कर देता है। गीताके इस १२वें अध्यायके १७वें श्लोकके आधारपर जो यह कहानी बनायी गयी थी, वह आजके प्रकरणमें प्रसंग आनेपर बतलायी गयी है।

इस ब्राह्मणने अपने निवृत्तिपरक स्वभावके कारण उक्त श्लोकका वैसा अभिप्राय समझकर उसके अनुसार अपना जीवन बनाया था, किंतु गृहस्थाश्रमी मनुष्योंको प्रवृत्तिमें रहते हुए यानी जीविकोपार्जनके न्याययुक्त कर्तव्यकर्म करते हुए ही इस श्लोकके अनुसार अपना जीवन बनाना चाहिये।

आज ऊपर जो बातें बतलायी गयी हैं, उनको फिरसे दोहराया जाता है—

१-सबको परमात्माका स्वरूप समझना चाहिये।

२-इसी अपने मनुष्य-जन्मको अन्तिम जन्म समझना चाहिये और अब हमारा दूसरा जन्म नहीं होगा—ऐसा दृढ़तासे मान लेना चाहिये।

३-संसारकी सब चेष्टाओंको भगवान्‌की लीला समझना चाहिये।

४-कर्तव्यकर्मोंको करना और त्यागनेयोग्य कर्मोंको त्याग देना चाहिये, जैसे—आलस्य-प्रमाद, पाप, अतिनिद्रा, दुर्गुण-दुर्भाव—इनको मृत्युके समान समझकर त्याग देना चाहिये। बड़ोंको प्रणाम करना तथा सद्गुणों-सदाचारोंका सेवन करना आदि धारण करनेयोग्य बातोंको तत्परतापूर्वक धारण करना चाहिये।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!! **[समाप्त]**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः'

(ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाईजी व्यास)

इस संसारमें जो भी वस्तुएँ हैं, वे सब समय आनेपर अवश्य नष्ट होती हैं। जो भी दृश्य पदार्थ हैं, जिनकी उत्पत्ति हुई है, उनका नाश निश्चित है। इस पृथ्वीपर कितने ही सम्राट्, विद्वान्, आचार्य, शूरवीर और सामान्य मनुष्य भी आये, उन्होंने जन्म लिया, जिये और नष्ट हुए। जिस प्रकार वर्षा-ऋतुमें पृथ्वीमेंसे अनेक वनस्पतियाँ अंकुरित होती हैं, विकसित होती हैं और समय आनेपर उसी पृथ्वीरूपी खड्डेमें समा जाती हैं, जिस प्रकार समुद्रमें अनेक लहरें उठती हैं और फिर उसीमें विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार इस ब्रह्माण्डमें अनेक प्राणी-पदार्थ उत्पन्न होते हैं, मरते हैं और नष्ट होते हैं। अनेक बड़े-बड़े महात्मा अब कहानी बन चुके हैं। समस्त ब्रह्माण्डमें कोई अजर-अमर है, ऐसा आजतक न तो सुना है, न जाना है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—इन त्रिदेवोंके शरीर भी समय आनेपर नष्ट हो जाते हैं तो फिर दूसरोंकी क्या बिसात ? इस समय हम जिस शरीरको अपना शरीर मानते हैं, वह शायद कल ही नष्ट हो जाय। प्रत्येक वस्तु समय आनेपर अवश्य नष्ट हो जाती है। इस संसारमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो अमर हो। आकाशकी ओर दृष्टि उठाकर देखिये तो वहाँ जो भी ग्रह-नक्षत्र दीखते हैं, उनमेंसे एक भी स्थिर नहीं है। तथाकथित स्थिर ध्रुव भी गतिशील, अस्थिर है। कोई भी लोक अविचल एवं अविनाशी नहीं है। मुमुक्षु ऐसा न मान लें कि अमुक लोक अविनाशी है और वहाँ अवतरित होनेपर फिरसे जन्म नहीं लेना पड़ेगा, मरना भी नहीं पड़ेगा। जो नाम-रूप हैं, वे तो सब मरनेहीवाले हैं। जो शरीर जन्मे हैं, वे मरनेवाले हैं। जो आकारवाले हैं, वे सब नष्ट होनेवाले हैं। कोई ऐसी जमीन नहीं है, कोई ऐसा देश नहीं है, जो अमर हो। जो अविनाशी है, वह परमात्मा है। जो अमर है, वह आत्मा है और वह समस्त प्राणियोंमें व्याप्त है। प्राणी-पदार्थके नष्ट हो जानेपर भी जिसका नाश नहीं होता, वही परमपद, वही परमधाम और वही परमात्मा है। देश, भूमि, लोक आदि एक जगह हैं, परंतु दूसरी जगह नहीं हैं। इसलिये ये परिच्छिन्न और विनाशी हैं। ये अक्षरधाम नहीं हैं। स्वर्ग आदि जो भी लोक माने जाते हैं, वे सब समय आनेपर काल-कवलित अवश्य हो जायँगे। बराबर विचार करनेसे समझमें आ जायगा कि इस संसारमें सारी क्रियाएँ एक पदार्थको नष्टकर दूसरेको उत्पन्न करनेमें समायी हुई हैं। दूसरे शब्दोंमें कहें तो (जरा प्रौढ़ दृष्टिकर गौर करनेसे मालूम हो जायगा कि) संसार मानो चित्रपट (सिनेमा)-का परदा है, जिसमें पदार्थमात्र क्षण-क्षणमें बदलते रहते हैं। फिर भी थोड़े समयके लिये वे वैसे ही दिख पड़ते हैं, अपरिवर्तनशील भासित होते हैं। परब्रह्मरूपी परदेपर बिना फिल्मके इस संसाररूपी सिनेमाका दृश्य प्रतिक्षण बदलता रहता है, नृत्य करता रहता है। फिर भी वह वैसा ही है, अपरिवर्तनशील है, ऐसा भासित होता है। इस संसारमें सब-के-सब आकार नाशवान् हैं और मिथ्या हैं। उत्पत्तिके पूर्व उनका आकार वैसा नहीं था, इस समय भी विकारके कारण वे हर क्षण परिवर्तित हो रहे हैं और अन्तमें वे नष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार हर क्षण संसारके सारे पदार्थ विकारवश विनाश प्राप्त करते ही हैं। हर क्षण कालदेवता संसारके प्राणियों और पदार्थोंको निगल रहे हैं। वस्तुके निर्माण होते ही उसका विनाश भी आरम्भ हो जाता है। जिस प्रकार दीपककी ज्योति हर क्षण तेलका नाश करती रहती है, जिस प्रकार नदीका बहता पानी प्रत्येक क्षण नये-नये स्थानपर प्रवाहित होता है, उसी प्रकार संसारमें समस्त प्राणी एवं पदार्थ प्रत्येक क्षण विकार एवं विनाश प्राप्त कर रहे हैं। इसलिये अनुभवी सन्त चेतावनी देते हैं कि इस नाशवान् प्राणी-पदार्थमें ममता क्यों रखी जाय ? अहंता क्यों रखी जाय ? क्योंकि जीवन थोड़ा है, सामर्थ्य भी थोड़ी है और कालका कोई भरोसा नहीं है। एकाएक न जाने कब प्रयाण करनेका समय आ जाय। इस खान-पानमें, इस पहनने-ओढ़नेमें और इन भोगोंमें नित्य वही-का-वही एक नीरस व्यावहारिक जीवन है तो भला इस एकरसतासे जी नहीं ऊब जाता ! यहाँ खाने-पीने और मौज मनानेमें जिन्दगी गँवा दी। शरीर छोड़कर परलोक जाते समय इन आनन्द, मौज आदिका कौन-सा फल मिलेगा ? घानीका बैल चलता तो बहुत है, पर रहता वहींका वहीं है। मौत आयेगी, इन सबको छोड़कर जानेकी वेला आयेगी, तब क्या याद आयेगा ? हमारेद्वारा किये गये पाप ही आँखोंके सामने तैरते रहेंगे। रिश्तेदारोंको, कुटुम्बीजनोंको, अपनोंको, परायोंको, जिन-जिनको हमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सताया होगा, वह सब याद आयेगा। उस समय अनुभव होगा कि मैंने ये पाप क्यों किये ? स्वजनों और परजनोंको नाहक क्यों पीड़ित किया ? पर उस समय पछतानेसे क्या मिलेगा ? मरनेके बाद भगवान् जीवनका लेखा-जोखा माँगेंगे, क्या किया ? धन्धा किया, पाप किया, खाया-पिया, कुटुम्बका पालन किया, परंतु इन सबकी गणना नहीं होगी। इसलिये साधकको चाहिये कि वह अभीसे चेत जाय। बहुत-से जन्म बीत गये, बहुत-से साल गुजर गये, परंतु ईश्वरकी ओर जानेवाला रास्ता आपने कितना तय किया ? सब कुछ आपको यहीं छोड़ना होगा। फिर कौन-सा सम्बल आपने मार्गके लिये तैयार किया ? मुसाफिरी लम्बी है। भूखसे मरना न पड़े, इसलिये अभीसे तैयारी आरम्भ कर दें। साधकका कर्तव्य है कि सारी आयु नाहक गँवा देनेके बजाय, देहके अवसानके पूर्व श्रेय-साधना अवश्य कर ले। मृत्यु किसी भी उपायसे टाली नहीं जा सकती। कालका बुलावा लौटाया नहीं जा सकता। इन सबको छोड़कर हमें जाना ही पड़ेगा। इससे मुक्ति-प्राप्तिके लिये उपाय करने ही होंगे। जन्म-मृत्युकी रहटसे हमें मुक्त होना ही चाहिये। इस प्रकार जीवनमें सत्कर्म करते रहें तो जीवात्माका कल्याण होता है। यदि मनुष्य यह मान ले कि बुढ़ापेमें भगवान्का भजन करेंगे, पर बुढ़ापेमें कुछ भी नहीं हो सकता। इसलिये मुमुक्षुका कर्तव्य है कि आज अभीसे ही जितना जो कुछ हो सके करने लगे। आयु बढ़नेके साथ-साथ शरीरकी, मनकी, इन्द्रियोंकी शक्ति घटती है, जठराग्नि मन्द हो जाती है, कानसे कम सुनायी देता है, अधिक उठ-बैठ, दौड़-धूप नहीं हो पाती, शरीर अनेक रोगोंका घर बन जाता है। इसलिये आजसे ही भगवान्का निरन्तर भजन करो; क्योंकि अभी तो शरीरमें, इन्द्रियों और मनमें अपार शक्ति और उत्साह है। व्रत-नियम करनेका, परोपकार और लोकसेवा करनेका, तीर्थयात्रा करनेका, मन और इन्द्रियोंका संयम साधनेका, भगवान्की भक्ति, सत्संग और सद्गुणोंको धारणकर दृढ़ करनेका, सत्कार्य करनेका, परलोकके लिये सम्बल तैयार करनेका समय है, शक्ति है। जब आँखें अन्धी हो जायँगी, कान बहरे हो जायँगे, कोई घरमें आदर नहीं देगा, कोई तुम्हारी बात नहीं मानेगा, भूख तो बहुत लगेगी, पर भोजन नहीं मिलेगा, कोई तुम्हारे साथ बातें करनेके लिये भी तैयार नहीं होगा, कोई तुम्हारे पासतक नहीं बैठेगा, तब तुम विवश होगे, तब तुमसे कुछ भी नहीं हो सकेगा। दूसरे लोग उस समय तुम्हें चिढ़ायेंगे, तुम्हारा मजाक उड़ायेंगे, नाराज होंगे, तब तुम कुछ भी नहीं कर पाओगे। कुटुम्बीजन तुम्हारा तिरस्कार करेंगे। तुम्हारे पास धन नहीं होगा, तुमसे दान-पुण्य भी नहीं होगा। तप-तीर्थ आदि भी नहीं होगा। उस समय (बुढ़ापेमें) पेशाब-दस्तका ठिकाना नहीं होगा, शरीरका भान भी न होगा, कपड़े-अस्त-व्यस्त होंगे, अन्दर-ही-अन्दर घुटन होगी, प्रलाप प्रारम्भ होगा, अंट-संट बोलने लगोगे, कुछ भी पहचान नहीं पाओगे, कफसे कण्ठ अवरुद्ध हो जायगा, तब ईश्वरका भजन कैसे हो सकेगा ? प्रयाणका समय एकाएक आ सकता है।

ऐसी स्थितिमें साधकको, मुमुक्षुको अपना मार्ग निर्धारणकर चुपचाप उसपर चलते रहना आवश्यक है। ऐसा न कर वाद-विवाद और धर्मके झगड़ोंमें यदि मुमुक्षु फँसा रहा तो उसका रास्ता कैसे तय होगा और वह मंजिलतक कैसे पहुँच सकता है ? शरीर सशक्त हो, तबतक उस मार्गको ग्रहण कर लेना चाहिये, जिसमें चित्तको शान्ति मिले, असीम आनन्द मिले, तीनों कालोंमें सुख मिले। जहाँ खड़े हो वहाँसे आगे बढ़ो, रास्ता तय करो, लक्ष्यपर दृष्टि रखो, धीरे-धीरे श्रेय प्राप्त होगा, तात्पर्य यह कि भोगमात्रकी आकांक्षाका त्याग करते हुए स्वकर्म करना चाहिये और उन कर्मोंके फलकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। परमात्माका आश्रय लेकर, प्राणिमात्र प्रभु-स्वरूप हैं—ऐसा मानकर शुद्ध चित्तसे अखण्ड आनन्दका अनुभव करते रहना बहुत आवश्यक है। तभी जीवन उत्तम ढंगसे जिया जा सकता है और मृत्यु भी सुधर जाती है। इस जन्ममें यदि तुमने परमपदको प्राप्त करनेके लिये अथक प्रयत्न नहीं किया तो इतना जान लो कि तुम्हारे प्रयत्नोंके बिना लाखों जन्म लेनेपर भी तुम्हारा छुटकारा नहीं है।

इसलिये जबतक तुम्हारा शरीर सशक्त है, तबतक कमर कसकर भगवान्की आराधना करते चलो, अच्छे कार्य करते रहो, सदाचार, परोपकार, भक्ति, ध्यान आदि सम्बल तैयार कर लो और जानेसे पहले ही (मृत्युके पूर्व ही) भगवान्को अपना बनाकर भगवान्की अनन्य शरणागति प्राप्त कर लो। ऐसा करनेपर चौदह लोकोंके नाथ भगवान् सामने उपस्थित होंगे और तुम्हें अपना समझकर तुम्हारी बाँह पकड़कर अपने धाममें ले जायँगे। इसलिये शुभ कार्यके लिये राह न देखो, प्रतीक्षा न करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिमानी अधिक फँसता है

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

महाभारतमें एक कथा आती है कि जब कौरव एवं पाण्डव-बालकोंकी धनुर्वेदकी शिक्षा पूरी हो गयी, तब गुरु द्रोणाचार्यजीने एक परीक्षाका आयोजन किया। उसमें एक बड़े ऊँचे पेड़की सबसे ऊँची टहनीपर एक पक्षी बैठा दिया और बालकोंसे कहा कि इस पक्षीकी बायीं आँखमें निशाना लगाना है। जब सभी तैयार हो गये तो एक बालकसे उन्होंने पूछा कि तुम्हें क्या दिखायी दे रहा है? उसने मनमें सोचा कि यह दिखनेकी बात क्यों पूछ रहे हैं? मुझे आँख है ही और सब कुछ दिखायी दे रहा है। फिर कहा—महाराज! मुझे सब कुछ दिखायी दे रहा है। आप दीखते हैं, यह पेड़ दीख रहा है, वह पक्षी दीख रहा है। तब द्रोणाचार्यजीने कहा—अच्छा, तुम बैठ जाओ। फिर दूसरे बालकसे पूछा—तुम्हें क्या दिखायी देता है? उसने कहा—मुझे पेड़ दिखायी दे रहा है, डाली दीख रही है, पक्षी दीख रहा है और कुछ नहीं दीख रहा है। उन्होंने कहा—तुम भी बैठ जाओ। फिर दूसरे बालकसे वही प्रश्न किया तो उसने उत्तर दिया कि मुझे तो वह डाली दिखायी दे रही है, जिसपर वह पक्षी बैठा है। इसको भी बैठ जानेके लिये कह दिया। फिर दूसरे बालकसे पूछा कि तुम्हें क्या दिखायी दे रहा है? उसने उत्तर दिया—मुझे केवल वह पक्षी दिखायी दे रहा है और कुछ नहीं दीख रहा है। उसे भी बैठ जानेके लिये कह दिया। इसी प्रकार अन्य बालकोंसे पूछनेके उपरान्त अन्तमें अर्जुनसे पूछा कि तुम्हें क्या दीख रहा है? उन्होंने कहा—मुझे केवल पक्षीकी बायीं आँख दीख रही है और कुछ नहीं दिख रहा है। तब अर्जुनसे कहा—तुम निशाना लगाओ। इसका नाम है—लक्ष्य।

जीवनमें जो लक्ष्य होता है, वहींपर मनुष्य स्वाभाविक जाता है—**'अप्रमत्तेन वेद वेधन् सर्वं तन्मयो भवेत्।'**

यह श्रुतिमें आता है कि बाणकी तरहसे ठीक लक्ष्यपर ध्यान रखकर तन्मय होकर वेध करो। यानी ठीक भगवान्‌पर वृत्ति बनी रहे। यह लक्ष्य है। जीवनमें सर्वप्रथम लक्ष्य स्थिर करना पड़ता है। मार्ग बादमें हुआ करता है। दो प्रकारकी बात होती है। एक तो बिना कहीं जानेका निश्चय किये मार्गपर चलना शुरू कर देना और दूसरा कहाँ जाना है—यह निश्चय करके मार्गपर चलना। जिसका कहाँ जाना है, यह निश्चय नहीं है, वह मार्गपर इधर-उधर भटकेगा। कहाँ जाना है यह निश्चय ही नहीं है तो जायगा कहाँ? उसका केवल भटकना होता है और वह मार्गका बोध भी नहीं कर सकेगा; क्योंकि कहीं जाना जब निश्चय हो तब न वह रास्ता पूछेगा और यह जानना चाहेगा कि किस रास्तेमें अड़चनें हैं, कौन-सा रास्ता अच्छा है, किसमें कितना खर्च है? यह सब तब पता करेगा जब उसका निश्चय होगा कि कहाँ जाना है। इसलिये जीवनमें सबसे पहले लक्ष्य बनानेकी आवश्यकता है। यूँ तो हमारे यहाँ लक्ष्य बना हुआ है। हमारी संस्कृतिमें यह लक्ष्य बना हुआ है। इसीलिये चार पुरुषार्थों अर्थ, धर्म, काम और मोक्षमें अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष है, मोक्ष लक्ष्य है।

मोक्षकी प्राप्तिके लिये, ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये, भगवान्‌को पानेके लिये यह जीवन है। गर्भाधान-संस्कारसे लेकर बच्चा पैदा होकर जब गुरुकुलमें जाता है, तब भी यही चीज सामने रहती है कि भगवत्प्राप्तिके लिये ही यह सब किया जा रहा है **'यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥'** (गीता ८। ११)

यह बात गीतामें है और कठोपनिषद्‌में भी है। आदमी गुरुकुलमें क्यों प्रवेश करता है? इसलिये कि भगवान्‌को प्राप्त करनेका मार्ग जाननेके लिये। **'यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति'** उसकी इच्छा करके ब्रह्मचर्यका आचरण करता है।

जिस प्रकार मोक्ष लक्ष्य है और धर्मयुक्त अर्थ तथा काम जीवन-निर्वाहके लिये है, उसी प्रकार वास्तविक विद्या विमुक्तिके लिये है और सारी विद्याएँ जीवन-निर्वाहके लिये हैं। अन्य विद्याओंका बहिष्कार नहीं है, जैसे अर्थ और कामका बहिष्कार नहीं है पुरुषार्थमें। परंतु **'सा विद्या या विमुक्तये'**—विद्या वह है, जो विमुक्ति दे दे। जो विमुक्तिदायिनी नहीं है और बन्धनकारिणी है, उसका नाम हमारे यहाँ अविद्या है—अज्ञान है। भले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही उसका नाम विद्या कहते हों, परंतु वह अविद्या है। ईशोपनिषद्‌में आया है कि विद्याका अभिमानी अधिक बँधता है। विद्यावालेका यहाँ अर्थ है कि जो विद्याका अभिमान करता है। जो यह समझता है कि मैं ही विद्वान् बाकी सब मूर्ख हैं—इस प्रकारका विद्वत्ताका अभिमान करनेवाला अधिक फँसता है। विद्या वह है जो फँसावटको हटा दे, जो बन्धनको काट दे—**'सा विद्या या विमुक्तये'** और **'अध्यात्मविद्या विद्यानाम्'**।

जब प्रारम्भमें बालक विद्यारम्भ करता है तब भी उसको यही बात ध्यानमें रखायी जाती है कि इस विद्याके द्वारा तुम्हें यहाँपर ठीक-ठीक रहते हुए अन्तमें भगवान्‌को प्राप्त करना है। इसीका नाम धर्म है। वैशेषिक दर्शनमें धर्मकी व्याख्या की गयी है—**'यतो अभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'**—जिससे यहाँ अभ्युदय हो, जगत्‌में किसी दूसरेका आश्रय न करके, दूसरेको दुःखी न बनाकर पवित्र जीवन, सन्तोषका जीवन बितानेको मिले और निःश्रेयस अर्थात् परमकल्याण—भगवान्‌की प्राप्ति जिसके द्वारा हो, वह धर्म है।

इसलिये जीवनका लक्ष्य होना चाहिये भगवत्प्राप्ति। इस लक्ष्यको लेकर फिर सारे कार्य करे। जैसे व्यक्ति यहाँसे काशी जब जाता है तो वह इस बातका पहलेसे पता लगा लेता है कि काशीका कौन-सा मार्ग है। गाड़ी जाती है तो किस समय जाती है। तब वह उसी गाड़ीमें बैठता है, दूसरी गाड़ीमें नहीं बैठता। इसी प्रकारसे जब भगवान् हमारे लक्ष्य होंगे तो हम उन्हींकी ओर जानेवाले मार्गसे जायँगे, विपरीत मार्गसे नहीं जायँगे। यदि हमें भगवान्‌की ओर जाना है तो हमारे जीवनका लक्ष्य भगवान् हो जायँगे तब हमारे प्रत्येक कार्यमें भगवान्‌की अनुकूलताका साधन और प्रतिकूलताका वर्जन अपने-आप हो जायगा। जैसे धनकी चाह करनेवाला आदमी जानबूझकर ऐसा कोई काम नहीं करना चाहता है, जिसमें एक पैसेका भी नुकसान हो। यह स्वाभाविक होता है, इसमें उपदेश देनेकी आवश्यकता नहीं है। यह बिलकुल स्वाभाविक है कि जो जिसे पाना चाहता है, वह उसे खोना कैसे चाहेगा? जैसे धन कमानेकी इच्छावाला आदमी निरन्तर धन कमानेके कार्यमें ही लगा रहना चाहता है अपनी विद्या, बुद्धि और अवस्थाके अनुसार। वह विपरीतमें नहीं लगना चाहता है। यदि नौकरी नहीं मिली तो अनेकों लोगोंसे पूछता है कि कहाँ काम मिल सकता है? व्यापार नहीं चलता है तो लोगोंसे सलाह करता है, व्यापारियोंसे पूछता है कि आजकल क्या चल रहा है? किसमें लाभ है? क्या करें, कैसे करें और कहाँ करें? वह स्थान ढूँढ़ता है, वस्तु ढूँढता है, समय ढूँढ़ता है। देश, काल और पात्रका निर्वाचन करता है।

इसी प्रकारसे जब भगवान् हमारे जीवनके लक्ष्य बन जायँगे तब स्वाभाविक ही हम भगवान्‌तक कैसे शीघ्र और स्वतन्त्रतापूर्वक पहुँच सकें, इसीकी चिन्ता रहेगी और इसीका प्रयत्न रहेगा तथा यही करते रहेंगे। कहीं विपरीत हुआ और पता लग गया तो दुःख होगा। जैसे किसी व्यक्तिका कोई आवश्यक कार्य भूल जाय अथवा उलटा हो जाय तो उसे बड़ा पश्चात्ताप होता है। इसी प्रकार उसे पश्चात्ताप होगा काम नहीं होनेपर अथवा विपरीत हो जानेपर। हमलोग कहते हैं न कि भई, हम तो भगवान्‌का भजन करना चाहते हैं, परंतु होता नहीं है। यह ठीक है कि नहीं होता है, परंतु न होनेपर दुःख होता है क्या? न होनेपर मनमें बहुत बड़ी परेशानी—बेचैनी होती है क्या? अगर ऐसा नहीं होता है तो इसका अर्थ है कि हमारी भजनकी चाह ही नहीं है। जिस चीजको आदमी हृदयसे चाहता है, मनसे चाहता है, वह चाहे धन हो, मान हो, स्वास्थ्य हो अथवा और कोई सांसारिक पदार्थ हो, जिसको वह चाहता है, उसके न मिलनेपर दुःख होता है और उसके विपरीत हो जानेपर तो बहुत ही दुःख होता है कि हमने जान-बूझकर अपने पाँवपर कुल्हाड़ी मार ली। हमारा बनता हुआ काम रुक गया। मुझसे बड़ी भूल हुई। मेरी बुद्धि मारी गयी। वह अपनेको कोसता है। उसे बड़ी बेचैनी होती है। जिस चीजकी चाह होती है, उसके न मिलनेपर ऐसा होता है।

जब हमारे मनमें भजनकी चाह होती है, जब हम भगवान्‌को चाहते हैं, भजनमें लगते हैं तब भजन न होनेपर, भगवान्‌की राहपर न चल पानेपर, कहीं अड़चन आनेपर, विपरीत मार्गपर चले जानेपर अथवा कोई कुसंग मिल जानेपर स्वाभाविक ही उसे बेचैनी होती है। वह सोचता है कि इससे कैसे निकलें। कुम्भनदासजीको एक बार बादशाहने बुलाया। वह उनके यहाँ चले गये। फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने कहा—

संत को कहा सीकरी सो काम।

आवत जात पनहियाँ टूटी बिसरि गयो हरिनाम॥

उन्होंने सोचा कि मेरा वहाँ क्या काम था? क्यों गया? और नहीं तो आने-जानेमें जूती भी टूट गयी। लेकिन किसी दूसरेको यदि बादशाह बुला ले तो उसे कितना सुख होता है। अतएव अपने दृष्टिकोणके हिसाबसे अनुकूलता-प्रतिकूलता होती है। जो भगवत्-मार्गके राही हैं, उनकी कल्पना दूसरी होती है और जो जगत्के मार्गपर चलनेवाले हैं, उनकी कल्पना दूसरी है। जगत्के मार्गी निरन्तर खोजते हैं उन सारे पदार्थोंको, विषयोंको, परिस्थितियोंको, अवस्थाओंको जो उनकी दृष्टिमें संसारमें सुख देनेवाली हैं। वे धन, मान, इज्जत, प्रतिष्ठा, शरीरका सुख और इन्द्रियोंके अच्छे-अच्छे भोग खोजेंगे। इन्हींमें उनका मन रमेगा। लेकिन जो भगवान्‌की चाह करनेवाले हैं, वे इनसे बिलकुल विपरीत जायँगे।

असङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा॥

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।

(गीता १५। ३-४)

वे वैराग्यरूपी शस्त्रसे इन सारे विषयोंकी अनुकूलताको काटते रहेंगे। चाहने और मिलनेकी बात तो अलग रही। **'असङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा'** यदि इनके मनमें भी ये अंकुर उगते दीखेंगे तो वैराग्यरूपी शस्त्रसे इनको काटते रहेंगे। दृढ़ अस्त्रसे—बड़ी धारवाले अस्त्रसे इनको काटते रहेंगे और **'ततः पदं तत्परिमार्गितव्यम्'**—उस रास्तेको खोजेंगे, उस पदको खोजेंगे, जहाँ जाकर फिर लौटना नहीं पड़ता है। उनका स्वरूप क्या है?

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।

द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥

(गीता १५। ५)

वे उस अव्यय पदको खोजेंगे और इस पदको खोजनेमें उन्हें कैसा बनना पड़ेगा? किस मार्गपर चलना पड़ेगा? उस रास्तेमें चलनेमें उनके स्वरूपकी क्या स्थिति होगी? मुझे डॉ० रघुवीरने चित्र दिखाये, जब वे साइबेरियामें गये थे। वहाँ बर्फ-ही-बर्फ है तो वे बड़े मोटे-मोटे चमड़ेके जूते, कोट और टोप पहने थे, जिससे उनपर बर्फ असर न कर सके। अतएव जिसे जिस मार्गपर चलना है, उसे उसी मार्गके अनुकूल बनना पड़ेगा। नहीं तो वह चल नहीं सकता।

जो अव्यय पदकी प्राप्तिमें पहुँचना चाहते हैं, उनको कैसा बनना पड़ेगा? उन्हें कैसा होना होगा? **निर्मानमोहा, जितसङ्गदोषा, अध्यात्मनित्या, विनिवृत्तकामा, द्वन्द्वैर्विमुक्ता सुखदुःखसंज्ञैः** होना पड़ेगा। निर्मानमोहा—उन्हें मान और मोहसे रहित होना पड़ेगा। जगत्‌में सम्मानकी इच्छा बहुत ही मीठे जहर-जैसी है। और, यह मानकी इच्छा सब कुछ त्याग करनेके बाद भी रहती है। सब कुछ त्याग देनेके बाद उनकी यह इच्छा होती है कि लोग समझें कि कितने बड़े महात्मा हैं। लोग सम्मान करें। यह एक प्रकारकी इच्छा बनी रहती है। मानका मोह प्रत्यक्ष अज्ञानकी घोषणा है। कैसे है? इस प्रकार कि मान मिलेगा नामको और शरीरको। और, नाम तथा शरीरको जो 'मैं' मानता है, वह अज्ञानी है। नाम और शरीररूप दोनों आत्मा है नहीं। लोग कहते हैं कि ऐसा काम करें, जिससे हमारा नाम इतिहासमें अमर रहे। हमारी मूर्ति बनेगी, चित्र बनेगा, जिसे लोग पूजेंगे। हमारा नाम प्रसिद्ध होगा। यह सब क्या है? नाम और रूपमें यह जो ममता है, अहंता है, उसीको लेकर यह सब वृत्तियाँ उठती हैं और यह मोह है। इसीलिये कहते हैं कि इस मानके मोहसे रहित हो जाओ। जगत्‌में जो मान चाहेगा, उसे भगवान् नहीं मिलेंगे। मानमें और अभिमानमें अन्तर है।

'ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्वात्' (नारदभक्तिसूत्र २७) भगवान् यद्यपि राग-द्वेषशून्य हैं, परंतु जब हमें अभिमान हो जाता है तो हमारे कल्याणके लिये ही तब वे द्वेष करते हैं। द्वेषका उद्देश्य है विनाश। जिससे हमारा द्वेष है, उसका हम विनाश चाहते हैं। चाहे हम कहें नहीं वाणीसे, परंतु द्वेषका अर्थ ही होता है विनाशकी इच्छा। भगवान्‌में विनाशकी इच्छा पैदा होती है। किसके विनाशकी? अभिमानके विनाशकी। भगवान् अभिमानके विनाशकी इच्छा करके कल्याण करते हैं।

द्वापर युगकी बात है, जब भगवान् श्रीकृष्णावतारमें द्वारकामें विराजमान थे। उनकी जितनी पट्टमहिषियाँ थीं, उन सबमें सत्यभामाजी स्वरूप-सौन्दर्यमें ऊँचा स्थान रखती थीं। उनके मनमें इस बातका थोड़ा अभिमान था। सुदर्शनचक्र निरन्तर भगवान्‌के पास रहते थे और कभी भी असफल नहीं हुए थे। उनको जीत सका हो, ऐसा कोई नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनमें भी भगवान्‌की ही शक्ति थी और उसी शक्तिसे सारा कार्य होता था, परंतु उनमें जरा-सा अभिमानका अंकुर आ गया कि हमारे समान बलवान् कौन है? गरुड़जी इच्छागामी हैं। गरुड़की गति थी, जितना मन करे। भगवान्‌ने सोचा कि सत्यभामाजी, चक्रजी और गरुड़जीके अभिमानका निरसन हो जाय ताकि ये जो थोड़ा अलग होने लगे हैं, वैसा न हो। अभिमान भगवान्‌से अलग कर देता है। मैं विद्वान्, मैं भक्त, मैं ज्ञानी—ऐसी सोच आ जाती है। भक्त और ज्ञानीका अभिमान भगवान्‌पर प्रभाव डाल देता है। इसलिये वे अपनेको तुच्छातितुच्छ मानते हैं। ज्ञानी अपनेको कुछ मानता ही नहीं है और भक्त अपनेको तुच्छातितुच्छ मानता है, जिससे अभिमान न आने पाये। ज्ञानाभिमान नीचे गिराता है।

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥

(रा०च०मा० ७।१३।३)

वेदोंने कहा कि हमने उन ज्ञानाभिमानियोंको गिरते हुए देखा है, जो बड़ा अभिमान करते हैं।

भगवान्‌ने कृपा की और कहा—मुझे हनुमान्‌से मिले बहुत समय हो गया है। हनुमान् रहते हैं गन्धमादनपर्वतपर। कोई जाकर हनुमान्‌को ले आये। परंतु हनुमान् बिना रामके आयेंगे नहीं। उन्हें तो कृष्णसे कोई मतलब ही नहीं है। इसलिये मैं राम बन जाता हूँ और सत्यभामासे कहा कि आप सीता बन जाओ। चक्रसे कहा कि हनुमान्‌को बुलाना है और हम रामरूपमें बैठते हैं तो दूसरा कोई आ जाय तो ठीक नहीं है, इसलिये आप बाहर बैठ जाइये और बिना मेरी आज्ञाके किसीको आने मत देना। और गरुड़से कहा कि आप जाकर तुरंत उनको अपनी पीठपर बैठाकर ले आओ। व्यवस्था हो गयी। चक्रजी पहरेपर बैठ गये। भगवान् श्रीकृष्ण रामके रूपमें हो गये, सत्यभामाजीने सीताजीका रूप धारण किया और गरुड़जी हनुमान्‌जीको ले आने गन्धमादनपर्वतपर गये। वहाँ जाकर उन्होंने हनुमान्‌जीसे कहा—महाराज! भगवान् राम द्वारकामें इस समय उपस्थित हैं और आपको याद कर रहे हैं। हनुमान्‌जीने कहा—मुझे याद कर रहे हैं? उन्होंने कहा—'हाँ'। 'आप चलिये, मैं तुरंत आया।' हनुमान्‌जीने उत्तर दिया। गरुड़जीने कहा—विलम्ब हो जायगा। आप मेरी पीठपर बैठ जाइये, मैं शीघ्र वहाँ पहुँचा दूँगा। तब हनुमान्‌जीने कहा—अभी तो मैं रामजीका जप कर रहा हूँ। यह मेरी नित्य-सेवा पूरी हो जायगी, तब मैं तुरंत आ जाऊँगा। इसके बाद गरुड़जी जिद करने लगे कि 'नहीं महाराज! आपको देर हो जायगी, मैं तुरंत पहुँचा दूँगा।' फिर हनुमान्‌जीने सोचा कि यह तो मेरे नित्यकर्ममें बाधा पहुँचा रहा है और विलम्ब कर रहा है, तब उन्होंने गरुड़जीको उठाकर फेंका और वे दूर समुद्रमें जा गिरे। तब हनुमान्‌जी जप करनेके बाद गये और गरुड़के पहुँचनेके पूर्व ही वहाँ जा पहुँचे। वहाँ द्वारपर चक्र मिल गये। उन्होंने हनुमान्‌जीको रोका। हनुमान्‌जीने कहा—भाई! तुम क्यों रोक रहे हो? आजतक भगवान् रामके दरबारमें हनुमान्‌को कोई नहीं रोक सका। यदि भगवान् श्रीराम अन्दर हों तो हनुमान्‌के लिये कोई निषेधाज्ञा हो, हनुमान्‌को पूछना पड़े—यह कभी हुआ नहीं और हो सकता नहीं। सुदर्शन चक्रने कहा—आप बिना आज्ञाके जा नहीं सकते हैं—ऐसा मुझे निर्देश है। तब हनुमान्‌जीने चक्रको उठाकर बगलमें दबा लिया और अन्दर प्रवेश किया। वहाँ भगवान् रामको देखकर हनुमान्‌ने उन्हें प्रणाम किया, परंतु सीताजीको प्रणाम नहीं किया। उन्होंने सीताजीकी ओर देखा, लेकिन उन्हें ठीक प्रतीत नहीं हुआ, तब वे भगवान् श्रीरामसे बोले—भगवन्! जगज्जननी सीता माता कहाँ हैं? उन्होंने कहा—ये पार्श्वमें हैं न! हनुमान्‌जीने कहा—ये तो कोई और ही प्रतीत हो रही हैं। माता सीता कहाँ हैं? इसपर सत्यभामाजी हतप्रभ हो गयीं। उनका मान उतर गया। फिर भगवान् रामने पूछा कि बाहर एक पहरेदार था, उसने आपको रोका नहीं? हनुमान्‌जीने कहा—महाराज! वह बड़ा उद्दण्ड है। उसने मुझे आपके चरणोंमें आनेसे रोका तो मैंने उसे पकड़कर बगलमें दबा लिया। चक्रजी सुन रहे थे। उनका भी मान उतर गया। फिर भगवान्‌ने कहा—वह गरुड़ कहाँ है, जो आपको बुलाने गया था? हनुमान्‌जीने कहा—भगवन्! मैं आपका स्मरण कर रहा था। उसने मेरे स्मरणमें बाधा की तो मैंने उठाकर फेंक दिया। कहीं आता होगा। इतनेमें गरुड़जी पहुँच गये। गरुड़जीने देखा, ये तो पहले ही पहुँच गये हैं। मैं इतने शीघ्र आया फिर भी ये पहले पहुँच गये। गरुड़जीने कहा—महाराज! मुझसे गलती हो गयी। उनका भी मान उतर गया। [**क्रमशः**]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहस्थोंके लिये गुरु श्रीअर्जुनदेवजीके उपदेश

(श्रीमाधवदासजी ममतानी)

श्रीगुरु अर्जुनदेव महाराज हमेशा सिक्खोंको ज्ञानचर्चा करके सन्मार्गसे जोड़ते थे। गुरुजी शिष्योंको समझाते थे कि हमेशा सचकी कमाई करो। कमाईमें किसी भी तरहकी चोरी, मिलावट नहीं करनी चाहिये, तभी वह कमाई फलीभूत होती है। हमेशा कमाईका दसवाँ हिस्सा नेकी, परोपकार और धर्मके कार्योंमें लगाना चाहिये। दान-पुण्य करना गृहस्थका सबसे बड़ा धर्म है।

एक दिन श्रीगुरु अर्जुनदेवजीके पास बहोडू नामका सुनार आया, दर्शनकर माथा टेककर गुरुजीके सामने खड़ा रहा। गुरुजीने पूछा 'बहोडू! सच बताओ, तुम क्या काम करते हो?' बहोडूने कहा—गुरुजी! मैं सुनारका काम करके आजीविका चलाता हूँ, गुरुजीने कहा—कार्य चाहे कोई भी हो, वह छल-कपट रहित एवं ईमानदारीका होना चाहिये, पराया हक न खाकर धर्मकी कमाईमेंसे जो प्रभु-निमित्त कुछ देकर खाता है, उसका मन निर्मल हो जाता है। गुरुजीके ये वचन सुनकर भाई बहोडूकी आँखोंमें आँसू आ गये और उसने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज! मैं हमेशा पापकर्म करता हूँ और कितने ही लोगोंको विश्वास देकर मैंने लूटा है। मुझे धर्म-अधर्मकी सूझ नहीं पड़ी, मैं पापी हूँ, अपराधी हूँ, सदा ही पापकी कमाई खाता हूँ। गरीबनिवाज! आप पतितोंका उद्धार करनेवाले हैं, मैं आपकी शरणमें आया हूँ, कृपया मेरा भी उद्धार कीजिये।'

बहोडूकी सच्ची बात सुनकर गुरुजीने कहा, 'पापकी कमाई करके तुम जो धन एकत्र कर रहे हो, अन्तमें सहायक नहीं होगा, परंतु तुम जो पाप-पुण्यके कर्म करते हो, वह तुम्हारे साथ अवश्य जायेंगे। बुरे कर्मोंका फल तुम्हें अधिक दुःख भोगना पड़ेगा। गुरबाणी भी यही फरमाती है—

मंदा चंगा आपणा आपे ही कीता पावणा।
हुकुम कीए मन भावदे राहि भीड़ै अगै जावणा॥
नंगा दोजकि चालिआ ता दिसै खरा डरावणा।
करि अउगणि पछोतावणा॥

(श्रीगुरुग्रन्थसाहिब ४७१)

—इसलिये सतनामका सिमरन दिन-रात करो, दुनियाके पदार्थोंका मोह त्याग करो, सत्संग किया करो और धर्मकी उपजीविका करके जीवन व्यतीत करो।

गुरुजीके मधुर वचन सुनकर भाई बहोडू वहीं गुरुजीके समक्ष रहकर तन-मनसे गुरुजीकी सेवामें लग गया। कुछ समयके उपरान्त गुरुजीने बहोडूसे कहा—'अभी तुम अपने घर चले जाओ और सत्संग एवं सतनामका जप किया करो।'

भाई बहोडूने विनती की कि 'महाराज! अब मैं कौन-सा रोजगार अपनाऊँ, जिससे मुझे कोई पाप न लगे?' गुरु महाराजने कहा कि तुम पिता-पुरखोंके दिये सुनारके काममें ही जुड़े रहो, पर उसमें जो चोरी एवं मिलावट करते थे, उसे छोड़ देना और नेक कमाईसे भूखे-प्यासोंको अन्न-जल देना, सुख-दुःखमें—परमात्माकी रजामें राजी होकर हमेशा अहंकाररहित एवं नम्रतामें रहना।

इस तरह सद्गुरु अर्जुनदेव महाराजजीसे नामदानकी बख्शीश और नेक कमाई एवं सत्-व्यवहारका उपदेश प्राप्तकर भाई बहोडू अपने घर गया। वह हमेशा गुरुके प्रेममें मग्न रहकर जीवन व्यतीत करने लगा और गुरुके बताये मार्गपर चलकर ईमानदारीकी कमाई, सत्-व्यवहार एवं दान-पुण्य करने लगा।

गुरुजीने बताया है कि गृहस्थका सबसे बड़ा धर्म है—दान-पुण्य करना। जो दान-पुण्य करते हैं, उन्हें अगले जन्ममें भी स्वस्थ शरीर, सुशील स्त्री, आज्ञाकारी पुत्र और अन्न-धनकी प्राप्ति होती है।

इसके अलावा गुरुजीने शिष्यों (सिक्खों)-को सुख देनेवाले पाँच श्रेष्ठ गुण बताये हैं—**मीठा बोलना, नम्रतासे चलना, बाँटकर खाना, धर्मकी कमाई करके निर्वाह करना और सबसे प्रेमसे मिलना।** इन गुणोंको जीवनमें धारण करनेसे कल्याण होगा।

इस तरह गुरुजीने अपने जीवनकालमें लोगोंको सत्यमार्ग एवं नेक कमाईका रास्ता दिखाकर परमात्मासे जोड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

[मुक्ति स्वतः हो रही है]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

जीवमात्र सुख चाहता है। सुख भी ऐसा, जिसमें किसी प्रकारकी कमी न रहे और जिसका कभी नाश न हो। अर्थात् वह अक्षय और अनन्त सुख चाहता है। इसीका नाम तो 'मुक्ति' है अर्थात् दुःखोंका अत्यन्त अभाव हो जाना और आनन्दकी प्राप्ति हो जाना ही मुक्ति है। भगवद्गीतामें छठे अध्यायका बाईसवाँ श्लोक बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इस बातकी कसौटी कसनेके लिये इस श्लोकको पहला स्थान दे दिया जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

जिस लाभके प्राप्त होनेके बाद फिर और कोई लाभ हो सकता है, ऐसा उसके (लाभ प्राप्त होनेवालेके) माननेमें भी नहीं आ सकता। जिसमें स्थित होनेपर वह बड़े भारी दुःखसे भी विचलित नहीं किया जा सकता अर्थात् किसी कारणसे शरीरके टुकड़े किये जायँ, शरीर दो पहाड़ोंके बीचमें आ जाय—ऐसी स्थितिमें भी उसकी जो शान्ति है अथवा उसका जो आनन्द है, उसमें कभी भी कमी नहीं आती। तात्पर्य यह है कि उसको दुःखका स्पर्श ही नहीं होता, ऐसा बड़ा भारी लाभ हो जाता है। दुःखोंसे, कर्मोंसे, जन्म-मरणसे मुक्त हो जाना, छूट जाना—यह जो 'मुक्ति' कहलाती है, यह तो बड़ी सीधी और सरल बात है। शास्त्रोंमें दोनों तरहकी बातें आती हैं—कठिनताकी बात भी आती है और सुगमताकी बात भी। गीतामें कहा गया है कि परमात्मतत्त्व कड़ी सुगमतासे प्राप्त किया जा सकता है—**'सुसुखं कर्तुम्'**। वह अविनाशी है, प्राप्त होनेके बाद फिर उसका विनाश होता ही नहीं।

ऐसी सुगम बात क्या है? जो संसार आज अपना दिखता है; शरीर, कुटुम्ब, धन-सम्पत्ति, मकान-जमीन आदि अपने दिखते हैं, ये सब पहले अपने साथ थे नहीं और बादमें अपने साथ रहेंगे नहीं तो जो सदा अपने साथ नहीं रहेंगे, बस, केवल उनको अपना नहीं मानना है—यह कितनी सुगम बात है। गीतामें बन्धनसे छूटे हुए गुणातीत पुरुषोंके लक्षणोंमें आया है—

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥

(१४।२४-२५)

गुणातीत पुरुषकी सुख-दुःखमें भी समता रहती है। उसके अन्तःकरणमें हानि-लाभमें भी समता रहती है। निन्दा-स्तुतिमें भी समता रहती है; क्योंकि वह स्वतः अपने स्वरूपमें स्थित है।

जिन रुपयोंमें अपनापन नहीं है, जिन मकान-जमीनमें अपनापन नहीं है, जिन कुटुम्बियोंमें अपनापन नहीं है, उनके बनने-बिगड़नेका असर अपने ऊपर नहीं पड़ता। संसारमें अरबों आदमी हैं, पर उनके जीने-मरनेका हमपर कोई असर नहीं पड़ता। हम सुन लेते हैं कि किसी स्थानपर इतने आदमी मर गये, बस हम राम-राम-राम—ऐसा कह देते हैं, पर हृदयपर इतनी चोट नहीं पहुँचती। कोई अनजान व्यक्ति धनी हो जाय तो उससे कोई हर्ष भी नहीं होता। उनके सुख-दुःख, हानि-लाभमें हमारी समता है। यों तो संसारके बहुत-से धनसे, मकानोंसे, कुटुम्बियोंसे हम मुक्त हैं ही। थोड़े-से रुपयों, थोड़ी-सी जमीन और थोड़े-से मनुष्योंमें ही अपना माननेके कारण हम बँधे हुए हैं। ज्यादा मुक्ति तो हो चुकी। बस, थोड़ी-सी मुक्ति बाकी है।

अब हिम्मत करके इनसे भी मुक्ति कर लें। इनसे मुक्ति करनेमें कोई कठिनता भी नहीं है; क्योंकि धन, मकान, कुटुम्ब पहले अपने थे नहीं और बादमें अपने रहेंगे नहीं। परंतु इनके प्रति हमारी जो यह भावना रहती है कि ये बने रहें—यही बन्धन है। 'ये बने रहें' यह भावना आजतक किसीकी सिद्ध नहीं हुई; क्योंकि सदाके लिये किसीके साथमें पदार्थ और व्यक्ति नहीं रहते। हम भी यह जानते हैं कि ये हमारे साथ नहीं रहेंगे, फिर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावना यह रहती है कि ये हमारे साथ बने रहें। जो पहले थे नहीं और बादमें रहेंगे नहीं, उनके रहने और न रहनेमें हम अपना आग्रह छोड़ दें तो क्या बिगड़ जायगा? दुनियाके अन्य व्यक्तियों और वस्तुओंसे हम मुक्त हैं, छूटे हुए हैं, हमें उनका बन्धन नहीं है। यदि थोड़ी-सी वस्तुओंको भी बहुतके साथ मिला दें अर्थात् इनसे आसक्ति उठा दें तो हम अभी मुक्त हो जायँ। वैसे विचारपूर्वक देखा जाय तो हम मुक्त हो ही रहे हैं, प्रतिदिन छूट ही रहे हैं। जिस समय हम पैदा हुए थे, उस समय हमारी जितनी आयु थी, अब उतनी नहीं है। जीवनके बहुत-से दिन कम हो गये, मृत्यु समीप आ गयी है। छूटनेका दिन समीप आ रहा है। वह दिन आये, उससे पहले ही हम मनसे इन्हें छोड़ दें तो निहाल हो जायँगे।

अपने माने हुए प्राणी-पदार्थोंका वियोग अवश्यम्भावी है। वियोग होगा, होगा ही नहीं, वियोग तो प्रतिक्षण हो रहा है। जैसे जिस घरमें आप रह रहे हैं और आयुके हिसाबसे मान लें आपको साठ वर्ष रहना है, जब तीस वर्ष बीत चुके हैं तो अब आप उस घरमें साठ वर्ष तो नहीं रहेंगे। अब तीस वर्ष तो पूरे हो ही गये और शेष तीस वर्ष ही रह जायँगे। इनमें जो वर्ष बीते हैं, वे भी एक-एक दिन करके बीते हैं। हम रह रहे हैं, हम जीवित हैं, जी रहे हैं—इस ओर वृत्ति रहनेसे हम मर रहे हैं, यह बात सच्ची होते हुए भी मानना बुरा लगता है। परंतु बुरा लगे तो क्या करें? बात तो सच्ची और पक्की है; क्योंकि साठ वर्ष जीनेवाला मनुष्य है और वह चालीस वर्षका हो गया तो वह आगे साठ वर्ष जीयेगा क्या? अब तो उसके जीवनके बीस वर्ष ही रहे। इन वर्षोंमें भी दिन-प्रतिदिन उसकी आयु समाप्त हो रही है।

यह शरीर तो दिन-प्रतिदिन जा रहा है, मर रहा है। एक दिन ऐसा होगा कि लोग कहेंगे—यह आज मर गया; तो वह आज नहीं मरा है, प्रत्युत जिस दिन जन्मा था, उसी दिनसे मरना आरम्भ हो गया था। मरते-मरते उसका मरना आज पूरा हो गया। जैसे वह चला गया, ऐसे ही सभी जानेवाले हैं। आप अपनी ओरसे जानेवालोंका साथ छोड़ दें। साथ छोड़नेका अर्थ यह है कि 'ये हमारे साथ सदा बने रहें' यह भावना हटा दें। यह आग्रह, यह भावना छोड़ दें पर वे साथ भी रहेंगे तो क्या हानि है? ज्यादा चाहनेसे अधिक दिन रह जायँगे और न चाहनेसे थोड़े दिन रहेंगे, चले जायेंगे, ऐसी बात तो है नहीं। जितने दिन रहना है, जितनी आयु है, उतने दिन तो वे रहेंगे ही। पर मनमें इच्छा है कि ये अधिक दिन बने रहें। ऐसी स्थितिमें वे चले जायेंगे तो मनको बड़ा संताप होगा। इसलिये इनको हम मनसे पहले ही छोड़ दें तो ये चले जायँ तो मौज और रहें तो मौज; क्योंकि हम पहलेसे ही यह जानते थे कि ये चले जायेंगे। तो यह ज्ञान दृढ़तासे मान लें कि इनका वियोग अवश्यम्भावी है, होनेवाला ही है। ऐसा सोच लेनेसे बड़ी शान्ति होती है, यह हमारा-आपका—सबका अनुभव है।

सूर्योदय होता है तो सब लोग अपने-अपने काममें लग जाते हैं, प्रकाश हो जाता है, सब कुछ दिखने लग जाता है, पर जब सूर्यास्त हो जाता है तब रात हो जाती है। सब काम-धन्धे बन्द हो जाते हैं। दिखना बन्द हो जाता है। अँधेरा हो जाता है, ऐसा होनेपर भी कोई रोता नहीं, किंतु जब कोई घरका खास आदमी मर जाता है तब कहते हैं कि 'क्या करें हमारे घर तो अँधेरा हो गया।' अरे! एक आदमीके मरनेपर एक ही घरमें अँधेरा हो गया, यह तो दिखता है; पर सूर्यास्त होनेपर सारी दुनियामें अँधेरा हो गया, यह नहीं दिखता। कारण क्या है? कारण यही है कि सूर्य उगता है तो भावना यह रहती है कि समयपर सूर्यास्त होगा। इसलिये सूर्यके रहते-रहते घरका, खेतका काम जल्दी कर लो। 'यह अवश्य ही अस्त हो जायगा'—मनमें पहलेसे ही यह भावना रहनेके कारण सूर्यास्त होनेपर, अँधेरा होनेपर संताप नहीं होता। प्रत्युत अँधेरा होनेपर हम यही कहते हैं कि दियासलाई लाओ भैया! मोमबत्ती लाओ, प्रकाश करो, बिजली जलाओ आदि प्रकाशके साधन करते हैं, पर रोते तो नहीं। क्यों नहीं रोते? मनमें दृढ़ भावना रहती है कि यह तो होनेवाला ही था। इसलिये सन्तोंने कहा है कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उगा सो ही आँथवे फूला तो कुम्हलाय।
चिण्या देवल ढह पड़े जाया सो मर जाय॥

दुनियामें बड़े-बड़े वृक्ष हैं, वे गिर पड़ते हैं और जो जन्मा है, वह मरता है तो मरनेमें कौन-सी नयी बात हो गयी? परंतु उससे आशा करना, यह दुःखका कारण है। जवान लड़केके मरनेपर बूढ़ी-बूढ़ी माइयाँ रोती हैं और कहती हैं कि हमने ऐसा नहीं जाना था कि यह 'गलनी माटी' का है। गलनेवाली मिट्टी—छिन्न-भिन्न होनेवाली मिट्टी नहीं रहेगी अर्थात् हमारे सामने यह बालक चला जायगा, ऐसा हमने नहीं समझा था। हमने ऐसा नहीं जाना था कि जवान बेटा चला जायगा। समझा नहीं था तो भूल समझकी ही हुई, जानेवालेकी तो भूल नहीं हुई है? वह तो अपने समयपर गया है।

मैंने भी अपने कानोंसे गाँवमें लोगोंको कहते सुना है—'महाराज! गलनी माटीका था!' तो पक्की माटीका कौन है? सब-के-सब तो गलनी माटीके ही हैं। ये कबतक रहेंगे? इनके रहनेका कोई भरोसा नहीं है, पर जानेकी बात अवश्य है, ये जायँगे अवश्य, रहेंगे नहीं। इसलिये सबके साथ उत्तम-से-उत्तम और बढ़िया-से-बढ़िया बर्ताव करो—

'सबसे हिलमिल चालिये नदी नाव संयोग।'

जैसे नदीके उस पार जाना है तो उसे पार करनेके लिये नावमें कई लोग बैठें; परंतु पार उतरनेके बाद सब अपना-अपना रास्ता लेते हैं; इसी प्रकार हमलोग भी इस घरमें आकर बैठ गये हैं और फिर समय होनेपर सब अपना-अपना रास्ता लेंगे—यह सब 'नदी-नाव-संयोग' है, इसलिये ***'सबसे हिलमिल चालिये।'*** सबसे अच्छा-से-अच्छा, उत्तम-से-उत्तम बर्ताव करो। यहाँ रहनेका कोई भरोसा नहीं है, यहाँसे जानेकी बात पक्की है। रहनेकी बात कच्ची होनेपर भी हमने कच्चीको पक्की और पक्कीको कच्ची मान लिया। इसीसे रोना पड़ता है। यह भूल तो अपनी ही की हुई है। इसलिये पहलेसे समझ लो कि यह नेह-सनेह टूटनेका है, यह रहनेका है ही नहीं। यह याद रखो कि यह मृत्युलोक है, मरनेवालोंका लोक है। यह मरणधर्माओंका संसार है। इसमें सब-के-सब मरनेवाले ही रहते हैं। कोई भी रहनेवाला नहीं रहता। फिर आप कहाँ रह जायँगे और कैसे रह जायँगे? यहाँ तो सब-के-सब जानेवाले ही हैं। इस बातको, इस भावको दृढ़तासे हृदयमें धारण कर लो और सबसे अच्छे-से-अच्छा बर्ताव करो। क्यों किसीसे बुरा बर्ताव करोगे? थोड़े दिन रहना है, इसलिये उत्तम बर्ताव करो, श्रेष्ठ बर्ताव करो। [क्रमशः]

'ओ आनेवालो इतना समझ लो'

(सन्त श्रीपथिकजी महाराज)

ओ आनेवालो इतना समझ लो, इस जग से तुमको जाना ही होगा।
यदि रह गयी हैं कुछ वासनाएँ, उनके लिये फिर आना ही होगा॥
जबतक किसी पर अधिकार रखकर, जितना अधिक सुख तुम भोगते हो।
मानो न मानो जीवन में अपने, पुण्यों की पूँजी गँवाना ही होगा॥
दानाधिकारी बनकर किसी से, श्रद्धा के बाहर यदि धन लिया है।
तुम लेके देना भूलो भले ही, जो ऋण लिया वह चुकाना ही होगा॥
जिससे किसी को दुःख हो रहा हो, ऐसा असत् कर्म होने न पाये।
सुख के लिये जो दुःख दे किसी को, उसको कभी दुःख उठाना ही होगा॥
तुम दूसरों को वह देते रहना, जो दूसरों से स्वयं चाहते हो।
जैसा भी दोगे वैसा प्रकृति से, कई गुना तुमको पाना ही होगा॥
कुछ जानना है तो अपने को जानो, मानना है तो प्रभु को ही मानो।
करना है तो सबकी सेवा करो तुम, जीवन किसी विधि बिताना ही होगा॥
छोड़ो अहंता ममता जगत की, परमात्मा से ही प्रीति जोड़ो।
देखो पथिक तुम जिनकी शरण हो, उन पर ही विश्वास लाना ही होगा॥

[प्रेषक—श्रीमहेशचन्द्रजी]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रवाद

[अनश्वर परमेश्वरका अनश्वर-संविधान]

(श्रद्धेय पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

[गताङ्क १० पृ०-सं० ३३ से आगे]

संसारमें मनुष्यकी जो आसक्ति (स्नेह) है, वही समस्त अनर्थोंका मूल है, बाहरसे मनुष्य संसारका संसर्ग छोड़ भी दे, किंतु मनमें आसक्ति बनी रहे तो ऐसे त्यागसे विशेष लाभ नहीं हो सकता। पक्षान्तरमें मनकी आसक्ति नष्ट हो चुकनेपर बाहरसे राजा जनक आदिकी तरह सबके प्रति ममता और आसक्तिरहित संसर्ग रहनेपर भी कोई हानि नहीं है। ऐसा आसक्तिका त्यागी ही वस्तुतः सच्चा संगविवर्जित है। गीताके दूसरे अध्यायके सत्तावनवें श्लोकमें भी यही बात कही गयी है। अतः **संगविवर्जितः**का जो अर्थ किया गया है, वही ठीक मालूम होता है।

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥

(गीता १२। १९)

जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला, मननशील और जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें सदा ही सन्तुष्ट है और रहनेके स्थानमें ममता और आसक्तिसे रहित है—वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है।

भगवान्‌के भक्तका अपने नाम और शरीरमें किंचित् मात्र भी अभिमान या ममत्व नहीं रहता, इसलिये न तो उसको स्तुतिसे हर्ष होता है और न निन्दासे किसी प्रकारका शोक ही होता है। उसका दोनोंमें ही समभाव रहता है। सर्वत्र भगवद्‌बुद्धि हो जानेके कारण स्तुति करनेवालों और निन्दा करनेवालोंमें भी उसकी जरा भी भेद-बुद्धि नहीं होती। यही उसका निन्दा-स्तुतिको समान समझना है।

मौनीका अर्थ है—मनुष्य केवल वाणीसे ही नहीं बोलता, मनसे भी बोलता रहता है। विषयोंका अनवरत चिन्तन ही मनका निरन्तर बोलना है। भक्तचित्त भगवान्‌में इतना संलग्न हो जाता है कि उसमें भगवान्‌के सिवा दूसरेकी स्मृति ही नहीं होती, वह सदा-सर्वदा भगवान्‌के ही मननमें लगा रहता है। यही वास्तविक मौन है। बोलना बन्द कर दिया जाय और मनसे विषयोंका चिन्तन होता रहे—ऐसा मौन बाह्य मौन है। मनको निर्विषय करने तथा वाणीको परिशुद्ध और संयमी बनानेके उद्देश्यसे किया जानेवाला बाह्य मौन भी लाभदायक होता है, परंतु यहाँ भगवान्‌के प्रिय भक्तके लक्षणोंका वर्णन है। उसकी वाणी तो स्वाभाविक ही परिशुद्ध और संयमी है। इससे ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उसमें केवल वाणीका ही मौन है। बल्कि उस भक्तकी वाणीसे तो प्रायः निरन्तर भगवान्‌के नाम और गुणोंका कीर्तन ही हुआ करता है, जिससे जगत्‌का परम उपकार होता है। इसके सिवा भगवान् अपनी भक्तिका प्रचार भी भक्तोंद्वारा ही कराया करते हैं। अठारहवें अध्यायके अड़सठवें और उनहत्तरवें श्लोकोंमें भगवान्‌ने गीताके प्रचार करनेवालेको अपना सबसे प्रिय कार्य करनेवाला कहा है, यह महत्कार्य वाणीके मौनीसे नहीं हो सकता। इसके सिवा सत्रहवें अध्यायके सोलहवें श्लोकमें मानसिक तपके लक्षणोंमें भी मौन शब्द आया है। यदि भगवान्‌को मौन शब्दका अर्थ वाणीका मौन अभीष्ट होता तो वे उसे वाणीके तपके प्रसंगमें कहते, परंतु ऐसा नहीं किया, इससे भी यही सिद्ध है कि मुनि-भावका नाम ही मौन है और यह मुनि-भाव जिसमें होता है, वही मौनी या मननशील है। वाणीका मौन मनुष्य हठसे भी कर सकता है। इससे यह कोई विशेष महत्त्वकी बात भी नहीं है। इससे यहाँ मौन शब्दका अर्थ वाणीका मौन न मानकर मनकी मननशीलता ही मानना उचित है। वाणीका संयम तो इसके अन्तर्गत स्वयं ही आ जाता है।

यहाँपर **'येन केनचित् सन्तुष्टः'** का अभिप्राय है, जो भक्त अनन्यभावसे भगवान्‌के चिन्तनमें लगा रहता है, दूसरे किसी भावका जिसके चित्तमें स्फुरण ही नहीं होता, उसके द्वारा शरीर-निर्वाहके लिये किसी चेष्टाका न होना और उसके लौकिक योगक्षेमका भी भगवान्‌के द्वारा ही वहन किया जाना सर्वथा सिद्ध और सुसंगत ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, परंतु यहाँ **'येन केनचित् सन्तुष्टः'** से निष्काम भाव से वर्णाश्रमानुकूल शरीर-निर्वाहके उपयुक्त न्यायसंगत चेष्टा करनेका निषेध नहीं है। ऐसी चेष्टा करनेपर प्रारब्धके अनुसार जो कुछ भी प्राप्त हो जाता है, भक्त उसीमें सन्तुष्ट रहता है। **'येन केनचित् सन्तुष्टः'** का यही भाव है। वस्तुतः भगवान्के भक्तका सांसारिक वस्तुओंके प्राप्त होने और नष्ट हो जानेसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता। वह तो अपने परम इष्ट भगवान्को पाकर सदा ही सन्तुष्ट रहता है। अतः यहाँ **'येन केनचित् सन्तुष्टः'** का यही अभिप्राय मालूम होता है कि बाहरी वस्तुओंके आने-जानेसे उसकी तुष्टिमें किसी प्रकारका अन्तर नहीं पड़ता। प्रारब्धानुसार सुख-दुःखादिके हेतुभूत जो कुछ भी पदार्थ उसे प्राप्त होते हैं, वह उन्हींमें सन्तुष्ट रहता है।

'अनिकेतः' पद का अर्थ है कि जिसके पास अपना घर न हो, वह अनिकेत है। भगवान्के लिये जो संन्यासी ज्ञानी भक्त गृहस्थ-आश्रमको छोड़कर पूर्णरूपसे मकान आदिका त्याग कर चुके हैं, जिनको किसी भी स्थानविशेषमें आसक्ति, ममता अथवा किसी भी प्रकारका स्वत्व नहीं है, वे तो अनिकेत हैं ही, उनके सिवा जो अपना सर्वस्व भगवान्के अर्पण करके सर्वथा अकिंचन बन चुके हैं, जिनके घर, द्वार, शरीर, विद्या-बुद्धि आदि सभी कुछ भगवान्के हो चुके हैं—फिर वे चाहे ब्रह्मचारी हों या गृहस्थ अथवा वानप्रस्थ हों, वे भी अनिकेत ही हैं। जैसे शरीरमें अहंता, ममता और आसक्ति न होनेपर शरीर रहते हुए भी ज्ञानीको विदेह कहा जाता है, वैसे ही जिसकी घरमें ममता और आसक्ति नहीं है, वह घरमें रहते हुए भी बिना घरवाला अनिकेत ही है।

भक्तको स्थिरबुद्धि कहनेका अभिप्राय है। भक्तको भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन हो जाना। भगवान्में उसका दृढ़ विश्वास हो जाता है। उसका निश्चय अटल और निश्चल होता है। अतः वह साधारण मनुष्योंकी भाँति काम, क्रोध, लोभ, मोह या भय आदि विकारोंके वशमें होकर धर्मसे या भगवान्के स्वरूपसे कभी विचलित नहीं होता। इसलिये उसे स्थिरबुद्धि कहा गया है। स्थिरबुद्धि शब्दका विशेष अभिप्राय समझनेके लिये दूसरे अध्यायके पचपनवेंसे बहत्तरवें श्लोकतककी व्याख्या देखनी चाहिये।

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥
(१४।२४)

जो निरन्तर आत्मभावमें स्थित, सुख-दुःखको समान समझनेवाला, मिट्टी, पत्थर और स्वर्णमें समान भाववाला, ज्ञानी, प्रिय तथा अप्रियको एक-सा माननेवाला और अपनी निन्दा-स्तुतिमें समान भाववाला है।

'स्वस्थः' पदका अभिप्राय यहाँपर अपने वास्तविक स्वरूपमें स्थित रहना है। ऐसा स्वस्थ पुरुष ही सुख-दुःखमें सम रह सकता है, यह भाव दिखलानेके लिये यहाँ **'स्वस्थः'** पदका प्रयोग किया गया है। अभिप्राय यह है कि साधारण मनुष्योंकी स्थिति प्रकृतिके कार्यरूप स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीन प्रकारके शरीरमेंसे किसी एकमें रहती है। अतः वे स्वस्थ नहीं हैं, किंतु प्रकृतिस्थ हैं और ऐसे पुरुष ही प्रकृतिके गुणोंको भोगनेवाले हैं (१३।२१), इसलिये वे सुख-दुःखमें सम नहीं हो सकते। गुणातीत पुरुषका प्रकृति और उसके कार्यसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता, अतएव वह स्वस्थ है—अपने सच्चिदानन्दस्वरूपमें स्थित है। इसलिये शरीर, इन्द्रिय और अन्तःकरणमें सुख तथा दुःखोंका प्रादुर्भाव एवं तिरोभाव होते रहनेपर भी गुणातीत पुरुषका उनसे कुछ भी सम्बन्ध न रहनेके कारण वह उनके द्वारा सुखी-दुःखी नहीं होता, उसकी स्थिति सदा सम ही रहती है। यही उसका सुख-दुःखको समान समझना है।

यहाँपर लोष्ट पदका अर्थ है—गोबर तथा मिट्टीको मिलाकर जो कच्चे घरोंमें लेप किया जाता है, उसमेंसे बचे हुए पिण्ड या लोहेका मैल। यहाँपर अश्मका अभिप्राय पत्थर है। कांचनका अर्थ स्वर्णसे है। इन तीनोंमें जो ग्राह्य और त्याज्य बुद्धिका न होना है, वही समभाव है। इनमें समताका वर्णन करके यह भाव दिखलाया है कि संसारके जितने भी पदार्थ हैं, जिनको लोग, उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणीका समझते हैं—उन सबमें गुणातीतकी समता होती है। उसकी दृष्टिमें सभी पदार्थ मृगतृष्णाके जलकी भाँति मायिक होनेके कारण किसी भी वस्तुमें उसकी भेदबुद्धि नहीं होती।

'धीर' पदका भाव है ज्ञानी अर्थात् स्थितप्रज्ञ पुरुषको धीर कहते हैं। गुणातीत पुरुष बड़े-से-बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें भी अपनी स्थितिसे विचलित नहीं होता (६। २१-२२)। अतएव उसकी बुद्धि सदा ही स्थिर रहती है।

जो पदार्थ शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धिके अनुकूल हो तथा उनका पोषक, सहायक एवं शान्ति प्रदान करनेवाला हो, वह लोकदृष्टिसे प्रिय कहलाता है और जो पदार्थ उनके प्रतिकूल हो, उनका क्षयकारक, विरोधी एवं ताप पहुँचानेवाला हो, वह लोकदृष्टिसे अप्रिय माना जाता है। ऐसे अनेक प्रकारके पदार्थोंसे और प्राणियोंसे शरीर, इन्द्रिय और अन्तःकरणका सम्बन्ध होनेपर भी जो किसीमें भेदबुद्धिका न होना है—यही उनमें सम रहना है।

गुणातीत पुरुषका अन्तःकरण और इन्द्रियोंके सहित शरीरसे किसी प्रकारका सम्बन्ध न रहनेके कारण उनसे सम्बन्ध रखनेवाले किसी भी पदार्थमें उसका भेदभाव नहीं होता। अभिप्राय यह है कि साधारण मनुष्योंको प्रिय वस्तुके संयोगमें और अप्रियके वियोगमें राग तथा हर्ष एवं अप्रियके संयोगमें और प्रियके वियोगमें द्वेष और शोक होते हैं, किंतु गुणातीतमें ऐसा नहीं होता, वह सदा-सर्वदा राग-द्वेष और हर्ष-शोकसे सर्वथा अतीत रहता है।

किसीके सच्चे या झूठे दोषोंका वर्णन करना निन्दा है। गुणोंका बखान करना स्तुति है—इन दोनोंका सम्बन्ध अधिकतर नामसे और कुछ शरीरसे है। गुणातीत पुरुषका 'शरीर' और उसके नामसे किंचिन्मात्र भी सम्बन्ध न रहनेके कारण उसे निन्दा या स्तुतिके कारण शोक या हर्ष कुछ भी नहीं होता, न तो निन्दा करनेवालेपर उसे क्रोध होता है और न स्तुति करनेवालेपर वह प्रसन्न ही होता है। उसका सदा-सर्वदा एक-सा भाव रहता है। यही उसका उन दोनोंमें सम रहना है।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥

(गीता १३। २७)

जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतोंमें परमेश्वरको नाशरहित और समभावसे स्थिर देखता है, वही यथार्थ देखता है।

बार-बार जन्म लेने और मरनेवाले जितने भी प्राणी हैं। भिन्न-भिन्न सूक्ष्म और स्थूल शरीरोंके संयोग-वियोगसे जिनका जनमना और मरना माना जाता है, उन सबका वाचक यहाँ '**विनश्यत्सु**' और '**सर्वेषु**' इन दोनों विशेषणोंके सहित '**भूतेषु**' पद है। समस्त प्राणियोंका शरीरोंके सम्बन्धसे उनको विनाशशील बतलानेके लिये '**विनश्यत्सु**' विशेषण तथा समस्त प्राणियोंका ग्रहण करनेके लिये उनके साथ '**सर्वेषु**' विशेषण दिया गया है।

यहाँ यह ध्यानमें रखना चाहिये कि विनाश होना शरीरका धर्म है, आत्माका नहीं। आत्मतत्त्व नित्य और अविनाशी है तथा वह शरीरोंके भेदसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होनेवाले समस्त प्राणिसमुदायमें वस्तुतः एक ही है। यही बात इस श्लोकमें दिखलायी गयी है।

यहाँ '**परमेश्वरम्**' पद प्रकृतिसे सर्वथा अतीत उस निर्विकार चेतनतत्त्वका वाचक है, जिसका वर्णन क्षेत्रज्ञके साथ एकता करते हुए इसी अध्यायके बाईसवें श्लोकमें उपद्रष्टा, अनुमन्ता, भर्ता, भोक्ता, महेश्वर और परमात्माके नामसे किया गया है। यह परम पुरुष यद्यपि वस्तुतः शुद्ध सच्चिदानन्दघन है और प्रकृतिसे सर्वथा अतीत है, तो भी प्रकृतिके संगसे इसको क्षेत्रज्ञ और प्रकृतिजन्य गुणोंका भोक्ता कहा जाता है। अतः समस्त प्राणियोंके जितने भी शरीर हैं, जिनके सम्बन्धसे वे विनाशशील कहे जाते हैं, उन समस्त शरीरोंमें उनके वास्तविक स्वरूपभूत एक ही अविनाशी निर्विकार चेतनतत्त्वको जो विनाशशील बादलोंमें आकाशकी भाँति समभावसे स्थित और नित्य देखता है, वही उस परमेश्वरको समस्त प्राणियोंमें विनाशरहित और समभावसे स्थित देखता है।

यहाँ जो देखता है वही यथार्थ देखता है, इस वाक्यसे यहाँ भाव दिखलाया गया है। इस श्लोकमें आत्मतत्त्वको जन्म और मृत्यु आदि समस्त विकारोंसे रहित, निर्विकार एवं सम बतलाया गया है, अतएव इस वाक्यसे यह भाव दिखलाया गया है कि जो इस नित्य चेतन एक आत्मतत्त्वको इस प्रकार निर्विकार, अविनाशी और असंगरूपसे सर्वत्र समभावसे स्थित देखता है—वही यथार्थ देखता है। जो इसे शरीरोंके संगसे जन्म-मरणशील और सुखी-दुखी समझते हैं, उनका देखना यथार्थ देखना नहीं है। अतएव वे देखते हुए भी नहीं देखते। (गीता १३। २८) **[क्रमशः]**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीराधाजीके उद्‌गार

(श्रीराधाबाबा)

[गोलोकवासी श्रद्धेय श्रीराधाबाबा भगवान् श्रीकृष्णके अन्तरंग भक्त थे, उनकी लेखनीसे निःसृत कृतियों— श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन, महाभागा व्रजदेवियाँ, प्रेमसत्संग-सुधामाला एवं जय-जय प्रियतमसे सुधी पाठक परिचित ही हैं। उनकी डॉयरीमें श्रीराधामाधवकी कुछ अन्तरंग प्रणय-लीलाओंका भक्तिभावपूर्ण वर्णन मिलता है, जिसका पूर्ण प्रकाशन तो परमविरक्त अधिकारी भक्तोंके समक्ष ही उचित है। उसीके कुछ भावपूर्ण अंशोंको जनसाधारणके लिये उपयोगी जानकर यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। एक बार श्रीराधाजीने जब श्रीकृष्णसे किसी बातपर लीलावश रूठकर प्रेमके अधिकारसे कुछ कहा तो भगवान् कृष्णने श्रीराधाजीसे मार्मिक वचन कहे—

'कह सकती तू मुझे सभी कुछ मैं तो नित तेरे आधीन। पर न मानना कभी अन्यथा, कभी न कहना निज को दीन॥'

इसपर राधाजी भी प्रेमाश्रुके साथ श्रीकृष्णकी प्रार्थनाकर उन्हें प्रसन्न करनेका प्रयास करने लगी—सम्पादक]

हे हृदयेश्वर! प्राणनाथ! प्राणवल्लभ! जीवनसर्वस्व! प्राणाधार! प्राणरमण! मेरे अनादि अनन्त जीवनके लिये एकमात्र अवलम्बन! मेरे नित्य-निरन्तरके लिये एकमात्र अवलम्बन! देखो—

बरु मरिबौ करि पान, विष पै पिय तुम पै अहो।
सक संदेह-वितान, नीक न सपनहुँ ताननौ॥

अतिशयोक्ति नहीं कर रही हूँ! प्रियतम! तुमपर, तुम्हारी किसी भी बातपर, तुम्हारी किसी चेष्टापर संशय करना, सन्देह करना, शक करना, अश्रद्धा करना— इसकी अपेक्षा तो हालाहल कालकूट विष-पान कर लेना ही कहीं श्रेयस्कर है, तो हे मेरे जीवनसर्वस्व! अपनी जानमें तो मैं तुमपर, तुम्हारी किसी बातपर, तुम्हारी किसी चेष्टापर, स्वप्नमें भी संशय नहीं करती, सन्देह नहीं करती, शक नहीं करती। जाग्रत्‌की तो बात ही क्या है? किंतु कभी-कभी अपना दोष अपनेको पता नहीं लगता, प्राणनाथ! और तुम सर्वज्ञ, सर्वविद्, अन्तरात्मदृक् हो। अतएव यदि तुम्हें कभी भी ऐसी प्रतीति होती हो कि देखो, मेरी नित्यप्रियतमा, नित्य-प्राणाधिका, नित्यप्राणेश्वरी, नित्यप्राणवल्लभा, नित्यनव-निकुंजेश्वरी, नित्यवृन्दावनेश्वरी, नित्यवृषभानुपुत्री, राधा, राधिका मुझपर अमुक प्रश्नको लेकर संशय कर रही है, सन्देह कर रही है, शक कर रही है, अश्रद्धा कर रही है, कभी भी तुम्हें मेरे अन्दर शक, सन्देह, संशय, अश्रद्धाकी छायाकी छायाकी छाया भी दीख जाती हो तो फिर उस परिस्थितिमें मेरा यह कहना है कि तुम्हारा जो मेरे प्रति नित्य, सत्य, संविन्मय, अनन्त, अपरिसीम, असमोर्ध्व, प्रतिक्षण वर्धमान, अविच्छिन्न, सर्वथा अहैतुक प्यार है, प्रीति है, प्रेम है, स्नेह है, मान है, प्रणय है, राग है, अनुराग है, भाव है, अनुग्रह है, अनुकम्पा है, करुणा है, दया है, कृपा है, तुम मुझे अपनी नित्य-महाभावस्वरूपिणी, नित्यप्रियतमा, नित्यप्राणाधिका, नित्यप्राणेश्वरी, नित्यप्राणवल्लभा, नित्यनवनिकुंजेश्वरी, नित्यवृन्दावनेश्वरी, नित्यवृषभानुपुत्री, राधा, राधिकाके रूपमें अनादिकालसे नित्य-निरन्तर अनुभव करते आ रहे हो, इसी रूपमें नित्य निरन्तर देखते आ रहे हो, इसी रूपमें मेरे प्रति ठीक-ठीक ऐसा ही व्यवहार नित्य-निरन्तर करते आ रहे हो, आज इस क्षण इसी रूपमें नित्य-निरन्तर अनुभव कर रहे हो, इसी रूपमें नित्य-निरन्तर देख रहे हो, इसी रूपमें मेरे प्रति ठीक-ठीक ऐसा ही व्यवहार नित्य-निरन्तर कर रहे हो और आगे अनन्तकालतक भी इसी रूपमें नित्य-निरन्तर अनुभव करते रहोगे, ऐसा ही व्यवहार नित्य-निरन्तर करते रहोगे, इसी रूपमें मेरे प्रति ठीक-ठीक इसी सत्यके प्रभावसे, इसी सत्यके प्रवाहमें मेरा वह छिपा हुआ संशय, शक, सन्देह, अश्रद्धा-शक-सन्देह, अश्रद्धाकी छायाकी छाया भी हो तो वह सर्वथा, सर्वांशमें सदाके लिये अनन्त कालतकके लिये, नित्य-निरन्तरके लिये अभी इसी क्षण, अभी इसी क्षण, अभी इसी क्षण विलुप्त हो जाय, विनष्ट हो जाय। उसका कहीं भी, कोई भी, किंचित् मात्र भी अस्तित्व ही न रहे; क्योंकि सम्पूर्ण दुःखोंका, सम्पूर्ण भयका मूल कारण यही है, यही है, यही है प्रियतम। तुमपर, तुम्हारी किसी बातपर, तुम्हारी किसी चेष्टापर संशय करना, शक करना, सन्देह करना, अश्रद्धा करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी बात यह है कि मैं अपनेको दीना क्यों कहूँ प्रियतम! जब तुम नित्य, सत्य, संविन्मयी, अनन्त, अपरिसीम, असमोर्ध्व, अप्रतिम सुन्दर, निस्सीम महिमामयी, अपरिसीम प्रभावमयी, अपरिसीम सामर्थ्यमयी, असंख्य अघटनघटनसामर्थ्यमयी निधि मेरी ही वस्तु हो, मेरी ही अनादि, अनन्तकालीन वस्तु हो, मेरी ही नित्य-निरन्तरकी वस्तु हो, मेरे ही अधीनकी वस्तु हो, मेरे ही अधीनकी वस्तु हो, मेरे ही अधीनकी वस्तु हो, तो फिर मुझ-जैसी सौभाग्यशालिनी त्रिभुवनमें कौन है, प्रियतम! न कोई थी, न कोई है, न कोई होगा और न मुझ सौभाग्यशलिनी-जैसा सौभाग्य किसी पुरुषका ही था, न है, न होगा; क्योंकि तुम नित्य, सत्य, संविन्मयी, अनन्त, अपरिसीम, असमोर्ध्व, अप्रतिम सुन्दर, निस्सीम महिमामयी, अपरिसीम प्रभावमयी, अपरिसीम सामर्थ्यमयी, असंख्य अघटनघटन-सामर्थ्यमयी निधि मेरी ही वस्तु हो, मेरी ही अनादि अनन्तकालीन वस्तु हो, मेरी ही नित्य-निरन्तरकी वस्तु हो, मेरी ही अधीनकी वस्तु हो। कभी महाभावजनित उन्मादके किसी विचित्र आवेशमें मैं तुम्हारे वियोगका अनुभव करके, प्राणोंकी असह्य वेदनाकी आगमें जलती हुई, झुलसती हुई अपनेको दीना कह बैठूँ अथवा इसी महाभावजनित उन्मादके ही किसी विचित्र आवेशमें तुम्हारी इस उक्तिको आधे क्षणके लिये भूलकर अपनेको दीना कह बैठूँ—यह बात दूसरी है। प्रियतम! अन्यथा मैं नित्य-निरन्तर, नित्य-निरन्तर, नित्य-निरन्तर यही अनुभव करती रहती हूँ, यही अनुभव करती रहती हूँ, यही अनुभव करती रहती हूँ और आगे अनन्तकालतक ही नित्य-निरन्तर, नित्य-निरन्तर, नित्य-निरन्तर यही अनुभव करती रहूँगी, यही अनुभव करती रहूँगी, यही अनुभव करती रहूँगी कि मुझ सौभाग्यशालिनी-जैसी त्रिभुवनमें न तो कोई थी, न है, न आगे होगी और न मुझ सौभाग्यशालिनी-जैसा सौभाग्य किसी पुरुषका ही था, न है, न होगा; क्योंकि तुम नित्य, सत्य, संविन्मयी, अनन्त, अपरिसीम, असमोर्ध्व, अप्रतिम, सुन्दर, निस्सीम महिमामयी, अपरिसीम प्रभावमयी, अपरिसीम सामर्थ्यमयी, असंख्य अघटनघटनसामर्थ्यमयी निधि मेरी ही वस्तु हो, मेरी ही अनादि अनन्तकालीन वस्तु हो, मेरी ही नित्य-निरन्तरकी वस्तु हो, मेरे ही अधीन की वस्तु हो। इससे बढ़कर और क्या सौभाग्य होगा प्रियतम!

और फिर कहनेकी बात तो वही है, प्रियतम! जो मैं तुम्हें प्रतिदिन ही कहती हूँ और आज भी वही कहूँगी और मैं परमानन्द-महासागरमें निमग्न होकर नित्य-निरन्तर लहरा रही हूँ—इस बातको जान करके कि तुम मेरी इस प्रार्थनाको सुनकर परम-परम-परम प्रसन्न होते हो, अत्यन्त-अत्यन्त-अत्यन्त उत्फुल्ल होते हो, अनन्त, अपरिसीम, उल्लाससे-उल्लाससे परिपूर्ण हो जाते हो। तुम्हारा नित्य सत्य, संविन्मय, अनन्त, अपरिसीम, असमोर्ध्व, परमानन्द-महासागर, करुणामहासागर उद्वेलित हो उठता है और तुमने मेरी इस प्रार्थनापर ध्यान दे ही दिया, इसका स्पष्ट संकेत तुम स्वयं उस दिन कर गये। अस्तु प्रियतम! मैं इतनी ही भूमिका निर्मित करके पुनः वही प्रार्थना कर रही हूँ; क्योंकि मुझे यह प्रार्थना करनेमें परमानन्दकी अनुभूति होती है और तुम मेरी इस प्रार्थनाको सुनकर परम प्रसन्न होते हो। अतएव मैं प्रार्थना कर रही हूँ और तुम सुनकर प्रसन्न होओ। राधा-राधा-राधा मेरे प्राणनाथ! प्राणवल्लभ! जीवनसर्वस्व! प्राणाधार! प्राणरमण! मेरे अनादि अनन्त जीवनके एकमात्र अवलम्बन! प्रियतम! प्राणाधिक! प्राणेश्वर! प्राणवल्लभ! नित्यनवनिकुंजेश्वर! नित्यवृन्दावनेश्वर! नित्य-वजेन्द्रनन्दन! मैं प्रार्थना कर रही हूँ और तुम सुनकर प्रसन्न होओ जीवनसर्वस्व!

[प्रेषिका—सुश्री शैवालिनी]

राधिकारमण निरवधि जय जय, जय अम्बुजनयन सदा, प्रियतम!
जय सतत नन्दनन्दन जय जय, जय नाथ निरन्तर, हे प्रियतम!
गोपिका-प्राण सर्वदा तथा जय मन्मथमथन अहो, प्रियतम!
चिरकाल विश्वरंजन जय जय, जय कृष्ण अहर्निश, हे प्रियतम॥
जय राधावनकुंजविहारिन्, कुंचितकुंतल-मुरलीधारिन्!
प्राणेश्वरीनयनसृतिकारिन् जय विहारिणीभावविनोदिन्॥

[श्रीराधाबाबाकृत 'जय-जय-प्रियतम' काव्यसे]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधुके लिये एकान्तमें स्त्रीसम्भाषणका निषेध

[श्रीचैतन्यमहाप्रभुके समयकी एक घटना]

(गोलोकवासी सन्त पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य
पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।
संदर्शनं विषयिणामथ योषिताञ्च
हा हन्त! हन्त! विषभक्षणतोऽप्यसाधु॥*

(श्रीचैतन्यचन्द्रोदयना० ८।२४)

सचमुच संसारके आदिसे सभी महापुरुष एक स्वरसे निष्किंचन, भगवद्भक्त अथवा ज्ञाननिष्ठ वैरागीके लिये कामिनी और कांचन—इन दोनों वस्तुओंको विष बताते आये हैं। जो इन दोनोंसे बच गया वह इस अगाध समुद्रके परले पार पहुँच गया और जो इनमें फँस गया वह मँझधारमें डुबकियाँ खाता बिलबिलाता रहा। कबीरदासने क्या ही सुन्दर कहा है—

चलन चलन सब कोइ कहे, बिरला पहुँचे कोय।
एक 'कनक' अरु 'कामिनी' घाटी दुरलभ दोय॥

यथार्थमें इन दो घाटियोंका पार करना अत्यन्त ही कठिन है, इसीलिये महापुरुष स्वयं इनसे पृथक् रहकर अपने अनुयायियोंको कहकर, लिखकर, प्रसन्न होकर, नाराज होकर तथा भाँति-भाँतिसे घुमा-फिराकर इन्हीं दो वस्तुओंसे पृथक् रहनेका उपदेश देते हैं। त्याग और वैराग्यके साकार स्वरूप महाप्रभु चैतन्यदेवजी भी अपने विरक्त भक्तोंको सदा इनसे बचे रहनेका उपदेश करते और स्वयं भी उनपर कड़ी दृष्टि रखते। तभी तो आज त्यागशिरोमणि श्रीगौरका यशसौरभ दिशा-विदिशाओंमें व्याप्त हो रहा है। व्रजभूमिमें असंख्यों स्थान महाप्रभुके अनुयायियोंके त्याग-वैराग्यका अभीतक स्मरण दिला रहे हैं।

महाप्रभुके लीलासहचरोंमें एक थे महात्मा हरिदासजी। हरिदासजी वयोवृद्ध थे और सदा नामजप ही किया करते थे। इनके अतिरिक्त एक-दूसरे कीर्तनिया हरिदास और थे। वे हरिदासजीसे अवस्थामें बहुत छोटे थे, गृहत्यागी थे और महाप्रभुको सदा अपने सुमधुर स्वरसे संकीर्तन सुनाया करते थे। भक्तोंमें वे 'छोटे हरिदास' के नामसे प्रसिद्ध थे। वे पुरीमें ही प्रभुके पास रहकर भजन-संकीर्तन किया करते थे।

प्रभुके समीप बहुत-से विरक्त भक्त पृथक्-पृथक् स्थानोंमें रहते थे। वे सभी भक्तिके कारण कभी-कभी प्रभुको अपने स्थानपर बुलाकर भिक्षा कराया करते थे। भक्तवत्सल गौर उनकी प्रसन्नताके निमित्त उनके यहाँ चले आते थे और उनके भोजनकी प्रशंसा करते हुए भिक्षा भी पा लेते थे। वहींपर भगवानाचार्य नामके एक विरक्त पण्डित निवास करते थे। वे बीच-बीचमें कभी-कभी प्रभुका निमन्त्रण करके उन्हें भिक्षा कराया करते थे।

जगन्नाथजीमें बने-बनाये पदार्थोंका भोग लगता है और भगवान्‌के महाप्रसादको दूकानदार बेचते भी हैं। किंतु जो चावल बिना सिद्ध किये कच्चे ही भगवान्‌को अर्पण किये जाते हैं, उन्हें 'प्रसादी' या 'अमानी' अन्न कहते हैं, उसका घरपर ही लोग भात बना लेते हैं। भगवान्‌जीने घरपर ही प्रभुके लिये भात बनानेका निश्चत किया।

उन दिनों शिखि माहिती श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें हिसाब-किताब लिखनेका काम करते थे, उनके मुरारी नामका एक छोटा भाई और माधवी नामकी एक बहन थी। दक्षिणकी यात्रासे लौटनेपर सार्वभौम भट्टाचार्यने इन तीनों भाई-बहनोंका प्रभुसे परिचय कराया था। ये तीनों ही श्रीकृष्णभक्त थे और परस्पर बड़ा ही स्नेह रखते थे। माधवी दासी परम तपस्विनी और सदाचारिणी थी। इन

* महाप्रभु चैतन्यदेव सार्वभौम भट्टाचार्यसे कहते हैं—खेदके साथ कहना पड़ता है कि जो लोग इस असार संसाररूपी समुद्रके उसपार जाना चाहते हैं और जिनका भगवान्‌के भजनकी ओर झुकाव हो चला है—ऐसे निष्किंचन भगवद्भक्तके लिये स्त्रियों और विषयी पुरुषोंका स्वेच्छासे दर्शन करना विष खानेसे भी बुरा है, अर्थात् स्त्रियों और विषयी लोगोंके संसर्गकी अपेक्षा विष खाकर मर जाना सर्वश्रेष्ठ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीनोंका ही महाप्रभुके चरणोंमें दृढ़ अनुराग था। महाप्रभु माधवी दासीकी गणना राधाजीके गणोंमें करते थे। उन दिनों राधाजीके गणोंमें साढ़े तीन पात्रोंकी गणना थी—१-स्वरूप दामोदर, २-राय रामानन्द, ३-शिखि माहिती और आधे पात्रमें माधवीदेवीकी गणना थी। इन तीनोंका महाप्रभुके प्रति अत्यन्त ही मधुर भाव था।

भगवानाचार्यजीने प्रभुके निमन्त्रणके लिये बहुत बढ़िया महीन शुक्ल चावल लानेके लिये छोटे हरिदासजीसे कहा। छोटे हरिदासजी माधवी दासीके घरमें भीतर चले गये और भीतर जाकर उनसे चावल माँगकर ले आये। आचार्यने विधिपूर्वक चावल बनाये। कई प्रकारके शाक दाल, पना तथा और भी कई प्रकारकी चीजें उन्होंने प्रभुके निमित्त बनायीं। नियत समयपर प्रभु स्वयं आ गये। आचार्यने इनके पैर धोये और सुन्दर स्वच्छ आसनपर बैठाकर उनके सामने भिक्षा परोसी। सुगन्धियुक्त बढ़िया चावलोंको देखकर प्रभुने पूछा—'भगवन्! ये ऐसे सुन्दर चावल कहाँसे मँगाये?'

सरलताके साथ भगवान्जीने कहा—'प्रभो! माधवीदेवीके यहाँसे मँगाये हैं।'

सुनते ही महाप्रभुके भावमें एक प्रकारका विचित्र परिवर्तन-सा हो गया। उन्होंने गम्भीरताके साथ पूछा—'माधवीके यहाँसे लेने कौन गया था?'

उसी प्रकार उन्होंने उत्तर दिया—'प्रभो! छोटे हरिदास गये थे।'

यह सुनकर महाप्रभु चुप हो गये और मन-ही-मन कुछ सोचने लगे। पता नहीं वे हरिदासजीकी किस बातसे पहलेसे ही असन्तुष्ट थे। उनका नाम सुनते ही वे भिक्षासे उदासीन-से हो गये। फिर कुछ सोचकर उन्होंने भगवान्के प्रसादको प्रणाम किया और अनिच्छापूर्वक कुछ थोड़ा-बहुत प्रसाद पा लिया। आज वे प्रसाद पाते समय सदाकी भाँति प्रसन्न नहीं दीखते थे, उनके हृदयमें किसी गहन विषयपर द्वन्द्व-युद्ध हो रहा था। भिक्षा पाकर वे सीधे अपने स्थानपर आ गये। आते ही उन्होंने अपने निजी सेवक गोविन्दको बुलाया। हाथ जोड़े हुए गोविन्द प्रभुके सम्मुख उपस्थित हुआ। उसे देखते ही प्रभु रोषके स्वरमें कुछ-कुछ दृढ़ताके साथ बोले—'देखना, आजसे छोटा हरिदास हमारे यहाँ कभी न आने पायेगा। यदि उसने भूलमें भी हमारे दरवाजेमें प्रवेश किया तो फिर हम बहुत अधिक असन्तुष्ट होंगे। मेरी इस बातका ध्यान रखना और दृढ़ताके साथ इसका पालन करना।'

गोविन्द सुनते ही सन्न रह गया। वह प्रभुकी इस आज्ञाका कुछ भी अर्थ न समझ सका। धीरे-धीरे वह प्रभुके पाससे उठकर स्वरूपगोस्वामीके पास चला गया। उसने सभी वृत्तान्त उनसे कह सुनाया। सभी प्रभुकी इस भीषण आज्ञाको सुनकर चकित हो गये। प्रभु तो ऐसी आज्ञा कभी नहीं देते थे। वे तो पतितोंसे भी प्रेम करते थे, आज यह बात क्या हुई? वे लोग दौड़े-दौड़े हरिदासके पास गये और उसे सब सुनाकर पूछने लगे—'तुमने ऐसा कोई अपराध तो नहीं कर डाला, जिससे प्रभु इतने क्रुद्ध हो गये?' इस बातको सुनते ही छोटे हरिदास का मुख सफेद पड़ गया। उसके होश-हवास उड़ गये। अत्यन्त ही दु:ख और पश्चात्तापके स्वरमें उसने कहा—'और तो मैंने कोई अपराध किया नहीं, हाँ, भगवानाचार्यके कहनेसे माधवी दासीके घरसे मैं थोड़े-से चावलोंकी भिक्षा अवश्य माँग लाया था।'

सभी भक्त समझ गये कि इस बातके अन्दर अवश्य ही कोई गुप्त रहस्य है। प्रभु इसीके द्वारा भक्तोंको त्याग-वैराग्यकी कठोरता समझाना चाहते हैं। सभी मिलकर प्रभुके पास गये और प्रभुके पैर पकड़कर प्रार्थना करने लगे—'प्रभो! हरिदास अपने अपराधके लिये हृदयसे अत्यन्त ही दु:खी हैं। उन्हें क्षमा मिलनी चाहिये। भविष्यमें उनसे ऐसी भूल कभी न होगी। उन्हें दर्शनोंसे वंचित न रखिये।'

प्रभुने उसी प्रकार कठोरताके स्वरमें कहा—'तुमलोग अब इस सम्बन्धमें मुझसे कुछ भी न कहो। मैं ऐसे आदमीका मुख भी देखना नहीं चाहता, जो वैरागीका वेष बनाकर स्त्रियोंसे सम्भाषण करता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यन्त ही दीनताके साथ स्वरूपगोस्वामीने कहा—'प्रभो! उनसे भूल हो गयी, फिर माधवीदेवी तो परम साध्वी भगवद्भक्तिपरायणा देवी हैं, उनके दर्शनोंके अपराधके ऊपर इतना कठोर दण्ड न देना चाहिये।'

प्रभुने दृढ़ताके साथ कहा—'चाहे कोई भी क्यों न हो! स्त्रियोंसे बात करनेकी आदत पड़ना ही विरक्त साधुके लिये ठीक नहीं। शास्त्रोंमें तो यहाँतक कहा है कि अपनी सगी माता, बहन और युवती पुत्रीसे भी एकान्तमें बातें न करनी चाहिये। ये इन्द्रियाँ इतनी प्रबल होती हैं कि अच्छे-अच्छे विद्वानोंका मन भी अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं।' प्रभुका ऐसा दृढ़ निश्चय देखकर और उनके स्वरमें दृढ़ता देखकर फिर किसीको कुछ कहनेका साहस नहीं हुआ।

हरिदासजीने जब सुना कि प्रभु किसी भी तरह क्षमा करनेके लिये राजी नहीं हैं, तब तो उन्होंने अन्न-जल बिलकुल छोड़ दिया। उन्हें तीन दिन बिना अन्न-जलके हो गये, किंतु प्रभु अपने निश्चयसे तिलभर भी न डिगे। तब तो स्वरूपगोस्वामीजीको बड़ी चिन्ता हुई। प्रभुके पास रहनेवाले सभी विरक्त भक्त डरने लगे। उन्होंने नेत्रोंसे तो क्या, मनसे भी स्त्रियोंका चिन्तन करना त्याग दिया। कुछ विरक्त स्त्रियोंसे भिक्षा ले आते थे, उन्होंने उनसे भिक्षा लाना ही बन्द कर दिया। स्वरूपगोस्वामी डरते-डरते एकान्तमें प्रभुके पास गये। उस समय प्रभु स्वस्थ होकर कुछ सोच रहे थे। स्वरूपजी प्रणाम करके बैठ गये। प्रभु प्रसन्नतापूर्वक उनसे बातें करने लगे। प्रभुको प्रसन्न देखकर धीरे-धीरे स्वरूपगोस्वामी कहने लगे—'प्रभो! छोटे हरिदासने तीन दिनसे कुछ नहीं खाया है। उसके ऊपर इतनी अप्रसन्नता क्यों? उसे अपने कियेका बहुत दण्ड मिल गया, अब तो उसे क्षमा मिलनी चाहिये।'

प्रभुने अत्यन्त ही स्नेहके साथ विवशताके स्वरमें कहा—'स्वरूपजी! मैं क्या करूँ? मैं स्वयं अपनेको समझानेमें असमर्थ हूँ। जो पुरुष साधु होकर प्रकृतिसंसर्ग रखता है और उनसे सम्भाषण करता है, मैं उससे बातें नहीं करना चाहता। देखो, मैं तुम्हें एक अत्यन्त ही रहस्यपूर्ण बात बताता हूँ, इसे ध्यानपूर्वक सुनो और सुनकर हृदयमें धारण करो, वह यह है—

> शृणु हृदयरहस्यं यत्प्रशस्तं मुनीनां
> न खलु न खलु योषित्सन्निधिः सन्निधेयः।
> हरति हि हरिणाक्षी क्षिप्रमक्षिक्षुरप्रैः
> पिहितशमतनुत्रं चित्तमप्युत्तमानाम्॥

अर्थात् मैं तुमसे हृदय के रहस्यको बतलाता हूँ, जिसकी ऋषि-मुनियोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की है, उसे सुनो; (विरक्त पुरुषोंको) स्त्रियोंकी सन्निधिमें नहीं रहना चाहिये, नहीं रहना चाहिये; क्योंकि हरिणीके समान सुन्दर नेत्रोंवाली कामिनी अपने तीक्ष्ण कटाक्ष-बाणोंसे बड़े-बड़े महापुरुषोंके चित्तको भी, जो शान्तिके कवचसे ढँका हुआ है, शीघ्र ही अपनी ओर खींच लेती है।

श्रीनामदेवजीके जन्मके सम्बन्धमें एक स्पष्टीकरण

सन् २०१३ के विशेषाङ्क भक्तमाल-अङ्कमें पृ० सं० १८४ में प्रियादासजीके कवित्तके अनुसार एक लड़की (गोणाई), जो अल्पायुमें विधवा हो गयी थी, इसकी कोखसे श्रीनामदेवजीका जन्म बताया गया है, परंतु वास्तवमें अन्य प्रमाणोंके अनुसार नामदेवजीका जन्म दामाशेटकी पत्नी गोणाईकी कोखसे हुआ था। यह बात पूर्वमें प्रकाशित कल्याणके सन्त-अङ्क एवं भक्तचरिताङ्क आदि विशेषाङ्कोंमें भी प्रकाशित हुई है। नाभादासजीकृत भक्तमालकी व्याख्या प्रियादासजीके द्वारा कवित्तरूपमें होनेके कारण उसीके अनुसार भक्तमाल-अंकमें यह बात प्रकाशित हुई, परंतु अन्य प्रमाणोंसे यह बात सिद्ध नहीं होती है। जिज्ञासु पाठकोंकी जानकारीके लिये यह स्पष्टीकरण यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। श्रीनामदेवजी एक नामनिष्ठ महान् सन्त थे, उनके प्रति सभीके हृदयमें सम्मानका भाव स्वभाविकरूपसे है।—**सम्पादक**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी—

नवधा भक्ति—दास्य

(श्री 'चक्र')

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि कें उर डेरा॥

'आजका आखेट मैं स्वयं करूँगा!' बड़े राजकुमारने कहा 'चाहे कुछ भी हो, कैसी भी परिस्थिति क्यों न बन जाय; पर दूसरा कोई हाथ उठाये तो उसे मेरी शपथ!' भाइयोंने सिर झुका लिये। सेवकोंमें इतना साहस कहाँ था? उन्हें तो कह देनामात्र पर्याप्त होता। अवश्य ही, कभी-कभी वृद्ध शिकारी हाथ चला बैठता है—आज तो वह आया ही नहीं। उसका लड़का ही आया है मार्ग एवं शिकारका पथ-प्रदर्शन करने।

'हाकड़ (चौकीदार हिरन) बोल रहा है, कुमार!' दिन और रात्रिमें जब भी कभी किसी चीते या बाघकी आहट होती है, हाकड़ बोलता है। प्रत्येक हिरनोंके गिरोहमें तीन-चार पहरेदार होते हैं और वे गिरोहके बैठनेपर थोड़ी-थोड़ी दूर चारों ओर सावधानीसे खड़े रहते हैं। तनिक आहट पाकर बोल उठते हैं और गिरोह चौकड़ी भरता दिखलायी पड़ता है। 'हमलोग झाड़ियोंमें हो रहें।' पथ-प्रदर्शक युवकने प्रस्ताव किया।

बाघ बड़ा सावधान पशु होता है। तनिक-सी भी मनुष्योंकी आहट पाकर वह छिप जाता है या अवसर हुआ तो भाग जाता है। उसकी पशु-बुद्धि बतलाती है कि यह दो पैरका पशु जब काली या रंगीन टेढ़ी छड़ी लेकर निकलता है तो वह बाघसे भी भयंकर होता है। उसके आखेटके लिये उससे भी अधिक सावधान होना पड़ता है।

'इस छोटे मैदानके चारों ओरकी झाड़ियोंमें एक-एक व्यक्ति पृथक्-पृथक् छिपे!' बड़े राजकुमारने आज्ञा दी 'मैं इस मोटे पेड़के पीछे छिपता हूँ।' पेड़के पीछे छिपकर आघात करनेकी यह प्रकृति आगे भी सरकारमें प्रकट हुई। गयी नहीं। कहना नहीं होगा कि सबने आज्ञा-पालन किया।

'सब लोग खाँस-छींक लें।' आखेट-प्रदर्शकने आदेश दिया 'कोई भीतर जाकर न तो छींके और न खाँसे! आसन भी न बदले! चाहे मच्छर काटें या मक्खी, चुपचाप मूर्तिकी भाँति बिना पत्ता हिलाये सब कष्ट सहकर दम साधे सब लोग बैठे रहें।' छोटे कुमारको हँसी आ गयी। यह उन्हींकी अवस्थाका युवक अपने वृद्ध पितासे भी अधिक शासन करता है। बड़े कुमारने खाँसनेका नाट्य किया तो तीनों भाई मुसकरा पड़े। शिकारी युवक उस बड़े पेड़के पीछे ठीक पीछेकी झाड़ीमें बैठा था।

बहुत बड़ा बाघ था। मस्त चाल थी। घुटनोंकी चड़मड़-चड़मड़ भी आतंकित करती थी। धीरे-धीरे आगे आ रहा था। उसके पानी पीनेका यही मार्ग था। झाड़ियोंसे घिरे इस मैदानको पार करके सौ गज दूर निर्मल पहाड़ी स्रोत कल-कल कर रहा था। तनिक ठहरकर, गर्दन मोड़कर वह पीछे और दोनों ओर देखता जाता था। पूँछ उस वनराजपर चँवर कर रही थी।

सहसा वह रुका-गुर्राया और इधर-उधर मुख फेरने लगा। वह कुछ सूँघ रहा था। चारों ओरसे मनुष्योंकी गन्ध आ रही थी। उसने पहले ध्यान नहीं दिया था। मोटे वृक्षके पीछेसे पीले वस्त्रका एक जरा-सा कोना उसने देख लिया था। उसे देखकर ही चौंका था। अब परिस्थिति उसकी समझमें आ गयी। 'दो पैरके पशुओंने उसे घेर लिया है। वह बन्दीप्राय हो चुका है। कोई हानि तो नहीं की है उसने इनकी। उसके पास शिकार भी नहीं जो वे छीनना चाहते हों। उसीको मारेंगे वे? छि:!' पिछले दोनों पैर जमाये उसने। कूदनेको प्रस्तुत हो गया।

'हाय, हाय, भैयाने तो अभीतक धनुषपर डोरी भी नहीं चढ़ायी है।' सभी कुमार बड़े दुखित हुए। धनुषपर बाण चढ़े तो थे, पर शपथ? मुट्ठी छूट नहीं सकती थी। सेवकोंकी अक्की-बक्की भूली जा रही थी। बड़े कुमार मजेसे इस सुनहले काली धारीवाले स्वतन्त्र पशुको देख रहे थे। वे ऐसे मुग्ध थे, मानो अपनी अश्वशालाका कोई अश्व देख रहे हों।

एक गर्जना—भयंकर गर्जनासे कानन फट-सा गया। आश्चर्य, कुमारोंके बाण अब भी नहीं छूटे। सेवक अर्धमूर्च्छित-से हो रहे थे। बाघ कूदा और मोटे पेड़के सामने दिखायी पड़ा। अब बड़े कुमार चौंके। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनुषका एक सिरा पृथ्वीपर रखा और दाहिने हाथसे उसे झुकाकर बायें हाथसे प्रत्यंचा लेने झुके। अच्छा अवसर चुना उन्होंने डोरी चढ़ानेका। व्याघ्र भी कोई योद्धा है, जो धर्म-युद्ध समझेगा और शस्त्र लेनेका अवसर देगा? उसने अपना भारी दाहिना पंजा उठाया।

'अरे चल।' इसके साथ ही एक भाला उसकी छातीमें पूरे फलतक घुस गया और महाबलिष्ठ भुजाओंने उसी भालेको दबाकर उसे पीठके बल पीछे पटक दिया। उस काले युवकके वज्र-कठोर पुट्ठे चमक रहे थे। भालपर बड़ी-बड़ी बूँदें आ गयी थीं। उसने बाघकी छातीपर वैसे ही अपना बायाँ पैर रखा, जैसे अपनी कमरमें बाँधे व्याघ्रचर्मपर रख सकता था। जोर लगाकर भाला निकाल लिया। पशुमें आघात करनेकी शक्ति कहाँ थी? वह तो शान्त हो चुका था।

'अब मैं दण्डके लिये प्रस्तुत हूँ!' उस मूर्तिमान् शौर्यने भाला फेंक दिया एक ओर, और बड़े कुमारके चरणोंमें अंजलि बाँधकर घुटनोंके बल बैठ गया। 'मैंने शपथकी उपेक्षा की है।' उसके मुखपर भयका कोई चिह्न नहीं था।

'सखे!' बड़े कुमारके हाथोंसे चढ़ा हुआ धनुष गिर गया। उन्होंने दोनों हाथोंसे उठाकर उसे बलपूर्वक हृदयसे दबा लिया। इतनेमें भाई और सेवक भी आ पहुँचे।

'इन्हें दण्ड मैं दूँगा।' छोटे कुमारने हँसकर कहा। 'चलकर गुरुदेवसे कहता हूँ कि इनको सशरीर स्वर्ग भेज दें और वहाँ ये इन्द्रासन अपनायें। देवेन्द्र आजकल बहुत अहंकारी हो गये हैं। वे कुछ दिन सुमेरुकी गुहाओंमें निवास करें।' सब हँस पड़े।

'सेवक कहीं भी रहे—जहाँ आज्ञा होगी, रहना ही होगा उसे।' उसके स्वर ज्यों-के-त्यों गम्भीर थे। 'पर वह तो सेवक ही है। स्वामीके श्रीचरण वहाँ भी उसे सेवाके लिये मिल जायँगे—ऐसा उसे विश्वास है।' उसने उठाकर चरण-रज मस्तकसे लगायी।

'तब तो तुम्हें वहाँ भेजना बड़ा अंधेर करेगा।' मझले कुमार हँसे।

'नहीं, अब गुह निषादराज गुह होकर अपने समीप ही रहेंगे।' कुछ हँसते हुए बड़े कुमारने अपने दाहिने अँगूठेसे यों ही उसके भालपर तिलक खींच दिया। वह उन राघवेन्द्रके श्रीचरणोंमें फिर मस्तक रखने झुक पड़ा।

(२)

'तुम महाराजके वचनोंका अनादर करके किसका अनादर कर रहे हो गुह?' वृद्ध मन्त्रीने कह तो दिया, पर उनके हृदयमें भी कम संघर्ष नहीं था।

'महाराजका····?' उसने आगे कुछ नहीं कहा। मस्तक पृथ्वीपर रखकर महाराजको प्रणाम किया उसने। 'यदि मैंने अपराध किया है तो मुझे दण्ड मिले। इससे अच्छा होगा कि मुझे मृत्युदण्ड दिया जाय।' उसके नेत्र टपकने लगे थे।

'तुम्हें आज्ञा-पालन करना होगा।' मन्त्रीके स्वर कठोर थे।

'और सब, पर एक इस····।'

'सो कुछ नहीं।' मन्त्रीने उसे बोलने नहीं दिया आगे।

'देखिये, मैं कह चुका कि मैं इस आज्ञाका पालन नहीं कर सकूँगा।' समस्त राजसभा स्तब्ध हो रही थी। जिसके अनुशासनको देवेन्द्र एवं लोकपाल भी मस्तक झुकाकर स्वीकार करते हैं, उसीकी आज्ञाकी अवहेलना इतनी निर्भीकतासे एक क्षुद्र निषाद कर रहा है। बड़े कुमारने उसे ग्रामाधिपसे निषादपति क्या बना दिया, पैर पृथ्वीपर ही नहीं पड़ते।

'तुम इसका परिणाम जानते हो?' स्वतः महाराजने पूछा।

'जानता हूँ प्रभु!' उसने प्रणाम किया और महाराजसे मिलने आये एक आसनपर बैठे यमराजकी ओर देखा।

'इस दुराग्रहका कारण क्या है?' मन्त्रीने स्नेह-सरस स्वरमें पूछा।

'मेरा अभाग्य।' वह कुछ भी बतलानेको प्रस्तुत नहीं प्रतीत होता था।

'तुम थोड़ी देर बाहर जाकर सोच लो और अपने पितासे सलाह कर लो।' महाराजने संकेत किया और बिना बोलनेका अवसर दिये उसे दो सभारक्षकोंने बाहर पहुँचा दिया। महाराज स्वयं चकित थे कि आज इसे क्या हो गया है? और कभी तो वह इतना दुराग्रही नहीं दीख पड़ता था!

पितासे उसे कुछ सलाह लेनी नहीं थी। वे उठकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आये और उसे गोदमें खींचकर रोते हुए समझाने लगे। जीवनमें पहली बार आज वह पितृ-आज्ञाकी अवहेलना कर रहा था और उसके लिये फूट-फूटकर रो भी रहा था।

'व्याघ्रचर्म मेरे ही हाथमें था और उसीसे वे रक्तके बिन्दु गिरे थे।' उसके स्वरमें नम्रता तो थी, पर भय नहीं था। महर्षि वसिष्ठके बड़े कुमार शक्तिजीके सभामें पधारकर अर्घ्यादिके अनन्तर आसन ग्रहण करनेके पश्चात् वह बुलाया गया था।

महाराज उसे बहुत समझा चुके हैं। आज्ञा दे चुके हैं कि महर्षि शक्तिके पधारनेपर आज वह मौन रहे। राजाज्ञा चाहे उसीके स्नेहके कारण क्यों न हुई हो, बहुत कठोर रूप रख चुकी है। मन्त्री उसे समझा चुके हैं। बाहर पिता आज्ञा दे चुके हैं। इनकी अवहेलना कबका कर चुका है वह। महाराजकी आज्ञा-भंगका फल दण्ड होगा—अधिक-से-अधिक मृत्यु-दण्ड। पिताकी आज्ञाके न पालन करनेसे नरक होगा। महर्षि रुष्ट होकर शाप देंगे।

उसने सब सोच लिया है, सब समझ लिया है। 'यदि वह मौन रहेगा तो सम्भव है, भेद खुल जाय! महर्षिका क्या ठिकाना, वे आज प्राणाधिक प्यार करते हैं, क्षणभरमें शाप दे डालें! न, उसके रहते यह कभी न होगा। उसे किसीसे भय नहीं है।' महर्षि रुष्ट होकर ही राजसभामें महाराजसे आवेदन करने आये हैं।

'तेरा इतना साहस!' उन्होंने क्रोधपूर्वक कहा—'मेरा आसन नहीं दीखता था तुझे? उसे अपवित्र करते लज्जा नहीं आयी?' उन्होंने महाराजके मुखकी ओर देखा।

'बच्चा है, अपराध हो गया।' महाराजने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया। जी तो कुछ और चाहता था। 'समझाया, बुझाया, आज्ञा दी! न बोलता तो कुछ बिगड़ जाता? पर है तो रामका सखा!' महाराज चाहकर भी कठोर नहीं हो सकते थे। वह हाथ जोड़े नतमस्तक खड़ा था।

'हुँ!' महर्षि शक्तिने महाराजकी ओर देखा। एक क्षण सोचा। 'अच्छी बात!' उनके हाथमें कमण्डलसे जल आ गया। तनिक रुक गये वे उसकी ओर देखकर।

'आपकी क्या अनुमति है?' महर्षिने फिर यमराजकी ओर देखा!

'मैं सेवा एवं आज्ञा-पालनके लिये प्रस्तुत हूँ!' अन्ततः वे और कह भी क्या सकते थे।

'उनके नरकोंमें मैं अपने आराध्यके श्रीचरणोंकी सेवा बड़े आनन्दसे कर लूँगा!' उसने धीरे-धीरे कहा 'स्वामीके श्रीचरण वहाँ भी उसे सेवाके लिये मिल जायँगे—ऐसा उसे विश्वास है!' उसके मुखपर वह अविचल विश्वास प्रत्यक्ष प्रतिफलित हो रहा था।

'मैं असमर्थ हूँ! मुझपर दया हो।' घबड़ाकर यमराजने महर्षिके चरण पकड़े! 'मेरी व्यवस्थाका सत्यानाश हो जायगा।' ऐसा विश्वासी नरकोंमें पहुँच जाय तो वह साकेत बनाये बिना छोड़ेगा उन्हें?

'अपराध तो मेरा है प्रभु!' पता नहीं कहाँसे रामभद्र टपक पड़े। सम्भवतः सरयूतटपर कुछ सुनगुन लग गयी थी। भगाते हुए श्यामकर्णको राजद्वारपर छोड़कर दौड़ते हुए उन्होंने समस्त सभासदोंको चौंका दिया। 'प्रमादवश मैंने उपहासमें निषादराजके हाथमें धक्का दिया और रक्तके बिन्दु उछल पड़े।' महर्षिके चरणोंमें वह दिव्य किरीट झुक गया।

'आयुष्मन् तुम!' महर्षिने खींचकर हृदयसे लगाया। उनकी सजल दृष्टि गुहकी ओर थी और सभासदोंने श्रद्धा एवं स्नेहभरे नेत्रोंसे देखा कि महाराज सिंहासनसे उठकर दोनों हाथ फैलाकर उसकी ओर बढ़ चुके हैं।

(३)

'जीवका स्वभाव है मुक्ति चाहना।' आज साकेतकी अमराईमें सरयू-किनारे महाराजाधिराज सिंहासनासीन थे। दोनों सुमित्राकुमार चवँर कर रहे थे और भरतलाल छत्र लिये थे। दाहिना चरण आंजनेयकी क्रोड़ीमें था और बायेंपर निषादराजने अधिकार कर लिया था। दृष्टि सबकी एक ही स्थानपर केन्द्रित थी।

'यह तो स्वाभाविक है।' निषादराज गम्भीर तो थे ही नहीं 'गैया पगहा तुड़ाना चाहती हैं और घोड़ोंकी चले तो वे सीधे जंगलमें चले जायँ; पर पालतू हरिन नहीं भागता। पीछे-पीछे घूमा करता है।' उन्होंने अपने अनुभव सुनाये।

'अपवर्गके सिवा कोई गति नहीं उसकी।' आंजनेय कुछ कहना तो चाहते थे, किंतु प्रभुका रुख देखकर बोले नहीं। निषादपति चुप ही रहे। यह वेदान्त उनकी समझमें आया ही नहीं था। चुपचाप मुखकी ओर देखते रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ धीरे-धीरे उन चरणोंको दबा रहे थे।

'तुम क्या सोच रहे हो?' प्रभुने निषादराजसे पूछ लिया।

'क्या?' वे अचकचाये। वे स्वयं नहीं जानते कि क्या सोच रहे थे। केवल श्रीमुख ही तो देख रहे थे। चुपचाप देखते रहे।

'तुम क्या सोचते हो?' प्रभु हँसे उनका चकराना देखकर। 'तुम्हें मुक्ति चाहिये या नहीं?' बहुत सीधी तरह पूछा गया।

'ओह!' अब वे प्रश्न समझ गये थे। 'मैं, मैं तो बँधा नहीं हूँ।' उन्होंने चारों ओर अपने शरीरको देखा कि कहीं हनुमान्‌जीने पूँछमें लपेट तो नहीं लिया है। सभी मुसकरा पड़े!

'अरे शरीर नहीं, जीव बन्धनमें रहता है!' प्रभुने समझाया। 'प्रत्येक जीव मायाके बन्धनमें है!' स्पष्टीकरण भी हो गया।

'हाँ प्रभु!' उन्होंने अब समझ लिया। 'जीव-जन्तु ही बन्धनमें रहते हैं। कभी-कभी मनुष्य भी बन्धनमें पड़ जाता है; पर वह कोई अपराध करनेपर राजाद्वारा या युद्धमें ही बन्दी बनाया जाता है। माता-पिता या साथी लोग बच्चोंको और ठग, डाकू या तस्कर भी मनुष्योंको बाँध देते हैं! उन्होंने अपनी पूरी जानकारी प्रकट कर दी।'

'बार-बार जन्मना और मरना, यह जीवका बन्धन है!' प्रभुने समझाया हँसते हुए। 'मेरा इसी बन्धनसे तात्पर्य है! जब जन्म-मरण न हो तो उसे मुक्त कहते हैं। तुम इस प्रकार मुक्त होना चाहते हो?' प्रभुने फिर पूछा।

'मैं क्या चाहता हूँ, सो बताऊँ?' उन्होंने उत्तरकी अपेक्षा नहीं की। 'इसी प्रकार सदा यह श्रीचरण मेरे हाथोंमें रहे और मैं उसे दबाता रहूँ।' उन्होंने उस बायें चरणको हृदयसे लगा लिया।

'शरीर तो नश्वर है, एक दिन मरना तो होगा ही!' प्रभुने टाल दिया माँगको।

'अच्छा ही है, बूढ़े-बूढ़े जीते ही रहें तो संसारमें खाँसी-खाँसी ही सुनायी पड़े!' उन्होंने कहा 'लोगोंको रहनेके लिये भी तो स्थान चाहिये!' मृत्युसे भला कहीं निषाद डरते हैं! वह तो उनका रात-दिनका खेल है।

'फिर सदा तुम चरण कैसे दबा सकते हो?' प्रभुने समझा—इसे छका लेंगे।

'जैसे घरपर मन-ही-मन दबाते रहते हैं।' वह ऐसा-वैसा नहीं। 'जैसे सोनेपर प्रभु स्वप्नमें आ विराजते हैं। तब क्या शरीर रहता है?' उन्होंने सीधी बात कह दी।

'पर तुम मुझसे एक हो जाना क्यों पसन्द नहीं करते?' प्रभुने हँसकर पूछा।

'हे भगवान्!' निषादराजने दोनों कानोंपर हाथ रख लिये। 'सेवक तो उतारे वस्त्रोंका ही अधिकारी है!' एक हो जानेका उसने क्या अर्थ समझा, सो वह सामने बैठे उसके प्रभु ही जानें!

'बार-बार जन्मना और बार-बार मरना!' प्रभुने फिर समझाना चाहा 'बड़ा दुःख है! इससे छूटकर आत्मस्वरूपमें स्थित रहना ही परमपुरुषार्थ है!' यह माया लगनेवाली यहाँ नहीं।

'प्रभु क्षमा करें!' उन्होंने हाथ जोड़कर सिर झुकाया। 'पड़े-पड़े टिटिहरी हो जायगा, पुरुषार्थ तो कोई क्या करेगा। एक स्थानपर चाहे वह आत्मानन्द हो या और कोई नगर, रहते-रहते शक्ति खो बैठेगा और ऊब भी जायगा, जो बेचारा इस चक्करमें पड़ेगा।' भाइयोंने मुख फिरा लिये। हँसी रुकती नहीं थी।

'मैं तुम्हें मुक्ति प्रदान करूँगा!' प्रभुने कहा 'बिना मुक्त हुए तुम उसे समझ सकोगे ही नहीं!' सचमुच वह मल्लाहराज मुक्ति और बन्धन क्या जाने?

'प्रभु जो देंगे, प्रसाद सिर चढ़ा लूँगा!' अबकी बार मनकी बात कही गयी प्रभुके। 'जहाँ भेजेंगे जाऊँगा। सेवक कहीं भी रहे—जहाँ आज्ञा होगी, रहना ही होगा उसे; पर वह तो सेवक ही है। स्वामीके श्रीचरण वहाँ भी उसे सेवाके लिये मिल जायँगे—ऐसा उसे विश्वास है!' अपना पेटेण्ट निश्चय उन्हीं शब्दोंमें निषादराजने दुहरा दिया।

'प्रभु मुक्ति तो देनेको कह ही चुके।' आंजनेयसे रहा नहीं गया। भाई मुसकरा रहे थे। मायापति भोले भक्तके द्वारा ठगे गये थे। वे उसे अपवर्ग देने चले थे और वह वहाँ भी अभीसे श्रीचरण देखने लगा है!

'दे तो चुका ही हूँ!' प्रभुने निषादपतिकी ओर स्नेहसे देखते हुए कहा 'न सायुज्य या निर्वाण सही, सामीप्य!' वह कुछ समझ न सका। समझनेके बदले श्रीमुख चुपचाप देखते रहना क्या अधिक अच्छा नहीं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोमाताकी रक्षाके सम्बन्धमें विचार

(श्रीमनीषसिंहजी गुर्जर)

आज गोवंश कुछ लोगोंकी लोभवृत्ति एवं राक्षसी प्रवृत्तिकी वजहसे अतिकष्ट सहन कर रहा है। इसे खत्म करनेके लिये हम भारतवासियोंको आगे आना पड़ेगा। हमारे देशमें वर्तमानमें सबसे बड़ा वर्ग मध्यम परिवारके लोगोंका है, जो अपने काम-कमाईकी दौड़-धूपमें इस तरह व्यस्त हो चुका है कि अपने धार्मिक कर्तव्योंकी ओर उसका ध्यान ही नहीं है। वैसे तो पूरे विश्वमें ही गोक्रान्ति आनी चाहिये, परंतु वर्तमान व्यवस्था—कलियुगमें यदि हमारा देश ही गोमाताका पूर्णरूपसे सम्मान करे, रक्षा करे तो विश्वमें गोक्रान्तिका इससे अच्छा उदाहरण एवं सन्देश दूसरा नहीं होगा। हमारे देशमें सभी लोगोंका यह दायित्व है कि वे गोमाताकी रक्षा और उनके संवर्धनमें यथाशक्ति सहयोग पूर्ण श्रद्धासे अपना कर्तव्य

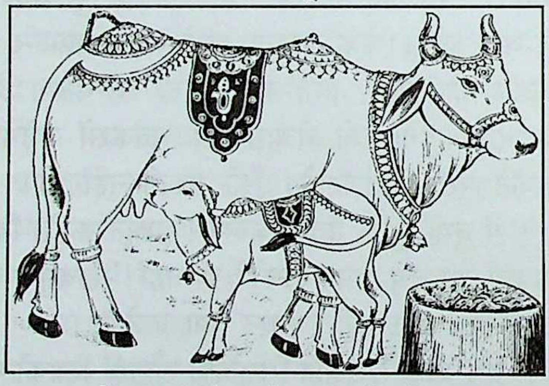

समझकर करें। इसलिये धर्म-जातिको छोड़कर एकताके साथ गोमाताकी रक्षा-संवर्धनमें जुट जाना चाहिये; क्योंकि गोमातासे प्राप्त दूध, दही, घी इत्यादि जो कोई भी सेवन करता है, उसपर अपना प्रभाव वे निष्पक्ष रूपसे करते हैं न कि उसके जाति-धर्म इत्यादिके अनुसार उनका असर घटता-बढ़ता है, इसलिये राष्ट्रकी एकता एवं उन्नतिके लिये भी यह कार्य बहुत आवश्यक हो गया है। गोमातासे प्राप्त गव्यसे राष्ट्र स्वस्थ रहेगा और स्वस्थ शरीरमें स्वस्थ मस्तिष्क भी रहेगा तो विश्व-पटलपर हमारा देश अपनी अलग पहचान बनाता हुआ सदैव उन्नति करेगा। शास्त्रोंके अनुसार गोसेवासे देवी-देवता भी सदैव तृप्त रहते हैं, इस प्रकार गोसेवाकर व्यक्ति इहलोक और परलोक दोनोंको सुधारता है तथा उसका आगामी वंश भी गोमाताकी कृपासे संस्कारवान् तथा गोभक्त होता है, जिससे कि गोसेवा करनेवाला व्यक्ति निश्चिन्त रहता है।

आज लोगोंको गोसेवाके लिये इकट्ठा करनेमें सबसे बड़ी समस्या समयकी कमी है, जब लोग अपने और अपने परिवारके लिये समय नहीं निकाल पा रहे हैं तो गोसेवाकी बात सिर्फ सैद्धान्तिक ही रह जाती है। ऐसेमें निम्नलिखित उपायोंका प्रयोग किया जाय तो सामान्य दिनचर्याके बीच भी गोसेवा हो सकती है—

(१) जो लोग बड़े शहरोंमें रहते हैं, उन्हें अपने शहरकी 'राजकीय पिंजरापोल गोशाला' या जिस किसी नामसे वह जानी जाती हो, में सम्पर्ककर अपने क्षमतानुसार सेवा करनी चाहिये और अपने साथ अपने साथियोंको भी जोड़ना चाहिये।

(२) जो लोग रोज सुबह कार्यालय-विद्यालय अपने कार्योंके लिये जाते हैं, उन्हें अपने साधनसे जानेपर रोज अपने लंचबाक्सके साथ गोमाताके लिये भी रोटियाँ कागजमें लपेटकर रख लेनी चाहिये। त्यौहारपर मिष्टान्नकी सेवा भी हो तो अति उचित होगा। इस कार्यके लिये उन्हें कोई रास्ता नहीं बदलना है, उन्हें अपने मार्गपर उन्हें गोमाता दिख जायँगी और वे गोग्रास निवेदित कर दें।

(३) जो लोग सेवा करना चाहते हैं, पर इतने सदस्य नहीं जुटा पा रहे हैं कि गोमाताके लिये गोचर-भूमि इत्यादि कि व्यवस्था हो, उन्हें जो गोशालाएँ धार्मिक गुरुजनों—सन्त-जनोंद्वारा चलायी जाती हैं, वहाँपर यथाशक्ति अपना सहयोग प्रतिमाह, प्रतिवर्ष, त्यौहारपर और अपने जन्मदिनपर नियमित रूपसे करना चाहिये।

(४) विद्यालयों एवं विभिन्न संस्थाओंके संचालक जो शिक्षण-कार्यसे जुड़े हैं, उन्हें भी अपने यहाँ पढ़ानेवाले शिक्षक-शिक्षिकाओं तथा विद्यार्थियोंको गोसेवासे जोड़नेका प्रयास करना चाहिये, जिसमें राजकीय गोशालामें सेवा प्रदान करना और नियमित गोग्रास निकालना तथा ताजा स्थितिमें उसे गोमातातक पहुँचाना आदि शामिल हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभक्तमालकी भक्तिरसबोधिनी टीका और सन्त नामदेव-चरित्र

(मलूकपीठाधीश्वर सन्त श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज)

[मलूकपीठाधीश्वर श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज, जो वर्तमान समयमें भक्तमाल एवं भक्तचरितोंके मुख्य प्रवक्ता है; सन्त नामदेवजीके जन्मके सम्बन्धमें उनके विचार इस लेखमें प्रस्तुत किये जा रहे हैं—सम्पादक]

मानव-जीवनके चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्तिके लिये भक्त-चरित्रका श्रवण, मनन, परिशीलन अत्यावश्यक है। श्रीमद्भागवत-महापुराणके दस लक्षणोंमें सप्तम लक्षण 'ईशानुकथा' को बताया गया है। ईशानुकथाका तात्पर्य भक्त-चरित्रसे है। यह लक्षण भागवतके प्रत्येक स्कन्धमें घटित होता है। भक्त-चरित्रकी इस उपयोगिताको अनुभवकर प्राचीनकालसे ही संस्कृत एवं विभिन्न प्राकृत भाषाओंमें भक्त-चरित्रविषयक अनेक ग्रन्थ लिखे जाते रहे हैं। भारतवर्षमें बोली जानेवाली प्राय: प्रत्येक भाषामें भक्त-चरित्रपरक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। इनमें श्रीमद्नाभागोस्वामीविरचित भक्तमाल ग्रन्थ अत्यधिक प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थकी रचना नाभाजीद्वारा विक्रमकी १७वीं शताब्दीके मध्यकालमें की गयी थी। हिन्दी साहित्यके सुप्रसिद्ध छप्पय छन्दमें निबद्ध भक्तमालमें पौराणिक कालसे लेकर ग्रन्थरचनाकालतकके सैकड़ों भक्तोंके चरित्र सूत्रात्मक संक्षिप्त शैलीमें वर्णन किये गये हैं।

भक्तमाल ग्रन्थकी रचनाके लगभग एक शताब्दी पश्चात् सन्त श्रीप्रियादासजीने ग्रन्थमें वर्णित भक्त-चरित्रोंका विस्तार करते हुए उसपर 'भक्तिरसबोधिनी' नामक एक टीका लिखी। कवित्त छन्दमें लिखी गयी इस टीकाका धार्मिक समाजमें अतिशय आदर हुआ और तभीसे भक्तमाल ग्रन्थका लेखन, वाचन और प्रवचन भक्तिरसबोधिनीके साथ होने लगा।

मूल भक्तमाल ग्रन्थ और उसकी भक्तिरसबोधिनी टीका उत्तर भारतके विशेषकर हिन्दीभाषी क्षेत्रोंमें अत्यधिक श्रद्धा-भावसे पढ़ी-सुनी जाती है। भक्तमालके पचासों संस्करण अभीतक प्रकाशित हो चुके हैं। मूल ग्रन्थपर और भी अनेक टीकाएँ छप चुकी हैं। श्रीवृन्दावनमें भक्तमाल ग्रन्थके अध्ययन-अध्यापनकी एक सुदीर्घ परम्परा विद्यमान है। गुरुमुखसे भक्तमाल ग्रन्थका अध्ययनकर अनेक विद्वान् मनीषी भक्तमालके प्रवचनोंद्वारा आस्तिक समाजको परमपावन भक्त-चरित्रोंका श्रवण प्राचीनकालसे कराते रहे हैं और अभी भी करा रहे हैं।

अनेक प्रेमी महानुभावोंके आग्रहसे कल्याण मासिक पत्रिकाके वर्ष २०१३ के विशेषांकके रूपमें श्रीभक्तमाल-अंक प्रकाशित किया गया। भक्तमाल ग्रन्थमें महाराष्ट्रके सन्त श्रीनामदेवजी महाराजके विषयमें उल्लिखित छप्पयका भक्तिरसबोधिनी टीकामें जिस प्रकार घटना-प्रसंगोंके माध्यमसे विस्तारपूर्वक परिचय दिया गया है, उसको लेकर कुछ महानुभावोंने कल्याण-कार्यालयको पत्र लिखे हैं।

सन्त श्रीनामदेवजीका प्रादुर्भाव वि०सं० १३२७ में महाराष्ट्रमें हुआ था। वारकरी-सम्प्रदायके मराठी अभंग साहित्यमें श्रीनामेदवजीका जन्म शिंपी (दर्जी) जातिमें बताया गया है। भक्त दम्पती श्रीमती गोणाबाई और दामाशेटीको आपके माता-पिता होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्रीदामाशेटीके विशाल परिवारकी एक सदस्याके रूपमें उनके घरमें निवास करनेवाली भक्तिमती सन्त श्रीजनाबाईने अपने एक मराठी अभंगमें श्रीनामदेवजीके प्राकट्यका वर्णन करते हुए लिखा है—

गोणाई ने नवस केला। देवा पुत्र देईं मला॥
शुद्ध देखोनियां भाव। पोटीं आले नामदेव॥
दामुशेटी हरुषला। दासी जनीला आनंद झाला॥

अर्थात् गोणाबाईने भगवान् श्रीपण्ढरीनाथसे प्रार्थना की कि हे प्रभो! मुझे एक भक्त पुत्र प्रदान कीजिये। उनके शुद्ध भावको देखकर श्रीभगवान्ने वरदान दिया। इस प्रकार श्रीनामदेवजी गोणाबाईके गर्भमें विराजमान हुए। (श्रीनामदेवजीके जन्मसे) पिता दामाशेटीको अपार हर्ष हुआ। सन्त जनाबाई कहती हैं कि मैं श्रीनामदेवजीके दर्शन करके आनन्दित हुई।

इस प्रकार उक्त अभंगमें नवमास गर्भमें निवास करके लौकिक रीतिसे श्रीनामदेवजीके प्राकट्यकी बात कही गयी है। महाराष्ट्रीय वारकरी-सम्प्रदायके एक अन्य इतिहास-लेखक श्रीमहीपति बुआने भी अपने 'श्रीभक्तविजय' ग्रन्थमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्त नामदेवजी महाराजका चरित्र लिखा है। भक्तविजय ग्रन्थका लेखन वि०सं० १८१९ में हुआ था। इसमें महीपति बुआ लिखते हैं कि भक्त दम्पती श्रीगोणाबाई और श्रीदामाशेटीने भगवान् विट्ठलनाथजीके समक्ष आर्तभावसे पुत्रप्राप्तिके लिये प्रार्थना की। रात्रिमें भगवान्ने दामाशेटीको स्वप्नादेश दिया कि कल प्रात: जब तुम भीमानदीमें स्नान करने जाओगे तो एक विशाल सीपी बहकर तुम्हारे समक्ष आयेगी। उस सीपीमें तुम्हें एक पुत्र प्राप्त होगा, मेरा प्रसाद मानकर तुम उसका लालन-पालन करो। स्वप्नादेशके अनुसार प्रात:काल जब दामाशेटी भीमानदीमें स्नान करने गये तो वहाँ उन्हें जलप्रवाहमें एक विशाल सीपी प्राप्त हुई। उस सीपीमेंसे विट्ठल-विट्ठल नामकी ध्वनि निकल रही थी। दामाशेटी सीपीको घर ले आये और गोणाबाईके समक्ष उसे खोला। उस सीपीमें भक्त दम्पतीको एक पुत्रकी प्राप्ति हुई। यही बालक आगे चलकर सन्त नामदेवके नामसे विख्यात हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन्त श्रीनामदेवजीकी जन्म-कथाको लेकर महाराष्ट्रके वारकरी साहित्यमें ही दो मत पाये जाते हैं। महीपति बुआने भक्तविजय ग्रन्थमें उत्तर भारतके भी अनेक सन्तोंका चरित्र वर्णन किया है। सन्त श्रीतुलसीदासजी, श्रीकबीरदासजी, श्रीमीराबाई आदि सन्तोंकी कथा जिस प्रकार उत्तर भारतके प्राचीन ग्रन्थोंमें प्राप्त होती है उससे थोड़ा-बहुत पृथक् वर्णन भक्तविजय ग्रन्थमें पाया जाता है। यहाँ हमारा अनुरोध यह है कि विशाल भारतवर्षके एक अंचलमें प्रकट हुए किसी सन्तके चरित्रको कालान्तरमें जब देशके किसी अन्य अंचलमें, अन्य भाषा तथा अन्य प्रकारके सांस्कृतिक एवं वैचारिक धरातलपर लिखा जायगा तो उसमें थोड़ा-बहुत पार्थक्य आना स्वाभाविक है। इसका एक प्रमुख कारण प्राचीनकालमें संचार-माध्यमोंकी कमी भी हो सकती है। तीर्थयात्रा या अन्य प्रयोजनोंसे देशके एक अंचलसे दूसरे अंचलमें आये हुए व्यक्तियोंके द्वारा तत्तत् क्षेत्रोंमें हुए सन्तोंका परिचय प्राप्त करके ही उस सुदूर प्रान्तके कवि या लेखक अपनी लेखनी उठाते होंगे, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। अवश्य ही कुछ लेखक ऐसे भी होंगे जो गवेषणापूर्ण शोधदृष्टि रखते हुए अपने लेखनमें सजग थे। श्रीनाभागोस्वामीने तो श्रीगुरुकृपासे भक्तचरित्रोंका अपने अन्तर्हृदयमें साक्षात्कार करके भक्तमाल ग्रन्थका प्रणयन किया है—ऐसा माना जाता है। इसीलिये उनके द्वारा रचे गये भक्तपरिचयात्मक छप्पयोंकी विपुल ख्याति है।

श्रीनामदेवजीके चरित्र-वर्णनमें दक्षिण भारतके लेखक हों या उत्तर भारतके—सबने एक स्वरमें श्रीनामदेवजीको परमभागवत श्रीउद्धवजीका अवतार बताया है। भगवान् श्रीपण्डरीनाथजीके कृपासंकल्पसे ही उनके अभिन्न सखा श्रीउद्धवजी इस घोर कलिकालमें भगवद्भक्तिका प्रचार करनेके लिये परम भाग्यवान् दम्पती श्रीमती गोणाबाई और श्रीदामाशेटीके घर उनके पुत्र बनकर श्रीनामदेवजीके रूपमें प्रकट हुए। यही सभी सन्तोंकी मान्यता है और महाराष्ट्रका विशाल वारकरी-सम्प्रदाय भी यही मानता है। कल्याण मासिक पत्रिका और गीताप्रेसके अन्य प्रकाशनोंमें भी प्राचीन सन्त लेखकोंके इसी भावको आस्तिक समाजके समक्ष प्रस्तुत किया जाता रहा है।

श्रीभक्तमाल ग्रन्थकी श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरस-बोधिनी टीकामें मूलरूपमें यही मान्यता होते हुए भी घटना-क्रम कुछ अलग प्रकारका अवश्य है। श्रीनामदेवजी महाराष्ट्रीय वारकरी वैष्णव-सम्प्रदायके एक मूर्धन्य सन्त थे। उनकी जन्मसम्बन्धी कथाको लेकर पारम्परिक वारकरी वैष्णवोंमें तथा उसी सम्प्रदायके एक अन्य लेखक महीपति बुआमें वैमत्य पाया जाता है, इसका वर्णन पूर्वमें किया जा चुका है। जब वारकरी-सम्प्रदायमें ही दो मत पाये जाते हैं तब भौगोलिक दृष्टिसे पर्याप्त दूरीपर स्थित उत्तर भारतमें श्रीप्रियादासजीद्वारा श्रीनामदेवजीके ४५० वर्ष पश्चात् देशकालमें प्रचलित जनश्रुतियोंको सुनकर पूर्वोक्त दोनों मतोंसे भिन्न तीसरा मत लिखा जाना आश्चर्य नहीं है।

हमारी पाठकोंसे करबद्ध प्रार्थना है कि वे भक्तिरसबोधिनीमें वर्णित घटना-क्रमको उपर्युक्त दृष्टियोंसे देखते हुए टीकामें दिये गये श्रीनामदेवजीके भक्तिमय चरित्रका आस्वादन करें और उससे लाभान्वित हों।

जिन पाठकोंको भक्तिरसबोधिनी टीकाके सन्त नामदेव- चरित्रविषयक किसी अंशसे कुछ क्षोभ हुआ है, उन पाठकोंसे हम क्षमा चाहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्यमन्तकमणिकी कथा

(श्रीसुधीरजी निगम)

द्वारकाकी सुधर्मा सभामें सत्राजित् नामके एक प्रतिष्ठित मन्त्री थे। प्रसेन नामका उनका एक जुड़वाँ हमशक्ल भाई था। वह हठी स्वभावका था। सत्राजित् निष्ठावान् सूर्यभक्त थे। उनके भव्य भवनमें नित्य धार्मिक समारोह हुआ करते थे। यज्ञ-कुण्डसे उठनेवाले धूमसे उनके भवनका प्रांगण भरा रहता था। भवनमें नित्य सवितृ-मन्त्र गूँजते रहते थे। इस कठोर सूर्य-आराधनासे प्रसन्न होकर सूर्यभगवान्ने सत्राजित्को 'स्यमन्तक' नामक एक बहुमूल्य मणि प्रदान की। उस मणिमें पारस-जैसे अमोल गुण थे। विधिपूर्वक पूजा करके मणिके निकट लौहखण्ड रखनेसे मन्त्रोच्चारणके साथ ही वह स्वर्णखण्डमें परिवर्तित हो जाता था। इस प्रकार स्वर्णसंचय करके सत्राजित् द्वारकाके सबसे धनवान् व्यक्ति बन गये।

सत्राजित्की तीन सन्तानें थीं। इनकी ज्येष्ठ पुत्री सत्यभामा अपूर्व सौन्दर्यशालिनी थी, साथ ही विलक्षण हठी स्वभावकी भी। उसके सौन्दर्यकी ख्याति द्वारका, सौराष्ट्र और आनर्तकी सीमा लाँघकर सुदूर मध्यदेशतक फैल गयी थी। उसे सुनकर शतधन्वा नामक भोजवंशीय यादव राजाने द्वारका आकर सत्यभामाका हाथ माँगा। शतधन्वा मूलतः शूरसेन राज्यका निवासी था। उसके पिता हृदिक अब भी शूरसेनमें रहते थे और भाई कृतवर्मा द्वारकामें उच्च सैनिक अधिकारी था, जो आगे चलकर कृष्णकी नारायणी सेनाका सेनापति बना।

सत्राजित्ने शतधन्वाके विवाह-प्रस्तावपर बस इतना ही कहा, 'कन्या अभी विवाहयोग्य नहीं है, जब होगी, तब सोचेंगे।' इस कथनको प्रच्छन्न स्वीकृति मानकर सत्यभामासे विवाहकी आशा रखकर शतधन्वा अपने देशको लौट गया।

कृष्णको सूचना मिली कि मथुरामें महाराज उग्रसेन वित्तीय संकटसे गुजर रहे हैं। अतः उन्हें सहयोगकी अपेक्षा थी। एक दिन कृष्ण सत्राजित्से भेंट करने उनके भवन पहुँचे। स्वागत-सत्कार ग्रहण करनेके बाद कृष्णने कहा—'काकाजी, आपसे एक अनुरोध करने आया हूँ। हम सब यादव मूलतः मथुराके ही हैं। हमारे उस मूल स्थानको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये महाराज उग्रसेन प्रयत्नशील हैं। इस समय उनके कोषागारकी स्थिति ठीक नहीं है, अतः हम सबको उनकी आर्थिक सहायता करनी चाहिये। इस हेतु मैं एक प्रस्ताव लेकर आया हूँ।' सत्राजित्के पूछनेपर कृष्णने कहा—'आप अपनी स्यमन्तकमणि मन्त्रसहित मुझे सौंप दीजिये। इसे मैं उद्धव और गर्गाचार्यके हाथों महाराज उग्रसेनके पास सुरक्षित भिजवा दूँगा।'

सत्राजित्ने सत्वर कहा—'यह कैसा विचित्र प्रस्ताव है। मैं इसे कदापि स्वीकार नहीं कर सकता।'

कृष्ण वापस लौट गये।

कुछ समय पश्चात् सत्राजित्का भाई प्रसेन अपने अश्वारोहियों और रथ-दलके साथ आखेटके लिये निकला। पूरा दल महाद्वारसे निकलकर नौकाओंके द्वारा आनर्त देश पहुँचा। सत्राजित्की अनुमतिसे वह स्यमन्तकमणि मालाके रूपमें अपने कण्ठमें धारण करके आया था।

ऋक्षवान् पर्वतकी तलहटीमें घना वन था। यहाँ सिंहोंका बाहुल्य था, परंतु वे वनके भीतरी भागमें रहते थे। प्रसेनका दल शिकारकी तलाश कर रहा था, तभी उसे एक शूकर दिखायी दिया। हाथमें भाला लेकर उसने अपना अश्व शूकरके पीछे छोड़ दिया। प्राण बचानेको शूकर वनके भीतरी भागमें घुस गया। प्रसेनको ज्ञात नहीं था कि उसके साथी पीछे छूट चुके हैं। तभी अचानक एक सिंहने, पता नहीं कहाँसे निकलकर प्रसेनपर आक्रमण कर दिया। प्रसेन अश्वसे गिर गया। कुछ क्षणोंतक तो प्रसेन प्रतिरोध करता रहा, पर अन्तमें सिंहने उसे मार डाला। सिंह नरभक्षी नहीं था, अतः अश्वको मारकर उसने अपनी भूख मिटायी।

सत्राजित्की प्राणप्रिय मणि रक्तसे रंजित हो निष्प्राण प्रसेनके गलेमें अब भी पड़ी थी।

संध्याकाल समीप था। उस अरण्यका निवासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋक्षराज जाम्बवान् अपने साथियोंके साथ गुफासे बाहर निकला। उन लोगोंने प्रसेनकी क्षत-विक्षत निष्प्राण मानव-देह देखी, पर प्रसेनके रूपमें उसे कोई पहचान न सका। एक ऋक्षने प्रसेनके गलेमें पड़ी मणि देखी तो उसे निकाल लिया और झरनेके जलसे धोकर उसे जाम्बवान्के हवाले कर दिया। उस मणिके मूल्यके रूपमें उन लोगोंने चिता रचकर प्रसेनकी अग्निक्रिया कर दी और अपने निवासको लौट गये।

जब कई दिनतक प्रसेन नहीं लौटा तो सत्राजित्के भवनमें कानाफूसी होने लगी कि कृष्णने निर्जनमें प्रसेनकी हत्याकर स्यमन्तकमणि हथिया ली है। सत्राजित्के अनुरोधपर आहूत सुधर्मा सभामें उसने यही आरोप कृष्णपर लगाया और न्यायकी माँग की।

सत्राजित्द्वारा कृष्णपर लगाये गये इस जघन्य आरोपपर सुधर्मा सभामें चारों ओरसे ये आवाजें गूँज उठीं—'यह झूठ है, सत्राजित्को धिक्कार है, धिक्कार है।'

कृष्णने अपने आसनसे खड़े होकर दोनों हाथ ऊपर उठाये और जब सभामें शान्ति स्थापित हो गयी तो वे स्निग्ध वाणीमें बोले—न्यायप्राप्तिके लिये निर्भीक कथनकी जो शिक्षा काका सत्राजित्ने दी है, उसके लिये मैं उनका अभिनन्दन करता हूँ। मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि मैंने ऐसा कोई कुकृत्य नहीं किया है। मुझे किसी मणिका लालच नहीं है। मैंने काकासे स्यमन्तकमणि माँगी अवश्य थी, परंतु अपने लिये नहीं, अपितु मथुरावासियोंकी गिरती आर्थिक स्थितिको सुदृढ़ करनेके लिये उसकी माँग की गयी थी। वैसे भी बल या छलसे मणि प्राप्त कर लेनेसे कोई लाभ नहीं हो सकता, क्योंकि बिना मन्त्रके वह न सिद्ध होगी और न फल देगी। जो भी हो, मैं इस सभाको वचन देता हूँ कि उस मणिको कहींसे भी खोजकर काकाको सौंप दूँगा।

दूसरे ही दिन कृष्ण मृगया-कुशल सैनिकों एवं अरण्यकी पूर्ण जानकारी रखनेवाले वन-गुप्तचरोंके साथ ऋक्षवान्के अरण्यकी ओर चले। गुप्तचर चारों ओर फैले थे। कड़ी जाँच चल रही थी। तभी एक ऋक्ष उनके हत्थे चढ़ गया। सूत्र जोड़नेपर ज्ञात हुआ कि प्रसेन एक सिंहके हाथों मारा गया था। मणि इस समय जाम्बवान्के पास है।

यादवसेनाने जाम्बवान्की विशाल गुफाको घेर लिया। सेनापतिद्वय सात्यकि और अनाधृष्टि सैनिकोंके साथ अन्दर गये। श्रीकृष्ण साथमें थे। सात्यकिने सबका परिचय दिया और अनुरोध किया कि मणि वापस कर दी जाय, क्योंकि इससे वृष्णिवंशके नेता कृष्णकी प्रतिष्ठा दाँवपर लगी है। जाम्बवान् चतुर व्यक्ति था। उसने सत्ताईस दिनतक युद्ध करके जब यह निश्चय कर लिया कि कृष्ण सामान्य मनुष्य नहीं हैं तो उसने कोमल कण्ठसे प्रार्थना करते हुए कहा—यदि कृष्ण मेरी सर्वगुणसम्पन्ना सुन्दर कन्या जाम्बवतीसे विवाह कर लें तो मणि मैं उन्हें दहेजके रूपमें दे दूँगा।

काफी सोच-विचारके बाद कृष्णने विवाह करनेकी स्वीकृति दे दी और मणि तथा एक नारी-रत्न लेकर

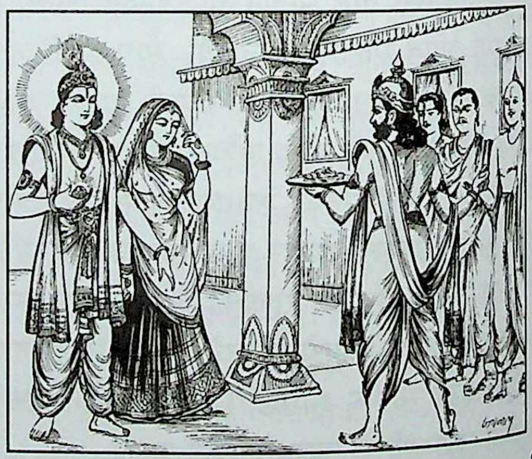

द्वारका लौट आये। सुधर्मा सभामें कृष्णने स्यमन्तकमणि सत्राजित्को सौंप दी। उसने मणि तो ले ली, पर यह सोचकर वह बहुत लज्जित हुआ कि उसने श्रीकृष्ण-जैसे महापुरुषपर मिथ्या आरोप लगाया, इस पश्चात्तापसे उसने अपनी पुत्री सत्यभामा कृष्णको अर्पित कर दी।

कृष्ण लाक्षागृहकी घटना सुनकर बलरामके साथ हस्तिनापुर चले गये। उधर शतधन्वाको जब यह ज्ञात हुआ कि सत्राजित्ने अपनी पुत्रीका विवाह कृष्णसे कर दिया है तो वह अत्यधिक क्रुद्ध हो उठा। द्वारका आकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने सत्राजित्की हत्या कर दी और स्यमन्तकमणि चुराकर मध्यदेशकी ओर निकल गया।

कृष्ण जब लौटकर आये तो उन्हें इन घटनाओंका पता चला। उन्होंने शतधन्वाके भाई कृतवर्माको बुलवाया और उससे पूछताछ की। कृतवर्माने बताया कि शतधन्वाने काशीराजका आश्रय ग्रहण किया है और मणि अक्रूरजीको दे दी है, जो उसे लेकर मथुरा चले गये हैं।

अब मणिका कोई महत्त्व नहीं रह गया था; क्योंकि उसके सिद्ध-मन्त्रोंका ज्ञाता मर चुका! फिर भी न्यायकी माँग थी कि हत्यारे शतधन्वाको दण्ड मिलना चाहिये।

कृष्ण और बलरामने सेनासहित काशीकी ओर प्रयाण किया। काशी राज्यकी सीमापर ही बलराम और कृष्णने शतधन्वाको घेर लिया और उसका वध कर दिया। काशीराज सुबाहु भी उसके साथ था, जो शतधन्वाकी गति देखनेके बाद भाग निकला। अकेले कृष्णने उसका पीछा किया। सुबाहुने समर्पण कर दिया और कृष्णको प्रसन्न करनेके लिये उन्हें अपार सम्पत्ति भेंट की।

कृष्ण जब लौटे तो शिविरमें बलरामने कहा—'जिस मणिके इतने चर्चे हैं, वह जरा मुझे भी दिखाओ।' जब कृष्णने यह कहा कि मणि नहीं मिली है तो बलराम बिफर पड़े, 'तुम्हें भाईसे अधिक मणि प्रिय है तो उसे रखो, अपने पास, मैं चला।' इतना कहकर बलराम रुष्ट होकर चले गये।

कई महीनोंके पश्चात् बलराम अक्रूरके साथ मथुरासे द्वारका पधारे। अक्रूरके कहनेपर सुधर्मा सभा फिर आहूत की गयी। सभामें अक्रूरने एक काष्ठ-पेटिका कृष्णको दी, जिसमें स्यमन्तकमणि रखी थी। कृष्णने वह मणि अक्रूरको ही सौंप दी और मथुराके लिये वह समस्त सम्पत्ति जो उन्हें काशीसे मिली थी, उन्हें दे दी।

इस स्यमन्तक मणिके आख्यानसे जुड़ी एक बात और बड़ी प्रसिद्ध है। शास्त्रोंमें भाद्रपदमासके शुक्ल पक्षकी चतुर्थीको चन्द्र-दर्शनका निषेध किया गया है। कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्णने उस तिथिका चन्द्रमा देख लिया था, इसीलिये उन्हें स्यमन्तकमणिकी चोरीका मिथ्या कलंक लगा। इस आख्यानकी यह महिमा है कि इसे जो पढ़ता या सुनता है, उसे चन्द्रदर्शनके दोषसे मुक्ति मिलती है।

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०६९ से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०७० तक रही है)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे नाम-स्मरण करवाते हैं।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस वर्ष भी इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या ७१,२४,८३,९०० (इकहत्तर करोड़, चौबीस लाख, तिरासी हजार)

(ख) नाम-संख्या ११,३९,९७,४२,४०० (ग्यारह अरब, उनतालीस करोड़, सत्तानबे लाख, बयालीस हजार)

(ग) षोडश नाम-महामन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर कैलिफोर्निया, फ्रामिंघम, मिडिलटाउन, यू०के०, यू०एस०ए०, यूनाइटेड किंगडम, नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं। स्थानाभावके कारण साधकोंके नगर-ग्राम आदिकी सूची नहीं दी जा रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें अशान्त स्थिति है। देशके कुछ भागोंमें तो हिंसाका नग्न ताण्डव दिखायी दे रहा है। अधिकतर लोग मानसिक तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह होता है कि इस स्थितिका समाधान क्या है? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्वशान्तिके लिये श्रीहरि-नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।' इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि 'भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है'—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(ना०पूर्व० ४१। ११५)

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने भी भगवन्नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना है। इतना ही नहीं, जगत्‌के समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें भगवान्‌के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर नित्य-सिद्ध अपने बहुत-से नाम कृपा करके प्रकट कर दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नाम-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा।'

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नामका स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो भगवन्नाम-स्मरणसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मंगलमय भगवान्‌के आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय—भगवान्‌की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका स्मरण-जप-कीर्तन करना चाहिये।

अतः 'कल्याण' के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक, पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

गत वर्ष पंचानबे करोड़ नाम-जपकी प्रार्थना की गयी थी। इस वर्ष विभिन्न स्थानोंसे जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं; उनके अनुसार इकहत्तर करोड़, चौबीस लाख, तिरासी हजार मन्त्रके नाम-जप हुए हैं, इस बार पिछले वर्षकी अपेक्षा श्रीभगवन्नाम-जपमें कमी ही हुई है। अतः भगवन्नाम-प्रेमी महानुभावोंसे प्रार्थना है कि जपकी संख्यामें विशेष उत्साह दिखलायें, जिससे भगवन्नाम-जपमें वृद्धि हो सके। आशा है, अधिक उत्साहसे नाम-जप होता रहेगा।

जपकर्ताओंकी सूचना अभीतक लगातार आ रही है, किंतु विलम्बसे सूचना आनेपर उसे प्रकाशित करना सम्भव नहीं है। अतः जपकर्ताओंको जप पूरा होने (चैत्र शुक्ल पूर्णिमा)-के अनन्तर तत्काल सूचना प्रेषित करनी चाहिये, जिससे उनके जपकी संख्या प्रकाशित की जा सके।

आप महानुभावोंसे पुनः इस वर्ष पंचानबे करोड़ भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है। यह नाम-जप अधिक उत्साहसे करना तथा करवाना चाहिये, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

निवेदन है कि पूर्ववत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा (वि० सं० २०७१)-तक पूरा किया जाय। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्‌के प्रभावशाली नामका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण' के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ विशेष चेष्टा करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं।

(१) जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा (दिनांक १७।११।२०१३ ई०) रविवार रखी गयी है। इसके बाद किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं, परंतु उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा, वि० सं० २०७१ दिन मंगलवार (दिनांक १५।४।२०१४)-को कर देनी चाहिये। इसके आगे भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।

(२) सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

(३) एक व्यक्तिको प्रतिदिन उपरिनिर्दिष्ट मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप अवश्य ही करना चाहिये, अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।

(४) संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे अथवा अंगुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा सकती है। तुलसीजीकी माला उत्तम होगी।

(५) यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रात:काल उठनेके समयसे लेकर चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय—सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

(६) बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

(७) संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं; उदाहरणके रूपमें—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रति मन्त्र-जपकी संख्या १०८ होती है, जिसमें भूल-चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई-बहन मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना भेजनेवाले सज्जनोंको जपकी संख्याके साथ अपना नाम-पता स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिये।

(८) प्रथम सूचना तो मन्त्र-जप प्रारम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप-संख्याका संकल्प किया हो, उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या उल्लिखित हो।

(९) प्रथम सूचना प्राप्त होनेपर जपकर्ताको सदस्यता दी जाती है। द्वितीय सूचना भेजते समय सदस्य-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

(१०) जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे, ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक होकर प्रभावक बनते हैं।

(११) सूचना संस्कृत, हिन्दी, मराठी, मारवाड़ी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।

सूचना भेजनेका पता—

नामजप-कार्यालय, द्वारा—'कल्याण' सम्पादकीय विभाग, गीताप्रेस, पो०—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

प्रार्थी—

राधेश्याम खेमका

सम्पादक—'कल्याण'

राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे। घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे॥
एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साधि रे। ग्रसे कलि-रोग जोग-संजम-समाधि रे॥
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो, बाम रे। राम-नाम ही सों अंत सब ही को काम रे॥
जग नभ-बाटिका रही है फलि फूलि रे। धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे॥
राम-नाम छाड़ि जो भरोसो करै और रे। तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे॥

[विनय-पत्रिका]

श्रीभगवन्नाम-जपके जापक महानुभावोंको अपनी स्थायी सदस्य-संख्या एवं नाम-पता साफ-साफ अक्षरोंमें लिखना चाहिये, जिससे उनके ग्राम/नगरका शुद्ध नाम दिया जा सके। [सं०]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

साधकोंसे

प्रिय महोदय! हरिस्मरण। अपने दोषोंका दीखने लगना साधनस्तरमें चढ़नेकी इच्छाका लक्षण है, दोषोंका दीखते रहना दोषनाशकी प्रवृत्तिका कारण है, दोषोंके लिये जीमें जलन पैदा हो जाना दोष-नाशका आरम्भ हो जाना है, जरा-से भी दोषका हृदयमें सदा शेल-सा चुभना दोषोंसे बहुत-कुछ मुक्त हो जानेका लक्षण है और दूसरेके दोषोंका सर्वथा न दीखना एवं अपने दोषनाशकी भी स्मृति न रहना दोषोंका नाश है। दोषोंका सर्वथा नाश और भगवान्‌का सर्वदा-सर्वत्र दर्शन प्राय: एक ही कालमें होनेवाली स्थिति है। आपलोगोंको अपने दोष दीखते रहते हैं और खटकते भी हैं, यह शुभ लक्षण है। परंतु इतनेसे ही सन्तुष्ट न हो जाइये। जबतक जरा-सा भी विकार मनमें होता है, तबतक दोषके बीजका नाश नहीं हुआ है। जहाँ बीज है, वहाँ अनुकूल संयोग मिलनेपर उसके अंकुरित होने और फूलने-फलनेमें कौन देर लगती है! दोषका बीजनाश करनेकी चेष्टा कीजिये। यह दोष-बीजनाश भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे होता है और उनकी अपार तथा अनन्त कृपाका अनुभव करनेसे ही कृपा फलवती होती है। अतएव पद-पदपर और पल-पलमें भगवान्‌की अपार कृपाका अनुभव करते रहना चाहिये। उनके सर्वदोषहर वरद कोमल करकमलको सदा अपने सिरपर समझना चाहिये और उनके अपरिमित बलसे अपनेको सदा बलवान् मानकर पाप-तापकी स्फुरणातकको नष्ट कर देना चाहिये। उनके बलके सामने पाप-तापका बल किस गिनतीमें है। भगवान्‌के नाममें पूरा आनन्द नहीं आता, इसका कारण यही है कि भगवान्‌में अभीतक प्रियतम-बुद्धि नहीं है। जिसमें प्रियतम-बुद्धि हो जाती है, उसके नामकी तो बात ही निराली है, उसकी फटी जूतीका चिथड़ातक अत्यन्त प्यारा लगता है। भगवान्‌में प्रियतम-बुद्धि हो जानेपर उनके सारे जगत्‌में—भयानक जगत्‌में भी उन्हींके नाते अत्यन्त प्रेम हो जायगा और सभी वस्तुएँ आनन्ददायिनी बन जायँगी; क्योंकि सबमें फिर उन्हीं परम प्रियतमका सम्बन्ध दीख पड़ेगा, सभी उनके करकमलोंसे संस्पृष्ट जान पड़ेंगी। फिर नाम परम मधुर हो जायगा। नाम सुनानेवाला परम प्रिय और परम पूज्य जान पड़ेगा। उनकी स्मृति करा देनेवालेके चरणोंमें चित्त लुट पड़ेगा।

बड़े भाग्यसे गंगाका विमल तट, तीर्थराजकी पावन भूमि, दिन-रात श्रीभगवन्नामके श्रवण-कीर्तनका संयोग प्राप्त होता है। यह श्रीभगवान्‌की कृपाका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इससे पूरा लाभ उठाइये। तन-मन-वाणीको, प्रत्येक इन्द्रियको भगवान्‌की ओर लगा दीजिये। ऐसा तन्मय हो जाना चाहिये कि आपलोगोंको देखकर दूसरोंमें भी उत्साह उमड़ आये।

मान-बड़ाईकी चाहका चित्तमें न रहना ही आश्चर्य है, रहनेमें कुछ भी आश्चर्य नहीं। हाँ, चोरीसे चित्तमें छिपी हुई इस चाहको जितनी ही सावधानीसे बार-बार बाहर निकाला जाय, उतना ही उत्तम है। और भगवान्‌की कृपासे ही ऐसा हो सकता है। यह भी भगवान्‌की कृपा ही समझिये कि आपलोगोंको मान-बड़ाईकी चिन्ताका पता लग गया है। इसे भगवान्‌के बलसे प्राप्त दैन्य, विनय, शील, सौजन्य, अपने दोषोंको देखनेकी सतत प्रवृत्ति और अपरिमित आत्मबल आदि हथियारोंसे तुरंत मार हटाना चाहिये।

सब साधकोंको अपनेसे बड़ा समझकर सबका सम्मान करना चाहिये। स्वयं सच्चे मनसे अमानी बनकर सबको मान देना चाहिये। मन, नेत्र और क्रियामें कहीं काम-क्रोधका अंकुर भी न आ जाय, इसके लिये बड़ी सावधानीसे सर्वदा सचेत रहना चाहिये। आलस्य और प्रमाद भी न हो। ऐसा निश्चय होना चाहिये कि इस अवधिमें ही भगवान् हमारे चिरकालके मनोरथको पूर्ण कर देंगे। सच्चा विश्वास होनेपर भगवत्कृपासे ऐसा होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ भी बड़ी बात नहीं है। भगवान्ने कहा है कि 'महान् दुराचारी भी अपने शेष जीवनको मुझमें लगानेका निश्चय करके अनन्य-चित्तसे मेरा चिन्तन करता है तो वह साधु ही है और बहुत ही शीघ्र—पलक मारते-मारते वह धर्मात्मा होकर शाश्वती शान्तिको प्राप्त हो जाता है।'

भगवान्के आश्वासन-वचनोंपर विश्वास करके हमें उनके अनन्य-चिन्तनमें दृढ़ निश्चयपूर्वक लग जाना चाहिये। और वहाँ आपको करना ही क्या है? शेष प्रभुकृपा।

(२)

अपने दोषोंपर विचार करो

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपने अपने दुःखके जो कारण लिखे, वे तो बाहरी हैं। असली कारण तो आपका अपना उच्छृंखल मन ही है। जो मनुष्य दूसरोंके प्रति मनमें बुरे भावोंका पोषण करता है, उसको दूसरोंसे बुरे भाव, प्रतिहिंसा, वैर आदि मिलनेका भय लगा ही रहता है। वह आप ही अपने लिये दुःखोंको बुलाता है। इतना ही नहीं, वह जगत्में भी दुःख ही फैलाता है। जिसके अन्दर जैसे विचार या भाव होते हैं, उसके वचनोंसे, आकृतिसे, भावभंगीसे वही विचार प्रतिक्षण बाहर निकलते रहते हैं। उसके रोम-रोमसे स्वाभाविक ही वैसे ही परमाणु प्रकट हो-होकर दूर-दूरतक फैलते हैं और न्यूनाधिकरूपमें सबपर अपना प्रभाव डालते हैं। सजातीय विचारवालोंपर अधिक और विजातीय विचारवालोंपर कम। जैसे चेचक और हैजे आदि रोगोंके कीटाणु सर्वत्र फैलकर रोग फैला देते हैं, वैसे ही मनुष्यके अन्दर रहनेवाले घृणा, द्वेष, भय, वैर, शोक, विषाद, चिन्ता, क्रोध, काम, लोभ, डाह आदि मानसिक रोगोंके परमाणु भी सर्वत्र फैलकर लोगोंको रोगी बनाते हैं। आपके घरमें जो कलह है, इसमें केवल दूसरे पक्षका ही दोष है—ऐसी बात नहीं माननी चाहिये और वस्तुतः ऐसा है भी नहीं, उसमें आपका भी दोष है और वही कलह फैलाकर आपको और घरके दूसरे लोगोंको दुःखी बना रहा है। भगवान्ने गीतामें कहा है—

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥

(६।५-६)

'आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है। जिसके द्वारा मन, वाणी आदि जीते हुए हैं, वह तो आप ही अपना मित्र है और जिसके द्वारा नहीं जीते हुए हैं, उसने आप ही अपने साथ शत्रुकी तरह वैर ठान रखा है।'

जैसा अभ्यास होता है, मन वैसा ही बन जाता है। दोष-दर्शनका अभ्यास हो जानेपर दोष हुए बिना ही लोगोंमें दोष दीखने लगते हैं, इसलिये यह तो कठिन है कि इस पत्रके पढ़ते ही आपको दूसरोंके दोष दीखने बन्द हो जायँ। ऐसा हो जाय तो बड़े ही आनन्दकी बात है, परंतु आशा कम है। अतएव आप शान्ति और धीरजके साथ अपने दोषोंको भी खोजने और देखनेका प्रयत्न कीजिये। जहाँ अपने दोष दीखने लगेंगे, वहीं दूसरोंके दोष दीखने कम होने लगेंगे। फिर आगे चलकर यह दशा हो जायगी—

बुरा जो देखन मैं गया बुरा न दीखा कोय।
जो तन देखा आपना मुझ-सा बुरा न कोय॥

और जब दूसरोंके दोषकी बात याद ही न रहेगी और सब तरहसे अपने ही दोष—अपराध प्रत्यक्ष सामने रहेंगे, तब तो स्वाभाविक ही अपने दोषोंके लिये पश्चात्ताप होगा और नम्रतापूर्वक सबसे क्षमा चाहनेकी प्रवृत्ति बलवती हो उठेगी। चैतन्य महाप्रभुसे दया पाये हुए जगाई-मधाईका अन्तिम जीवन रो-रोकर सबसे क्षमा चाहनेमें ही बीता था। वे पश्चात्ताप और करुणाकी मूर्ति बन गये थे।

आपसे प्रेम है और आप मेरे कहनेको बुरा न मानकर उसे अच्छी दृष्टिसे देखेंगे तथा विचार करेंगे—यही समझकर आपको इतना लिखनेका साहस किया गया है। शेष प्रभुकृपा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७०, शक १९३५, सन् २०१३-२०१४, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ३। ३१ बजेतक	बुध	आर्द्रा रात्रिमें २। ४५ बजेतक	१८दिसम्बर	स्थायी दुर्लभ सन्धिकरयोग दिनमें ३। ३१ बजेसे रात्रिमें २। ४५ बजेतक।
द्वितीया रात्रिमें ५। ३८ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु रात्रिशेष ५। २१ बजेतक	१९ ,,	कर्कराशि रात्रिमें १०। ४२ बजे, भद्रा रात्रिशेष ६। ४३ बजेसे।
तृतीया ,, ७। ४९ बजेतक	शुक्र	पुष्य अहोरात्र	२० ,,	भद्रा रात्रिमें ७। ४९ बजेतक। संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ७। ५३ बजे।
चतुर्थी ,, ९। ५१ बजेतक	शनि	पुष्य दिनमें ७। ५७ बजेतक	२१ ,,	मूल दिनमें ७। ५७ बजेसे।
पंचमी ,, ११। ३९ बजेतक	रवि	आश्लेषा दिनमें १०। २१ बजेतक	२२ ,,	सिंहराशि दिनमें १०। २१ बजे, सायन मकरका सूर्य दिनमें ७। २२ बजे।
षष्ठी ,, १। ३ बजेतक	सोम	मघा ,, १२। २७ बजेतक	२३ ,,	भद्रा रात्रिमें १। ३ बजेसे, मूल दिनमें १२। २७ बजेतक।
सप्तमी ,, २। ० बजेतक	मंगल	पू०फा० ,, २। ७ बजेतक	२४ ,,	भद्रा दिनमें १। ३१ बजेतक, कन्याराशि रात्रिमें ८। २६ बजे।
अष्टमी ,, २। २७ बजेतक	बुध	उ० फा० ,, ३। २१ बजेतक	२५ ,,	बुधाष्टमी, अष्टकाश्राद्ध।
नवमी ,, २। १९ बजेतक	गुरु	हस्त सायं ४। ३ बजेतक	२६ ,,	तुलाराशि रात्रिमें ४। ९, अन्वष्टकाश्राद्ध।
दशमी ,, १। ४५ बजेतक	शुक्र	चित्रा ,, ४। १६ बजेतक	२७ ,,	भद्रा दिनमें २। २ बजेसे रात्रिमें १। ४५ बजेतक।
एकादशी ,, १२। ४० बजेतक	शनि	स्वाती दिनमें ४। ० बजेतक	२८ ,,	सफला एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी ,, ११। १३ बजेतक	रवि	विशाखा ,, ३। १९ बजेतक	२९ ,,	वृश्चिकराशि दिनमें ९। २९ बजेतक, पू०षा० का सूर्य दिनमें १२। १७ बजे।
त्रयोदशी ,, ९। २६ बजेतक	सोम	अनुराधा ,, २। १९ बजेतक	३० ,,	भद्रा रात्रिमें ९। २६ बजेसे, सोमप्रदोषव्रत, मासशिवरात्रिव्रत, मूल दिनमें २। १९ बजेसे।
चतुर्दशी ,, ७। २३ बजेतक	मंगल	ज्येष्ठा ,, १। २ बजेतक	३१ ,,	भद्रा दिनमें ८। २५ बजेतक, धनुराशि दिनमें १। १ बजे।
अमावस्या सायं ५। ८ बजेतक	बुध	मूल ,, ११। ३० बजेतक	१ जन.१४	अमावस्या, सन् २०१४ प्रारंभ, मूल दिनमें ११। ३० बजेतक।

सं० २०७०, शक १९३५, सन् २०१४, सूर्य दक्षिणायन-उत्तरायण, हेमन्त-शिशिर-ऋतु, पौष शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें २। ४८ बजेतक	गुरु	पू० षा० दिनमें ९। ५२ बजेतक	२ जनवरी	चन्द्रदर्शन, मकरराशि दिनमें ३। २६ बजे।
द्वितीया ,, १२। २६ बजेतक	शुक्र	उ०षा० ,, ८। ११ बजेतक श्रवण रात्रिशेष ६। ३२ बजेतक	३ ,,	× × × ×
तृतीया ,, १०। ८ बजेतक	शनि	धनिष्ठा ,, ५। २ बजेतक	४ ,,	भद्रा रात्रिमें ९। ४ बजेसे, कुंभराशि रात्रिमें ६। ७ बजे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, पंचकारम्भ रात्रिमें ६। ७ बजे।
चतुर्थी प्रातः ७। ५९ बजेतक पंचमी रात्रिशेष ६। १ बजेतक	रवि	शतभिषा रात्रिमें ३। ४४ बजेतक	५ ,,	भद्रा प्रातः ७। ५९ बजेतक, शुक्रवार्द्धक्यारम्भ दिनमें ३। ५९ बजेसे।
षष्ठी रात्रिमें ४। २१ बजेतक	सोम	पू०भा० ,, २। ४१ बजेतक	६ ,,	मीनराशि रात्रिमें ८। १० बजे।
सप्तमी ,, ३। ३ बजेतक	मंगल	उ० भा० ,, २। ० बजेतक	७ ,,	भद्रा रात्रिमें ३। ३ बजेसे, मूल रात्रिमें २। ० बजेसे।
अष्टमी ,, २। १० बजेतक	बुध	रेवती ,, १। ४३ बजेतक	८ ,,	भद्रा दिनमें २। ३६ बजेतक, मेषराशि रात्रिमें १। ४३ बजे, बुधाष्टमी, शुक्रास्त पश्चिममें दिनमें ३। ५९ बजे, पंचक समाप्त रात्रिमें १। ४३ बजेतक।
नवमी ,, १। ४६ बजेतक	गुरु	अश्विनी ,, १। ५५ बजेतक	९ ,,	मूल रात्रिमें १। ५५ बजेतक।
दशमी ,, १। ५१ बजेतक	शुक्र	भरणी ,, २। ३४ बजेतक	१० ,,	साम्बदशमी (उड़ीसा)।
एकादशी ,, २। ३० बजेतक	शनि	कृत्तिका ,, ३। ४६ बजेतक	११ ,,	भद्रा दिनमें २। १० बजेसे रात्रिमें २। ३० बजेतक, वृषराशि दिनमें ८। ५२ बजे, पुत्रदा एकादशीव्रत (सबका), उ०षा०का सूर्य दिनमें १२। ५५ बजे।
द्वादशी ,, ३। ३६ बजेतक	रवि	रोहिणी रात्रिशेष ५। २५ बजेतक	१२ ,,	कूर्मद्वादशी।
त्रयोदशी रात्रिशेष ५। १० बजेतक	सोम	मृगशिरा अहोरात्र	१३ ,,	मिथुनराशि रात्रिमें ६। २७ बजे, सोमप्रदोषव्रत, लोहरी (पंजाब), शुक्रोदय पूर्वमें रात्रिमें १०। ९ बजे।
चतुर्दशी अहोरात्र	मंगल	मृगशिरा प्रातः ७। ३० बजेतक	१४ ,,	मकरका सूर्य रात्रिमें ७। ८ बजे, खरमास समाप्त, शिशिर-ऋतु प्रारम्भ।
चतुर्दशी प्रातः ७। ४ बजेतक	बुध	आर्द्रा दिनमें ९। ५३ बजेतक	१५ ,,	भद्रा प्रातः ७। ४ बजेसे रात्रिमें ८। ८ बजेतक, कर्कराशि रात्रिशेष ५। ४९ बजे, व्रतकी पूर्णिमा, मकरसंक्रान्तिजन्य पुण्यकाल दिनमें ११। ८ बजेतक, पोंगल, खिचड़ी।
पूर्णिमा दिनमें ९। १२ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु ,, १२। २८ बजेतक	१६ ,,	पूर्णिमा, शाकम्भरीजयन्ती, माघस्नानारम्भ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७०, शक १९३५, सन् २०१४, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ११। २२ बजेतक	शुक्र	पुष्य दिनमें ३। ० बजेतक	१७जनवरी	मूल दिनमें ३। ० बजेसे।
द्वितीया ,, १। २४ बजेतक	शनि	आश्लेषा रात्रिमें ५। ३२ बजेतक	१८ ,,	भद्रा रात्रिमें २। १७ बजेसे, **सिंहराशि** रात्रिमें ५। ३२ बजे।
तृतीया ,, ३। ११ बजेतक	रवि	मघा ,, ७। ४४ बजेतक	१९ ,,	भद्रा दिनमें ३। ११ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८। २१ बजे, मूल रात्रिमें ७। ४४ बजेतक।
चतुर्थी ,, ४। ३१ बजेतक	सोम	पू०फा० ,, ९। ३० बजेतक	२० ,,	कन्याराशि रात्रिमें ३। ५० बजे, **सायन कुंभका सूर्य** सायं ४। ३२ बजे।
पंचमी रात्रिमें ५। २७ बजेतक	मंगल	उ० फा० ,, १०। ५० बजेतक	२१ ,,	अभिजितका सूर्य प्रातः ७। ४१ बजे।
षष्ठी ,, ५। ४९ बजेतक	बुध	हस्त ,, ११। ३८ बजेतक	२२ ,,	भद्रा रात्रिमें ५। ४९ बजेसे रात्रिशेष ५। ४४ बजेतक।
सप्तमी,, ५। ३९ बजेतक	गुरु	चित्रा ,, ११। ५७ बजेतक	२३ ,,	तुलाराशि दिनमें ११। ४८ बजे, **श्रीरामानन्दाचार्य-जयन्ती।**
अष्टमी सायं ५। ० बजेतक	शुक्र	स्वाती ,, ११। ४७ बजेतक	२४ ,,	**अष्टका श्राद्ध, श्रवणका सूर्य** दिनमें २। ४ बजे।
नवमी सायं ३। ५५ बजेतक	शनि	विशाखा ,, ११। ११ बजेतक	२५ ,,	भद्रा रात्रिमें ३। ११ बजेसे, **वृश्चिक राशि** सायं ५। २१ बजे, **अन्वष्टकाश्राद्ध।**
दशमी दिनमें २। २६ बजेतक	रवि	अनुराधा ,, १०। १६ बजेतक	२६ ,,	भद्रा दिनमें २। २६ बजेतक, **गणतंत्रदिवस,** मूल रात्रिमें १०। १६ बजेसे।
एकादशी ,, १२। ३७ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा ,, ९। १ बजेतक	२७ ,,	धनुराशि रात्रिमें ९। १ बजे, **षट्तिला एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, १०। ३२ बजेतक	मंगल	मूल ,, ७। ३३ बजेतक	२८ ,,	**भौमप्रदोषव्रत,** मूल रात्रिमें ७। ३३ बजेतक, **तिलद्वादशी।**
त्रयोदशी ,, ८। १८ बजेतक चतुर्दशी रात्रिशेष ५। ५८ बजेतक	बुध	पू०षा० ,, ५। ५७ बजेतक	२९ ,,	भद्रा दिनमें ८। १८ बजेसे रात्रिमें ७। ८ बजेतक, **मकरराशि** रात्रिमें ११। ३२ बजे, **मासशिवरात्रिव्रत।**
अमावस्या रात्रिमें ३। ३५ बजेतक	गुरु	उ०षा० सायं ४। १० बजेतक	३० ,,	**अमावस्या, मौनी अमावस्या।**

सं० २०७०, शक १९३५, सन् २०१४, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १। १७ बजेतक	शुक्र	श्रवण दिनमें २। ३६ बजेतक	३१जनवरी	कुंभराशि रात्रिमें १। ५० बजे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें १। ५० बजे।
द्वितीया ,, ११। १८ बजेतक	शनि	धनिष्ठा ,, १। ३ बजेतक	१ फरवरी	**चन्द्रदर्शन।**
तृतीया ,, ९। ११ बजेतक	रवि	शतभिषा ,, ११। ४० बजेतक	२ ,,	मीनराशि रात्रिमें ४। ५१ बजे।
चतुर्थी ,, ७। ३३ बजेतक	सोम	पू०भा० ,, १०। ३५ बजेतक	३ ,,	भद्रा दिनमें ८। २१ बजेसे रात्रिमें ७। ३३ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, ६। १५ बजेतक	मंगल	उ० भा० ,, ९। ४९ बजेतक	४ ,,	**वसंतपंचमी, सरस्वतीपूजा,** मूल दिनमें ९। ४९ बजेसे।
षष्ठी सायं ५। २३ बजेतक	बुध	रेवती ,, ९। २४ बजेतक	५ ,,	मेषराशि दिनमें ९। २४ बजे, **श्रीशीतलाष्टमी** (बंगाल), **पंचक समाप्त** दिनमें ९। २४ बजे।
सप्तमी ,, ५। १ बजेतक	गुरु	अश्विनी ,, ९। २९ बजेतक	६ ,,	भद्रा सायं ५। १ बजेसे रात्रिशेष ५। ५ बजेतक, मूल दिनमें ९। २९ बजेतक, **अचला सप्तमी, रथसप्तमी, धनिष्ठाका सूर्य** दिनमें ४। १६ बजे।
अष्टमी ,, ५। ९ बजेतक	शुक्र	भरणी ,, १०। ३ बजेतक	७ ,,	वृषराशि सायं ४। १९ बजे, **श्रीभीष्माष्टमी।**
नवमी रात्रिमें ५। ५० बजेतक	शनि	कृत्तिका ,, ११। ७ बजेतक	८ ,,	**महानन्दानवमी।**
दशमी ,, ६। ५७ बजेतक एकादशी ,, ८। ३२ बजेतक	रवि	रोहिणी ,, १२। ४० बजेतक	९ ,,	मिथुनराशि रात्रिमें १। ४० बजे।
	सोम	मृगशिरा ,, २। ४० बजेतक	१० ,,	भद्रा प्रातः ७। ४४ बजेसे रात्रिमें ८। ३२ बजेतक, **जया एकादशीव्रत** (सबका), **भैमी एकादशी** (बंगाल)।
द्वादशी ,, १०। २८ बजेतक	मंगल	आर्द्रा सायं ५। ० बजेतक	११ ,,	**भीष्मद्वादशी, तिलद्वादशी, वाराहद्वादशी।**
त्रयोदशी ,, १२। ३४ बजेतक	बुध	पुनर्वसु रात्रिमें ७। ३४ बजेतक	१२ ,,	कर्कराशि दिनमें १२। ५५ बजे, **प्रदोषव्रत, कुंभका सूर्य** रात्रिशेष ५। ५३ बजे।
चतुर्दशी ,, २। ४३ बजेतक	गुरु	पुष्य ,, १०। ११ बजेतक	१३ ,,	भद्रा रात्रिमें २। ४३ बजेसे, मूल रात्रिमें १०। ११ बजेसे।
पूर्णिमा ,, ४। ४४ बजेतक	शुक्र	आश्लेषा ,, १२। ४६ बजेतक	१४ ,,	भद्रा दिनमें ३। ४४ बजेतक, सिंहराशि रात्रिमें १२। ४६ बजे, **पूर्णिमा, माघस्नान समाप्त।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपानुभूति

'भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी'

घटना दिनांक २७ दिसम्बर सन् २०१२ ई०की है। हमलोगोंका ९ सदस्यीय दल, अपने गुरुजीके साथ सुल्तानगंजसे काँवर लेकर बाबा वैद्यनाथधामतककी पैदल यात्रापर था। हमारे गुरुजी, जिन्हें हम श्रद्धावश 'भक्तराज' भी कहते हैं, भगवान् भोलेनाथके अनन्य भक्त हैं तथा विगत १२ वर्षोंसे लगातार प्रत्येक माह सुल्तानगंजसे बाबा वैद्यनाथधामतककी यात्रा तय करते आ रहे हैं। इसी क्रममें एक बार इन्होंने हरिद्वारसे बाबा वैद्यनाथधामकी भी काँवर-यात्रा पूरी की है। पुन: एक बार इन्होंने दण्ड-प्रणाम करते हुए सुल्तानगंजसे वैद्यनाथधामतककी ५५ दिनोंकी यात्रा तय की है। स्टेट बैंक ऑफ इण्डियाके ब्रांच मैनेजरके पदसे स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर एक वीतरागी गार्हस्थ्य जीवन बिताना तथा सतत अपने उद्धारकी चेष्टामें लगे रहना ही अब इनके जीवनका एकमात्र ध्येय रह गया है। हम पातकी मित्रोंके लिये तो इनका सांनिध्य आध्यात्मिक संजीवनीका काम करता है।

दिसम्बर माहकी हमारी काँवर-यात्रा दिनांक २४-१२-२०१२ से शुरू होकर दिनांक २८-१२-२०१२ को पूर्णिमाके दिन समाप्त हुई। २७ दिसम्बरको बाबा वैद्यनाथधामसे लगभग २० कि०मी० पूर्व इनरावरण नामक स्थानसे हम गुजर रहे थे। दिनके लगभग ग्यारह बजे थे। हमारे कुछ साथी आगे बढ़कर इनरावरणस्थित एक धर्मशालामें विश्राम कर रहे थे। हमारे गुरुजी दो साथियोंके साथ '**ॐ नमः शिवाय**' का जप करते हुए पीछेसे एक पक्की सड़कपर आ रहे थे। वह सड़क काफी चौड़ी थी तथा उस वक्त गाड़ियोंका यातायात भी काफी कम था। गुरुजी अपने दो साथियोंके मध्य सड़कके बिलकुल बायीं ओर चल रहे थे—एकदम उन्मत्त एवं बाबा भोलेनाथके ध्यानमें मग्न। कहीं कोई कोलाहल नहीं था। उस नीरव एवं शान्त वातावरणमें दूर-दूरतक कहींसे भी किसी दुर्घटनाकी गुंजाइश नहीं थी। परंतु पता नहीं कहाँसे बिजली-सी कौंधी, एक मोटरसाइकिल-सवार युवकका गुरुजीसे टकराना इतना जबर्दस्त था कि वे औंधेमुँह सड़कपर गिर पड़े एवं उनका काँवर भी लगभग ८-१० फीटकी दूरीपर जा गिरा। बादमें, अन्य दो साथियोंने उन्हें जब उठाया तो उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। इतनी जोरदार टक्करके बावजूद ७० वर्षीय गुरुजीके वृद्धशरीरमें एक खरोंचतक नहीं आयी थी और उससे भी बड़े आश्चर्यकी बात कि उनके काँवरसे एक बूँद भी गंगाजल नीचे नहीं गिरा था। तदनन्तर ये तीनों धीरे-धीरे घटना-स्थलसे चलकर इनरावरण धर्मशाला पहुँचे, जहाँ हमलोग विश्राम कर रहे थे।

यहाँ आकर गुरुजीने उस घटनाकी जो विवेचना की, वह मनको छू लेनेवाली थी। उन्होंने बताया कि एक काँवरिया सुल्तानगंजमें प्रवाहित उत्तरवाहिनी गंगामें स्नानकर गंगाजलका पात्र जब अपने काँवरमें रखता है तो साक्षात् भगवान् शिव उस काँवरमें विराजमान हो जाते हैं। चूँकि भगवान् सदाशिव स्वयं महाकाल हैं, इसलिये जबतक काँवर किसी काँवरियेके कन्धेपर रहता है, साक्षात् काल भी उस काँवरियेका एक बाल भी बाँका नहीं कर सकता है। इसलिये उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि वह मोटरसाइकिल-सवार व्यक्ति और कोई नहीं बल्कि एक काल था, जिसे भगवान् महादेवरूपी महाकालसे परास्त होना पड़ा।

भगवत्कृपा एवं भगवत्कृपापर अटूट विश्वासका अनुपम उदाहरण हमारे समक्ष था। वास्तवमें भगवान् आशुतोष तो औढरदानी हैं। वे अपने भक्तोंके भाग्यकी रेखा भी बदल सकते हैं—***'भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी'***। हम उनकी कृपाका अंदाजा नहीं लगा सकते। जरूरत सिर्फ अटल श्रद्धा एवं विश्वासकी है। माता पार्वती एवं बाबा भोलेनाथ श्रद्धा एवं विश्वासके ही तो स्वरूप हैं। इसलिये हमें चाहिये कि हम निश्चयात्मक बुद्धिसे शरणागत हों, परमपिता परमेश्वरकी सत्ता, उनकी अहैतुकी कृपा एवं उनके मंगलमय विधानपर अटूट विश्वास करें तथा सतत उन्हें स्मरण करते रहें। बाबा वैद्यनाथकी जय हो।—**विभाषचन्द्र झा**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

संकीर्तनने की प्राणोंकी रक्षा

जब असहज सहज हो जाता है, तब ही ईश्वरीय चमत्कार समझमें आता है। दिनांक ८ जनवरी सन् २०१२ ई०को घटी घटना इतनी अकल्पनीय है कि आज भी उसके स्मरणमात्रसे शरीरके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

यूँ तो मेरे मनमें चित्रकूट जानेकी भावना बहुत पहलेसे ही थी, पर जब हमारे सम्बन्धी कामठी-निवासी राजेश शर्मा, जो कि नियमितरूपसे प्रतिवर्ष चित्रकूट जाते हैं, का फोन आया कि प्रकाशजी! चित्रकूट चलेंगे? तो मुझे ***'बिन माँगे मोती मिले'*** वाली कहावत याद आ गयी। यूँ तो मैं रहवसी गोंदियाका निवासी हूँ, पर उस दिन मैं नागपुरमें था। मैंने यह बात उनसे कही भी, किंतु उन्होंने कहा कि मेरे बहनोई कान्ताप्रसाद पुरोहित, जो कि गोंदियामें ही रहते हैं, वे भी चल रहे हैं। हम आपका सामान उनके साथ मँगा लेते हैं तो रामधाम देखनेकी प्रबल भावनाने मुझसे 'हाँ' करा दी। सामान आनेपर कान्ताप्रसाद और इनकम टैक्सके रिटायर्ड अधिकारी लक्ष्मण पेंढेकरके साथ सुबह ६ बजे कारद्वारा चित्रकूट जानेका कार्यक्रम निश्चित हो गया।

दिनांक ७ जनवरी सन् २०१२ ई०को हम सभी अपने वाहन स्कार्पिओसे रवाना हो गये, लेकिन कुछ होनीके संकेत हमको शुरुआतमें ही मिल गये। कामठीसे जबलपुरमार्गपर १० किलोमीटर चलनेपर राजेश शर्माको महसूस हुआ कि गाड़ी बराबर नहीं चल रही है, उन्हें कुछ असहज लगा, तब वापस कामठी आकर दूसरी गाड़ी की, वह भी स्कार्पिओ ही थी, फिर उसमें सवार होकर सुबह ८ बजे चित्रकूटके लिये रवाना हुए। रास्तेमें भी काफी अड़चनें आयीं, जिनके कारण हम रात्रिमें करीब १२ बजे सतना पहुँचे। आगेका मार्ग काफी दुरूह है, यह जानकारी चित्रकूटमें एक परिचित व्यक्तिसे प्राप्त हो गयी थी, वे बोले आप सभी वहीं रात्रि बिता लें, सुबह चित्रकूटके लिये चलें, परंतु होनी कुछ और ही थी। हम रात्रि करीब १२ बजे सतनासे चित्रकूटके लिये रवाना हो लिये। सतनासे चित्रकूट नब्बे किलोमीटरकी दूरीपर है। चालीस किलोमीटर चलनेपर कोठी नामक गाँवमें रास्तेमें एक ढाबे-जैसा होटल था, वहाँ कुछ खानेके लिये रुके। कुछ खा-पीकर करीब १ बजे वहाँसे आगे बढ़े। तब मैंने रामायणमें वर्णित रावणद्वारा विभीषणको लात मारनेका प्रसंग सुनाते हुए कहा कि जैसे विभीषणने रामजीके पास जानेके लिये उनका चिन्तन किया, वैसे ही हमलोगोंको भी रामजीका स्मरण करते हुए यात्रा करनी चाहिये और हमने हनुमान-चालीसाके साथ ही संकीर्तन शुरू कर दिया, किंतु अभी गाड़ी १५ किलोमीटर ही चली होगी कि ड्राइवरको नींदका झोंका-सा आया। उसको सामने बैठे राजेश बाबूने महसूस भी किया और पलक झपकते ही उन्होंने स्टेयरिंग अपनी ओर मोड़ ली। इसी बीच गाड़ी सामने एक वृक्षसे भयंकररूपसे जा टकरायी। संकीर्तन तो रुक गया और सबकी हालत खराब हो गयी। कुछ समझमें नहीं आया कि क्या हुआ? मैं स्वयं चिल्लाने लगा, बाकी सब मौन-से हो गये। तत्काल गाड़ीका इंजिन जिससे घर्र-घर्रकी आवाज आ रही थी, उसको राजेशने बन्द किया; क्योंकि ड्राइवरका सिर स्टेयरिंगसे टकराया था। सभी लोग सकतेमें थे कि क्या हो गया? फिर हम सबने गाड़ीसे उतरकर घटनाकी गम्भीरताको देखा और ईश्वरकी परम कृपालुताकी अनुभूति की। गाड़ी सामनेसे पूरी तरह टूट गयी थी। राम-नामके संकीर्तनके प्रभावसे हम पाँचोंके साथ ही ड्राइवरके प्राणोंकी भी रक्षा हुई। जो चोट लगी, वह ***'सब्बलकी चोट सूईपर उतरी'*** वाली कहावत चरितार्थ हुई। रोमांचित हुए हम सभीने प्रभुको कोटिशः धन्यवाद देकर बार-बार प्रणाम किया। फिर दूसरी गाड़ीसे हम सभी चित्रकूट पहुँचे। घटनाका स्मरण जब भी होता है तो हमें महान् आश्चर्य होता है कि हम कैसे बच गये, परंतु दूसरे ही क्षण लगता है कि आज भी सर्वव्यापक सत्ता अपने शरणागतोंकी रक्षा करती है। उस समय हमलोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकीर्तन न कर रहे होते तो नींदके आगोशमें होते और वैसी स्थितिमें दुर्घटना और भी भयावह होती। सम्भव है कि हमलोगोंकी नींद मौतकी नींदमें बदल जाती, परंतु भगवन्नाम-स्मरण और संकीर्तनने हम सबके प्राणोंकी रक्षा कर ली—**प्रकाश पुरोहित**

(२)

ईमानदारीकी एक मिसाल

घटना सन् १९७७ ई०की है। तब मेरे बच्चे बहुत छोटे थे। छोटा बेटा तीन सालका था और बड़ा बेटा सात सालका। मेरे पति शुगरफैक्ट्रीके मालिक थे। खुद ही देखभाल करते थे। हमलोग मुरादाबादमें रहते हैं। दिल्लीमें मेरी ननदके लड़केकी शादी थी। मेरे पतिको मेरठमें बीमा निगमके कार्यालयमें कुछ कार्य था, अतः उनको मेरठ होते हुए दिल्ली जाना था। बीमा निगम कार्यालयके बाहर मैं बच्चोंको साथ लिये गाड़ीमें बैठी रही, बच्चे परेशान कर रहे थे तो मैंने बाहर गाड़ीपर उन्हें बैठा दिया। मैंने अपना पर्स भी वहीं रख दिया और बच्चोंको कुछ खिलाने-पिलाने लगी। थोड़ी देर बाद मेरे पति आये तो मैंने बच्चोंको साथ लिया और गाड़ीमें बैठ गयी। थोड़ी दूर जानेपर गाड़ीके पीछे साइकिलसे कोई रुकनेको आवाज देता हुआ आ रहा था। पहले तो मेरी कुछ समझमें न आया कि एक अपरिचित व्यक्ति हमें रुकनेको क्यों कह रहा है! पर जब एक स्कूटरवाला हमारी गाड़ीके बगलमें अपना स्कूटर लाकर रुकनेके लिये बोला तो मेरे पतिने गाड़ी रोक दी। उसने बताया कि आपका पर्स छूट गया है, एक दूधवाला ला रहा है। हुआ यह था कि मैं बच्चोंको लेकर तो गाड़ीमें बैठ गयी, पर मेरा पर्स गाड़ीके बोनटपर ही रखा रह गया था। गाड़ी चलनेपर वह गिर गया और उधरसे साइकिलसे आते हुए एक दूधवालेने उसे देख लिया। उसने पहले तो स्वयं आवाज देते हुए गाड़ीका पीछा किया, फिर उस स्कूटरवालेको सारी घटना बतायी और स्कूटरवालेने तेज रफ्तारसे स्कूटर दौड़ाकर हमें सूचना दी। मैं एक शादीमें सम्मिलित होने जा रही थी, अतः उस पर्समें शादीमें पहननेके लिये मेरे ढेर सारे गहने तथा सामान खरीदनेके लिये पन्द्रह हजार रुपये थे। उस समय इतने रुपये बहुत होते थे। भोले शंकरने हमेशा मेरा साथ दिया। मेरा सारा सामान ज्यों-का-त्यों सब कुछ सही-सलामत मिल गया। हमने उनका दिलसे धन्यवाद दिया। उनको कुछ रुपये भी मैंने देने चाहे, पर उन सज्जनने नहीं लिये। इस समय जिस प्रकार लूट-खसोट हो रही है, इनसानको इस घटनासे सबक लेना चाहिये। ईमानदारीसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है।—**श्रीमती शशि टण्डन**

(३)

श्रीरामजीके दरबारमें सब बराबर

अकारण-करुणावरुणालय श्रीरामजी सदैव अपने भक्तोंपर अपनी कृपाकी वर्षा करते रहते हैं और कभी-कभी उनके हृदयोंमें सात्त्विक प्रेमकी वृद्धिहेतु ऐसी लीला करते हैं कि भक्त रोता है और उसके प्रेमाश्रुओंको देखकर वे परम आनन्दित होते हैं, ऐसी ही श्रीरामजीके चरणारविन्दोंमें प्रेम बढ़ानेवाली एक सत्य घटना यहाँ प्रस्तुत है—

झाँसी (उ०प्र०)-से १७ कि०मी० दूरीपर ओरछा एक ऐतिहासिक स्थल साथ ही धर्मप्रेमी श्रद्धालुओंके लिये एक पावन तीर्थस्थल है। यहाँपर रामराजा सरकारका लगभग ५०० वर्ष प्राचीन मन्दिर है। यहाँपर श्रीरामजी राजाके रूपमें विराजित हैं। मधुकरशाह महाराजकी रानी गणेशकुँवरिजू इन्हें अयोध्यासे अपने साथ लायी थीं। श्रीरामजीका यह दिव्य विग्रह स्वयं प्रकटित है। श्रीरामराजा सरकारकी कृपासे सम्बन्धित अनेकों घटनाएँ लोग कहते हैं, किंतु यह घटना मेरी स्वयंकी आपबीती है और इसमें एक भी शब्द मिथ्या नहीं है। घटना लगभग ३० वर्ष पुरानी है।

श्रीहनुमान्‌जी महाराजकी कृपासे मैं विगत ३५ वर्षपूर्व प्रति रविवारको ओरछामें श्रीरामराजा सरकारके दर्शन सपरिवार करती थी और वहाँ उन्हें दो भजन सुनाती थी। एक बार मेरे मनमें इच्छा हुई कि रामराजा सरकारको पोशाक चढ़ाऊँ। इसके लिये मैंने रामनवमीका दिन निश्चित किया और पुजारीजीकी अनुमतिसे पोशाक तैयार करायी। मैं रामनवमीके ४-५ दिन पहले पड़नेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रविवारको पोशाककी पोटली लेकर मन्दिर आयी। पुजारीजीने मुझे देखा और बोले—बहिनजी! आपकी पोशाक रामनवमीको नहीं चढ़ सकती; क्योंकि उस दिन और उसके अगले दिन भी दो अधिकारियों (मुझे उनके पद स्मरण नहीं है)-की पोशाकें चढ़ेंगी। यह सुनते ही मैं फूट-फूटकर रोने लगी। पुजारीजी अपनी मजबूरी बता रहे थे और मुझे रामराजा सरकारपर गुस्सा आ रहा था। मैं मन-ही-मन उनसे कह रही थी। क्या यही तुम्हारा न्याय है? क्या तुम भी केवल बड़े लोगोंपर ही कृपा करते हो, गरीबोंपर नहीं? मैंने रोते-रोते कहा—मैं पोशाक छोड़े जा रही हूँ। जब चाहो पहन लेना। इसके बाद मैं घर लौट आयी।

रामनवमीके दो दिन पूर्व हम सभी दोपहरमें विश्राम कर रहे थे। अप्रैलका महीना था। गरमी काफी पड़ने लगी थी। तभी दरवाजेपर खट-खटकी आवाज हुई। हमने द्वार खोला तो पुजारीजी द्वारपर खड़े थे। हम सभी अचम्भित थे; क्योंकि पुजारीको तो हमारा घर भी नहीं मालूम था। ओरछासे वे अनेक लोगोंसे यह पूछते हुए कि भजन गानेवाली बहिनजी कहाँ रहती हैं, हमारे घर आये थे। पुजारीजी कहीं बाहर पानी भी नहीं पीते थे। अपने कमण्डलुसे जल पीकर और चैनकी साँस लेकर वे बोले—'बहनजी! मैं कई लोगोंसे आपका घर पूछता हुआ आया हूँ और मुझे यह कहना है कि रामनवमीको आपकी ही पोशाक धारण करायी जायगी। आप मन्दिर आयें और पोशाकके साथ प्रसादकी धनराशि भी उसी दिन लेती आयें।' मैंने पूछा—'आपने तो उस दिन कुछ और कहा था।' इसपर पुजारीजी बोले—'यह रामराजा सरकारकी इच्छासे ही सम्भव हुआ है। जिन दो अधिकारियोंकी बात मैंने की थी, उनमें एकका ट्रांसफर हो गया है और दूसरेको पोशाकका कपड़ा ही नहीं मिला।' यह सुनते ही मेरे नेत्रोंसे पुनः अश्रुधारा बहने लगी। मैंने रामजीको बहुत भला-बुरा कहा था। उसके लिये मैं अब क्षमा-याचना कर रही थी और मन-ही-मन उनकी न्यायशीलताकी प्रशंसा कर रही थी। इस घटनाके माध्यमसे उन्होंने बता दिया था कि उनके दरबारमें छोटे-बड़ेका अन्तर नहीं है। सब बराबर हैं।—**शान्ति शर्मा**

(४)

होनहार बिरवानके····

गाँवका एक बालक मिडिलक्लास पास करनेके बाद कोलकाता गया। घरमें इतनी गरीबी थी कि उसके लिये आगेकी शिक्षा पाना असम्भव था। कोलकातामें उसके चाचा नौकरी करते थे। बालक भी नौकरीकी तलाशमें जुट गया। वहाँ उसकी भेंट एक बड़े व्यापारीसे हुई। वह बालकके आदर्श व्यवहारसे बहुत खुश हुआ। उसने युवककी नौकरीके लिये बहुत प्रयास किया। लेकिन बालककी शिक्षा कम होनेके कारण कोई भी काम देनेके लिये तैयार नहीं हुआ। कोई भी उपाय नहीं देखकर उस व्यापारीने बालकको अपने ही कार्यालयमें हिन्दीके समाचारपत्रको पढ़कर सुनानेका काम दे दिया। इस कार्यके लिये उसे चार आने रोज मिल जाते थे। एक दिन बालक प्रातः आठ बजे छुट्टी माँगनेके लिये दफ्तर गया। उसने चपरासीको अपनी अर्जी दे दी और कहा कि मेरे चाचा बीमार हैं। आज मैं अपने कामपर नहीं आ सकता। घर लौटते समय उसने देखा कि कागजका एक बण्डल कोनेमें पड़ा हुआ है। उसने उस बण्डलको उठा लिया और चला आया। घरके एकान्तमें बण्डल खोला तो देखा कि उसमें एक हजार रुपयेके नोट भरे हैं। एक क्षणके लिये उसके मनमें लालच आया फिर सोचा कि यह बेईमानी होगी। इतने रुपयेसे मेरी जिन्दगी नहीं चल जायगी। यह विचार आते ही वह उलटे पाँव दफ्तर लौट गया। उस समय वह व्यापारी भी वहाँ मौजूद था। वह चपरासीको डाँट रहा था और चपरासी अपनी सफाई दे रहा था। बालकने बण्डल दिखाकर कहा—'क्या आपका यही बण्डल है। बण्डलको और उसमें पूरे नोटको पाकर व्यापारी बहुत खुश हुआ। उसने कहा—अब कलसे तुम क्लर्कका काम करोगे और कैशियरके साथ बैठोगे। तुम्हारा वेतन प्रति मास पचास रुपया होगा। यह तुम्हारी ईमानदारीका पुरस्कार है।' यही बालक आगे चलकर हिन्दीका प्रसिद्ध साहित्यकार बना। उनका नाम है—पण्डित रामनरेश त्रिपाठी।—**उमेशप्रसादसिंह**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

(१)

गर्वका अन्त

इस युगके—यूरोपके तीन महान् गर्विष्ठ—नेपोलियन, मुसोलिनी और हिटलर। तीनों अपनेको अपराजित माननेवाले। तीनोंने विश्वसाम्राज्यका स्वप्न देखा। तीनों तपे—खूब तपे; किंतु—

सम्राट् नेपोलियन—वह कहता था—'शब्दकोषसे 'असम्भव' शब्द निकाल देना चाहिये।' यूरोपको उसकी विजयवाहिनीने रौंदकर धर दिया। नेपोलियन जिधर गया—विजय उसका स्वागत करनेको पहलेसे प्रस्तुत मिली।

वही नेपोलियन—एक नन्हे-से समुद्री टापूमें कारागारमें मरा वह। उसकी विजयका क्या महत्त्व रह गया? एक साधारण कैदी बनकर वह जेलमें जब सड़ता रहा—कहाँ गया उसका गर्व?

×××

मदान्ध मुसोलिनी—पूरा दानव बन गया था वह। अपनी वायुसेनापर उसे बड़ा गर्व था। शक्तिके मदमें चूर मुसोलिनी—उसने कहा था—'युद्ध तो विश्वकी अनिवार्य आवश्यकता है।' नन्हे-से देश अबीसीनियापर बर्बर आक्रमण करके प्रसन्न होता रहा वह। उसने उस असमर्थ देशके निवासियोंपर विषैली गैसें डलवायीं—विजयके लिये।

वही मुसोलिनी—युद्धको विश्वकी अनिवार्य आवश्यकता बतानेवाला, वही सीन्योर मुसोलिनी—युद्धने ही उसे समाप्त कर दिया। फाँसीके तख्तेपर प्राणान्त हुआ उसका।

×××

हिटलर—हिटलरका तो नाम ही आतंकका प्रतीक बन गया था। हिटलरने जैसे एक हाथमें हथकड़ी और दूसरे हाथमें बम लेकर विश्वको चुनौती दी थी—'हथकड़ी पहनो—मेरी परतन्त्रता स्वीकार करो। नहीं तो मैं तुम्हारे ऊपर बम पटक दूँगा। भून दूँगा मैं तुम्हें।'

युद्धकी अग्नि स्वयं हिटलरने लगायी और उस युद्धने उसके सामने ही जर्मनीको खण्डहर कर दिया। हिटलर—एडॉल्फ हिटलरका अस्तित्व इस प्रकार मिट गया कि उसके शवका भी किसीको पता न चला।

×××

भगवान् गर्वहारी हैं। मनुष्यका गर्व मिथ्या है। धनका, बलका, सेनाका, ऐश्वर्यका—किसीका, कितना भी बड़ा गर्व—गर्व तो मिटेगा—मिटकर रहेगा। गर्व भूलकर भी नहीं करना!

(२)

सभी मृत्युके मुखमें

नेवलेने सर्पको पकड़ रखा है, सर्पने मेढकको और मेढक मक्खियोंके आखेटमें मग्न है। एक रूपक है यह।

सारा संसार मृत्युके मुखमें पड़ा है। मृत्युने पकड़ रखा है, केवल निगल जानेकी देर है—किसी क्षण वह निगल लेगी। प्रतिदिन लोग हम सबके सामने मरते हैं। हम स्वयं किसी क्षण मर सकते हैं।

मृत्युके मुखमें पड़ा हुआ भी यह मनुष्य दूसरोंको सताना, दूसरोंको पीड़ा देना, दूसरोंका स्वत्व हरण करना, दूसरोंको मारना छोड़ता नहीं है। स्वार्थसे प्रमत्त मनुष्य—सर्वथा विवेकशून्य चेष्टा है उसकी।

छल-कपट, हिंसा-चोरी, झूठ-ठगीसे प्राप्त धन—क्या काम आयेगा यह धन? क्या सुख देंगे ये भोग?

बड़े छोटोंको, सबल निर्बलोंको, धनी निर्धनोंको सताने, धमकाने, ठगने—चूसनेमें लगे हैं। मनुष्य मनुष्यका शत्रु बना घूम रहा है! किसलिये?

उसका वैभव, उसका उपार्जन, उसके स्वजन—जिस सुखके लिये, जिन स्वजनोंके लिये, जिस शरीरके लिये वह यह पाप कर रहा है, वे सब नष्ट होंगे। महाकाल उन सब भोगों, पदार्थों और व्यक्तियोंको पीस देनेवाला है। स्वयं मनुष्य मर्त्य है—मृत्युके मुखमें पड़ा है।

यह पापकी कमाई—जन्म-जन्मतक मृत्युरूपी सर्पके मुखमें पड़े रहनेकी यह तैयारी—इसे छोड़े बिना कल्याण नहीं है। इस मोहसे छूटकर ही मृत्युसे छूटा जा सकता है।

भगवान्—केवल भगवान् ही बचा सकते हैं कालसर्पसे ग्रस्त प्राणीको। उन दयामयकी शरण—उन मंगलमयका स्मरण—कल्याणकी कामना हो तो यही एकमात्र मार्ग है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावधान रहनेकी आवश्यकता

आजकल समाचारपत्रोंमें यौनशोषण एवं नाबालिगसे बलात्कारके समाचार निरन्तर आते रहते हैं, इसके साथ ही हिंसा-हत्याके भी समाचार मिलते हैं। स्वाभाविक रूपसे समाजमें इसका प्रतीकार, विरोध और आन्दोलन भी होता है। इसे रोकनेके लिये सरकार एवं सर्वोच्च न्यायालय दोनों प्रयासरत हैं। कड़े कानून भी बनाये जा रहे हैं, फिर भी पूरी सफलता प्राप्त नहीं हो रही है।

पिछले कुछ समयसे एक ऐसे व्यक्तिपर नाबालिग लड़कीके साथ यौनशोषणका आरोप लगाया गया है, जिसकी पिछले कितने ही वर्षोंसे आध्यात्मिक जगत्‌में विशेष मान्यता रही है। हजारों-लाखोंकी संख्यामें उनके शिष्य भी हैं। यह आरोप सत्य है या असत्य—इसका निर्णय तो न्यायपालिका करेगी, परंतु इस प्रकारकी घटना सन्त-महात्माओंको अपमानित और कलंकित करती है। सर्वसाधारणका विश्वास डिगता है। सत्संग एवं सन्त-महात्माओंमें आस्था स्वाभाविक रूपसे सशंकित होती है।

कहते हैं कि कहीं आग लग जाय तो उसे पानीसे बुझाया जा सकता है, परंतु यदि पानीमें ही आग लग जाय तो उसे किससे बुझाया जाय? सत्संग एवं आध्यात्मिक उपदेशोंसे संसारके दुष्कर्मियोंको सुधारनेका प्रयास किया जा सकता है, किंतु सत्संग करानेवाले एवं उपदेश देनेवाले सन्तपर जब इस प्रकारके आरोप लगते हैं तो फिर किससे आशा की जाय?

कुछ वर्षपूर्व कल्याण (जून, सन् २०१०)-के अंकमें एक लेख छपा था 'सावधान रहनेकी आवश्यकता', जिसमें एक सत्य घटना दी गयी थी, जिसे यहाँ पुनः दिया जा रहा है—

वृन्दावनके एक वृद्ध सन्त, जो उन दिनों बंगालीबाबाके नामसे प्रसिद्ध थे। उनकी आयु लगभग सौ वर्ष थी। वे उच्चकोटिके साधक थे। सन्त-महात्माओं और भक्तोंमें उनके प्रति अत्यधिक श्रद्धा और आदरका भाव था। उड़ियाबाबा आदि कई अच्छे सन्त उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करते थे। उनके महाप्रयाणके समय अन्तिम कालमें उनके अनुयायी भक्त और सन्त-महात्माओंने उनसे पूछा कि महाराज! आप अपने जीवनमें की हुई साधनाके अनुभवकी कोई सार बात हम सबको बता दें, जिसे हम भी अपने जीवनमें उतार सकें तो उन महात्माने कहा कि जीवनका खास अनुभव बताता हूँ—यदि मेरे सामने करोड़ों-अरबों रुपये रख दो तो मैं उसे देखूँगा भी नहीं, परंतु यदि मेरे समक्ष एकान्तमें कोई युवती स्त्री आ जाय तो उस समय मेरी स्थिति क्या होगी, यह मैं नहीं जानता अर्थात् ऐसी परिस्थितिमें स्वयंपर भी मेरा विश्वास नहीं। अतः सन्त-महात्मा, भक्त और अपना कल्याण चाहनेवाले साधकको पूरी सावधानीके साथ इससे बचना चाहिये। परंतु आजकल कई माता-बहनें गुरुदीक्षा ले लेती हैं और समर्पणभावसे सेवाकी स्वाभाविक प्रवृत्तिके कारण अपने गुरुकी सेवामें संलग्न हो जाती हैं, जिसका परिणाम कभी-कभी भयावह हो जाता है। कभी-कभी तो साधुवेशमें वंचक (ठग) होते हैं, जो इसका पूरी तरह दुरुपयोग करते हैं।

कई बार ऐसे समाचार मिलते हैं कि कुछ व्यक्ति साधुवेशमें अनाचार, व्यभिचारका आश्रय लेकर अवैध, अश्लील धंधा चलाते हुए भोली-भाली मासूम बालाओंको इसका शिकार बना रहे हैं। ऐसे व्यक्ति साधुवेशको कलंकित करते हुए समाज, राष्ट्र और देशका वातावरण विषाक्त करते हैं। जब किसी व्यक्तिके जीवनका लक्ष्य स्वार्थ और भोग हो जाता है तो उसकी बुद्धि तमसाच्छन्न हो जानी स्वाभाविक है। ऐसे व्यक्ति भोगोंमें संलिप्त होकर अर्थ-कामपरायण तो होते ही हैं, उनके सभी कार्य अनर्गल, अवैध तथा आसुरीभावोंसे सम्पन्न होते हैं। भगवान्, परलोक और धर्मका प्रयोग वे समाजको ठगनेके लिये दिखावेके रूपमें करते हैं। ऐसे व्यक्तिको 'दम्भी' कहा जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अपने शास्त्रोंमें आध्यात्मिक दृष्टिसे दम्भकी बड़ी निन्दा है। ऐसा व्यक्ति शास्त्र, देवता तथा ऋषियोंको निमित्त बनाकर तथा धर्म और भगवान्की दुहाई देकर भोली-भाली धर्मभीरु जनताको अपनी ओर आकर्षित करता हुआ अपनी कामवासनाओंको तृप्त करनेका प्रयास करता है और दूसरोंको भी इस प्रकारके आचरण करनेकी प्रेरणा देता है। इस प्रकारके भौतिक जीवनसे संलग्न व्यक्तिका चारित्रिक पतन तो अवश्यम्भावी है। अतः सर्वसाधारणको ऐसे लोगोंसे सावधान रहनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। कारण, कुसंग व्यक्तिको पतनके गर्तमें गिरा देता है।

भारत धर्मप्रधान देश है। यह सन्त-महात्माओंकी पवित्र कर्मभूमि है। भगवत्प्राप्तिके साधक विभिन्न सम्प्रदायोंके द्वारा इस देशमें चिरकालसे पवित्र भगवद्भावोंका प्रचार होता आया है। इस देशने ऐसे महापुरुषोंको जन्म दिया है, जिनसे जनमानसको समय-समयपर आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा है। इसीलिये कभी-कभी गेहूँके साथ घुन पिसनेकी कहावत भी चरितार्थ हो जाती है।

परंतु वास्तविकता यह है कि कलिका प्रभाव तेजीसे बढ़ रहा है। प्रत्येक क्षेत्रमें बहुत तेजीसे गिरावट आ रही है। सन्त-महात्मा भी इसके शिकार हो रहे हैं।

मुझे किसीने बताया कि आजकल जिस सन्तपर आरोप लगाये जा रहे हैं, वे अपने आरोपको हलका करनेकी दृष्टिसे कहते हैं कि स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, यहाँतक कि स्वामी रामसुखदासजीपर भी इस प्रकारके आरोप लगाये गये, परंतु इनकी यह बात सर्वथा निराधार है। स्वामी रामसुखदासजी तो वर्तमान समयके सन्त थे। यह बात सर्वविदित है कि वे किसी स्त्रीसे अपना चरणस्पर्शतक नहीं कराते थे। यदि भूलसे किसीने कर लिया तो उन्हें उपवास करना पड़ता था। किसी स्त्रीसे वे एकान्तमें नहीं मिलते थे। उनके कक्षमें स्त्रीका प्रवेश वर्जित था। उनपर इस प्रकारके मनगढ़न्त आरोप लगाना अत्यन्त अनुचित है। वास्तवमें उनका जीवन साधु-सन्तोंके लिये प्रेरणाका स्रोत है।

शास्त्रोंमें गुरुकी महिमा भी बतायी गयी है, परंतु परमात्ममार्गका गुरु तो वही हो सकता है, जो शिष्यके अज्ञानान्धकारको हरकर ज्ञानकी दिव्य ज्योति प्रदान करे और भगवत्प्राप्तिके पावन पथपर अग्रसर करनेमें समर्थ हो। पर ऐसे गुरु आजकल मिलने बहुत कठिन हैं। वंचक गुरुओंके द्वारा भोली-भोली जनताके ठगे जानेकी सम्भावना प्रबल है।

अपने शास्त्रोंमें यह स्पष्ट निर्देश है कि '**पतिरेव गुरुः स्त्रीणां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः**' स्त्रीका गुरु तो पति ही है। यहाँ मूल श्लोकमें '**एव**' शब्दका प्रयोग होनेके कारण स्त्रियोंके लिये अन्य गुरुका निषेध अपने-आप हो जाता है। कई अच्छे सन्त आज भी किसी स्त्रीसे एकान्तमें नहीं मिलते, एकान्तमें वार्ता नहीं करते। परंतु ऐसे सन्त संख्यामें नगण्य हैं।

फिर भी निरापद मार्ग यही है कि परमात्म-प्रभुका ही हम गुरुरूपमें वरण करें। इसीलिये हमारे महापुरुषोंने कहा है—'**कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्**' भगवान् श्रीकृष्णकी वन्दना जगद्गुरुके रूपमें की जाती है। गोस्वामीजीने भी हनुमान-चालीसामें हनुमान्जी महाराजकी गुरुरूपमें वन्दना की है—'***जै जै जै हनुमान गोसाईं। कृपा करहु गुरु देव की नाईं॥***' इसी प्रकार सन्तोंने भगवान् सदाशिवको परम गुरुके रूपमें प्रणाम किया है। जिस देवमें श्रद्धा टिकती हो, उनका ही मानसिक रूपसे गुरुरूपमें वरण कर लेना चाहिये। इसके साथ ही मध्यम मार्गसे सन्त-महात्माओंके सत्संगका लाभ प्राप्त करना चाहिये और उनकी कल्याणकारी बातोंको अपने जीवनमें उतारनेका पूर्ण प्रयास करना चाहिये। सत्संगकी तो बड़ी महिमा है, परंतु सन्निकटताकी आवश्यकता नहीं; कारण, इससे कभी-कभी सन्तमें भी दोषदृष्टि हो जाती है, जो कल्याणकारी नहीं है, अतः इससे बचना चाहिये।

—**राधेश्याम खेमका**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्रैल २०१३ से सितम्बर २०१३ तक प्रकाशित नवीन पुस्तकें

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1951, 1952	श्रीमद्भागवतमहापुराण बेड़िया सटीक, मोटा टाइप, दो खण्डोंमें सेट	७००
1955	जीवनचर्या विज्ञान	३५
1953	श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड, मूल, पुस्तकाकार	३०
1958	गीता-संग्रह	८०
1954	शिव-स्मरण	८
1957	चित्र-श्रीलक्ष्मीनारायण	१०
1970	चित्र-,, एवं श्रीगणेशजी	१०
	मराठी	
1950	हरिविजय	८०

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
	तमिल	
1961	श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण वचनमु (भाग-१)	१९०
1962	,, ,, (भाग-२)	१९०
1966	श्रीमद्भागवतमहापुराण—सटीक (भाग-१)	२२५
1967	,, ,, (भाग-२)	२२५
1968	,, ,, (भाग-३)	२५०
	कन्नड़	
1949	भागवतसुधासागर	२५०
	ओड़िआ	
1956	गीता-पदच्छेद-अन्वय	४०

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
	तेलुगु	
982	श्रीमद्देवीभागवत वचनमु	२००
1959	हरे राम हरे कृष्ण—स्टीकर	२
969	गो-सेवाका चमत्कार	२०
	गुजराती	
1960	सं० योगवासिष्ठ	१५०
	असमिया	
1963	सुन्दरकाण्ड—सटीक	१०
	कन्नड़	
1964	वा०रा०—सटीक-I	२००
1965	वा०रा०—सटीक-II	२००
1969	वा०रा०—सटीक-III	२५०

पिछले कुछ महीनोंसे अनुपलब्ध पुस्तक अब उपलब्ध—सं० भविष्यपुराण—(कोड 584)— यह पुराण विषय-वस्तु एवं वर्णन-शैलीकी दृष्टिसे अत्यन्त उच्च कोटिका है। इसमें धर्म, सदाचार, नीति, उपदेश, अनेकों आख्यान, व्रत, तीर्थ, दान, ज्योतिष एवं आयुर्वेद शास्त्रके विषयोंका अद्भुत संग्रह है। वेताल-विक्रम-संवादके रूपमें कथा-प्रबन्ध इसमें अत्यन्त रमणीय है। इसके अतिरिक्त इसमें नित्यकर्म, संस्कार, सामुद्रिक लक्षण, शान्ति तथा पौष्टिक कर्म, आराधना और अनेक व्रतोंका भी विस्तृत वर्णन है। मूल्य ₹ १५०

शीघ्र पुनर्मुद्रण—साधनाङ्क (कोड 604)— यह अङ्क साधनापरक बहुमूल्य मार्गदर्शनसे ओतप्रोत है। इसमें साधना-तत्त्व, साधनाके विभिन्न स्वरूप, ईश्वरोपासना, योगसाधना, प्रेमाराधना आदि अनेक कल्याणकारी साधनों और उनके अङ्ग-उपाङ्गोंका शास्त्रीय विवेचन है। **[इस मासके अन्ततक उपलब्धि सम्भावित]**

कागजके मूल्यमें अप्रत्याशित वृद्धि— गत एक वर्षके भीतर कागजके मूल्यमें लगभग २५% की असामान्य वृद्धि हुई है, अगले महीनोंमें ही और वृद्धि सम्भावित है। छपाई/बाइंडिंग/बिजली आदिके खर्चेमें भी अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। इसके परिणामस्वरूप गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तकों, आध्यात्मिक साहित्य एवं कल्याणका लागत मूल्य अप्रत्याशित रूपसे बढ़ गया है। हमारा पूरा प्रयास है कि सुधी पाठकोंपर इस मूल्य वृद्धिका भार कम-से-कम आवे, फिर भी परिस्थितिकी गम्भीरतासे पाठकोंको अवगत कराना आवश्यक प्रतीत होता है।

गीता-दैनन्दिनी [सन् २०१४] के सभी संस्करण अब उपलब्ध

पुस्तकाकार— **विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)—नित्य पाठके लिये गीता-मूल श्लोक एवं हिन्दी-अनुवाद** भी मूल्य ₹ ६५, बँगला (कोड 1489), ओड़िआ (कोड 1644), तेलुगु (कोड 1714)—प्रत्येकका मूल्य ₹ ६५ सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 503)—नित्य पाठके लिये गीता-मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ। मूल्य ₹ ५०

पॉकेट साइज— **सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 506)—नित्य पाठके लिये गीता-मूल श्लोक,** पॉकेट आदिमें रखनेयोग्य। मूल्य ₹ २५

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

प्र० ति० २०-१०-२०१३ Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2011-2013

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2011-2013

'कल्याण' वर्ष ८८ का विशेषाङ्क—'ज्योतिषतत्त्वाङ्क'

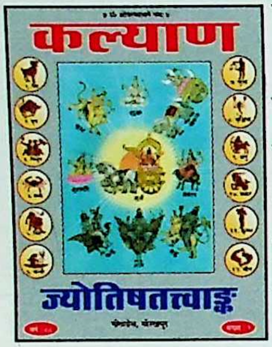

पितृदेवमनुष्याणां वेदः चक्षुः सनातनम्। तच्चक्षुर्ज्योतिषं शास्त्रं दिव्यं ज्ञानमतीन्द्रियम्॥

पितरों, देवों तथा मनुष्यों—सभीका सनातन चक्षु भगवान् वेद हैं और वेदका चक्षु ज्योतिषशास्त्र ही है, जिससे दिव्य एवं अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त होता है। मनुष्यके समस्त कार्य ज्योतिषके द्वारा ही चलते हैं। व्यवहारके लिये उपयोगी दिन, पक्ष, मास, वर्ष आदिका ज्ञान इसीके द्वारा होता है। यदि मानवको समयका ज्ञान न रहे तो कोई भी कृत्य यथासमय सम्पन्न न किया जा सकेगा। विश्वमें कालज्ञानके लिये जो साधन आज उपलब्ध हैं, उन सबका आधार ज्योतिष ही है। ज्योतिष ही बताता है कि आज कौन-सा दिन है, कौन-सी तिथि है, कौन-सा नक्षत्र है, कौन-सा मास है, कौन-सा संवत्सर है, कौन-सा युग चल रहा है, सूर्योदय कब हुआ, सूर्यास्त कब होगा इत्यादि। ज्योतिषके ज्ञानके बिना कालपर आधारित उपनयन, विवाह आदि संस्कार, तिथि-वार तथा नक्षत्रके सम्बन्धसे वर्षभरमें होनेवाले व्रतपर्वोत्सव, संक्रान्तियाँ और उनके दानादि कर्म, विविध शुभाशुभ मुहूर्तोंमें होनेवाले कृत्य, यात्रा आदिका विचार, वास्तुविचार, देवप्रतिमा-स्थापन, प्रतिष्ठा आदि कर्म, तीर्थयात्रा तथा श्राद्धादि पितृयज्ञ, ग्रहण-विचार एवं सन्ध्यावन्दन आदि नित्यकर्म—इनका सम्पादन लगभग असम्भव है।

हमारा विचार है कि ज्योतिषशास्त्रका वास्तविक शास्त्रीय मूलस्वरूप सर्वसाधारणके समक्ष आ सके और ज्योतिषसम्बन्धी भ्रान्त धारणाओंका निराकरण भी हो सके। इन्हीं सब दृष्टियोंसे गीताप्रेससे कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें आगामी वर्ष (जनवरी २०१४ ई० में) **'ज्योतिषतत्त्वाङ्क'** प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें ज्योतिषशास्त्रका परिचय एवं माहात्म्य तथा जीवनमें उसकी उपयोगिता, ज्योतिषाचार्योंका वृत्तान्त, पंचांग, मुहूर्त-विचार, जन्मकुण्डली-निर्माण एवं फलादेश, सामुद्रिक शास्त्र, वास्तु-विचार, स्वास्थ्य-विचार, व्यापार, विवाह, सन्तान, रत्न-विज्ञान इत्यादिका परिचय दिया गया है, जो पाठकोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है।

व्यवस्थापक—**'कल्याण-कार्यालय', पो०-गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५** (उ०प्र०)

वार्षिक ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

दिसम्बर माहका अङ्क प्रेषणके पश्चात् इस वर्षका प्रेषण कार्य पूरा हो जायगा। आशा है विशेषाङ्कका प्रेषण समयपर (जनवरी माहके प्रथम सप्ताहमें) प्रारम्भ हो जायगा। सदस्यता-शुल्क अग्रिम प्राप्त सदस्योंको विशेषाङ्क रजिस्ट्रीद्वारा पहले भेजकर शेष सभी सदस्योंको क्रमशः वी०पी०पी० द्वारा प्रेषित किया जायगा।

सदस्यता-शुल्क 'गीताप्रेस, गोरखपुर' की निजी दूकान/स्टॉल (अक्टूबर अङ्कमें प्रकाशित)-पर भी छपी रसीद लेकर जमा किया जा सकता है। **शुल्क-संग्रहहेतु अन्य कोई प्रतिनिधि नियुक्त नहीं है।** किसी कारणवश ग्राहक बने रहनेमें विवशता हो तो अवश्य सूचित कर दें, जिससे वी०पी०पी० का प्रेषण रोका जा सके। मनीआर्डर करनेके बाद मनीआर्डरकी रकम, मनीआर्डर नं० एवं ग्राहक-संख्यासहित अपना पूरा पता—**कल्याण-कार्यालय**को अलगसे अवश्य भेजना चाहिये।

सदस्यता-शुल्क—एकवर्षीय ₹ २०० अजिल्द (सजिल्द ₹ २२०), पंचवर्षीय ₹ १००० अजिल्द (सजिल्द ₹ ११००)।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०-गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ₹ ८

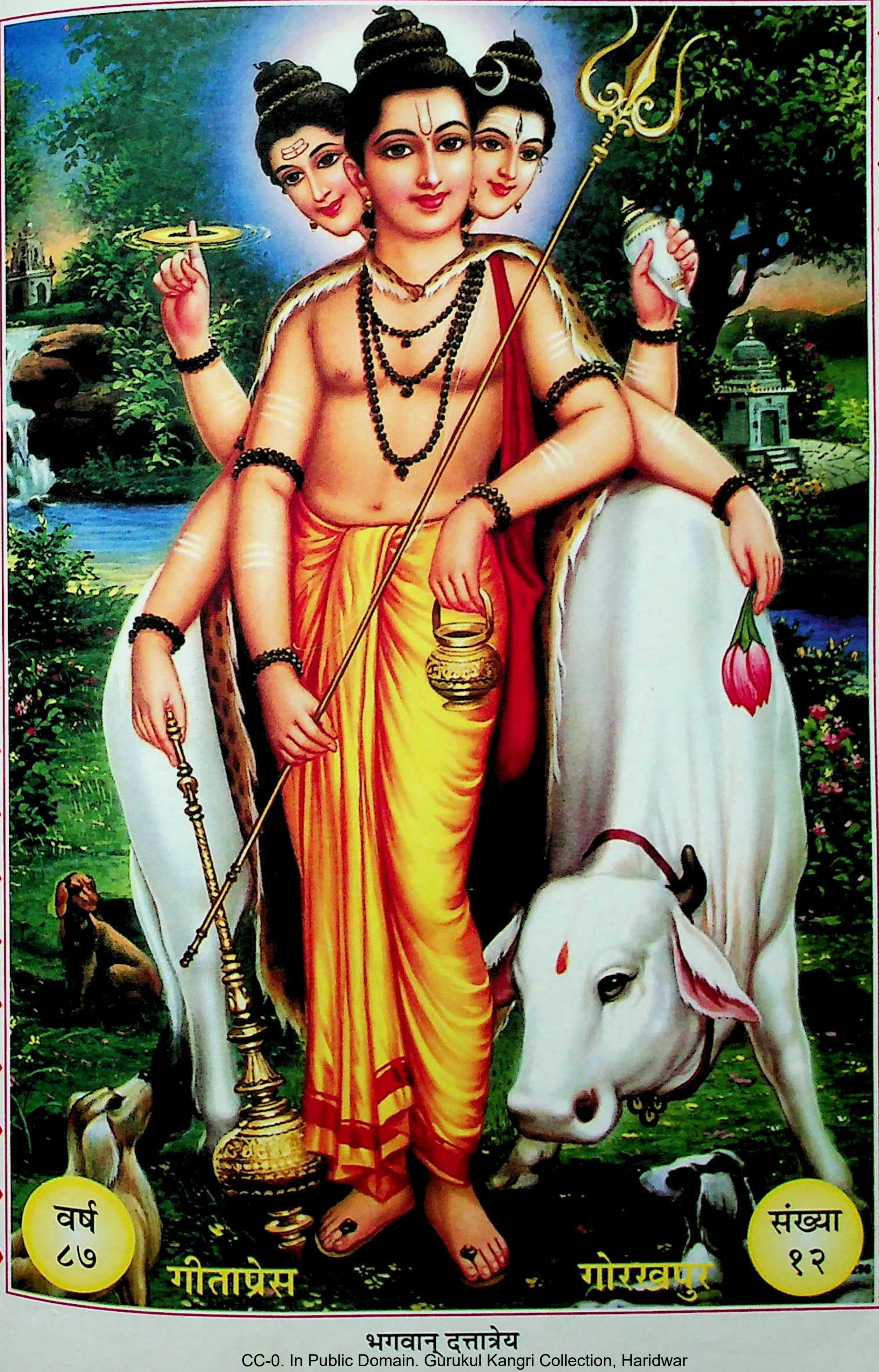

भगवान् दत्तात्रेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

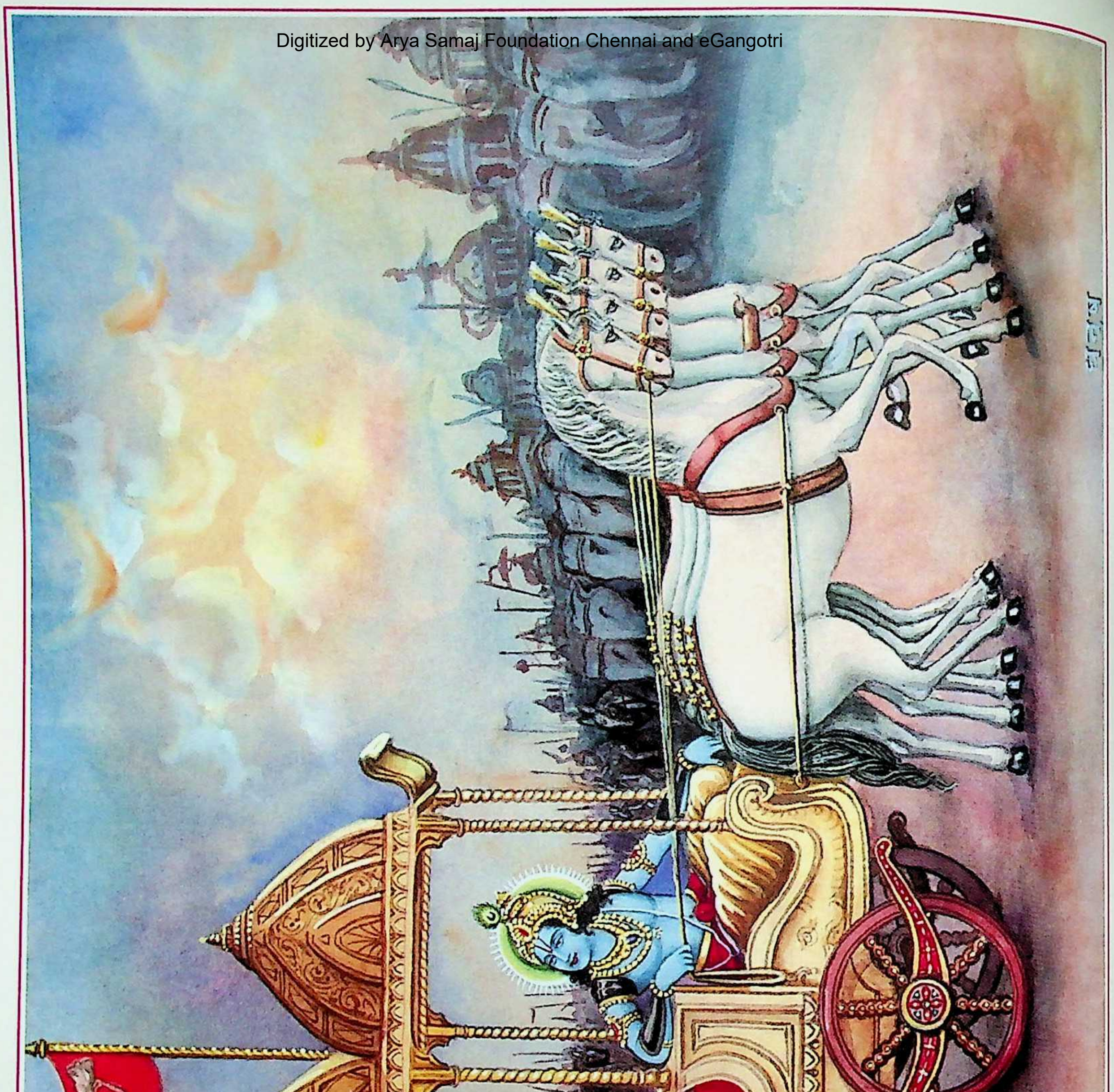

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

Central Library Gurukul Kangri University Haridwar-249404 (U.A.)

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

वर्ष ८७ — गोरखपुर, सौर पौष, वि० सं० २०७०, श्रीकृष्ण-सं० ५२३९, दिसम्बर २०१३ ई० — संख्या १२

पूर्ण संख्या १०४५

श्रीकृष्णजीका अर्जुनको स्वकर्मका उपदेश

अपना धर्म देखकर भी तू इस अधीरताको मत धार।
धर्मयुद्ध सम और नहीं कुछ क्षत्रियका है जगमें सार॥
स्वयं-प्राप्त यह खुला हुआ है युद्ध-सुरूप स्वर्गका द्वार।
भाग्यवान क्षत्रिय ही इसको पाते हैं, हे पाण्डुकुमार॥
मर जानेसे स्वर्ग मिलेगा, जय होनेसे भूतल राज।
इससे निश्चय ही भारत! तू हो जा खड़ा युद्धको आज॥
विजय-पराजय, हानि-लाभ, सुख-दुःख सभीको जान समान।
फिर प्रबृत्त हो जा तू रणमें, पाप नहीं होगा मतिमान॥

[पद-रत्नाकर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर पौष, वि० सं० २०७०, श्रीकृष्ण-सं० ५२३९, दिसम्बर २०१३ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- श्रीकृष्णजीका अर्जुनको स्वकर्मका उपदेश	३
२- कल्याण	५
३- महात्माओंकी महिमा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	६
४- श्रीमद्भगवद्गीताकी 'पुष्पिका' (आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र, 'विनय')	९
५- अभिमानी अधिक फँसता है (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	११
६- चैतन्य महाप्रभु [भक्तगाथा] (श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)	१५
७- साधकोंके प्रति—(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१८
८- श्रीरामकथाकी व्यापकता (श्रीरघुनन्दनप्रसादजी शर्मा)	२३
९- शास्त्रवाद (श्रद्धेय पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)	२६
१०- नवधा भक्ति—सख्य [कहानी] (श्री 'चक्र')	३०
११- अखण्ड भजनका स्वरूप (डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)	३४
१२- गाय—एक अद्भुत रसायनशाला (श्रीरोशनलालजी पाल)	३७
१३- 'ऐसी बानी बोलिए' (डॉ० श्रीसिद्धगोपालजी)	३८
१४- साधनोपयोगी पत्र	३९
१५- व्रतोत्सव-पर्व [फाल्गुनमासके व्रत-पर्व]	४०
१६- व्रतोत्सव-पर्व [चैत्रमासके व्रत-पर्व]	४१
१७- कृपानुभूति	४२
१८- पढ़ो, समझो और करो	४३
१९- मनन करने योग्य	४६
२०- निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची	४७

चित्र-सूची

१- भगवान् दत्तात्रेय .... (रंगीन) .... आवरण-पृष्ठ
२- गीतोपदेश .... (") .... मुख-पृष्ठ
३- रावणका अन्त .... (इकरंगा) ४६
४- सहस्रार्जुनका अन्त .... (") ४६

सन् २०१४ के लिये शुल्क
एकवर्षीय
अजिल्द ₹ २००
सजिल्द ₹ २२०
पंचवर्षीय
अजिल्द ₹ १०००
सजिल्द ₹ ११००

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 45 (2700), पंचवर्षीय US$ 225 (13500) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

चालू वर्षका शुल्क
एकवर्षीय
अजिल्द ₹ १८०
सजिल्द ₹ २००
पंचवर्षीय
अजिल्द ₹ १०००
सजिल्द ₹ ११००

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित
website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721
सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—मनुष्य जब सब उपायोंसे हार जाता है, तब उसे हरिनाम सूझता है—*'हारेको हरिनाम।'* तभी वह हरिनामको पकड़ता है और तभी उसे विजय मिलती है।

बस, दो बातें हैं—भगवान्‌की कृपापर विश्वास और भगवान्‌के नामका आश्रय। फिर कोई चिन्ता नहीं। ध्यान नहीं लगता, न सही; मन वशमें नहीं होता, न सही। (भगवन्नामका आश्रय सब ठीक कर देगा।)

भगवान् पापी और नीचके भी उद्धारक हैं, यह विश्वास करके केवल जीभसे भगवान्‌के नामका उच्चारण करते रहो। भगवान्‌में और भगवन्नाममें ऐक्य है, अभेद है।

सकल अंग पद बिमुख नाथ मुख नामकी ओट लई है।
है तुलसी परतीति एक प्रभु मूरति कृपामई है॥

—बस, विश्वास कर लो कि *'प्रभु मूरति कृपामई है।'* और जीभसे नामका उच्चारण करते रहो।

याद रखो—अन्तरके मलका नाश करनेके लिये भगवन्नामसे बढ़कर दूसरा सुलभ साधन है ही नहीं। स्त्री, बच्चे, बूढ़े सभी भगवान्‌का नाम बड़े प्रेमसे ले सकते हैं।

जिस प्रकार अग्निमें दाहिका शक्ति स्वाभाविक है, उसी प्रकार भगवन्नाममें पापको—विषय-प्रपंचमय जगत्‌के मोहको जला डालनेकी शक्ति स्वाभाविक है। इसमें भावकी अनिवार्यता नहीं है।

तर्कशील बुद्धि भ्रान्त धारणा करवा देती है कि बिना भावके क्या लाभ होगा? पर समझ लो, ऐसा सोचना अपने-आप गड्ढेमें गिरना है।

भाव हो या नहीं, हमें आवश्यकता है नाम लेनेकी। नामकी आवश्यकता है, भावकी अनिवार्यता नहीं।

भाव हो तो बहुत ठीक, परंतु हमें भावकी ओर प्रधानतया दृष्टि नहीं डालनी है। भाव न हो, तब भी नाम-जप तो करना ही है। देखो—नाम भगवत्स्वरूप ही है। नाम अपनी शक्तिसे, नाम अपने वस्तुगुणसे सारा काम कर देगा। विशेषकर कलियुगमें तो भगवन्नामके समान सरल और कोई साधन ही नहीं है।

याद रखो—मनोनिग्रह बड़ा ही कठिन है—चित्तकी शान्तिके लिये प्रयास करना बड़ा ही कठिन है, पर भगवन्नाम तो इसके लिये भी सहज साधन है। बस, भगवन्नामकी जोरसे ध्वनि करो, कीर्तन करो। मनोनिग्रह स्वतः हो जायगा। फिर तो मंगल-ही-मंगल है।

आलस्य और तर्क—ये दो नाम-जपमें बाधक हैं।

प्रायः आलस्यके कारण ही कह बैठते हो कि नाम-जप होता नहीं; किंतु यह तो बहाना है। भगवान्‌के स्मरण-कीर्तनमें कोई आयास होता ही नहीं।

अभ्यास बना लो, नाम लेनेकी आदत डाल लो। फिर तो स्वतः नाम-स्मरण-कीर्तन होने लगेगा।

'नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं'—इसपर श्रद्धा करो। इस विश्वासको दृढ़ करो। इसपर सज्जनोंके विचारके लिये ही सिद्धि-प्राप्त सन्तने सन्देश दिया है।

कंजूसकी भाँति नामको सँभालो। ***'पायो रामनाम चिन्तामनि उर कर ते न खसैहौं।'***

निश्चय समझो—नामके बलसे बिना परिश्रम ही भवसागर तर जाओगे और भगवान्‌के प्रेमको भी प्राप्त कर लोगे। निरन्तर भगवान्‌का नाम लो, कीर्तन करो। सन्तोंके विचारसे सर्वोत्तम साधन यही है।

'हारेको हरिनाम'—इसी उपायसे सबका मंगल दिखता है, अन्य उपायोंमें राग-द्वेष उत्पन्न होकर फँस जानेका भय है।

भगवान्‌पर विश्वास हो, उनकी कृपाका भरोसा हो और नाम-जप होता रहे तो अपने-आप ही निर्भयता आयेगी, साहस आयेगा तथा विपत्तिका टलना भी इसी उपायसे सम्भव होगा। **'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan December 2013_Section_1_2_Front

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्माओंकी महिमा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

जो पुरुष भगवान्‌को तत्त्वसे जानता है अर्थात् भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है, वह महात्मा है।

महात्माकी दृष्टिमें एक विज्ञानानन्दघन वासुदेवसे भिन्न और कुछ भी नहीं रहता।

महात्माका संग दुर्लभ, दुर्गम और अमोघ है।

परमात्माकी पूर्ण दयासे ही महात्मा मिलते हैं और उन्हींकी दयासे उन्हें पहचाना भी जा सकता है।

शान्ति, सरलता, समता, सुहृदता, शीतलता, सन्तोष, उदारता और दयाके तो महात्मा पुरुष अनन्त समुद्र होते हैं।

सत्यस्वरूपमें स्थित होनेके कारण महात्माओंका प्रत्येक आचरण सदाचार समझा जाता है। उनके आचरणोंमें असत्यके लिये कोई स्थान ही नहीं रह जाता।

अपना व्यक्तिगत किंचित् भी स्वार्थ न रहनेके कारण महात्माओंके आचरणोंमें किसी भी दोषका प्रवेश नहीं हो सकता। इसलिये उनके सम्पूर्ण आचरण दिव्य समझे जाते हैं।

महात्मा सम्पूर्ण भूतोंको अभयदान देते हुए ही विचरते हैं।

महात्मा किसीके मनमें उद्वेग करनेवाला कोई आचरण नहीं करते।

सर्वत्र परमेश्वरके स्वरूपको देखते हुए महात्मालोग स्वाभाविक ही तन, मन और धनको सम्पूर्ण भूतोंके हितमें लगाये रहते हैं।

महात्माओंके द्वारा झूठ, कपट, व्यभिचार, चोरी आदि दुराचार तो हो ही नहीं सकते।

स्वार्थका त्याग होनेके कारण महात्माओंके वचन और आचरणोंका लोगोंपर अद्भुत प्रभाव पड़ता है।

महात्माओंके आचरण लोगोंके लिये अत्यन्त हितकर और प्रिय होनेसे लोग सहज ही उनका अनुकरण करते हैं।

महात्माओंमें अहंता-ममताका अभाव होनेके कारण उनका बर्ताव सबके साथ पक्षपातरहित, प्रेममय और शुद्ध होता है।

प्रिय और अप्रियमें महात्माकी समदृष्टि होती है।

आपत्तिकालमें भी महात्मा सत्य, धर्म और न्यायके पक्षपर ही दृढ़ रहते हैं। कोई भी स्वार्थ या भय उन्हें सत्यसे नहीं डिगा सकता।

संसारमें महात्मा ही प्रमाणस्वरूप माने जाते हैं।

महात्मा जहाँ विचरते हैं, वहाँका वायुमण्डल पवित्र हो जाता है।

महात्मा जहाँ रहते हैं, वही स्थान तीर्थ बन जाता है।

महात्मा जो कर्म करते हैं, वे ही सुकर्म बन जाते हैं।

महात्माओंकी वाणी ही शास्त्र है।

महात्माओंका तो कहना ही क्या है, उनकी आज्ञाका पालन करनेवाले मनुष्य भी परमपदको प्राप्त हो जाते हैं।

जिस मनुष्यने संसारमें मान-बड़ाई और प्रतिष्ठाका त्याग कर दिया, वही महात्मा है।

साधु और महात्मा तो बहुत लोग कहलाते हैं, पर उनमें मान-बड़ाई और प्रतिष्ठाका त्याग करनेवाला कोई विरला ही होता है।

कीर्तिरूपी मोहिनी शक्ति जिसे नहीं मोह सकती, वही पुरुष धन्य है, वही मायाके दासत्वसे मुक्त है, वही ईश्वरके समीप है और वही यथार्थ महात्मा है। यह बहुत ही गोपनीय रहस्यकी बात है।

जब हम किसी महापुरुषके पास जाते हैं तो अश्रद्धाको प्रायः साथ ही लेकर जाते हैं।

हम इसी बातकी परीक्षा करते फिरते हैं कि किस महात्माजीमें कितना पानी है। दुःखकी बात तो यह है कि हम एक साधारण वैद्यकी भी इतनी परीक्षा नहीं करते।

महापुरुषकी वाणीका प्रत्येक शब्द उसके हृदयरूपी तराजूपर तुल-तुलकर आता है।

महात्माके वाक्य अमूल्य होते हैं, उनकी क्रियाएँ अमूल्य होती हैं और उनका भजन अमूल्य होता है।

महात्माके मन, वाणी और शरीरके प्रत्येक कार्य महत्त्वपूर्ण और तात्त्विक होते हैं।

महात्माकी मौन—अक्रिय-अवस्थामें भी विश्व-कल्याणका उपदेश भरा रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महापुरुषोंका भाषण, स्पर्श, दर्शन, कर्म, ध्यान—सभी पवित्र होते हैं। यहाँतक कि उनके द्वारा स्पर्श की हुई वस्तु भी पवित्र समझी जाती है।

महात्माओंका उपदेश, उन्हें किया हुआ नमस्कार, उनके साथ किया हुआ सम्भाषण—सभी कुछ कल्याणकारक होता है।

आत्मोद्धारके लिये महापुरुषोंकी शरण ग्रहण करनी चाहिये।

गंगाके स्नान-पानसे जिस प्रकार बाहर-भीतरकी पवित्रता होती है, उससे भी बढ़कर महात्माओंका संग पावन करनेवाला होता है।

सर्वस्वका नाश होनेपर भी गीता और महात्मा पुरुषोंकी बात नहीं टालनी चाहिये।

महात्मा पुरुष भागीरथीकी तरह स्वयं पवित्र और दूसरोंको भी पवित्र करनेवाले होते हैं।

तीर्थोंका तीर्थत्व सन्तों और प्रभुके संगसे ही माना जाता है।

जहाँ भगवान्‌ने वास किया अथवा महापुरुषोंने तपस्या की, वही स्थान तीर्थ बन गया।

महापुरुष जो क्रिया कर जाते हैं, वह लाखों वर्षोंके बाद भी पूजित होती है।

संसारमें जितने भी तीर्थ और देवस्थान हैं, उन सबकी महिमाके प्रधान कारण भगवान् और उनके भक्त ही हैं। परम पावनी भागीरथी प्रभु-चरणोंके प्रभावसे ही सर्वश्रेष्ठ मानी जाती हैं।

महापुरुषोंका संग मिलना बड़ा ही कठिन है, पुण्यके प्रभावसे ही उनकी प्राप्ति होती है।

महात्माओंके अमोघ संग और महती कृपासे जो व्यक्ति परमात्माके रहस्यसहित प्रभावको तत्त्वसे जान जाता है, वह स्वयं परम पवित्र होकर इस अपार संसार-सागरसे तरकर दूसरोंको भी तारनेवाला बन सकता है।

जीवन्मुक्त महात्मा निर्भय हो जाता है, वह शोकसे तर जाता है तथा अटल और नित्य शान्तिको प्राप्त होता है।

जीवन्मुक्तका संसारमें विचरना हमलोगोंके कल्याणके लिये ही होता है। उसे अपने लिये कोई कर्तव्य नहीं रहता।

जीवन्मुक्त पुरुषोंमें ऐसा भाव नहीं होता कि मैं संसारके हितके लिये विचरता हूँ। अमानित्व आदि सद्‌गुण तो उनमें पहलेसे ही आ जाते हैं।

जीवन्मुक्त पुरुषोंके दर्शनसे नेत्र, उनके साथ सम्भाषणसे वाणी और उनके चिन्तनसे मन पवित्र हो जाता है।

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाका और संसारकी किसी भी स्थितिका लोभ न होनेके कारण संसारकी कोई भी वस्तु महापुरुषको अपनी ओर नहीं खींच सकती। वे नित्य निर्भय पदमें स्थिर रहते हुए न तो किसीसे डरते हैं और न किसीके साथ कठोर बर्ताव ही करते हैं।

विनय-कोमलता, सत्य और शान्तिकी तो वे महापुरुष साक्षात् मूर्ति ही होते हैं।

क्षमा महापुरुषका स्वभाव बन जाता है, इससे क्रोधकी उत्पत्ति उनमें कभी होती ही नहीं।

शरीर रहते भी सम्यक् ज्ञान प्राप्त होनेपर जीवन्मुक्ति हो सकती है, जीता हुआ ही वह पुरुष मुक्त हो जाता है। इसीलिये उसे जीवन्मुक्त कहते हैं।

जीवन्मुक्तके शरीरका कार्य भी प्रारब्धानुसार चलता रहता है।

ज्ञानीकी दृष्टि ही वास्तवमें सत्य है।

मुक्त पुरुषके हृदयमें राग-द्वेष, हर्ष-शोक और काम-क्रोधादि विकारोंका सर्वथा अभाव हो जाता है।

'ज्ञानके अनन्तर भी ज्ञानीके हृदयमें राग-द्वेष, हर्ष-शोक, काम-क्रोध और सुख-दुःखादि होते हैं' एवं 'प्रारब्धके कारण ज्ञानीमें झूठ, कपट, चोरी और व्यभिचार आदि दुराचार भी रह सकते हैं'—इस प्रकार कहना मुनिप्रणीत आर्ष ग्रन्थों एवं युक्तियोंके सर्वथा विरुद्ध है।

श्रुति-स्मृति आदि प्रामाणिक प्राचीन ग्रन्थोंमें प्रमाणसे विधिवाक्योंद्वारा जीवन्मुक्तके अन्तःकरणमें अर्थात् ज्ञानोत्तरकालमें दुराचारोंका होना कहीं भी नहीं बतलाया गया है।

काम-क्रोधादिका कारण है—आसक्ति। आसक्तिका नाम ही रस या राग है, इसीको संग भी कहते हैं। काम-क्रोधादिके कारणरूप इस आसक्तिका परमात्माके साक्षात्कारसे सर्वथा नाश हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भला यदि राग-द्वेष, हर्ष-शोक, सुख-दुःख आदि विकार ही न छूटे तो मुक्ति किस बन्धनसे हुई और ऐसी मुक्तिका मूल्य ही क्या है?

जीवन्मुक्त वही है, जिसका सर्वथा सर्वत्र समभाव है।

जिसमें समता है, वही स्थितप्रज्ञ, ज्ञानी, गुणातीत, भक्त और जीवन्मुक्त है।

जीवन्मुक्त मान-अपमान, हानि-लाभ, जय-पराजय, शत्रु-मित्र, निन्दा-स्तुति आदि समस्त द्वन्द्वोंमें समतायुक्त रहता है।

अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति जीवन्मुक्तके हृदयमें किसी प्रकारका भी विकार उत्पन्न नहीं कर सकती।

किसी भी कालमें किसीके साथ किसी प्रकारसे भी जीवन्मुक्तकी साम्यस्थितिमें परिवर्तन नहीं होता।

जीवन्मुक्तकी निन्दा करनेवालेके प्रति द्वेष या वैर-बुद्धि और स्तुति करनेवालेके प्रति राग या प्रेम-बुद्धि नहीं होती। दोनोंमें समान वृत्ति रहती है।

मूढ़—अज्ञानी मनुष्य निन्दा सुनकर दुःखी और स्तुति सुनकर सुखी हुआ करते हैं, सात्त्विक पुरुष निन्दा सुनकर सावधान और स्तुति सुनकर लज्जित होते हैं, पर जीवन्मुक्तका अन्तःकरण तो इन दोनों भावोंसे शून्य रहता है; क्योंकि उसकी दृष्टिमें एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके अतिरिक्त अपनी भी भिन्न सत्ता नहीं रहती, तब निन्दा-स्तुतिमें उसकी भेद-बुद्धि कैसे हो सकती है? वह तो सबको एक परमात्माका ही स्वरूप समझता है।

जीवन्मुक्तकी बुद्धिमें एक परमात्माके सिवा अन्य कुछ रह ही नहीं जाता।

लोकसंग्रह और शास्त्रमर्यादाके लिये सबके साथ यथायोग्य बर्ताव करते हुए भी व्यवहारमें बड़ी विषमता प्रतीत होनेपर भी जीवन्मुक्तकी समबुद्धिमें कोई अन्तर नहीं पड़ता।

वास्तवमें जीवन्मुक्त पुरुषके लिये कोई कर्तव्याकर्तव्य या विधि-निषेध नहीं है तथापि लोकसंग्रहार्थ, मुक्तिकामी पुरुषोंकी असत्-मार्गसे बचानेके लिये जीवन्मुक्तके अन्तःकरणद्वारा (शास्त्रविहित) कर्मोंकी स्वाभाविक चेष्टा हुआ करती है।

जीवन्मुक्तका सबके प्रति समान सहज प्रेम रहता है और सबमें समान आत्मबुद्धि रहती है।

अज्ञानीका जैसे व्यष्टि शरीरमें आत्म-भाव है, वैसे ही ज्ञानीका समष्टिरूप समस्त संसारमें है।

महापुरुषोंद्वारा किये गये उत्तम बर्तावको भगवान्का बर्ताव ही समझना चाहिये; क्योंकि महापुरुषके अन्दरसे भगवान् ही सब कुछ करते-कराते हैं।

गुणातीतकी वास्तविक स्थितिको दूसरा कोई भी नहीं जान सकता। वह स्वसंवेद्य अवस्था है, परंतु जो अपनेमें ज्ञानीके लक्षण हैं कि नहीं, इस बातकी परीक्षा करता है, उसे ज्ञानी नहीं समझना चाहिये; क्योंकि लक्षणोंके खोजनेसे उसकी स्थिति शरीरमें सिद्ध होती है। ज्ञानीकी सत्ता ब्रह्मसे भिन्न है नहीं, फिर खोजनेवाला कौन?

प्रभु चन्दनके वृक्ष हैं और सन्त बयार। जिस प्रकार हवा चन्दनकी सुगन्धको दिग्दिगन्तमें फैला देती है, उसी प्रकार सन्त भी प्रभुकी दिव्य गन्धको प्रवाहित करते रहते हैं।

सन्तको देखकर प्रभुकी स्मृति होती है। सन्त प्रभुके स्वरूप हैं।

जैसे पपीहा और किसान तो केवल मेघके ही आश्रित हैं, उसी प्रकार श्रद्धालु पुरुष भी केवल सन्तोंके ही आश्रय रहते हैं।

सत्-शास्त्रों और महात्मा पुरुषोंकी आज्ञाको ही ईश्वरकी आज्ञा समझना, उनके द्वारा समझे हुए विषयपर मनन करनेसे अपनी आत्मामें निरपेक्षभावसे जो निर्णय हो, उसे ईश्वरकी इच्छा समझना एवं उसीको परम कर्तव्य समझकर उसके अनुसार सदा-सर्वदा चलनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

श्रुति, स्मृति इतिहास, पुराणादि आर्ष ग्रन्थ ही सत्-शास्त्र हैं और शास्त्रमें बतलाये हुए लक्षण और आचरण जिनमें पाये जाते हों, ऐसे महापुरुषोंमें-से जिसकी बुद्धिमें जो सबसे श्रेष्ठ पुरुष पहले हो गये हों या वर्तमान हैं, वे ही उसके लिये महात्मा पुरुष समझे जाते हैं।

जिन पुरुषोंकी आत्मा पवित्र है, जिन्होंने आत्मासे परमात्माका साक्षात्कार कर लिया है, उन पुरुषोंका जो निर्णय है, वही ठीक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमद्भगवद्गीताकी 'पुष्पिका'

(आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र, 'विनय')

गीतायाः सारसर्वस्वं वैशिष्ट्यं यदलौकिकम्।
अभिव्यनक्ति तत्सर्वं तदध्यायान्तपुष्पिका॥

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय अध्यात्म, दर्शन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र आदि सभी दृष्टियोंसे उत्कृष्ट एवं सार्वभौम ग्रन्थरत्न है। शतसाहस्त्री ऐतिहासिक संहिता महाभारतका अंश-विशेष होनेसे यह आजसे पाँच सहस्त्र वर्षोपूर्व संघटित ऐतिहासिक संवाद तो है ही, वेदान्तकी 'प्रस्थानत्रयी' का अन्यतम घटक होनेके कारण वेदान्तदर्शन भी है। शास्त्रकारोंने इसे 'स्मृति' के रूपमें उद्धृत किया है। धार्मिक क्षेत्रमें यह सर्वमान्य धर्मग्रन्थ है। भारतीय मनीषाने अनेक दृष्टियोंसे इसे अत्युत्तम तथा श्रेष्ठ ज्ञानके रूपमें समादृत किया है। इन सबके साथ-साथ इसका एक आनुष्ठानिक उपासनापक्ष भी है। इस दृष्टिसे समग्र भगवद्गीता एक मालामन्त्र है—स्तोत्र है। मन्त्रोंके अपने-अपने देवता, ऋषि, छन्द और विनियोग होते हैं। तदनुसार इसके देवता हैं—परमात्मा श्रीकृष्ण, ऋषि हैं—भगवान् वेदव्यास तथा छन्द है—'अनुष्टुप्'। इसका श्रीकृष्ण-प्रीत्यर्थ पाठमें विनियोग है—

ॐ अस्य श्रीमद्भगवद्गीतामालामन्त्रस्य भगवान् वेदव्यास ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीकृष्णः परमात्मा देवता''' श्रीकृष्णप्रीत्यर्थे पाठे विनियोगः।[1]

वस्तुतः यह स्तोत्रात्मक महामन्त्र है। इस प्रकारके सभी आनुष्ठानिक स्तोत्र-ग्रन्थों, जैसे—श्रीमद्भागवतादिपुराण, श्रीवाल्मीकीय रामायणादि विभिन्न रामायण तथा श्रीदुर्गासप्तशती आदि ग्रन्थोंमें प्रत्येक अध्यायके अन्तमें एक अध्यायसमापन-सूचिका वाक्यरचना रहती है, जिसे पारिभाषिकरूपमें **'पुष्पिका'** कहा जाता है। इसमें ग्रन्थके समग्र स्वरूप (विशेषणान्वित विशेष्य)-के साथ अध्यायमें परिगृहीत विषयका उल्लेख किया जाता है। आनुष्ठानिक दृष्टिसे इस वाक्यरचनाको ग्रन्थान्तर्वर्ती श्लोकों (मन्त्रों)-के समान ही महत्त्व दिया जाता है तथा मन्त्रसंख्याके परिगणनमें इन वाक्योंकी भी गणना की जाती है। इसी प्रकार इन स्तोत्रात्मक ग्रन्थोंमें विन्यस्त 'उवाचों' का भी ऐसा ही महत्त्व है। ध्यातव्य है कि गीतामें 'उवाच' भी हैं और उनका भी सान्दर्भिक महत्त्व है, जिसकी चर्चा यहाँ करना प्रसंगान्तर होगा, अस्तु।

यहाँ श्रीमद्भगवद्गीताकी अध्यायान्त पुष्पिकापर कुछ तात्त्विक विमर्श अपेक्षित है। इस पुष्पिकाके दो भाग हैं—१-स्थिरभाग तथा २-परिवर्तमानभाग, यथा—

'ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे....'।

इतना अंश प्रत्येक अध्यायके अन्तमें ज्यों-का-त्यों आवृत्त होता है। इसके आगे आनेवाला अंश **'अर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः'**, **'सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः'**, **'कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः'** आदि प्रत्येक अध्यायान्तमें परिवर्तित होता रहता है।

इसमें भी स्थिरभागमें **'ॐ तत्सदिति'**, **'श्रीमद्भगवद्गीतासु'**, **'उपनिषत्सु'**, **'ब्रह्मविद्यायाम्'**, **'योगशास्त्रे'** और **'श्रीकृष्णार्जुनसंवादे'** ये छः पद हैं। इनका किंचित् विस्तारसे विवेचन इस प्रकार है—

१-ॐ तत्सदिति—यह संयुक्त पद है, इसके घटक पद हैं **'ॐ'** अर्थात् परमात्माका वाचक प्रणव, **'तत्'** उसकी परोक्षताका सूचक सर्वनाम, **'सत्'** अर्थात् सत्तावाचक विशेषण और **'इति'** यह स्वरूपनिर्धारक अव्यय। समग्ररूपमें इसका अर्थ हुआ—'प्रणवस्वरूप वह परमात्मा (ब्रह्म) ही सत्य है'—यह सिद्धान्त। यही गीताका परम सिद्धान्त है, यथा—

'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म....' (गीता ८। १३) अर्थात् **'ॐ'** यह एकाक्षरस्वरूप ब्रह्म है।

'ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः' **'ॐ'**, **'तत्'** और **'सत्'**—ब्रह्मका तीन प्रकारसे निर्देश किया गया है (गीता १७। २३) इत्यादि।

२-भगवद्गीतासु—यह आगे आनेवाले विशेष्यपद **'उपनिषत्सु'** का विशेषण है। ओंकारस्वरूप वह (अज्ञानदशामें परोक्ष-सा प्रतीत होनेवाला शुद्ध चैतन्य) ब्रह्म ही सत्य है—इस सिद्धान्तको जिनमें स्वयं भगवान्ने अर्थात् षडैश्वर्य-विभूतिसम्पन्न[2] तथा कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ[3] सगुण-साकार ब्रह्मने न केवल कहा है, अपितु गाया है—आनन्दके सहज उच्छलनरूपमें बिना श्रमके अभिव्यक्त

१-देखिये—गीताके अंगन्यास, करन्यासादि (गीताप्रेस, गोरखपुरका विष्णुसहस्रनामसहित मूल छोटा संस्करण तथा अन्य संस्करण)
२-ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥ (श्रीविष्णुपुराण ६। ५। ७४)
३-उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामगतिं गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो भगवानिति॥ (श्रीविष्णुपुराण ६। ५। ७८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है—ऐसी उपनिषदें—वेदान्तके गम्भीर रहस्य।

३-उपनिषत्सु—'उपनिषद्' शब्द यद्यपि वेदके अन्तिम भाग और ग्रन्थविशेषके लिये प्रयुक्त होता है, किंतु इसका यौगिक अर्थ है—ब्रह्मज्ञान। 'उप' और 'नि'—इन दो उपसर्गोंको लगाकर 'षद्लृ' धातुसे यह शब्द निष्पन्न होता है। 'षद्लृ' धातुके तीन अर्थ हैं—'विशरण', 'गति' और 'अवसादन'। गुरुके समीप जाकर निष्ठापूर्वक अधिगम करनेपर जो ज्ञान अज्ञानको शिथिल और समाप्त कर दे, वह उपनिषद् है।[१] शाखाभेदसे ये उपनिषद् अनेक हैं। भगवद्गीताशास्त्रमें भी श्रीकृष्णने 'कठ' आदि उपनिषदोंके अनेक मन्त्रोंको प्राय: उसी रूपमें उद्धृत किया है।

उपनिषदोंकी अनेकताके कारण किसीको यह शंका हो सकती है कि उनमें परस्पर सिद्धान्तभेद भी हो सकता है, तब गीताशास्त्रका अद्वयमूलक निश्चितार्थ कैसे संगत हो सकेगा? इसका उत्तर देनेके लिये ही मानो अग्रिम विशेषण प्रयुक्त किया गया है।

४-ब्रह्मविद्यायाम्—समग्र गीता भले ही विविध औपनिषद सिद्धान्तोंसे युक्त हो, किंतु इसका सार है, आत्मविज्ञान, अध्यात्मविद्या या ब्रह्मविद्या—**'अध्यात्मविद्या विद्यानाम्'** (१०।३२)।

इसी एकत्वकी विवक्षामें यहाँ एकवचनका प्रयोग है।

५-योगशास्त्रे—'शास्त्र' शब्दका समुदित त्रिविध यौगिकार्थ है—जो 'शासन' करे, 'अनुशासन' करे अथवा 'शंसन' करे। 'शासन' दूसरेके प्रति होता है और इसमें दो पक्ष होते हैं—'विधि' अर्थात् ऐसा किया जाय और 'निषेध' अर्थात् ऐसा न किया जाय। 'अनुशासन' में भी पक्ष तो ये ही होते हैं, किंतु यह शास्ताके द्वारा अपने लिये प्रयुक्त होता है। अर्थात् इनमें प्रवृत्ति-निवृत्तिकी प्रक्रिया स्वेच्छया सम्पन्न होती है और इसका फल भी कर्तृनिष्ठ ही रहता है, अतएव यह अपेक्षाकृत अन्तरंग है। 'शंसन' का अर्थ है स्वरूप (अर्थात् विधि-निषेधरहित तत्त्व)-का प्रतिपादन। यह और भी सूक्ष्म तथा अन्तरंग है। गीताको योगशास्त्र कहनेका अर्थ 'शास्त्र' शब्दके इस त्रिविध अर्थवैभवको संकेतित करना है; क्योंकि गीताशास्त्रमें 'योग' शब्दकी तीन परिभाषाएँ दी गयी हैं, यथा—**'योग: कर्मसु कौशलम्'** (२।५०) अर्थात् कर्मोंमें कुशलता ही योग है। यह आचारसम्बन्धी शासनात्मक परिभाषा है। **'तं विद्याद् दु:खसंयोगवियोगं योगसञ्ज्ञितम्'**। (६।२३) 'दु:खोंकी संयोगात्मिका स्थितिके वियोग' को ही योग जानना चाहिये। यह अन्त:करणोद्देश्यक अनुशासनात्मक परिभाषा है और तीसरी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिभाषा है—**'समत्वं योग उच्यते'** (२।४८) अर्थात् समत्वको ही 'योग' कहा जाता है। यह आत्म-स्वरूप या ब्रह्मस्वरूपकी प्रतिपादिका शंसनात्मक व्याख्या है।

६-श्रीकृष्णार्जुनसंवादे—इससे भगवद्गीता-शास्त्रकी आध्यात्मिकता और दार्शनिकताके साथ-साथ ऐतिहासिकता भी प्रतिफलित होती है अर्थात् कोई इसे केवल प्रतीकात्मक ही मानकर इसके ऐतिहासिक पक्षका अपलाप न कर दे,[२] इसलिये इसको आजसे लगभग ५००० वर्षपूर्व इस धराधामको अलंकृत करनेवाले नारायणावतार श्रीकृष्ण तथा नरावतार अर्जुनका 'सत्य संवाद' कहा है। 'श्रीकृष्ण' शब्दसे शोभा और दैवी शक्तिसे सम्पन्न 'परम आकर्षक वक्ता' का और 'अर्जुन' शब्दद्वारा 'ऋजु' अर्थात् सरलतासे युक्त 'विनम्र श्रोता' की अभिव्यंजना करायी गयी है। 'संवाद' शब्दसे भी यह ध्वनित होता है कि यद्यपि कहीं-कहीं अर्जुनने अपने तर्क प्रस्तुत किये हैं, यथा—

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥

—इत्यादि कहकर भगवद्वाक्योंमें सन्दिग्धता व्यंजित की है, तथापि अन्तमें भगवान्ने उनकी समस्त शंकाओंका समाधान करके इस 'विसंवाद' को समाप्त कर दिया है। दूसरी बात यह कि इसमें धृतराष्ट्र और संजयका तथा महाभारतका अंश होनेके कारण जनमेजय तथा वैशम्पायन एवं शौनकादि ऋषिगणों तथा सूत आदिके अन्य संवादोंकी भी अनुस्यूति है ही, तथापि गीता मुख्यत: 'श्रीकृष्णार्जुनसंवाद' ही है, शेष संवाद यहाँ गौण हो गये हैं। यही बात ग्रन्थान्तमें प्रदर्शित की गयी है—

'अधेष्यते च इमं धर्म्यं संवादमावयो:।'
'इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मन:।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम्॥'
'राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयो: पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहु:॥'

इस प्रकार 'पुष्पिका' के स्थिरांशका संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया गया।

१-उपनीय तमात्मानं ब्रह्मापास्तद्वयं यत:। निहन्त्यविद्यां तज्जञ्च तस्मादुपनिषद्भवेत्॥

२-आजकल गीताकी यथार्थ व्याख्या करनेका दावा करनेवाले अनेक लोग गीताके पात्रों और घटनाको केवल प्रतीकात्मक अर्थात् काल्पनिक कहनेका साहस करते हैं, जो उचित नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिमानी अधिक फँसता है

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गतांक ११ पृ०सं० १५ से आगे]

भगवान्‌के लिये नारदजीने अपने सूत्रमें कहा है—'**अभिमानद्वेषित्वात्**'—जहाँ अभिमान पैदा हो जाता है, वहाँ वे उससे द्वेष करते हैं। मानसे भगवान्‌का मेल नहीं खाता है। भगवान्‌के सामने कुछ भी न होकर जाओ। संसार है ही नहीं तो हम कुछ हैं नहीं। शरीर, नाम और रूपसे रहित होकर जाओ, जिसकी राह है ज्ञानमार्ग अथवा उनके सामने तुच्छातितुच्छ होकर अत्यन्त मानरहित होकर जाओ—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

(श्रीचैतन्यशिक्षाष्टक ३)

भगवान्‌के अव्ययपदतक पहुँचनेवालेके लिये पहली शर्त भगवान्‌ने रखी—**निर्मानमोहाः**—वह मानके मोहसे रहित हो जाय। मानके चक्करमें मैं भक्त, मैं ज्ञानी, मैं बड़ा आदमी, मैं अच्छे आचरणवाला, मैं ऊँची जातिवाला, ऊँचे वर्णवाला, धनी और न जाने कितने प्रकारके अभिमान मनुष्यमें पैदा होते हैं। इसलिये मानकी चाह और मानसे सर्वथा रहित अपनेको सबके पैरोंकी जूती माननेवाला माने। हरिपद महाराजजीने बड़ा सुन्दर लिखा है कि हम तो इस रूपमें अपना परिचय दे सकें कि हम वैष्णवोंकी जूतीपर निर्भर करते हैं। इस प्रकारका 'निर्मानमोहा' हो जाय। मानी आदमी बड़ा दुःखी होता है। जरा-सी कहीं अपमानकी कल्पना आ जाय तो मरने लगता है—

'**सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।**'

(गीता २। ३४)

भगवान्‌ने भी यह बताया है कि जो सम्भावित है, जो सम्मानप्राप्त है, अपनेको मानवाला मानता है, अगर उसकी कहीं अकीर्ति होने लगे तो उसको मरणसे ज्यादा दुःख होता है। वह कहता है कि मर जाते तो अच्छा था, यह अपमान तो नहीं देखते। मान निरन्तर दुःखी करता है। हमेशा आशंका बनी रहती है कि कहीं मान भंग न हो जाय। मनस्वी व्यक्तिको सर्वदा मानकी चिन्ता रहती है। तब वह भगवान्‌की चिन्ता कब करे? भगवान्‌के जो भक्त होते हैं, वे बहुत निर्मानी होते हैं।

वृन्दावनमें रूप-सनातन और जीवगोस्वामी रहते थे। ये पहले बड़े रागी आदमी थे। गौड़के बादशाहके दीवानका नाम था, परंतु ये ही वास्तवमें बादशाह थे। बड़ा धन और मान इनके पास था। इन्होंने जब मानको छोड़ा और भगवान्‌को पकड़ा तो इस तरहसे व्रजमें आकर रहे कि एक कौपीन और एक मिट्टीका करवा बस, यही इनकी सामग्री थी। उन्होंने निश्चय किया कि छतके नीचे नहीं रहेंगे। ये जीवनभर वृक्षके नीचे रहे और पेड़ भी एक नहीं, उसे भी बदलते रहते थे कि कहीं पेड़में भी आसक्ति न हो जाय। इतना त्याग था! और ये बड़े दार्शनिक हुए हैं। वैष्णवसिद्धान्तपर जो इनके दर्शन-ग्रन्थ संस्कृतमें हैं, वे साहित्य और भक्ति-सम्प्रदायकी अमूल्य निधि हैं। ये रूप-सनातन अपनेको तुच्छ मानते थे। वहाँ एक दिग्विजयी पण्डित आये और रूप-सनातनके पास जाकर बोले कि आप शास्त्रार्थ करो। उन्होंने कहा—महाराज! हम क्या शास्त्रार्थ करें, हम तो कुछ जानते ही नहीं हैं। इसपर उन्होंने कहा—तुम हार गये? बोले—हाँ, हार गये। तब पण्डितजीने कहा कि यहाँपर हस्ताक्षर करो कि हम हार गये। उन्होंने हस्ताक्षर कर दिया। अब पण्डितजी वहाँसे लौट गये। उन्हें रास्तेमें मिल गये जीवगोस्वामी। जीवगोस्वामी उद्भट विद्वान् थे और नौजवान थे। इनमें मानका थोड़ा अंश शेष था। पण्डितजीने पूछा—आप जीवगोस्वामी हैं? उनके हाँ कहनेपर इन्होंने कहा—तुम मुझसे शास्त्रार्थ करो। जीवगोस्वामीने कहा—महाराज! शास्त्रार्थ क्या करना, अभी तो हम बच्चे हैं। उन्होंने कहा—नहीं, करो। मैं अभी तुम्हारे ताऊ और चाचाको हराकर आया हूँ। यह देखो, उन्होंने हस्ताक्षर किये हैं। जीवके मनमें कुछ मानका अंकुर था। उन्होंने कहा—ठीक है, शास्त्रार्थ करो। शास्त्रार्थमें दिग्विजयी पण्डितजी हार गये। हारनेसे उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वे सनातन गोस्वामीके पास गये और कहा—देखो, तुम्हारे भतीजेने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा बड़ा अपमान किया है। उन्होंने कहा—क्या अपमान किया? पण्डितजीने कहा—उसने मुझे हरा दिया। तब सनातन गोस्वामीके मनमें आया कि अभी जीवको ठीक करना है। जीवगोस्वामीमें अभिमान है। वह दूसरोंको पराजित करता फिरता है, हारता नहीं है। सनातनजीने पण्डितजीसे कहा—महाराज! क्षमा करो, वह उद्दण्ड है। मैं आजसे उससे बोलूँगा नहीं और अपने यहाँ उसे आने नहीं देंगे। और बताइये क्या करें? वे चले गये। सनातनजीने जीवगोस्वामीको कहला दिया कि तुम हमारे पास आया मत करो। तुम तो अभी मान चाहते हो। बड़ा बनना चाहते हो, इसलिये मेरे पास मत आया करो। इसपर जीवगोस्वामीको बड़ा दुःख हुआ। मनमें बहुत संकट प्रतीत हुआ। उन्होंने अन्न छोड़ दिया। बहुत दिनोंके बाद जब सनातनजीने देखा कि इसका मन विशुद्ध हो गया, सारा मान निकल गया और उसी समय एक महात्माने आकर कहा कि अब आप जीवसे मिलें। तब जीव-गोस्वामीको उन्होंने बुलाया। इस प्रकारसे **निर्मानमोहा** बनें।

मान चाहनेवाला निरन्तर दुःखी रहता है। लड़ता फिरता है। उसको मानभंगकी मनमें बड़ी भारी सोच रहती है। इसीलिये भगवान्ने पहले शर्त रखी—**निर्मानमोहाः**—मानके मोहसे रहित हो और अपनेको तुच्छातितुच्छ माने। विषयी जिसे चाहते हैं, मुमुक्षु उससे उलटा चाहते हैं। इसलिये विषयीकी आँख उस मुमुक्षुकी आँखसे मिलती नहीं है। अतएव विषयी मानते हैं कि यह मूर्ख है। विषयी, मुमुक्षु और मुक्त इन तीनोंकी आँखमें—दृष्टिकोणमें बड़ा अन्तर है। मुक्त पुरुषकी आँख तो भगवान्की आँख है। वह तो सुख-दुःख, हानि-लाभ, जय-पराजयमें सम है और मुमुक्षुकी आँख विषयीकी आँखसे विपरीतदर्शनी है। वह सुखसे डरता है और यह सुख चाहता है। वह मान चाहता है, वह अपमान चाहता है। वह लाभ चाहता है, वह हानि चाहता है। मुमुक्षु चाहता है कि किसी भी प्रकारसे हम जगत्के बन्धनमें फँस न जायँ। यह सच्ची बात है, जिसे मुमुक्षुओंने कहा है कि जिसका जगत्में मान अधिक हो, जिसको घरवाले अधिक प्रेम करते हों, जिसके सांसारिक मित्र अधिक हों, वह अभागा है। क्यों अभागा है? वह तो भाग्यवान् है, लोकप्रिय है, सबका मित्र है, सभी उसको मानते हैं फिर अभागा क्यों है? इसलिये अभागा है कि इसे मानवजीवनमें जो परम अमूल्य रत्न प्राप्त करना था, उस रत्नकी प्राप्तिको वह इस प्रेममें, स्नेहमें भूल गया। भगवान्ने गीता (१३।९)-में जब ज्ञानका साधनरूप लक्षण बताया तो कहा—

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।

पुत्र, पत्नी, गृहादिमें आसक्तिसे शून्य हो जाय। स्नेहकी जो स्निग्धता है, चित्तकी इनमें रमने की जो परिस्थिति है, वह अगर इनमें रही तो भगवान्से स्नेह नहीं रहेगा। भगवान्में स्नेहको छुड़ानेवाला कोई भी प्रियसे प्रियतर पदार्थ भी साधककी दृष्टिमें हानिकर है।

जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ॥

(रा०च०मा० २।१८५)

वह साधक कहता है कि जो श्रीरामके चरणोंके सम्मुख होनेमें बाधा दे, उनकी तो कोई बात ही नहीं है, जो सहज सहायता नहीं करते, उन सब प्रिय पदार्थोंमें भी आग लग जाय, वे हमारे किस कामके—

हिय फाटहुँ फूटहुँ नयन जरउ सो तन केहि काम।
द्रवहिं स्रवहिं पुलकइ नहीं तुलसी सुमिरत राम॥

(दोहावली ४१)

वे आँखें फूट जायँ, वह हृदय फट जाय, उस शरीरमें आग लग जाय, जो आँख भगवान्के स्मरणसे प्रेमाश्रु नहीं बहाती, जो हृदय भगवान्के स्मरणसे द्रवित नहीं होता, जो शरीर भगवान्के स्मरणसे पुलकित नहीं होता।

मुमुक्षुकी—साधककी जो दृष्टि है, वह बिलकुल विपरीत होती है विषयीसे। विषयी व्यक्ति सोचता है कि मैंने इसे दुःख देकर सुख पा लिया। परंतु मुमुक्षुकी दृष्टिमें दुःख कोई वस्तु ही नहीं है। ईसामसीह जब सूलीपर चढ़ाये गये तब उनकी दृष्टि दूसरी थी। उन्होंने यह नहीं सोचा कि वे मुझपर अत्याचार कर रहे हैं। ईसाकी दृष्टिमें आया कि ये बेचारे अपना बड़ा अकल्याण कर रहे हैं। अपनी भूलसे ये अपना बड़ा बुरा कर रहे हैं और इसका बड़ा दण्ड पायेंगे। इसलिये वे भगवान्से प्रार्थना करने लगे कि हे भगवन्! इनकी बुद्धि शुद्ध हो जाय। ये दण्ड नहीं पायें। हरिदासपर जब बेंत पड़ने लगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो हरिदास जल्लादोंके लिये भगवान्से प्रार्थना करने लगे। प्रह्लादको मारनेके लिये शण्डामर्कने जब कृत्या उत्पन्न की तो वह प्रह्लादको न मार सकी और उन्हींको मार दिया। तब वे उनके लिये भगवान्से प्रार्थना करने लगे। परम निष्काम प्रह्लाद हिरण्यकशिपुके लिये भगवान्से प्रार्थना करने लगे।

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥

(रा०च०मा० ५।४१।७)

वह समझते हैं कि यह हमसे दब गया। जब कुछ लोग बुद्धभगवान्को गाली देने लगे तो बुद्धभगवान् कुछ बोले नहीं। तब उन्होंने सोचा कि यह मुझसे डर गया है। बुद्धभगवान् क्यों डरें? वे तो क्षमाशील हैं। बौद्धधर्ममें बड़ी सुन्दर बातें हैं। संस्कृतका एक ग्रन्थ है—बुद्धचर्यावतार, उसमें आया है कि बदला लेनेकी जो भावना है और उसमें जो एक सुखकी कल्पना है, वह वास्तवमें हानिकारक है। प्रथम तो हमारे कहनेसे किसीको दुःख नहीं होगा और हो गया तो हमें क्या लाभ हुआ? हमें उससे मिला क्या? कुछ भी नहीं। हम यदि यह चाहते कि उसको भगवान् सुखी करें तब वह सुखी होता। यह लाभ होता। दूसरेको दुःखी करके सुख अनुभव करनेकी जो भावना है, उसकी कल्पना ही दुःखदायिनी है। इसका फल सुखद नहीं होता है। इसलिये निर्मानमोह बनें। क्योंकि मानको चाहनेवाला आदमी मानके मोहमें रहता है, वह भगवान्को नहीं चाहता है।

दूसरी बात है—**जितसङ्गदोषा**—संगके दोषको पराजित कर देना। संग-दोष क्या है? विषयोंमें आसक्ति। संग अर्थात् राग, आसक्ति, फँसावट। जिससे कामना उत्पन्न होती है, उसका नाम संग है—**'सङ्गात्सञ्जायते कामः'** (गीता २।६२)। संग—आसक्ति यह बड़ा भारी दोष है। मानमें आसक्ति, धनमें आसक्ति, नाममें आसक्ति अथवा किसी भी वस्तुमें जो आसक्ति है, एक भगवान्की आसक्तिके अतिरिक्त वे दोषयुक्त हैं। दोषयुक्त आसक्तियोंमें फँसा हुआ पुरुष भगवान्में आसक्ति नहीं कर सकता है। जगत्में प्रीतिवाला मनुष्य भगवान्में प्रीति नहीं कर सकता है, इसलिये वह जगत्के प्रीति-बन्धनको तोड़ता, छोड़ता है और लोग समझते हैं कि यह कायर है या मूर्ख है अथवा पागल है। शंकराचार्यजीने लिखा है कि जिस त्यागीको जगत्के सयाने लोग पागल समझें तो यह उसका सौभाग्य है और जगत्के सयाने लोग जिस भोगीको बुद्धिमान् समझें, भाग्यवान् समझें। वह बड़ा अभागा है। फिर सौभाग्यवान् कौन है? जिसका भगवच्चरणमें प्रेम है। और अभागा है कौन है? जिसका भोगोंमें प्रेम है। भोगोंमें आसक्ति होना बड़ा भारी दोष है, इसलिये इससे हटना चाहिये। अध्यात्मनित्या और जितसंगदोषा बने।

सारांशतः पाँच बातें हैं। मान-मोहसे अलग हो, संगदोषसे निवृत्त हो, भगवान्के साथ मनको जोड़े रखें, कामनाओंसे भलीभाँति निवृत्त हो जाय और सुख-दुःखके द्वन्द्वसे रहित हो जाय। जो ऐसा हो गया, वह अमूढ़ है और जो ऐसा नहीं बना, वह मूढ़ है। जो मानके मोहमें फँसे हैं, जिनमें आसक्तिका दोष वर्तमान है, जो जगत्से जुड़े हुए हैं, जो कामनाओंके द्वारा सन्त्रस्त हैं, ग्रस्त हैं और जो द्वन्द्वात्मक चीजों—सुख-दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमानमें सुखी-दुःखी होते हैं, वे मूढ़ हैं। जो **निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैः** हैं, वे अमूढ़ हैं और वे जो अव्ययपद है, वहाँ पहुँचते हैं।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

(गीता १५।६)

भगवान्ने कहा कि वही मेरा धाम है, जहाँपर इस चन्द्रमाकी रोशनी नहीं, इस सूर्यका प्रकाश नहीं और यह अग्नि नहीं है। ऐसा जो मेरा परम धाम है, जहाँ जाकर फिर लौटते नहीं हैं, वह प्राप्त करनेकी वस्तु है मानवजीवनके द्वारा। इसलिये जीवनका लक्ष्य बनायें भगवान्को। भगवान्को ही प्राप्त करनेके लिये हमारा यह जीवन है। अन्य सारी जितनी चीजें हैं, वे केवल जीवननिर्वाहके लिये हैं। वे जीवनका लक्ष्य—उद्देश्य नहीं हैं। जैसे लक्ष्य तो मोक्ष है, परंतु अर्थ, धर्म और काम जो है—ये जीवन-निर्वाहकी चीजें हैं। इसी प्रकार संसारके सारे कार्य जीवन-निर्वाहके लिये हैं और जीवनका लक्ष्य भगवान् हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि अपने जीवनका लक्ष्य स्थिर कर ले और उस जीवन-लक्ष्यको देखते हुए जीवन-यात्रा करता रहे। लक्ष्यच्युत हुआ कि रास्ता भूला। कहाँ जाना है—यह याद न रहे या कोई राह चलते हुए पागल हो जाय, भूल जाय, विस्मृति आ जाय कि कहाँ जाना है और चौराहा आ गया तो न किसीसे पूछ सकता है कि कहाँ जाना है; क्योंकि वह जानता नहीं कि कहाँ जाना है और अपने मनसे कहाँ जाय, याद नहीं, इसलिये वह भटक जाता है। अतएव लक्ष्यको स्थिर कर ले और लक्ष्यको स्मरण करते हुए लक्ष्यको सामने रखते हुए अपने जीवनका संचालन करे। भगवद्विमुखी जिसका जीवन होता है, वह स्वाभाविक एक विचित्र, विलक्षण शान्तिको प्राप्त करता रहता है, जो हमलोगोंको नहीं मिलती है, हमलोगोंको जो शान्ति कभी मिलती है वह शान्ति शाश्वत नहीं है। हमारे मनोनुकूल कोई वस्तु प्राप्त हो गयी तो चित्त जरा शान्त हो जाता है। और, यह शान्ति तभीतक है जबतक कोई दूसरी कामना नहीं आती है। दूसरी कामना आते ही यह शान्ति भंग हो जाती है। यह शाश्वती शान्ति नहीं है। शाश्वती शान्ति वह है, जो विलक्षण आनन्दको प्रदान करे और जहाँपर दुःखका लवलेश न हो। जो दुःखमिश्रित सुख है, दुःखाशंकित सुख है, वह सुख नहीं है। वह तो दुःखसे घिरा हुआ सुख है। इसलिये जो परम शान्ति भगवान्‌की कृपासे भगवान्‌का सौहार्द माननेसे और कामनाओंके नाशसे मिलती है, वही परम और चरम शान्ति है। वह शान्ति प्राप्त करना जीवनका लक्ष्य होना चाहिये। उस लक्ष्यको लेकर हम चलें तो कहीं इधर-उधरके प्रलोभन आयेंगे और कहीं भय आयेंगे। दो चीजें डिगानेके लिये हमेशा सामने आती हैं। कहीं मानका, धनका, इज्जतका और भोगोंको प्रलोभन तथा कहीं उनके विनाशका भय आता है। भय और प्रलोभन—ये दो साधकको डिगाते हैं। भयभीत न हो और प्रलोभनमें न फँसे। भगवान्‌की कृपासे अगर ये दो बातें निभ जायँ तो साधकका जीवन सीधा भगवान्‌की ओर जाता है।

परंतु जहाँ विषयोंमें आसक्ति होती है, वहाँ भय और प्रलोभन दोनोंमें आदमी फँस जाता है। वह भयसे बहुत डर जाता है और प्रलोभनोंसे बहुत लुभ जाता है। फिर वह वस्तुओंमें, स्थितियोंमें अटक जाता है। वह राहमें एक तरहसे घायल-सा होकर गिर जाता है और आगे नहीं बढ़ पाता है। इसलिये भय और प्रलोभनसे कौन बचा रहेगा? जो लक्ष्यपर—ठीक रास्तेपर जायगा। हमें तो जाना है, न भयसे डरना है और न प्रलोभनमें पड़ना है। कोई डराये तो डराता रहे और कोई सेवा करना चाहे तो करनेकी बात कहता रहे। न इस ओर देखना है और न उस ओर देखना है। ये भय और प्रलोभन तभी प्रभाव डालते हैं, जब इनको दूरसे देखकर जरा-सा रास्तेसे हट जाता है। यह सिद्धान्तकी बात है कि साधकमें भय और प्रलोभन तभी असर करते हैं, जब भय और प्रलोभनको देखकर वह जरा-सा मार्गसे च्युत हो जाता है। मार्गपर रहते हुए इनका दबाव नहीं पड़ता है। ये मार्गसे हटाते हैं। जब मार्गसे हट जाय तब ये अपना आक्रमण करते हैं। जब साधक भगवान्‌को लक्ष्य करके मार्गपर बना रहता है तो उसे कोई डिगा नहीं सकता है। लक्ष्य सीधा रहे और मार्गपर रहे तो एक तरफ भयकी बात सुन ले और एक तरफ प्रलोभनकी बात सुन ले और अपना चलते चला जाय तो ये प्रलोभन और भय दोनों पीछे रह जाते हैं। विष्णुपुराणमें यह आया है कि ध्रुवके जीवनमें भय और प्रलोभन दोनों आते हैं, लेकिन वह न तो प्रलोभनपर ध्यान देता है और न ही भयपर ध्यान देता है। सतीजी जब पार्वतीके रूपमें तपस्या कर रही थीं तब उसके सामने सप्तर्षियोंने बड़ा प्रलोभन भी रखा और भय भी रखा, परंतु वे न तो भयमें फँसीं और न ही प्रलोभनसे डिगीं। उन्होंने कहा—

जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥

(रा०च०मा० १।८१।५)

अर्थात् करोड़ों जन्मोंतक मेरी एक ही रगड़ रहेगी कि या तो भगवान् शम्भुका वरण करूँगी अथवा कुमारी रहूँगी। सप्तर्षियोंने देखा इनकी लगन पक्की है। वह तो पक्की थी ही। वे तो उनकी महिमा बढ़ाने आये थे।

प्रलोभन और भय—ये दो साधकको गिरा देते हैं। इन दोनोंमें न फँसे तो ये दोनों पीछे रह जाते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक आगे बढ़ जाता है और यदि कहीं इनमें फँस जाता है तो वहींपर रुकना पड़ता है। इसलिये भगवान्‌की कृपापर विश्वास करके अपने-आपको भगवान्‌के सामने यथार्थरूपसे रखते हुए लक्ष्यको ठीक रखकर मार्गपर चलता रहे। तब भगवान्‌की सहायता प्राप्त होगी। यह मार्ग कठिन नहीं है—**'सुसुखं कर्तुमव्ययम्'**।

यह कठिन तो दूरसे देखनेवालोंके लिये है। अन्दर प्रवेश कर जानेपर यह बड़ा सहज, सुन्दर और सुखद मार्ग है; क्योंकि काँटे और कंकड़ तो विषयोंमें ही हैं, भगवान्‌में हैं नहीं। भगवान्‌में न प्रवेश करनेतक दीखतेभर हैं। गुजरातीका एक पद है—

प्रेमपंथ पावक ने ज्वाला भाणी पाछा भागे जोने।
मांहि पड्या ते महारस माणे देख नारा दाझे जोने॥

अर्थात् प्रेमका जो पन्थ है—यह आगकी लपटोंके समान है, दूरसे देखनेमें जिसे देखकर लोग डर जाते हैं कि इसमें जायँगे तो जल जायँगे। इसलिये वे डरकर अलग रहते हैं, लेकिन जो इसके अन्दर कूद पड़ते हैं, उनको तो महान् रसकी प्राप्ति होती है। वे फिर अग्निकी लपटमें जलते नहीं हैं, लेकिन जो दूर खड़े देखते हैं, वे दहते हैं। उनको यह आग लग भी जाती है। जो केवल देखते हैं वे जल जाते हैं। इसलिये यह भगवान्‌का जो मार्ग है यह सुसुखद है, कठिन नहीं है। इसमें कठिनता पहले प्रवेश करते हुए दीखती है। जितना कष्टकर मार्ग विषयोंका है, यह वैसा नहीं है। जो आदमी सच बोलता है उसको कहाँ बात बनानी पड़ती है। उसको बात बनानेकी कोई चिन्ता ही नहीं है। जहाँ बात बोले वही सच। परंतु जहाँ कोई झूठ बोलता है तो एकके खुलनेपर दूसरा झूठ बोलता है, फिर तीसरा बोलता है। इसलिये संकट तो झूठ बोलनेमें है और भगवान्‌के मार्गमें संकट नहीं है, कण्टक नहीं है। इसलिये आदमी भगवान्‌के मार्गमें लग जाय, लक्ष्य ठीक रखे और मार्गपर चलता रहे। भगवान्‌की कृपाका भरोसा रखे और प्रलोभन तथा भयकी परवाह न करे तो उसका जीवन भगवान्‌का जीवन बन जायगा, दैवीय जीवन बन जायगा और उसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जायगी। उसको अपने जीवनका लक्ष्य ठीक-ठीक मिल जायगा। [समाप्त]

भक्तगाथा—

चैतन्य महाप्रभु

(श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)

हमारे देशमें भक्ति अगर मूर्तिमान् हुई तो महाप्रभु चैतन्य एवं भक्तिमती मीरामें। भक्त उसे कहा जाता है, जिसकी निष्ठा अपने इष्टसे कभी विभक्त नहीं होती। जहाँ मीराके इष्ट थे द्वारकाधीश भगवान् कृष्ण तो महाप्रभु चैतन्यके इष्ट थे पुरीस्थित भगवान् जगन्नाथ। इन दोनों भक्तोंकी इहलीला तब समाप्त होती है, जब ये दोनों भक्त अपने-अपने इष्टमें सशरीर समा जाते हैं।

महाप्रभु चैतन्यका पावन चरित्र प्रेमरसका अथाह सागर है। चाहे कोई कितना ही पी ले, कितना ही उलीच ले, उस अगाध रस-सिन्धुमेंसे अणुमात्र भी कम नहीं हो सकता। ज्ञान, वैराग्य, भक्ति-प्रेम, त्याग और विरहके मूर्तिमान विग्रह, श्रीकृष्ण-प्रेमावतार श्रीगौरांगदेवका कारुणिक जीवन दुःखी प्राणियोंका एक ऐसा ही मनोरम आश्रय-स्थल है। नाना प्रकारके दुःखी मनुष्योंको यदि शीतलता, शान्ति और दिव्य प्रेमानन्दकी अनुभूति करनी हो तो वे आनन्द और प्रेमके पर्याय चैतन्यदेवके पावन चरितामृतका अवश्य पान करें।

महाप्रभु चैतन्य अपने समयके प्रेमी और भावुक महापुरुषोंमें सर्वश्रेष्ठ महापुरुष समझे जाते हैं।

बंगालके नवद्वीप नगरमें पण्डितप्रवर जगन्नाथ मिश्रके यहाँ भाग्यवती शचीदेवीके गर्भमें १३ मास रहकर महाप्रभु गौरांगदेव सम्वत् १५४२ की फाल्गुन पूर्णिमाके दिन इस धराधामपर अवतीर्ण हुए। जब इनकी अवस्था सात-आठ वर्षकी हुई तो इनके अग्रज विश्वरूपजी अपने माता-पिताको अल्पावस्थामें बिलखते छोड़कर संसार-त्यागी वैरागी बन गये। तब चैतन्य महाप्रभुने अपने बिलखते माता-पिताको अपने अनुपम सान्त्वनामय वाक्योंसे शान्ति प्रदान की। स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्याध्ययनमें सम्पूर्ण समय बिताने लगे। कालान्तरमें इनके पूज्य पिताजी परलोकवासी हो गये, तब सम्पूर्ण घर-गृहस्थीका भार इन्हींके ऊपर आ पड़ा। इसलिये सोलह वर्षकी अल्पायुमें ही अध्यापनका कार्य करने लगे। कुछ समय पश्चात् द्रव्योपार्जनहेतु राढ़ देशमें भ्रमण किया। विवाह पहले हो चुका था। राढ़ देशसे लौटनेपर अपनी प्राणप्रिया पत्नी लक्ष्मीदेवीको घरपर नहीं पाया। पता चला कि पति-वियोगमें उन्होंने प्राण त्याग दिये। माताकी प्रसन्नताके निमित्त श्रीविष्णुप्रियाजीके साथ इनका दूसरा विवाह हुआ। गृहस्थ-जीवनका निर्वाह एवं अध्यापकी करते हुए इन्होंने पिताके उद्धारके लिये श्राद्ध करनेहेतु गयाकी यात्रा की। वहींपर श्रीस्वामी ईश्वरपुरीजीने न जाने इनके कानमें कौन-सा मन्त्र दिया कि उसके सुनते ही ये पागल हो गये। ऐसी दशामें इनका पढ़ना-पढ़ाना सब छूट गया। बस प्रेममें उन्मत्त होकर अहर्निश श्रीकृष्ण-कीर्तन करना ही इनके जीवनका एकमात्र उद्देश्य बन गया। पुराना जीवन एकदम परिवर्तित हो गया। इनका मानना हो गया कि प्रेम-जीवन ही असली जीवन है। बिना प्रेमका जीवन तो भारस्वरूप है।

महाप्रभु चैतन्यके जीवनका प्रेमसे अभेद सम्बन्ध हो गया। वे महान् प्रेमी हो गये। प्रेम-प्राप्तिके लिये जितने त्याग-वैराग्यकी आवश्यकता होती है, वह पूरी तरह महाप्रभुके जीवनमें समा गया। इसीलिये महाप्रभुने प्रेमको मोक्षसे भी बढ़कर पंचम पुरुषार्थ बताया। उस प्रेमकी उपलब्धि अहैतुकी भक्तिके द्वारा ही हो सकती है और भक्ति त्याग-वैराग्यके बिना हो ही नहीं सकती। अतः महाप्रभु गौरांगके जीवनमें त्याग, वैराग्य और भक्ति—इन भावोंकी पृथक्-पृथक् धाराएँ बहकर अन्तमें प्रेमरूपी महासागरमें मिलकर एक हो गयीं। प्रेममें कैसी मस्ती है, कैसी तन्मयता है, इसे प्रेमी हुए बिना जाना नहीं जा सकता। प्रेमरसमें छके हुए प्रेमीकी कैसी अद्भुत दशा हो जाती है, वह किस प्रकार संसारी लोगोंकी परवाह न करके पागलोंकी तरह नृत्य करने लगता है—इन सभीका दर्शन महाप्रभुके जीवन-चरितमें देखनेको मिलेगा।

स्वर्णके समान देदीप्यमान शरीरपर पीताम्बर पड़ा हुआ है। नीचे चौड़ी किनारेदार धोती पहने हुए हैं। दोनों हाथोंको ऊपर उठाये गौरांग 'हरि बोल-हरि बोल' की सुमधुर ध्वनिसे सभी दिशाओंको गुंजायमान कर रहे हैं। भावुक भक्त प्रभुके चरणोंके नीचेकी धूलिको उठाकर अपने सम्पूर्ण शरीरपर मल रहे हैं। धन्य हैं वे महाभाग, जिनके साथ महाप्रभुने संकीर्तन और नृत्य किया! उनके जीवन-चरितको पढ़कर कुछ लोगोंमें यह भावना जाग्रत् होती है कि 'हाय हम न हुए उस समय।'

पत्नीको सोती छोड़कर, माताको दुःखी और बेसुध बनाकर भक्तोंके ममत्वको भुलाकर महाप्रभु गंगाजी पार करके श्रीकेशव भारतीके आश्रमपर पहुँचे और संन्यास ग्रहण करके दण्ड धारण कर लिया। इसपर किसी आचार्यने पूछा 'आपने यह अद्वैत-वेदान्तियोंकी भाँति संन्यास लेकर दण्ड-धारण क्यों किया है?' इसपर महाप्रभु बोले—आचार्य! संन्यास धारण करनेमें द्वैत-अद्वैतकी कौन-सी बात है, मुख्य बात तो है अपने प्यारेके पादपद्मोंतक पहुँचना, सो यह बिना सर्वस्व-त्याग किये होनेका नहीं। यह सोचकर मैं संन्यास-धर्ममें दीक्षित हुआ हूँ। यह जो तुम दण्ड देख रहे हो, सो तो मेरी साधनावस्थाका द्योतक है। यह मन बड़ा ही चंचल है, जबतक साधन और नियमरूपी डण्डेसे इसे हाँकते न रहोगे, तबतक यह अपनी बदमासियोंको नहीं छोड़नेका। इसलिये इसे वशमें करनेके निमित्त मैंने यह दण्ड धारण किया है। दण्डके भयसे यह इधर-उधर न भाग सकेगा।

जब महाप्रभु प्रयाग आये तो श्रीरूप नामक ब्राह्मण दस दिनोंतक प्रभुके चरणकमलोंके समीप रहे। ये विद्वान् थे, भावुक थे, मेधावी थे, आस्तिक थे और थे प्रेमावतार श्रीचैतन्यदेवके परम कृपापात्र। इन दस दिनोंमें ही प्रयागमें रहकर मेधावी श्रीरूपने प्रभुकी भक्तिके अत्यन्त गूढ़ रहस्यको समझ लिया और उसीका आपने अपने ग्रन्थोंमें वर्णन किया है। महाप्रभु इनके हृदयकी सच्ची लगनको जानते थे, इसलिये इन्हें वैराग्यका उपदेश करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए कहने लगे—रूप! देखो, यह संसार विषय-भोगोंमें कैसा पागल बना हुआ है। पद, प्रतिष्ठा, पैसा, पुत्र, परिवार तथा प्रेम—इन पदार्थोंकी प्राप्तिकी चिन्तामें यह अमूल्य जीवन बरबाद हो जाता है। कामिनी, कांचन और कीर्ति—इन रस्सियोंने ही जीवको कसकर बाँध रखा है। इनके कारण यह तनिक भी इधर-उधर हिल-डुल नहीं सकता। भगवान्‌की प्राप्तिका मार्ग इन तीनोंसे दूसरी ओर है। इन तीनोंका मनसे जब पुरुष त्याग कर देता है तब तो वह उस मार्गकी ओर जानेका अधिकारी होता है। जिन्हें इन तीनोंमें सुखका अनुभव होता है, उन्हें भक्ति कहाँ? प्रभु-प्रेम कैसा? वे तो प्रभुके बारेमें एक शब्द भी कहनेके अधिकारी नहीं हैं, जो स्वयं बँधा पड़ा है, उसका बिना देखे मार्गका वर्णन करना केवल विनोद ही है। बिना चखे कोई अमृतका स्वाद बता सकता है? चखनेपर भी लोग ठीक कहनेमें समर्थ नहीं होते, तब सुनकर कोई कह ही क्या सकता है?

अपने भक्तोंसे विदा लेकर महाप्रभु श्रीवाराणसी-क्षेत्रमें पहुँचे। नगरके बाहर ही चन्द्रशेखरजी मिल गये। प्रभुको देखते ही उन्होंने भूमिपर लोटकर प्रभुको प्रणाम किया। प्रभुने उनका आलिंगन करते हुए प्रेमपूर्वक पूछा—चन्द्रशेखर! तुम यहाँ कैसे? तुम्हें कैसे पता कि मैं आज यहाँ आऊँगा? प्रभु, कल रात्रिमें मैंने स्वप्न देखा कि श्रीचरण आ गये हैं। यहाँ आते ही सहसा श्रीचरणोंके दर्शन हो गये। अब मेरी कुटियाको अपनी चरणरजसे कृतार्थ कीजिये। वैद्य चन्द्रशेखरके आग्रहसे प्रभु उनके घर गये। समाचार पाते ही तपनमिश्र तथा और भी अनेकों भक्त प्रभुके दर्शनोंके लिये आ गये। तपनमिश्रने दोनों हाथोंको जोड़कर प्रभुसे प्रार्थना की कि जबतक काशीमें निवास करें, तबतक मेरे ही घर भिक्षा ग्रहण करें। प्रभुने विनती स्वीकार कर ली। आप चन्द्रशेखर वैद्यके घरपर ही रहने लगे। रहते यहाँ थे और भिक्षा ग्रहण करने तपनमिश्रके यहाँ चले जाते थे। इस प्रकार महाप्रभु लगभग दो माहतक काशीजीमें ठहरे।

महाप्रभुने चौबीस वर्ष नवद्वीपमें रहकर गृहस्थाश्रममें बिताये। संन्यास लेकर छः वर्षोंतक आप तीर्थोंमें भ्रमण करते रहे और अन्तमें अठारह वर्षोंतक जगन्नाथजीके धाम पुरीमें ही रहे। बारह वर्षोंतक दिव्योन्मादकी दशामें रहे। श्रीचैतन्य जिस कार्यके लिये अवतरित हुए थे, वह कार्य भी सुचारु रीतिसे सम्पन्न हो गया। अब उन्होंने लीला-संवरण करनेका निश्चय कर लिया। सम्वत् १५९० ई० सन् १५३३ का आषाढ़ माह था। महाप्रभु आज अन्य दिनोंकी अपेक्षा अत्यधिक गम्भीर थे। भक्तोंने इतनी अधिक गम्भीरता उनके जीवनमें कभी नहीं देखी। उनके ललाटसे एक अद्भुत तेज-सा निकल रहा था। सहसा वे अकेले ही श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरकी ओर दौड़ने लगे। मन्दिरके दरवाजेके समीप गये। जल्दीसे मन्दिरमें घुस गये। महान् आश्चर्य! मन्दिरके कपाट अपने-आप बन्द हो गये। महाप्रभु अकेले ही मन्दिरके भीतर थे। भाग्यवान् पुजारी प्रभुकी इस अन्तिम लीलाको प्रत्यक्ष देख रहे थे। महाप्रभु जगन्नाथजीके सम्मुख हाथ जोड़े खड़े हैं और गदगद् कण्ठसे प्रार्थना कर रहे हैं, हे दीनवत्सल प्रभो! हे जगत्पिता जगन्नाथ देव! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चारों युगोंमें कलियुगका एकमात्र धर्म श्रीकृष्ण-संकीर्तन ही है। हे नाथ! आप जीवोंपर ऐसी दया कीजिये कि वे निरन्तर आपके सुमधुर नामोंका सदा संकीर्तन करते रहें। इन अनाश्रित जीवोंपर कृपा करके अपने चरणकमलोंका आश्रय प्रदान कीजिये। बस, इतना कहते-कहते प्रभुने श्रीजगन्नाथजीके श्रीविग्रहका आलिंगन किया और उसी क्षण उसमें लीन हो गये। भक्त और भगवान् एक हो गये। इसी प्रकार भक्तिमती मीरा भी अपने इष्ट गिरधर गोपालके श्रीविग्रहमें सशरीर समा गयी थी। पुजारी जल्दीमें प्रभुको पकड़ने दौड़ा, किंतु प्रभु अब वहाँ कहाँ? वे तो अपने असली स्वरूपमें विलीन हो गये। इस प्रकार अड़तालीस वर्षोंतक इस धराधामपर प्रेमरूपी अमृतकी वर्षा करनेके उपरान्त महाप्रभु अपने सत्य स्वरूपमें जाकर अवस्थित हो गये। बोलो प्रेमावतार श्रीचैतन्यदेवकी जय!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

[मुक्ति स्वतः हो रही है]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[गताङ्क सं० ११ पृष्ठ सं० १९ से आगे]

अधिकारका सदुपयोग

हमें एक कहानी याद आ गयी। सुनी हुई कहानी है। एक हाथी था। वह मर गया तो धर्मराजके यहाँ गया। धर्मराजने पूछा—'अरे! तुम्हें इतना बड़ा शरीर दिया अर्थात् जितने भी शरीरधारी हैं, उन सबसे बड़ा शरीर दिया और तू मनुष्यके वशमें हो गया? तेरे एक पैर-जितना ही तो था मनुष्य, तू उसके वशमें हो गया।' तब वह बोला कि 'महाराज! यह मनुष्य ऐसा ही है। बड़े-बड़े इसके वशमें हो जाते हैं।' धर्मराजने कहा—'हमारे यहाँ तो अनगिनत लोग आते हैं।' हाथीने उत्तर दिया—'सभी मुर्दे आते हैं, मुर्दे। यदि जीता आये तो पता लगे।'

धर्मराजने अपने दूतोंसे कहा—'रे दूतो! एक जीता आदमी ले आओ।' दूतोंने कहा—'ठीक है महाराज!' दूत तो घूमते ही रहते हैं। गर्मियोंके दिनोंमें छतके ऊपर एक कायस्थ सोया हुआ था। दूतोंने उसकी खाट उठा ली और ले चले। उसकी नींद खुली तो वह आश्चर्यमें पड़ गया कि बात क्या है? क्योंकि वह ग्रन्थ लिखनेवाला था, लेखन-कार्य करनेवाला था। उसने ग्रन्थोंमें दूतोंके लक्षण पढ़े थे। देखा कि ये तो धर्मराजके दूत मेरेको उठाये ले जा रहे हैं। उसने जेबसे कागज निकाला और उसपर कुछ लिख लिया और फिर कागज जेबमें रख लिया। उसने सोचा कि यदि यहाँ हम चीं-चपड़ करेंगे तो गिर जायँगे और हड्डियाँ बिखर जायँगी। अब जो होगा सो देखा जायगा। वह बेचारा खाटपर वहीं पड़ा रहा।

धर्मराजकी सभा लगी हुई थी, दूत वहाँ पहुँचे। दूतोंने खाट नीचे रखी। उसने तुरंत जेबसे कागज निकाला और दूतोंको दे दिया कि इसे धर्मराजको दे दो। उन्होंने धर्मराजजीको दे दिया। धर्मराजजीने पत्र पढ़ा। उसमें लिखा था—'धर्मराजजीसे नारायणका यथायोग्य! यह हमारा मुनीम जा रहा है, इसके द्वारा ही सब काम करना।' दस्तखत—नारायण, वैकुण्ठपुरी! पत्र पढ़कर धर्मराज बोले—'आइये महाराज! गद्दीपर बैठिये।' भगवान्‌की आज्ञासे उसे गद्दीपर बिठा दिया गया।

अब दूसरा आदमी मरकर आया। उसने पूछा—'यह कौन है?' दूतोंने कहा—'महाराज! यह डाका डालनेवाला है। इसने बहुत लोगोंकी हत्या की है। बहुतोंको लूट लिया है, इसको क्या दण्ड दिया जाय?' उसने कहा कि 'इसे वैकुण्ठ भेजो।' और वह भेज दिया गया।

'यह कौन है?' दूतोंने कहा—'महाराज! यह दूध बेचनेवाली है। इसने पानी मिलाकर दूध दिया, जिससे बालकोंके पेट बढ़ गये, बीमारियाँ फैल गयीं। ऐसा काम किया है इसने। इसे क्या दण्ड दें?' तो कहा कि 'वैकुण्ठमें भेजो।'

यह कौन है? 'इसने झूठी गवाही देकर ईमानदार लोगोंको फँसा दिया, बन्द करा दिया। क्या किया जाय?' बोले—'पूछते क्या हो? वैकुण्ठमें भेजो! भगवान्‌के दरबारमें भेजो।'

अब व्यभिचारी आये, झूठा आये, हिंसा करनेवाला आये, पापी आये, अभक्ष्य खाने-पीनेवाला आदि जो कोई भी आये, उसके लिये—'वैकुण्ठमें भेजो! वैकुण्ठमें भेजो!'

अब धर्मराज क्या करें? गद्दीका मालिक कह रहा है, सो ठीक है। वैकुण्ठमें कतार लग गयी।

भगवान्‌ने कहा—'अरे! इतने लोग यहाँ कैसे आ रहे हैं! कहीं मृत्युलोकमें कोई महात्मा प्रकट हो गये? बात क्या है? जो सभी लोगोंको वैकुण्ठमें भेज रहे हैं। ये सब कहाँसे आ रहे हैं?' देखा कि ये तो यमपुरीसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ रहे हैं। तो क्या बात है? पता नहीं, क्या बात है? आ तो रहे हैं।

भगवान् धर्मराजके यहाँ पहुँचे। भगवान्को देख सब वहाँ खड़े हो गये। धर्मराज भी खड़े हो गये। वह भी खड़ा हो गया। धर्मराजसे पूछा—'धर्मराज! आपने सबको वैकुण्ठ भेज दिया। क्या इतने लोग धर्मात्मा-पुण्यात्मा हो गये।'

धर्मराजने कहा—'मेरा काम नहीं है यह, आपने जो नया मुनीम भेजा है, यह उसका काम है भगवन्! उससे पूछा—'तुझे किसने भेजा है यहाँ?' तो वह बोला—'आपने!' 'हमने कैसे भेजा?' उत्तर दिया कि 'क्या मेरे हाथकी बात है, जो यहाँ आ जाता? आपने ही तो भेजा है। आपकी इच्छाके बिना कोई काम होता है क्या? कोई मेरे बलसे हुआ है क्या यह काम?'

'ठीक है। तो तूने यह क्या किया?'

'क्या किया महाराज? क्या किया मैंने?'

'तूने सबको वैकुण्ठमें भेज दिया।'

'यदि वैकुण्ठमें भेजना खराब काम है तो जितने सन्त-महात्मा हैं, सबको दण्ड दिया जाय। यदि यह खराब काम नहीं है तो मैंने कौन-सा खराब काम किया? अच्छा काम है तो उलाहना किस बातका? और इसपर भी आपको मेरा काम पसन्द नहीं आया है तो सबको वापस भेज दें; परंतु भगवद्गीतामें लिखा हुआ यह श्लोक आपको निकालना पड़ेगा, यह गीतामें खटेगा नहीं—

'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।' (१५।६)

'जिस धाममें जाकर पीछे लौटकर नहीं आते, वह मेरा परमधाम है।' यदि आप वापस भेजते हैं तो यह नियम तो भंग हो जायगा! पीछे भेज दें भले ही।'

भगवान् बोले—'बात क्या है भाई?' उसने कहा—'मैंने अपनी ओरसे भेजा तो अच्छा ही काम किया। अपनी ओरसे मैंने खराबी नहीं की!'

भगवान् बोले—'बात तो ठीक है। कितना ही बड़ा पापी हो, वैकुण्ठमें चला जाय तो वह लौटकर वापस थोड़े ही आयेगा? उसके पाप तो सब नष्ट हो गये। तो तूने यह क्या किया?'

'क्या किया मैंने महाराज? मेरे हाथमें तो जब अधिकार आये तो मैं यही करूँगा, सबको वैकुण्ठ भेजूँगा। मैं किसीको दण्ड क्यों देता महाराज? यह तो मैं जानता हूँ कि थोड़ी देरके लिये गद्दी मिली है। मुझे गद्दी मिले और मेरा वश चले तो मैं अच्छा ही काम करूँगा। लोगोंका उद्धार करना कोई खराब काम है क्या?'

भगवान्ने धर्मराजसे पूछा—'धर्मराज! तुमने इसको गद्दी कैसे दे दी?'

धर्मराज बोले—'महाराज! देखिये, आपका कागज आया है और नीचे स्पष्ट आपका हस्ताक्षर है।'

भगवान्ने कायस्थसे पूछा—'क्यों रे! यह कागज मैंने कब दिया तुझे?'

कायस्थ बोला—'गीतामें लिखा है—'**सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टः**।' सबके हृदयमें मैं रहता हूँ, तो हृदयसे आज्ञा आयी कि कागज लिख दो। कलमसे मैंने लिख दिया, आज्ञा तो आपकी ही हुई। इसलिये कलम मेरी, दस्तखत आपका ही है, कागज आपका ही है। स्पष्ट बात है। यदि आप इसको मेरा मानते हैं तो गीता १५। १५ में—'**सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टः**..............।' यह आपकी वाणी है, इसे निकाल दीजिये।'

भगवान् कहते हैं—'ठीक!' धर्मराजसे पूछा—'अरे धर्मराज! बात क्या है? यह कैसे आया?'

'महाराज! कैसे क्या आया? आपका पत्र ले आया।'

तब दूतोंसे पूछा गया कि 'यह बात कैसे हुई?'

दूतोंने कहा—'साहब! आपने ही कहा था न कि एक जीवित आदमी लाना।'

'तो क्या वह यही है? अरे, पहले परिचय तो कराते!'

'हम क्या परिचय कराते, महाराज! आपने तो कागज लिया और इसे गद्दीपर बैठा दिया। हमने सोचा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि परिचय होगा। फिर हमारी हिम्मत कैसे होती बोलनेकी? इसमें हम बोलें भी कैसे?'

पासमें हाथी खड़ा था। वह बोला—'जै रामजीकी! आपने कहा था कि तू क्यों वशमें हो गया? मैं क्या वशमें हो गया, वशमें हो गये स्वयं आप और हो गये भगवान्। यह काले माथेवाला आदमी बड़ा विचित्र है। महाराज! यह चाहे तो बड़ी उथल-पुथल कर दे।'

तब भगवान्ने कहा—'अच्छा जो हुआ, सो हुआ, अब तो नीचे चला जा।' उसने कहा—'जिसको प्राप्त होकर लौटकर वापस नहीं आते—'तो आप बताइये कि मैं आपको प्राप्त हुआ कि नहीं।'

भगवान्ने कहा—'अच्छा, चल भाई! तू चल मेरे साथ!'

'महाराज! मैं ही चलूँ? हाथी पीछे रहेगा बेचारा? इसकी कृपासे तो मैं आया। इसको भी तो लो साथमें।'

हाथी बोला—'मेरे बहुत भाई बैठे हैं, यहीं नरकोंमें। सबको ले लो।' 'चलो भाई, सबको ले लो।' तो इस तरह उसने सबका उद्धार कर दिया।

सम्भवतः यह कहानी तो गढ़ी हुई (मन-गढ़न्त) हो सकती है; परंतु इसका सिद्धान्त पक्का है कि अपने हाथमें कोई अधिकार हो तो उससे सबका भला करो, सबका उद्धार करो, कल्याण करो, जितना कर सको, उतना कर ही दो। अपनी दृष्टिसे हम किसीको भी दुःख क्यों दें? संताप क्यों दें? अपने मनको शुद्ध करो, निर्मल करो। बालकोंको पढ़ाओ, भाव उनके उद्धारका ही रहे—'**सर्वभूतहिते रताः**।' प्राणिमात्रके हितमें रति रहे; क्योंकि यह गद्दी तो थोड़ी देर ही रहनेवाली है। जैसे कायस्थने कहा था कि गद्दी तो थोड़ी देर रहनेवाली है। ऐसे ही मैंने आप लोगोंसे कहा है कि हम तो प्रतिदिन मौतकी ओर जा रहे हैं। इसलिये हमारे पास जो अधिकार है, पद है, वह थोड़े ही दिनका है, सदा रहनेवाला नहीं है। पदार्थों और व्यक्तियोंको रखना चाहेंगे और वे चले जायँगे तो मनको बड़ा परिताप (दुःख) होगा। मनके भीतर केवल इनकी सेवा करनेका भाव रखें। ये लोग रहें तो अच्छी बात, जायें तो परवाह नहीं। यदि ऐसा ही भाव हम शरीरके साथ भी रखें तो हमें महान् सुखकी प्राप्ति हो जायगी।

जैसे, किसीका एक-दो रुपया भी कहीं खो जाय तो रुपया खो जानेसे उसे बड़ी चिन्ता होती है। पर यदि उसने सौ रुपये भी ब्राह्मण-भोजनमें लगा दिये, अच्छे काममें लगा दिये तो सौ रुपयेकी चिन्ता नहीं होती, प्रत्युत प्रसन्नता होती है कि रुपये अच्छे काममें लग गये। पैसा अच्छे काममें लगा दें तो प्रसन्नता होती है और खो जाय तो संताप होता है। ऐसे ही यह संसार है, इसका वियोग अवश्य होगा। यदि आप स्वयं इस (संसार)-का भीतरसे त्याग करके सबके साथ अच्छे-से-अच्छा बर्ताव करें, उत्तम-से-उत्तम कार्यमें पदार्थोंको लगाये तो बड़ी शान्ति होगी, आनन्द मिलेगा। नहीं लगायेंगे तो भी कोई रहनेवाले तो हैं नहीं। कोई रहनेवाला हो तो सोचें कि भाई! यह तो रहनेवाला है, इसलिये इसे हम रख लेंगे। पर यह तो रहनेवाला है ही नहीं। यह ज्ञान सबको है। इस बातको हम जानते हैं, पर जानते हुए भी मानते नहीं—यही भूल होती है।

सबको जाना पड़ेगा। शरीर इतनी तेजीसे जा रहा है कि गर्भवाससे लेकर सौ वर्षकी आयुतक हर समय खुला है मौतके लिये। मौतके रिवाजमें कोई अन्तर नहीं पड़ता।

चार-पाँच वर्षका एक बालक माँके पास खेलता था। उसने सुना ठण्डी बर्फ! माँसे पैसे लिये, दौड़कर ले आया बर्फ। हाथ ठण्डा हो गया। वह माँसे बोला—'माँ, बर्फ ठण्डी बहुत है, थोड़ी गरम कर दे।' माँ बोली—'गरम कैसे कर दूँ?' छोरा बोला—'तू भोजन बनाती है, तू गरम करना जानती है। तू थोड़ी गरम कर दे; क्योंकि यह अधिक ठण्डी है।'

माँ बोली—'बेटा! यह गरम नहीं होती।' छोरा बोला—'माँ! तू रसोई बनाती है। गरम करना तुझे आता ही है। गरम कर दे।'

माँ नटती है और छोरा रोने लगता है। माँ जानती है कि बरफ गरम नहीं होगी। गरम करे तो यह बर्फ नहीं रहेगी; और बर्फ रहते गरम होगी नहीं।

बालक हठ करता है कबतक? जबतक उसे ज्ञान नहीं होता कि यह गरम होनेपर बर्फ नहीं रहती अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह यह समझ लेगा कि बर्फ तो ठण्डी ही रहनेवाली है। गरम करनेपर पिघल जायगी, बर्फ रहेगी नहीं तो फिर वह हठ नहीं करेगा। ऐसे ही 'यह संसार जानेवाला है, रहनेवाला है नहीं' ऐसा जाननेवाला रखनेका हठ करेगा क्या?

अच्छा, ऐसा कौन है, जो नहीं मानता कि शरीर मरनेवाला है, यह तो गलनेवाला है—गलनी माटी है, यह तो जानेवाला है, फिर भी हम मनमें धारणा करते हैं कि यह बना रहे, बना रहे—कितनी मूर्खता है। बालक तो बड़ा होगा, तब समझ जायगा, पर आप कब बड़े होंगे भाई! जिस दिनसे आप यह समझ लें कि शरीर तो जानेवाला है, उस दिनसे जानेवालोंसे अच्छी तरहसे काम लो और काम अच्छी तरहसे करो। बर्ताव बढ़िया-से-बढ़िया करो। उनसे लाभ लेना हो तो लाभ लो। सेवा करनी हो तो सेवा करो। पर जानेवालेको रख कैसे सकते हैं? यह तो जानेवाला ही है। आजदिनतक यह रिवाज नहीं रहा कि इसको रख लें, तो यह नया रिवाज कैसे होगा? इसलिये आजदिनतक जो भूल हुई, सो हुई। आगे सबके साथ बड़े आदरका, उपकारका, सेवाका, प्रेमका बर्ताव करो। शास्त्रकी आज्ञा, धर्मकी मर्यादाके अनुसार सबकी सेवा करो। सबको सुख पहुँचाओ। तो सबके हितमें आपकी रति हो जायगी—'**ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।**' प्राणिमात्रके हितमें जिनकी रति है, उनके लिये भगवान् कहते हैं, वे मुझे प्राप्त होते हैं।

संसारमें जो वस्तुएँ हैं, वे सब वियुक्त होनेवाली हैं। वे जब वियुक्त होनेवाली ही हैं, तब उनसे सेवा करके लाभ ले लो। कैसी बढ़िया बात है। शरीर जानेवाला है, व्यक्ति जानेवाले हैं, इस कारण जबतक साथमें रहे, अच्छे-से-अच्छा बर्ताव करो। पता नहीं किस समय यहाँसे जाना पड़े। रेलगाड़ी समयपर छूटती है, उसके लिये हम समयसे पहले स्टेशनपर पहुँच जाते हैं और तैयारी पहलेसे कर लेते हैं। वह गाड़ी तो समयपर छूटेगी, पर यह गाड़ी कब छूटेगी, इसका कुछ पता नहीं। सुबह छूटेगी कि शामको या दोपहरको—इसका कुछ पता नहीं। किस दिन छूटेगी, कुछ पता नहीं।

कुछ वर्ष पहलेकी बात है। जोधपुरमें एक ताँगेवाला था। स्टेशनसे यात्रियोंको लेकर जा रहा था। बीचमें चाबुक उठाया घोड़ेको मारनेके लिये कि वह झटसे गिर पड़ा और मर गया। चाबुक मार नहीं सका! यह दशा है हमारे शरीरकी।

एक बार कई आदमी आये थे नापासरमें। वे एक जगह ठहरे थे। स्नान करनेकी तैयारी हुई तो उनमेंसे एकका कपड़ा खाटके ऊपर टँगा था। खाटपर हाथ रखकर कपड़े लेनेको गया कि वहीं खाटपर गिर पड़ा और समाप्त हो गया तो आपके-हमारे शरीर क्या फौलादके बने हुए हैं? क्या पता मौत किस समय आ जाय! इसलिये हर समय तैयार रहें।

जैसे स्टेशनपर समयसे पहले चले जाते हैं, इसी प्रकार पहलेसे ही तैयार रहें। उत्तम बर्ताव करेंगे तो मरनेमें दुःख नहीं होगा। वस्तुएँ यहीं रह जायँगी और जाना पड़ेगा। मन यदि इनमें रहा तो सोचते रहेंगे कि यह वहाँ रह गयी, अमुक वहाँ रह गयी। सन्तोंके पदमें आता है—

हाकम आये हवालदार छोड़ नगरी।
छोड़ नगरी रे हंसा छोड़ नगरी॥
दोय घड़ी ठहरो यमराजा, माया पड़ी है मेरी बिखरी॥
हाकम आये हवालदार छोड़ नगरी॥

यहाँ माया पड़ी है, इसे समेट लें, चाहे छोड़ दें, तो क्या अन्तर पड़ेगा? एक जगह पड़ी रहे या अनेक जगह, जानेवालेका तो अब सम्बन्ध है ही नहीं। मान लें कि एक आदमी प्रतिदिन हजार रुपये लाता है। ऐसे वह बारह महीनेतक ला-लाकर उन्हें रख दिया और बादमें मर गया तो क्या अन्तर पड़ा बताओ? आजकल जो कागजके रुपये मिलते हैं, पहले तो वे चाँदीके रुपये थे। वह हजार रुपये लाया तो पुराने हिसाबसे वजनमें साढ़े बारह सेर ले आया। रुपये एक जगह इकट्ठे रख दिये। ऐसे इस भारको ला-लाकर एक स्थानपर रखता गया और मर गया तो अन्तर क्या पड़ा? यही न कि उधरसे लाकर इधर रख दिया और मर गया। न उधर सम्बन्ध था और न इधर सम्बन्ध रहा। बोझ ढोया। साढ़े बारह सेर प्रतिदिन लाया। गधा एक दिनमें कितना ढोता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है! मनों-मनों (एक प्रकारकी तौल) ईंटें-पत्थर ढोता है; परंतु शामको निश्चिन्त रहता है और आपको रखे हुए रुपयोंकी रात-दिन चिन्ता सताती है। सुबह होनेतक कौन-कौन आया, पूरी निगाह रखते हैं। इस तरह चोरोंकी, डाकुओंकी चिन्ता रहती है। सज्जनो! यह धन असली धन नहीं है। असली धन तो भगवान्‌का नाम है, जिससे सब मालामाल हो जाय।

कबिरा सब जग निर्धना धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सोइ जानिये जाके राम नाम धन होय॥

इस धनके कमानेमें सब स्वतन्त्र हैं। पैसा कमानेमें कोई स्वतन्त्र नहीं है, सब परतन्त्र हैं—यह बात पक्की है। कोई भाई-बहन एक-दो माला फेरनेका नियम लेते हैं तो कोई स्नान करके ही भोजन करनेका नियम लेते हैं। वे कहते भी हैं कि इतना ही नियम हमारेसे होता है, परंतु पैसा कमानेका किसके नियम है भाई! कहते हैं कि यह तो हाथकी बात नहीं। जो हाथकी बात नहीं, उसके तो पीछे पड़े हैं और सोचते हैं कि लखपति बन जायँ, मालामाल हो जायँ और जो हाथकी बात है, वह नाम लेते नहीं, जो साथमें चल सकता है। जो लेते हैं, वह साथमें चलता नहीं। जो साथमें चलता है उसे लेते नहीं। परिणाम क्या होगा जरा सोचो।

'यह तन तो जासी' यह शरीर तो जायगा भाई! जानेवालेसे ***'का परदेशी की प्रीत जावतो बार न लावे।'*** क्या प्रीति करें। क्या पता कब चल दे? हम तो मौतके मुँहपर बैठे हैं। कब यहाँसे चल देंगे, कुछ पता नहीं। इसलिये भगवान्‌के नामका तो जप करें और दूसरोंकी सेवा करें, हित करें, हर तरहसे दूसरोंका उपकार करें। ये दो ही बातें गाँठ बाँध लें—(१) भगवान्‌को तो याद रखें और (२) यहाँकी वस्तुओंके द्वारा यहाँके लोगोंकी सेवा करें। उनमें भी एक तो अभावग्रस्तोंकी सेवा करें और दूसरे जो अपने पूजनीय दादा-दादी आदि हैं, उनकी आज्ञा मानें, उनकी सेवा करें तो जन्म सफल हो जायगा।

मुक्ति प्राप्त करनेमें सब स्वतन्त्र हैं। किसी वस्तु-पदार्थ आदिको अपना न मानकर सेवा करेंगे तो मुक्ति हो जायगी। यदि किसी वस्तु-पदार्थ आदिको अपना समझकर सेवा करेंगे और उससे अपना सुख लेंगे तो बन्धन हो जायगा। छोड़ना किनको है? जो स्वयं छूट रहे हैं और आपको हर समय छोड़ रहे हैं अर्थात् जो जायँगे ही, छूटेंगे ही, उनका मोह छोड़ना है; तो जो छूटनेवाला है ही, फिर उसकी ममता छोड़नेमें क्या जोर लगता है? इसलिये जिनका छूटना निश्चित है और जिनको छोड़ना निश्चित है, उनकी ममताका त्याग कर दें। शरीरमें अहंता-ममताका त्याग कर दें, निहाल हो जायँगे—**'निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति'** (गीता २।७१) जहाँ निर्मम और निरहंकार हुए कि शान्ति प्राप्त हुई। यह ब्राह्मी स्थिति आपको, हमको और सबको मिल सकती है और हम सब इसके अधिकारी हैं। शर्त यही है कि हम सच्चे हृदयसे इसको चाहें। फिर सबसे बड़ा सुख मिल जायगा और दुःख सदाके लिये समाप्त हो जायगा।

इनका त्याग करने और न करनेमें हम स्वतन्त्र हैं। हम चाहें तो अहंताको त्याग सकते हैं। जब सब छूटेगा ही तो अपने पहलेसे ही ममताका त्याग कर दें। सब-का-सब भगवान्‌के अर्पण कर दें कि 'हे नाथ! यह सब आपकी वस्तु है।' सब भगवान्‌का है—यह अच्छी बात है। हमने तो बीचमें आकर छापा मारा है, अपना माना है। इसलिये ठाकुरजीको दे दें—**'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये'** हे नाथ! आपकी वस्तु आपके समर्पित है और चुपचाप भीतरसे ही शरीर, बुद्धि, मन, इन्द्रियोंसे अपनापन हटा लें। इस तरह सब भगवान्‌के अर्पण करके उनको याद करें और मस्त हो जायँ कि आनन्द हो गया, जिम्मेदारी समाप्त हो गयी। ठाकुरजीकी वस्तु उन्हींको सौंप दी तो वे सबको बिलकुल स्वीकार कर लेंगे। यह कहनेकी भी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि वे हर जगह विराजमान हैं। नारायण! नारायण! नारायण!

[समाप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामकथाकी व्यापकता

(श्रीरघुनन्दनप्रसादजी शर्मा)

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी कथा अनादि कालसे भारतके ही नहीं विश्वभरके जनमानसको आह्लादितकर उसमें वर्णित सिद्धान्तोंके अनुपालनके लिये अनवरत रूपसे अनुप्रेरित करती आ रही है। इस कथाने सामान्य जनोंसे लेकर उद्भट विद्वानोंतकको अपनी रसानुभूतिसे समान रूपसे आप्लावित किया है। विश्वपटलपर शायद ही ऐसी कोई अन्य कथा रही हो, जिसका प्रभाव जन-जनके मानसपर इतने व्यापक परिमाणमें पड़ा हो कि वह युग-युगोंसे उनका मनोरंजन और मार्गदर्शन करती आ रही हो। इसका एक प्रमुख कारण श्रीरामके चरित्रकी सरसता, सरलता, सहजता तथा उसकी अनुकरणीयता रही है। वेदोंमें श्रीरामकथाके सूत्र विद्यमान हैं, जिनका पल्लवन पुराणोंमें हुआ है।

श्रीरामकी कथा बहुआयामी है। मानव-जीवनका कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जो इससे अछूता रहा हो। धर्मनीति, राजनीति, समाजनीति, युद्धनीतिके साथ जहाँ पुरुषके आदर्श पिता, पुत्र, भ्राता, मित्र, सेवक और भक्त आदिके विभिन्न रूप दिखाये गये हैं, वहीं नारीके भी आदर्श माता, पत्नी, बहन, सेविका और भक्त आदिके विविध रूप दर्शाये गये हैं। इसमें मानव-जीवनको हर प्रकारसे उन्नत, प्रशस्त और श्रेष्ठ बनानेके ऐसे सभी तत्त्व—गुण विद्यमान हैं, जो सभीके लिये न केवल अनुकरणीय ही हैं, वरन् अनुल्लंघनीय भी हैं। वास्तवमें श्रीरामकी कथाके माध्यमसे मानवको सप्त सोपानोंपर चढ़ाकर, भव-बन्धनोंसे मुक्त कराकर आनन्दलोककी प्राप्ति करायी गयी है।

श्रीरामकी कथा न जाने कब भारतीय सीमाओंका अतिक्रमण करके विश्व-पटलपर पहुँच गयी और वह निरन्तर वहाँ अपनी उपयोगिता, महत्ता और गरिमाकी दस्तक देती आ रही है। आज यह कथा विश्वकी विभिन्न भाषाओंमें स्थान, विचार, काल, परिस्थिति आदिके अन्तर होनेके बावजूद भी अनेक रूपोंमें, विधाओंमें और प्रकारोंमें लिखी हुई मिलती है। भाषायी दृष्टिसे यह कथा भारतकी ही नहीं, वरन् विश्वकी सभी प्रमुख भाषाओंमें अभिव्यक्ति पाकर राष्ट्रीय स्तरसे उठकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तरपर पहुँचकर सभी भाषाओंमें एकसूत्रता स्थापित करनेका प्रमुख माध्यम बन गयी है, यथा—

राष्ट्रीय स्तरपर

श्रीरामकथाको लेकर भारतकी ही नहीं, विश्वकी सर्वाधिक प्राचीन भाषा संस्कृतके साथ-साथ भारतकी अन्य सभी भाषाओं और उपभाषाओंके अतिरिक्त उनकी बोलियों और उपबोलियोंतकमें विभिन्न रामायणों, महाकाव्यों, नाटकों तथा अन्य विविध काव्योंकी रचना हुई है, यथा—संस्कृत भाषामें वाल्मीकिरामायण, आनन्दरामायण, अद्भुतरामायण, महारामायण, स्वयम्भूरामायण आदि अनेक रामायणोंके साथ-साथ रघुवंश, भट्टिकाव्य, जानकीहरण, रामायण-मंजरी-जैसे महाकाव्यों, प्रतिमानाटक, उत्तर-रामचरित, महावीरचरित, अनर्घराघव, बालरामायण, हनुमन्नाटक आदि नाटकों तथा कृत्यारावण, सत्योपाख्यान, बृहत्कोसलखण्ड, हनुमत्संहिता आदि विविध ग्रन्थोंकी रचना हुई है। प्राकृत, पाली और अपभ्रंश भाषाओंमें भी श्रीरामकथापर अनेक रचनाएँ हुई हैं। जब आधुनिक भारतीय भाषाओंका काल आया तो वाल्मीकि एवं अध्यात्म आदि रामायणोंके काव्य-सरोवरोंसे जलबिन्दु लेकर श्रीरामकथापर एक-से-एक उत्तम और श्रेष्ठ काव्य लिखे गये, यथा ९वीं शताब्दीमें तमिलभाषामें कम्बरामायण, १३वीं और १४वीं शताब्दीमें तेलुगुभाषामें क्रमशः रंगनाथरामायण और मोल्लरामायण, १४वीं शताब्दीमें ही मलयालममें मलयालमरामचरितम्, १५वीं शताब्दीमें बँगलाभाषामें कृत्तिवासरामायण, हिन्दीभाषामें श्रीरामचरितमानस, उड़िया-भाषामें बलरामदासरामायण अथवा जगमोहनरामायण, मराठीभाषामें भावार्थरामायण और १९वीं शताब्दीमें गुजरातीमें गिरधररामायण आदि। इनके साथ-साथ कश्मीरी, पंजाबी, असमिया, मिजो, कर्वि, गारो, मणिपुरी, त्रिपुरी, खासी, कन्नड़ ही नहीं भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी आदि हिन्दीकी उपभाषाओंमें लिखित विविध रामायणें भी उल्लेखनीय हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तरपर

भारतीय भाषाओंके परिवेशसे निकालकर श्रीरामकथाको अन्तर्राष्ट्रीय स्तरपर विभिन्न भाषाओंके प्रांगणोंमें पहुँचानेमें कई माध्यम सहायक हुए हैं, यथा—

(क) भारतसे समय-समयपर विदेशोंमें जानेवाले लोग—भारतसे जानेवाले व्यापारियों, सैलानियों,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यकारों और साम्राज्य-विस्तारकोंके माध्यमसे इस कथाने खोतान, मंगोलिया, बर्मा, मलयेशिया, हिन्देशिया, वियतनाम, लाओस, स्याम आदि देशोंमें पहुँचकर धीरे-धीरे वहाँकी स्थानीय भाषाओंमें स्थान पा लिया। इस दृष्टिसे मध्य एशियाकी खोतानी, मंगोली, तिब्बती आदि भाषाओंमें रचित रामायण तथा नेपालीकी 'भानुभक्त रामायण', मलयकी 'हिकायत सेरीराम', ख्मेर (कम्बोडिया)-की 'रामकीर्ति', लाओसीकी 'फ्रालक फ्राला्म', थाईकी 'रामकीन' कावि (इण्डोनेशिया)-की 'रामायण ककबिन' और फिलीपीनीकी 'महरादिया लावना' में वर्णित श्रीराम-कथाएँ उल्लिखित की जा सकती हैं।

दूसरी ओर आजसे लगभग डेढ़ सौ-दो सौ वर्षपूर्व भारतसे जबरदस्ती ले जाये गये गिरमिटिया मजदूरोंके माध्यमसे श्रीरामकथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तरपर पश्चिमी द्वीपसमूहके देशों यथा—सूरीनाम, गुयाना आदि और मॉरीशस तथा फिलीपीन्स आदि देशोंमें पहुँची है। कारण मजदूरोंमें अधिकतर पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहारके निवासी थे, जो जाते समय अपने साथ 'रामचरितमानस' और 'हनुमानचालीसा' ले गये थे। इन दोनोंका वहाँके भारतीय लोगोंके जन-जीवनपर बड़ा गहरा प्रभाव रहा है। सूरीनामसे यह कथा हॉलैण्ड भी पहुँच गयी और वहाँ 'हनुमानचालीसा' रोमन लिपिमें भी सुलभ हो गया है।

(ख) धर्म और संस्कृतिके प्रसारक और प्रचारक—धर्म और संस्कृतिके प्रसारकों और प्रचारकोंका भारतसे समय-समयपर एशियाके विभिन्न भागोंमें विशेषकर चीन, जापान, बर्मा तथा दक्षिण-पूर्व एशियाके देशोंमें जाना होता रहा है, इन लोगोंने धर्मसभाओं, कथाओं, वार्ताओं आदिके माध्यमसे इस कथाको वहाँ प्रचारित किया। बादमें सम्बन्धित देशोंके साहित्यकारोंने उन्हीं सुनी-सुनायी कथाकी बातोंको आगे-पीछे करके, विभिन्न पात्रोंके नाम परिवर्तित करके, विशिष्ट घटनाओंको अलग-अलग सन्दर्भोंमें और अन्य पात्रोंके साथ जोड़कर तथा विस्मृत प्रसंगोंके स्थानपर स्थानीय आधारोंपर कल्पित कथाओंको रखकर स्थानीय भाषाओंमें इस कथाको एक नवीन परिवेशमें प्रस्तुत कर दिया है। 'रामकीन', 'रामायण ककबिन', 'हिकायत सेरीराम' आदि ग्रन्थ इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

(ग) धार्मिक आन्दोलनोंके विस्तारक—भारतमें उद्भूत वैष्णव, शैव और शाक्त आदि वैदिक मतोंके साथ-साथ बौद्ध और जैन-मतोंमें हुए विभिन्न आन्दोलनोंके कारण उत्पन्न विस्तारवादी दृष्टिकोणोंके परिणामस्वरूप विभिन्न सन्तों आदिके द्वारा भी चीन, जापान, बर्मा आदि देशोंमें श्रीरामकथाको पहुँचाया गया। इस सन्दर्भमें चीनकी लंकाश, जापानकी होबुत्सुशु, बर्माकी 'रामवस्तु' तथा सिंहलदेशमें वर्णित श्रीरामकथा उल्लिखित की जा सकती है।

(घ) भारतमें समय-समयपर आनेवाले विदेशी यात्री—भारतकी प्राचीन सांस्कृतिक विरासतकी गरिमा और श्रेष्ठतासे प्रभावित होकर, भारतीय साहित्यकी विशिष्टताओं और गहनतासे मोहित होकर तथा भारतीय धर्मकी व्यापकता एवं व्यावहारिकतासे प्रेरित होकर समय-समयपर चीन, जापान आदि एशियाके विभिन्न देशोंसे ही नहीं; यूरोपके पुर्तगाल, स्पेन, इटली, फ्रांस, इंग्लैण्ड आदि देशोंसे भी अनेक यात्री, धर्म-प्रचारक, व्यापारी, साहित्यकार आदि यहाँ आते रहे हैं। इन लोगोंने अपनी-अपनी यात्राके विवरणोंके सन्दर्भमें ग्रन्थोंकी रचना करते समय उनमें भारतकी विभिन्न विशिष्टताओं और विशेषताओंके उल्लेखके साथ-साथ भारतकी बहुप्रचलित श्रीरामकथाके सम्बन्धमें भी बहुत कुछ लिखा है। यही नहीं, विदेशोंसे आये कई विद्वानोंने जहाँ इस सन्दर्भमें स्वतन्त्ररूपसे मौलिक ग्रन्थ लिखे हैं, वहीं कईने इस कथासे सम्बन्धित 'रामचरितमानस' आदि विभिन्न ग्रन्थोंके अनुवाद भी अपनी-अपनी भाषाओंमें किये हैं और कईने तो इस विषयमें शोध-प्रबन्ध भी तैयार किये हैं, यथा—

पुर्तगाल	**— डॉ० कालैण्ड**	तीन रचनाएँ (स्वतन्त्र ग्रन्थ)
स्पेन	**— डे० फरिया**	'असिया पोर्तुगेसा' (स्वतन्त्र ग्रन्थ)
इटली	**— डॉ० एल० तेस्सि तौरी**	'भक्त और कवि तुलसीदास' और 'तुलसीदासपर रामानुज और शंकराचार्यका प्रभाव' (लेख), 'रामचरितमानस और वाल्मीकि रामायणका तुलनात्मक अध्ययन' (शोध-प्रबन्ध)
हंगरी	**— श्रीमती इवा अरोदी**	रामचरितमानस। (अनुवाद)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हॉलैण्ड—	ओ० डैप्पर	'असिया' (स्वतन्त्र ग्रन्थ)
	जे० फेनचियो	'लिब्रो डॉ० सेटा' (स्वतन्त्र ग्रन्थ) डॉ० कालैण्डकी तीनों रचनाओंके अनुवाद
	ए० रोजेरियुस	'द ओपन दोरे' (२१वीं शताब्दी)
	पी० वलडेयुस	'ऑफ गोडेरेय डर ओस्ट इण्डिशे हाईडेनन' (स्वतन्त्र ग्रन्थ)
फ्रांस —	गार्सा-द-तासी	तुलसीका 'सुंदरकांड' (अनुवाद)
	डॉ शार्लोत वोदविल	'द रामायण ऑफ तुलसीदास' (स्वतन्त्र ग्रन्थ) 'तुलसीदासरचित रामचरितमानसका मूलाधार तथा रचनाविषयक समालोचनात्मक अध्ययन (शोध-प्रबन्ध)
	जे०बी० टावर्नियें	'भारतयात्राके वर्णनमें श्रीराम-कथा' (यात्रा-विवरण)

भारतमें फ्रांस, पुर्तगाल, इंग्लैण्ड आदि देशोंद्वारा स्थापित साम्राज्योंको संचालित करनेवाले प्रशासनिक अधिकारी, राज्यको सुदृढ़ करनेमें सहयोग देनेवाले अन्य कर्मचारी तथा धर्मप्रचारक और राज्यको स्थायित्व प्रदान करनेवाले साहित्यकार, शिक्षाविद् आदिने भी श्रीरामकथापर अपनी-अपनी भाषामें लेखन किया है, यथा—

फ्रांस —	प्रशासनिक अधिकारी —	डे० पोलिए	'मिथोलोजी डेस इण्डु-१८०९' (पेरिस)
		जेसुइटपादरी	'लेट्रसएडिफियण्ट-१७१८' (पेरिस)
	लेखक —	एम० सोनेरा	'वोयाज ओस इण्ड ओरियण्टल' १७४२ (पेरिस)
इंग्लैण्ड —	प्रशासनिक अधिकारी —	जार्ज ग्रियर्सन	'क्या तुलसीदासकृत रामायण अनुवाद ग्रन्थ है? (लेख), 'तुलसीदास कवि और समाज-सुधारक' (लेख) 'नोट्स ऑन तुलसीदास' (लेख)
	साहित्यकार —	एफ०एस० ग्राउज	'प्रोलाग टू दि रामायण' (स्वतन्त्र समीक्षा), एच०एच० विल्सन 'ए स्केच ऑफ दि रिलीजस सेक्ट्स ऑफ हिन्दूज़' में मानसपर विचार (स्वतन्त्र रचना)
	—	एडविन ग्रीब्ज	'ए स्केच ऑफ हिन्दी लिटरेचर' (स्वतन्त्र रचना)
	लेखक —	ए०ए० मैकडौनल	'इण्डियाज पास्ट' (स्वतन्त्र ग्रन्थ)
	—	जे०एन० कारपेंटर	'दि थियोलोजी ऑफ तुलसीदास' (शोध-प्रबन्ध)
	पादरी —	ए०जी० एटकिंस	'दि रामायण ऑफ तुलसीदास' (अनुवाद)

इन सबने तो भारतमें स्थापित विदेशी राजसत्ताको सहयोग प्रदान करनेकी दृष्टिसे इस कथाको अपनाया, जबकि रूसके अलैक्सई बारान्निकोवने स्वप्रेरणासे केवल श्रीराम-कथाकी गरिमासे प्रभावित होकर रामचरितमानसका दस वर्ष लगाकर रूसी भाषामें अनुवाद किया। इस अनुवादमें उन्होंने रामचरितमानसके मूल छन्द, अलंकार और चित्र-विधानकी पूरी-पूरी रक्षा की है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि भारतमें तो श्रीराम और उनकी कथा सर्वत्र विद्यमान है। चाहे हिमगिरिका पथरीला, कंकरीला और बर्फीला क्षेत्र हो या राजस्थानका तप्त रेतसे भरपूर मैदान, शृंगवेरपुर और प्रयागकी गंगा-यमुनाकी कछारें हों या चित्रकूटकी पावन भूमि, महाराष्ट्रका रामगिरि हो या पंचवटीका क्षेत्र, कर्नाटककी हम्पी नगरी (किष्किन्धा)-का क्षेत्र हो या तीन-तीन सागरोंकी विश्रामस्थली कन्याकुमारीका तट और चाहे कुमकुमकी क्यारियोंसे युक्त नन्दनकानन कश्मीर हो, सभी जगह एक ही प्रकारसे, एक ही इच्छासे और एक ही आकांक्षासे श्रीराम और उनकी कथाका गान होता है। वह भारतके जन-जनके मनमें, प्रत्येक नगरकी डगर-डगरमें और ग्रामोंकी गली-गलीमें, गगनचुम्बी अट्टालिकाओंसे लेकर निर्धनकी कुटियोंतकमें तो बड़ी मात्रामें वर्षानुवर्षसे विस्तारित होती ही आ रही है, विश्वके अधिकांश क्षेत्रोंमें भी यह वर्षोंपूर्वसे लिखी जाती रही है, पढ़ी जाती रही है और जानी जाती रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रवाद

[अनश्वर परमेश्वरका अनश्वर-संविधान]

(श्रद्धेय पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

[गताङ्क ११ पृ०सं० २२ से आगे]

ब्रह्मतत्त्व—ब्रह्माण्डकी शक्तियाँ

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते। तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन। एतद्वै तत्॥ (कठोपनिषद् २।२।८)

जीवात्माओंके कर्मानुसार उनके लिये नाना प्रकारके भोगोंका निर्माण करनेवाले तथा उनकी यथायोग्य व्यवस्था करनेवाले जो यह परम पिता परमेश्वर समस्त जीवोंके सो जानेपर अर्थात् प्रलयकालमें सबका ज्ञान लुप्त हो जानेपर भी अपनी महिमामें नित्य जागता रहता है, जो स्वयं ज्ञानस्वरूप है, जिसका ज्ञान सदैव एकरस रहता है, कभी अधिक, न्यून या लुप्त नहीं होता, वही परम विशुद्ध दिव्य तत्त्व है, वही परब्रह्म है, उसीको ज्ञानी महापुरुषोंके द्वारा प्राप्य परम अमृतस्वरूप परमानन्द कहा जाता है। ये सम्पूर्ण लोक उसीके आश्रित हैं। उसे कोई भी लाँघ नहीं सकता—कोई भी उसके नियमोंका अतिक्रमण नहीं कर सकता। सभी सदा-सर्वदा एकमात्र उसीके शासनमें रहनेवाले और उसीके अधीन हैं। कोई भी उसकी महिमाका पार नहीं पा सकता। यही वह ब्रह्मतत्त्व है।

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

(कठोपनिषद् २।२।९)

एक ही अग्नि निराकाररूपसे सारे ब्रह्माण्डमें व्याप्त है, उसमें कोई भेद नहीं है। परंतु जब वह साकाररूपसे प्रज्वलित होता है। तब उन आधारभूत वस्तुओंका जैसा आकार होता है, वैसा ही आकार अग्निका भी दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार समस्त प्राणियोंके अन्तर्यामी परमेश्वर एक हैं और सबमें समभावसे व्याप्त हैं, उनमें किसी प्रकारका कोई भेद नहीं है तथापि वे भिन्न-भिन्न प्राणियोंमें उन-उन प्राणियोंके अनुरूप नाना रूपोंमें प्रकाशित होते हैं। भाव यह है कि आधारभूत वस्तुके अनुरूप ही उनकी महिमाका प्राकट्य होता है। वास्तवमें उन परमेश्वरकी महत्ता इतनी ही नहीं है, इससे बहुत अधिक और विलक्षण है। उनकी अनन्त शक्तिके एक क्षुद्रतम अंशसे ही यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड नाना प्रकारकी आश्चर्यमयी शक्तियोंसे सम्पन्न हो रहा है—

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥

(कठोपनिषद् २।३।३)

सबपर शासन करनेवाले और सबको नियन्त्रणमें रखकर चलानेवाले इन परमेश्वरके भयसे ही अग्नि तपता है, इन्हींके भयसे सूर्य तप रहा है। इन्हींके भयसे इन्द्र, वायु और पाँचवें मृत्यु देवता—ये सब दौड़-दौड़कर जल आदि बरसाना, प्राणियोंको जीवनशक्ति प्रदान करना, जीवोंके शरीरोंका अन्त करना आदि अपना-अपना काम सावधानीपूर्वक कर रहे हैं। सारांश यह है कि इस जगत्में देवसमुदायके द्वारा सारे कार्य जो नियमित रूपसे सम्पन्न हो रहे हैं, वे इन सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वर सबके शासक एवं नियन्ता परमेश्वरके अमोघ शासनसे ही हो रहे हैं।

यथादर्शे तथात्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके। यथाप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके॥

(कठोपनिषद् २।३।५)

जैसे मलरहित दर्पणमें उसके सामने आयी हुई वस्तु दर्पणसे विलक्षण और स्पष्ट दिखलायी देती है, उसी प्रकार ज्ञानी महापुरुषोंके विशुद्ध अन्तःकरणमें वे परमेश्वर उससे विलक्षण एवं स्पष्ट दिखलायी देते हैं। जैसे स्वप्नमें वस्तुसमूह यथार्थरूपमें न दिखकर स्वप्नद्रष्टा मनुष्यकी वासना और विविध संस्कारोंके अनुसार कहींकी वस्तु कहीं विशृंखलरूपसे अस्पष्ट दिखायी देती है, वैसे ही पितृलोकमें परमेश्वरका स्वरूप यथावत् स्पष्ट न दिखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्पष्ट ही दिखता है; क्योंकि पितृलोकको प्राप्त प्राणी पूर्वजन्मकी स्मृति और वहाँके सम्बन्धियोंका पूर्ववत् ज्ञान होनेके कारण तदनुरूप वासनाजालमें आबद्ध रहते हैं। गन्धर्वलोक पितृलोककी अपेक्षा कुछ श्रेष्ठ है; इसलिये जैसे स्वप्नकी अपेक्षा जाग्रत्-अवस्थामें जलके अन्दर देखनेपर प्रतिबिम्ब कुछ-का-कुछ न दिखकर यथावत् तो दिखता है, परंतु जलकी लहरोंके कारण हिलता हुआ-सा प्रतीत होता है, स्पष्ट नहीं दिखता, वैसे ही गन्धर्वलोकमें भोग-लहरियोंमें लहराते हुए चित्तसे युक्त वहाँके निवासियोंको भगवान्‌के सर्वथा स्पष्ट दर्शन नहीं होते। किंतु ब्रह्मलोकमें वहाँ रहनेवालोंको छाया और धूपकी तरह अपना और उन परब्रह्म परमेश्वरका ज्ञान प्रत्यक्ष एवं सुस्पष्ट होता है। वहाँ किसी प्रकारका भ्रम नहीं रहता। प्रथम अध्यायकी तीसरी वल्लीके पहले मन्त्रमें भी बतलाया गया है कि यह मनुष्यशरीर भी एक लोक है। इसमें परब्रह्म परमेश्वर और जीवात्मा—दोनों धूप और छायाकी तरह हृदयरूप गुफामें रहते हैं। अतः मनुष्यको दूसरे लोकोंकी कामना न करके इस मनुष्य-शरीरके रहते-रहते ही उस परब्रह्म परमेश्वरको जान लेना चाहिये। यही अभिप्राय है।

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत्।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति॥

(कठोपनिषद् २।३।६)

शब्द-स्पर्शादि विषयोंके अनुभव पृथक्-पृथक् कार्य करनेके लिये भिन्न-भिन्नरूपमें उत्पन्न हुई इन्द्रियोंके जो पृथक्-पृथक् भाव हैं तथा जाग्रत्-अवस्थामें कार्यशील हो जाना और सुषुप्तिकालमें लय हो जाना-रूप जो उनकी परिवर्तनशीलता है, इनपर विचार करके जब बुद्धिमान् मनुष्य इस रहस्यको समझ लेता है कि 'ये इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि या इनका संघातरूप यह शरीर मैं नहीं हूँ। मैं इनसे सर्वथा विलक्षण नित्य चेतन हूँ, सर्वथा विशुद्ध एवं सदा एकरस हूँ।' तब वह किसी प्रकारका शोक नहीं करता। सदाके लिये दुःख और शोकसे रहित हो जाता है।

उत्पीड़न एवं हिंसा भी चोटीपर—स्टालिनकी तरह अपनी ही प्रजाकी हत्या

अपनी ही प्रजाका नाश करनेमें कलका वह हिरण्यकशिपु आजके स्टालिनसे कुछ भी कम नहीं था। स्टालिन भी रोटी, कपड़ा और मकानका नारा लगाता था, जुटाता भी था, किंतु उन्हीं लोगोंके लिये जो उसके मतको माननेवाले थे और जो उसकी सरकारमें थे। उसीके मतको माननेवाले मजदूरोंके लिये भी रोटी, कपड़े और मकानकी वह सुलभता नहीं थी। भुलावेमें डालकर वह उन्हें खानेके लिये केवल काली रोटी और सूखी मछली देता था। इस तथ्यको आन्द्रेजीदने स्वयं आँखोंसे देखकर लिखा है (आन्द्रेजीद विश्वविख्यात साहित्यकार थे)। विक्टर क्रावैचैकोने भी 'स्वाधीनताकी ओर' में लिखा है कि एक मजदूरको जब उन्होंने नींबू खानेको दिया, तब कृतज्ञता जताते हुए उसने कहा कि क्रान्तिके बाद आज ही मैंने नींबूका स्वाद जाना है।

यह तो हुई स्टालिनके द्वारा अपने ही मतके माननेवाले मजदूरोंके शोषणकी बात। उसके देशके ही जो लोग उसके मत (कम्युनिज्म)-को नहीं मानते थे, उनको भूखसे तड़पाकर आश्रयहीनकर कितनी निर्दयतासे मार डालता था—यह बात आज सबको मालूम हो गयी है।

इस तरह अपनी ही प्रजाकी हत्या करनेमें स्टालिन भी हिरण्यकशिपुसे कम न था। स्टालिनने तो जीनोवीव, कमेनेव, प्याटोकाव, रादेक बुखारिन आदि साथियोंकी भी विशिस्की और एन०के०वी०डी० की सहायतासे हत्या कर दी थी। ऐसी यन्त्रणामय हत्या तो दैत्यराज हिरण्यकशिपु भी नहीं कर सका था।

दोनों अनीश्वरवादी और हिंसावादी

जड़वाद ईश्वर नहीं मानता। इस युगका स्टालिन ईश्वरको नहीं मानता था और उस युगका हिरण्यकशिपु भी ईश्वरको नहीं मानता था। हिरण्यकशिपु कहा करता था—**'मदन्यो जगदीश्वरः। क्व?'** (श्रीमद्भा० ७।८।१३)

आजका जड़वादी स्टालिन 'हिंसा' को अपनी नीति मानता था। हिरण्यकशिपुने आस्तिकोंकी हिंसाके लिये खुला आदेश दे रखा था—**'सूदयध्वं तपोयज्ञ-स्वाध्यायव्रतदानिनः।'** अर्थात् जो-जो तपस्या, यज्ञ, वेद आदिका अध्ययन, व्रत और दान आदि शुभ कर्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहे हों, उन्हें काट डालो। (श्रीमद्भा० ७।२।१०)

'तं तं जनपदं यात सन्दीपयत वृश्चत।' अर्थात् जहाँ-जहाँ शुभकर्म हो रहे हों, उन देशोंमें जाओ। वहाँ आग लगा दो और पेड़-पौधोंको काट डालो। (श्रीमद्भा० ७।२।१२)

स्टालिनने अपनी पत्नी अलुलूबियाँको गोलीसे इसलिये उड़ा दिया था कि उसके मुखसे उन निरपराध किसानोंके लिये सहानुभूति प्रकट हो गयी थी, जिन्हें स्टालिन साइबेरियाके गड्ढोंमें तड़पा-तड़पाकर मार रहा था। हिरण्यकशिपु भी अपने औरस पुत्र प्रह्लादकी हत्या-पर-हत्याका प्रयास केवल इसलिये करवा रहा था कि वह 'ईश्वर' को मानता था।

जो जड़वादी अपने मतके विरुद्ध चलनेवाली अपनी पत्नी और अपने पुत्रकी भी हत्या कर सकते हैं। वे अपनी प्रजाको क्यों बकसेंगे? जिनकी नीति ही 'हिंसा' है, वे प्रजाको कितना उत्पीड़ित करेंगे और कितना हिंसित करेंगे—यह आँकना कोई कठिन नहीं है।

हाँ तो इस तरह प्राचीनकालके जड़वादी हिरण्यकशिपु तथा इस युगके स्टालिनने जितना जड़वादको चोटीपर पहुँचा दिया था, उतना उत्पीड़न और हिंसाको भी चोटीपर पहुँचा दिया।

परमात्माको प्राप्त करनेका दूसरा साधन

न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥

(कठोपनिषद् २।३।९)

इन परब्रह्म परमेश्वरका दिव्य स्वरूप प्रत्यक्ष विषयके रूपमें अपने सामने नहीं ठहरता, परमात्माके दिव्य रूपको कोई भी मनुष्य प्राकृत चर्मचक्षुओंके द्वारा नहीं देख सकता। जो भाग्यवान् साधक निरन्तर प्रेमपूर्वक मनसे उनका चिन्तन करता रहता है, उसके हृदयमें जब भगवान्के उस दिव्य स्वरूपका ध्यान प्रगाढ़ होता है, उस समय उस साधकका हृदय भगवान्के ध्यानजनित स्वरूपमें निश्चल हो जाता है। ऐसे निश्चल हृदयसे ही वह साधक विशुद्ध बुद्धिरूप नेत्रोंके द्वारा परमात्माके उस दिव्य स्वरूपकी झाँकी करता है। जो परमेश्वरको जान लेते हैं, वे अमृत हो जाते हैं अर्थात् परमानन्दस्वरूप बन जाते हैं।

यथा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्॥

(कठोपनिषद् २।३।१०)

योगाभ्यास करते-करते जब मनके सहित पाँचों इन्द्रियाँ भलीभाँति स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी एक परमात्माके स्वरूपमें इस प्रकार स्थित हो जाती है, जिससे उसको परमात्माके अतिरिक्त अन्य भी वस्तुका तनिक भी ज्ञान नहीं रहता, उससे कोई भी चेष्टा नहीं बनती, उस स्थितिको योगीगण परम गति—योगकी सर्वोत्तम स्थिति बतलाते हैं—

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥

(कठोपनिषद् २।३।१४)

मनुष्यका हृदय नित्य-निरन्तर विभिन्न प्रकारकी इहलौकिक और पारलौकिक कामनाओंसे भरा रहता है, इसी कारण न तो वह कभी यह विचार ही करता है कि परम आनन्दस्वरूप परमेश्वरको किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है और न काम्य विषयोंकी आसक्तिके कारण वह परमात्माको पानेकी अभिलाषा ही करता है। ये सारी कामनाएँ साधक पुरुषके हृदयसे जब समूल नष्ट हो जाती हैं, तब वह—जो सदासे मरणधर्मा था—अमर हो जाता है और यहीं—इस मनुष्यशरीरमें ही उस परब्रह्म परमेश्वरका भलीभाँति साक्षात् अनुभव कर लेता है।

ऋग्वेदमें पुनर्जन्म

ऋक्संहितामें आया है कि महर्षि वामदेवको माताके गर्भमें ही आत्मज्ञान प्राप्त हुआ, जिसके द्वारा उन्होंने अपने अनेक जन्मोंकी बात प्रत्यक्ष कर ली थी—

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा। शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम्॥

(ऋक्० ४।२७।१)

वामदेव कह रहे हैं—'जब मैं माताके गर्भमें था, तभीसे इन अग्नि आदि देवताओंके जितने जन्म हुए हैं, सभी जन्मोंको अब जान गया हूँ। ये जन्म जिस क्रमसे हुए थे। इस बातको भी जान गया हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इतना ही नहीं, मैं तो अब अपने पूर्वजन्मोंको भी जान गया हूँ) आत्मज्ञान होनेसे पहले मैं इन बातोंको इसलिये नहीं जान पाता था कि वे शरीर लोहेकी तरह अछेद्य-अभेद्य थे और वे इसकी कठोर निगरानी रखते थे कि मैं इस आत्मज्ञानको प्राप्त न कर सकूँ, किंतु अब मैं अपने-आपको जान गया हूँ कि मैं किसी भी आवरणसे शून्य हूँ। शरीरने जो आवरण डाल रखा था, वह मिथ्या था। अब मैं इसे छिन्न-भिन्नकर इसकी कैदसे वैसे ही बाहर आया हूँ, जैसे कोई शक्तिशाली बाज अपने जालको छिन्न-भिन्नकर बाहर निकल आया है'।

ईश्वरके शाप, वरदान एवं मोक्ष

श्रीरामचन्द्रजी एवं लक्ष्मणजी मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रके साथ धनुष-यज्ञ देखने जनकपुरकी ओर प्रस्थान करते हैं। मार्गमें आश्रम दिखायी पड़ा। वहाँ पशु-पक्षी, कोई भी जीव-जन्तु नहीं था। पत्थरकी एक शिलाको देखकर जब प्रभुने पूछा, तब मुनिने विस्तारपूर्वक सब कथा कही और कहा—गौतममुनिकी स्त्री अहल्या शापवश जिन्हें स्वयं गौतममुनिने शाप देकर पत्थरका बना दिया, वही अहल्या आपके चरणकमलकी धूलि चाहती है। हे रघुवीर! इसपर कृपा कीजिये।

श्रीरामजीके पवित्र और शोकको नाश करनेवाले चरणोंका स्पर्श पाते ही सचमुच वह तपोमूर्ति अहल्या प्रकट हो गयी। भक्तोंको सुख देनेवाले श्रीरघुनाथजीको देखकर वह हाथ जोड़कर सामने खड़ी रह गयी। अत्यन्त प्रेमके कारण वह कुछ बोल नहीं पा रही है। अत्यन्त बड़भागिनी अहल्या प्रभुके चरणोंसे लिपट गयी एवं दोनों नेत्रोंसे आनन्दके आँसुओंकी धारा बहाने लगी।

फिर उसने मनमें धीरज धरकर प्रभुको पहचाना और श्रीरामजीकी कृपासे भक्ति प्राप्त की, तब अत्यन्त निर्मल वाणीसे उसने स्तुति प्रारम्भ की कि हे प्रभो! मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। रक्षा कीजिये तथा मोक्ष प्रदान कीजिये। मुनिने मुझे शाप दिया। उन्होंने बहुत ही अच्छा किया। मैं उसे अत्यन्त अनुग्रह मानती हूँ। जिसके कारण मैंने संसारसे छुड़ानेवाले आप श्रीहरिको नेत्र भरकर देखा, मैं आपके चरणकमलकी रजके प्रेमरूपी रसका सदा पान करती रहूँ। इस प्रकार बार-बार भगवान्के चरणोंमें गिरकर जो मनको बहुत ही अच्छा लगा, उस वरको पाकर गौतमकी स्त्री अहल्या आनन्दमें भरी हुई पतिलोकको चली गयी।

अहल्याने अपने पति गौतमसे शाप पाया फिर उन्हींसे वरदान, भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका चरणस्पर्श तथा भगवान् (ईश्वर)-से मोक्षको प्राप्त हुई तथा आनन्दमें भरी हुई पतिलोकको चली गयी।

प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ऐसे दीनबन्धु और बिना ही कारण दया करनेवाले हैं। तुलसीदासजी कहते हैं। हे शठ (मन)! तू कपट-जंजाल छोड़कर उन्हींका भजन कर।

श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रपर सेतु बनवानेके लिये जिन दो वानरोंकी मदद ली, वे नल तथा नील थे। ये विश्वकर्मा (देवशिल्पी) तथा घृताची नामक अप्सराके पुत्र थे। ऋतुध्वजमुनिके शापसे विश्वकर्माको वानरयोनि प्राप्त हुई थी। उसी जन्ममें उसे यह पुत्र गोदावरी नदीके तटपर पैदा हुआ। इन्हें अग्निका पुत्र भी कहा जाता है। इन्होंने एक ब्राह्मणको जाह्नवी नदीमें शालग्राम-विसर्जन करनेके कार्यमें मदद की थी। इस पुण्य कार्यके लिये उस ब्राह्मणने इन्हें वर दिया। तुम्हारे डाले पत्थर पानीमें तैर सकेंगे। इसी सिद्धिके कारण ये सेतु-बन्धनका कार्य सफलतासे कर सके। सेतु बाँधनेका कार्य शुरू करनेसे पहले इन्होंने गणेश तथा नवग्रहोंकी पूजा की थी।

श्रीरामजीकी आज्ञासे इन्होंने दक्षिण समुद्रपर सौ योजन लम्बे एवं दस योजन चौड़े सेतुका निर्माण किया। वह सेतु रामसेतु अथवा नल-नीलसेतुके नामसे प्रसिद्ध है।

यहाँ नल-नीलका वरदान भगवान् श्रीरामजीकी विपदामें भी काम आया। अनश्वर शासन-विधानमें देवताको भी मनुष्यकी आज्ञाका पालन करना पड़ता है। मनुष्यकी आज्ञाको ईश्वरको मानना ही पड़ता है, तथा मानते हैं। [समाप्त]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी—

नवधा भक्ति—सख्य

(श्री 'चक्र')

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥

'भद्र कहाँ है?'

'कहीं कोनेमें छिपा होगा।'

'गैयाँ घेरने गया है!'

'उसका छींका तो उठा लाओ!'

'जाने भी दो, क्या रखा है उसमें!'

'ब्राह्मणको तो लड्डू ही भाते हैं। अभी श्रीदामका छींका उठाना होता तो दौड़े चले जाते!'

'उसके लड्डू जैसे आप कभी छूते ही नहीं!'

देखा कि मधुमंगलसे काम नहीं चलता तो आप ही उठ खड़े हुए। सबसे दूर माधवी-कुंजमें लताओंके पीछे छिपाकर एक मैला-सा छींका टँगा था। वह इस प्रकार रखा था कि सहसा दीख नहीं पड़ता था।

'कभी अपना कलेऊ नहीं खिलाता हमें!' मन-ही-मन गुनगुनाये आप। 'आज सब-का-सब अकेले ही न खा जाऊँ तो मेरा नाम….।' छींका उतारकर गुपचुप उसी कुंजमें बैठ गये। उधर सखा जल पीने कालिन्दी-किनारे चले गये थे।

उसकी चारों गायें साथ ही बिसुक चुकी हैं। माँ किसीसे कुछ माँगनेमें अपमान अनुभव करती है। 'अहीर भीख नहीं माँगते!' घरमें गोरस है ही नहीं। व्रजमें उसीका घर सबसे अधिक दीन है। इतनेपर भी माखनचोर तीसरे-चौथे घरमें घुसकर उसके मिट्टीके बर्तन फोड़ आता है।

क्या उसकी इच्छा नहीं होती कि सखाओंकी मण्डलीमें अपना छींका लेकर बैठे? अपने हाथसे मोहनको खिलाये और उसके हाथसे खाये? किंतु वह सदा किसी एकान्त कुंजमें ही कलेऊके समय बैठता है। कैसे ये चनेकी बासी रोटियाँ सखाओंके सामने केवल नमक रखकर खोलेगा और कैसे उसे श्यामसुन्दरके मुखमें देगा? कहीं दूर बैठता है और चुपचाप कलेऊ कर लेता है। जल्दी-जल्दी समाप्त करके सखाओंकी उस समयकी क्रीड़ा देखा करता है कहींसे छिपकर। क्या-क्या सोचता है—कैसे कहा जाय।

उसका छींका यों भी कोई छूता नहीं। सब जानते हैं कि भद्र बहुत शीघ्र रो पड़ता है। फिर भी वह रखता उसे छिपाकर ही है। उसे ही प्राय: गायें घेरनी पड़ती हैं। सबसे दीन-दुर्बल होनेके कारण सब उसीको भगाया करते हैं। सीधे-सादे लड़के समवयस्कोंमें अधिक सताये जाते हैं। उसीको सब चिढ़ाते हैं।

वह नटखट ही सबसे बड़ी आफत है। वह उसे चिढ़ानेका कोई-न-कोई उपाय ढूँढ़ता ही रहता है। अच्छे हैं दाऊ भैया, वे न डाँटें तो पता नहीं ये सब उसे कितना सतायें। उन्हींकी कृपासे दिनमें दो-चार बार गायें घेरनेसे भी वह छुट्टी पा जाता है। वही क्या, सभी उन्हें मानते हैं। उन्हींसे कुछ गोपाल भी दबता है।

गायें बहुत दूर निकल गयी थीं। एकको हाँको तो दूसरी और दूसरीकी ओर जाओ तो तीसरी। बहुत झल्लाया वह। बड़ी कठिनतासे घेर पाया। समीप आते ही उसका हृदय धक्से हो गया। कदम्बके नीचे सखाओंका मण्डल बैठ चुका है और वे कन्हैयाको कलेऊके लिये पुकार रहे हैं। 'क्या कोई असुर फिर उसे ले गया?' झपटा वह उसी ओर।

पैर ठिठक गये। वह खड़ा-खड़ा देखने लगा। जिस कुंजमें वह अपना छींका छिपा गया था, उसीमेंसे पीताम्बरका तनिक-सा छोर झलक गया था। उस लताओंके झुरमुटमें दूर्वाके आसनपर स्थिर विद्युत्-परिवेष्टित वह नवदूर्वादलश्याम बैठा था। छींका सामने पड़ा था—खुला हुआ। रोटीका एक टुकड़ा ही शेष था और नमक सम्भवत: समाप्त हो चुका था। आप आनन्दसे भोजन कर रहे थे या केलेके छिलके खानेके लिये अभ्यास कर रहे थे, वही जानें।

वह देखता रहा। साहस नहीं हुआ कि पुकारें। 'अरे, चनेकी रोटी उसे हानि करे तो?' वह चौंका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कनूँ!' उसने पुकारा और घुस गया। क्या होता है? बचा हुआ सारे-का-सारा टुकड़ा उसने मुँहमें ठूँस लिया और अँगूठा दिखाते हुए भाग खड़ा हुआ। देखनेयोग्य थी वह छटा। टुकड़ा बहुत बड़ा था। मुख चला भी नहीं पाता था और थूकना भी नहीं चाहता था। भद्र तो वह फूला मुख देखकर पेट पकड़कर हँसते-हँसते उन्हीं दूबोंपर लोटपोट होने लगा।

'मैं तो उसकी दोनों रोटियाँ खा आया।' हँसते-हँसते नटनागरने सखाओंसे कहा। 'अब नहीं करता कलेऊ!' सबके मुख उतर गये। उसके बिना आनन्द क्या आयेगा।

'वह बेचारा भूखा रह जायगा!' बड़े भैयाने गम्भीरतासे कहा। 'पकड़ लाओ उसे!' किसीके कुछ कहनेसे पहले कन्हैया ही दौड़ा। भैयाकी आज्ञा तो वह मानता ही है। उसके पीछे तो मण्डली ही भागी चली गयी।

वह अभी हँस ही रहा था। उस मुखकी—फूले कपोलोंवाले मुखकी याद ही नहीं भूलती थी, पकड़ लिया गया। उसकी एक भी चली नहीं। ले जाकर बड़े भैयाके समीप उसे बैठाकर दूसरी ओर वही रोटी-उड़ाऊ बैठ गया। एक बड़ा-सा लड्डू श्रीदामके छींकेसे निकालकर उसने उसके मुखमें ठूँस दिया हँसाकर। फिर सब उसे हँसानेका प्रयत्न करने लगे।

श्रीदामके छींकेका लड्डू—वह जानता है कि बिहारीलाल उसे किसीको सरलतासे नहीं मिलने देते! श्रीदाम भी एक-दोमें ही रह जाता है। वह तो उनका प्यारा कलेवा है। उस दिन पता नहीं कितना मक्खन श्यामने अपने छींकेसे मैयाके हाथका मथा और पता नहीं कितने लड्डू श्रीदामके छींकेसे किसी बहुत ही कोमल सुकुमार करोंके सजाये खिला दिये! वह तो इतना ही जानता है कि पेट बुरी तरह ठस गया।

× × ×

(२)

'भद्र! मेरी गैयाँ दूर चली गयी हैं।'

'किसी दूसरेको भेज दो! मुझे तो इतना खिला दिया है कि उठा नहीं जाता!' उस भोले बालकने सच ही तो कहा था।

'कोई जाता नहीं, सब खेलमें लगे हैं!' पीताम्बरसे मुख दबाकर हँसी रोक ली गयी थी। बेचारा भद्र घासपर लेटा था। उसे आज इन सबोंने इतना खिलाया है कि पेटमें श्वास लेनेको ठिकाना नहीं है। आप उसके पीछे खड़े हैं।

'मुझसे तो चला जायगा नहीं!' भद्र अप्रसन्न भी है। 'क्यों उसकी यह दुर्दशा की सबोंने मिलकर?' दोष उसका भी है—उतना नहीं! मैयाके हाथका मक्खन और 'वे' लड्डू, सभी तो लालायित रहते हैं! कन्हैया मुखमें हँसाकर डाल दें तो क्या थूका जा सकता है? वह निरपराध ही है तब।

'दाऊ मुझे डाँटेंगे!' उस ढोंगीने स्वर बनाकर कहा।

'तब तुम्हीं क्यों नहीं जाते!' भद्र झल्ला उठा था।

'अच्छा!' वह चला तो गया, पर भद्रने समझा कि अभी खड़ा ही है। एक क्षण, दो क्षण, कुछ क्षण बीत गये। पीछेसे कोई बोला नहीं।

'मैं जरा देरमें जाता हूँ और घेर लाता हूँ!' उसका मान मौनने भंग कर दिया। बड़े स्निग्ध स्वरमें उसने कहा—'गैयाँ जा कहाँ सकती हैं!' करवट बदलकर उसने पीछेकी ओर खड़े सम्भवतः रूठे हुए अपने सखाको समझाना चाहा।

'हैं, चला गया वह?' हड़बड़ाकर उठ बैठा। 'श्यामसुन्दर!' बड़े जोरसे—पूरी शक्तिसे पुकारते हुए उसने लठिया उठायी और खड़े होकर चारों ओर देखने लगा। उसे न तो उत्तर मिला और न कहीं उसका अभीष्ट दृष्टिगत हुआ।

'वह तो सखाओंके संग भी नहीं है!' अपने-आप ही बड़बड़ाया। 'इतनी कड़ी धूप है, पृथ्वी तवे-सी तप रही है, उसके कोमल चरण….।' सिरपर हाथ दे मारा उसने।

'इधर काँटे भी खूब हैं। जाते कहाँ, इस कंकड़ और कुशोंसे भरे वनमें, आज आ गये हैं!' वह दौड़ते-दौड़ते कह रहा था 'गायें कुछ सरलतासे घिर जाती हैं? हाय, कहीं ठोकर लगी तो?' वह पूरी शक्तिसे दौड़ रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आज उसे भी क्या सूझी है। और कभी तो इस प्रकार नहीं भागता था गायें घेरने! पता नहीं कितनी दूर निकल गयीं सब! बड़ी उद्धत हैं, अभी तो यहीं छोड़ा था!' उसे गायोंपर, इधर आनेवाले सखाओंपर, इस कंकड़-कण्टकसे भरी भूमिपर, सूर्यपर और अपने-आपपर भी रोष आ रहा था। कहीं उसके सखाके लाल-लाल तलवोंमें छाले पड़ गये, कोई कुश-कण्टक या कंकड़ लग गया…! क्या होगा फिर? पेट भरा है। बोल रहा है। कष्ट हो रहा है दौड़ते समय। पृथ्वीमें उसे भी ठोकरें लग सकती हैं और काँटे चुभ सकते हैं। चुप रहिये! यह व्यर्थकी बातें सोचनेका उसे अवकाश नहीं।

'श्यामसुन्दर!' वह बड़े जोरसे बार-बार पुकारता जा रहा था। 'वह दीखा पीताम्बर! वह रहा मोरमुकुट! वे पत्ते खड़के!' पीले पुष्प, डालीपर बैठे मयूरकी पूँछ और ओटमें कूदते हुए कपियोंकी आहटने उसे बार-बार प्रलुब्ध किया।

'वही तो है! सुनकर भी उसने मुख क्यों फेर लिया?' गायें इधर-उधर भाग रही थीं और वह एक-एकको घेरने, इधर-से-उधर दौड़ रहा था। भद्रकी पुकार उसने बहुत दूरसे सुन ली थी। जान-बूझकर ही उसने उत्तर नहीं दिया था। सम्भवतः कुछ रूठ-सा गया था। यों सखाओंसे वह रूठता कम ही है।

पेट भरा था। धूप तीव्र थी! पूरी शक्तिसे वह दौड़ा आ रहा था। इतनेमें ठोकर लग गयी किसी पेड़की जड़से। धड़ामसे गिर पड़ा मुँहके बल। मूर्छित हो गया।

× × ×

(३)

पीताम्बर बार-बार हवा कर रहा था। उसने नेत्र खोले। उसका सखा एकटक उसीकी ओर देख रहा था, उसके मस्तकको अपनी गोदमें लिये हुए। एक तमालकी छायामें कोमल दूबोंपर वह लेटा था।

'कैसा जी है, भद्र!' बड़े मधुर स्वर पड़े कानोंमें। 'अच्छा तो हूँ!' वह झटकेसे उठ बैठा। प्रश्नने सारी घटना स्मरण करा दी। लपककर सखाके दोनों पैर खींचकर गोदमें रख लिये और बड़े ध्यानसे उनके तलवे देखने लगा।

'तुम्हें कोई काँटा तो नहीं लगा?' बड़े सशंकित स्वरमें उसने पूछा।

'नहीं तो!' हँसते हुए सखाने हृदय शीतल कर दिया।

'भद्र! मैं आज बहुत सन्तुष्ट हूँ!' सम्भवतः ऐश्वर्य स्मरण हो आया था। 'तुम कुछ माँग लो—कुछ भी, जो तुम्हें अच्छा लगे!' वरदान दे रहे थे वरदाता।

'क्या माँग लूँ!' भद्रने सखाके मुखको गम्भीरतासे देखा और हँस पड़ा। उसे यह सब बड़ा ऊटपटाँग लग रहा था।

'गायें, धन, राज्य, देवत्व, इन्द्रका पद!' उस सखाने गम्भीरतासे कहा। 'सिद्धियाँ, ब्रह्मलोक या मुक्ति! जो तुम चाहो!' उपहासकी कोई रेखा मुखपर थी नहीं।

भद्र कुछ नहीं बोला। वह चुपचाप सखाका मुख देखता रहा। 'कन्हैयाको आज क्या हो गया है?! ऐसी उलटी-पलटी बातें तो वह कभी नहीं करता था! उसकी छोटी-सी बुद्धिमें कुछ आता नहीं था।'

'माँगो, भद्र!' उसने फिर आग्रह किया।

'आज कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहा है कनूँ! तू तो इतना गप्पी कभी था नहीं!' उसने हँसते-हँसते कह ही दिया।

'ओह, तुम इसे उपहास समझते हो?' भूल अब ज्ञात हुई थी। 'अच्छा, देखकर पसन्द कर लो! तब माँगना!' दृष्टि आकाशकी ओर उठायी उसने।

'यह सब क्या है?' भद्र चौंका। योगमाया अपना काम कर रही थीं। दृश्य बदलते जा रहे थे। वह मूक, स्तब्ध वह सब देख रहा था। उसका सखा सामने खड़ा मन्द-मन्द मुसकरा रहा था। पता नहीं कबतक वह जाने क्या-क्या देखता रहा। अन्तमें जब वह सावधान हुआ, उसने अपनेको उसी तमालके नीचे पाया। सखा हँस रहा था।

'मैंने बड़े सुन्दर स्वप्न देखे हैं कनूँ!' उसने सखासे बड़ी सरलतासे कहा।

'तुम उनमेंसे कुछ चाहते भी हो? तुम्हें मिल सकता है।' सखाने कहा।

'सच?' वह हर्षसे बोला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सचमुच ही तुम जो कुछ चाहोगे, मिलेगा!' सखाका स्वर कह रहा था कि वह उपहास नहीं कर रहा है।

'तुम्हारा वह सिंहासन तो बहुत सुन्दर था और तुम्हारे पास रत्न भी बहुत थे! हाथ जोड़े खड़े रहनेवालोंको मैं गिन ही नहीं सकता था!' भद्रने आश्चर्यसे कहा। 'एकको तुमने सिद्धियाँ दे दीं! वह तो पूरा राक्षस हो गया! कभी उड़ा-उड़ा फिरता, कभी पहाड़ हो जाता और कभी मच्छर-जैसा छोटा! कभी तो वह दिखलायी ही नहीं पड़ता था! ऐसे तो राक्षस ही होते हैं। मुझे राक्षस नहीं बनना है!' सिद्धियोंका उसने यही अर्थ समझा।

'एकको तुमने बड़ा भारी राजा तो क्या बनाया, पूरी विपत्तिमें डाल दिया!' उसके स्वरमें कुछ रोष था। 'बेचारा दो रोटी भी सुखसे नहीं खा पाता था। कभी सेना बढ़ानी है, कभी हथियार अधिक बनवाने हैं और कभी खजाना खाली हो रहा है—उसे भरना है। कोई भी उसे भला नहीं कहता था। सभी गालियाँ देते थे। किसीके लड़केको उसने जेल दे दिया और किसीके भाईको फाँसी। रात-दिन उसे शाप ही मिलते हैं।' वह समझ गया था कि राजाके चमकीले वस्त्र और सोनेके मुकुटसे तो यह फटी लँगोटी और कमरिया ही भली। सबकी गालियाँ कौन सुने।

'इन्द्र बननेपर वह फूला नहीं समाया था!' वह हँसते-हँसते कह रहा था। 'जब दैत्योंने धावा किया तो हेकड़ी हवा हो गयी। सब अमृत पसीनेसे निकल गया। पहाड़ोंकी कन्दराओंमें घर-द्वार छोड़कर मारे-मारे फिरता रहा। उससे तो हमीं भले हैं, जो कोई दैत्य आता है तो उसका कचूमर निकालनेको तू पास तो रहता है!' सचमुच भैया! तुम-सा भला कोई त्रिभुवनमें नहीं हुआ। होगा भी—कोई आशा नहीं।

'मेरे घर इतना आटा कहाँसे आयेगा!' उसने दोनों हाथ फैलाकर बताया, 'जो मैं अपने चार, पाँच या छः मुख बनवा लूँ। फिर माँ कहती है कि बैलपर बैठना पाप है और मोर भी नाचते ही भला लगता है। उस दुर्बलपर कौन बैठे! दिन-रात बिना सिर उठाये खिलौने गढ़ना मेरे बसका नहीं!' सखा हैरान था कि इस अहीरके नन्हे बालकको अन्ततः कुछ पसन्द है भी या नहीं।

'उहँ, ये सब व्यर्थकी बातें है!' उसने कहा। स्वप्न तो स्वप्न ही है। बड़ा सुन्दर स्वप्न था पर!' उसे कोई कैसे विश्वास दिलाये कि वह स्वप्न नहीं था, सत्य था और उसके सखाने कृपा करके उसे दिखाया था। वह योगमायापति भी तो उसे विश्वास दिलानेका मार्ग नहीं पा रहा था। विश्वास दिला देनेसे भी लाभ? उसने तो अपनी समालोचनामें सबको दो कौड़ीका ठहरा दिया था।

'तू कुछ देनेको कह रहा था न कनूँ!' सहसा उसने इस प्रकार पूछा, मानो कोई भूली हुई बात स्मरण हो आयी हो।

'वही तो पूछ रहा हूँ!' सखाने उल्लसित होकर पूछा। 'क्या चाहिये तुम्हें? माँगो भी तो।'

'तो देगा तू? अवश्य देगा?' उसने फिर पूछा।

'अवश्य! अवश्य!' स्वरमें उल्लास था। 'भैया! तू जल्दीसे माँग ले! देर हो रही है! सखा ढूँढ़ रहे होंगे मुझे। स्नेहसे उसके सिरपर सखाने हाथ रखा।'

'फिर 'ना' तो नहीं कर जायगा?' उसे विश्वास तो था; पर सोचता था कि इस नटखटका ठिकाना भी क्या।

'कभी नहीं! तेरी शपथ!!' सखाओंकी शपथ वह कभी नहीं करता। यदि कभी कर ही ले—तो वह वज्रकी रेखासे अधिक अमिट है। भद्र इसे भलीभाँति जानता है।

'तो तू अब कभी अपने इन कोमल चरणोंसे वनमें गैयाँ घेरने भागना मत!' चरणोंके समीप बैठकर उसने उनको छूते-छूते कहा। 'चाहे मैं कितना भी रूठ जाऊँ, तू गैयाँ घेरने नहीं जायगा—बोल!' उसने अपने दोनों नेत्र भर लिये थे।

उस सदा प्रसन्नके कमलदलायत लोचन भी भर आये थे। दोनों हाथोंसे उसने चाहा कि सखाको उठाकर हृदयसे लगा ले; पर यह तभी शक्य हो सका, जब उसने बड़ी कठिनतासे भरे हुए कण्ठसे कह दिया—'अच्छा!'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखण्ड भजनका स्वरूप

(डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

आशय—एक बार भगवान्‌का भजन आरम्भ होनेके बाद वह एक पलके लिये भी बन्द न हो; हर समय, हर स्थानपर, हर परिस्थिति (अनुकूल एवं प्रतिकूल), हर अवस्था (रोग, नीरोगता, बुढ़ापा, सम्मान, अपमान, जाग्रत्, नींद आदि)-में, हर कार्य करते समय, मृत्युके क्षणोंमें भी निरन्तर, तैलधारावत् चलता रहे, उसको अखण्ड भजन कहते हैं। एक उदाहरणसे यह बात और अधिक स्पष्ट हो जायगी—एक बहुत बड़ी टंकीमें आपने तेल भर दिया और उसकी टोंटी (नल) खोल दी। अब आप कहीं भी रहें, किसी भी परिस्थिति-अवस्थामें रहें, कुछ भी करें, जबतक उस टंकीमें तेल है, तबतक टोंटी चलती रहेगी। एक पलके लिये भी बन्द नहीं होगी। उसी प्रकार जबतक श्वास हैं, जबतक 'आप' हैं, आपका भजन चलता रहे, चलता रहे।

कितने घण्टे—आपके पास प्रतिदिन चौबीस घण्टेका समय रहता है। चौबीस घण्टेमेंसे आप कितने घण्टे भगवान्‌का भजन करें और कितने घण्टे संसारके कार्य करें। अपने शरीर, घर, परिवार, नौकरी, व्यवसाय, समाज आदिके कार्य संसारके कार्य हैं। उत्तर है—मानव-जीवन केवल भगवान्‌के भजनके लिये ही मिला है, इसलिये चौबीस घण्टे ही भगवान्‌का भजन करें। एक महान् सन्तकी वाणी है—यदि आपका एक पल भी भगवान्‌के भजनके बिना निकल जाय तो जवान बेटेकी मौतमें जितना दुःख होता है, उससे भी करोड़ों गुना ज्यादा दुःख होना चाहिये।

स्वरूप—अखण्ड भजनका स्वरूप है—भगवान्‌की स्मृति या याद और भगवान्‌में प्रियता। आप कहीं भी रहें, किसी भी अवस्थामें रहें, कुछ भी करें, यदि आपको भगवान्‌की सही रूपमें सजीव स्मृति बनी हुई है, आपको भगवान् याद हैं तो आपका भजन हो रहा है और यदि आपको भगवान्‌की विस्मृति हो गयी, आप भगवान्‌को भूल गये तो आपका भजन नहीं हो रहा है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

'तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।'

(८।७)

इसका अर्थ है—इसलिये हे अर्जुन! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर।

श्रीरामचरितमानसमें आया है—

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥

(१।११९।४)

इसका अर्थ है—जो मनुष्य आदरपूर्वक (सही रूपमें) उनका (भगवान्‌का) स्मरण करते हैं, वे तो संसाररूपी (दुस्तर) समुद्रको गायके खुरसे बने हुए गड्ढेके समान पार कर जाते हैं।

प्रियताके दो अर्थ हैं—पहला, आपको भगवान् प्यारे लगें, भगवान्‌के नाते उनकी हर चीज, हर रचना प्यारी लगे, उनके द्वारा बनाये गये सभी प्राणी, सभी मानव प्यारे लगें। उनका हर कार्य प्यारा लगे, उनके द्वारा भेजी गयी प्रतिकूलता, विपत्ति भी प्यारी लगे, उसमें भी प्रसन्नता हो। प्रियता स्वतः सेवा और प्रेममें परिवर्तित हो जाती है। प्रियताका दूसरा अर्थ है—अपने लिये भगवान्‌की जरूरत महसूस होना। जिस प्रकार प्यासे मनुष्यको पानीकी जरूरत महसूस होती है, पानी न मिलनेपर वह छटपटाता है, पानीको पलभरके लिये भी भूल नहीं पाता है, उसी प्रकार आपको अपने लिये भगवान्‌की जरूरत महसूस होनी चाहिये। श्रीरामचरितमानसमें आया है—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

(७।१३०ख)

इसका अर्थ है—जैसे कामीको स्त्री प्रिय लगती है और लोभीको जैसे धन प्यारा लगता है, वैसे ही हे रघुनाथजी! हे रामजी! आप निरन्तर मुझे प्रिय लगिये।

तीन रूप—स्मृतिका सरल अर्थ है—याद। यादके तीन रूप हैं—भगवान्‌को याद करना, भगवान्‌की याद आना, भगवान्‌की याद रहना। ये तीनों ही भजन हैं। इनका विश्लेषण इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद करना—शरीर, इन्द्रियाँ, पूजा-सामग्री और सांसारिक वस्तुओंकी सहायतासे आप नित्य प्रति प्रातः एवं सायं कुछ समयके लिये भगवान्‌को याद करते हैं, जैसे—भगवान्‌के दर्शन करना; उनकी पूजा, आरती, स्तुति, उपासना, वन्दना करना; त्रिकाल सन्ध्या करना; ग्रन्थोंका श्रवण एवं पठन करना; तीर्थ, व्रत, उपवास, तप, दान करना आदि।

भगवान्‌को याद करनेके लिये स्वस्थ शरीर और सबल इन्द्रियोंकी जरूरत होती है। बीमारी और बुढ़ापेमें याद करनेमें काफी कठिनाई होती है। अन्तिम समयमें शरीर एवं इन्द्रियोंकी शक्ति लगभग शून्य हो जानेके कारण याद करना और ज्यादा कठिन हो जाता है। शरीर एवं इन्द्रियोंकी शक्ति सीमित होनेके कारण निरन्तर चौबीस घण्टे अखण्ड रूपसे भगवान्‌को याद करना असम्भव प्रतीत होता है। जबतक आपका शरीर स्वस्थ है, तबतक अधिक-से-अधिक समयतक भगवान्‌को बहुत उत्साहसे याद करना चाहिये। याद करनेकी विभिन्न साधनाओंमें नाम-जपका विशेष महत्त्व है। नाम-जपकी महिमा अपार है, अनन्त है, असीम है। श्रीरामचरितमानसमें आया है—

बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥
(२।२१६।४)

इसका अर्थ है—जगत्‌में जो भी मनुष्य एक बार 'राम' कह लेते हैं, वे भी तरने-तारनेवाले हो जाते हैं।

याद आना—आप किसी भी साधनके द्वारा भगवान्‌को याद करते नहीं हैं, लेकिन आपको अपने-आप भगवान्‌की याद आती है। सुयोग्य एवं सेवाभावी पति, पत्नी, पुत्र आदि प्रियजनके न रहनेपर कुछ समयतक उसकी याद अपने-आप आती रहती है। चाहते हुए भी उसको भूल नहीं पाते हैं। यह नियम है कि आप-अपने जीवनमें जिसकी तीव्र जरूरत महसूस करेंगे, उसकी याद आपको अपने-आप आयेगी। जिसको तीव्र प्यास लगी है, उसको पानीकी याद स्वतः आयेगी। पलभरके लिये भी वह पानीको भूल नहीं पायेगा। यदि आप भगवान्‌की तीव्र जरूरत महसूस करेंगे तो आपको भगवान्‌की याद स्वतः आयेगी। भगवान्‌को याद करना बहुत श्रेष्ठ बात है, लेकिन उनकी याद स्वतः आना ज्यादा श्रेष्ठ है। याद आनेमें स्वस्थ शरीर एवं सबल इन्द्रियोंकी भी जरूरत नहीं है।

याद रहना—भगवान्‌की याद आना बहुत श्रेष्ठ बात है, लेकिन यह जरूरी नहीं है कि आपको चौबीस घण्टे निरन्तर भगवान्‌की याद आती रहे। यदि अल्प समयके लिये भी आपको भगवान्‌की याद नहीं आयी, आप भगवान्‌को भूल गये और उसी समय शरीर शान्त हो गया तो आपके जीवनकी पूर्णता नहीं होगी। इसलिये याद आनेसे भी श्रेष्ठ बात है—भगवान्‌की याद सब समय, सभी स्थानोंपर, सभी अवस्थाओं, सभी परिस्थितियोंमें स्वतः रहना। आपको कुछ सांसारिक बातें सदैव स्वतः याद रहती हैं, जैसे—अपना नाम, अपने पति, पत्नीका नाम, आपके कितने बच्चे हैं, आपका गाँव कौन-सा है आदि।

याद रहनेके उपाय—याद रहनेके उपाय इस प्रकार हैं—

(१) मान लेना—भगवान्‌ने आपको मानने या स्वीकार करनेकी शक्ति दी है। यह शक्ति अन्तिम श्वासतक आपके पास यथावत् रहती है। माननेमें प्रयास, पराश्रय, पराधीनता, अभ्यास, समय अपेक्षित नहीं है। विवाह होते ही आपने मान लिया—यह मेरी पत्नी है, मेरे पति हैं; पुत्र होते ही यह मान लिया—यह हमारा पुत्र है; मकान खरीदा, तत्काल मान लिया—यह हमारा मकान है; मकान बेचा, यह मान लिया, यह मकान हमारा नहीं है आदि। यदि आप निम्नलिखित सच्ची बातोंको मान लें तो आपको भगवान् सदैव स्वतः याद रहेंगे—

(क) केवल भगवान् है—इस जगत्‌में केवल भगवान् हैं और वे विभिन्न रूपोंमें अपनी लीला कर रहे हैं। भगवान्‌के अलावा कुछ भी नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌की वाणी है—

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥
(७।७)

अर्थात् हे धनंजय! मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मणियोंकी तरह मुझमें गुँथा हुआ है।

'वासुदेवः सर्वमिति।' (७।१९)

अर्थात् सब कुछ वासुदेव ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामचरितमानसमें आया है—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
(१।१८४।५)

अर्थात् भगवान् शंकर कहते हैं—मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान् सब जगह समान रूपसे व्यापक हैं, प्रेमसे वे प्रकट हो जाते हैं।

(ख) भगवान्‌का है—इस जगत्‌के मालिक भगवान् हैं। यह जगत् भगवान्‌का है। इस जगत्‌के निर्माता, संचालक, व्यवस्थापक एवं नियन्त्रक भगवान् हैं। उन्होंने इस जगत्‌की केवल तीन चीजें आपको सौंपी हैं—शरीर; निकट परिवारजन जैसे—माता, पिता, पति, पत्नी, संतान आदि; सामान-सम्पति। इन तीनोंके मालिक भी भगवान् हैं।

(ग) प्रेम देना है—भगवान् प्रेमके भूखे हैं, प्रेमके प्यासे हैं, प्रेम देनेका सुअवसर प्रदान करके अपना प्रेमी भक्त बनानेके लिये भगवान्‌ने आपको उपर्युक्त तीन चीजें सौंपी हैं। शरीरको भगवान्‌का मेहमान मानकर भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये इसकी भरपूर सेवा करनी है। शरीरको श्रमी, संयमी, सदाचारी, स्वावलम्बी रखना; इसको मेरा, मेरे लिये और मैं नहीं मानना इसकी सेवा है। परिवारजनोंको भगवान्‌का साक्षात् स्वरूप मानकर उनको प्रसन्नता देनी है। सामान-सम्पत्तिको भगवान्‌की धरोहर मानकर सँभालना एवं इसका सदुपयोग करना है।

(घ) भगवान्‌के कार्य—जगत्‌के मालिक भगवान् हैं, जगत् उनका है। जगत्‌के सब कार्य भगवान्‌के कार्य हैं। शौच, स्नान, व्यायाम, प्राणायाम, घूमना, नाश्ता, भोजन, आराम, रात्रि-विश्राम आदि सभी शरीरके कार्य भगवान्‌के कार्य हैं। घर भगवान्‌का है। इसलिये घरकी सफाई, घरके सभी कार्य भगवान्‌के कार्य हैं। परिवारजन प्रभुके स्वरूप हैं, इसलिये इनकी सेवाके सब कार्य भी भगवान्‌के कार्य हैं। व्यापार, नौकरी, समाज आदिके सब कार्य भी भगवान्‌के कार्य हैं। भगवान्‌के कार्योंको पूरा समय, शक्ति, बुद्धि, योग्यता लगाकर सावधानीपूर्वक भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये करना है। इसीका नाम है—अपने कर्मोंके द्वारा भगवान्‌की पूजा करना। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌की वाणी है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

अर्थात् जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त हो जाता है।

(च) महिमा—भगवान् समर्थ हैं, सदैव हैं, सबके (माता-पिता) हैं, सबमें हैं, सर्वत्र है, सर्वज्ञ हैं, परम सुहृद् हैं, पतितपावन हैं, अधम-उद्धारण हैं, दीनबन्धु हैं, दीनानाथ हैं।

(छ) वे भेजते हैं—अनुकूलता एवं प्रतिकूलता भगवान् भेजते हैं। क्यों? आपको अपना प्रेमी भक्त बनानेके लिये। अनुकूलताको अपने प्रयासोंका परिणाम नहीं मानें, उसका भोग एवं उसका अभिमान नहीं करें। उसके द्वारा विश्वरूपी भगवान्‌को प्रेम दें। प्रतिकूलतामें इस आधारपर एकदम निश्चिन्त एवं प्रसन्न रहें कि यह प्रतिकूलता भगवान्‌ने भेजी है। भगवान् मेरे माता-पिता हैं। वे मेरा अहित नहीं कर सकते। इसमें मेरा विशेष हित निहित है। जिसके माध्यमसे वह प्रतिकूलता आयी है, उसको भगवान्‌का स्वरूप मानकर प्रेम देना है। विचार करनेपर आपको अनुभव होगा कि अनुकूलताका निर्माण करना, उसको बनाये रखना और बढ़ाना एवं प्रतिकूलताको रोकना और टालना आपके वशकी बात नहीं है। आप केवल प्रयास कर सकते हैं।

(२) माननेके उपाय—भगवान्‌ने आपको माननेकी शक्ति दी है। आप इन बातोंको मान सकते हैं। फिर भी यदि आप नहीं मान पायें तो निम्नलिखित उपाय करें—मनमें पक्का निश्चय करें कि मुझे इन बातोंको मानना है। पूजाके कमरेमें या किसी भी जगह अकेले बैठें। इन बातोंको अपनी वाणीसे हल्की तेज आवाजमें बोलें, अपने कानोंसे सुनें। हर बातको दस-दस बार बोलें। भगवान्‌से प्रार्थना करें—हे भगवान्! आप अपनी कृपासे मुझे इन बातोंको मनवा दीजिये। जीवनमें एक ही इच्छा रखिये—मुझे इन बातोंको मानना है। अन्य सभी इच्छाओंको भगवान्‌के चरणोंमें चढ़ा दीजिये—वे चाहें तो पूरी करें, न चाहें तो न करें। लेकिन इस एक इच्छाको अवश्य पूरी करें। भगवान् अपनी कृपासे आपकी इच्छाको पूरी कर देंगे। फिर आपके जीवनमें स्वतः अखण्ड भजन होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाय—एक अद्भुत रसायनशाला

(श्रीरोशनलालजी पाल)

जननी जनकर दूध पिलाती, केवल साल छमाही भर।
गोमाता पय-सुधा पिलाती, रक्षा करती जीवन भर॥

अभी कुछ समय पहले एक पुस्तक अमेरिकाके कृषि विभागद्वारा प्रकाशित हुई थी 'The Cow is a wonderful laboratary' (गाय एक आश्चर्यजनक रसायन-शाला है)। इस पुस्तकमें भी सिद्ध किया गया है कि प्रकृतिने समस्त जीव-जन्तुओं और सभी दुग्धधारी पशुओंमेंसे केवल गाय ही एक ऐसी पैदा की है, जिसे लगभग १८० फुट (२१६० इंच) लम्बी आँत दी है। अन्य पशुओं या जीवधारियोंमें यह विशेषता नहीं है। यही कारण है कि गाय जो कुछ भी खाती या पीती है, वह इस लम्बी आँतसे होकर अन्तिम छोरतक जाता है।

जैसे दूधसे मक्खन निकालनेवाली मशीनमें जितनी अधिक गरारियाँ लगायी जाती हैं, उससे उतना ही अधिक एवं शुद्ध फैटका मक्खन निकलता है, वैसे ही प्रकृतिने भी गायकी शारीरिक संरचनामें सबसे लम्बी आँत दी है, जिससे उसका दूध अन्य दूध देनेवाले पशुओंसे अधिक श्रेष्ठ होता है। संक्षेपमें गोवंशकी विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

गोवत्स—गाय प्रजनन (बच्चा जनने)-के बाद १८ घण्टेतक उसके साथ रहे और उसे चाटती रहे तो वह उस बच्चे (बछड़ा-बछड़ी)-को जिन्दगीभर भूलती नहीं है। इसी प्रकार गोवत्स भी सैकड़ों गायोंके बीचमेंसे अपनी माताको ढूँढ़कर दुग्धपान करता है, जबकि भैंसका बच्चा अपनी माँको ढूँढ़ नहीं पाता।

खीस—प्रजननके तुरंत बाद गायके स्तनोंसे जो दूध निकलता है, उसे खीस, चीका, कीला या पेवस कहते हैं। देखनेमें यह दूधके समान ही होता है, परंतु संरचना तथा गुणोंमें बिलकुल भिन्न होता है। सामान्य रूपसे गरम करनेपर तुरंत फट जाता है। इसीलिये इसे मिल्क-केक बनानेकी प्रक्रियाद्वारा पकाकर उपयोगमें लेते हैं। प्रजननके बाद १५ दिनोंतक इसमें दूधकी अपेक्षा प्रोटीन तथा खनिज तत्त्वोंकी मात्रा बहुत अधिक होती है तथा लेक्टोज, वसा एवं पानीकी मात्रा कम होती है। खीसमें दूधकी अपेक्षा केसीन और एलब्यूमिनकी मात्रा दोगुनी, ग्लोव्यूलिनकी मात्रा १२ से १५ गुनी तथा एल्यूमिनियमकी मात्रा ६ गुनी अधिक होती है। सामान्य दूधकी अपेक्षा खीसमें खनिजतत्त्व भी अधिक होते हैं।

सींग—गायकी सींगोंका आकार सामान्यत: पिरामिड जैसा होता है। वह एक शक्तिशाली एन्टीनाके रूपमें है। सींगोंकी मददसे गाय आकाशीय सभी ऊर्जाओंको शरीरमें संचित कर लेती है और वही ऊर्जा हमें गोमूत्र, दूध और गोबरके द्वारा मिलती है। आकाशीय ऊर्जा (कोस्मिक एनर्जी)-को संग्रह करनेका कार्य गायके सींग करते हैं। इसके अलावा गायकी पीठपर ककुद् (ढिल्ला) होता है जो कि सूर्यकी ऊर्जा और कई आकाशीय तत्त्वोंको शरीरमें ग्रहणकर गोमूत्र, दूध तथा गोबरद्वारा हमें मिलता है।

गायका दूध—यह पौष्टिक तत्त्वोंका भण्डार है। इसमें जल ८७, वसा ४, प्रोटीन ४, शर्करा ५ तथा अन्य तत्त्व १ से २ प्रतिशततक पाये जाते हैं। गायके दूधमें ८ प्रकारके प्रोटीन्स, ११ प्रकारके विटामिन्स, १२ प्रकारके पिगमेंट्स तथा तीन प्रकारकी दुग्ध-गैसें पायी जाती हैं।

गायके दूधमें 'कैरोटीन' नामक पदार्थ भैंसके दूधसे दस गुना अधिक होता है। भैंसका दूध गरम करनेपर उसके सर्वाधिक पोषक तत्त्व मर जाते हैं, जबकि गायके दूधको गरम करनेपर भी पोषक तत्त्व वैसे ही विद्यमान रहते हैं।

गायका मूत्र—गोमूत्रको आयुर्वेदमें बड़ा ही उपयोगी बताया गया है। कुशल वैद्य अपनी आयुर्वेदिक दवाएँ (गोलियाँ) बनानेमें जलके स्थानपर गोमूत्रका ही प्रयोग करते हैं। गोमूत्रमें कार्बोलिक एसिड होता है, जो कीटाणुनाशक है और शुद्धता एवं स्वच्छता बढ़ाता है, इसी कारण प्राचीन ग्रन्थोंमें इसे सबसे अधिक पवित्र कहा गया है। गंगाजलके समान इसे अधिक समयतक रखे जानेपर भी खराब नहीं होता। इसके अलावा गोमूत्र एवं गोदुग्धमें भी स्वर्णक्षार मौजूद रहता है, जो अति उपयोगी रसायन है। अनेक वैज्ञानिक परीक्षणों तथा आधुनिक दृष्टिसे गोमूत्रमें नाइट्रोजन, फास्फेट, यूरिक एसिड, पोटैशियम, सोडियम और लेक्टोज होता है। इसके अलावा इसमें सल्फर, अमोनिया, लवणसहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विटामिन एबीसीडीई, एन्जाइम आदि तत्त्व भी हैं। ये तत्त्व ही विभिन्न रोगोंमें अनुपानभेद एवं मात्राभेदके साथ प्रयुक्त होकर व्यक्तियोंको बचाते हैं।

देशी गायके गोबर-मूत्र-मिश्रणसे 'प्रोपीलीन ऑक्साइड' नामक गैस उत्पन्न होती है, जो बरसात लानेमें सहायक है। इसीसे दूसरी महत्त्वपूर्ण गैस 'इथिलीन ऑक्साइड' उत्पन्न होती है, जो ऑपरेशन थियेटरमें काम आती है। गोमूत्रमें कुल १६ प्रकारके मुख्य खनिज तत्त्व होते हैं, जो कि शरीरके रक्षण, पोषण और विकासमें सहायक हैं। इसके समुचित सेवनसे रोग-प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है और शरीर शक्तिशाली एवं चेतनायुक्त होता है। अनेक शोधों एवं परीक्षणोंमें इसमें सूक्ष्म रूपसे चाँदी तत्त्व भी पाया गया है, जो स्वास्थ्य-रक्षामें महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

गायका शरीर—गायके शरीरके रोम-रोमसे गुग्गुल-जैसी पवित्र सुगन्ध आती है। उसके शरीरसे अनेक प्रकारकी वायु निकलती है, जो वातावरणको जन्तुरहित करके पवित्र बनाती है। गायको रीठेके जलसे नहलानेसे उसको और अधिक आनन्दका अनुभव होता है। गायके इन्हीं गुणोंको देखकर कहा जाता है—

जा घर होय तुलसी अरु गाय । ता घर वैद्य कबहुँ ना जाय॥

'ऐसी बानी बोलिए'

(डॉ० श्रीसिद्धगोपालजी)

वाणी किसी भी व्यक्ति और उसके संस्कारोंकी परिचायक होती है। संयमित वाणीके लिये उपयुक्त शब्दोंका चयन आवश्यक है जो कि सभीको प्रिय हो। कबीरदासजी ने कहा है—

ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहुँ सीतल होय॥

हमारे ऋषियोंने जन-जनके लोक-व्यवहारमें उत्कृष्टता लानेके लिये संवाद-शैलीमें गरिमा और मधुरतापर बल दिया है—'**वाचा वदामि मधुमद्**'। सत्य भाषणके लिये लिखा है—'**सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्**' अर्थात् सत्य बोलो, प्रिय बोलो एवं अप्रिय लगनेवाला सत्य मत बोलो। वाणीके चार गुण बताये गये हैं—'**सारम्, सुष्ठम्, मितम्, मधुः**' अर्थात् वाणी सारपूर्ण, सुन्दर, संक्षिप्त तथा मधुर हो। इसके विपरीत आज्ञा देनेके स्वरमें बोलना, चिल्लाकर बोलना, अश्लील शब्द बोलना और कटु बोलना—ये चार दोष हैं। मनुष्यको चाहिये कि वह वाणीके सद्गुणोंका विकास करे और दुर्गुणोंको दूर भगाये। अर्थात् मेरी जिह्वाका अग्रभाग ही मधुमय न हो, अपितु पिछला भाग भी। तात्पर्य यह कि हम किसीके सामने ही मीठा न बोलें, उसके पीठ पीछे भी ऐसा ही बोलें।

अब जरा कटु वाणीका प्रभाव देखिये। महाभारतका कारण था, द्रौपदीद्वारा दुर्योधनके प्रति कहे गये कटुवचन। परिणामसे सभी परिचित हैं। वाणी समयानुसार एवं हितकारी होनी चाहिये—'**काले हितं मितं ब्रूयात्**'। वाणीमें प्रवीणता क्या है? '**मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता।**' सारपूर्ण तथा संक्षिप्त वाणी ही प्रवीणता है। कहते हैं—'**वाणी रसवती यस्य सफलं तस्य जीवनम्**' जिसकी वाणीमें रस है, उसीका जीवन सफल है। संयममें वाणी-संयमका बहुत महत्त्व है। कहा है—'पहले तौलिये फिर बोलिये', 'गोलीका घाव भर जाता है, बोलीका नहीं।' गीताके अध्याय १७ के १५वें श्लोकमें वाणीके बारेमें लिखा है—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

उद्वेग न पैदा करनेवाला, प्रिय, हितकारक और सत्यभाषण तथा शास्त्रोंके चिन्तनका अभ्यास वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है।

एक बार दाँतोंने जीभसे कहा कि हम तुम्हें काट लें तो तुम क्या करोगी? जीभने कहा कि मैं एक बात ऐसी बोल दूँगी कि तुम सब तोड़ दिये जाओगे—

दन्ताः वदन्ति जिह्वे त्वां दशामः किं करिष्यसि।
एकमेव वचो वच्मि यूयं सर्वे पतिष्यथ॥

अतः मनुष्यको मृदुभाषी होना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

महान् गुण भक्तिसे ही टिकते हैं

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। बात यह है कि जब पहले-पहल मनुष्य देश और जातिकी सेवाके लिये और दीन-दरिद्र-दुःखपीड़ित प्राणियोंकी सहायताके लिये कुछ काम शुरू करता है, तब उस समय उसके भाव निःसन्देह बहुत अच्छे होते हैं, वह सचमुच सेवा और सहायता ही करना चाहता है। पर जब क्रमशः उसका नाम फैल जाता है, उसे सम्मान मिलता है और बड़े-बड़े धनी-मानी लोग जब उस दरिद्र नेताको अपना सरदार मानकर उसकी पूजा-प्रतिष्ठा करने लगते हैं, तब उसके अन्दर सोयी हुई विषय-वासना जाग उठती है और वह बेचारा उस वासनासे प्रेरित होकर सुविधा पानेसे विषय-सेवनके गहरे गर्तमें पड़कर अपनी और देशकी दुर्दशा कर डालता है। आपने जो कुछ लिखा है, उसमें यही बात है। इसीलिये अनुभवी सन्तोंने कहा है कि दैवीसम्पत्तिके महान् गुण उसीमें ठहरते हैं जो भगवान्के आश्रित होता है। जबतक भगवान्की भक्तिसे हृदयमें अकिंचनता—अहंकार-शून्यता नहीं आ जाती, तबतक सद्गुण आ नहीं सकते और किसी कारणविशेषसे कुछ आ जाते हैं तो वे स्थिर नहीं रह सकते। श्रीमद्भागवतमें प्रह्लादने कहा है—

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः॥

(५।१८।१२)

'श्रीभगवान्में जिसकी अकिंचना (निष्काम) भक्ति होती है (जो अपने हृदयमें ऐसा अनुभव करता है कि धन, जन, मान, वैभव तथा मैं और मेरा कुछ भी नहीं है और इस प्रकारके अनुभवसे शून्यहृदयकी पूर्णताका अभिलाषी होकर), जो श्रीभगवच्चरणारविन्दकी प्राप्तिके लिये ललचा उठता है, उस पुरुषके हृदयमें समस्त देवता सारे सद्गुणोंको लेकर नित्य विराजित रहते हैं अर्थात् ऐसे निष्कंचन भक्तका जीवन समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न होकर वस्तुतः बहुत ही ऊँचे स्तरपर उठ जाता है। पर जिसमें भगवान्की भक्ति नहीं, उसमें महान् गुण कहाँसे आ सकते हैं? वह तो मनमानी कामनाओंके रथपर सवार होकर निरन्तर बाहरी विषयोंकी ओर ही दौड़ता रहता है।'

सद्गुणोंके निवासके लिये कोई सुदृढ़ आधार चाहिये। वह आधार है भगवान्की भक्ति। आजका मनुष्य भगवान्को छोड़कर सद्गुणोंका सेवन करना चाहता है, इसीसे वह पद-पदपर वंचित होता है और अन्तमें विषयपंकमें फँसकर अपनेको नष्ट कर डालता है। आज देशभरमें यही हो रहा है। पारस्परिक कलह, पद-लोलुपता, द्वेष तथा सैकड़ों दलबन्दियोंका यही प्रधान कारण है। इस दुर्दशासे हमारा छुटकारा तबतक नहीं हो सकता, जबतक हमारे कार्य-कर्ताओंके हृदयमें अकिंचना भक्तिका अंकुर नहीं पैदा होता और जबतक वह नियमितरूपसे श्रवण-कीर्तनादिरूप अमृत-जलसे सतत सींचा नहीं जाता। सेवा करनेवालोंको पहले अपने मनमें अकिंचनता पैदा करनी होगी, तभी वे सेवा कर सकेंगे। नहीं तो सेवा करनेके बदले सेवा कराने लगेंगे और किसीके न करनेपर उसके शत्रु बनकर उसके और प्रतिक्रियारूपमें अपने भी विनाश-साधनमें लग जायँगे।

आप यदि सचमुच देशकी सेवा करना चाहते हैं और साथ ही दुर्गुणोंसे बचना चाहते हैं तो सबसे पहले अपनेको 'सेवक' बनाइये। प्रत्येक कार्य भगवत्सेवाके लिये करना है और करना है भगवान्की दी हुई वस्तुओंसे और उन्हींके दिये हुए मन-बुद्धि तथा शरीरके द्वारा। अपना निजका कुछ भी नहीं है और न किसी वस्तुके बदलेमें कुछ पानेका अधिकार है। उनकी चीज, उनके इच्छानुसार उनकी सेवामें समर्पित करनी है। इस सेवामें वे कृपा करके हमें निमित्त बनाते हैं—यही हमारा परम सौभाग्य है। प्रभुसे सदा यही प्रार्थना करनी चाहिये कि कभी मनमें अहंकार पैदा न हो—विषयवासनावश कभी सेवा करानेकी या सेवाका कुछ भी बदला पानेकी जरा भी इच्छा मनमें जाग्रत् न हो। साथ ही भगवान्के नाम-गुणोंका श्रवण-कीर्तन भी करते रहना चाहिये। इससे भक्तिका पौधा लहलहाता रहता है और शीघ्र ही बढ़कर प्रेमरूप परम फल देता है। प्रेमकी प्राप्ति होती है, तभी वास्तविक प्रभु-सेवा बन पड़ती है। सेवाकी योग्यता प्रेमसे ही आती है। शेष प्रभुकृपा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७०, शक १९३५, सन् २०१४, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, फाल्गुन कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा अहोरात्र	शनि	मघा रात्रिमें २।५७ बजेतक	१५फरवरी	मूल रात्रिमें २।५७ बजेतक।
प्रतिपदा प्रात: ६।२६ बजेतक	रवि	पू०फा० ,, ४।५० बजेतक	१६ ,,	× × × ×
द्वितीया प्रात: ७।४५ बजेतक	सोम	उ० फा० रात्रिशेष ६।१७ बजेतक	१७ ,,	भद्रा रात्रिमें ८।११ बजेसे, **कन्याराशि** दिनमें ११।११ बजे।
तृतीया दिनमें ८।३६ बजेतक	मंगल	हस्त अहोरात्र	१८ ,,	भद्रा दिनमें ८।३६ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत**, चन्द्रोदय रात्रिमें ८।५३ बजे, **सायन मीनराशिका सूर्य** रात्रिमें ४।२१ बजे।
चतुर्थी ,, ९।० बजेतक	बुध	हस्त प्रात: ७।१२ बजेतक	१९ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें ७।२४ बजे, **शतभिषाका सूर्य** रात्रिमें ७।५३ बजे।
पंचमी ,, ८।४० बजेतक	गुरु	चित्रा ,, ७।३६ बजेतक	२० ,,	**राष्ट्रीय फाल्गुन मासारम्भ।**
षष्ठी ,, ७।५८ बजेतक	शुक्र	स्वाती ,, ७।३३ बजेतक	२१ ,,	भद्रा दिनमें ७।५८ बजेसे रात्रिमें ७।२४ बजेतक, **वृश्चिकराशि** रात्रिमें १।१० बजे।
सप्तमी प्रात: ६।४९ बजेतक	शनि	विशाखा ,, ७।२ बजेतक	२२ ,,	**अष्टकाश्राद्ध, सीताष्टमी, श्रीजानकी-जयन्ती,** मूल रात्रिशेष ५।१२ बजेसे।
अष्टमी रात्रिशेष ५।१८ बजेतक		अनुराधा रात्रिशेष ५।१२ बजेतक		
नवमी रात्रिमें ३।२७ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा ,, ५।१ बजेतक	२३ ,,	**धनुराशि** रात्रिशेष ५।१ बजे, **अन्वष्टकाश्राद्ध।**
दशमी ,, १।२० बजेतक	सोम	मूल रात्रिमें ३।३६ बजेतक	२४ ,,	भद्रा दिनमें २।२३ बजेसे रात्रिमें १।२० बजेतक, मूल रात्रिमें ३।३६ बजेतक।
एकादशी ,, ११।४ बजेतक	मंगल	पू०षा० ,, २।० बजेतक	२५ ,,	**विजया एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, ८।४१ बजेतक	बुध	उ०षा० ,, १२।२० बजेतक	२६ ,,	**मकरराशि** प्रात: ७।३४ बजे।
त्रयोदशी ,, ६।१८ बजेतक	गुरु	श्रवण ,, १०।४१ बजेतक	२७ ,,	भद्रा रात्रिमें ६।१८ बजेसे रात्रिशेष ५।९ बजेतक, **प्रदोषव्रत, महाशिवरात्रिव्रत।**
चतुर्दशी सायं ४।० बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा ,, ९।६ बजेतक	२८ ,,	**कुम्भराशि** दिनमें ९।५३ बजे, **पञ्चकारम्भ** दिनमें ९।५३ बजे।
अमावस्या दिनमें १।५० बजेतक	शनि	शतभिषा ,, ७।४१ बजेतक	१ मार्च	**अमावस्या।**

सं० २०७०, शक १९३५, सन् २०१४, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-वसन्त-ऋतु, फाल्गुन शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ११।५३ बजेतक	रवि	पू०भा० रात्रिमें ६।३० बजेतक	२ मार्च	**चन्द्रदर्शन, मीनराशि** दिनमें १२।४८ बजे।
द्वितीया ,, १०।१६ बजेतक	सोम	उ० भा० सायं ५।४२ बजेतक	३ ,,	मूल सायं ५।४२ बजेसे।
तृतीया ,, ८।५९ बजेतक	मंगल	रेवती ,, ५।१३ बजेतक	४ ,,	भद्रा रात्रिमें ८।३३ बजेसे, **मेषराशि** सायं ५।१३ बजे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, पू०भा०का सूर्य** रात्रिमें १।२७ बजे, पंचक समाप्त सायं ५।१३ बजे।
चतुर्थी ,, ८।७ बजेतक	बुध	अश्विनी ,, ५।१० बजेतक	५ ,,	भद्रा दिनमें ८।७ बजेतक, मूल सायं ५।१० बजेतक।
पंचमी प्रात: ७।४४ बजेतक	गुरु	भरणी ,, ५।३७ बजेतक	६ ,,	**वृषराशि** रात्रिमें ११।५१ बजे।
षष्ठी दिनमें ७।५४ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका ,, ६।३५ बजेतक	७ ,,	× × × ×
सप्तमी ,, ८।३४ बजेतक	शनि	रोहिणी रात्रिमें ८।३ बजेतक	८ ,,	भद्रा दिनमें ८।३४ बजेसे रात्रिमें ९।८ बजेतक।
अष्टमी ,, ९।४२ बजेतक	रवि	मृगशिरा ,, ९।५७ बजेतक	९ ,,	**मिथुनराशि** दिनमें ८।५९ बजे, **होलाष्टकारम्भ।**
नवमी ,, ११।१७ बजेतक	सोम	आर्द्रा ,, १२।१३ बजेतक	१० ,,	× × × ×
दशमी ,, १।११ बजेतक	मंगल	पुनर्वसु ,, २।४६ बजेतक	११ ,,	भद्रा रात्रिमें २।१५ बजेसे, **कर्कराशि** रात्रिमें ८।८ बजे।
एकादशी ,, ३।१७ बजेतक	बुध	पुष्य रात्रिशेष ५।२२ बजेतक	१२ ,,	भद्रा दिनमें ३।१७ बजेतक, **आमलकी एकादशीव्रत** (सबका), **श्रीकाशीविश्वनाथ शृंगार दिन,** मूल रात्रिशेष ५।२२ बजेसे।
द्वादशी सायं ५।२६ बजेतक	गुरु	आश्लेषा अहोरात्र	१३ ,,	**प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी रात्रिमें ७।२२ बजेतक	शुक्र	आश्लेषा दिनमें ७।५४ बजेसे	१४ ,,	**सिंहराशि** दिनमें ७।५४ बजे, **मीनराशिका सूर्य** रात्रिमें १।५ बजे, **वसन्त-ऋतु प्रारम्भ, खरमासारम्भ।**
चतुर्दशी ,, ९।३ बजेतक	शनि	मघा ,, १०।१४ बजेतक	१५ ,,	भद्रा रात्रिमें ९।३ बजेसे, **चौमासी चौदस** (जैन), मूल दिनमें १०।१४ बजेतक।
पूर्णिमा ,, १०।१७ बजेतक	रवि	पू०फा० ,, १२।१२ बजेतक	१६ ,,	भद्रा दिनमें ९।३९ बजेतक, **कन्याराशि** रात्रिमें ६।३५ बजे, **पूर्णिमा, होलिकादाह** रात्रिमें १०।१७ बजेसे पूर्व, **श्रीचैतन्यमहाप्रभु-जयन्ती।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७०, शक १९३५-१९३६, सन् २०१४, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, चैत्र कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ११।५ बजेतक	सोम	उ०फा० दिनमें १।४३ बजेतक	१७ मार्च	होली (वसन्तोत्सव)।
द्वितीया ,, ११।२० बजेतक	मंगल	हस्त ,, २। ४७ बजेतक	१८ ,,	तुलाराशि रात्रिमें ३। ३ बजे, उ० भा० का सूर्य दिनमें ९। १७ बजे, वृद्धाङ्गारकपर्व (बुढ़वामंगल)।
तृतीया ,, ११।४ बजेतक	बुध	चित्रा ,, ३।१९ बजेतक	१९ ,,	भद्रा दिनमें ११। १२ बजेसे रात्रिमें ११। ४ बजेतक।
चतुर्थी ,, १०।१८ बजेतक	गुरु	स्वाती ,, ३। २२ बजेतक	२० ,,	संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९। ३५ बजे, सायन मेषका सूर्य रात्रिमें १२। ४० बजे।
पंचमी ,, ९। ५ बजेतक	शुक्र	विशाखा ,, २।५६ बजेतक	२१ ,,	वृश्चिकराशि दिनमें ९। २ बजे, रंगपंचमी।
षष्ठी ,, ७।३१ बजेतक	शनि	अनुराधा ,, २।१० बजेतक	२२ ,,	भद्रा रात्रिमें ७। ३१ बजेसे, मूल दिनमें २। १० बजसे, शक-संवत् १९३६ प्रारम्भ।
सप्तमी सायं ५।३७ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा ,, १।४ बजेतक	२३ ,,	भद्रा प्रात: ६। ३३ बजेतक, धनुराशि दिनमें १। ४ बजे।
अष्टमी दिनमें ३। २८ बजेतक	सोम	मूल ,, ११।४० बजेतक	२४ ,,	श्रीशीतलाष्टमीव्रत, मूल दिनमें ११। ४० बजेतक।
नवमी ,, १।९ बजेतक	मंगल	पू०षा० ,, १०।७ बजेतक	२५ ,,	भद्रा रात्रिमें ११। ५७ बजेसे, मकरराशि दिनमें ३। ४२ बजे।
दशमी ,, १०।४४ बजेतक	बुध	उ०षा० ,, ८। २८ बजेतक	२६ ,,	भद्रा दिनमें १०। ४४ बजेतक।
एकादशी ,, ८। २० बजेतक	गुरु	श्रवण प्रात: ६।४८ बजेतक धनिष्ठा रात्रिशेष ५।१२ बजेतक	२७ ,,	कुम्भराशि रात्रिमें ६। ० बजे, पापमोचनी एकादशीव्रत (सबका), पंचकारम्भ रात्रिमें ६। ० बजे।
द्वादशी प्रात: ६।० बजेतक त्रयोदशी रात्रिमें ३।५० बजेतक	शुक्र	शतभिषा रात्रिमें ४।९ बजेतक	२८ ,,	भद्रा रात्रिमें ३। ५० बजेसे, प्रदोषव्रत।
चतुर्दशी ,, १। ५२ बजेतक	शनि	पू०भा० ,, २।३१ बजेतक	२९ ,,	भद्रा दिनमें २। ५० बजेतक, मीनराशि रात्रिमें ८। ५५ बजे, मास शिवरात्रिव्रत।
अमावस्या ,, १२। १३ बजेतक	रवि	उ०भा० ,, १।३७ बजेतक	३० ,,	अमावस्या, मूल रात्रिमें १। ३७ बजेसे।

सं० २०७१, शक १९३६, सन् २०१४, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, चैत्र शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १०।५७ बजेतक	सोम	रेवती रात्रिमें १। ३ बजेतक	३१ मार्च	मेषराशि रात्रिमें १। ३ बजे, पंचक समाप्त रात्रिमें १। ३ बजे, चैत्र नवरात्रारम्भ, 'प्लवंग' संवत् प्रारम्भ, शैलपुत्री दर्शन, रेवतीका सूर्य रात्रिमें ७।४९ बजे।
द्वितीया ,, १०।५ बजेतक	मंगल	अश्विनी ,, १।३ बजेतक	१ अप्रैल	चन्द्रदर्शन, ब्रह्मचारिणीदेवी दर्शन, मूल रात्रिमें १। ३ बजेतक।
तृतीया ,, ९। ४२ बजेतक	बुध	भरणी ,, १।१६ बजेतक	२ ,,	मत्स्य-जयन्ती, गणगौरव्रत।
चतुर्थी ,, ९।४९ बजेतक	गुरु	कृत्तिका ,, २।६ बजेतक	३ ,,	भद्रा दिनमें ९। ४५ बजेसे रात्रिमें ९। ४९ बजेतक, वृषराशि दिनमें ७। २८ बजे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
पंचमी ,, १०। ३० बजेतक	शुक्र	रोहिणी ,, ३। २९ बजेतक	४ ,,	× × × ×
षष्ठी ,, ११। ३७ बजेतक	शनि	मृगशिरा रात्रिशेष ५।१७ बजेतक	५ ,,	मिथुनराशि दिनमें ४। २३ बजे, श्रीसूर्यषष्ठीव्रत।
सप्तमी ,, १।११ बजेतक	रवि	आर्द्रा अहोरात्र	६ ,,	भद्रा रात्रिमें १। ११ बजेसे।
अष्टमी ,, ३।४ बजेतक	सोम	आर्द्रा प्रात: ७। २९ बजेतक	७ ,,	भद्रा दिनमें २।७ बजेतक, कर्कराशि रात्रिमें ३। २१ बजे, श्रीदुर्गाष्टमीव्रत।
नवमी रात्रिशेष ५।७ बजेतक	मंगल	पुनर्वसु दिनमें ९।५७ बजेतक	८ ,,	श्रीरामनवमीव्रत।
दशमी अहोरात्र	बुध	पुष्य ,, १२।३५ बजेतक	९ ,,	नवरात्रव्रतकी पारणा, मूल दिनमें १२। ३५ बजेसे।
दशमी दिनमें ७।१० बजेतक	गुरु	आश्लेषा ,, ३। ९ बजेतक	१० ,,	भद्रा रात्रिमें ८। ९ बजेसे, सिंहराशि दिनमें ३। ९ बजे।
एकादशी ,, ९।७ बजेतक	शुक्र	मघा सायं ५। ३३ बजेतक	११ ,,	भद्रा दिनमें ९। ७ बजेतक, कामदा एकादशीव्रत (सबका), मूल सायं ५। ३३ बजेतक।
द्वादशी ,, १०।४४ बजेतक	शनि	पू०फा० रात्रिमें ७।३७ बजेतक	१२ ,,	कन्याराशि रात्रिमें २। १ बजे, शनिप्रदोषव्रत।
त्रयोदशी ,, ११।५६ बजेतक	रवि	उ० फा० ,, ९।१३ बजेतक	१३ ,,	श्रीमहावीर-जयन्ती (जैन)।
चतुर्दशी ,, १२।४२ बजेतक	सोम	हस्त ,, १०।२५ बजेतक	१४ ,,	भद्रा दिनमें १२।४२ बजेसे रात्रिमें १२।४७ बजेतक, व्रत-पूर्णिमा, मेष-संक्रान्ति दिनमें ९। १० बजे, खरमास समाप्त, वैशाखी।
पूर्णिमा ,, १२।५३ बजेतक	मंगल	चित्रा ,, ११।३ बजेतक	१५ ,,	पूर्णिमा, तुलाराशि दिनमें १०। ४३ बजे, श्रीहनुमज्जयन्ती, वैशाखस्नानारम्भ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपानुभूति

चमत्कार

बहुत दिनोंसे मनमें इच्छा थी कि भगवान् पशुपतिनाथजीके दर्शन नेपाल जाकर किये जायँ, अत: दिनांक १८ मई, सन् २०१२ ई०को काठमाण्डू जानेका कार्यक्रम सुनिश्चित किया। साथमें मित्रमण्डलीके लगभग ११ लोग और सम्मिलित हो गये। इस प्रकार हमसब कुल मिलाकर १२ व्यक्ति काठमाण्डूके लिये चले, दिल्लीतक कारसे और आगे हवाई जहाजसे। मेरी आदत है कि मैं अपनी अलमारी और सेफकी चाभी अपने पैन्टकी पीछेकी जेबमें रखता हूँ। दिनांक १८ मई, सन् २०१२ ई०की सुबह स्नान और पूजा करनेके पश्चात् पैन्ट-शर्ट पहनकर चलते समय मैंने पुन: चाबियाँ अपने पैन्टकी पीछेकी जेबमें रख लीं। काठमाण्डू पहुँचकर होटलके कमरेमें विश्राम करते समय मैंने पैन्ट-शर्ट उतारकर हैंगरमें टाँग दी। चाबियोंका उस समय कोई ध्यान नहीं रहा। पीछेकी जेब पैन्टको टाँगते समय उलट जाती है, यह सर्वविदित है। दिनांक २१ मई, सन् २०१२ ई०को हमारी वापसी थी। तबतक चाबियोंका कोई ध्यान नहीं आया। दिनांक २१ मई, सन् २०१२ ई०को हम चल दिये। हमारे साथ हमारे एक मित्र खन्नाजी भी थे। होटलसे दिया गया एक पीले रंगका बैग मेरी बहनकी अटैचीमें बँधा हुआ था। हवाई अड्डेपर सामान बुक करते समय वह बैग मेरी पत्नीने खन्नाजीको दे दिया। वे उस बैगको लिये रहे और जब हम एक स्थानपर बैठकर हवाई जहाजमें चढ़नेकी प्रतीक्षा कर रहे थे, तब श्रीखन्नाजीने अपने बैगके सामानको देखा तो उसमें उन्हें चाबियाँ मिलीं। उन्होंने चाबियाँ हमें दिखायीं और पूछा—ये चाबियाँ कैसी हैं? मैंने चाबियाँ देखीं और चुप रहा। किंतु पत्नीने कहा कि ये चाबियाँ कमरेकी अलमारीकी होंगी, जो होटलके सेवकने थैलेमें डाल दीं। बात वहीं समाप्त हो गयी। हवाई जहाजमें बैठकर हम लोग दिल्ली आ गये। दिल्लीमें पुन: खन्नाजीने उन चाबियोंकी चर्चा की और कहा कि ये चाबियाँ दिल्लीमें मेरे पुत्रको दे दी जायँ, जिसने इस यात्राका प्रबन्ध कराया था, वह इन चाबियोंको यात्रा-प्रबन्धसे सम्बन्धित व्यक्तियोंको सौंप देगा। दिल्लीमें मेरा पुत्र हवाई अड्डेपर आ गया और वह हमें लेकर अपने कार्यालयतक आया। वहाँ चाबियोंका कोई ध्यान नहीं आया। दिल्लीसे बिजनौरतक कारमें चलनेपर पुन: खन्नाजीने चाबियाँ दिखायीं और कहा कि इनका क्या किया जाय? पत्नीने कहा अभी थैलेमें रखिये फिर देखेंगे। तीन बार चाबियाँ मेरे सामने आयीं और तीनों बार मैंने उनको हाथमें लेकर देखनेका प्रयास नहीं किया। चाबियाँ खन्नाजीके पास थैलेमें ही रहीं। रात्रिको घर आकर जब अलमारी खोलनेका नम्बर आया, तब मैंने अपने पैन्टकी पीछेकी जेबपर हाथ रखा तो वहाँ चाबियाँ नहीं थीं। अलमारी देखी तो उसका मुख्य द्वार खुला हुआ था। तब मनमें यह बात आयी कि जो चाबियाँ खन्नाजीके पास थीं, वे मेरी हो सकती हैं। मैंने तभी श्रीखन्नाजीको फोन किया कि जो चाबियाँ वे रास्तेमें दिखा रहे थे, उन्हें सँभालकर रखें, सुबहको देखेंगे। प्रात:काल मैं श्रीखन्नाजीके घर गया तो उन्होंने वे चाबियाँ लाकर दीं, जो सचमुच मेरी ही थीं। यह एक चमत्कारसे कम नहीं था कि चाबियाँ काठमाण्डूसे कारमें, टैक्सीमें, हवाई जहाजमें यात्राके दौरान श्रीखन्नाजीके थैलेमें रहीं और बार-बार मेरे सामने आयीं, किंतु मैंने उन्हें हाथमें लेकर नहीं देखा। खन्नाजीकी वे चाबियाँ थीं नहीं। वे चाहते तो हमारे यह कहनेपर कि होटलके कमरेकी हो सकती हैं, उनको कहीं भी छोड़ सकते थे अथवा मेरे पुत्रको दिल्लीमें दे सकते थे, किंतु ऐसा नहीं हुआ। मैं इसे भगवान् पशुपतिनाथकी विशेष कृपा समझता हूँ कि चाबियाँ मुझसे बिछड़कर फिर मेरे पास आ गयीं और पूरी यात्रामें सुरक्षित रहीं। मैं अभीतक यह नहीं समझ सका कि चाबियाँ किस प्रकार मेरे पैन्टसे निकलीं और होटलके थैलेमें पहुँचीं और वह थैला किस प्रकारसे हमारे सामानके साथ बँधा हुआ हवाई अड्डेतक आ गया और एक ऐसे व्यक्तिके पास चाबियाँ रहीं, जो उसकी थीं ही नहीं। मैं भगवान् पशुपतिनाथकी इस कृपाके सामने नतमस्तक हूँ।—**हितेश कुमार शर्मा**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

'एक नूर ते सभु जगु उपजिआ'

श्रीगुरुनानकदेवजीकी महिमा सुनकर एक दिन शेख मालो गुरुजीके पास आकर सलाम करके बैठ गया और पूछने लगा कि हिन्दू बड़ा है या मुसलमान? दोनोंमें-से कौन-सा मत अच्छा है? शेख मालोकी यह बात सुनकर गुरुजीने कहा—जो इस तरह एक-दूसरेको भला-बुरा जानना चाहते हैं, वे अनजान हैं, उनके मनमें द्वेष है और वे बेवजह झगड़ा करते हैं। यह बात सुनकर शेख मालो मन-ही-मन चिढ़ गया। तब उसने पूछा यदि हिन्दू-तुरक दो नहीं हैं तो खुदाने अलग-अलग क्यों बनाये हैं? एक खुदा और दूसरे रामका नाम लेते हैं। दोनोंके धर्म और पूजा-स्थान भी अलग-अलग हैं। हिन्दू अपना मत सराहते हैं तो वहीं मुसलमान अपना। यदि दोनों एक होते तो अलग-अलगके झगड़ोंमें क्यों पड़ते हैं? गुरुजीने कहा—भगत कबीरने इस भ्रमभेदको मिटानेके लिये कहा है—***'इक माटी इकने करे एक जोति सभ माहि। इक सों बनियो बनाउ तहिं भरमहु उर महि नाहि॥'***

अर्थात् सारे शरीरोंकी एक ही मिट्टी है और सबमें एक ही जोत जाग रही है। एक परमात्माद्वारा ही सारी रचना रची गयी, मनमें किसी दूसरेका भ्रम नहीं करो। यह वचन सुनकर शेख मालोका हिन्दू-मुसलमानका द्वेष-भाव मिट गया और पूछने लगा—महाराज! खुदाकी दरगाहमें किसका आदर और किसका निरादर होता है? गुरुजीने कहा—जिसने परमात्माके हुकुमको सत्य माना है तथा मनकी द्वेष-भावना दूरकर परमात्माके नामका जप किया है तथा ईश्वर-अल्लाह दोनोंमें फर्क नहीं माना है, उनको यहाँ भी और परमात्मा, खुदाकी दरगाहमें भी आदर मिलता है। यह उपदेश सुनकर शेख मालो गुरुजीका मुरीद हो गया और बड़े प्रेमसे गुरुजीके पास सेवा करके अपने घर गया और लोगोंको गुरुजीका यही उपदेश बताने लगा।

श्रीगुरुनानकदेवजीकी मक्का-मदीना-यात्राका प्रसंग है—वहाँपर काजी तथा मुल्ले इकट्ठे होकर गुरु नानकदेवजीसे धर्मचर्चा करते हुए पूछने लगे कि हिन्दू बड़ा है कि मुसलमान? इसपर गुरुजीने उन्हें समझाया—***'बाबा आखे हाजीआ, सुभि अमला बाझहु दोनों रोई॥'*** अर्थात् शुभ कर्मोंके बगैर हिन्दू और मुसलमान दोनों ही रोयेंगे और इन दोनोंको परमात्माकी दरगाहमें जगह नहीं मिलेगी। जिस प्रकार कुसुम्भका रंग कच्चा होता है और पानी पड़ते ही निकल जाता है, ऐसे ही मजहबी रंग तो कच्चे होते हैं। यह सब इनकी ईर्ष्या है। जबकि सच्चाई यही है कि राम-रहीम दोनों एक ही हैं, इस सच्चाईको न समझते हुए यह दुनिया शैतानी राहपर चल रही है।

हिन्दू, मुसलमान तथा अन्य धर्मोंमें द्वेष-भेद-भाव रखना ही गलत है; क्योंकि ये सभी एक हीके द्वारा बनाये गये हैं, जिसे हिन्दू परमेश्वर या भगवान्, मुसलमान खुदा या अल्लाह, ईसाई गॉडके नामसे जानते हैं। गुरवाणी भी फरमाती है—***'अवलि अलह नूरु उपाइआ कुदरति के सभ बंदे। एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कउन भले को मंदे॥ लोगा भरमि न भूलहु भाई।'*** अर्थात् अल्लाहने अपनी कुदरतद्वारा सभी बन्दोंको उत्पन्न किया है और एक ही नूरसे सारा संसार उत्पन्न हुआ है। कौन भला है, कौन बुरा—इस भ्रममें न पड़ें? क्योंकि सभीमें एक ही परमात्मा—खुदाका वास है। हम सभी जीव एक ही परमपिता परमेश्वरके बालक हैं—***'एक पिता एकस के हम बारिक।'***—माधवदास ममतानी

(२)

अग्निहोत्रमें छिपा रोगोपचार

त्रिकालदर्शी ऋषि-मुनियोंने मानवजातिको संक्रामक रोगोंसे बचानेके लिये तथा पर्यावरणशुद्धिके लिये नियमित अग्निहोत्र करनेका विधान बताया।

वस्तुतः संक्रमणके कारक वायुमें तैरते रोगवाहक होते हैं। संक्रमणका सर्वाधिक खतरा कमजोर प्रतिरोधक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तिवाले हर व्यक्तिको होता है। इसी कारण छोटे बच्चे, गर्भवती महिलाएँ तथा वृद्धोंको संक्रमणका सबसे ज्यादा खतरा होता है। अग्निहोत्रका मुख्य लक्ष्य वायुके शुद्धिकरणद्वारा मनुष्यकी प्रतिरोधक क्षमताको बढ़ाना है।

अग्निहोत्रमें प्रयुक्त औषधियाँ संयुक्त रूपसे पदार्थकी चैतन्यशक्तिका सूक्ष्मीकरण करती हैं। अग्निहोत्रके माध्यमसे औषधियाँ जलकर सहज ही वायुमण्डलमें घुल-मिल जाती हैं। श्वासको माध्यम बनाकर ये शतगुणित बहुमूल्य तत्त्व रक्तमें प्रवेश कर जाते हैं। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि पदार्थका सूक्ष्मतम रूपाकार ही शरीरको सीधा लाभ पहुँचाता है।

सामग्री—ताँबेका छोटा हवनपात्र, आरणा छाणा (गोबरका कण्डा)।

औषधियाँ—जायफल १० ग्राम, जावित्री १० ग्राम, बड़ी इलायची १० ग्राम, चन्दन १० ग्राम, छड़ीला ३० ग्राम, नागरमोथा ५० ग्राम, अगर २० ग्राम, गुग्गुल १० ग्राम, तिल २० ग्राम, गिलोय २० ग्राम, सोंठ २० ग्राम, सूखा आँवला ४० ग्राम, ब्राह्मी १० ग्राम, सुगन्ध कोकिला १० ग्राम, शतावर १० ग्राम, मीठी वच १० ग्राम, मुलहठी १० ग्राम।

विधि—प्रतिदिन ३ छोटे चम्मच हवन-सामग्री लेकर चुटकीभर बिना टूटे चावल और एक छोटा चम्मच घी मिलाकर अष्टाक्षरमन्त्र '**ॐ घृणिः सूर्य आदित्य ओम् स्वाहा**' की १३ आहुतियाँ देनी चाहिये। इससे स्वाईनफ्लू, टी०बी०, मलेरियासहित अनेक संक्रामक रोगोंसे रक्षा होती है।

हवनकी राख औषधीय गुणोंसे युक्त होकर रोगनिवारक होती है। अतः इसे सँभालकर रखना चाहिये। इसका चुटकीभर सेवन करनेसे रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।—**कमल मेहता**

(३)

करुणा और कर्तव्यपालन

बात पुरानी है, प्रातःकालके साढ़े सात बजे थे। अहमदाबादसे वेरावल जानेवाली सोमनाथ मेल ट्रेन कुंकावाव जंक्शनपर आकर रुकी। मैं एक भीड़वाले डिब्बेमें चढ़ गया।

समयपर गाड़ी चली। उसी समय एक टिकट-चेकर साहब हमारे डिब्बेमें चढ़ आये। उन्होंने चेकिंग आरम्भ की। मेरे सामने एक ग्रामीण वृद्धा स्त्री बैठी थी। उसके साथ एक पाँच सालका छोटा लड़का भी था। चेकर साहबने टिकट माँगे तो उस स्त्रीने एक टिकट दिया और लड़केके टिकटके विषयमें पूछे जानेपर जवाब मिला कि लड़केकी बहुत छोटी उम्रके कारण उसका टिकट लेना अनावश्यक समझा गया। लड़केकी उम्र पूछनेपर वृद्धाने सच-सच पाँच सालकी उम्र बता दी। चेकर साहबने उस वृद्धाको समझाया कि 'तीन सालके बाद बच्चेका आधा टिकट लेना पड़ता है और अब उसकी भूलके कारण उस बच्चेके आधे टिकटका डबल चार्ज चुकाना पड़ेगा।'

डबल चार्ज और वह भी अहमदाबादसे वडालतकका! चार्जकी रकम सुनकर वृद्धा घबरा गयी, अपनी अज्ञानजनित भूलके पश्चात्तापको और अपनी विशुद्ध सरलताको शब्दोंमें व्यक्त करनेमें असमर्थ होकर वह आँसू बहाने लगी।

डिब्बेके अन्यान्य यात्रियोंने चेकर साहबको सलाह दी कि वे क्षमा कर दें, परंतु इस बातको मानना उन्हें ठीक नहीं लगा; क्योंकि ऐसा करनेपर प्रकारान्तरसे जान-बूझकर मुफ्तमें मुसाफिरी करनेवालोंकी संख्या घटानेके अतिरिक्त उसे बढ़ानेकी एक राष्ट्रीय कुसेवा होती।

इस तरह 'करुणा और कर्तव्यपालन' की दुविधामें चेकर साहब डूबे थे कि उनकी बुद्धिने बीचका मार्ग निकाल दिया। उन्होंने वृद्धापर डबल चार्ज किया और उसकी रसीद भी दे दी, परंतु पैसे उस वृद्धासे आधे टिकटके ही लिये, आधे पैसे चेकर साहबने स्वयं अपने पाससे चुका दिये।

चेकर साहबका यह कर्तव्यपालन देखकर सब दंग रह गये। उस समय उस वृद्धा देवीकी कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि चेकर साहबपर आशीषका मूक अभिषेक कर रही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्तव्य ठुकराकर अथवा सत्ताका दुरुपयोग करके दया दिखलानेका दम्भ भरनेवाले लोग बहुत होते हैं, परंतु स्वयं हानि उठाकर कर्तव्यभ्रष्ट न होकर भी मानवतायुक्त व्यवहार करनेवाले व्यक्ति विरले ही होते हैं। यही सार था यात्रियोंद्वारा की जानेवाली चेकर साहबकी प्रशंसाका।—जयंतीलाल प्र० पाठक

(४)

मिसाल ईमानदारीकी

बात सन् २००४ ई० की है। मेरे दो दोस्त श्रीकृष्णचन्द्र रथ और गोपालचन्द्र महाना जो उड़ीसाके रहनेवाले हैं, मेरे घर छपरा (बिहार) आये हुए थे। दूसरे दिन सुबह नौ बजे मेरे घरसे करीब सौ मीटर दूर स्नान करने चले गये। स्नान कर चुकनेके बाद श्रीगोपालचन्द्र महानाने बताया कि उनके पैन्टकी जेबमें रखा हुआ पैसा गायब है। सुनकर मैं सन्न रह गया, यद्यपि मेरे परिवारमें ऐसा कोई नहीं है, जो घर आये मेहमानकी जेबसे पैसे निकाल ले। मैं कारण खोजता ही रह गया। पूछनेपर उन्होंने बताया कि हजार-हजारके छत्तीस नोट थे।

ऐसा कलंक लगनेकी आशंकासे खाने-पीनेकी इच्छा नहीं हुई, परंतु मेरा दृढ़ निश्चय था कि मैं पूरे पैसे लौटाऊँगा, भले ही मुझे अपनी जमीन ही क्यों न बेंचनी पड़े।

शाम ६.३० या ७.०० बजे होंगे। मेरा पूरा परिवार और वे मेरे दोनों दोस्त आँगनमें बैठे बातें कर ही रहे थे, इसी बीच मेरे पड़ोसके शेषनाथ सिंह उर्फ मेघू सिंह और उनके बड़े पुत्र शैलेन्द्र आ पहुँचे। तुरंत ही शैलेन्द्रने मुझसे पूछा—'बड़का बाबूजी! आपका कुछ खो गया है क्या?'

'सारा गाँव इस बातको जान चुका है और तुम फिर मुझसे पूछ रहे हो।'—मैंने कहा।

सुनकर शैलेन्द्रने अपनी जेबसे एक चमकदार पोलोथीनकी पोटली निकालकर मेरी तरफ बढ़ा दी और कहा—'देख लीजिये।'

मैंने पोटली खोली और पाया कि अन्दर हजार-हजारके छत्तीस नोट रखे थे।

मैंने पूछा—'ये तुम्हें कहाँ मिली?'

शैलेन्द्रने बताया—'जब मैं पानी लेकर घर जा रहा था, यह घासोंके बीच पड़ी थी, मैंने इसे उठा लिया था। रुपये देखकर मैंने उसे सुरक्षित रखा इस विचारसे कि पिताजी जब कचहरीसे लौटेंगे, उन्हींको दिखाऊँगा।' उसने अपनी माँको नहीं बताया।

यह घड़ी इतनी कारुणिक थी कि हम सभीकी आँखोंसे आँसूकी धार बह चली। सिसकियाँ निकल रही थीं, सन्नाटा! आवाजें बन्द!

संयत होनेके बाद मेरे अनुरोधपर शैलेन्द्रने एक हजारका एक नोट स्वीकार कर लिया। मैंने उससे कहा—'बेटे! इसे रख ले। सत्य और ईमानदारीकी यह घटना जीवनमें मत भूलना। यह सत्य और ईमानदारी उन्नतिकी सबसे सुदृढ़ सीढ़ी है।'

मैं सदा ही उसके जीवनमें उन्नतिकी कामना करता हूँ। दुःखकी बात है कि मेघू सिंह चार वर्ष पहले स्वर्ग सिधार गये, परंतु उनका यह कार्य सदा-सदाके लिये मेरे मन-मस्तिष्कपर अमिट है।

मेरा, मेरे परिवारके सदस्योंका, मेरे गाँव और जिलेपर लगनेवाला कलंक धुल चुका था। धन्य हैं बाप-बेटे मेघू और शैलेन्द्र! तथा शत-शत नमन उस परमपिता जगन्नाथ विश्वनाथको, जिन्होंने हम सबको ही इस कलंककी काली कोठरीसे बाहर निकाला।

आजके समयमें जबकि बहुत-से लोग थोड़े पैसोंके लिये बेईमानी, चोरी, लूट, अपहरण और हत्या-जैसे अमानवीय कार्य करते हैं, ऐसेमें यह घटना समाजके लिये एक अनुकरणीय उदाहरण है। शैलेन्द्र और उनके पिताने इस घटनाके माध्यमसे ईमानदारी, मानवता और पड़ोसी-धर्मकी बेमिसाल मिसाल कायम की।

इस घटनाको उस समय अनेक समाचारपत्रोंने भी प्रकाशित किया था।—जीत नारायण सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बली तें

दो बातनको भूल मत, जो चाहे कल्यान।
नारायन एक मौत को, दूजे श्रीभगवान॥

बड़ा प्रतापी था राक्षसराज रावण। उसके दस मस्तक और बीस भुजाएँ थीं। जब वह चलता था, पृथ्वी काँपती थी उसके पैरोंकी धमकसे। उसकी सेनाके राक्षस देवताओंके लिये भी अजेय थे। उसका भाई कुम्भकर्ण—उस महाकायको देखकर सृष्टिकर्ता भी चिन्तित हो उठे थे। राक्षसराजका पुत्र मेघनाद—युद्धमें वज्रपाणि देवराज इन्द्रको उसने बन्दी बना लिया था। स्वयं रावणकी शक्ति अपरिसीम थी। भगवान् शंकरके महापर्वत कैलासको उसने अपने हाथोंपर उठा लिया था।

वायु उसके उपवनों एवं भवनोंकी स्वच्छता करते तथा उसे पंखा झला करते थे। अग्निदेव उसके आवासको आवश्यकता-जितना उष्ण बनाते और भोजनालयमें व्यंजन परिपक्व करते। वरुणदेवको उपवनोंको सींचने, गृहके जलपात्रोंको पूर्ण रखने तथा राक्षसराजको स्नान करानेकी सेवा करनी पड़ती थी। सभी लोकपाल करबद्ध उपस्थित रहते थे सेवामें। स्वयं मृत्युदेव रावणके कारागारमें बन्दी हो गये थे।

मृत्युदेव किसीके द्वारा सदाके लिये बन्दी नहीं हुए। इतना वैभव, इतना प्रताप, हुंकारमात्रसे स्वर्गतकको सन्तप्त करनेवाला तेज! लेकिन रावणको भी मरना पड़ा एक दिन।

सुरासुरजयी, त्रिभुवनको रुलाने-वाला, परम प्रतापी रावण—रणभूमिमें उसके मस्तकोंको शृगाल भी ठुकरा सकते थे। लुढ़के पड़े थे वे दसों मस्तक, कटी पड़ी थीं बीसों भुजाएँ। मृत्युने रावणका सारा गर्व समाप्त कर दिया। रक्त-मांससे पटी भूमिपर राक्षसराजका छिन्नमस्तक कबन्ध अनाथकी भाँति पड़ा था।

रावणसे भी बढ़कर प्रतापी था कार्तिकेय सहस्रबाहु अर्जुन। रावणको उसने खेल-खेलमें पकड़ लिया और खूँटेमें लाकर इस भाँति बाँध दिया, जैसे कोई कुत्तेको बाँध दे तथा उसके दसों सिरोंको दीवट बनाकर उसने दीपक जला दिये।

एक सहस्र भुजाएँ थीं। पाँच सौ धनुष एक साथ चढ़ाकर युद्ध कर सकता था। भगवान् दत्तात्रेयकी कृपा प्राप्त हो गयी थी। शारीरिक बल तो था ही, योगकी भी अनेक सिद्धियाँ मिल गयीं। कहीं तुलना नहीं थी सहस्रार्जुनके बलकी।

क्या काम आया वह बल। युद्धस्थलमें भगवान् परशुरामजीके परशुसे कटी भुजाएँ वृक्षकी टहनियोंके समान बिखरी पड़ी रह गयीं। सदा गर्वसे उन्नत रहनेवाला मस्तक धड़से पृथक् हो गया। सहस्रबाहु अर्जुनको भी मृत्युने पृथ्वीपर पछाड़ पटका। जिसके दस मस्तक और बीस भुजाएँ थीं, वह रावण अमर नहीं हुआ। जिसने रावणको भी बाँध लेनेवाला बल और हजार भुजाएँ पायीं, वह सहस्रबाहु अर्जुन अमर नहीं हुआ। उनको भी मरना पड़ा। एक सिर और दो हाथका अत्यन्त दुर्बल मनुष्य—अरे भाई! भूल मत कि तुझे भी मरना है। सबको मरना है—केवल यही जीवनका सत्य है। इसे भूल मत और भगवान्‌का स्मरण कर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरि: ॥

(भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र)

'कल्याण'

-के ८७ वें वर्ष (वि०सं० २०६९-७०, सन् २०१३ ई०)-के दूसरे अङ्कसे बारहवें अङ्कतकके

निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची

(विशेषाङ्ककी विषय-सूची उसके आरम्भमें देखनी चाहिये, वह इसमें सम्मिलित नहीं है।)

निबन्ध-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- अखण्ड भजनका स्वरूप (डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)	सं०१२-पृ०३४
२- अण्डा नहीं, गोदुग्ध ही स्वास्थ्यप्रद है (श्रीमुलखराजजी विरमानी)	८०५
३- अद्भुत सेवक श्रीहनुमान् (डॉ० श्रीअभिमन्युसिंहजी)	७८७
४- अनूठा बदला (प्रो० श्रीशिवानन्दजी)	६३१
५- अपमान—एक ईश्वरीय अनुग्रह	७८२
६- अपने कल्याणका उपाय (श्रीघनश्यामदासजी मोदानी, बी०ए०, एल-एल०बी०)	५९८
७- अभिमानी अधिक फँसता है (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०११-पृ०१२, सं०१२-पृ०११
८- अभिलाषा [विनय-पत्रिका]	७२४
९- आत्मश्लाघासे आत्मपतन (डॉ० (श्रीमती) ज्ञानवतीजी अवस्थी)	५७९
१०- आत्मसम्मानके आगे कुछ भी नहीं [महारानी पद्मिनीकी शौर्यकथा] (जौहरगाथा) (श्रीसौजन्यजी गोयल)	७४२
११- आत्मोद्धारके कतिपय सुगम उपाय (पं० श्रीविष्णुदत्त रामचन्द्रजी दूबे)	७२५
१२- आस्तिकताकी आधारशिलाएँ	६९४
१३- ईश्वरके विधानपर विश्वास	सं०९-पृ०१०
१४- उत्तराखण्डकी त्रासदी (राधेश्याम खेमका)	सं०८-पृ०५०
१५- एक ही परमात्मा (श्रीमोहनकुमारजी शर्मा)	६०२
१६- 'एवं प्रवर्तितं चक्रम्' (स्वामी श्रीविवेकानन्दजी सरस्वती)	५२८
१७- 'ऐसी बानी बोलिए' (डॉ० श्रीसिद्धगोपालजी)	सं०१२-पृ०३८
१८- और क्या चाहते हैं भगवान्से? (डॉ० श्रीपुष्करलालजी केडिया)	(सं० १०-पृ०७)
१९- कदाचित् मैं भक्त बन पाता! (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	५२५
२०- कर्तव्यकी कसौटी (स्वामी श्रीमहेशानन्दगिरिजी महाराज) [प्रेषक—श्रीबुलाकीदासजी मीमाणी]	६३३
२१- कल्याण	५१३, ५६५, ६१७, ६६९, ७२१, ७७३, सं०८-पृ०५, सं०९-पृ०५, सं०१०-पृ०५, सं०११-पृ०५, सं०१२-पृ०५,
२२- 'कल्याण' का आगामी ८८वें वर्ष (सन् २०१४ ई०)-का विशेषाङ्क 'ज्योतिषतत्त्वाङ्क'	७११
२३- कविवर तुलसीदास एवं सन्त एकनाथका काव्य-सौष्ठव (डॉ० श्रीशरद्चन्द्रजी पेंढारकर)	सं०८-पृ०३९
२४- कुछ व्यावहारिक शिष्टाचार (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०८-पृ०१०, सं०९-पृ०११
२५- कृपानुभूति	५५४, ६०६, ६५७, ७०५, ७६२, ८१३, सं०८-पृ०४५, सं०९-पृ०४६, सं०१०-पृ०४६, सं०११-पृ०४४, सं०१२-पृ०४२
२६- कैंसर एवं हृदयरोगमें गोघृतकी महिमा (डॉ० श्रीराजकुमारजी शर्मा)	सं०९-पृ०३४
२७- कैंसरविहीन दुनिया [प्रेषक—श्रीमधुसूदनजी मोर]	८०८
२८- क्या प्रदर्शन ही जीवन है? (श्रीसुन्दरलालजी बोहरा)	सं०१०-पृ०३८
२९- गाय—एक अद्भुत रसायनशाला (श्रीरोशनलालजी पाल)	सं०१२-पृ०३७
३०- गीतामें ज्ञानयोगकी शिक्षा (डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी, साहित्यवाचस्पति)	सं०९-पृ०२५
३१- गृहस्थ संन्यासी (श्रीभँवरलालजी परिहार)	५८६
३२- गृहस्थोंके लिये गुरु श्रीअर्जुनदेवजीके उपदेश (श्रीमाधवदासजी ममतानी)	सं०११-पृ०१६
३३- गोमाताकी रक्षाके सम्बन्धमें विचार (श्रीमनीषसिंहजी गुर्जर)	सं०११-पृ०३२
३४- गोवंशका विनाश—महान् अनर्थकारी (श्रीसुभाषजी पटेल)	६५०
३५- गौकी उपयोगिताके विविध आयाम (डॉ० श्रीकरुणाशंकरजी दुबे)	सं०८-पृ०४१
३६- घट-घटमें वह साईं रमता [बोधकथा] (श्रीशरद्चन्द्रजी पेंढारकर)	६७९
३७- घूँघटके पट खोल (श्रीरामनाथजी 'सुमन')	६२०
३८- चैतन्य महाप्रभु [भक्तगाथा] (श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)	सं०१२-पृ०१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या
३९- जगन्नाथपुरीमें भक्त तुलसीदास (श्रीयोगेश्वरजी त्रिपाठी 'योगी')	सं०९-पृ०२७
४०- 'जब महाराणाको दूरसे दर्शन करने पड़े' [भक्तगाथा] (प्रो० (डॉ०) श्रीजमनालालजी बायती)	सं०९-पृ०३६
४१- 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु:' (ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाईजी व्यास)	सं०११-पृ०१०
४२- जीवदया (श्रीगौतमसिंहजी पटेल)	५४०
४३- जीवनकी मधुरताका नाशक—शंकालु स्वभाव (श्रीहरिशंकर बी० जोशी)	६४९
४४- जीवनकी समस्या (स्वामी श्रीचिदानन्दजी महाराज)	५८१
४५- जीवात्मा और परमात्माका मिलन (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	६७४
४६- ज्येष्ठमासके मुख्य व्रत-पर्व	७५३
४७- तत्त्वकी अनुभूति (श्रीदिलीपजी देवनानी)	सं०९-पृ०३८
४८- 'तन्मे मन: शिवसङ्कल्पमस्तु' (पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र)	५९५
४९- तितिक्षाकी साधना (डॉ० श्रीबसन्तबल्लभजी भट्ट, एम०ए०, पी-एच०डी०)	६३८
५०- तृष्णाका दावानल (डॉ० शैलजाजी अरोड़ा)	५२०
५१- त्याग और सन्तोष (श्रोत्रिय ब्रह्मलीन वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज) [प्रे०—श्रीज्ञानचन्द्रजी गर्ग]	सं०८-पृ०२५
५२- दयाभावके प्रेरक प्रसंग	५४१
५३- दिव्य गुणोंसे युक्त प्राणी—गौ (श्रीबाबूलालजी शर्मा)	७४४
५४- देशका दुर्भाग्य (राधेश्याम खेमका)	सं०९-पृ०५०
५५- ध्यान किसका करें? (श्रीइन्दरचन्दजी तिवारी)	५१९
५६- नवधा भक्ति—(१) श्रवण, (२) कीर्तन, (३) पाद-सेवन। [कहानी] (श्री 'चक्र')	६४६, ६९५, ७९४
५७- नवधा भक्ति—अर्चन [कहानी] (श्री 'चक्र')	सं०९-पृ०३९
५८- नवधा भक्ति—वन्दन [कहानी] (श्री 'चक्र')	सं०१०-पृ०३४
५९- नवधा भक्ति—दास्य [कहानी] (श्री 'चक्र')	सं०११-पृ०२८
६०- नवधा भक्ति—सख्य [कहानी] (श्री 'चक्र')	सं०१२-पृ०३०
६१- नाम-मोह—एक महारोग (श्रीअगरचन्दजी नाहटा)	सं०८-पृ०२९
६२- 'नामु राम को कलपतरु' (श्रीदेवेन्द्रजी शर्मा)	५८८, ६३५, ६९१, ७३५
६३- निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची	सं०१२-पृ०४७
६४- निर्झरनाद (श्रीबाबूलालजी सोलंकी 'फणीन्द्र') [प्रे०—श्रीचन्द्रकिशोरजी सोलंकी]	सं०८-पृ०१२
६५- पढ़ो, समझो और करो	५५५, ६०७, ६५८, ७०६, ७६३, ८१४, सं०८-पृ०४६, सं०९-पृ०४७, सं०१०-पृ०४७, सं०११-पृ०४५, सं०१२-पृ०४३,
६६- परमानन्दकी खेती (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७७४
६७- पहले अमृत-सा, पीछे जहर-सा (श्रीमगनलाल हरिभाई देसाई)	सं०९-पृ०९
६८- पाप होने कैसे बन्द हों? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	५७२, ६२२, ६७७
६९- पुराणोक्त कालगणना-विज्ञान (डॉ० श्रीकौमुदीजी श्रीवास्तव एवं डॉ० श्रीसंजयजी श्रीवास्तव)	७३०
७०- 'प्रेम फूल फूलन सौं प्रेम सेज रची है' (श्रीअर्जुनलालजी बंसल)	५७५
७१- प्रेमीका प्रलाप (श्रीरमेशजी दूबे, बी०ए०, विशारद)	७४८
७२- प्रेरक-प्रसंग [श्रीशिवकुमारजी गोयल]	५८७
७३- बड़भागी कौन? (श्रीसुभाषचन्द्रजी बग्गा)	६२४
७४- बाह्य एवं आन्तरिक त्यागका तात्पर्य (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	सं०९-पृ०६, सं०१०-पृ०६, सं०११-पृ०६
७५- भक्त एवं भगवान्‌का सम्बन्ध (अनन्तश्री अनिरुद्धाचार्य वेंकटाचार्यजी महाराज)	७३१
७६- भक्त और चमत्कार (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	५१८
७७- भक्तकी प्रतीक्षा और ईश्वरके दर्शन (श्रीभूपेन्द्रकुमारजी दवे)	७७६
७८- भक्त-चरितकी उपादेयता (श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित श्रीराधासर्वेश्वर-शरणदेवाचार्यजी महाराज)	५१६
७९- भक्ति और भक्त (पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा)	५६१
८०- भक्तिकी सुलभता (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	५२२
८१- भक्तोंका अनुपम चारित्र्य (पं० श्रीसूरजचन्दजी सत्यप्रेमी 'डाँगीजी')	५४२
८२- भक्तोंकी अनन्य गति हैं भगवान् (आचार्य डॉ० श्रीपवनकुमारजी शास्त्री, साहित्याचार्य)	सं०८-पृ०२२
८३- भगवत्कृपा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	सं०८-पृ०६
८४- भगवन्नाम (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७२२
८५- भगवान्‌का प्यारा भक्त (श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका)	५३१
८६- भगवान् भी भूखे हैं (श्रीज्ञानचन्दजी आर्य 'गोयल')	५९७
८७- भगवान्‌में प्रेम होनेका उपाय (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	५१४
८८- भूकम्पका कारण कत्लखाने (श्रीके० पिल्लय)	सं०१०-पृ०४१
८९- मनका इकतारा (डॉ० श्रीसुरेशचन्द्रजी सेठ, एम० ए०, पी-एच० डी०)	६८०
९०- मनकी विलक्षणता (डॉ० श्रीविजयविहारीजी)	सं०९-पृ०२१
९१- मनन करने योग्य	५५८, ६१० ६६२, ७१०, ७६६, ८१३, सं०८-पृ०४९, सं०९-पृ०४९, सं०१०-पृ०५०, सं०११-पृ०४८, सं०१२-पृ०४६
९२- मरणधर्मा प्राणी (श्रीमूलनारायणजी मालवीय)	६८३
९३- महात्माओंकी महिमा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	सं०१२-पृ०६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या
९४- महान् सन्त स्वामी रामतीर्थ [सन्त-चरित] (श्रीनारायणजी स्वामी) [प्रे०—श्रीदेवव्रतजी वशिष्ठ]	७५६
९५- महाराज श्रीगोपालसिंहजी [भक्तगाथा] (श्रीदेवेन्द्रकुमारजी गोयल)	७००
९६- माननेमात्रसे भगवत्प्राप्ति (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	५६६
९७- मुक्ति-पथ (स्वामी श्रीआशुतोषजी 'गुरुस्नेही') [प्रे०—श्रीअजेन्द्रपतिजी त्रिपाठी]	८०२
९८- मृत्यु भी एक शिक्षक है (डॉ० श्रीविजयकुमारजी अरोड़ा, एम०ए०, पी-एच०डी०)	सं०८-पृ०३०
९९- मैं भगवान्का हूँ (डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)	५४९
१००- मौनकी साधना [सन्त श्रीविनोबा भावेके विचार]	७३८
१०१- 'मौनं सर्वार्थसाधकम्' (श्रीरमेशगणेशजी दुसाने)	सं०९-पृ०१८
१०२- योगवासिष्ठका उपशम-प्रकरण (श्रीरघुनाथप्रसादजी सराफ)	६८६
१०३- योगवासिष्ठका मुमुक्षुव्यवहार-प्रकरण (श्रीरघुनाथप्रसादजी सराफ)	सं०८-पृ०१८
१०४- 'रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैः' (श्रीअर्जुनलालजी बंसल)	सं०८-पृ०१६
१०५- 'राम नाम अवलंबन एकू' (गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी) [प्रे०—श्रीधर्मेन्द्रजी गोयल]	७८५
१०६- रामायण कभी छूती है हमें? (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	सं०१०-पृ०१२
१०७- रसिकशिरोमणि श्रीअग्रदेवाचार्यजी महाराज [भक्तगाथा] (श्रीसियाशरणजी शास्त्री)	सं०८-पृ०२७
१०८- लम्बी उम्रतक कैसे जियें? (श्रीबरजोरजी सिंह)	५९२
१०९- लीलावतार-चिन्तन (दण्डी स्वामी श्रीमहेश्वरानन्द सरस्वतीजी)	सं०८-पृ०८
११०- विजय [पौराणिक लघु-कथा] (श्रीजहूरबख्शजी)	सं०१०-पृ०२५
१११- विनम्रता [प्रेरक-प्रसंग] (श्रीमती उषाजी अग्रवाल)	सं०८-पृ०४२
११२- विनाशके पथपर (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	७२७, ७७९
११३- वीर अभिमन्यु [वीरगाथा] (प्रो० श्रीकृष्णबिहारीजी पाण्डेय)	६५१
११४- वृद्धजनहिताय-सर्वजनसुखाय (श्रीइन्द्रमलजी राठी) [प्रे०—श्रीरामेश्वरलालजी तापड़िया]	७४७
११५- वेदोंमें राष्ट्रीयता और लोकमंगलकी भावना (श्रीगदाधरजी भट्ट)	७५२
११६- ***व्रतोत्सव-पर्व—***	
[वैशाखमासके व्रत-पर्व]	६०५
[ज्येष्ठमासके व्रत-पर्व]	६५६
[आषाढ़मासके व्रत-पर्व]	७०४
[श्रावणमासके व्रत-पर्व]	८१२
[भाद्रपदमासके व्रत-पर्व]	सं०८-पृ०४३
[आश्विनमासके व्रत-पर्व]	सं०९-पृ०४५
[कार्तिकमासके व्रत-पर्व]	सं०१०-पृ०४४
[मार्गशीर्षमासके व्रत-पर्व]	सं०१०-पृ०४५
[पौषमासके व्रत-पर्व]	सं०११-पृ०४२
[माघमासके व्रत-पर्व]	सं०११-पृ०४३
[फाल्गुनमासके व्रत-पर्व]	सं०१२-पृ०४०
[चैत्रमासके व्रत-पर्व]	सं०१२-पृ०४१
११७- व्यास-विषाद (गोलोकवासी परमभागवत सन्त श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज)	५४४
११८- शरणागतिमें निहित है जीवनका सुख (श्रीगजाननजी पाण्डेय)	७४१
११९- शास्त्रवाद [अनश्वर परमेश्वरका अनश्वर-संविधान] (श्रद्धेय पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)	७९०, सं०८-पृ०३३, सं० ९-पृ०३१, सं०१०-पृ०२९, सं०११-पृ०२०, सं०१२-पृ०२६
१२०- श्रीजैमलदासजी महाराज (साधु श्रीनवलरामजी शास्त्री)	५३५
१२१- श्रीदेवराहा बाबाका अमृतमय उपदेश (श्रीरामकृष्णजी रामानुजदास 'श्रीसन्तजी महाराज')	६९९
१२२- श्रीनामदेवजीके जन्मके सम्बन्धमें एक स्पष्टीकरण	सं०११-पृ०२७
१२३- श्रीभक्तमाल कलियुगका अपूर्वग्रन्थ (अग्रपीठाधीश्वर स्वामी श्रीराघवाचार्यजी वेदान्ती)	५३०
१२४- श्रीभक्तमालकी भक्तिरसबोधिनी टीका और सन्त नामदेव-चरित्र (मलूकपीठाधीश्वर सन्त श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज).	सं०११-पृ०३३
१२५- श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना	सं०११-पृ०३७
१२६- श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना	सं०११-पृ०३८
१२७- श्रीमद्भगवद्गीताकी 'पुष्पिका' (आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र, 'विनय')	सं०१२-पृ०९
१२८- श्रीरामकथाकी व्यापकता (श्रीरघुनन्दनप्रसादजी शर्मा)	सं०१२-पृ०२३
१२९- श्रीरामके स्वभावके कुछ सूत्र (श्रीहरनारायणजी खत्री)	७९८
१३०- श्रीरामचरितमानसके माध्यमसे भगवद्दर्शन (डॉ० श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त, एम०ए० (संस्कृत, हिन्दी), पी-एच०डी०)	सं०९-पृ०२०
१३१- श्रीराधाजीके उद्‌गार (श्रीराधाबाबा) [प्रेषिका—सुश्री शैवालिनी]	सं०११-पृ०२३
१३२- श्रीराधाजी कौन थीं? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०१०-पृ०९
१३३- श्रीहनुमान्‌जी—एक श्रेष्ठ कथावाचक (श्रीअमृतलालजी गुप्ता)	सं०१०-पृ०२३
१३४- श्रीहरिरामदासजी महाराज [भक्तगाथा] (साधु श्रीनवलरामजी शास्त्री)	६००
१३५- संक्षिप्त वेद-परिचय	६४०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या

१३६- संसार-बन्धन (सुश्री शकुन्तला गुप्ता, बी०ए०, हिन्दी-प्रभाकर) .... सं०१०-पृ०२७

१३७- सन्त-उद्‌बोधन (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) .... ६९८, सं०१०-पृ०४०

१३८- सन्त-वचन [सन्त थॉमस ए० केम्पिस] ७२९

१३९- सन्तवाणी [महर्षि रमण] ५१७

१४०- सफल-जीवन बनिये! (श्रीसाँवरमलजी सुरेका, बी०कॉम०) .. ७४९

१४१- समर्पणके तीन सोपान (श्रीताराचन्दजी आहूजा) सं०९-पृ०१४

१४२- सादगी एवं सदाचार (श्रीरामचाकरजी) ५९९

१४३- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ५७७, ६२९, ६८२, ७३४, ७८३, सं०८-पृ०१४, सं०९-पृ० १६, सं०-१०-पृ०१५, सं०-११-पृ०१७, सं०१२-पृ०१८

१४४- साधन-सूत्र [संसारमें कैसे रहें ?, संयमके उच्च आदर्श] (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा) .... ५९१, सं०९-पृ०२२

१४५- साधनामें तत्परता (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ६१८

१४६- साधनोपयोगी पत्र.... ५५२, ६०३, ६५३, ७०२, ७६०, ८१०, सं०८-पृ०४४, सं०९-पृ०४३, सं०१०-पृ०४२, सं०११-पृ०४०, सं०१२-पृ०३९

१४७- साधुके लिये एकान्तमें स्त्रीसम्भाषणका निषेध (गोलोकवासी सन्त पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज) .... सं०११-पृ०२५

१४८- सार्थक जीवनके दस सूत्र (श्रीप्रकाशजी रातड़िया) ८०१

१४९- सावधान रहनेकी आवश्यकता [राधेश्याम खेमका] .... सं०११-पृ०४९

१५०- सीखने और समझनेकी बातें (श्रीपथिकजी महाराज) [प्रेषक—श्रीमहेशचन्द्रजी] .... सं०८-पृ०२०

१५१- सूर-काव्यमें कृष्णका बाल-वर्णन (श्रीचितरंजनलालजी 'भारती') ५३७

१५२- सूरदासका श्रीरामभक्तिकाव्य (डॉ० श्रीगोपीनाथजी तिवारी, एम०ए०, पी-एच०डी०) .... सं१०-पृ०११

१५३- स्यमन्तकमणिकी कथा (श्रीसुधीरजी निगम) .... सं०११-पृ०३५

१५४- स्वाध्यायका महत्त्व (श्रीगदाधरजी भट्ट) ५४८

१५५- 'स्वाध्यायान्मा प्रमदः' (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी द्विवेदी) ८०६

१५६- हृदयके उत्तम भावोंसे परम लाभ (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ६७०

पद्य-सूची

१- 'ओ आनेवालो इतना समझ लो' (सन्त श्रीपथिकजी महाराज) [प्रेषक—श्रीमहेशचन्द्रजी] .... सं०११-पृ०१९

२- 'गर्भपात सब पापां रो बाप' (श्रीबजरंगलालजी सोनी) .... सं०१०-पृ०१८

३- 'जगत में रहना है दिन चार' (सन्त श्रीसरसमाधुरीजी महाराज) ६७६

४- 'तेरो नाम सुमंगलदायक' (श्रीजगदीशनारायणजी मिश्र) .... सं०८-पृ०३८

५- निवेदन (श्रीपरमानन्दजी प्रभाकर, साहित्याचार्य) ७५९

६- प्रार्थना (ब्रह्मलीन संत श्रीपथिकजी महाराज) [प्रेषक—श्रीमहेशचन्द्रजी] ५७८

७- प्रार्थना (श्रीगोवर्धननाथजी टंडन) .... सं०९-पृ०२४

८- मंजु मनोरथ (स्वामी श्रीनर्मदानन्द सरस्वतीजी 'हरिदास') ६३१

९- 'मधुबन श्याम बिना नहिं भावै' (कु० वन्दना पाण्डेय 'शायद') ६८१

१०- मीरा (श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०) ७८६

११- श्रीरामाष्टयाम (श्रीनाभादासजी महाराज) [प्रे०—श्रीसियाशरणजी शास्त्री] ५४३

१२- 'सिसक पड़े रघुबीर' (श्रीभारतभूषणजी तायल) .... सं०१०-पृ०१४

१३- 'हरि का किस विधि भजन करूँ' (श्रीकमलसिंहजी सोलंकी 'कमल') ७९३

संकलित-सामग्री

१- गर्भस्तुति .... सं० ८-पृ० ३

२- त्रिदेवोंद्वारा आदिशक्ति पराम्बाकी स्तुति ६६७

३- नर कौन ? तौन, जौन 'राधे-राधे' नाम रटै ५६३

४- भगवती महालक्ष्मीकी प्रार्थना .... सं०११-पृ०३

५- भगवद्भक्तोंका दिव्य नामसंकीर्तन ५११

६- भगवान् सूर्यनारायणका ध्यान एवं प्रार्थना .... सं०९-पृ०३

७- माता कौसल्याकी गोदमें भगवान् श्रीराम ६१५

८- राजा इन्द्रद्युम्नद्वारा भगवान् जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्राकी स्तुति ७७१

९- श्रीकृष्णजीका अर्जुनको स्वकर्मका उपदेश...... सं०१२-पृ०३

१०- श्रीगंगा-माहात्म्य ७११

११- 'सोहत जुगल राधे-स्याम' .... सं०१०-पृ०३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीगीता-जयन्ती

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति । तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः । सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ (गीता ६ । ३०-३१)

'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।'

आजके इस अत्यन्त संकीर्ण स्वार्थपूर्ण जगत्में दूसरेके सुख-दुःखको अपना सुख-दुःख समझनेकी शिक्षा देनेके साथ-साथ कर्तव्य-कर्मपर आरूढ़ करानेवाला और कहीं भी आसक्ति-ममता न रखकर केवल भगवत्सेवाके लिये ही यज्ञमय जीवन-यापन करनेकी सत्-शिक्षा देनेवाला सार्वभौम ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवद्गीता' ही है। इस ग्रन्थका विश्वमें जितना अधिक वास्तविक रूपमें प्रचार-प्रसार होगा, उतना ही मानव सच्चे सुख-शान्तिकी ओर बढ़ सकेगा।

मार्गशीर्ष शुक्ल ११ (एकादशी), शुक्रवार, दिनाङ्क १३ दिसम्बर २०१३ ई० को श्रीगीता-जयन्तीका महापर्व दिवस है। इस पर्वपर जनतामें गीता-प्रचारके साथ ही श्रीगीताके अध्ययन—गीताकी शिक्षाको जीवनमें उतारनेकी स्थायी योजना बननी चाहिये। आजके किंकर्तव्यविमूढ़ मोहग्रस्त मानवके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। इस पर्वके उपलक्ष्यमें श्रीगीतामाता तथा गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णका शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये नीचे लिखे कार्य यथासाध्य और यथासम्भव देशभरमें सभी छोटे-बड़े स्थानोंमें अवश्य होने चाहिये—

(१) गीता-ग्रन्थ-पूजन। (२) गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण तथा गीताको महाभारतमें ग्रथित करनेवाले भगवान् व्यासदेवका पूजन। (३) गीताका यथासाध्य व्यक्तिगत और सामूहिक पारायण। (४) गीता-तत्त्वको समझने-समझानेके हेतु गीता-प्रचारार्थ एवं समस्त विश्वको दिव्य ज्ञानचक्षु देकर सबको निष्कामभावसे कर्तव्य-परायण बनानेकी महती शिक्षाके लिये इस परम पुण्य दिवसका स्मृति-महोत्सव मनाना तथा उसके संदर्भमें सभाएँ, प्रवचन, व्याख्यान आदिका आयोजन एवं भगवन्नाम-संकीर्तन आदि करना-कराना। (५) महाविद्यालयों और विद्यालयोंमें गीता-पाठ, गीतापर व्याख्यान, गीता-परीक्षामें उत्तीर्ण छात्र-छात्राओंको पुरस्कार-वितरण आदि। (६) प्रत्येक मन्दिर, देवस्थान, धर्मस्थानमें गीता-कथा तथा अपने-अपने इष्ट भगवान्का विशेषरूपसे पूजन और आरती करना। (७) जहाँ किसी प्रकारकी अड़चन न हो, वहाँ श्रीगीताजीकी शोभायात्रा (जुलूस) निकालना। (८) सम्मान्य लेखक और कवि महोदयोंद्वारा गीता-सम्बन्धी लेखों और सुन्दर कविताओंके द्वारा गीता-प्रचार करने और करानेका संकल्प लेना, तदर्थ प्रेरणा देना और (९) देश, काल तथा पात्र (परिस्थिति)-के अनुसार गीता-सम्बन्धी अन्य कार्यक्रम अनुष्ठित होने चाहिये। **—सम्पादक**

गीता-दैनन्दिनी—(सन् २०१४) अभी उपलब्ध

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)

	डाकखर्च
पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)—गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद,	मूल्य ₹ ६५+₹ २५
,, ,, (बँगला अनुवाद (कोड 1489), ओड़िआ अनुवाद (कोड 1644), तेलुगु अनुवाद (कोड 1714)	मूल्य ₹ ६५+₹ २५
सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 503)—गीताके मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ	मूल्य ₹ ५०+₹ २५
पॉकेट साइज— सीमित मात्रामें उपलब्ध (कोड 506)— गीता-मूल श्लोक,	मूल्य ₹ २५+₹ २०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

प्र० ति० २०-११-२०१३ Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2011-201

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2011-2013

जनवरी सन् २०१४ ('कल्याण' वर्ष ८८)-का विशेषाङ्क— 'ज्योतिषतत्त्वाङ्क'

स्वयं ग्राहक बने रहें एवं इष्ट-मित्रोंको ग्राहक बनावें।

विशेष सूचना—जनवरी मासके मध्यसे 'कल्याण' के नियमित ग्राहकोंको रजिस्ट्रीसे तथा जिनका वार्षिक शुल्क जमा नहीं हुआ है, उन्हें वी०पी०पी० से विशेषाङ्क भेजनेका कार्यक्रम है। जिन पाठकोंने अभीतक अपना सदस्यता-शुल्क न भेजा हो, वे यथाशीघ्र भेजनेकी कृपा करें। यदि कोई सज्जन सदस्य न रहना चाहें तो हमें सूचित करनेकी कृपा करें, अन्यथा उन्हें वी०पी०पी० द्वारा विशेषाङ्क प्रेषित कर दिया जायगा।

'ज्योतिषतत्त्वाङ्क' में ज्योतिषशास्त्रका परिचय, माहात्म्य, जीवनमें उसकी उपयोगिता, ज्योतिषाचार्योंका वृत्तान्त, पञ्चाङ्ग, मुहूर्त-विचार, जन्मकुण्डली-निर्माण एवं फलादेश, सामुद्रिक शास्त्र, वास्तु-विचार, स्वास्थ्य-विचार, व्यापार, विवाह, सन्तान, रत्न-विज्ञान इत्यादिका परिचय दिया गया है जो पाठकोंके लिये अत्यन्त उपयोगी होगा। इसका लाभ अधिक-से-अधिक पाठकोंको प्राप्त हो सके, अतः जिन लोगोंको आप ग्राहक बनवाना चाहते हैं, उनका पंचवर्षीय अथवा एकवर्षीय शुल्क शीघ्र भेजवा देवें या हमें पत्रके द्वारा उनका नाम, पता भेजनेकी कृपा करें, जिससे उन्हें वी०पी०पी० द्वारा समयसे 'विशेषाङ्क' भेजा जा सके।

पुस्तकालय 32280 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

पञ्चवर्षीय सम्मानित सदस्य जिनकी सदस्यता-अवधि दिसम्बर २०१३ में समाप्त हो रही है उनसे अनुरोध है कि उन्हें निम्न निर्धारित शुल्क-राशि अतिशीघ्र भेजकर नवीनीकरण करा लेना चाहिये। नवीनीकरणमें विलम्ब होनेपर वार्षिक सदस्यताके लिये वी०पी०पी०से विशेषाङ्क प्रेषित किया जायगा।

सदस्यता-शुल्क—एकवर्षीय ₹ २०० अजिल्द (सजिल्द ₹ २२०), पंचवर्षीय ₹ १००० अजिल्द (सजिल्द ₹ ११००)।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर) (उ०प्र०)।

'कल्याण' के पुनर्मुद्रित उपलब्ध विशेषाङ्क

कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹	कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹	कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹
41	शक्ति-अङ्क	१५०	40	भक्त-चरिताङ्क	२००	1361	सं० श्रीवाराहपुराण	१०
616	योगाङ्क	१३०	1362	अग्निपुराण	२००	791	सूर्याङ्क	८
627	संत-अङ्क	१८०	653	गोसेवा-अङ्क	१००	584	सं० भविष्यपुराण	१५
1773	गो-अङ्क	१७०	1044	वेद-कथाङ्क	१००	586	शिवोपासनाङ्क	१०
44	संक्षिप्त पद्मपुराण	२००	789	सं० शिवपुराण	१७५	1131	कूर्मपुराण—सानुवाद	१०
539	संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण	७५	631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	१७५	1189	सं० गरुडपुराण	१४
1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	१००	1135	भगवन्नाम-महिमा और		1467	भगवत्प्रेम-अङ्क	
43	नारी-अङ्क	२००		प्रार्थना-अङ्क	१२०		(सजिल्द)	८५
659	उपनिषद्-अङ्क	१५०	572	परलोक-पुनर्जन्माङ्क	१५०	1592	आरोग्य-अङ्क	
279	सं० स्कन्दपुराण	२८०	517	गर्ग-संहिता	१३०		(परिवर्धित संस्करण)	१७०
1183	सं० नारदपुराण	१७०	1113	नरसिंहपुराणम्-सानुवाद	७०	1610	देवीपुराण (महाभागवत)	९०
667	संतवाणी-अङ्क	१५०	1432	वामनपुराण-सानुवाद	११०		शक्तिपीठाङ्क—सानुवाद	
587	सत्कथा-अङ्क	१४०	557	मत्स्यमहापुराण (सानुवाद)	२३०	1793	श्रीमद्देवीभागवताङ्क	१००
636	तीर्थाङ्क	१५०	657	श्रीगणेश-अङ्क			(पूर्वार्द्ध)	
574	संक्षिप्त योगवासिष्ठ	१४०		(परिशिष्ट-सहित)	१५०	1842	श्रीमद्देवीभागवताङ्क	१००
1133	सं० श्रीमद्देवीभागवत	२००	42	हनुमान-अङ्क	१२५		(उत्तरार्ध)	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar